वर्धमान जीवन-कोश

वर्धमान जीवन-कोश

CYCLOPÆDIA OF VARDHAMANA

जैन दशमलव वर्गीकरण संख्या
०४६४ तथा ६२२४

सम्पादक :
मोहनलाल बांठिया, बी० कॉम
श्रीचन्द चोरड़िया, न्यायतीर्थ (द्वय)

प्रकाशक :
जैन दर्शन समिति
१६-सी, डोवर लेन, कलकत्ता-७०००२९
सन् १९८०

जैन आगम विषय कोश ग्रन्थमाला
तृतीय पुष्प–वर्धमान जीवन-कोश : जैन दशमलव वर्गीकरण संख्या ०४६४
तथा ६२२४

अर्थ सहायक–श्री भगवतीलाल सिसोदिया ट्रस्ट, जोधपुर
मारफत–श्री जबरमल भंडारी, तथा अन्यगण

प्रथम आवृत्ति ११००
मूल्य—भारत में रु० ५०.००
विदेश में Sh 65/-

मुद्रक :
झा प्रिन्टर्स,
२-सी· इमाम बक्स लेन,
कलकत्ता-७०००० ६

समर्पण

जिनमें अनेकांत दृष्टि और यथार्थवाद पूर्ण विकसित थे, जो सत्य को
संघीय-क्षितीज के पार भी देखते थे—जिन्होंने अपने प्रत्यक्ष बोध
के आधार पर सत्य का प्रतिपादन किया, जनता की भाषा में
जनता को उपदेश दिया तथा साधु-साध्वी-श्रावक-
श्राविका रूप चार तीर्थ की स्थापना की—उन
वर्धमान तीर्थंकर को उनके जीवन से संबंधित
'वर्धमान जीवन-कोश' समर्पित है।

संकलन-संपादन में प्रयुक्त ग्रंथों की संकेत-सूची

—	अंगुत्तरनिकाय
अणुत्त०	अणुत्तरोववाइयदसाओ
अंत	अंतगडदसाओ
अभिधा०	अभिधान चिंतामणि संस्कृत कोष
अभि०	अभिधानराजेन्द्र कोष
अष्टपा०	अष्टप्राभृत
अणुओ०	अणुओगद्दाराइं
अणुओ० हारि०	अणुओगद्दाराइं हारिभद्रीय टीका
—	अर्धमागधी कोष
	आगम और त्रिपिटक
आया०	आयारो — टीका, चूर्णि
—	आप्टे संस्कृत अंग्रेजी छात्र कोष
आव० चू०	आवश्यक चूर्णि
आव० नि०	आवश्यक निर्युक्ति
आव० भाष्य	आवश्यक भाष्य
आव०	आवस्सय सुत्त
उत्त०	उत्तरज्झयणाइं — टीका
उत्तपु०	उत्तमपुरुषचरित्रम्
उत्तपु०	उत्तरपुराण
—	उपदेशमाला सटीक
उवा०	उवासगदसाओ — टीका
ओव०	ओववाइय
कप्प०	कप्पसुत्तं
—	कल्पसूत्र कल्पलता व्याख्या
कल्पसू० चू०	कल्पसूत्रचूर्णि
कसापा०	कसायपाहुड
क्रियाको०	क्रिया कोश

जंबू०	जंबूद्दीवपण्णत्ती
जीवा०	जीवाजीवाभिगमो
ठाण०	ठाणं
—	ठाणं टीका
चउप्प०	चउप्पनपुरिसचरिउ
चतु०	चतुर्विंशतिस्तवन
चंद०	चदपण्णत्ती
	तित्थोगालीपइन्नयविविधतीर्थकल्प
तिलोय०	तिलोयपण्णत्ती
	तुलसी प्रज्ञा
दसवे०	दसवेआलिय
त्रिशलाका०	त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र
—	दीर्घनिकाय
—	दर्शनसार
दसासु०	दसासुयक्खंधो –टीका
—	न्यायबिन्दु
नदी०	नदीसुत्त
धर्मो०	धर्मोपदेशमाला
नाया०	नायाधम्मकहाओ
निचया०	निचयावलियाओ
निसी०	नीसीह
ध्याको०	ध्यानकोश (अप्रकाशित)
पुद्को० १	पुद्गलकोश (अप्रकाशित) खण्ड १
पुद्को० २	पुद्गलकोश (अप्रकाशित) खण्ड २
परिको०	परिभाषा कोश
पउच०	पउमचरिय
पण्हा०	पण्हावागरणाइं
—	परिशिष्टपर्व
पाइ०	पाइअसद्दमहाण्णवो
प्रवसा०	प्रवचनसारोद्धार
पचवस्तुक०	पचवस्तुकग्रन्थ
पण्ण०	पण्णवणासुत्त
भग०	भगवई—टीका

—	भरतेश्वरबाहुबलिवृत्ति
—	मज्झिमनिकाय
—	मज्झिमपण्णासक
—	महावीरचरिय
—	मत्स्यपुराण
महापु०	महापुराण
योगको०	योगकोश
—	यजुर्वेद (अजुर्वेद)
बिह०	बिहकप्पो
रत्नश्रा०	रत्नकरण्डश्रावकाचार
राय०	रायपसेणइय—टीका
वव०	ववकविध्याकरण
लेको०	लेश्याकोश
लेश्याको०	संयुक्त लेश्याकोश (दिगम्बरशोधं)
वड्ढच०	वड्ढमाणचरिउ
—	वायुपुराण
विवा०	विवाग
वीरजि०	वीरजिणिंदचरिउ
—	विनयपिटक
वीरवर्धमानच०	वीरवर्धमानचरितम्
	विचारश्रेणि
वव०	ववहारो
विशेभा०	विशेषावश्यक भाष्य
सप्ततिशत०	सप्ततिशत स्थान प्रकरण
सूर०	सूरपण्णत्ती
	संयुक्तनिकाय
सम०	समवाओ —टीका
सूय०	सूयगडो—टीका
—	सुत्तनिपातपालि
	स्कंधमहापुराण
हरिपु०	हरिवंशपुराण
हेम०	सिद्धहेमशब्दानुशासनम्
	ऋग्वेदमंडल

आशीर्वचन

जैन आगम तथा आगमेतर साहित्य पर आज अनेक विद्वान् शोध कर रहे हैं। उनके सामने सबसे बड़ी कठिनाई है अपने विषय से सम्बन्धित साहित्यिक सूचनाओं की प्रामाणिक उपलब्धि की। स्वर्गीय श्री मोहनलालजी बांठिया ने इस कार्य की गरिमा को समझा और निष्ठा के साथ काम शुरू कर दिया। लेश्या कोश, क्रिया कोश आदि उनकी श्रम निष्ठा और कार्यशीलता के जीवन्त साक्ष्य हैं उनका लक्ष्य बहुत ऊँचा था, पर वे उसे पूरा किये बिना ही इस धरती से उठ गये। श्रीचन्द चोरड़िया उनके साथ रहकर काफी अनुभव प्राप्त किये हैं। उनके अधुरे काम को पुरा करने के लिए वह कृत संकल्प है। वर्धमान जीवन-कोश उसी शृंखला की एक कड़ी है। इसमें भगवान महावीर के जीवन से सम्बन्धित काफी सामग्री एकत्रित है। परिपूर्णता की दृष्टि से अभी कुछ अपेक्षाएँ और हैं, फिर भी इस विषय में शोध करने वालों के लिए यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी बन सकेगा—ऐसा विश्वास है।

२३ मार्च १९८०
तारानगर

—आचार्य तुलसी

जैन वाङ्मय का दशमलव वर्गीकरण

मूल विभागों की रूपरेखा

जै० द० व० स० (हमारे अंकन)	यू० डी० सी० के अंकन
०—जैन दार्शनिक पृष्ठभूमि	+
०१—लोकालोक	५२१·१
०२—द्रव्य-उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य	+
०३—जीव	१२८ सी० एफ० ५७७
०४—जीव परिणाम	+
०५—अजीव अरूपी	११४
०६—अजीव रूपी-पुद्गल	११७ सी० एफ० ५३१
०७—पुद्गल परिणाम	+
०८—समय-व्यवहार समय	११५ सी० एफ० ५२१
०९—विशिष्ठ सिद्धान्त	+
१—जैन दर्शन	१
११—आत्मवाद	१२
१२—कर्मवाद आस्रव-बंध	+
१३—क्रियावाद-संवर-निर्जरा-मोक्ष	+
१४—जैनेतरवाद	१४
१५—मनोविज्ञान	१५
१६—न्याय-प्रमाण	१६
१७—आचार-संहिता	१७
१८—स्याद्वाद-नयवाद-अनेकान्त	+
१९—विविध दार्शनिक सिद्धान्त	+
२—धर्म	२
२१—जैन धर्म की प्रकृति	२१
२२—जैन के धर्मग्रन्थ	२२
२३—आध्यात्मिक मतवाद	२३
२४—धार्मिक जीवन	२४
२५—साधु-साध्वी-यति-भट्टारक-क्षुल्लकादि	२५
२६—चतुर्विध संघ	२६
२७—जैन का साम्प्रदायिक इतिहास	२७
२८—सम्प्रदाय	२८
२९—जैनेतर धर्म : तुलनात्मक धर्म	२९

·०३ जीव द्वार का वर्गीकरण

·३०० सामान्य विवेचन
·३०१ जीव औधिक
·३०२ सिद्ध अरूपी
·३०३ संसारी रूपी
·३०४ नारकी
·३०५ तिर्यंच
·३०६ एकेन्द्रिय तिर्यंच
·३०७ पृथ्वीकाय
·३०८ अप्काय
·३०९ अग्निकाय
·३१० वायुकाय
·३११ वनस्पतिकाय
·३१२ प्रत्येक वनस्पतिकाय
·३१३ साधारण वनस्पतिकाय
·३१४ निगोद
·३१५ विकलेन्द्रिय तिर्यंच
·३१६ द्वीन्द्रिय तिर्यंच
·३१७ त्रीन्द्रिय तिर्यंच
·३१८ चतुरिन्द्रिय
·३१९ पंचेन्द्रिय जीव
·३२० तिर्यंच पंचेन्द्रिय
·३२१ मनुष्य
·३२२ कर्मभूमिज मनुष्य
·३२३ अकर्मभूमिज मनुष्य
·३२४ अन्तर्द्वीपज मनुष्य
·३२५ युगलिया
·३२६ देव
·३२७ भवनपति
·३२८ व्यंतर
·३२९ ज्योतिषी देव
·३३० वैमानिक देव
·३३१ पर्याप्त-अपर्याप्त
·३३२ सूक्ष्म-बादर
·३३३ त्रस-स्थावर
·३३४ संज्ञी-असंज्ञी
·३३५ गर्भज-संमुर्च्छिम
·३३६ सइन्द्रिय-अइन्द्रिय
·३३७ आहारक-अनाहारक
·३३८
·३३९
·३४०
·३४१ मिथ्या दृष्टि
·३४२ सममिथ्या दृष्टि
·३४३ सम्यक्त्वी
·३४४ असंयती
·३४५ संयतासंयती
·३४६ संयती
·३४७ प्रमत्त
·३४८ अप्रमत्त
·३४९ सवेदी
·३५० अवेदी
·३५१ सकषायी
·३५२ अकषायी
·३५३ छद्मस्थ
·३५४ सर्वज्ञ-सर्वदर्शी (सामान्य केवली, तीर्थङ्कर)
·३५५ सलेशी
·३५६ अलेशी
·३५७ सयोगी
·३५८ अयोगी
·३५९ सक्रिय
·३६० अक्रिय

९२ जीवनी का वर्गीकरण

९२००	सामान्य विवेचन	९२२४	वर्धमान तीर्थङ्कर
९२०१	ऋषभनाथ तीर्थङ्कर	९२२५	इन्द्रभूति गणधर
९२०२	अजितनाथ ,,	९२२६	अग्निभूति ,,
९२०३	संभवनाथ ,,	९२२७	वायुभूति ,,
९२०४	अभिनंदन ,,	९२२८	व्यक्त ,,
९२०५	सुमतिनाथ ,,	९२२९	सुधर्म ,,
९२०६	पद्मप्रभु ,,	९२३०	मंडित ,,
९२०७	सुपार्श्वनाथ ,,	९२३१	मौर्यपुत्र ,,
९२०८	चंद्रप्रभु ,,	९२३२	अकम्पित ,,
९२०९	सुविधिनाथ ,,	९२३३	अचलभ्राता ,,
९२१०	शीतलनाथ ,,	९२३४	मेतार्य ,,
९२११	श्रेयांसनाथ ,,	९२३५	प्रभास ,,
९२१२	वासुपूज्य ,,	९२३६	अन्य अनगार
९२१३	विमलनाथ ,,	९२३७	नमि राजर्षि
९२१४	अनंतनाथ ,,	९२३८	करकंडू
९२१५	धर्मनाथ ,,	९२३९	दुमुंख
९२१६	शांतिनाथ ,,	९२४०	नगई
९२१७	कुंथुनाथ ,,	९२४१	
९२१८	अरनाथ ,,	९२४२	
९२१९	मल्लीनाथ ,,	९२४३	आर्य चंदना
९२२०	मुनिसुव्रत ,,	९२४४	मृगावती
९२२१	नमीनाथ ,,	९२४५	
९२२२	नेमीनाथ ,,	९२४६	
९२२३	पार्श्वनाथ ,,	९२४७	
		९२४८	

प्रकाशकीय

स्व० श्री मोहनलालजी बाँठिया ने, अपने अनेक अनुभवों से प्रेरित होकर, एक जैन विषयकोश की परिकल्पना प्रस्तुत की थी तथा श्रीचन्दजी चोरड़िया के सहयोग से प्रमुख आगम ग्रन्थों का मथन व चिन्तन करके, एक विषय-सूची प्रणीत की थी। फिर उस विषय-सूची के आधार पर जैन आगमों से विषयानुसार पाठ संकलन करने प्रारम्भ किये थे। प्रायः १००० विषयों पर पाठ सकलित हो चुके थे। वे जैन दर्शन समिति के पास अभी भी सुरक्षित है।

अस्तु सर्व प्रथम उन्होंने श्रीचंदजी चोरड़िया के सहयोग से 'लेश्या कोश' १९६६ मे स्वय के खर्चे से प्रकाशित किया था।

यह 'लेश्या कोश' विद्वद् वर्ग द्वारा जितना समादृत हुआ था तथा जैन दर्शन और वाङमय के अध्ययन के लिये जिस रूप मे इसे अपरिहार्य बताया गया और पत्र-पत्रिकाओं मे समीक्षा के रूप मे जिस तरह मुक्त कण्ठ से प्रशसा की गई, यही उसकी उपयोगिता तथा सार्वजनिनता को आलोकित करने मे सक्षम है। अमेरिका के एक विद्वान छात्र 'लेश्या' विषय लेकर 'थीसीस' लिख रहे थे। उसको इस पुस्तक से बड़ी सहायता मिली। ऐसा उन्होंने पत्र द्वारा सूचित किया था।

स्व० श्री मोहनलालजी बाँठिया के जैनागम एवं वाङमय के तलस्पर्शी गभीर अध्ययन द्वारा प्रसूत कोशपरिकल्पना को क्रियान्वित करने तथा उनके सत्कर्म और अध्यवसाय के प्रति समुचित सम्मान करने की पुनीत भावनावश जैन दर्शन समिति की सस्थापना 'महावीर जयती १९६९ के दिन की गई थी। इस नवगठित सस्था ने बाँठियाजी द्वारा सकलित और वर्गीकृत कोषोंका प्रकाशन कार्य अपने हाथमे ग्रहण कर लिया था। यह क्रम निरतर गतिशील रहे इसकी पूर्ण चेष्टा की गई थी। इसी के प्रयास स्वरूप उन्होंने क्रियाकोश तैयार किया— जिसको जैन दर्शन समिति ने १९६९ मे प्रकाशित किया। क्रिया कोश ने भी लेश्या-कोश की तरह देश-विदेशों मे पर्याप्त ख्याति अर्जित की।

इसके बाद पुद्गल कोश, ध्यान कोश आदि का कार्य स्व० श्री मोहनलालजी बाँठिया ने पूर्ण किया जो अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं। इन कोशों को जैन विश्व भारती, लाडनू

प्रकाशित करेगी। मैं यह भी उल्लेख करना चाहूँगा कि स्व० श्री मोहनलाल जी बाँठिया के इस प्रयत्न और प्रयास में सक्रिय सहयोग दिया—श्रीचंदजी चोरड़िया ने।

तत्पश्चात् भगवान महावीर की २५वीं निर्वाण शताब्दी के सुअवसर पर—साहित्य वारिधि श्री अगरचन्दजी नाहटा की सद् प्रेरणा से वर्धमान जीवन-कोश का शुभारंभ १७ मई, १९७५ को स्व० श्री मोहनलालजी बांठिया ने शुभारम्भ किया। जैन दर्शन समिति द्वारा श्री बांठियाजी ने अपने जीवन काल में वर्धमान जीवन-कोश का संकलन कर लिया था। प्रथम खण्ड—जिसमें वर्धमान के च्यवन से परिनिर्वाण तक सविस्तर विवेचन है—पूर्ण हो गया था। परन्तु २१ सितम्बर, १९७६ को उनका आकस्मिक स्वर्गवास हो गया। बांठियाजी के स्वर्गवास पर जैन दर्शन समिति को बहुत बड़ा धक्का लगा।

अस्तु वर्धमान जीवन कोश के साथ-साथ श्रीचंदजी चोरड़िया अपनी स्वतंत्र कृति—"मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास" पुस्तक की तैयारी कर रहे थे। फलस्वरूप मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास, पुस्तक १० नवम्बर, १९७७ को जैन दर्शन समिति द्वारा प्रकाशित हुई। नि.संदेह दार्शनिक जगत में चोरड़ियाजी की यह एक अप्रतिम देन है। इसकी भी प्रतिक्रिया अच्छी रही। अतः वर्धमान जीवन-कोश के प्रकाशन में विलम्ब हुआ।

इसके बाद उनके साथी श्री जबरमलजी भंडारी, मांगीलालजी लूनिया, स्व० ताजमल जी बोथरा, केवलचंदजी नाहटा, धर्मचंदजी राखेचा, हनुतमलजी बांठिया, चंदनमलजी मणोत आदि महानुभावों ने इस कार्य को अपने हाथ में लेकर वर्धमान जीवन कोश के प्रकाशित करने की योजना बनायी। इसके प्रति समिति इन सज्जनों को धन्यवाद ज्ञापित करती है।

इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को प्रकाशित करने में श्री जबरमलजी भंडारी के द्वारा—भगवतीलाल सिसोदिया ट्रष्ट हमें ५०००) रु० प्रथम खण्ड प्रकाशनार्थ देकर उत्साहित किया और अन्य सज्जनों के इस उत्साह के वातावरण में २५०)-२५०) रुपये देकर और उत्साह बढ़ाया। इसके लिए समिति उन्हें धन्यवाद ज्ञापन करती है।

सहायक दाताओं के नाम निम्न प्रकार है—

१—श्री भगवतीलाल सिसोदिया ट्रस्ट, जोधपुर
२—श्री रतनलाल रामपुरिया, कलकत्ता
३—श्री मोहनलाल बैद ,,
४—श्री हुणतमल बांठिया ,,
५—श्री रावतमल हरखचंद ,,

६—श्री हनुमानमल चन्दनचन्द बाफेड़ — कलकत्ता
७—श्री माणकचन्द बांठिया — ,,
८—श्री सोहनलाल दुगड़ — ,,
९—श्री बेद चेरिटेबल ट्रस्ट — ,,
१०—श्री सेठ मन्नालालजी सुराणा मेमोरियल ट्रस्ट — ,,
११—श्री सेठ चुन्नीलालजी भन्साली चेरिटेबल ट्रस्ट — ,,
१२—श्री केशरीचन्द धीरमल — ,,
१३—श्री माणिकचन्द सेठिया — ,,
१४—श्री धर्मचन्द बाखेचा — ,,
१५—श्री जवरीमल बेद — ,,
१६—श्री बेगराज भँवरलाल चोरड़िया चेरिटेबल ट्रस्ट — ,,
१७—श्री जयचन्दलाल सेठिया — ,,
१८—श्री अरविन्दकुमार मणोत — ,,
१९—श्री बच्छराज सेठिया — ,,
२०—श्री हरखचन्द सुजानमल — ,,
२१—श्री केवलचन्द नाहटा — ,,
२२—श्री मिलापचन्द चोरड़िया — ,,
२३—श्री मालचन्द सिंघी — ,,
२४—श्री श्रीचन्द रामपुरिया — ,,
२५—श्री सिंघी फाउण्डेशन — ,,
२६—श्री कुन्दनमल जयचदलाल नाहटा चेरिटेबल ट्रस्ट — ,,
२७—श्री खेमचन्द सेठिया — ,,
२८—श्री खेमचंद टीकमचंद डागा — ,,
२९—श्री नवरतनमल सुराना — ,,
३०—श्री स्वागत फंड सभा — जयपुर
३१—श्री मोतीराज बेद — कलकत्ता
३२—श्री सोहनलाल मोहनलाल — बीदासर
३३—श्री हनुमान चेरिटि ट्रस्ट — जयपुर

यद्यपि 'वर्धमान-महावीर' जीवन के सम्बन्ध मे अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं लेकिन यह 'वर्धमान जीवनकोश, शास्त्रों के आधार पर एक उच्च कोटि का कोश है जिसमे मूल

आगम का आधार तो है ही दिगम्बर और श्वेताम्बर ग्रन्थों का आधार भी प्रचुर मात्रा मे लिया गया है। कुछ बौद्ध और वैदिक ग्रन्थों का भी आधार रहा है। इस तरह भगवान् महावीर के जीवन वृत्त अनेक पुस्तकों मे अनेक प्रकार से आये है। वे इस ग्रन्थ में संकलित है। इस तरह यह जीवन वृत्त का कोश है।

हम आपके सामने 'वर्धमान जीवन कोश' प्रथम खण्ड को रख रहे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रतिपादन अत्यन्त प्राञ्जल एवं प्रभावक रूप मे सूक्ष्मता के साथ किया गया है। यह भगवान महावीर की जीवनधारा को शास्त्रों के आधार पर बताने वाला अनुपम ग्रन्थ है। वर्धमान जीवन-कोश के द्वितीय खण्ड को जल्द ही प्रकाशित करने की योजना है। इसमे वर्धमान के पूर्वभव तथा उनके जीवन से सम्बन्धित प्राय. सभी घटनाओं का रोचक वर्णन मिलेगा।

परमाराध्य युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी हमारी प्रार्थना पर ध्यान देकर प्रस्तुत कोश पर आशीर्वचन लिखा—इसके लिये उनके प्रति श्रद्धावनत है।

L. D. Institute of Indology अहमदाबाद के डाइरेक्टर दलसुखभाई मालवणिया जो जैन दर्शन के उद्‌भट विद्वान है। प्रस्तुत कोश पर 'दो शब्द' लिखकर हमे अनुगृहीत किया है तथा लखनऊ के डा० ज्योति प्रसाद जैन जो जैन दर्शन के उच्च कोटि के विद्वान है प्रस्तुत ग्रन्थ पर 'Foreward' लिखकर हमे अनुगृहीत किया है। इसके लिए हम उन दोनों विद्वानो के प्रति अत्यन्त आभारी है।

स्व० श्री मोहनलालजी बाठिया तथा श्रीचंदजी चोरड़िया ने अनेक पुस्तकों का गहन अध्ययन कर प्रस्तुत कोश तैयार कर हमें प्रकाशित करने का मौका दिया, उनके प्रति भी हम आभारी है।

स्व० श्री ताराचंदजी बोथरा जिनका निधन अभी हाल में ही हो गया है। हमारी संस्था के सभापति पद से, श्री बाठियाजी के बाद हमारी संस्था को मार्ग दर्शन देते रहे एव इस कोश को प्रकाशित करने मे तन, मन, धन से सहयोग देते रहे उसके प्रति हम अत्यन्त कृतज्ञ है। समिति आपकी सेवाओं को सदैव स्मरण रखेगी।

हमारी समिति के निर्णयानुसार १००) रु० देने वाले सज्जनों को १६०) रु० की निम्नलिखित पुस्तकें दी जाती है।

१ - मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक विकास	मूल्य १५)
२ - क्रिया कोश	मूल्य १५)
३—वर्धमान जीवन-कोश, प्रथम खण्ड	मूल्य ५०)
४ —वर्धमान जीवन-कोश, द्वितीय खण्ड (प्रेस मे)	मूल्य ५०)

कतिपय व्यक्तियों ने अग्रिम ग्राहक बन कर पुस्तकों को खरीद कर हमारा उत्साह बढ़ाया है और हमें आशा है कि सभी जैन बन्धु इस कार्य मे सहयोगी होंगे।

मेरे सहयोगी—जैन दर्शन समिति के मन्त्री श्री मांगीलाल जी लूणिया, सभापति स्व० श्री ताजमलजी बोथरा, उपसभापति श्री हणुतमलजी बांठिया, श्री केवलचन्दजी नाहटा, श्री धर्मचंदजी राखेचा, श्री बच्छराजजी सेठिया, श्री रतनलालजी रामपुरिया, श्री चदनमलजी मणोत आदि समिति के सभी उत्साही सदस्यों, शुभचिन्तकों एव सरक्षकों का साह्य और निष्ठा का उल्लेख करना मेरा कर्तव्य है। जिनकी इच्छाएँ और परिकल्पनायें मूर्तरूप में मेरे सामने आ रही है। श्री सूरजमलजी सुराना का भी हमे सहयोग रहा है।

जैन दर्श समिति ने जैन दर्शन के प्रचार करने के उद्देश्य से इसका मूल्य केवल ५०) रखा है। जैन, जैनेतर सभी समुदाय से हमारा अनुरोध है कि 'वर्धमान जीवन कोश' प्रथम खण्ड को क्रय करके अंततः अपने सम्प्रदाय के विद्वानों, भडारों मे, पुस्तकालयों में उसका यथोचित वितरण करने में सहयोग दे।

रूपा प्रिन्टर्स तथा उनके कर्मचारी भी धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने अनेक बाधाओं के होते हुए भी (प्रेसकर्मचारियों को हड़ताल, बिजली लोडसेडिंग आदि) प्रकाशित करने में सक्षम रहे।

मोहनलाल बैद
मन्त्री
जैन दर्शन समिति

१० जून, १९८०
कलकत्ता

प्रस्तावना

जैन दर्शन सूक्ष्म और गहन है तथा मूल सिद्धान्त ग्रन्थों मे इसका क्रमबद्ध तथा विषयानुक्रम नहीं होने के कारण इसके अध्ययन में तथा इसके समझने में कठिनाई होती है। अनेक विषयों के विवेचन अपूर्ण अधूरे हैं अत: अनेक स्थल इस कारण से भी समझ मे नही आते है। अर्थ बोध की इस दुर्गमता के कारण जैन-अजैन दोनों प्रकार के विद्वान् जैन दर्शन के अध्ययन से सकुचाते है। क्रमबद्ध और विषयानुक्रम विवेचन का अभाव जैन दर्शन के अध्ययन मे सबसे बड़ी बाधा उपस्थित करता है—ऐसा हमारा अनुभव है।

अध्ययन की बाधा मिटाने के लिये हमने जैन विषय कोश की एक परिकल्पना बनायी और उस परिकल्पना के अनुसार समग्र आगम ग्रन्थों का अध्ययन किया और उस अध्ययन के आधार पर सर्वप्रथम हमने विशिष्ट पारिभाषिक दार्शनिक और आध्यात्मिक विषयों की एक सूची बनाई। विषयों की संख्या १००० से भी अधिक हो गई तथा इन विषयों का सम्यक् वर्गीकरण करने के लिये हमने आधुनिक सार्वभौमिक दशमलव वर्गीकरण करने का अध्ययन किया। तत्पश्चात् बहुत कुछ इसी पद्धति का अनुसरण करते हुए हमने सम्पूर्ण वाङमय को १०० वर्गों मे विभक्त करके मूल विषयों को वर्गीकरण की एक रूपरेखा (देखें पृ० १०) की। यह रूपरेखा कोई अन्तिम नहीं है। परिवर्तन, परिवर्द्धन तथा संशोधनकी अपेक्षा भी रह सकती है। मूल विषयों की सूची भी हमने तैयार की है। उनमें से जीव-परिणाम (मूल विषयांक ·०४) की उपविषय सूची लेश्या कोश मे दी गई है तथा कर्मवाद (मूल विषयांक १२) तथा क्रियावाद (मूल विषयांक १३) की उपसूची क्रियाकोश मैं दी गई है। जीव-परिणाम, कर्मवाद तथा क्रियावाद की यह उपसूची भी परिवर्तन, परिवर्द्धन व संशोधन की अपेक्षा रख सकती है।

जैनागम समवायांग सूत्र, समवाय ५४ मे चौवन उत्तम पुरुषों का जो उल्लेख है वह इस प्रकार है—

"भरहेरवएसु ण वासेसु एगमेगाए उस्सप्पिणीए ओसप्पिणीए चउवन्नं चउवन्न उत्तम-पुरिसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा। तंजहा—चउवीसं तित्थयरा, बारस चक्कवट्टी, नव बलदेवा, नव वासुदेवा।"

अर्थात् भरत और ऐरावत क्षेत्र मे प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मे ५४—५४ उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए हैं, होते हैं और होंगे। वे है—२४ तीर्थङ्कर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव और ९ वासुदेव।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे इस अवसर्पिणी काल के चौबीसवें "तीर्थङ्कर-वर्धमान" के जीवन विषयक च्यवन से परिनिर्वाण तक— विवेचन है।

जैनागम मे ऐसे महापुरुषों के लिए 'उत्तम पुरुष 'सज्ञा' है किन्तु बाद मे शलाका पुरुष सज्ञा विशेष रूढ हुई है। इन शलाका महापुरुषों की सख्या श्री मज्जिनसेनाचार्य तथा श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य ने ६३ दी है। ९ वासुदेवों के शत्रु प्रतिवासुदेवों की ९ सख्या ५४ मे जोड़ने मे ६३ की सख्या बनती है।

श्री भद्रेश्वरसूरि ने अपनी कहावली (अमुद्रित) मे ९ नारदों की सख्या जोडकर शलाकापुरुषों की सख्या ७२ दी है। श्री हेमचन्द्राचार्य 'शलाकापुरुष का अर्थ 'जातरेखा'[1] ऐसा अर्थ करते हे और भद्रेश्वर सूरि ने 'सम्यक्त्व रूप शलाका से युक्त' ऐसा अर्थ करते है।[2]

शीलांगाचार्य ने "चउप्पन्नमहापुरिसचरिय" मे किसी भी पत्नी का नाम निर्देश न करके वर्धमान स्वामी का अनेक कन्याओं के साथ पाणिग्रहण बतलाया है (पृ २७२) परन्तु अन्य ग्रन्थों मे आचारो, कल्पसूत्र आदि म वर्धमान स्वामी की यशोदा नाम एक ही पत्नी का का उल्लेख किया है।

इसी प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ मे अस्थिक सर्प के द्वारा मारे गये मनुष्यों की हड्डियों से बने हुए मन्दिर का तथा उसके द्वारा वर्धमान स्वामी को किये गये उपसर्ग का वर्णन है (पृ० २७५) परन्तु अन्य ग्रन्थों मे बैल मरकर शूलपाणि यक्ष होता है। उसके द्वारा फैलाई गई महामारी के कारण मृत मनुष्यो की हड्डियों से बने हुए मन्दिर आदि के प्रसग का उल्लेख मिलता है।

तीर्थङ्कर वर्धमान —जीव द्वार (जैन वाङ्मय का दशमलव वर्गीकरण सख्या '०१) के अन्तर्गत तथा जीवनी (जैन वाङ्मय का दशमलव वर्गीकरण संख्या १२) के अन्तर्गत

१—"त्रिषष्टि : शलाकाभूता शलाकापुरुषा:, पुरुषेषु जातरेखा इत्यर्थ" (यशोविजय ग्रन्थ माला सटीक अभिधान चिंतामणि पत्र—२८१)

२—न य सम्मत्तसलायावहिया नियमेणिमे जओ तेण।
हौंति सलाया पुरिसा बहुसयी............।

—कहावली

समाविष्ट है। हमने जीवद्वार के उपविषयों सूची तथा जीवनी के उपविषयों की सूची अलग-अलग दी है। (देखें पृ० ११-१४) इन सूचियों मे भी परिवर्तन, परिवर्द्धन तथा संशोधन की अपेक्षा रह सकती है। जीवद्वार मे वर्धमान नाम विषयांक ३५४ है तथा जीवनी मे नामशब्द विषयांक १२२४ है। विद्वद्वर्ग से हमारा निवेदन है कि वे इन विषय सूचियों का गहरा अध्ययन करे तथा इनमें परिवर्तन, परिवर्द्धन व संशोधन सम्बन्धी अथवा अपने अन्य बहुमूल्य सुझाव भेजकर हमें अनुगृहीत करे। हमने इस पुस्तकमे जैन आगम तथा जैन आगमेतर साहित्य का अध्ययन कर वर्धमान जीवनसे सम्बन्धित यथाशक्ति सभी पाठोंका सकलन करने का प्रयास किया है। फिर भी यह दावा नहीं कर सकते कि कोई पाठ छूटा नहीं है। हमारी छद्मस्थता के कारण, हमारे प्रमादवश पाठ छूट गए हों तो कोई आश्चर्य नही है।

पाठों के सकलन सम्पादन में प्रयुक्त ग्रन्थो की सूची मे यद्यपि हमने कतिपय ग्रन्थों का ही नाम दिया है तथापि अध्ययन हमने अधिक ग्रन्थों का किया है। चूर्णी, निर्युक्ति, टीका आदि का भी अध्ययन किया है। दिगम्बर ग्रन्थ-कषायपाहुड षड्खण्डागमचरित, वीरजिणिंदचरित, वर्धमान, चरितम् उत्तम पुराण आदि ग्रन्थों का भी उपयोग किया है।

'लेश्याकोश तथा क्रियाकोश आदि की तरह पाठों का मिलान हमने कई मुद्रित प्रतियों से किया है। यद्यपि हमने सदर्भ एक ही प्रति का दिया है।

सम्पादन मे निम्नलिखित बातो को हमने आधार माना है—

१ — पाठो का सकलन और मिलान

२ — विषय के उपविषयों के वर्गीकरण तथा

३ — हिन्दी अनुवाद

अस्तु पाठों के मिलान के लिए हमने कई मुद्रित प्रतियो की सहायता ली है और यदि कोई महत्वपूर्ण पाठान्तर मिला तो उसे शब्द के बाद ही कोष्ठक में दे दिया है।

जहाँ 'वर्धमान' सम्बन्धी पाठ स्वतन्त्र रूप मे मिल गया है वहाँ हमने उसे उसी रूप मे ले लिया है लेकिन जहाँ वर्धमान सम्बन्धित पाठ अन्य विषयों के साथ सम्मिश्रित दिये गये हैं वहाँ हमने निम्नलिखित दो पद्धतियों को अपनाया है—

(१) पहली पद्धति में हमने सम्मिश्रित पाठों से 'वर्धमान' सम्बन्धी पाठ अलग निकाल लिया है तथा जिस सन्दर्भ मे वह पाठ आया है उस सन्दर्भ को प्रारम्भ में कोष्ठक में देते हुए उसके बाद वर्धमान सम्बन्धी पाठ दे दिया है। (देखें विषयांक ३८१)

(२) दूसरी पद्धति मे हमने सम्मिश्रित पाठों मे से जो पाठ वर्धमान से सम्बन्धित नहीं है उसको बाद देते हुए वर्धमान सम्बन्धी पाठ ग्रहण किया है—(देखें विषयांक '१४१)

वर्गीकृत उपविषयों में हमने मूल पाठों को अलग-अलग विभाजित करके भी दिया है तथा कहीं-कहीं समूचे मूल पाठ को एक वर्गीकृत उपविषय में देकर उस पाठ मे निर्दिष्ट अन्य वर्गीकृत उपविषयों मे उक्त मूल पाठ को बार बार उद्धृत न करके जहाँ समूचा मूल पाठ दिया गया है उस स्थल को इंगित कर दिया है।

'लेश्या कोश' तथा 'क्रिया कोश' की तरह 'वर्धमान जीवन-कोश' को भी हमने दशमलव वर्गीकरण से विभाजित किया है। हमने वर्धमान जीवन-कोश को तीन खडों मे विभाजित किया है—जिसका प्रथम खण्ड आपके हाथो मे है। इसके मूल विभाग इस प्रकार है -

·० नाम शब्द विवेचन

·१ च्यवन से जन्म

·२ जन्म से गृहस्थ काल

·३—·४ साधना काल

·५—·६ तीर्थङ्कर काल —केवलिकाल

·७ परिनिर्वाण

·८ फूटकर पाठ वर्धमान सम्बन्धी

·९ विविध विषय —वर्धमान सम्बन्धी

शब्द विवेचन का विभाजन निम्न प्रकार से हुआ है —

·० नाम शब्द विवेचन

·०१ नाम शब्द व्युत्पत्ति, प्राकृत, सस्कृत-पाली-अपभ्रंश भाषाओं म

·०२ नामकरण—नाम और गोत्र

·०३ 'वर्धमान' के अन्य नाम

·०४ सविशेषण ससमास-सप्रत्यय नाम शब्दों की सूची और परिभाषा

·०५ परिवार-पारिवारिक व्यक्तियो के नाम

·०६ प्रमुख साधु साध्वियो के नाम

·०७ प्रमुख श्रावक-श्राविकाओं के नाम

·०८ सम-सामयिक व्यक्तियों के नाम

·०९ नाम का नय और निक्षेप की अपेक्षा विवेचन

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी में हमने सामान्य केवली व तीर्थङ्कर को ग्रहण किया है। सर्वज्ञ सर्वदर्शी वर्धमान तीर्थङ्कर का विषयांकन हमने ९५४ किया है। इसका आधार है यह है कि सम्पूर्ण जैन वाङ्मय को १०० विभागों म विभाजित किया गया है। (देखें मूल वर्गीकरण सूची पृ० १०-१२)। इसके अनुसार जीव का विषयांकन ०३ है। जीव को ६० विभागों मे

विवरण किया गया है (देखो जीव वर्गीकरण सूची पृ० ११) इसके अनुसार वर्धमान का विषयांकन ५४ होता है । अतः जीवद्रव्य के भेदों मे विषयांकन हमने ३५४ किया है । जीवनी का विषयांकन हमने १२२४ किया है । इसका आधार इस प्रकार है—जैन वाङ्मय के मूल वर्गीकरण मे जीव का विषयांकन ०१ है तथा जीवनी (महापुरुषों की जीवनी) के उपवर्गीकरण मे तीर्थङ्कर वर्धमान का विषयांकन २४ है अत जीवनी मे विषयांकन १२२४ किया है ।

वर्धमान सम्बन्धी तुलनात्मक अध्ययन के लिए हम कई असुविधाओं के कारण अन्य धर्मों के दार्शनिक ग्रन्थों का सम्यग् अध्ययन नही कर सके, केवल मज्झिम निकाय, अगुत्तर निकाय, यजुर्वेद आदिका अध्ययन किया । उससे प्राप्त वर्धमान (महावीर) जीवनी सम्बन्धी पाठों को हमने दे दिया है ।

सामान्यतः अनुवाद हमने शाब्दिक अर्थ रूप ही किया है लेकिन जहाँ विषय की गभीरता या जटिलता देखी है वहाँ अर्थ को स्पष्ट करने के लिये विवेचनात्मक अर्थ भी किया है । कहीं-कहीं भावार्थ भी लिया है । विवेचनात्मक अर्थ करने के लिये हमने सभी प्रकार की टीकाओं तथा अन्य सिद्धान्त ग्रन्थो का उपयोग किया है । छद्मस्था के कारण यदि अनुवादों मे या विवेचन करने मे कहीं कोई भूल भ्रान्ति व त्रुटि रह गई हो तो पाठक वर्ग सुधार लें । जहाँ मूल पाठ मे विषय अस्पष्ट रहा है वहाँ मूल पाठ के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए हमने टीकाकारों के स्पष्टीकरण को भी अपनाया है तथा स्थान-स्थान पर टीका का पाठ भी उद्धृत कर दिया है ।

अस्तु वर्धमान जीवन-कोश—श्वेताम्बर आगम तथा दिगम्बर तथा श्वेताम्बर सिद्धान्त ग्रन्थों से तैयार किया गया है । सम्पादन, वर्गीकरण तथा अनुवाद के काम मे निर्युक्ति, चूर्णी, वृत्ति, भाष्य आदि का भी उपयोग किया गया है ।

सम्भव है हमारी छद्मस्था के कारण तथा मुद्रक के कर्मचारियों के प्रमादवश पुस्तक की छपाई मे कुछ अशुद्धियाँ रह गई हों । आशा है पाठकगण अशुद्धियों के लिए हमे क्षमा करेंगे तथा आवश्यकतानुसार संशोधन कर लेंगे ।

हमारी कोश परिकल्पना का अभी भी परीक्षण काल चल रहा है अतः इसमें अनेक त्रुटियाँ हों तो कोई आश्चर्य की बात नही है । लेकिन इस हमारी परिकल्पना मे पुष्टता आ रही है । तथा हमारे अनुभव से यथेष्ट समृद्धि हुई है इसमे कोई सन्देह नहीं है । पाठक वर्ग से सभी प्रकार के सुझाव अभिनन्दनीय है । चाहे वे संपादन, अनुवाद या अन्य किसी प्रकार के हों । आशा है इस विषय मे विद्वद्वर्ग अपने सुझाव भेजकर हमे पूरा सहयोग देंगे ।

अस्तु गर्भ हरण का प्रसंग दिगम्बर परम्परा मे अभिमत नहीं है तथा दिगम्बर परम्परा मे महावीर का दाम्पतिक जीवन मान्य नहीं है। कल्पसूत्र में संहरणकाल को भी अज्ञात बताया है। किसी अपेक्षा विशेष से ही यथार्थ हो सकता है। तत्वतः तो अवधि ज्ञान युक्त महावीर के लिए वह अगम्य नहीं हो सकता।

दिगम्बर (हरिवंशपुराण) परम्परा भगवान महावीर का पाणि-ग्रहण तो नहीं मानती—पर इतना अवश्य मानती है कि माता-पिता की ओर से उनके विवाह का वातावरण बनाया गया था। अनेक राजा अपनी-अपनी कन्याएँ उन्हें देना चाहते थे। राजा जितशत्रु अपनी कन्या यशोदा का उनके साथ विवाह करने के लिये विशेष आग्रहशील था। पर महावीर ने विवाह करना स्वीकार नहीं किया।

वर्धमान स्वामी ने अचेलक धर्म का उपदेश दिया है और महामुनि पार्श्वनाथ ने सचेलक धर्म का प्रतिपादन किया है। अचेलक का अर्थ वस्त्र-विहीनता ही नहीं है। स्थानांग स्था० ५, उ ३ के अनुसार अल्पवस्त्रता भी अचेलक का अर्थ होता है।

—(देखें पाइयसद्दमहण्णवो, पृ० २४।)

धनंजय ने अपनी नाममाला मे वर्धमान का एक नाम अन्त्यकाश्यप माना है।[1] भगवान् महावीर इक्ष्वाकुवंशी थे।[2] बौद्धपिटकोंमें भगवान महावीरका उल्लेख 'निग्गंठनातपुत्त' के नाम से होता है।[3] णायपुत्त की संस्कृत छाया 'नागपुत्र' भी हो सकती है। औपपातिक सूत्र १४ की वृत्ति मे नायका अर्थ ज्ञात अथवा नाग (नागवंश) किया है। इतिहास में ज्ञातवंश का कोई प्रसिद्ध वंश नहीं है ; नाग वंश बहुत प्रसिद्ध है। कोल्लाक सन्निवेश में नायकुल की पौषधशाला थी।[4] भगवान महावीर को निर्वाणवादियों मे श्रेष्ठ कहा गया है।[5] बुद्ध शाक्यवंशी तथा महावीर नागवंशी थे। भगवान महावीर को ज्ञातपुत्र—नागपुत्र से भी संबोधित किया जाता रहा है।

पालित्रिपिटकों मे कई स्थानो पर दीर्घ तपस्वी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी विशेषणों के साथ निर्ग्रन्थज्ञातृपुत्रभगवान महावीर का उल्लेख किया गया है। मज्झिमनिकाय (चूलदुक्ख

१—धन० नाम० ११५। पृ० ५८

२—विशेष आव० भाष्य १३७

३—दीर्घनिकाय-सामञ्ञफल सुत्त १८।२१

विनय पिटक महावग्ग पृष्ट २४२

४—उवासग० १।६७

५—सूय० १।६।२१

सुत्तान्त) में उल्लेख है—आवुस ! निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र सर्वज्ञ सर्वदर्शी है। वे अपरिशेष ज्ञान-दर्शन सम्पन्न है।

अस्तु वर्धमान जीवन कोश—द्वितीय खण्ड की हमारी तैयारी अधिकांश सम्पूर्ण हो चुकी है। इसमे वर्धमान तीर्थङ्कर के पूर्व भवों का तो विवेचन रहेगा हो और भी प्रचुर सामग्री मिलेगी।

हम जैन दर्शन समिति के आभारी है जिसने वर्धमान जीवन के प्रकाशन की सारी व्यवस्था की जिम्मेवारी ग्रहण की। 'युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी' के प्रति भी हम श्रद्धावनत हैं जिन्होंने अति व्यस्तता के कारण भी प्रस्तुत कोश पर आशीर्वचन लिखा। हम बंधुवर जबरमलजी भंडारी के अत्यन्त आभारी हैं जिहोने सदा इस कार्य के लिये हमें प्रोत्साहित किया है। L. D Institute of Indology अहमदाबाद के डाईरेक्टर श्री दलसुख भाई मालवणिया के प्रति हम आभारी है जिन्होंने प्रस्तुत कोश पर 'दो शब्द' लिखे तथा लखनऊ के डा० ज्योतिप्रसाद जैन को हम कभी नहीं भूल सकते—जिन्होंने समय समय पर अपने बहुमूल्य सुझाव देते रहे तथा प्रस्तुत कोश पर "Foreword" लिखा। हम उन सभी देश-विदेशी विद्वानों को धन्यवाद देते हैं जिन्होंने लेश्या कोश, क्रिया कोश के ऊपर अपनी सम्मतियाँ भेजकर हमारा उत्साह वर्द्धन किया है।

युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी तथा युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ की महान दृष्टि हमारे पर सदैव रही है—जिसे हम कभी भूल नहीं सकते हैं।

हम स्व० राजमलजी बोथरा, नेमीचन्दजो गधइया, मोहनलालजी बेद, मांगीलालजी लूणिया, जयसिंहजी सिंघी, केवलचंदजी नाहटा, रतनलालजी रामपुरिया, धर्मचंदजी राखेचा सूरजमलजी सुराना आदि आदि सभी बन्धुओं को धन्यवाद देते है जिन्होंने हमारे विषय कोश निर्माण परिकल्पना मे हमे किसी न किसी रूप मे सहयोग दिया है।

१० जून, १९८०
कलकत्ता

— श्रीचंद चोरड़िया

दो शब्द

पूज्य पंडित सुखलालजी के साथ बनारस से जब भी कलकत्ता आना होता तो वहाँ श्री मोहनलालजी बांठिया के घर अवश्य जाना होता। उसके दो कारण थे। एक श्रीमती हीराकुमारीजी की बहन का वह घर था और श्रीमती हीराकुमारीजी पंडितजी की सलाह अनुसार संस्कृत विद्यामें निष्णात हुई थी और दूसरा यह कि श्री बांठियाजी जैन आगमके सूत्रों का विविध विषयों की दृष्टि से वर्गीकरण कर रहे थे और उसमें पंडितजी का पूरा रस था विषयों का वर्गीकरण किस प्रकार हो इसकी चर्चा भी विस्तार से होती थी। श्री बांठियाजी गणितज्ञ भी थे अतएव विषयों का विभाजन कोलन पद्धति से कर रहे थे। जिस प्रकार पुस्तकालयों मे पुस्तकों का विभाजन होता है। पंडितजी को वे अपनी पद्धति को विवेचन करके बतलाते थे और उस पद्धति की विशेषताका भी वर्णन करते थे। यह बात मैं १९१६-१७ की कर रहा हूँ। उसके बाद तो जीवन भर अपने व्यवसाय के साथ-साथ इस आगम वर्गीकरण का कार्य श्री बांठियाजी करते रहे। और फाइलों का ढेर लग गया। अपने जीवन के अंतिम वर्षों मे उस सामग्री में से उन्होंने 'क्रिया-कोश' और 'लेश्या-कोश' प्रकाशित करवाया। अब वे नहीं रहे। और उनके शेष कार्य को श्री श्रीचंदजी चोरड़िया कर रहे हैं और अब उन्होंने यह 'वर्धमान जीवन-कोश' संपादित करके प्रकाशित किया है। श्री बांठियाजी की अपनी सूझ-बूझ का पूरा लाभ तो इस ग्रन्थ को मिला नही किन्तु उनके द्वारा संकलित सामग्री को श्री चोरड़िया अपनी समझ के अनुसार संपादित करके जिज्ञासुकों के समक्ष रखा है। उससे जिज्ञासु और संशोधक दोनों की जिज्ञासा की संपूर्ति अवश्य होती है।

इसमे भगवान् महावीर का समग्र जीवनकथा के विषय मे जो सामग्री आगमों मे उपलब्ध होती है उसका संकलन हुआ ही है। साथ ही उस मूल सामग्री को बाद के आचार्यों ने किस प्रकार सजाया है उसका भी ज्ञान इस कोश से जिज्ञासुकों को सहज ही में हो जाता है।

इसमे मूल श्वेताम्बर जैन आगमों से तो सामग्री ली ही गई है और आगमों की टीकाओं—निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, संस्कृत टीका से भी सामग्री एकत्र की गई है। इतना ही नहीं उसके अलावा दिगम्बर मौलिक ग्रन्थों कसायपाहुड आदि का भी उपयोग किया गया है इतना ही नहीं किन्तु श्वेताम्बर और दिगम्बर पुराणों और आचार्यों लिखित संस्कृत,

प्राकृत, अपभ्रंश भाषा मे लिखे गये महावीर के चरित ग्रन्थों से भी सामग्री का संकलन किया गया है। इस तरह यह वास्तविक रूप से 'वर्धमान जीवन-कोश' नाम को सार्थक करता है।

संपादक श्री चोरड़िया इस परिश्रम साध्यकार्य के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। और संकलन करने में उन्होंने अपनी बहु श्रुतता का पूरा परिचय दिया है—इसमें सन्देह नहीं। इस कोश मे अब भगवान महावीर के जीवनके विषय मे शोधपूर्ण चरित लिखनेकी सामग्री विद्वानों के समक्ष उपस्थित कर दी है अतएव कोई विद्वान भगवान महावीर के चरित को आधुनिक पद्धति से लिखना चाहे तो उसके लिए यह ग्रन्थ मार्गदर्शक बन सकेगा।

एक क्षति की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है। जो अवतरण दिये है उनमे काल-क्रम का ध्यान रखना जरूरी होता है। अवतरणों के देने के क्रम सर्वप्रथम आगम उसके बाद उसकी टीकाओं मे निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और संस्कृत टीका देने के बाद ही पउमचरिय, उत्तरपुराण, त्रिशलाकापुरुषचरित्र आदि का निर्देश किया जाय तब ही भ० महावीर की जीवन कथामे कोन-सी बात किस ग्रन्थ मे सर्वप्रथम दी गई इसका बोध होना सरल बनता है। इस क्षति की ओर इसलिए ध्यान दिलाना जरूरी है कि श्री बांठियाजी की सामग्री मे से अभी ऐसे कई कोश प्रकाशित होने की सम्भावना है। अतएव मेरा नम्रनिवेदन है कि श्री चोरड़िया अगले कोशों में अवतरण देने के समय कालक्रम का अवश्य ध्यान रखें।

अहमदाबाद
१-१२-७९

—दलसुख मालवणिया

FOREWORD

Vardhamana, better known as Bhagwan Mahavira, was the last in the series of twenty-four Tirthankaras of the Jaina tradition. He is without doubt a historical celebrity who lived in the sixth century before Christ, i. e. from 599 to 527 B. C., and occupies an important place in the cultural history of India. Acclaimed as one of the greatest teachers of mankind, he possesses a universal appeal and an all-time relevance. The religious, philosophical and cultural system now known as the Jaina owes its final shaping to Bhagwan Mahavira. He was not the original founder of this system which, in its genesis, reaches back to early pre-historic times when Lord Rishabha, the First Tirthankara, taught man the rudiments of human civilization, the manner to live a meaningful life, and the Ahimsite path to liberation through renunciation and spiritual uplift. The succeeding Tirthankaras,right up to parshvanatha (877-777 B. C) the penultimate, and Vardhamana Mahavira (599-527 B. C) the last of them, preached the same creed for the good of all the living beings, in their own ways and respective times. Naturally, the Jains (followers of the Jinals creed), all over the world, adore Mahavira, the Jina, as the most worshipful one.

A few years ago, the 2500th anniversary of Lord Mahavira's Nirvana was celebrated all over India, and even abroad, with befitting zeal. One salutary effect of these celebrations was that Mahavira's name received an unprecedented publicity which made people curious to know more about this great benefactor of mankind. Consequently, scores of books, big and small, dealing with the life and teachings of the Lord, written by different scholars and in different languages, were published.

The present work, The Vardhaman Jivana-kosha, or a 'dictionary of Mahavira's biographical Data', is a valuable addition to modern literature on ihe subject. It is not actually a biography of

the hero, but is a topical dictionary of the biographical details relating to Mahavira, as available in the different literary sources. For this purpose, the learned compiler and editor of this book has selected some ninty three works, including 25 canonical texts and 31 other works of the Shvetambara tradition, 12 of the Digambara, 8 Budhist, 5 Brahmanical puranas, and 12 modern dictionaries and reference books. The details have been classified topically in the international decimal system, giving, under each topic, the information in the original with translation in Hindi and proper reference, as gleaned from different sources Thus it is not only a uniqne but also a very useful and handy reference book for source material on Mahavira's life, at least so far as the Shvetambara version of the Lord's biography is concerned Naturally, the Shvetambara sources have been almost exhaustively utilised, and in places where Digambra sources have also been quoted, the differences between the two traditions have been pointed out. The learned compiler seems to have missed noticing the interesting bit of information given by Jinasena Suri's Harivamsha (II, 13) whieh supplies the names of Mahavira's grand-parents as King Sarvartha and queen Shrimati. The statement that whereas the Shvetambara works give the name of Mahavira's family as Jnatri, the Digambara call it Natha, is not quite correct-the Digambara author Pujyapada, of the 5th century A. D specifically describes Mahavira as 'The moon of the Jnata family.' There is other evidenee, too, in support of the fact that the Digambara authors also believed the name of the family to have been Jnata, Jnatri or Jnatrika. It would, perhaps, not be correct to say that the form of the name Vardhamana used by Kundakunda, Vattakera, Yativrashabha, etc. is not Prakrit but is Apabhramsha.

The scheme of compiling such topical dictionaries was initiated and launched upon by the late lamented Sri Mohan Lal Banthia who, with the assistence of Pt. Srichand Choraria, published the Leshya-Kosha in 1966 and the Kriya-Kosha in 1969. The Pudgala-Kosha and Dhyna-Kosh seem to have also been compiled. The Vardamana-Jivana-Kosha is the third publication of the series, but whereas the other Koshas of the series are related to certain specific

philosophical concepts, the present one concerns the life-story of a historical personage. Since Banthiaji's demise in 1976, the work of its completion and editing fell solely upon Pt Chorariaji who acquitted himself of this task with flying colours. The patience, perseverance and hard work put into it is a credit to him for which he deserves hearty congratulations. The office bearers and members of the Jaina Philosophical Society, Calcutta, who have undertaken the work of implementing the schemes of Banthiaji in this direcion also deserve thanks for enabling pt. Choraria to complete the work and publishing it

Jyoti Nikunj,
Charbagn, Lucknow-1
March 12, 1980.

Jyoti Prasad Jain

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ

विषय	पृष्ठ
.१५.०१ (श्वे०) त्रिशला क्षत्रियाणी का चौदह स्वप्न दर्शन	१४४
१५.०२ (दिग्) त्रिशला क्षत्रियाणी का (प्रियकारिणी) सोलह स्वप्न दर्शन	१४६
.१५.०३ प्रिय कारिणी का सतखर्वा स्वप्न दर्शन	१४९
.१५.०४ श्वे० (स्वप्नार्थ पृच्छा)	१५०
.१५.०५ दिग् (स्वप्नार्थ पृच्छा)	१५४
.१६ त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ में प्रवेश	१५६
.१६.०१ गर्भ प्रवेश का काल	१५६
.१६.०२ गर्भ प्रवेश की तिथि और नक्षत्र	१५८
.१६.०३ गर्भ प्रवेश के समय स्वर्ग में आनन्दानुभूति	१५९
.१६.०४ गर्भ कल्याणक	१६०
१६.०५ गर्भ प्रवेश के पश्चात् धन वर्षा	१६१
.१६.०६ गर्भ-अवस्थान-काल	१६१
.१६-०७ (दिग्) कालचक्र की अपेक्षा गर्भ में अवतीर्ण	१६३
.१६.०८ परिवार में धनादि की वृद्धि	१६४
.१७ गर्भ काल—गर्भस्थकाल की घटना	१६५
.१७.०१ गर्भ में हलन-चलन की क्रिया	१६५
.१७.०२ वर्धमान का गर्भ में अभिग्रह	१६७
.१७.०३ गर्भ की प्रति पालना	१६९
.१७.०४ गर्भ अवस्था के ज्ञान	१६६
.१८ दोहद	१७०
.१९ वर्धमान का जन्म (भगवान महावीर का जन्म)	१७०
.१९.०१ जन्म की तिथि, नक्षत्र और समय	१७०
.१९.०२ कालचक्र की अपेक्षा जन्मकाल	१७४
.१९.०३ जन्मभूमि	१७४
.१९.०४ जन्म के पश्चात् धनवर्षा	१७५
.१९.०५ जन्म कल्याणक	१७७
.१९.०६ जन्मोत्सव परिवार द्वारा	१८९
.२०/२९ गृहवास काल	१९१-२५७
.२१ बाल्यकाल	१९२

विषय	पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

विषय	पृष्ठ
.४२.४ ३ तृतीय मास क्षमण का पारणा	१५८
.४२.४.४ चतुर्थ मास क्षमण का पारणा	१५९
.४२.५ दो मास क्षमण का पारणा	१६०
.४२.६ चतुर्मास क्षमण का पारणा	१६०
४२.६.१ प्रथम चतुर्मास का पारणा	१६०
४२.६ २ द्वितीय चतुर्मास का पारणा	१६१
.४२.६ ३ तृतीय चतुर्मास का पारणा	१६१
.४२ ६ ४ चतुर्थ चतुर्मास का पारणा	१६१
.४२.६ ५ पंचम बार मास क्षमण का पारणा	१६२
.४२.६ ६ छट्ठे बार मास क्षमण का पारणा	१६२
.४२.६.६ ग्यारहवें चतुर्मास के बाद पाँच मास, पच्चीस दिन कीतपस्या का पारणा	१६३
.४२ ६.७ छहमासी तप का पारणा-दसवें चतुर्मास के बाद छमासी तप का पारणा संगम देव के उपसर्ग के बाद का	१६३
.४२.६.८ विविध तप का पारणा	१६४
प्रव्रज्या के बाद प्रथम पारणा	१६५
दसवें चतुर्मास का पारणा	१६५
कुल तपस्या के पारणे	१६६
.४३ साधना काल का शिष्य-गोशालक	१६६
.४३.१ भगवान् महावीर और गोशालक का सह-विहरण	१६६
.४३ २ भगवान् महावीर और गोशालक का प्रथम मिलन	१६६
.४३.२.१ दीक्षा के पूर्व का	१६६
.४३.२.२ दीक्षा के बाद का—भगवान महावीर और गोशालक का पुनर्मिलन-छट्ठे वर्षावास मे	१६८
.४३.३ गोशालक का भगवान् महावीर का शिष्यत्व स्वयमेव ग्रहण	१६८
.४३.३.१ प्रथम बार	१६८
.४३.३.२ द्वितीय बार	१६९
.४३.३.३ तृतीय बार	
.४३.४ गोशालक का शिष्यत्व का भगवान् महावीर द्वारा अंगीकरण	१७१
.४३.५ गोशालक द्वारा गृहस्थ के पात्र में लाया हुआ आहार भगवान् ने ग्रहण नहीं किया	१७३

विषय	पृष्ठ

विषय — पृष्ठ

—•—

·०० नाम शब्द विवेचन

·०१ नाम शब्द व्युत्पत्ति

·०१·१ प्राकृत में 'वद्धमाण' शब्द की व्युत्पत्ति

रूप—वद्धमाण

पद—संज्ञा

लिंग—पुलिंग

धातु- वद्ध वृद्धि होना, भरती होना।

—पाइ० पृष्ठ ६२१,६२५

"वद्धमाण" नाम शब्द पारिभाषिक शब्द के मूल धातु का रूप नहीं है।

यदि संस्कृत शब्द 'वर्धमान का प्राकृत रूप "वद्धमाण" बना ऐसा माना जाय तो वर्धमान शब्द के अनादि न का ण आदेश होता है नो णः (हेम०८।१।२२८) द्र के रेफ का विकल्प से लुक् होता है (द्र रो वा ३।४। वर०) यथा—

रूद्रो रुद्दो। भद्रं भद्दं समुद्रो समुद्दो।

वचनम् वअणं। शयनम् सअण

अत संस्कृत शब्द, 'वर्धमान' का प्राकृत रूप 'वद्धमाण' बना ऐसा समझना चाहिए। आया० श्रु २ अ १५। सू १६ मे कहा है

"समणे भगवं महावीरे कासवगोत्ते। तस्स णं इमे तिण्णि णामधेज्जा, एवमाहिज्जंति, तंजहा—१—अम्मापिउसंतिए "वद्धमाणे" २—सह-सम्मुइए "समणे" ३ "भीमं भयभेरवं उरालं अचेलयं परिसहं सहइ" त्ति कट्टु देवेहिं से णामं कयं "समणे भगवं महावीरे"।

श्रमण भगवान महावीर का काश्यप गोत्र था। उनके तीन नाम थे—

(१) माता-पिता का नियत किया हुआ नाम 'वर्धमान' था।

(२) सहज गुणो के कारण वे 'श्रमण' कहलाते थे।

(३) भयकर-भय-भैरव को तथा अचेल आदि परीषहों को सहन करने के कारण देवों ने उनका नाम 'श्रमण भगवान महावीर' दिया था।

आया० श्रु २ अ १५। सू १३ में कहा है—

तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो ××× मित्त-णाइ-सयण-संबंधिवग्गेणं इमेया रूवं णामधेज्जं करेंति—जओ णं पभिइ इमे कुमारे तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिंसि गब्भे आहुए, तओ णं पभिइ इमं कुलं, विउलेणं हिरण्णेणं सुवण्णेणं धणेणं धण्णेणं माणिक्केणं मोत्तिएणं संख-सिलप्पवालेणं अईव-अईव परिवड्ढइ, तो होऊ णं कुमारे 'वद्धमाणे'।

भगवान के माता-पिता ने मित्रों, ज्ञातिजनों स्वजन, सबधियों को इस प्रकार कहकर नाम रखवाया—जब से यह कुमार क्षत्रियाणी त्रिशला के उदर मे गर्भ रूप से आया है, तभी से इस कुल मे विराट् चाँदी, सोने, धन, धान्य माणिक, मोती, शख, पुखराज मूंगा आदि की अतीव-अतीव वृद्धि हुई है अतः कुमार का नाम 'वर्धमान' रखा जाय।

'०१'२ पाली में 'वद्धमाण' शब्द की व्युत्पत्ति

रूप—वद्धमाण

पद—सज्ञा

लिंग—पुलिंग

धातु—√वद्ध

प्राकृत 'वद्धमाण' शब्द की व्युत्पत्ति की तरह इसकी भी व्युत्पत्ति समझनी चाहिए।

'०१'३ संस्कृत में 'वर्धमान' शब्द की व्युत्पत्ति

रूप—वर्धमान

पद—सज्ञा

लिंग—पुलिंग

धातु—√वृध_√वर्ध् >वर्धति, वर्धयति—

वर्ध् धातु में 'मान' प्रत्यय के योग से 'वर्धमान' शब्द बनता है।

—आप्ते सस्कृत अग्रेजी छात्र कोष पृ० ४९४,५३०

वीरवर्धमानचरितम् मे सकलकीर्ति ने कहा है—

"वर्धमानश्रिया वर्धमानकीर्त्या जगत्त्रये।

वर्धमानेन यो वर्धमानं नामाप वासवैः।

—वीरवर्धमानच० अधि १।श्लो ४

जिन्होंने निरतर वर्धमान लक्ष्मी से, तीनो जगत मे वर्धमान कीर्ति से और अपने वर्धमान गुणों से 'वर्धमान' यह सार्थक नाम इन्द्रों से प्राप्त किया।

श्रीवर्धमान एवासो वर्धमानगुणाश्रयात्।

—वीरवर्धमानच० अधि ६। श्लो ८६

निरंतर बढ़ने वाले गुणो के आश्रय से "वर्धमान" नाम रखा।

·०१·४ अपभ्रंश में 'वड्ढमाण' शब्द की व्युत्पत्ति

रूप —वड्ढमाण

पद—संज्ञा

लिंग—पुलिंग

धातु—वड्ढ > वड्ढइ (हेम० ४।२२०)

प्राकृत शब्द 'वद्धमाण' का अपभ्रंश रूप 'वड्ढमाण' बनता है। द् के स्थान पर ड् तथा ध के स्थान पर ढ हो जाता है। अतः संस्कृत रूप 'वर्धमान' का प्राकृत रूप 'वद्धमाण' तथा प्राकृत रूप 'वद्धमाण' का अपभ्रंश रूप 'वड्ढमाण' बना —ऐसा समझना चाहिए।

तिलोप० अधि ४। गा ५१३। उत्तरार्द्ध मे कहा है—

कुंथुअरमल्लिसुव्वयणमिणेमीपासवड्ढमाणा य।

वड्ढमाण (वर्द्धमान) चौबीसवें तीर्थंकर थे।

वड्ढच० संधि १। कड ११ मे कहा है—

जिण जम्महो अणुदिणु सोहमाणं

णियकुल-सिरि देक्खेवि वड्ढमाण।

सियभाणु-कला इव सहुँ सुरेहिं

सिरि-सेहर-रयणिहिं भासुरेहिं।

दहमें दिणि तहो भववहु णिवेण

किव वड्ढमाणु इड णामु तेण॥

अर्थात् जिनेंद्र के जन्मकाल से ही प्रतिदिन अपने कुल-श्री को चंद्रकला के समान शोभा समृद्ध एवं वृद्धिगत देखकर मस्तक मुकुटों मे जटित, रत्नकिरणों से भास्वर सुरेन्द्रों के साथ उस राजा सिद्धार्थ ने दसवें दिन अपने उस पुत्र का नाम 'वड्ढमाण' रखा।

आव० भाष्य गा ६८। टीका मे कहा है—

"xxx—जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिंसि समुप्पन्ने तप्पभिइं च णं अम्हे हिरण्णेणं वड्ढामो जाव एयस्स एयाणुरूवं गोण्णं नामधेज्जं करेस्सामो वड्ढमाण इति॥"

जब से यह कुमार उदर मे गर्भ रूप से उत्पन्न हुआ है तभी से हिरण्यादि की वृद्धि हुई है अतः गुणानुरूप कुमार का नाम 'वड्ढमाण' रखा जाय।

—•—

·०२ नामकरण-नाम और गोत्र

.०२·१ 'वर्धमान' नामकरण का संकल्प ।

(क) तएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापिऊणं अयमेयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंते तप्पभिइं च णं अम्हे हिरण्णेणं वड्ढामो सुवण्णेणं वड्ढामो धणेणं धन्नेणं रज्जेणं बलेणं वाहणेणं कोसेणं कोट्ठागारेणं पुरेणं अंतेउरेणं जणवएणं जसवाएणं वड्ढामो, विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइएणं संतसारसावएज्जेणं पिइसक्कारसमुदएणं अईव-अईव अभिवड्ढामो तं जया णं अम्हं एस दारए जाए भविस्सइ तया णं अम्हे एयस्स दारगस्स एयाणुरूवं गोन्नं गुणनिप्फन्नं नामधिज्जं करिस्सामो वद्धमाणो त्ति ।

—कप्प० सू ८६

(ख) जओ णं पभिइ समणे भगवं महावीरे तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिसि गब्भं आहुए, तओ णं पभिइ तं कुलं विपुलेणं हिरण्णेणं सुवण्णेणं धणेणं धण्णेणं माणिक्केणं मोत्तिएणं संख-सिल-प्पवालेणं अईव-अईव परिवड्ढइ । ×××

आया० श्रु २।अ १५। सू१२

(ग) ××× ततेण भगवतो अम्मापिऊणमयमेयारूवे सकप्पे जाते-जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिसि समागए तप्पभिइं च णं अम्हे हिरण्णेण वड्ढामो जाव सावइज्जेणं वड्ढामो, तं जयाणं अम्हं एस दारए जाते भविस्सइ तया एयस्स एयाणुरूवं गोण्णं नामधेज्जं करिस्सामो वद्धमाण इति, एवं ते मणोरहसहस्साइं पकरेंति ।

- आव० नि० गा ४५८ । मलय टीका

श्रमण भगवान महावीर के माता-पिता के मन में इस प्रकार का विचार, चिंतन, अभिलाष रूप मनोगत सकल्प उत्पन्न हुआ—जब से हमारा यह बालक शिशु कुक्षि मे गर्भ रूप से उत्पन्न हुआ है तब से हमारे हिरण्य-चाँदी, सुवर्ण, धन, धान्य, राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोषागार, कोठार, पुर, अंतःपुर, जनपद, यशोकीर्ति, विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, उत्तम शंख, शिला, प्रवाल, माणिक आदि सारभूत धन की वृद्धि हुई है तथा हमारे ज्ञातकुल मे परस्पर प्रीति, सत्कार-समुदाय की अतीव-अतीव वृद्धि हुई है। अतः हमारे इस पुत्र का जिस दिन जन्म होगा उस दिन उन गुणों के अनुसार उसका गुणनिष्पन्न नाम 'वर्द्धमान' करेंगे—रखेंगे ।

·०२·२ जन्म का नामकरण

(क) तओण समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो ××× मित्त-णाइ-सयण-संबंधिवग्गं भुंजावेंति, मित्त-णाइ-सयण-संबंधिवग्गेण भुंजावेत्ता मित्त-णाइ-सयण-संबंधिवग्गेणं इमेयारूवं णामधेज्जं करेंति—जओ णं पभिइ इमे कुमारे तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिसि गब्भे आहुए, तओ णं पभिइ इमं कुलं, विउलेणं हिरण्णेणं सुवण्णेणं धण्णेणं धण्णेणं माणिक्केणं मोत्तिएणं संख-सिलप्पवालेणं अईव-अईव परिवड्ढइ, तो होउ णं कुमारे "वद्धमाणे"।

आया० श्रु २। अ १५। सू १३। पृ० २३३.३४

(ख) तएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो ××× जिमियभुत्तोत्तरागया विय णं समाणा आयंता चोक्खा परमसुईभूया तं मित्तनाइनियगसयण-संबंधिपरिजणं नायए य खत्तिए य विउलेणं पुप्फवत्थगंधमल्लालंकारेणं सक्कारेंति सम्माणेंति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता तस्सेव मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरिजणस्स नायाण य खत्तियाण य पुरओ एवं वयासी "पुव्विंपि य णं देवाणुप्पिया! अम्हं एयंसि दारगंसि गब्भं वक्कंतंसि समाणंसि इमेयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए जाव समुप्पज्जित्था जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंते तप्पभिइं च णं अम्हे हिरन्नेणं वड्ढामो सुवन्नेणं धणेणं धन्नेणं जाव सावएज्जेणं पीइसक्कारेणं अईव-अईव अभिवड्ढामो सामंतरायाणो वसमागया य तं जयाणं अम्हं एस दारए भविस्सइ तया णं अम्हे एयस्स दारगस्स एयाणुरूवं गोन्नं गुणनिप्फण्णं नामधिज्जं करिस्सामो वद्धमाण त्ति। तं होउ णं कमारे वद्धमाणे-वद्धमाणे नामेणं।"

कप्प० सू० १०८ से १०३। पृ० ३५

(ग) ××× तते णं अम्मापियरो ××× मित्तनाइसयणपरिजणं नायए य खत्तिए य भोयणवेलाए आमंतित्ता भोयणमंडवंसि तेहिं सद्धिं मुहासणवरगया विउलं असणं जाव साइमं परिभुंजेमाणा विहरंति। तण्णं भुत्तुत्तरकालं ते विउलेण वत्थ-गंधमल्लालंकारेण सक्कारेंति संमाणंति सक्कारित्ता सम्माणित्ता एवं वयासी—पूव्विपिय णं देवाणुप्पिया! अम्हं एयारूवे संकप्पे समुप्पन्ने-जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिसि समुप्पन्ने तप्पभिइं च णं अम्हे हिरण्णेण वड्ढामो जाव एयस्स एयाणुरूवं गोण्णं नामधेज्जं करेस्सामो वड्ढमाण इति, तं होउ णं अज्ज मणोहरसंपत्ती कुमारे नामेणं वद्धमाण इति नामधेज्जं करेंति।

—आव० नि० गा ४५८। मलय टीका। पृ २५८

(च) सिद्धार्थस्तानुवाचैवं गर्भस्थेऽस्मिन् सुते मम ।
गृह पुरे मंडले च व्यवर्धिष्ट धनादिकम् ॥
वर्धमान इत्यभिख्या सूनोरस्य तदस्तु भोः ।
प्रत्यभाषि प्रमुदितैरेवमस्त्विति तैरपि ।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ६८, ६९

भगवान महावीर के माता-पिताने भगवान के जन्मोत्सव पर मित्र, ज्ञातिजन, स्वजन सबन्धी जन परिवार, ज्ञातवश के क्षत्रियो को आमन्त्रित किया तथा विपुल अशन, पानी, खादिम, स्वादिम रूप भोजन करवाया । तत्पश्चात् उन्हें विपुल पुष्प, वस्त्र, गध, माला, आभूषण देकर सत्कार-सम्मान किया । तत्पश्चात् भगवान के माता-पिता ने मित्रादि को कहा :—

हे देवानुप्रिय । पूर्व मे भी हमारा यह पुत्र जब गर्भ रूप मे उत्पन्न हुआ था तब हमको इस प्रकार का विचार, चिंतन उत्पन्न हुआ था—"जब से हमारा यह शिशु कुक्षि मे गर्भ रूप में उत्पन्न हुआ है तब से हमारे हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य XXX माणिक आदि सारभूत धन की वृद्धि हुई है तथा हमारे ज्ञातकुल मे परस्पर प्रीति, सत्कार, समुदाय की अतीव-अतीव वृद्धि हुई है अतः हमारे इस पुत्र का जिस दिन जन्म होगा उस दिन उन गुणानुसार नाम 'वर्धमान' रखेंगे । अत कुमार का नाम 'वर्धमान' रखा जाय ।

(च) दहमें दिणि तहो भवयहु णिवेण
किउ वड्ढमाण इउ णामु तेण ।

—वड्ढव० मधि ९ । कड १६ । पृ० २१४

राजा सिद्धार्थ ने दसवें दिन अपने उस पुत्र का नाम 'वर्धमान' रखा ।

(छ) पुज्जिउ पुज्जणिज्जु मणि-दामहिं
भूसिउ भुवण-भूसणो ।
संथुउ चित्त-वित्त वावारहिं
कु-समय-रइय-दूसणो ॥
आघोसिउ णामें वड्ढमाण ।

—वीरजि० सधि १।कड १०

भगवान् का अभिषेक करने के पश्चात् उन देवेन्द्रो ने मणिमय मालाओं द्वारा उनकी पूजा की, जो त्रैलोक्य द्वारा पूजित थे । उन्हें आभूषणों से विभूषित किया, जो स्वयं भुवन-भूषण थे, नाना प्रकार के क्रिया-कलापो सहित स्तुति की जो मिथ्यामतो मे दूषण दिखाने वाले थे । उनका नाम वर्धमान रखा गया ।

'०२'३ एक नाम

(क) श्रमण भगवान महावीर

××× समणे भगवं महावीरे ××× ।

—ठाण स्था० १ । सू २४६

—राय० सू १३।पृ० ४७

ठाण टीका—××× श्राम्यति-तपस्यनीति श्रमणः, भज्यत इति भगः-समग्रै-श्वर्यादिलक्षणः, उक्तं च—

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य, रूपस्य यशसः श्रियः।
धर्मस्याथ प्रयत्नस्य, षण्णा भग इतीङ्गना ॥ १ ॥"

इति, स विद्यते यस्येति भगवान्, तथा विशेषेणेरयति-मोक्षं प्रति गच्छति वा प्राणिनः, प्रेरयति वा—कर्म्माणि निराकरोति, वीरयति वा—रागादि शत्रून् प्रति पराक्रमयति इति वीरः, निरुक्तितो वा वीरो, यदाह—

"विदारयति यत्कर्म्म, तपसा च विराजते।
तपोवीर्येण युक्तश्च, तस्माद् वीर इति स्मृतः ॥ १ ॥"

इतरवीरापेक्षया महांश्चासौ वीरश्चेति महावीरः, भाष्योक्तं च—

"तिहुयणविक्खायजसो, महाजसो नामओ महावीरो।
विक्कंतो य कसायाइसत्तुसेन्नपपराजयओ ॥ ११३ ॥
ईरेइ विसेसेण व, खिवइकम्माई गमयइ सिवं वा।
गच्छइ अ तेण वीरो, स महं महावीरो ॥ ११४ ॥"

राय० टीका—श्रमणम् श्राम्यति-तपस्यति नानाविधमिति श्रमणः, भगः-समग्रैश्वर्यादिलक्षणः उक्तं च—

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य रूपस्य यशसः श्रियः।
धर्मस्याथ प्रयत्नस्य षण्णां भग इतीङ्गना ॥"

भगोऽस्यास्तीति भगवान् तम् भगवंतम् "शूरवीर विक्रान्तौ" वीरयति—कषायान् प्रति विक्रामति स्मेति वीरः महांश्चासौ वीरश्च महावीरस्तम्।

जो तपस्या में श्रम करता है उसे श्रमण कहते हैं। 'भज्यत इति भगः'। भग अर्थात् समग्र ऐश्वर्यादि स्वरूप। कहा है—

समग्र ऐश्वर्य, रूप, यश, लक्ष्मी, धर्म और प्रयत्न-इन छह अर्थों में 'भग' शब्द का व्यवहार होता है। जिनमें ये छह अर्थ विद्यमान हैं उन्हें भगवान कहते हैं तथा विशेष रूप से जो मोक्ष प्राप्त करता है और प्राणियों को प्राप्त कराता है अथवा प्राणियों को प्रेरणा करता

है अथवा कर्मों को दूर करता है अथवा रागादि शत्रुओं के प्रति पराक्रम करता है वह वीर है। निरुक्ति से 'वीर' शब्दका यह अर्थ है—"जो कर्मों का विदारण करता है, तप से शोभायमान होता है, तप और वीर्य से युक्त है"—इन कारणों से उसे वीर कहा जाता है। अन्य वीर की अपेक्षा महान् ऐसा जो वीर वह महावीर। भाष्य मे कहा है--

तीन भुवन मे यश प्रसिद्ध होने से महायशवाला, कषायादि शत्रुओ के सैन्य के पराजय से विक्रांत-पराक्रम वाला-महावीर।

विशेषरूप से जो कर्मों का क्षय करता है, शिवपद को प्राप्त करता है - वह वीर है। वीर की अपेक्षा महान् वीर-महावीर।

अतः वर्धमान का नाम "श्रमण भगवान महावीर' भी था।

(ख) वर्धमान

(१) वर्धमानश्रिया वर्धमानकीर्त्या जगत्त्रये।
वर्धमानेन यो वर्धमानं नामाप वासवैः॥

वर्धमानच० अधि १। श्लो ४

(२) वड्ढइ नामकुलं तिय, तेन जिणो वद्धमाणो त्ति।

-- अभिधा० भाग ६। पृ० ७६८

जिन्होने निरन्तर वर्धमान लक्ष्मी से, तीन जगत मे वर्धमान कीर्ति से और अपने वर्धमान गुणो से वर्धमान' यह सार्थक नाम इन्द्रो से प्राप्त किया।

(ग) वीर

भव-भय-हरणु सिव-सुह-करण जिणु अणतवीरिउ धुव।
इउ मण मुणवि इंदंगणिवि वीरु णामु धरि संथुउ।

वड्ढच० कड ९। संधि १४। पृ० २१२

भवरूपी भय को हरण करने वाले, शिवसुख दाता ध्रुव अनत वीर्य वाले जिनेन्द्र है—ऐसा मन मे विचार करके इन्द्रो ने भगवान का नाम 'वीर' रखकर स्तुति की।

(घ) महावीर—

आकम्पिओ यजणं, मेरू अंगुट्ठएण लीलाए।
तेणह महावीरो, नामंसि कयं सुरिन्देहि॥ २६॥

— पउच० अधि २। श्लो २६

मेरुपर्वत को अपने अगूठे से क्रीड़ा मात्र मे उन्होने हिला दिया था इसीलिए सुरेन्द्रों ने उनका नाम महावीर रखा।

इति स्तुत्वा महावीरनाम कृत्वा जगद्गुरोः।
सार्थकं तृतीयं सोऽस्मान्मुहुर्नत्वा दिवं ययौ ॥

—वीरवर्धच० अधि १०। श्लो ३७

विजृंभमाणहर्षाम्भोनिधिः संगमकोऽमरः।
स्तुत्वा भवान् महावीर इति नामचकारसः॥

—उत्तपु० पर्व ७४। श्लो २९५

कुमार की इस (सर्प) क्रीड़ा से जिस का हर्ष रूपी सागर उमड़ रहा था ऐसे उस संगम देव ने भगवान की स्तुति की और 'महावीर' यह नाम रखा।

"महावीरमित्यभिधानं, तस्यैवं व्युत्पत्तिः 'शूर वीर विक्रान्तौ' कषायादि-शत्रुजयात् महाविक्रान्तो महावीरः, यदि वा 'ई विदारणे' विदारयति कर्म्मरिपुसंघात-मिति वीरः, अथवा अनन्यानुभूतमहातपःश्रिया विशेषतो राजते इति वीरः अंतरङ्ग-महामोहबलनिर्द्दलनाय तपोवीर्यमनन्तं व्यापारयतीति वा वीरः, पृषोदरादित्वा-दिष्टरूपनिष्पत्तिः," उक्तं च—

"विदारयति यत्कर्म्म, तपसा च विराजते।
तपोवीर्येण युक्तश्च, तस्माद् वीर इति स्मृतः" ॥ १ ॥

—आव० नि गा ८१। मलय टीका

महोपसर्गैरप्येष न कंप्य इति वज्रिणा।
महावीर इत्यपरं नाम चक्रे जगत्पतेः॥

—त्रिशलाका० पर्व० १०। सर्ग २। श्लो १००

महांश्चासौ वीरश्च कर्मविदारणसहिष्णुर्महावीरः। तं० शूरवीर विक्रान्तौ। कषायादिशत्रुजयान्महाविक्रान्तौ महावीरः।

— अभिधा० भाग ६। पृ० २१२

जो क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है वह वीर है। निरुक्ति से वीर शब्द का यह अर्थ है—जो कर्म रूपी शत्रुओं का विदारण करता है, तप से शोभायमान होता है, तप और वीर्य से युक्त है —वह वीर है। जो अंतरंग महामोह का निर्दलन करता है—वह वीर है। इतर वीर की अपेक्षा महान् ऐसा जो वीर है वह महावीर। भाष्य में कहा है—

"तीन भुवन में यश प्रसिद्ध होने से महा यशवाला, कषायादि शत्रुओं के सैन्य के पराजय से विक्रांत पराक्रम वाला है वह महावीर। विशेष रूप से जो कर्मों का क्षय करता है, शिवपद को प्राप्त करता है, वह वीर है। वीर की अपेक्षा महान् वीर, वह महावीर।"

एवं तवगुणरओ, अणुपुव्वेणं मुणी विहरमाणो।
घोरं परिसहचमूं अहिआसित्ता महावीरो ॥

—आव० नि गा० ५३७

मलय टीका—एवम्-उक्तेन प्रकारेण तपोगुणेषु रतस्तपोगुणरतः आनुपूर्व्येण क्रमेण मुनिर्विहरन् घोरा रौद्रा परीषहचमूं—परिषहसेनामधिसह्य महावीरः।

तप गण से रत, घोर—रौद्र परिषहों को सहन करने से वर्धमान का नाम महावीर पड़ा।

(च) सन्मति—

सम्मइ कोकिउ संजम - धणेहिं।
विरइय-गुरु-विणय - पयाहिणेहिं ॥

—वीरजि० संधि १। कड १०। पृ० २०

संयमधारी मुनियों ने अत्यन्त विनय भाव से उनकी प्रदक्षिणा की और उन्हें सन्मति कहकर पुकारा।

सिव पक्खे ससि व वड्ढइ सुहेण
जिणवरु सहु भव्व मणोरहेण।
अण्णहिं दिणे तहो तिजए सरासु
किउ सम्मइ णामु जिणेसरासु।

—वड्ढच० संधि ६। कड १६। पृ० २११

विजय और संजय नामक चारण मुनियों का उन जिनेश्वर के दर्शन करने मात्र से ही संदेह दूर हो गया अतः उन्होंने अगले दिन ही उन त्रिजगदीश्वर जिनेश्वर का 'सन्मति' यह नामकरण कर दिया।

०२४ दो नाम

(क) महावीर-वर्धमान

इतीष्टप्रार्थना कृत्वा व्यवहारप्रसिद्धये।
नाकेशाः सार्थकं सारमिदंनामद्वयं व्यधुः ॥
अयं स्यान्महतां वीरः कर्मारातिनिकन्दनात्।
श्रीवर्धमान एवासौ वर्धमानगुणाश्रयात् ॥

—वीरवर्धच० अधि ६। श्लो ८८, ८९

इष्ट प्रार्थना करके इन्द्रों ने लोक व्यवहार की प्रसिद्धि के लिए सार्थक और सारभूत दो नाम रखे—

१. कर्मरूपी शत्रुओं को नाश करने हेतु महावीर है।

२. और निरंतर बढ़ने वाले गुणों के आश्रय से श्रीवर्धमान है।

(ख) वीर-वर्द्धमान

अलं तदिति तं भक्त्याविभूष्योद्‌धविभूषणैः ।
वीरः श्रीवर्द्धमानस्तेष्विस्याख्याद्वितयं व्यधात् ।।

—उत्तपु० सर्ग ७४। श्लो २७६ ।

इन्द्र ने उन्हें भक्ति पूर्वक उत्तमोत्तम आभूषणो से विभूषित कर उनके वीर और श्री-वर्धमान—ये दो नाम रखे ।

(ग) महती और महावीर

विद्याप्रभावसंभावितोपसर्गैर्भयावहैः ।।
स्वयं स्खलयितुं चेतः समाधेरसमर्थकः ।
स महतिमहावीराख्या कृत्वा विविधा स्तुतीः ।।

— उत्तपु० पर्व ७४। श्लो ३३५ उत्तरार्धं, ३३६

रुद्र ने अपनी विद्या के प्रभाव से किये हुए अनेक भयकर उपसर्गों से भगवान को समाधि से विचलित करने का प्रयत्न किया परन्तु वह उसमे समर्थ नही हो सका । अन्त मे उसने भगवान के महति और महावीर—ये दो नाम रखकर अनेक प्रकार की स्तुति की ।

जित्वा रुद्रकृतान् घोरानुपसर्गाननेकशः ।
यो महातिमहावीरनामापतरकृतं परम् ।

-वीरवर्धच० अधि १। श्लो ७

रुद्रकृत अनेक घोर उपसर्गो को जीतकर उसी के द्वारा 'महति महावीर' नाम को प्राप्त किया ।

०२·५ तीन नाम

(क) वर्धमान-श्रमण-श्रमण भगवान महावीर

समणे भगवं महावीरे कासवगोत्ते । तस्सणं इमे तिण्णि णामधेज्जा, एवमाहिज्जंति, तंजहा—१—अम्मापिउसंतिए "वद्धमाणे" २—सह-सम्मुइए "समणे ३ -"भीमं भयभेरवं उरालं अचेलयं परिसहं सहइ" त्ति कटटु देवेहि से णामं कयं "समणे भगवं महावीरे" ।

--आया० श्रु २। अ १५। सू १६

समणे भगवं महावीरे कासवगोत्ते णं, तस्सणं तओ नामधेज्जा एवमाहिज्जंति, तं जहा —१ —अम्मापिउसंतिए वद्धमाणे २—सहसम्मुईयाते समणे ३ अयले भयभेरवाणं परीसहोवसग्गाणं खंतिखमे पडिमाणं पालए धीमं अरतिरति-सहे दविए वीरियसंपन्ने देवेहिं से णामं कयं समणे भगवं महावीरे ।

--कप्प० सू १०४। पृ० ३५

श्रमण भगवान महावीर का काश्यप गोत्र था। उनके तीन नाम इस प्रकार थे—

(१) माता-पिता का नियत किया हुआ नाम 'वर्धमान' था।

(२) सहज गुणों के कारण श्रमण कहलाते थे अर्थात् तप आदि साधना का परिश्रम करने के कारण 'श्रमण' कहलाये।

(३) आकस्मिक भय के उत्पन्न होने पर अथवा भयानक क्रूर सिंह आदि जंगली जानवरों के आने पर अचल रहते थे, परीषह-उपसर्गों को शान्तचित से सहन करने मे समर्थ थे, भिक्षुओं की प्रतिमाओं का पालन करने वाले थे, धृतिमान थे तथा शोक-हर्ष के उत्पन्न होने पर इन्हें उन्हें समता भाव से सहन करते थे, वीर्यसम्पन्न थे, अतः देवों ने उनका नाम 'श्रमण भगवान महावीर' रखा।

·०२·६ 'वर्धमान'—तीर्थंकर थे—

(क) चउव्वीसं देवाहिदेवा पन्नत्ता, तंजहा —उसभे अजिते जाव वद्धमाणे।

—सम० सम २४। सू १। पृ० ८६१

(ख) जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसेओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगरा होत्था, तंजहा —उसभे जाव वद्धमाणे य।

—सम० पइ सम। सू २२२। पृ० ६४३

जबुद्वीप के भरतक्षेत्र के इस अवसर्पिणी काल के चौबीसवें देवाधिदेव—तीर्थंकर वर्द्धमान थे।

(ग) वृषभोऽजिततीर्थेशः शम्भाख्योऽभिनन्दनः।
सुमतिः पंचमः पद्मप्रभः सुपार्श्वतीर्थकृत्॥
चंद्रप्रभजिनः पुष्पदन्तः शीतलसंज्ञकः।
श्रेयान् श्रीवासुपूज्याख्यो विमलोऽनंतनामकः॥
धर्मः शान्तीश्वरःकुन्थुररो मल्लिजिनाधिपः।
मुनिसुव्रतनाथ श्रीनमिर्नेमिजिनाग्रणीः॥
पार्श्वः श्रीवर्धमानाख्य इमे तीर्थकरा इह।
त्रिजगत्स्वामिभिर्वन्द्याः स्युश्चतुर्विंशति प्रमाः॥

—वीरवर्धच० अधि १८। श्लो १०५ से १०८

चौबीसवें तीर्थंकर का नाम—वर्धमान था। त्रिजगत के स्वामियों द्वारा तीर्थंकर वन्दनीय होते हैं।

(घ) उसहमजियं च संभवमहिणंदणसुमइणामधेयं च।
पउमप्पहं सुपासं चंदप्पहपुप्फयंतसीयलए।

सेयंसवासुपुज्जे विमलाणंते य धम्मसंती य।
कुंथुअरमल्लिमुव्वयणमिणेमीपासवड्ढमाणा य।
पणमहु चउवीसजिणे तित्थयरे तत्थ भरहखेत्तम्मि।
भव्वाणं भवरुक्खं छिंदंते णाणपरसूहिं।

—तिलोप० अधि ४। गा ५१२ से ५१४

इस भरतक्षेत्र में ऋषभादि चौबीस तीर्थंकर हुए थे। अन्तिम तीर्थंकर—वर्धमान थे। वे तीर्थंकर ज्ञानरूपी फरसे से भव्य जीवों के संसार रूपी वृक्ष को छेदते हैं।

०२ ६ गोत्र

(१) गर्भ में प्रथम प्रवेश की अपेक्षा

(क) माहणकुंडग्गामे कोडालसगुत्तमाहणो अत्थि।
तस्स घरे उववन्नो देवाणंदाइ कुच्छिंसि॥

—आव० नि०। गा ४५७

(ख) इतश्च जंबूद्वीपेऽस्मिन् क्षेत्रेऽस्ति भरताभिधे।
ब्राह्मणकुण्डग्रामाख्यसंनिवेशो द्विजन्मनाम्॥
तत्र चर्षभदत्तोऽभूत् कौडालसकुलो द्विजः।
देवानन्दा च तद्भार्या जालन्दर कुलोद्भवा॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग २। श्लो १-२

चूंकि भगवान महावीर का गर्भ में प्रथम प्रवेश कोडालगोत्रीय-ऋषभदत्त ब्राह्मण की देवानन्दा भार्य्या की कुक्षि में हुआ था, अतः भगवान महावीर प्रथम गर्भ प्रवेश की अपेक्षा कोडालगोत्रीय थे। यद्यपि देवानदा जालधर गोत्रीय थी।

(२) द्वितीय गर्भ की अपेक्षा

(क) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पिआ कासवगोत्ते णं। तस्स णं तिण्णि णामधेज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा-सिद्धत्थे ति वा, सेज्जंसेति वा, जसंसे ति वा। समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मा वासिट्ठसगोत्ता। तीसेणं तिण्णि णामधेज्जा, एवमाहिज्जंति, तंजहा-तिसला इ वा, विदेहदिण्णा इ वा, पियकारिणी इ वा।

—आया० श्रु २। अ १५। सू १७, १८

श्रमण भगवान महावीर के पिता काश्यप गोत्रीय थे और उनकी माता का गोत्र वासिष्ठ गोत्र था।

(ख) समणे भगवं महावीरे कासवगोत्ते।

—आया० श्रु २। अ १५। सू १६। पृ० २३४

—कप्प० सू १०४। पृ० ३५

(ग) मुणिसुव्वओ य अरिहा अरिट्ठनेमी य गोयमसगुत्ता।
सेसा तित्थयरा खलु कासवगुत्ता गुणेयव्वा॥

—आव० नि० गा ३८१

श्रमण भगवान महावीर काश्यप गोत्रीय थे। मुनिसुव्रत तथा अरिष्टनेमी तीर्थंकर का गोतम गोत्र था, अवशेष तीर्थंकरो का काश्यप गोत्र था।

·०२·७ वंश-कुल

·१ ज्ञातवंश

(क) एस सो अबंभस्स फलविवागो इहलोइओ पारलोइओ य अप्पसुहो बहुदुक्खोमहब्भओ ××× एवमाहंसु नायकुलनंदणो महप्पा जिणो उ वीरवरनामधेज्जो, कहेसी य अबंभस्स फलविवागं।

—पण्हा० श्रु १। अ ४। सू १४

(ख) जंरयणि साहरिओ कुच्छिसि महायसो वीरो

—आव० भाष्य गा० ५७। उत्तरार्ध

टीका ××× जंरयणि भयवं तिसलाए गब्भे साहरिते तं रयणिं सक्कवयणेणं तिरियजंभगा देवा विविहाइं मणिनिहाणाइं सिद्धत्थरायभवणंसि साहरंति, तं च नायकुलं हिरण्णेणं सुवण्णेणं ××× अतीव-अतीव अभिवड्ढइ।

श्वेताम्बर मान्यतानुसार वर्धमान का ज्ञातकुल—ज्ञातवंश था।

२ नाथवंश

(क) धम्मारकुंथू कुरुवंसजादा णाहोग्गवंसेसु वि वीरपासा।
सो सुव्वदो जाद वंसजम्मा णमीअ इक्खाकुकुलम्मि सेसा॥

—तिलोप० अधि ४। गा ५५०

धर्मनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ—ये तीन तीर्थंकर कुरुवंश मे उत्पन्न हुए।

महावीर नाथ वंश मे, पार्श्वनाथ उग्रवंश मे, मुनिसुव्रत और नेमीनाथ यादव वंश मे तथा अवशिष्ट तीर्थंकर इक्ष्वाकुल में उत्पन्न हुए।

दिगम्बर मतानुसार भगवान नाथवंशीय थे।

(ख) पियकारिणि वर-णाह-कुलेसहु।
सिद्धत्थहु कुंडउर—णरेसहु॥

—वीरजि० संधि ५। कड १

भगवान् के पिता नाथ वंशी थे।

—•

·०३ वर्धमान के अन्य नाम

०३·१ प्राकृत में अन्य नाम

·१ अणगारे (अनगार) —आया० श्रु १ । अ ६ । उ १ । गा ४

मूल—संवच्छरं साहियं मासं, जं ण रिक्कासि वत्थगंभगवं ।
अचेलए ततो चाई, तं वोसज्ज वत्थमणगारे ॥

साधिक एक वर्ष भगवान-महावीर ने उस देवदुष्य वस्त्र का त्याग नहीं किया । उसके पश्चात् भगवान ने उस देवदूष्य वस्त्र का त्याग किया । उसका त्याग करके वस्त्र रहित अनगार हुए ।

·२ अरहा (अर्हत्) —सूय० श्रु १ । अ ६ । गा २६

कोहं च माणं च तहेव मायं, लोभं चउत्थं अज्झत्तदोसा ।
एताणि चत्ता अरहा महेसी, ण कुव्वई पाव ण कारवेइ ॥

अरिहत महर्षि - श्री महावीर स्वामी क्रोध, मान, माया तथा चौथा लोभ—इन अध्यात्म अपने अंदर के दोषों को त्याग कर न पाप करते थे और न कराते थे ।

·३ कासव (काश्यप) आया० श्रु १ । अ ६ । उ २ । गा १६
—सूय० श्रु १ । अ २ । उ २ । गा २९
दसवे० अ ४ । सू १

मूल—बहुजणणमणम्मि संवुडे सव्वट्ठेहिं णरे, अणिस्सिए ।
'हरए व सया अणाविले' धम्मं पादुरकासि कासवं ॥

— सूय० श्रु १ । अ २ । उ २ । गा २९

××× काश्यपो वीरो वर्धमान स्वामी । ×××।

—सूय० श्रु १ । अ ५ । उ १ । सू २ । टीका

बहुत जनों से नमस्कार करने योग्य धर्म में सावधान रहने वाला मनुष्य सब पदार्थों में से ममता को हटाकर तालाब की तरह सदा निर्मल रहता हुआ काश्यप गोत्रीय भगवान् महावीर के धर्म को प्रगट करे ।

·४ केवलियं (केवली)—सूय० श्रु १ । अ ५ । उ १ । सू १

मूल—पुच्छिस्सुहं केवलियं महेसिं, कहं अभितावा णरगा पुरत्था ।
अजाणओ मे मुणि बूहि जाणं कहंणु बाला णरगं उवेंति ॥

श्री सुधर्मा स्वामी जंबुस्वामी से कहते हैं कि मैंने केवल-ज्ञानी महर्षि महावीर स्वामी से पूर्व समय में यह पूछा था कि नरक में कैसी पीड़ा भोगनी पड़ती है ।

·५ णाणी (ज्ञानी) —आया श्रु १ । अ ६ । उ १ । गा १६

मूल—दुविहं समिच्च मेहावी, किरियमक्खायणेलिसिणाणी।
आयाण-सोयमतिवाय-सोयं जोगं च सव्वसो णच्चा॥

सब भावों को जानने वाले ज्ञानी—केवल ज्ञानी भगवान् महावीर ने दो प्रकार के कर्मों को जानकर अनुपम संयम रूप क्रिया का कथन किया था तथा सम्पूर्ण रूप से जानकर आदान स्रोत, अतिपात स्रोत और योगों को कर्मबंधन का कारण बताया था।

·६ णायकुलनंदणो (ज्ञातकुलनन्दन) —पण्हा श्रु १ । अ २ । सू १८

मूल—एसो सो अलियवयणस्स × × × एवमाहंसु णायकुलनंदणो महप्पा जिणो वीरवरनाधेज्जो, कहेसी य अलिय-वयणस्स फलविवागं।

ज्ञातृकुलनन्दन जिनेश्वर महान् आत्मा भगवान महावीर ने, मिथ्याभाषण का यह कटुतम फल विपाक कहा है।

ज्ञातृ-कुलनंदन ज्ञातृ—कुलोत्पन्न आनंदकारी।

·७ णायकुलविणिवित्ते (ज्ञात-कुल-निवृत्तः)—आया० श्रु २ । अ १५ । सू २६

मूल—तेण कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे × × × णायकुलविणिवित्ते × × ×।

ज्ञातकुलवंश में उत्पन्न विशिष्ट देह के धारक—भगवान् महावीर।

·८ देवज्जगो (देवार्य) —आव० नि गा ४८३ । मलय टीका में उद्धृत

टीका—× × × ततो सामी कूवियं नाम संनिवेसं गतो, तत्थ चारियत्तिकाऊण घेप्पंति पिट्टिज्जंति य, तत्थ लोगस्समुल्लावो अहो देवज्जगो रूवेण जुव्वणेण य अप्रतिमो चारियत्ति काउं गहितो × × ×।

देवार्य अर्थात् भगवान् वर्धमान का एक नाम।

एक बार भगवान महावीर कूपिय ग्रामपधारे। वहाँ के लोगों ने उन्हें देखा और कहा—अहो देवार्य! आप रूपवान् है, युवा है—अप्रतिम चारित्र को क्यों ग्रहण किया है!

·९ देवाइ (देवादि) —ठाय० सू २०

टीका—देवादियोगात् देवादिः श्रमणो भगवान् महावीरः—
देवादि के योग से देवादि—श्रमण भगवान महावीर।

·१० देवाणुप्पियं (देवानुप्रिय) —भग० श ६ । उ ३३ । सू १४८

मूल—किं णं भंते ! एसा देवाणंदा माहणी आगयपण्हया जावरोमकूवा देवाणुप्पियं अणिमिसाए दिट्ठिए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ ।

हे भगवन् ! उस देवानंदा ब्राह्मणी को किस प्रकार स्तनों मे दूध आया यावत् उसके रोमाञ्च किस प्रकार हुआ और आप देवानुप्रिय की ओर अनिमेष दृष्टि से देखती हुई क्यों खड़ी है ।

·११ नायकुलचंदे (ज्ञातकुलचंद) —कप्प० सू ११०

मूल-समणे भगवं महावीरे दक्खे दक्खपतिन्ने पडिरूवे आलीणे भद्दए विणीए नाए नायपुत्ते नायकुलचंदे × × × ।

ज्ञातकुल मे चन्द्रसमान—भगवान् महावीर ।

·१२ नायपुत्ते (ज्ञातपुत्र) —भग० श७ उ १० । सू २१३
—आया० श्रु १ । अ ६ । उ १ । गा १०
—सूय० श्रु १ । अ १ । उ १ । गा २७
—कप्प० सू ११०

मूल—उच्चावयाणि गच्छंता गब्भमेस्संतणंत सो ।
णायपुत्ते महावीरे एवमाह जिणोत्तमे ॥
—सूय० श्रु १ । अ १ । उ १ गा २७

ज्ञातपुत्र—जिनोत्तम महावीर ने कहा है कि ऊंच-नीच गतियों मे परिभ्रमण करते हुए अन्यतीर्थी (मिथ्या सिद्धांत की प्ररूपणा करने वाले) अनन्तवार गर्भवास को प्राप्त करेंगे ।

·१३ नायमुणिणा (ज्ञातमुनिना) —पण्हा० श्रु २ । अ १ । सू २५

मूल—एवं नायमुणिणा भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धं सिद्धवरसासणमिणं आघवितं सुदेसितं पसत्थं ।

ज्ञातकुलोत्पन्न मुनि—भगवान् महावीर ने कहा है—प्ररूपणा की है । जिनेश्वर भगवतों का यह अहिंसा धर्म सिद्ध है, प्रसिद्ध है । कृत-कृत्य –ऐसे जिनेश्वर भगवान् इसकी आज्ञा दी है । यह भगवान् द्वारा प्ररूपित है, उपदेशित है ।

·१४ नायसुत (ज्ञातपुत्र) —सूय० श्रु १ । अ ६ । गा २
—आया० श्रु१ । अ ६ । उ १ । गा १०

सूय० टीका—× × × ज्ञाताः—क्षत्रियास्तेषां 'पुत्रो' भगवान् वीरवर्धमानस्वामी ।

ज्ञात अर्थात् क्षत्रिय के पुत्र भगवान् वीरवर्धमानस्वामी ।

·१५ नाएणं (ज्ञात) —उत्त० अ १८ । गा २४, सूय० श्रु १ । अ २ । उ २ । गा ४८
—आया० श्रु २ । अ १५ । सू २१, कप्प० सू ११०

सूय०—जे 'एयं चरंति' आहियं णाएण महया महेसिणा।
ते उट्ठिय ते समुट्ठिया अण्णोण्णं सारंति धम्मओ।

टीका—किञ्च ये मनुष्या एनं प्रागुक्तं धर्मं ग्रामधर्मविरतिलक्षणं चरन्ति कुर्वन्ति आख्यातं ज्ञातेन ज्ञातपुत्रेण 'महये' त्ति महाविषयस्या ज्ञानस्यानन्यभूतत्वान्महान् तेन तथाऽनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसहिष्णुत्वान्महर्षिणा श्रीवर्धमानस्वामिना आख्यातं धर्मं ये चरन्ति तएव संयमोत्थानेन कुतीर्थिकपरिहारेणोत्थिताः।

महान् महर्षि ज्ञातपुत्र वर्धमान स्वामी द्वारा कथित धर्म को जो पुरुष आचरण करते है वे ही उत्थित धर्ममार्ग मे प्रवृत्त तथा सम्यग् प्रकार से प्रवृत्त समुत्थित है तथा वे ही धर्म से भ्रष्ट होते हुए भी परस्पर को फिर धर्म मे प्रवृत्त करते है।

.१६ भगवं (भगवान्) —आया श्रु १ । अ ९ । उ १ । गा १५

मूल—भगवं च 'एवं मन्नेसिं, सोवहिए हु लुप्पती बाले।
कम्मं च सव्वसो णच्चा, तं पडियाइक्खे पावगं भगवं।

भगवान् महावीर ने इस प्रकार समझ लिया था कि जो अज्ञानी उपधि से युक्त होता है वह निश्चय ही क्लेश को प्राप्त होता है। कर्मको सभी प्रकार से जानकर भगवान् महावीर ने कर्मों को उत्पन्न करने वाले पाप कर्म का त्याग कर दिया था।

यह विवेचन भगवान् महावीर के साधना काल की अपेक्षा है।

·१७ मतीमता (मतिमान्) —सूय० श्रु १ । अ ६ । गा १

मूल—कयरे धम्मे अक्खाए माहणेण मईमता।
अंजु धम्मं तहातच्चं 'जिणाणं तं सुणेह मे'।।

टीका—××× भगवान् वीरवर्धमानस्वामी तेन ?, तमेव विशिनष्टि-मनुते-अवगच्छति जगत्त्रयं कालत्रयोपेतं यया सा केवलज्ञानाख्यामतिः सा अस्यास्तीति मतिमान् तेन—उत्पन्नकेवलज्ञानेन भगवता।×××।

जिसके द्वारा भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल के सहित इन तीनों लोकों को जानता है उसको मति कहते हैं वह केवलज्ञान रूप है वह जिसको उत्पन्न हो गया था ऐसे भगवान् वीरवर्धमान स्वामी थे।

.१८ माहणे (माहण)

—आया श्रु १ । अ ६ । उ १ । गा २१, सूय श्रु १ । अ ६ । गा १

मूल—एसविहि अणुक्कंतो माहणेण मईमया ।
'अपडिण्णेण वीरेण, कासवेण महेसिणा' ।।

—आया श्रु १ । अ ६ । उ १ । गा २१

मतिमान निदान रहित माहण —भगवान् महावीर ने अनेक प्रकार से वर्णन रूप विधि का आचरण किया था ।

"× × × माहणेणं ति मा जन्तून् व्यापादयेत्येवं विनेयेषु वाक्प्रवृत्तिर्यस्यासौ 'माहनो' भगवान् वीरवर्धमान स्वामी ।"

—सूय श्रु १ । अ ६ । गा १ । टीका

अर्थात् माहण—भगवान् वीरवर्धमान स्वामी का एक नाम ।

.१६ महावीरे (महावीर)

—पउच० अधि २ । श्लो २६
—कसापा० भाग १ । गा १ । टीका । पृ० ७४
- आया० श्रु १ । अ ६ । उ १ । गा १३
—आव० नि० गा ५१७

आया०-मूल—एयाइं संति पडिलेहे, चितमंताइं से अभिण्णाय ।
परिवज्जिया ण विहरित्था, इति संखाए से महावीरे ।।

भगवान् महावीर पृथ्वीकायिक आदि हिंसा से निवृत्त होकर विचरते थे ।

.२० मुणी (मुनि)

—आया० श्रु १ । अ ६ । उ १ । गा २०
— सूय० श्रु १ । अ २ । उ २ सू ५१

आया०—मूल—णोवि य कंडूयये मुणी गायं ।

मुनि—भगवान् महावीर ने (साधना काल मे) अपने शरीर मे कभी खाज नहीं की ।

.२१ मेहावी (मेधावी)

—आया० श्रु १ । अ ६ । उ १ । गा १६

मेधावी भी भगवान् का एक नाम है ।

मूल—दुविहं समिच्च मेहावी, किरियमक्खायणेलिसिं णाणी ।
आयाण-सोयमतिवाय-सोयं, जोगं च सव्वसो णच्चा ।।

मेधावी —सब भावों को जानने वाले ज्ञानी भगवान् महावीर ने दो प्रकार के कर्मों को (ऐर्यापथिक-साम्परायिक) जानकर अनुपम सयम रूप क्रिया का कथन किया था ।

.२२ वद्धमाणे (वर्धमान) —आया० श्रु २ । अ १५ । सू १३

—आव० नि गा ३७१

आव०—विमलमणंतइ धम्मो सन्ती कुंथू अरो अ मल्ली अ ।
मुणिसुव्वय नमि नेमी पासो तह वद्धमाणो अ ॥

चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान थे ।

.२३ विदेहजच्चे (विदेहयात्य) —कप्प० सू ११०, आया० श्रु २ । अ १५ । सू २६

आया०—मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे × × × विदेहजच्चे × × × ।

विदेहजच्चे—त्रिशला माता के शरीर से उत्पन्न हुए—भगवान् महावीर ।

.२४ विदेहदिण्णे (वैदेहदत्त) —कप्प० सू० ११०, आया० श्रु २ । अ १५ । सू २६

कप्प०-मूल-समणे भगवं महावीरे × × × विदेहदिण्णे × × × ।

विदेहदिण्णे —त्रिशला के तनय —भगवान् महावीर ।

.२५ विदेहसुमाले (विदेहसुमाल) - कप्प० सू ११०, आया० श्रु २ । अ १५ । सू २६

कप्प० मूल—समणे भगवं महावीरे × × × विदेहसुमाले × × × ।

विदेहसुमाल—भगवान् महावीर का एक नाम ।

.२६ विदेहे (विदेह) —कप्प० सू ११०, आया० श्रु २ ।अ १५ । सू २६

आया० —मूल —तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे णाते णायपुत्ते × × × विदेहे × × × ।

विदेह—विशिष्ट देह के धारक भगवान महावीर ।

.२७ वीरं (वीर) —आया० श्रु० २ । अ १५ । सू २६, पण्हा० श्रु १ । अ २ । सू १८

आया० मूल —एए देवणिकाया, भगवं, बोहिंति जिणवरं वीरं ।
सव्वजगजीवहियं, अरहं तित्थं पव्वत्तेहि ॥

ये लोकान्तिकदेव वीर भगवान् को प्रतिबोध करते हैं । (क्योंकि प्रतिबोध करना उनका जीत व्यवहार है) इस व्यवहार के अनुसार जगत के समस्त जीवों के हित के लिए निवेदन किया कि हे अर्हन् तीर्थ की प्रवृत्ति कीजिए ।

.२८ वेसालिय (वैशालिक)—भग० श १२ । उ २ । सू ३०, भग० श २ । उ १। सू २८

(क) मूल—× × × वेसालियसावयाणं अरहंताणं पुव्वसेज्जातरीजयंती नामं समणोवासिया होत्था । × × × ।

—भग० श १२ । उ २ । सू ३०

वैशालिक –श्रमण भगवान् महावीर के साधुओं की प्रथम शय्यातर-जयती श्रमणोपासिका थी।

(ख) तएणं से पिंगलए नियंठे वेसालियसावए खंदयं कच्चायणसगोत्तं इणमक्खेवं पुच्छे-मागहा ! —भग० श २। उ १। सू २८

वैशालिक श्रावक –अर्थात् भगवान् महावीर के वचनों को सुनने मे रसिक पिंगल-नाम का निर्ग्रंथ था। उसने कात्यायन गोत्रीय स्कंदक तापस को दो, तीन बार प्रश्न पूछे।

(ग) मूल—एवं से उदाहु अणुत्तरणाणी अणुत्तरदंसी अणुत्तरणाणदंसणधरे।
अरहा णायपुत्ते भगवं वेसालिए वियाहिए॥

—सूय० श्रु १। अ २। उ ३। गा ७६

टीका—× × ×। अर्हन् सुरेन्द्रादिपूजार्हो ज्ञातपुत्रो वर्द्धमानस्वामी ऋषभस्वामी वा भगवान् ऐश्वर्यादिगुणयुक्तो विशालयां नगर्यां वर्धमानोऽस्माकमाख्यातवान् ऋषभ स्वामी वा विशालकुलोद्भवत्वाद् वैशालिकः तथा चोक्तम्—

"विशाला जननी यस्यविशालं कुलमेव वा।
विशालं वचनं चास्य तेन वैशालिको जिनः॥"

इन्द्रादि देवों के पूजनीय ज्ञातपुत्र वर्धमान स्वामी और ऋषभदेव स्वामी हैं। विशाल माता के पुत्र ऐश्वर्यादि गणयुक्त वर्धमानस्वामी ने कहा था। अथवा विशाल कुल मे उत्पन्न होने के कारण श्री ऋषभदेव को यहाँ वैशालिक कहा है। कहा है

श्री महावीर स्वामी की माता विशाला थी और कुल भी विशाल था तथा उनका प्रवचन भी विशाल था इसलिए वे वैशालिक जिन कहलाते थे।

२९ समणे (श्रमण) – आया० श्रु २। अ १५। सू १५

मूल—× × × सह सम्मुइए 'समणे'। × × ×।

सहज गुणों के कारण 'श्रमण' नाम पड़ा। अर्थात् तप आदि साधना का श्रम करने के कारण 'श्रमण' नाम पड़ा।

३० समणे नायपुत्ते (श्रमण नायपुत्र) - भग० श ७। उ १०। सू २१३

मूल—तत्थ णं समणे नायपुत्ते चत्तारि अत्थिकाए अजीवकाए पण्णवेति, तंजहा—धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, पोग्गलत्थिकायं।
× × ×।

श्रमण ज्ञातपुत्र चार अस्तिकाय को अजीव कहते हैं, यथा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय।

•३१ समणे भगवं (श्रमण भगवान्) —आया० श्रु १ । अ ९ । उ १ । गा १

मूल —अहासुयं वदिस्सामि, जहा से समणे भगवं उट्ठाय ।
संखाए तंसि हेमंते, अहुणा पव्वइए रीइत्था ।

श्रमण भगवान् -महावीर ने हेमन्त ऋतु मे दीक्षा ग्रहण कर तत्काल विहार किया ।

•३२ समणे भगवं महावीरे (श्रमण भगवान् महावीर)

—ओव० सू १६, आया० श्रु २ । अ १५ । सू १६

—ठाण० स्था ५ । उ १ । सू ६७, राय० सू ७

—कप्प० सू १२३,२४

ठाणं —मूल —समणे भगवं महावीरे पंचहत्थुत्तरे होत्था, तंजहा –

१ —हत्थुत्तराहिं चुते चइत्ता गब्भं वक्कंते २—हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिते। ३ —हत्थुत्तराहिं जाते ४ —हत्थुत्तराहिं मुंडे, भवित्ता ××× पव्वइए ५ —हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरे ××× केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे ।

श्रमण भगवान् महावीर के पचकल्याण हस्तोत्तरा नक्षत्र मे हुए —१—च्यवन कर गर्भ मे प्रवेश, २ —गर्भ सक्रमण, ३—जन्म, ४—दीक्षा और ५—केवलज्ञान ।

•३३ सामी (स्वामी) —भग० श ५ । उ १। सू २, राय० सू ७

—आ० नि गा ४६१। टीका मे उद्धृत

भग०—तीसेणं चंपाए नगरीए पुण्णभद्दे नामं चेइए होत्था वण्णओ। सामी समोसढे जाव परिसा पडिगया ।

चम्पानगरी के बाहर पूर्णभद्र नाम का चैत्य था । वहाँ सामी —भगवान महावीर का पदार्पण हुआ ।

यह विवेचन भगवान् महावीर के सर्वज्ञावस्था का है ।

३४ सिद्धत्थरायपुत्तो (सिद्धार्थराजपुत्र) — आ० नि गा० ५०७। टीका

टीका ××× तेण सामी कुंडग्गामे दिट्ठपुव्वो, ताहे सो मोएइ, साहइ य जहा एस सिद्धत्थरायपुत्तो ××× ।

सिद्धार्थ राजा के पुत्र - वर्धमान ।

०३.२ अपभ्रंश में अन्य नाम

•१ देवदेउ (देव-देव) —वीरजि० संधि १ । कड १

देवदेउ देवों के देव ।

(क) मूल—मणपज्जय-संजुत्तउ देवदेउ थिर-चित्तउ ।
तार-हार-पंडुर-घरि कुल-गाम-णामइ पुरि ॥

देवों के देव—देव-देव —भगवान महावीर स्थिर चित तथा मनःपर्यवज्ञान से युक्त होकर कूलग्राम पधारे।

(ख) "जो सजय विजयहि चारणेहि।
अवलोइउ सेसवि देवदेउ।
णट्ठउ भीसणु-संदेह-हेउ॥"

—वीरजि० संधि १। कड १०

संजय और विजय नामक चारण ऋद्धिधारी देवों ने परोपदेश रूप वाणी को समझ कर ही उनके शैशवकाल में ही देखकर उन्हें देवों के देव तीर्थंङ्कर जान लिया। और उनके भीषण संदेह का कारण दूर हो गया।

.२ परमेसरु (परमेश्वर) —वीरजि० संधि २। कड १

मूल—भिक्खहि परमेसरु पइसरइ।

ज्ञातृखण्ड वन उद्यान में दीक्षा ग्रहण कर भगवान का प्रथम विहार कूलग्राम की ओर हुआ। वहाँ परमेश्वर अर्थात् भगवान महावीर ने भिक्षार्थ प्रवेश किया।

.३ महवीरु (महावीर) —वड्ढमाण० संधि ६। कड १७

—कसापा० भाग १। गा १ टीका पृ० ७३

अहिसिंचिवि कणय-कलस-जलेहिँ
पुज्जिवि आहरणहिँ णिम्मलेहिँ।
महवीरु णामु किउ तक्खणेण
जाणिउ असेस-तिहुवण-जणेण।

संगम देव ने स्वर्णकलश के निर्मल जल से अभिषेक कर आभरणों से सम्मानित किया और उसका नाम 'महावीर' रख दिया, जिससे समस्त त्रिभुवन के लोगों ने तत्काल ही जान लिया।

.४ रिसिदु (ऋषि) —वीरजि० संधि १। कड ११

घत्ता—परमेट्ठि रिसिदु थिउ पडिवज्जिवि संजमु।
थुउ भरह-णरेहिँ पुप्फयंत-वंदिय-कमु।

वे ऋषि परमेष्ठी—महावीर संयम ग्रहण कर आसीन हुए। भरतक्षेत्र के मनुष्यों ने उनकी स्तुति की।

.५ वीरणाहु (वीरनाथ) —वीरजि० संधि १। कड १०

—तिलोप० अधि ४। गा ५८४, ७०१

वीरजि०—कण-मुह-दाढाउ कर फुसंतु णउ संकिउ।
पुज्जिवि देवेण वीरणाहु तहिँ कोक्किउ॥

वर्धमान स्वामी उस भयंकर सर्प के फण और मुख की दाढों का अपने हाथ से स्पर्श करते हुए जरा भी शंकित नहीं हुए। यह देख उस संगम देव ने उनकी पूजा की और उन्हें वीरनाथ कहकर पुकारा।

- अष्टपा० पा १ । गा १

·६ वड्ढमाण (वर्धमान)

- तिलोप० अधि ४ । गा ५१३, आव० नि गा ४५८ । टीका मे उद्धृत

वड्ढ़च० संधि ६ । कड १६, वीरजि० संधि १ । कड १०

(क) काऊण णमुक्कारं जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स ।
दंसणमग्गं वोच्छामि जहाकम्मं समासेणं ॥

—अष्टपा० पा १ । गा १

जिनवरवृषभ - ऋषभदेव तथा वर्धमान तीर्थंकर को नमस्कार कर दर्शन—मत का संक्षेपतः वर्णन करूँगा।

(ख) तहु फणि-माणिक्कइं फंसमाणु ।
अविउलु अचलु वि सिरि-वड्ढमाणु ।

वे श्री वर्द्धमान निर्व्याकुल अचल होकर उस भयंकर सर्प के फणधर के माणिक्य का स्पर्श करने लगे।

संगमदेव भयंकर सर्प का रूप धारण करके कुण्डपुर के नन्दन वन मे आया जहाँ कुमार महावीर क्रीड़ा कर रहे थे। वे जिस वृक्ष पर क्रीड़ा कर रहे थे, उस क्रीड़ा-वृक्ष को उस सर्प ने चारों तरफ घेर लिया। यह देख उनके साथ क्रीड़ा करने वाले सहचर शिशु सब भाग गये, किन्तु वे त्रिजगत के बन्धु वहीं ठहरे रहे।

·७ वीरो (वीर) —कसापा० भाग १ । गा १ । टीका पृ० ७३

—तिलोप० अधि ४ । गा ६७०

णेमी मल्ली वीरो कुमारकालम्मि वासुपुज्जो य ।
पासो वि य गहिदतवा सेसजिणा रज्जचरमम्मि ॥

नेमिनाथ, मल्लिनाथ, वीर—महावीर, वासुपूज्य और पार्श्वनाथ इन पाँच तीर्थङ्करों ने कुमारकाल मे और शेष तीर्थङ्करों ने राज्य के अन्त मे तप को ग्रहण किया।

·८ सम्मइ (सन्मति) —वीरजि० संधि १ । कड १०

- वड्ढ़च० संधि ६ । कड १७

णट्ठउ भीसणु संदेह हेउ ॥
सम्मइ कोक्किउ संजम-धणेहिं ।
विरइय-गुरु-विणय-पयाहिणेहिं ॥

- वीरजि० संधि १ । कड १०

संयमवादी मुनियों ने अत्यन्त विनयभाव से उनकी प्रदक्षिणा की और उन्हें सन्मति कहकर पुकारा।

'०३'२ पाली में अन्य नाम

त्रिपिटिकों में महावीर सम्बन्धी घटना-प्रसंगोंकी बहुलता है। वहाँ 'उन्हें निगण्ठनात-पुत्त' कहा गया है। कहीं कहीं निगण्ठनातपुत्त और निगण्ठनाथपुत्त भी है।

'१ निगण्ठनातपुत्त (निर्ग्रंथनातपुत्र)

एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा नालन्दाय विहरति पावारिकम्बवने। ते खो पन समयेन निगण्ठोनातपुत्तो नालन्दायं पटिवसति महतिया निगण्ठपरिसाय सद्धिं। × × ×)

—सुत्तपिटके, मज्झिमनिकायपालि, मज्झिमपण्णासकं,

उपालिसुत, १-१ से २१, पृ० ४३ से ६०।

अर्थात् एक समय भगवान् बुद्ध नालदा म प्रावारिक के आम्रवन मे विहार करते थे। उस समय निगण्ठनातपुत (निगण्ठों) भी जैन साधुओं की महती परिषद के साथ नालन्दा मे विहार कर रहे थे।

'०३ ४ संस्कृत में अन्य नाम

·१ ज्ञातप्रभु —त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो १५३-१५७

कायोत्सर्गावसाने च प्रभुं नवोत्पलः पुनः।
ज्ञानसामर्थ्यतो ज्ञातप्रभुस्वप्नोऽब्रवीदिदम्॥
स्वामिन्निशान्ते युष्माभिः सुस्वप्नाः प्रेक्षिता दश।
तत्फलानि स्वयं वेत्सि भक्त्याख्यामि तथाप्यहम्॥

भगवान् महावीर ने अस्थिग्राम के प्रथम चतुर्मास मे कायोत्सर्ग समाप्त किया। समीप मे बैठा हुआ उत्पल परिव्राजक ने वन्दन-नमस्कार किया और स्वयं के ज्ञान के सामर्थ्य से ज्ञातप्रभु द्वारा देखे गये दस स्वप्नों को जानकर कहा कि हे भगवन्! आपने अन्तिम रात्रि मे दस स्वप्न देखे हैं। जिन स्वप्नों का फल आप जानते हैं फिर भी भक्तिवश मैं स्वप्नों का फल कहता हूँ।

·२ जगन्नाथ —त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो ५४८

व्यन्तरैर्भगवद्भक्तैरदह्यत स मंडपः।
जगाम च जगन्नाथः सन्निवेशं कलम्बुकम्।

चोराक ग्राम में गोशाले को चोर समझकर पीटा गया। भगवान के भक्त व्यन्तर देवों ने मण्डप को जला दिया। वहाँ से विहार कर जगन्नाथ—भगवान महावीर कलम्बुक ग्राम पधारे।

·३ तपःशाली — त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो १३ । पूर्वार्ध

ग्रामेऽगाद्बहुशालाख्ये तपःशाली जगद्गुरुः ।
तत्र शालवनोद्याने तस्थौ च प्रतिमाधरः ॥
शालाया नामतस्तत्र व्यन्तरी कारणं विना ।
क्रुद्धोपसर्गानकरोत् स्वामिनः कर्मघातकान् ॥

मर्दन ग्राम से विहार कर तपस्वीप्रभु बहुशाला नामक ग्राम पधारे। वहाँ शाल नामक उद्यान मे प्रतिमा में स्थित हुए। वहाँ शालार्या नामक एक व्यन्तरी थी। वहाँ उसने निष्कारण क्रुद्ध होकर स्वामी की घात करने के लिए उपसर्ग किये।

·४ देवार्यः — राय० सू २० । टीका, त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ५०१
—ठाण० स्था १० । सू १०३ । टीका, अभि० काड १ । श्लो ३०

"××× देवाश्चासौ आर्यश्च देवार्यः। देवैः अर्यते अभिगम्यते इति वा। देवानां इन्द्रादीनां अर्यःस्वामी इति वा।"

अर्थात् 'देवार्य' शब्द में 'देव आर्य' और 'देव अर्य' इस प्रकार दो विभाग से पदच्छेद है। 'देवार्य' का देवरूप आर्य अथवा देवो के आदरणीय आर्य अथवा देवों के स्वामी—ये तीन अर्थ होते हैं और ये तीनों अर्थ महावीर मे सुसगत भी है।

·५ नाथ — उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो ३०२ ।
—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ४६७

प्रातर्नाथोऽपि संहृत्य प्रतिमामेकरात्रिकीम् ।
क्रमेण विहरन् प्राप पुरं भोगपुराभिधम् ।

प्रातःकाल एक रात्रि की प्रतिमा को पार कर नाथ—भगवान महावीर क्रमशः विहार कर भोगपुर पधारे। यह विवेचन साधना काल का है।

·६ परमात्मा —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ७८

तुभ्यं क्षेत्राय पात्राय तीर्थाय परमात्मने ।
स्याद्वादवादिने वीतरागाय मुनये नमः ॥

जन्मोत्सव के समय इन्द्र ने भगवान की स्तुति करते हुए कहा कि—क्षेत्र, पात्र, तीर्थ, परमात्मा, स्याद्वादी, वीतराग और मुनि—तुम्हें नमस्कार है।

·७ परमेश्वर —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ४८७

दिनानि कतिचित्तत्रान्ति वाह्य परमेश्वरः ।
तुर्यां प्रावृषमत्येतुं पृष्ठचम्पां पुरीं ययौ ॥

चोराक ग्राम में कुछ दिन विराजकर परमेश्वर –भगवान् महावीर चतुर्थ चतुर्मासार्थ पृष्ट चपानगरी पधारे ।

·८ प्रभु —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ६

देवानन्दागर्भगते प्रभौ तस्य द्विजन्मनः ।
बभूव महती ऋद्धिः कल्पद्रुम इवागते ॥

जब प्रभु –देवानंदा की कुक्षि में आये तभी से ब्राह्मण को मोटी ऋद्धि की प्राप्ति हुई ।

·९ भगवान् —ओव० सु १९ । टीका

× × × "भगवान्" समग्रैश्वर्यादियुक्तः × × × ।

समस्त ऐश्वर्य से युक्त होने से 'भगवान्' कहे जाते थे ।

·१० महति --उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो ३३६ । पूर्वार्ध

स महतिमहावीराख्या कृत्वा विविधाः स्तुतीः ॥

रुद्र ने महती और महावीर दो नाम रखे ।

·११ महति महावीर वीरच० अधि १ । श्लो ७

जित्वा रुद्रकृतान् घोरानुपसर्गाननेकशः ।
यो महातिमहावीरनामाप तत्कृतं परम् ॥

जिन्होंने रुद्रकृत अनेक घोर उपसर्गों को जीतकर उसी के द्वारा 'महति-महावीर' नाम को प्राप्त किया ।

·१२ महावीर —पण्ण० प १ । सु १ । टीका, उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो २९५
—अभि० कांड १ । सु ३०, ओव० सु १९ । टीका

उत्तपु०—विजृम्भमाणहर्षाम्भोनिधिः संगमकोऽमरः ।
स्तुत्वा भवान्महावीर इति नाम चकार सः ॥

कुमार की इस क्रीड़ा से जिसका हर्ष रूपी सागर उमड़ रहा था – ऐसे उस संगमदेव ने भगवान् की स्तुति की और 'महावीर' यह नाम रखा ।

'महावीरो' देवादिकृतोपसर्गादिष्वचलितसत्त्वतया देवप्रतिष्ठितनामा ।

देवादि के द्वारा उपसर्ग किये जाने पर भी अपने मार्ग से वीरता से डटे रहे, अतः देवों ने इन्हें 'महावीर' नाम से प्रतिष्ठित किया था ।

·१३ योगीन्द्र —वीरच० अधि १३ । श्लो ३

पारणानि योगीन्द्रो धृतिधैर्यबलाधिकः ।
निरीहोऽत्यन्तभोगादौ मतिं चक्रे तनुस्थितौ ॥

यद्यपि भगवान् महावीर छः मासी उपवास आदि तपों के करने में अतीव समर्थ थे — तो भी अन्य मुनियों को उत्तम चर्या बतलाने के लिए पारणा के दिन धृति और धैर्य से बलशाली — शरीर-भोगादि में अत्यन्त निःस्पृह उन योगीन्द्र — भगवान ने शरीर-स्थिति में बुद्धि की अर्थात् गोचरी के लिए उद्यत हुए ।

१४· वर्धमान —ओघ० सू० १ । टीका, उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो० ३३१
—वीरवर्धच० अधि १ । श्लो ४ । अभि० कांड १ । सू ३०
—राय० सू १ । टीका, रत्नश्रा० परि १ । श्लो १

वर्धमानश्रिया वर्धमानकीर्त्या जगत्त्रये ।
वर्धमानेन यो वर्धमानं नामाप वासवैः ।

—वीरवर्धच० अधि १ । श्लो ४

जिन्होंने निरंतर वर्धमान लक्ष्मी से, तीन जगत में वर्धमान कीर्ति और अपने गुणों से 'वर्धमान' यह सार्थक नाम इन्द्रों से प्राप्त किया ।

·१५ विभो —त्रिशलाका० पर्व । १० । सर्ग ३ । श्लो ६१५

वानमन्तरिका तत्र नामतः कटपूतना ।
त्रिपृष्ठजन्मनि विभोः पत्नी विजयवत्यभूत् ।

ग्रामक ग्राम से विहारकर भगवान् महावीर शालिशीर्ष ग्राम पधारे । वहाँ कटपूतना नामक एक वाणव्यंतरी देवी थी । जो विभो— भगवान् महावीर के पूर्वभव— त्रिपृष्ठ के जन्म में विजयवती नामक पत्नी थी । उसने शीतोपसर्ग किये ।

·१६ वीर —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ४६४
—उत्तपु० पर्व ७४ श्लो ३०३, वीरच० अधि १ । श्लो १०
—अभि० कांड १ । सू ३६

वीरच०— संपूर्णो यो मुदा स्तौमि ते वीरं तद्गुणाप्तये ।

भगवान् का वीर भी एक नाम था ।

·१७ वीरनाथ —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ६५०

एवं श्रीवीरनाथस्योपसर्गेष्वखिलेष्वपि ।
जघन्येषूत्कृष्ट कटपूतनाशीतमुत्कटम् ॥

इस प्रकार वीरनाथ को जो-जो उपसर्ग हुए उनमे जघन्य उपसर्ग में कटपूतना ने जो शीत का उपसर्ग किया वह उत्कृष्ट था।

·१८ वीरस्वामी उत्तपु० पर्व ७४। श्लो २८८, २८९
— त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो १२२

उत्तपु० —अन्येद्युः स्वर्गनाथस्य सभायामभवत्कथा।
देवानामधुना शूरो वीरस्वामीति तच्छ्रुतेः॥

किसी एक दिन इन्द्र की सभा मे देवों मे यह चर्चा चल रही थी कि इस समय सबसे शूर-वीरस्वामी है।

·१९ श्रमण —ओव० सु ११। टीका

'श्रमणो' महातपस्वी नामान्तरं वा इदमन्तिमजिनस्य।

घोर तपस्या करने से अंतिम जिन —महावीर का नाम श्रमण पड़ा।

·२० सन्मति —वीरव० अधि० १०। श्लो ८०
—उत्तपु० पर्व ७४। श्लो २८२-२८३

संजयस्यार्थसंदेहे संजाते विजयस्य च।
जन्मानंतरमेवैनमभ्येत्यालोकमात्रतः॥
तत्संदेहे गते ताभ्यां चारणाभ्यां स्वभक्तितः।
अस्त्वेष सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः।
—उत्तपु० पर्व ७४। श्लो २८२-८३

एक बार संजय और विजय नाम के दो चारण मुनियों को किसी पदार्थ मे संदेह उत्पन्न हुआ था परन्तु भगवान के जन्म के बाद ही वे उनके समीप आये और उनके दर्शन मात्र से ही उनका सदेह दूर हो गया —अतः उन्होंने बड़ी भक्ति से कहा था कि यह बालक सन्मति तीर्थङ्कर होने वाला है अर्थात् उन्होंने उनका सन्मति नाम रखा था।

·२१ स्वामी —त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ४। श्लो ६१४, १५
—आव० भाष्य गा ९१। मलय टीका

त्रिशलाका०— चतुर्मास्यत्यये स्वामी जृम्भकग्राममाययौ।
तत्रै नाट्यविधिं शक्रो दर्शयित्वाऽब्रवीदिति।
जगद्गुरो! कतिपयैरद्य प्रभृति वासरैः।
उत्पस्यतेऽत्रभवतः केवलज्ञानमुज्ज्वलम्॥

चंपानगरी मे द्वादशवां चतुर्मास कर स्वामी जृम्भक ग्राम पधारे। वहाँ इन्द्र ने नाट्य विधि की और बोला कि हे जगद्गुरो! कुछ दिन बाद आपको उज्ज्वल केवलज्ञान उत्पन्न होगा।

·२२ सिद्धार्थनृपनन्दनम् — त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ४८५

आरक्षानूचतुश्चैवं किं रे मूर्खा मुमूर्षवः।
न जानीथ प्रभुममुं सिद्धार्थनृपनन्दनम्।

पार्श्वनाथ प्रभु की दो साध्वियों ने दो आरक्षकों को कहा "अरे मूर्खो! तुम क्यों मारने की इच्छा करते हो! ये सिद्धार्थ राजा के पुत्र—महावीर है।"

—o—

·०४ सविशेषण—ससमास—सप्रत्यय 'वद्धमाण'—'महावीर' नाम शब्दों की सूची

·१ जिणवीरमिणं

·२ देवाइ समणे भगवं महावीरे

·३ महावीरणिव्वाणगयदिवसादो

·४ महावीरथुई

·५ महावीरभासिय

·६ महावीरवद्धमाणस्स

·७ वड्ढमाण

·८ वड्ढमाणकसायपरिणामो

·९ वड्ढमाणपूसमाणगघंटियगणेहिं

·१० वड्ढमाणगिहाणि

·११ वड्ढमाणचरित्तस्स

·१२ वड्ढमाणजिणिंदगब्भत्थकालो

·१३ वड्ढमाणजिणिंदाउअं

·१४ वड्ढमाणजिणिंदाउअम्मि

·१५ वड्ढमाणजिणिंदो

·१६ वड्ढमाणजिणो

·१७ वड्ढमाणपुरे

·१८ वड्ढमाणभडारएण

'१९ वड्ढमाणयं ओहिनाणं

'२० वड्ढमाणलेस्सा

.२१ वड्ढमाणतित्थम्मि

२२ वड्ढमाणवत्थवग्गो

'२३ विजयवड्ढमाणे उज्जाणे

'२४ वीरजिणिंद

'२५ वीरवरनामधेज्जो

'२६ वीर-सामि

२७ सिरिवड्ढमाणु

२८ वीरवरस्स

—oo—

सविशेषण—ससमास—सप्रत्यय 'वद्धमाण'—'महावीर' नाम शब्दों को परिभाषा

[निम्नोक्त शब्द आगम और श्वेताम्बर और दिगम्बर सिद्धान्त ग्रन्थों मे कई स्थलों पर आये है । हमने सन्दर्भ सामान्यत दो चार ग्रन्थो का दिया है ।]

·०४·१ जिणवीरमिणं (जिनवीर) —आव० नि गा ४९८

सक्को य देवराया सहागओ भणइ हरिसिओ वयणं ।
तिन्निवि लोगऽसमत्था जिणवीरमिणं चलेउं जे ॥

शक्रेन्द्र ने देव सभा मे जिनवीर की प्रशसा की उन्हे तीन लोक मे भी कोई चलित करने मे समर्थ नही है ।

·०४ २ देवाइ समणे भगवं महावीरे (देवादिः श्रमणो भगवान् महावीरः)

—राय० सू २०

टीका—देवादियोगात् देवादिः श्रमणो भगवान् महावीरः । ××× ।
'देवादिः' यह पद श्रमण भगवान् महावीर का विशेषणभूत है ।

'०४ ३ महावीरणिव्वाणगयदिवसादो (महावीरनिर्वाणगतदिवस)

—कसापा० भा १ । गा १ । टीका । पृ० ८१

संपहि कत्तियमासम्हि पण्णरसदिवसेसु मग्गसिरादितिण्णिवासेसु अट्ठमासेसु च महावीरणिव्वाणगयदिवसादो गदेसु सावणमासपडिवयाए दुस्समकालो ओइण्णो।

जिस दिन महावीर जिन निर्वाण को प्राप्त हुए उस दिन से कार्तिक मास के पन्द्रह दिन और मार्गशीर्ष मास से लेकर तीन वर्ष आठ मास काल के व्यतीत हो जाने पर श्रावण मास की प्रतिपदा से दुःषम-काल अवतीर्ण हुआ।

·०४ ४ महावीरत्थुई (महावीरस्तुति) — सम० सम १६ । सू १
—सूय० श्रु १ । अ ६

सम० मूल—सोलस य गाहा—सोलसगा पन्नत्ता, तंजहा—समए वेयालिए उवसग्गपरिण्णा इत्थि परिण्णा निरयविभत्ती महावीरत्थुई × × ×।

टीका - × × × गाथाषोडशकादीनि स्थितिसूत्रेभ्य आरात्सप्तसूत्राणि, तत्र सूत्रकृतांगस्य प्रथमश्रुतस्कंधे षोडशाध्ययनानि तेषां च गाथाभिधानं षोडशमिति गाथाभिधानमध्ययनं षोडशं येषां तानि गाथाषोडशकानि, तत्र—समए × × ×।

सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कंध के छट्ठे अध्ययन का नाम 'महावीर-स्तुति' है। सूत्रकृतांग मे गाथा के अनुसार विवेचन है।

·०४ ५ महावीरभासिय (महावीरभाषित) —अभिधा भाग ६ पृ० २१३

महावीरभाषित—अर्थात महावीर द्वारा कथित।

·०४ ६ महावीरवद्धमाणस्स (महावीरवर्द्धमान) —सम० पइण्णगसम । सू ८७
— आव० निगा ४८६ । टीका मे उद्धृत

सम० मूल—उसभसिरिस्स भगवओ चरिमस्स य महावीरवद्धमाणस्स एगा सागरोवमकोडाकोडी अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

ऋषभनाथ भगवान और चरम—महावीर-वर्द्धमान का अंतर अबाध एक कोटा-कोटी सागरोपम का है।

·०४ ७ वद्धमाण (वर्द्धमान) —आव० निगा ४६३

अस्थिक ग्राम का पूर्वनाम वर्द्धमान था।

पाणीपत्तं गिहिवंदणं च वद्धमाण वेगवई।
धणदेव सूलपाणिंदसम्म वासऽट्ठियग्गामे॥

टीका × × × 'वास अट्ठियग्गामे' त्ति वर्षाकालमस्थिकग्रामेस्थित इत्यध्याहारः, स चास्थिकग्रामः पूर्वं वर्द्धमानाभिधःखल्वासीत्, पश्चादस्थिग्रामसंज्ञामित्थं प्राप्तः।

श्रमण भगवान् महावीर का प्रथम चतुर्मास अस्थिग्राम मे था। इसका पूर्वनाम वर्द्धमान था।

·०४·८ वड्ढमाणकसायपरिणामो (वर्धमानकषायपरिणाम)

—कसापा० । गा० ६४ । टीका । भा १२ । पृ० २०३

वृद्धिगत-कषाय-परिणाम ।

·०४·६ वद्धमाणगपूसमाणगघंटियगणेहिं (वर्धमानकपूसमानकघंटिकगण)

—कप्प० सू १११

पुव्विं पि य णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ××× चंदप्पभाए सीयाए ××× संखियचक्कियनंगलियमुहमंगलियवद्धमाणगपूसमाणगघंटियगणेहिं ताहिं इट्ठाहिं ×××।

श्रमण भगवान् महावीर को दीक्षा के समय चन्द्रप्रभा शिविका में बैठाया गया। कितनेक शंख बजाने वाले थे, कितनेक चक्रधारी थे कितनेक मुखमांगलिक—मुँह से मीठे बोलने वाले थे, वर्धमानक—स्वय के कंधे पर दूसरों को बैठाने वाले थे, कितनेक चारण थे, कितनेक घटा बजाने वाले—घांटिक थे।

·०४·१० वद्धमाणगिहाणि (वर्धमानगृहाणि) —उत्त० अ ६ । गा २४

पासाए कारइत्ताणं वद्धमाणगिहाणि य।
वालग्गपोइयाओ य, तओ गच्छसि खत्तिया ॥

लक्ष्मीवल्लभ टीका—××× वर्धमानगृहाणि, अनेकधा वास्तुविद्यानि रूपितानि वर्धमानगृहाणि कारयित्वा ×××।

ब्राह्मण के वेष में इन्द्र—नमिराजर्षिको कहता है—"हे क्षत्रिय! प्रसाद और वर्धमान-गृह वास्तुशास्त्र में बतलाते हुए अनेक प्रकार के छोटे-बड़े घर और जल क्रीड़ा करने के लिए तालाब के बीच में क्रीड़ागृह आदि बनवाकर उसके बाद प्रव्रज्या ग्रहण करना तुम्हें योग्य है।

·०४·११ वड्ढमाणचरित्तस्स (वर्द्धमानचरित्रस्य) —नंदी० सू ५४

वर्द्धमान चरित्र अर्थात् आवरणक मलकलंक से रहित चारित्र के विशुद्ध्यमान होने पर वर्द्धमान-चारित्र होता है।

·०४·१२ वड्ढमाणजिणिंदगब्भत्थकालो (वर्द्धमानजिनेन्द्रगर्भस्थकाल)

—कसापा० भाग १ । गा १ । टीका । पृ० ७७

××× तम्मि अट्ठमासेसु पक्खित्ते अट्ठदिवसाहियणवमासा वड्ढमाणजिणिंद-गब्भत्थकालो होदि।

आषाढ शुक्ला षष्ठी से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी—यहाँ आषाढ़ शुक्ला षष्ठी से पूर्णिमा तक दस दिन होते हैं। पुनः श्रावण मास से फाल्गुन मास तक आठ मास गर्भावस्था में व्यतीत

करके चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को वर्द्धमान उत्पन्न हुए। इन अट्ठाइस दिनों में पूर्व के दस दिन मिला देने पर आठ दिन अधिक एक माह होता है। इसे पूर्वोक्त आठ महिनों में मिला देने पर नौ मास और आठ दिन पमाण वर्द्धमान जिनेन्द्र का गर्भस्थ काल होता है।

'०४ १३ वड्ढमाणजिणिंदाउअं (वर्द्धमानजिनेंद्रायु)

—कसापा० भा १। गा १। टीका। पृ ७१

अण्णे के वि आइरिया पंचहि दिवसेहि अट्ठहि मासेहि य ऊणाणि बाहत्तरिवासाणि त्ति वड्ढमाणजिणिंदाउअं परूवेंति ७१-३-२५।

कुछ अन्य आचार्य पाँच दिन और आठ माह न्यून बहत्तर वर्ष प्रमाण अर्थात् ७१ वर्ष ३ माह और पच्चीस दिन वर्द्धमानजिनेन्द्र की आयु था— ऐसा प्ररूपण करते हैं।

'०४'१४ वड्ढमाणजिणिंदाउअम्मि (वर्द्धमानजिनेंद्रायु)

—कसापा० भाग १। गा १। टीका। पृ० ८१

× × × इमं कालं वड्ढमाणजिणिंदाउअम्मि पक्खित्ते दसदिवसाहिय-पंचहत्तरिवासावसेसे चउत्थकाले सग्गादो वड्ढमाणजिणिंदो ओदिण्णो होदि ७५-०-१०।

इस तीन वर्ष, आठ माह और पन्द्रह दिन प्रमाण काल को वर्द्धमान जिनेन्द्र की इकहत्तर वर्ष, तीन माह और पच्चीस दिन प्रमाण आयु में मिला देने पर पचहत्तर वर्ष और दस दिन प्रमाण काल चतुर्थकाल में शेष रहने पर वर्द्धमान जिनेन्द्र स्वर्ग से अवतीर्ण हुए।

'०४'१५ वड्ढमाणजिणिंदो (वर्द्धमानजिनेन्द्र)

-- कसापा० भाग० १। गा १। टीका पृ० ७७

× × × आसाढजोण्हपक्खछट्ठीए कुंडपुरनगराहिव-णाहवंस-सिद्धत्थणरिंदस्स तिसलादेवीए गब्भमागंतूण तत्थ अट्ठदिवसाहियणवमासे अच्छिय चइत्तसुक्कपक्ख तेरसीए रत्तीए उत्तरफग्गुणी पक्खत्ते गब्भादोणिक्खंतो वड्ढमाणजिणिंदो।

आषाढ महीने की शुक्लपक्ष की षष्ठी के दिन कुंडपुर नगर के स्वामी—नाथवंशी सिद्धार्थ नरेन्द्र की त्रिशला देवी के गर्भ में आकर और वहाँ नौ माह आठ दिन रहकर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन रात्रि में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के रहते हुए वर्द्धमानजिनेन्द्र गर्भ से बाहर आये अर्थात् जन्म हुआ।

'०४'१६ वड्ढमाणजिणो (वर्द्धमानजिन) —तिलोप० अधि ४। ६६८

पव्वजिदो मल्लिजिणो रायकुमारेहि तिसयमेत्तेहिं।
पासजिणो वि तह च्चिय एक्को च्चिय वड्ढमाणजिणो।

वर्धमानजिन अकेले ही दीक्षित हुए।

'०४'१७ वड्ढमाणपुरे (वर्द्धमानपुर) —विवा० श्रु १ । अ १० । सु २

तेणं कालेणं तेणं समएणं वड्ढमाणपुरे नामं नयरे होत्था । × × × विजयमित्ते राया ।

उस काल उस समय मे वर्द्धमानपुर नामक नगर था । उसमे विजयमित्र राजा रहता था ।

'०४'१८ वड्ढमाणभडारएण (वर्द्धमानभट्टारक)

—कसापा० । भाग १ । गा १ । टीका । पृ० २२

× × × सम्मत्त-णाणदंसण-वीरियावगाहणागुरुवलहुअ-अव्वाबाह-सुहुमत्तादि-गुणेहि सिद्धसारिच्छेणवड्ढमाणभडारएण उवइट्ठत्तादो पमाणं दव्वागमो × × × ।

क्षायिक सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतवीर्य, अवगाहनत्व, अगुरुलघु, अव्याबाध और सूक्ष्मत्व आदि गुणो से सिद्ध के समान वर्द्धमानभट्टारक के द्वारा उपदिष्ट होने से द्रव्यागम प्रमाण है ।

'०४'१९ वड्ढमाणयं ओहिनाणं (वर्द्धमानकमवधिज्ञानं) —नंदी० सु ५४

ठाण० स्था ६ । सु ६६

नंदी० मूल—वड्ढमाणयं ओहिनाणं, पसत्थेसु अज्झवसाणट्ठाणेसु वट्टमाणस्स वड्ढमाणचरित्तस्स, विसुज्झमाणस्स विसुज्झमाणचरित्तस्स सव्वओ समंता ओही वड्ढइ ।

अवधिज्ञान का एक भेद । वर्द्धमान अवधिज्ञान प्रशस्त अध्यवसाय स्थानों मे वर्तते हुए के वृद्धि पाते हुए चरित्र के विशुद्ध्यमान चारित्र के होने पर उस व्यक्ति का सब दिशा और विदिशाओं से सब प्रकार से अवधिज्ञान वृद्धि पाता है ।

'०४'२० वड्ढमाणलेस्सा (वर्द्धमानलेश्या)

—कसापा० भाग १२ । गा ६४ । टीका । पृ० २०४

वर्धमान-लेश्या-परिणाम ।

'०४'२१ वद्धमाणतित्थम्मि (वर्धमानतीर्थे) —कप्पसु० चू गा ६२

पूरिमचरिमाण कप्पो, मंगल्लं वद्धमाणतित्थम्मि ।

इह परिकहिया जिण - गणहराइथेरावलि चरित्तं ॥

टीका—पुरिमचरिमाण य तित्थगराणं एस मग्गो च्चेव—जहा वासावासं पज्जोसवेयव्वं पडतु वा वासं मा वा । मज्झिमगाणं पुण भयितं । अवि य वद्धमाण-तित्थम्मि मंगलणिमित्तं जिणगणहर [राइथेरा] वलिया सव्वेसिं च जिणाणं समोसरणाणि परिकहिज्जंति ।

प्रथम और चरम तीर्थङ्कर का ऐसा मार्ग है—जहाँ पर्यूषण होगा वहाँ वर्षावास करेंगे। मध्यम तीर्थङ्कर की भजना है वे पर्यूषण के बाद विहार कर भी सकते हैं, न भी। वर्द्धमान तीर्थ मे भी मंगल निमित्त जिन-गणधर चरित्र का आख्यान कहा जाता है।

'०४'२२ वद्धमाणवत्थवग्गो (वर्द्धमानवस्त्रवर्ग)—

—आव० नि गा० ४६१। टीका

अस्थिकग्राम का पूर्व 'वर्द्धमान' नाम था।

× × × तस्स एगो बइल्लो सो मूलधरे जुप्पइ, × × × सोऽवि तत्थ वालुगाए जेट्ठामूलमासे अईव उण्हाए तण्हाए छुहाए य परिताविज्जइ, वद्धमाणवत्थवग्गो य लोगो तेणं तेणं पाणिय तणं च वहइ, × × × अकामतण्हाए छुहाए य परिऊण तत्थेव गामे अग्गुज्जाणे सूलपाणी जक्खो उप्पण्णो।

धनदेव नामक वणिक् था। उसके पास मोटा वृषभ था। उसने वृषभ को वर्द्धमान नगर के लोगों के पास छोड़ दिया। वह बैल ज्येष्ठ मास की गर्मी मे अति तृषा-क्षुधा से व्याकुल हो गया लेकिन लोगों ने उसे पानी व तृण नही दिया। वह बैल अकाम तृषा व क्षुधा से मरकर शूलपाणि नामक व्यंतरदेव हुआ।

'०४'२३ विजयवड्ढमाणे उज्जाणे (विजयवर्द्धमान उद्यान)

—विवा० श्रु १। अ १०। सू २

तेणं कालेणं तेणं समएणं वड्ढमाणपुरे नामं नयरे होत्था। विजयवड्ढमाणे-उज्जाणे।

उस काल उस समय मे वर्धमानपुर नगर था। जिसमे विजयवर्द्धमान उद्यान था।

'०४'२४ वीरजिणिंद (वीरजिनेंद्र)

—आव० नि गा २६१। पूर्वार्ध

एक्कारस उगणहरा वीरजिणिंदस्स सेसयाणंतु।

वीरजिनेन्द्र के ग्यारह गणधर थे।

'०४'२५ वीरवरनामधेज्जो (वीरवरनाम) —पण्हा० श्रु १ अ १। सू ३६

मूल—एसो सो पाणवहस्स फलविवागो × × × एवमाहंसु नायकुलनंदणो महप्पा जिणो उ वीरवरनामधेज्जो, कहेसी य पाणवहस्स फलविवागं।

ज्ञातकुलनन्दन —ज्ञातपुत्र महात्मा जिन भगवान् वीरवरनाम वाले अर्थात् महावीर स्वामी ने प्राणवध का फल विपाक इस प्रकार कहा है।

'०४'२६ वीर-सामि (वीरस्वामी)— वीरजि० संधि ५। कड ५

वंदिउ वीर - सामि परमप्पउ ।
पयाणेय - वियप्पसमप्पउ ॥

राज श्री के धनी चंदना के बन्धु-बांधवों ने वीर-स्वामी को वंदना की ।

'०४'२७ सिरिवड्ढमाणु (श्रीवर्द्धमान) —वीरजि० संधि १ । कड १०

तहु फणि-माणिक्कहुँ फंसमाणु ।
अविउलु अचलु वि सिरि-वड्ढमाणु ।

संगमदेव ने भयकर सर्प का रूप धारण किया । वे श्रीवर्धमान निर्व्याकुल और अचल होकर उस भयंकर सर्प के फण पर के माणिक्य का स्पर्श करने लगे ।

'०४'२८ वीरवरस्स (वीरवरस्य) —आव० नि गा ५३६

बारस चेव य वासा मासा छच्चेव अद्धमासो अ ।
वीरवरस्स भगवओ एसो छउमत्थपरियाओ ।

वीरवर का छद्मस्थ काल—बारह वर्ष, छः मास, पन्द्रह दिन प्रमाण था ।

'०५ परिवार—पारिवारिक व्यक्तियों के नाम

'१ प्रथम गर्भकाल की अपेक्षा वर्धमान (महावीर) के माता-पिता के नाम

तेणं कालेणं तेणं समएणं माहणकुंडग्गामे नयरे होत्था । ××× । तत्थणं माहणकुंडग्गामे णयरे उसभदत्ते णामं माहणे परिवसइ । ××× तस्सणं उसभदत्तस्स माहणस्स देवाणंदा णामं माहणी होत्था ××× । समणोवासिया ××× । तेणं कालेण तेणं समएणं सामी समोसढे । ××× ।

तएणं सा देवाणंदा माहणी आगयपण्हया पप्पुयलोयणा संवरियवलय-बाहा कंचुयपरिक्खित्तिया धाराहयकलंबगं पिव समूसवियरोमकूवा समणं भगवं महावीरं अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ ।

भंतेति ! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—किं णं भंते ! एसा देवाणंदा माहणी आगयपण्हया जाव रोमकूवा देवाणुप्पियं अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ ?

गोयमादि ! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयम एवं वयासी—एवं खलु गोयमा ! देवाणंदा माहणी ममं अम्मगा, अहण्णं देवाणंदाए माहणीए अत्तए। 'तण्णं एसा' देवाणंदा माहणो तेणं पुव्वपुत्तसिणेहरागेणं आगयपण्हया जाव समूसविय रोमकूवा ममं अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ।

तएणं समणे भगवं महावीरे उसमदत्तस्स माहणस्स देवाणंदाए माहणीए ××× अद्धमागहाए भासाए भासइ-धम्मं परिकहेइ जाव परिसा पडिगया ×××।

तएणं समणे भगवं महावीरे उसमदत्तं माहणं सयमेव पव्वावेइ, सयमेव मुंडावेइ, सयमेव सेहावेइ ×××। सिद्धे, बुद्धे मुक्के परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

तएणं समणे भगवं महावीरे देवाणंदं माहणिं सयमेव पव्वावेइ, पव्वावेत्ता सयमेव अज्जचंदणाए अज्जाए सीसिणीत्ताए दलयइ। ××× सिद्धा, बुद्धा, मुक्का परिनिव्वुडा सव्वदुक्खप्पहीणा।

—भग० श ९। उ ३३। प्र १३७, १३८, १४७, १४८, १५१, १५३, १५५

उस काल उस समय में 'ब्राह्मण-कुण्डग्राम' नाम का नगर था। उस ब्राह्मण कुंडग्राम में 'ऋषभदत्त' नाम का ब्राह्मण रहता था। उस ऋषभदत्त ब्राह्मण के देवानन्दा नाम की भार्या थी। वह श्रमणोपासिका थी।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। परिषद् में ऋषभदत्त ब्राह्मण देवानन्दा ब्राह्मणी के साथ आया था। विनयपूर्वक हाथ जोड़कर देवानन्दा ब्राह्मणी भगवान् की उपासना करने लगी।

इसके बाद उस देवानन्दा ब्राह्मणी के पाना चढ़ा। अर्थात् उसके स्तनों में दूध आया। उसके नेत्र आनन्दाश्रुओं से भींग गये। हर्ष से प्रफुल्लित होती हुई उसकी भुजाओं के वलयों ने रोका। (उसके भुजाओं के कडे तग हो गये।) हर्ष से उसका शरीर प्रफुल्लित हो गया। उसकी कंचुकी विस्तीर्ण हो गई और स्तनो मे दूध आ गया। मेघ की धारा से विकसित कदम्ब पुष्प के समान उसका सारा शरीर रोमांचित हो गया। वह श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की ओर अनिमेष दृष्टि से देखने लगी।

इसके पश्चात् हे भगवन् ! ऐसा कहकर गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वदन-नमस्कार किया। वदन-नमस्कार कर इस प्रकार पूछा—हे भगवन् ! उस देवानन्दा ब्राह्मणी को किस प्रकार पाना चढा (इसके स्तनों में से दूध कैसे आ गया) यावत् उसको रोमांच कैसे हुआ ? और आप देवानुप्रिय की ओर अनिमेष दृष्टि से देखती हुई क्यों खड़ी है।

हे गौतम ! ऐसा कहकर श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी से इस प्रकार कहा—"हे गौतम ! यह देवानन्दा मेरी माता है। मैं देवानन्दा का आत्मज (पुत्र) हूँ। इसलिए देवानन्दा को पूर्व के पुत्र-स्नेहानुराग से पाना चढ़ा यावत् रोमांच हुआ और यह मेरी ओर अनिमेष दृष्टि से देखती हुई खड़ी है।"

इसके बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ऋषभदत्त ब्राह्मण, देवानदा ब्राह्मणी को और उस बड़ी ऋषिपरिषद् आदि को धर्मकथा कही यावत् परिषद् वापस चली गई।

ऋषभदत्त ब्राह्मण ने प्रव्रज्या ग्रहण की। और वे सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

इसी प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने देवानन्दा को स्वयमेव दीक्षा दी। दीक्षा देकर आर्य चंदना को शिष्या रूप मे दिया। और वह भी सिद्ध-बुद्ध यावत् मुक्त हुई।

इससे सिद्ध होता है कि प्रथम गर्भकाल की अपेक्षा भगवान् के पिता का नाम ऋषभदत्त ब्राह्मण और माता का नाम देवानन्दा ब्राह्मणी था।

·२ द्वितीय गर्भकाल की अपेक्षा वर्धमान (महावीर) के माता-पिता के नाम

·०१ पिता का नाम

·०२ माता का नाम

(क) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पिआ कासवगोत्तेण। तस्सणं तिण्णि णामधेज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा—१—सिद्धत्थे ति वा २—सेज्जंसे ति वा ३—जसंसे ति वा।

—आया० श्रु० २। अ० १५। सू १७

—कप्प० सू० १०५ पृ० ३१

श्रमण भगवान् महावीर के पिता काश्यप गोत्रीय थे। उनके भी तीन नाम थे, यथा—(१) सिद्धार्थ (२) श्रेयांस और (३) यशस्वी।

(ख) जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगराणं पियरो होत्था, तंजहा—

णाभी य जियसत्तू य, जियारी संवरे इ य।

× × ×

राया य आससेणे, सिद्धत्थेच्चिय खत्तिए॥

—सम० पइ० सु २२०

(ग) नाभी जिअसत्तू अ, × × ×
× × × , × × ×
राया य अस्ससेणे सिद्धत्थेवि अ खत्तिए।

—आव० नि गा० ३८७, ३८८

वर्धमान तीर्थंकर के पिता का नाम सिद्धार्थ था।

(घ) समणस्स णं भगवओ महावीर अम्मा वासिट्ठ-सगोत्ता। तीसेणं तिण्णि णामधेज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा—१-तिसला ति वा २-विदेहदिण्णा ति वा ३-पियकारिणी ति वा।

—आया० श्रु० २। अ १५। सू १८। पृ० २३४

—कप्प० सू १०६। पृ० ३६

श्रमण भगवान् महावीर की माता वाशिष्ठ गोत्र की थी। उनके भी तीन नाम थे—यथा- (१) त्रिशला, (२) विदेहदिन्ना और (३) प्रियकारिणी।

(ङ) मानुषाणां सुराणां च तिरश्चां च चकार सा।
तत्प्रसूत्या पृथुं प्रीतिं तत्सत्यं प्रियकारिणी॥

—उत्तपु० पर्व ७४। श्लो २६८

रानी प्रियकारिणी ने भगवान् महावीर को जन्म देकर मनुष्य देवों और तिर्यंचों को बहुत भारी प्रेम उत्पन्न किया था अतः उनका प्रियकारिणी नाम सार्थक हुआ।

(च) जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगराणं मायरो होत्था, तंजहा—

मरुदेवा विजया सेणा × × × ।
× × × वामा तिसला देवी य जिणमाया।

—सम० पई सू २२०

(छ) मरुदेवी विजया सेणा × × × ।
× × × सिव वम्मा तिसलया इअ।

—आव० नि गा ३८५, ३८६

वर्द्धमान तीर्थङ्कर की माता का नाम त्रिशला था।

(ज) इह जंबुदीवि भरहंतरालि।
रमणीय-विसइ सोहा-विसाली॥
कुंडउरि राउ सिद्धत्थु सहिउ।
जो सिरिहरु मग्गण-वेस-रहिउ॥

इस जंबुद्वीप के भरतक्षेत्र मे विशाल शोभाधारी विदेह प्रदेश में कुंडपुरनगर के राजा सिद्धार्थ राज्य करते हैं। वे आत्म-हितैषी थे और श्रीधर होते हुए भी विष्णु के समान वामनावतार सम्बन्धी याचक वेष से रहित थे।

उन सिद्धार्थ राजा की प्रियकारिणी देवी थी जो विशाल हाथियों के कुम्भस्थलों के समान पीनस्तनी होती हुई समस्त नारी समाज की चूड़ामणि थी।

(क) एयहँ बिहिं मि जक्ख कमलक्ख
सलक्खणु रक्खियासवो।
चउवीसमु जिणिंदु सुउ होही
पय-जुय-णविय-वासवो॥

—वीरजि० संधि १। कड ७। पृ० १२

इन्द्र कुबेर से कहते हैं कि हे कमल नयन यक्ष, इन्हीं राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणी के शुभलक्षणों से युक्त मदिरादि व्यसनों का त्यागी पुत्र चौबीसवाँ तीर्थंकर होगा। जिसके चरणों में इन्द्र भी नमन करेंगे।

(ख) ज्ञानत्रयधरो धीमान् नीतिमार्गप्रवर्तकः।
जिनभक्तो महादाता दिव्यलक्षणलक्षित॥ २३॥
धर्मकर्माग्रणीर्धीरः सद्दृष्टिर्वत्सलः सताम्।
कलाविज्ञानचातुर्यविवेकादिगुणाश्रयः॥ २४॥
व्रतशीलशुभध्यानभावनादिपरायणः।
ख-भूचरसुराधीशैः सेविताङ्घ्रिर्नृपाग्रणीः॥ २५॥
दीप्तिकान्तिप्रतापाद्यैर्दिव्यरूपांशुकैः परैः।
नेपथ्यैः सकलैः सारैर्धर्ममूलप्रवर्तनैः॥ २६॥
नरेन्द्रः सोऽतिपुण्यात्मा बभौ विश्वमहीभुजाम्।
मध्ये यथामराणां च सुरराजोऽतिपुण्यधीः॥ २७॥
तस्याभवन् महादेवी सन्नाम्ना प्रियकारिणी।
अनौपम्यैर्गुणव्रातैर्जगतां पुण्यकारिणी॥ २८॥

—वीरव० अधि ७। श्लो २३ से २८

उस कुंडपुर के स्वामी श्रीमान् सिद्धार्थ नामवाले महीपाल थे, जो काश्यपगोत्री, हरिवंश रूप गगन के सूर्य, तीन ज्ञान के धारक, बुद्धिमान्, नीतिमार्ग के प्रवर्तक, जिनभक्त, महादानी, दिव्य लक्षणों से संयुक्त, धर्मकार्यों मे अग्रणी, धीरवीर, सम्यग्दृष्टि, सज्जन-वत्सल, कला

है

विज्ञान चातुर्य विवेक आदि गुणों के आश्रय, व्रत, शील, शुभध्यान, भावनादि में परायण, राजाओं में प्रमुख थे और जिनके चरण विद्याधर, भूमिगोचरी और देवेन्द्रों के द्वारा सेवित थे।

वे पुण्यात्मा सिद्धार्थ नरेन्द्र दीप्ति, कांति, प्रताप आदि से, दिव्य वस्त्रों से, उत्कृष्ट वेषभूषा से और सारभूत धर्ममूलक सर्वप्रवृत्तियों से समस्त राजाओं के मध्य में इस प्रकार शोभायमान थे, जैसे कि अति पुण्य बुद्धिवाला देवेन्द्र देवों के मध्य में शोभा पाता है।

उस सिद्धार्थ नरेश की रानी 'प्रियकारिणी' इस उत्तम नामवाली महादेवी थी। जो अपने अनुपम गुण-समूह से जगत की पुण्यकारिणी थी।

(ट) अथ सौधर्मकल्पेशो ज्ञात्वाच्युतसुरेशिनः।
षण्मासावधिशेषायुः प्राहेति धनदं प्रति ॥
श्रीदात्र भारते क्षेत्रे सिद्धार्थनृपमंदिरे।
श्रीवर्धमानतीर्थेशश्चरमोऽवतरिष्यति ॥

—वीरवर्धमानच० अधि० ७ । श्लो ४२, ४३

सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने उक्त अच्युतेन्द्र की छह मास प्रमाण शेष आयु को जानकर कुबेर के प्रति इस प्रकार कहा—हे धनद ! इस भरत क्षेत्र में सिद्धार्थ राजा के राजमंदिर में अंतिम तीर्थंकर श्री वर्धमानस्वामी अवतार लेंगे।

(ठ) पियकारिणी वर-णाह-कुलेसहु।
सिद्धत्थहु कुंडउर-णरेसहु ।।

—वीरजि० संधि ५ । कड १

चेटक की पुत्री व सुभद्रा की अंगजात प्रियकारिणी का विवाह श्रेष्ठ नाथवंशी कुंडपुरनरेश सिद्धार्थ के साथ हुआ।

नोट—श्वेताम्बर मान्यतानुसार प्रियकारिणी चेटक की बहिन थी।

३ माता-पिता का काल-मरणप्राप्त

(क) समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा यावि होत्था। ते णं बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पालइत्ता, छण्हं जीवनिकायाणं संरक्खणनिमित्तं आलोइत्ता निंदित्ता गरहित्ता पडिक्कमित्ता, अहारिहं उत्तरगुणं पायच्छित्तं पडिवज्जित्ता, कुससंथारं दुरुहित्ता भत्तं पच्चक्खाइंति, भत्तं पच्चक्खाइत्ता अपच्छिमाए मारणंतियाए सरीर-संलेहणाए सोसियसरीरा कालमासे कालं किच्चा तं सरीरं विप्पजहित्ता अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववण्णा। तओ णं

आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं चुए चइत्ता महाविदेहवासे चरिमेणं उस्सासेणं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिणिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ।

—आया० श्रु २ । अ १५ । सू २५ । पृ० २३५

श्रमण भगवान् महावीर के माता-पिता पार्श्वापत्यीय अर्थात् पार्श्वनाथ की परम्परा के अनुयायी श्रमणोपासक थे । वे बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन करके, षड्जीवनिकायकी रक्षा के लिए पापकी आलोचना करके, निन्दा करके, गर्हा करके तथा प्रतिक्रमण करके, यथायोग्य प्रायश्चित्त लेकर, दर्भ का बिछौना बिछा कर, भक्त प्रत्याख्यान करके, अंतिम मरणान्तिक की संलेखना से शरीर को कृश करके, मृत्यु के अवसर पर काल करके उस शरीर का त्याग करके अच्युत स्वर्ग मे देवरूप से उत्पन्न हुए । वहाँ से आयु, भव और स्थिति का क्षयकरके—च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र मे सयम लेकर अंतिम उच्छ्वास से सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, निर्वाण प्राप्त करेंगे और समस्त दुःखों का अंत करेंगे ।

(ख) अष्टाविंशे जन्मतोऽब्दे स्वामिनः पितरावथ ।
विहितानशनौ मृत्वा जग्मतुः कल्पमच्युतम् ॥
सिद्धार्थराजत्रिशलाजीवावच्युततश्च्युतौ ।
क्षेत्रेऽपरविदेहाख्ये प्राप्स्यतः पदमव्ययम् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो १५६, १५७

जब भगवान अट्ठाइस वर्ष के थे तब उनके माता-पिता अनशन ग्रहण कर मरण को प्राप्त कर अच्युत कल्प मे उत्पन्न हुए । वहाँ से सिद्धार्थ राजा त्रिशला का जीव च्युत होकर अपर विदेह में जन्म लेकर यावत् सिद्ध-बुद्ध मुक्त होगा ।

(ग) भगवं अट्ठावीसतिवरिसो जातो, एत्थंतरे अम्मापियरा कालगता ।

—आव० चू पूर्वभाग पृ० २४९

माता-पिता के कालगत के समय वर्धमान की अवस्था अट्ठाइस वर्ष की थी ।

'४ वर्धमान (महावीर) के पितृव्य (काका) का नाम

(क) समणस्सणं भगवओ महावीरस्स पित्तियए 'सुपासे' कासवगोत्तेणं ।

—आया० श्रु २ । अ १५ । सु १६ । पृ २३४

—कप्प० सु १०९ । पृ० ३९

(ख) सुपार्श्वो भगवतो वर्द्धमानस्य पितृव्यः ।

- ठाण० स्था० ९ । सु ६० । टीका

श्रमण भगवान महावीर के पितृव्य—काका काश्यप गोत्रीय थे जिनका नाम सुपार्श्व था ।

'५ वर्धमान (महावीर) के ज्येष्ठ भ्राता का नाम

(क) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स जेट्ठे भाया 'णंदिवद्धणे' कासवगोत्ते णं।

—आया० श्रु २। अ १५। सू २०, कप्प० सू १०७। पृ० ३६

(ख) × × ×। × महावीरो भ्रातरं नन्दिवर्धनम्

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग २। श्लो ११३ उत्तरार्ध

श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ भ्राता-नंदिवर्धन काश्यप गोत्रीय थे।

'६ वर्धमान (महावीर) के ज्येष्ठा भगिनी का नाम

समणस्सणं भगवओ महावीरस्स जेट्ठा भइणी 'सुदंसणा' कासवगोत्ते णं।

—आया० श्रु २। अ १५। सू २१

—कप्प० सू १०७। पृ० ३६

श्रमण भगवान् महावीर की ज्येष्ठ बहिन सुदर्शना काश्यप गोत्रीया थी।

'७ वर्धमान (महावीर) की भाभी का नाम

जेट्ठा कुंडग्गामे वद्धमाणसामिणो जेट्ठस्स नंदिवद्धस्स दिण्णा।

—आव० चू० उत्तरभाग पृ० १६४

वर्धमान की भाभी का नाम ज्येष्ठा था।

'८ वर्धमान (महावीर) की पत्नी का नाम

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स भज्जा 'जसोया' कोडिण्णागोत्ते णं।

—आया० श्रु २। अ १५। सू २२। पृ० २३५

—कप्प० सू १०७। पृ० ३६

श्रमण भगवान महावीर की पत्नी—कोडिन्नागोत्रीया थी—यशोदा उसका नाम था।

'९ वर्धमान (महावीर) की पुत्री का नाम

(क) समणस्सणं भगवओ महावीरस्स धूया कासवगोत्ते णं। तीसेणं दो णामधेज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा १—अणोज्जा ति वा २—पियदंसणा ति वा।

—आया श्रु० २। अ० १५। सू २३। पृ० २३५

—कप्प० सू १०८। पृ० ३६

(ख) कालेन गच्छता भर्तुर्यशोदायामजायत।
नामतो रूपतश्चापि दुहिता प्रियदर्शना।
महाकुलो राजपुत्रो महर्द्धिर्नवयौवनः।
जमालिः परिणिनायोद्यौवनां प्रियदर्शनाम्।

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग २। श्लो १५४,१५५

श्रमण भगवान महावीर की पुत्री काश्यपगोत्रीया थी। उसके दो नाम थे। यथा— (१) अनवद्या और (२) प्रियदर्शना। जिसका विवाह राजपुत्र जमाली के साथ हुआ था।

(ग) पंचविहे माणुस्से भोगे भोत्तूण सह जसोदाए।
तेयसिरिं व सरूवं जणइ य पियदंसणं धूयं।

—आव० भाष्य गा० ८०

मलय टीका—पंचविधान्-पंचप्रकारान् मनुष्याणामेते मानुषास्तान् भोगान्-शब्दादीन् भुक्त्वा सह यशोदया भार्यया तेजसः श्रीः तेजः श्रीस्तामिव—तेजःश्रियमिव सुरूपं जनयति प्रियदर्शनां—पियदर्शनाभिधां धूतां—दुहितरम्। पाठान्तरं 'जणिसु पियदंसणं धूयं, तत्र जनितवानित्यर्थः।

यशोदा के साथ मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगते हुए भगवान के एक रूपवान्-बल्लभकारी एक लड़की का जन्म हुआ—जिसका नाम प्रियदर्शना रखा।

·१० वर्धमान (महावीर) की नतिनी का नाम

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स णत्तुई कोसियगोत्तेणं। तीसे णं दो णामधेज्जा एवमाहिज्जंति, तंजहा—१—सेसवती ति वा २—जसवती ति वा।

— आया० श्रु० २। अ १५ सू २४, कप्प० सू १०९। पृ० ११

श्रमण भगवान महावीर की दौहित्री (प्रियदर्शना की पुत्री) कौशिक गोत्र की थी। उसके दो नाम थे (१) शेषवती और (२) यशोमती।

·०६ वर्धमान (महावीर) के प्रमुख साधु-साध्वियों के नाम

·०६·१ प्रमुख साधुओं के नाम

·१ अइमुत्ते कुमार-समणे (अतिमुक्तकुमार-श्रमण)

भग० श ५। उ ४। सू ७८, अंत० व ६। अ १५ सू ६१

(क) भग०—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी अइमुत्ते नाम कुमार-समणे पगइभद्दए जाव विणीए।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के शिष्य अतिमुक्तक नामक कुमार श्रमण थे। वे प्रकृति से भद्र यावत् विनीत थे।

टीकाकारने कहा है कि दीक्षा के समय उनकी अवस्था छह वर्ष की थी।

(ख) अंत०—अइमुत्ते कुमारे × × × बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ गुणरयणं तवोकम्मं जाव विपुले सिद्धे।

बहु वर्ष की श्रमण पर्याय का पालन कर—गुण, रत्न तप कर सिद्ध हुए।

·२ अकंपिए (अकंपित) — सम० सम ११ । सू ४

भगवान् महावीर के आठवें गणधर अकंपित थे।

(क) थेरे णं अकपिए अट्ठसत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जावप्पहीणे।

— सम० सम ७८ । सू २

(ख) देव-जयंतीण सुओ अकंपिओ नाम अट्ठमो जयइ।
अट्ठत्तरिवसाऊ मिहिलाए समुब्भवो भगवं ॥१०॥

—धर्मो० पृष्ठ २२७

अकपित गणधर अट्ठतर वर्ष का सर्वायुष्य पाल कर सिद्ध बुद्धयावत् मुक्त हुए।

(ग) सयाकंपणो। × × ×। —वीरजि० संधि २। कड ७। पृष्ठ १४

दिगम्बर मतानुसार अकम्पन-नवें गणधर थे, जो सदैव तपस्या में लीन रहते थे।

·३ अलक्के (अलक्ष) —अंत० सर्ग ६। अ० १६। सू १०१

तएणं से अलक्के राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए जहा उदायणे तहा निक्खंते, नवरं-जेट्ठपुत्तं रज्जे अभिसिंचइ। एक्कारस अंगाइं। बहूवासा परियाओ जाव विपुले सिद्धे।

धर्म कथा सुनकर राजा अलक्ष के हृदय में वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया। इसके बाद अलक्ष राजा ने भगवान् के पास उदायन राजा के समान दीक्षा अंगीकार कर ली। बहु वर्ष श्रमण पर्याय का पालन कर सिद्ध हुए।

·४ अग्गिभूई (अग्निभूति) —भग० श १। उ १। सू ४, सम० सम ११। सू ४

(क) भग० मूल -तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स दोच्चे अंतेवासी अग्गिभूई नामं अणगारे गोयमे गोत्तेणं सत्तुस्सेहे × × ×।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के दूसरे अंतेवासी अग्निभूति अनगार, जिनका गौतम गोत्र था—सात हस्त ऊंचा शरीर था। ये भगवान् महावीर के द्वितीय गणधर थे।

(ख) थेरेणं अग्गिभूई सत्तालीसं वासाइं अगारमज्झा वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

—सम० सम ४७। सू २

स्थविर अग्निभूति सतालिस वर्ष गृहस्थावास में रहकर आगार से अणगार हुए।

(ग) थेरे णं अग्गिभूई गणहरे चोवत्तरि वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे- जाव्वप्पहीणे। —सम० सम ७४। सु १

पुहइ-वसुभूइ-सुओ गणहारी जयइ अग्गिभूइत्ति।
चउहत्तरिवासाऊ गोव्वरगामुब्भवो बीओ॥

—धर्मो० पृ० २२७

अग्निभूति गणधर ने चउत्तर वर्ष की सर्वायुष्य पाल कर सिद्ध यावत सर्व दुःखों का अंत किया।

(घ) × × × पुणो अग्गिभूई × × ×॥

—वीवजि० सन्धि १, कड ७। पृ० ३४

दिगम्बर मतानुसार अग्निभूति तीसरे गणधर थे।

अज्जुणए अणगारे (अर्जुन अणगार) —अंत० व ६। अ ३। सु ५६

तएणं से अज्जुणए अणगारे तेणं ओरालेणं विपुलेणं × × × छम्मासे सामण्ण-परियागं पाउणइ × × × जाव सिद्धे।

अर्जुन अणगार छह मास श्रमण पर्याय का पालन कर सिद्ध हुए।

·५ अणाहो (अनाथ —अनाथी अणगार) —उत्त० अ २०। गा ९

अणाहो मि महाराय! णाहो मज्झ ण विज्जई।
अणुकंपगं सुहिं वावि, 'कंचि नाभिसमेमऽहं'॥

इन्होंने विपुल वेदना के योग से संवेग की प्राप्ति कर संभवतः युवावस्था में स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली थी। इनका महाराज श्रेणिक के साथ संवाद-प्रतिसंवाद हुआ था —ऐसा वर्णन है। इससे ज्ञात होता है कि वे भगवान् महावीर के समकालीन साधु थे लेकिन इन्होंने किससे दीक्षा ग्रहण की – इसका वर्णन नहीं मिलता है।

·६ अभए अणगारे (अभयकुमार अणगार)

—अणुत्त० व० १। अ १०। सु १५

श्रेणिक राजा का पुत्र, नंदादेवी का अंगजात था। श्रमण भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की।

"× × × अभए नंदाए × × × सामणपरियाओ पंच वासाइं × × × उव-वाओ × × × अभओ विजए।

पंच वर्ष की श्रमण पर्याय का पालन कर विजय नामक अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए।

.७ अयलभाया (अचलभ्राता) —सम० सम ११ । सू ४, धर्मो० पृ० २२७

(क) धर्मो०—अइमइए बलस्स य पुत्तो चालीस वरिसओ जाणो ।
भगवान् महावीर के नववें गणधर अचलभ्राता थे । चालीस वर्ष की अवस्था प्राप्त की ।

(ख) × × × णिच्चलंको × × × । —वीरजि० संधि १ । पृ० १४
दिगम्बर मतानुसार दसवें गणधर अचल थे ।

.८ आणंदे (आनंद) —भग० श १५ । सू ८१

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी आणंदे नामं थेरे पगइभद्दए जाव विणीए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ ।

श्रमण भगवान् महावीर का आणंद नाम स्थविर था, वह बेले बेले की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरता था ।

.९ इंदभूई (इन्द्रभूति) —भग० श ५ । उ १ । सू ३,
—सम० सम ११ । सू ४, ओव० सू ८२

(क) ओव० मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे इंदभूई नामं अणगारे गोयमगोत्तेणं सत्तुस्सेहे × × × ।

श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अतेवासी गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति अनगार थे । उनके शरीर का प्रमाण सातहस्त था । वे भगवान् महावीर के प्रथम गणधर थे ।

(ख) एतेसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं पढमसीसा होत्था, तंजहा—
पढमेत्थ उसभसेणे, बीए पुणहोइ सीहसेणे उ ।
× × × , वरदत्ते दिण्ण इंदभूतीय ॥
उदितोदितकुलवंसा, विसुद्धवंसा गुणेहि उववेया ।
तित्थप्पवत्तयाणं, पढमा सिस्सा जिणवराणं ॥

—सम० पइण्णग । सू २११

इन्द्रभूति श्रमण भगवान् महावीर के प्रथम शिष्य थे ।

(ग) मइँ अप्पउ दिक्खइ भूसियउ ।
मइँ समउ समण-भावहु गयइँ ।
पावइयइँ दियइँ पंचसयइँ ॥

—वीरजि० सन्धि २ । कड १ । पृष्ठ ३२

मैंने (गौतम गणधर) अपने आपको मुनि-दीक्षा से विभूषित किया। मेरे साथ अन्य पाँच सौ द्विज भी प्रव्रज्या लेकर श्रमण बन गये।

(घ) × × × सयंभुइंदभूदीओ। — तिलोप० अधि ४। गा ९११। पूर्वार्ध

महंतो महाणाणवंतो सभूई — वीरजि० सन्धि २। कड ७। पृ० १४

महाज्ञानवान् एवं विभूतियुक्त इन्द्रभूति गौतम भगवान् महावीर के प्रथम गणधर थे।

(च) थेरे णं इंदभूती बाणउइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

—सम० सम ९२। सू २

पुहई—वसुभूई-सुओ गणहारी जयइ इंदभूइत्ति।
बाणउई-वासाऊ गोव्वरगामुब्भवो पढमो॥ ३॥

—धर्मो० पृ० २२७

स्थविर इन्द्रभूति बाणवें वर्ष का सर्वायु पालकर सिद्ध, मुक्त यावत् सर्व दुःखों का अंत किया।

·१० इसिदासे (ऋषिदास)
·११ पेल्लए (पेल्लक)
·१२ रामपुत्ते (रामपुत्र)
·१३ चंदिमा (चंद्रिमा)
·१४ पिट्ठिमा (पिट्ठिमा)
·१५ पेढालपुत्ते (पेढालपुत्र)
·१६ पोट्टिले (पोट्टिल)
·१७ वेहल्ले (वेहल्ल)

—अणुत्त० वर्ग ३। सू २, ७४

१ धण्णे य, २ सुणक्खत्ते, ३ इसिदासे य आहिए।
४ पेल्लए ५ रामपुत्ते च ६ चंदिमा ७ पिट्ठिमाइ य॥१॥
८ पेढालपुत्ते अणगारे, नवमे पोट्टिले वि य।
१० वेहल्ले दसमे वुत्ते, इमे य दस आहिया॥२॥
× × ×।

× × × छम्मासा वेहल्लए। नव धण्णे। सेसाणं बहू वासा। मासं संलेहणा। सव्वट्ठसिद्धे। सव्वे महाविदेहे सिज्झिस्संति।

ऋषिदास यावत् वेहल्ल अनगार ने श्रमण-पर्याय का पालन कर सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपातिक देव हुए।

·१८ इसी मोरि (ऋषि मौर्य)　　—बौद्धजि० सधि २ । कड ७ । पृ० १४

इसी मोरि × × × ।

दिगम्बर मान्यतानुसार पाँचवें गणधर ऋषि मौर्य थे ।

·१६ उदए पेढालपुत्ते (उदकपेढालपुत्र)　　—सूय० श्रु २ । अ ७ । सू ३८

(क) तएणं से उदए पेढालपुत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए चउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

(ख) "उदकनामाऽनगारः पेढालपुत्रः पार्श्वजिनशिष्यः-योऽसौ राजगृहनगर-बाहिरिकाया नालन्दाभिधानायाः उत्तरपूर्वस्यां दिशि हस्तिद्वीपवनखंडे व्यवस्थितः, तदेकदेशस्थ गौतमं संशयविशेषमापृच्छ्य विच्छिन्नसंशयासन् चतुर्यामधर्मं विहाय पंचयामं धर्मं प्रतिपेदेइति ।"

—ठाण० स्था ६ । सू ११ । टीका

भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानीय मेदार्य गोत्रीय उदक पेढालपुत्र नामक निर्ग्रंथ ने कालान्तर मे श्रमण भगवान् महावीर के पास चार महाव्रत रूप धर्म से पच महाव्रत सप्रति क्रमण धर्म को अंगीकार किया ।

·२० वीरंगए (वीराङ्गको)
·२१ वीरजसे (वीरयश)
·२२ संजय (संजय)
·२३ सेये (श्वेत)
·२४ सिव (शिव)
·२५ संख (शंख)
·२६ एणिज्जए (एणेयको)
·२७ उद्दायणे (उदायन)

—ठाण० स्था ८ । सू ४१

(क) समणेणं भगवता महावीरेणं अट्ठरायाणो मुंडे भवेत्ता अगाराओ अण-गारितं पव्वाइया, तंजहा—

वीरंगए वीरजसे, संजय एणिज्जए य रायरिसी ।
सेये सिवे उद्दायणे, तह संखे कासिवद्धणे ॥ १ ॥

टीका × × × एणेयको गोत्रतः, स च केतकार्द्धजनपदश्वेतंवीनगरीराजस्य प्रदेशिनाम्नः श्रमणोपासकस्य निजकः कश्चिद्राजर्षिः × × × ।

(१) वीराङ्गक, (२) वीरयश, (३) सजय (४) एणेयक गोत्र से संबंधित है—केतकार्ध देश की श्वेतांबिका नगरी के राजा प्रदेशी नामक श्रावक का निजक (गोत्रीय) कोई राजर्षि है। (५) श्वेत, (६) शिव, (७) उदायन और (८) शंख राजा—इन आठ राजाओं ने श्रमण भगवान् महावीर से प्रव्रज्या ग्रहण की।

(ख) सवीरराय-वसभो, चेच्चा रज्जं मुणी चरे।
उद्दायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तरं॥
—उत्त० अ १८। गा ४७

(ग) तएणं से उद्दायणे राया सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेः सेसं जहा उसभदत्तस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।
—भग० श १३। उ ६। सू ११६

सौवीर देश के राजाओं मे श्रेष्ठ उदायन राजा ने राज्य वैभव को छोड़कर, दीक्षा ग्रहण की और मुनि होकर सयम का सम्यग् प्रकार से पालन किया जिससे प्रधान गति को (मोक्ष) प्राप्त किया।

(घ) राजर्षि कोऽन्तिमोख्यत् स्वामी नृपमुदायनम्।
—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ११। श्लो ३२५

वीरभगवान् ने अभय कुमार को कहा कि अंतिम राजर्षि उदायन होगा।

ततः केशिनरेन्द्रेण कृतनिष्क्रमणोत्सवः।
अस्मत्पार्श्वे परिव्रज्यामुदायन उपात्तवान्॥ ६२४॥
स तपोभिः षष्ठाटमदशमद्वादशादिभिः।
प्रताहादपि कर्मेव स्वमात्मानमशोषयत्॥ ६२५॥
तृणमिव परिहृत्य राज्यलक्ष्मी श्रामण्यं प्रतिपन्नवान् विशुद्धम।
इत्यभयकुमार! कीर्तितस्ते चरमो राजर्षिह युदायनाख्यः॥
त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ११

भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा के दिन से बेले, तेले, चोले, पचोले आदि की तपस्या करते रहे। राजलक्ष्मी को छोड़कर शुद्धश्रामण्य-पर्याय का पालन करने वाले उदायन अंतिम राजर्षि थे।

·२८ मयालि (मयाली)

·२६ उवयाली (उवयाली)

·३० पुरिससेणे (पुरिससेन)

·३१ वारिसेणे (वारिसेन)

·३२ दीहदंते (दीर्घदंत)

·३३ लट्ठदंते (लट्ठदंत)

·३४ वेहल्ले (वेहल्ल)

·३५ वेहायसे (वेहायश) —अणुत्त० व १ । अ २ मे १

× × × आइल्लाण पंचण्हं सोलस वासाइं सामण्णपरियाओ। तिण्हंबारस वासाइं । दोण्हं पंच वासाइं । × × × ।

मयाली यावत् वारिसेण अनगार ने पाँच वर्ष श्रमण पर्याय का पालन किया । दीर्घदंत लट्ठदंत और वेहल्ल अनगार ने बारह वर्ष श्रमण पर्याय का पालन किया। वेहायश अनगार ने पाँच वर्ष श्रमण पर्याय का पालन किया ।

·३६ कालासवेसियपुत्ते अणगारे (कालस्य वेषिपुत्र अनगार)

—भग० श १ । उ ६ । सू ४३२, ४३३

तएणं से कालासवेसियपुत्ते अणगारे बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ, × × × सिद्धे, बुद्धे जावसव्वदुक्खप्पहीणे ।

पार्श्वापत्य—भगवान् पार्श्वनाथ के सन्तानिय-शिष्यानुशिष्य कालास्यवेषिपुत्र नामक अनगार थे। कालान्तर में कालस्यवेषिपुत्र भगवान् महावीर के स्थविर भगवतों से चार महाव्रत रूप धर्म से प्रतिक्रमण सहित पाँच महाव्रत रूप धर्म को स्वीकार करके विचरने लगे ।

·३७ कालोदाई अणगारे (कालोदाई अनगार)

—भग० श ७ । उ १० । सू २११

तए णं से कालोदाई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

कालोदायी अनगार श्रमण भगवान् महावीर को वंदन नमस्कार करते हैं बहुत चतुर्थ, षष्ठम, अष्टम आदि तपद्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

·३८ कासव (काश्यप) —अंत० वर्ग ६ । अ ४ । सू ६०

कासवे नामं गाहावई परिवसइ। जहा मकाई । सोलस वासा परियाओ। विपुले सिद्धे ।

काश्यप गाथापति ने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ली। सोलह वर्ष श्रमण-पर्याय का पालन किया । अंत में विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ।

·३९ किंकमे (किंकम) — अंत० वर्ग ६ । अ २

किंकमे वि एवं चेव जाव विउले सिद्धे ।

किंकम अनगार सोलह वर्ष की दीक्षा-पर्याय का पालन कर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुए ।

·४० कमारपुत्तिया समणा (कुमारपुत्र श्रमण) —सूय० श्रु० २ । अ ७ । सू १०

× × × अत्थि खलु कम्मारपुत्तिया णाम समणा णिग्गंथा। × × ×।

कुमारपुत्र नाम श्रमण निर्ग्रन्थ ।

·४१ कुरुदत्तपुत्ते (कुरुदत्तपुत्र) —भग० श ३ । उ १ । सू २१

× × ×। एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी कुरुदत्तपुत्ते नामं अणगारे पगतिभद्दए जाव विणीए × × × छम्मासे सामण्णपरियागं पाउणित्ता × × × कालमासे कालं किच्चा × × × ईसाणस्स देविंदस्स देवरण्णो सामणियदेवत्ताए उववण्णे।

श्रमण भगवान् महावीर का कुरुदत्त अनगार छह महिने श्रमण-पर्याय का पालन कर काल के अवसर कालकरके ईशानेन्द्र का सामानिक देव रूप से उत्पन्न हुआ।

·४२ कूलवालक श्रमण —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १२ । श्लो ३११

भगवान् महावीर के समकालीन श्रमण थे। मागधिका वेश्या ने जिन का मन चचल कर दिया था।

गनियं चे मागधियं शमने कुलवालके।

लभिज्ज कूणि एलाए तो वेशालि गहिस्सदि।

देववाणी हुई थी—यदि मागधिका देवी कुल बालक साधु को वश करके मोहित करे तो कुणिक राजा वैशाली नगरी को ग्रहण कर सकता है।

वैशाली के निकट वन में कुल बालक साधु तपस्या करते थे। वहाँ जाकर उक्त वेश्या ने मुनि को चंचल कर दिया।

·४३ केलासे (कैलाश)

·४४ हरिचंदणे (हरिचंदन)

·४५ वारत्तए (वारत्त)

४६ सुदंसणे (सुदर्शन)

४७ पुण्णभद्दे (पूर्णभद्र)

·४८ सुमणभद्दे (सुमनभद्र)

·४९ सुपइट्ठे (सुप्रतिष्ठ)

५० मेहे (मेह)

—अंत० वर्ग ६ । अ० ७ से १४ । सू ६३ से ७०

एवं केलासे वि गाहावई × × × बारस वासाइं परियाओ। × × ×।

एवं हरिचंदणेवि गाहावई साएए नयरे— बारस वासा परियाओ। × × ×।

एवं वारत्तएवि गाहावई × × × बारस वासा परियाओ × × ×।

एवं सुदंसणेवि गाहावई × × × पंच वासा परियाओ × × ×।

एवं पुण्णभद्दे वि गाहावई × × × पंचवासा परियाओ × × ×।

एवं सुमणभद्दे वि गाहावई × × × बहुवासाइं परियाओ × × ×।

एवं सुपइट्ठे वि गाहावई × × × सत्तावीसं वासा परियाओ।

एवं मेहेवि गाहावई × × × बहूइं वासाइं परियाओ।

कैलाश गाथापति ने भगवान् महावीर के पास दीक्षा लेकर बारह वर्ष चारित्र पर्याय का पालन किया।

हरिचंदन गाथापति ने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की और बारह वर्ष श्रमण पर्याय का पालन किया।

वारत्तक गाथापति ने भगवान् महावीर के पास दीक्षा लेकर बारह वर्ष श्रमण-पर्याय का पालन किया।

सुदर्शन गाथापति ने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ली और पाँच वर्ष श्रमण-पर्याय का पालन किया।

पूर्णभद्र गाथापति ने भगवान् के पास दीक्षा ली और पाँच वर्ष श्रमण-पर्याय का पालन किया।

सुमनभद्र गाथापति ने बहुतवर्ष श्रमण-पर्याय का पालन किया।

सुप्रतिष्ठ गाथापति ने सत्ताईस वर्ष श्रमण-पर्याय का पालन किया।

मेह गाथापति ने बहुत वर्ष श्रमण-पर्याय का पालन किया।

·५१ केसीकुमार समणे (केशीकुमार श्रमण) उत्त० अ २३ । गा २, ८६, ८७

तस्स लोगपईवस्स· आसि सीसे महायसे।
केसीकुमारसमणे, विज्जाचरणपारगे॥
एवं तु संसए छिण्णे, केसी घोरपरक्कमे।
अभिवंदित्ता सिरसा, गोयमं तु महायसं॥
पंचमहव्वयधम्मं पडिवज्जइ भावओ।
पुरिमस्स पच्छिमम्मि, मग्गे तत्थ सुहावहे॥

पार्श्वनाथ भगवान् के सतानीय शिष्य केशीकुमार श्रमण ने महायशस्वी गौतम को मस्तक से वंदना करके तिंदुकवन में (श्रावस्ती नगरी में) पाँच महाव्रत रूप धर्म को भावपूर्वक अंगीकार किया।

·५२ खेमए (क्षेमक) —अंत० वर्ग ६ । अ ५ । पृ ६१

एवं खेमएवि × × × सोलस वासा परियाओ। × × ×।

क्षेमकअनगार ने सोलह वर्ष श्रमण-पर्याय का पालन किया।

·५३ गंगेये अणगार (गांगेय अणगार) —भग० श ९ । उ ३२ । सू १३४

× × × तएणं से गंगेये अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता चाउज्जामाओ धम्माओ पंचमहव्वइयं सपडिक्कमणं धम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरति। × × ×।

पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य गांगेय नामक अनगार थे। गांगेय अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन नमस्कार किया। वंदन नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—हे भगवन्! मैं आप के पास चारयाम रूप धर्म से सप्रतिक्रमण पंच महाव्रत रूप धर्म को अंगीकार करना चाहता हूँ। भगवान् ने गांगेय अनगार को प्रव्रज्या दी।

·५४ गागलिः —त्रिशलाका० पर्व ८। सर्ग ९। श्लो १७४

गागलिः प्रतिबुद्धोऽथ राज्ये न्यस्य निजं सुतम्।
दीक्षां गौतमपादान्ते पितृभ्यां सममाददे॥

साल-महासाल ने अपने भाणेज गागली को पृष्ठ चंपा का राज्य दिया था। उसने माता पिता के साथ गौतम के पास दीक्षा ग्रहण की।

·५५ गोसाले मंखलिपुत्ते (गोशालक मंखलिपुत्र) —भग० श १५। सू ५६
—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ८। श्लो ३६८, ३६९

भग०- ×××। तएणं अहं गोयमा! गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं सद्धिं पणियभूमीए छव्वासाइं लाभं अलाभं सुहं दुक्खं सक्कारमसक्कारं पच्चणुब्भवमाणे अणिच्च-जागरियं विहरित्था।

श्रमण भगवान् महावीर का छद्मस्थावस्था का द्वितीय चतुर्मास राजगृह नगर के नालंदा पाड़ा के बाह्य भाग में तंतुवायशाला के एकभाग में था। मंखलिपुत्र गोशालक को इसी चतुर्मास में अपना शिष्य बनाया। भगवान् गौतम को कहते है—हे गौतम! मैं मंखलिपुत्र गोशालक के साथ प्रणीतभूमि में छह वर्ष लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, सत्कार, असत्कार का अनुभव करता हुआ और अनित्यता का चिंतन करता हुआ विचरता रहा।

नोट :—भगवान महावीर के साधनाकाल का एक शिष्य-गोशालक रहा। कालान्तर में उसने सर्वथा प्रकार संघ-विच्छेद कर दिया।

·५६ जमाली अणगार (जमाली अणगार) —भग० श ९। उ ३३। सूत्र २२०

(क) तएणं से जमाली अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ बहुसालाओ चेइयाओ पडि-निक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरइ।

जमाली अनगार भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करके उनके पास से एवं बहुशालक उद्यान से निकलकर पाँच सौ साधुओं के साथ अन्य देशों में विचरने लगे।

कालान्तर में भगवान् महावीर के शासन को छोड़कर वे स्वतन्त्र विचरने लगे।

(ख) जमालिर्देशनां श्रुत्वा पितरावनुमान्य च ।
क्षत्रियाणां पंचशत्या सहितो व्रतमाददे ।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ८ । श्लो ३३

भगवान महावीर की देशना सुनकर, माता-पिता की आज्ञा लेकर पाँच सौ क्षत्रियों के साथ भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की ।

·५७ जाली अणगारे (जाली अनगार)

अणुत्त० व १ । अ १ । सु १०, ११

से णं जाली अणगारे कालगए कहिंगए ? कहिं उववण्णे ?

एवंखलु गोयमा ! × × × विजय विमाणे देवत्ताए उववण्णे ।

जाली अणगार सोलह वर्ष श्रमण पर्याय का पालन कर काल समय में काल कर विजय विमान में उत्पन्न हुए ।

·५८ जिणदास (जिनदास) —विवा० श्रु २ । अ ५ । सु १

सोगंधिया नयरी । ××× अप्पडिहओ राया । सुकण्णा देवी । महचंदे कुमारे तस्स अरहदत्ता भारिया । जिणदासोपुत्तो । × × × । जावसिद्धे ।

महाचन्द्र की स्त्री का नाम अर्हदत्ता था । उसके जिनदास पुत्र था । भगवान् महावीर के पास प्रव्रज्या ग्रहण की —

५९ जिणपालिए (जिनपालित) —नाया० श्रु १ । अ ९ । सु २, ५१

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपानामं नगरी । पुण्णभद्दे चेइए × × × । समणे भगवं महावीरे समोसढे । जिणपालिए । धम्मं सोच्चा पव्वइए ।

उस काल उस समय में चंपा नामक नगरी थी । उस नगरी में श्रमण भगवान् महावीर पधारे । जिनपालित ने भगवान् से दीक्षा ग्रहण की ।

·६० दसणभद्दो मुणी (दशार्णभद्र मुनि) —उत्त० अ १८ । गा ४४

—धर्मो० पृ० ११०

(क) उत्त०—दसण्णरज्जं मुइयं, चइत्ताणं मुणी चरे ।
दसण्णभद्दो णिक्खंतो, सक्खं सक्केण चोइओ ।

साक्षात् शक्रेन्द्र से प्रेरित किया हुआ, दशार्णभद्र राजा उपद्रव रहित एवं समृद्धिशाली, दशार्ण देश का राज्य छोड़कर निकला तथा मुनि होकर तप-संयम का पालन करके मोक्ष प्राप्त किया ।

(ख) धर्मो—दसण्णपुरे नयरे राय - गुण - गणालंकिओ दसण्णभद्दो राया कामिणीयण—पंचसयपरिवारो भोगे भुंजंतो चिट्ठइ।

दर्शाणपुर नगर का राजा दर्शाणभद्र था। उसके पाँचसौ स्त्रियाँ थी। कुछ वर्ष बाद भगवान् महावीर के पास प्रव्रज्या ग्रहण की।

६१ दीहसेणे (दीर्घसेन)
६२ महासेणे (महासेन)
६३ लट्ठदंते (लष्ठदंते)
६४ गूढदंते (गूढदंत)
६५ सुद्धदंते (शुद्धदंत)
६६ हल्ले (हल्ल)
६७ दुमे दुम)
६८ दुमसेणे (दुमसेन)
६९ महादुमसेणे (महादुमसेन)
७० सीहे (सीह)
७१ सीहसेणे (सीहसेन)
७२ महासीहसेणे (महासीहसेन)
७३ पुण्णसेणे (पुण्यसेन)

—अणुत्त० वर्ग २। अ १ से १३

× × × दीहसेणो कुमारो सव्वेव वत्तव्वया जहा जालिस्स जाव अंतं काहिइ।

एवं तेरस वि रायगिहे नयरे। सेणिओ पिआ, धारिणी माया। तेरसण्ह वि सोलस वासा परियाओ। × × ×।

दीर्घसेन यावत् पुण्यसेन अनगार ने सोलह वर्ष की श्रमण-पर्याय का पालन किया।

७४ तीसए अणगारे (तिष्यक अनगारे) —भग० श ३। उ १। सू १७

× × ×। एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासि तीसए नामं अणगारे पगइभद्दए × × × अट्ठ संवच्छराइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता × × × कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे × × × सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सामाणियदेवत्ताए उववण्णे।

तिष्यक अनगार अष्टवर्ष श्रामण्य पर्याय का पालन कर सौधर्म देवलोक में शक्रेन्द्र का सामानिक देव रूप में उत्पन्न हुआ।

·७५ धणवई (धनपति) —विवा० श्रु २ । अ ६ । सू १

कणगपुरं नयरं । ××× पियचंदो राया । ××× वेसमणे कुमारे जुवराया । ××× धणवई जुवरायपुत्ते जाव पुव्वभवो ××× जावसिद्धे ।

कनकपुर नगर का राजा प्रियचन्द्र था । वैश्रवणकुमार युवराज था । उनके धनपति पुत्र था । भगवान् महावीर का वहाँ पदार्पण हुआ । उनसे प्रव्रज्या ग्रहण की ।

·७६ धण्णे अणगारे (धन्य अनगार) अणुत्त० व० ३ । अ १ सू ५५

(क) ××× एवं खलु सेणिया ! इमासि णं इंदभूइपामोक्खाणं चोद्दसण्हं समणसाहस्सीणं धण्णे अणगारे महादुक्करकारए चेव महाणिज्जरतराएचेव ×××।

श्रमण भगवान् महावीर ने श्रेणिक राजा के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—हे श्रेणिक ! इन्द्रभूति आदि चतुर्दश हजार साधुओं में से धन्य अणगार महादुक्कर कार्य करने वाला व महा निर्जरा करने वाला है ।

(ख) इतश्च वैभारगिरौ श्रीवीरः समवासरत् ।
विराञ्चकार तं सद्यो धन्यो धर्मसुहृद्गिरा ॥
दत्तदानः सदारः सोऽप्यारुह्य शिबिकां ततः ।
भवभीतो महावीरचरणौ शरणं ययौ ॥ १ ॥
सदारः सोऽग्रहीद्दीक्षां ततो भगवदन्तिके ।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १० । श्लो १४५ से १४७ पूर्वार्ध

भगवान् महावीर का वैभारगिरि पदार्पण हुआ । वहाँ जाकर धन्य ने भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की ।

·७७ धण्णे सत्थवाहे (धन्य सार्थवाह) —नाया० श्रु १ । अ १८

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नाम नयरे होत्था वण्णओ । तत्थणं धण्णे नामं सत्थवाहे परिवसइ, तस्सणं भद्दा भारिया । ××× ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए समोसढे । तएणं धण्णे सत्थवाहे सपुत्ते धम्मं सोच्चा पव्वइए ।

नाया० श्रु १ । अ १८ । सू, २, ३, ५८, ५६

राजगृहवासी धन्य सार्थवाह भगवान् महावीर के पास धर्मोपदेश सुनकर प्रव्रजित हो गया ।

·७८ धिइहरे (धृतिधर) —अंत० वर्ग ६ । अ ६ । सू ६३

एवं—धिइहरे वि ××× सोलस वासा परियाओ ।

धृतिधर अनगार ने भी सोलह वर्ष श्रमण-पर्याय का पालन किया ।

·७९ णंदिसेणो (नंदिसेन) —धर्मो० पृ० १२७

(क) रायगिहे सेणिय-सुओ णंदिसेणो जाव संवेगो वारिज्जंतो वि अइसय-नाणीहिं देवयाए पव्वईओ। ××××।

राजगृह के श्रेणिक राजा का पुत्र नंदिसेन था। जिन्होंने युवावस्था मे दीक्षा ग्रहण की—दो बार दीक्षा ग्रहण की।

(ख) आलोच्य तद् दुश्चरितं महात्मा।
समं जिनेन्द्रेण स नन्दिषेणः॥
कुर्वन्विहारं निशितं व्रतं च।
प्रपालयन्देव भुवं जगाम॥ ४३६॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ६

नंदिषेण (श्रेणिक राजा के पुत्र) ने भगवान् महावीर के पास दूसरी बार दीक्षा ग्रहण की। संयम का पालन कर देवलोक मे उत्पन्न हुए।

नोट प्रथम दीक्षा के कुछ समय बाद वे वेश्या के चक्र मे फंस गये। पुनः दीक्षा भगवान् महावीर से ही ग्रहण की थी।

·८० नारयपुत्ते (नारदपुत्र) —भग० श ५। उ ८। सू २०१

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी नारयपुत्ते नामं अणगारे पगइ भद्दए जाव विहरति।

श्रमण भगवान् महावीर के अंतेवासी नारद पुत्र नामक अनगार थे।

·८१ णमी (नमि राजा) —उत्त० १८। गा ४५

णमी णमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ॥

लक्ष्मीवल्लभ टीका—विदेहेषु देशेषु भवो वैदेही, विदेह-देशस्वामी नमिनामा नृपो गेहं गृहवासं त्यक्त्वा श्रामण्यं साधुधर्मं पर्युपस्थितः चारित्रयोग्यानुष्ठानं प्रत्युद्यतोऽभूदित्यर्थः, पुनः स मुनिः साक्षाद् ब्राह्मणरूपेण शक्रेण प्रेरितः सन् ज्ञानचर्यायां परीक्षितः सन्नात्मानं नमेइ इति नये स्थापयति, क्रोधादिकषायरहितो भवतीत्यर्थः।

साक्षात ब्राह्मण रूप शक्रेन्द्र से प्रेरित हुए नमि राजा ने अपनी आत्मा को विनीत बनाया तथा घर तथा विदेह देश का राज्य छोड़कर श्रामण्य-साधुधर्म को अंगीकार किया।

·८२ नियंठिपुत्ते (निग्रंथीपुत्र)　　—भग० श ५ । उ ८ । सू २०१

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी नियंठिपुत्ते नामं अणगारे पगइभद्दए जाव विहरति।

श्रमण भगवान् महावीर के अंतेवासी निर्ग्रंथी पुत्र नामक अनगार थे।

·८३ प्रसन्नचंद्र राजर्षि　　— त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ९ । श्लो २२, २३

प्रसन्नचन्द्रो जिनेन्द्रं वन्दितुं पोतनेश्वरः।
समाजगामाश्रोषीश्च देशनां मोहनाशिनीम्॥
स्वामीदेशनया बुद्धो भवोद्विग्नः स भूपतिः।
बालमप्यात्मजं राज्ये निधायव्रतमाददेः॥

पोतनपुर के राजा—प्रसन्नचद्र ने भगवान् के पास प्रवज्या ग्रहण की।

·८४ पउमे अणगारे (पद्म अनगार)　　—निरया० व २ । अ १

तए णं से पउमे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ।

पद्म अणगार—श्रमण भगवान् महावीर के तथा रूप स्थविरों के पास सामायिक आदि एकादश अगों का अध्ययन किया।

·८५ पभासे (पभास)　　— सम० सम० ११ । सू ४, वीरजि० सधि १ । कड ७

वीरजि० × × × पहासो × × ×।

श्रमण भगवान् महावीर के ग्यारहवें गणधर प्रभास थे।

·८६ पिंगलए नियंठे (पिंगल निर्ग्रन्थ)　　—भग० श २ । उ १ सू २२, २३, २५

तएणं समणे भगवं महावीरे × × ×। कयंगला नयरीए जेणेव छत्तपलासए चेइए तेणेव उवागच्छइ। × × × तीसेणं कयंगलाए नयरीए अदूरसामंते सावत्थी नामं नयरी होत्था × × ×।

तत्थ णं सावत्थीए नयरीए पिंगलए नामं नियंठे वेसालियसावए परिवसइ।

श्रावस्ती नगरी में वैशालिक श्रावक अर्थात् भगवान महावीर के वचनों के सुनने में रसिक पिंगल नामक निर्ग्रन्थ था।

·८७ पोट्टिलेणं अणगारेण (पोट्टिल अनगार)　　-ठाण० स्था ९ । सू ६०

टीका—पोट्टिलोऽनगारो × × × महावीर शिष्यो मासिकया संलेखनया सर्वार्थसिद्धोपपन्नः। × × ×।

मासिक सलेखना करके पोट्टिल अनगार सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न हुए।

·८८ भद्दनंदी कुमारे (भद्रनंदी कुमार) - विवा० श्रु २। अ ८। सू १

सुघोसं णगरं। ××× अज्जुणो राया। तत्तवतीदेवी। भद्दनंदी कुमारे ××× जाव सिद्धे।

सुघोष नगर का राजा अर्जुन था। उसके तत्तवती नामक देवी थी। उसके भद्रनंदी कुमार था। भगवान् महावीर के पास भद्रनंदी ने प्रव्रज्या ग्रहण की।

·८६ भद्दनंदी कुमारे (भद्रनंदी कुमार) —विवा० श्रु २। अ २। सू १

××× भद्दनंदी कुमारे। सिरिदेवीपामोक्खा णं पंचसया। सामीसमोसरणं। सावगधम्मं। ××× सेसं जहा सुबाहुस्स ×××।

धनावाह राजा की पत्नी का नाम सरस्वती देवी था। उसके भद्रनंदी कुमार नामक एक पुत्र था। उसने भगवान महावीर के पास श्रावक धर्म स्वीकार किया। कालान्तर मे उसने प्रव्रज्या ग्रहण की।

६० मंडिअपुत्ते (मंडितपुत्र) भग० श ३। उ ३। सू १३४

—सम० सम ११। सू ४

(क) भग०—तेण कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी मंडिअपुत्ते नामं अणगारे ×× ×।

श्रमण भगवान् महावीर के छट्ठे गणधर मंडितपुत्र अनगार थे।

(ख थेरेणं मंडियपुत्ते तीसं वासाइं सामण्णपरियायं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

—सम० सम ३०। सू २

स्थविर मंडित पुत्र तीस वर्ष श्रमण पर्याय का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त यावत् सर्व दुःखों का अंत किया।

(ग) थेरे णं मंडियपुत्ते तेसीइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे, बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

—सम० सम ८३। सू ३

स्थविर मंडितपुत्र तिरासी वर्ष का सर्वायुष्य का पालन कर सिद्ध, बुद्ध यावत् सर्व दुःखों अंत किया।

(घ) × ×× मुंडी ×××

—वीरजि० संधि २। कड ७। पृष्ठ ३४

दिगम्बर मतानुसार छट्ठे गणधर मुण्डि (मौर्य) थे।

६१ मकाई (मंकाई) अंत० वर्ग ६ । अ २

तएणं से मकाई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ । × × × ।

श्रमण भगवान महावीर का मकाई अणगार था । उन्होंने ग्यारह अंग का अध्ययन किया ।

·६२ महच्चंद (महाचंद्र) —विवा० श्रु २ । अ० ६ । सू १

चंपा नगरी × × दत्ते राया । रत्तवती देवी । महचंदे कुमारे जुवराया । × × × जाव सिद्धे ।

चंपानगरी के दत्त राजा के रक्तवती देवी थी । उसके महाचंद्र कुमार था जो युवराज था । उसने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की ।

·६३ महब्बल (महाबल) -- विवा० श्रु २ । अ ७ । सू १

महापुरं नगरं × × × बले राजा । सुभद्दा देवी । महब्बले कुमारे × × × तित्थयरागमणं जाव पुव्वभवो × × × जावसिद्धे ।

महापुर नगर का राजा—बल था । उनके सुभद्रा नामकी एक पत्नी थी । उसके महाबल कुमार था । श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ । उनके पास प्रव्रज्या ग्रहण की ।

·६४ मित्तेय णामो (मैत्रेय णाम) —वीरजि० संधि २ । कड ७ । पृ० ३४

सया सोहमाणो तवेणं खगामो ।
पवित्तो सचित्तेण मित्तेय णामो ॥

दिगम्बर मतानुसार आठवें गणधर मैत्रेय थे ।

६५ मेतज्जे (मेतार्य) —सम० सम ११

भगवान् महावीर के दसवें गनधर मेतार्य थे ।

यातेषु गौतमसुधर्म मुनीन्द्र वर्जं ।
मोक्षाश्रियं गणधरेषु नवस्वथोच्चै ।

— त्रिशला का० पर्व १० । सर्ग १२ । श्लो ४०

भगवान् महावीर की विद्यमानता मे ही नवगणधरों का—गौतम और सुधर्म को छोड़कर परिनिर्वाण हो चुका था । अतः मेतार्य गणधर का भगवान् महावीर की विद्यमानता मे परिनिर्वाण हो गया था ।

६६ मेहअणगारे (मेघ अनगार) —नाया० श्रु १ । अ १ । सू १६८

(क) तएण से मेहे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

मेघ अणगार—श्रमण भगवान् महावीर द्वारा अनुमति पाये हुए एक मास की भिक्षु प्रतिमा अंगीकार करके विचरने लगे ।

(ख) इति स्वामिनिदा मेघकुमारोऽभूद् व्रते स्थिरः ।
चक्रे मिथ्यादुष्कृतं च तेपे विविधं तपः ॥
पालयित्वा व्रतं सम्यग्मृत्वाऽभूद्विजये सुरः ।
—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ६ । श्लो ४०६ । ४०७

भगवान् महावीर के उपदेश से चचल चित्तको मेघकुमार ने स्थिर किया । मिथ्या दुष्कृत किया । सयम का पालन कर विजय विमान मे उत्पन्न हुए ।

९७ मोरियपुत्ते (मौर्यपुत्र) —सम० सम ११ । सू ४, सम० सम ६५ । सू २

भगवान् महावीर के सातवें गणधर थे ।

(क) थेरेणं मोरियपुत्ते पणसट्ठिवासाइ अगारमज्झा वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

स्थविर मौर्यपुत्र पैंसठ वर्ष गृहस्थावास मे वासकर आगार से अनगार हुए ।

(ख) थेरेणं मोरियपुत्ते पंचाणउइवासाइ सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे ।
—सम० सम ९५ । सू ५

मौर्यपुत्र ने पचानवें वर्ष की सर्वायु का पालनकर सिद्ध-बुद्ध यावत् सर्वदुःखों का अंत किया । आप श्रमण भगवान् महावीर के सातवें गणधर थे ।

९८ रोहे अणगारे (रोह अनगार) भग० श १ । उ ६ । सू २८८ से २९०

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी रोहे णामं अणगारे पगइभद्दए पगइउवसंते पगइपयणुकोहमाणमायालोभे मिउमद्दवसंपन्ने अल्लीणे विणीए समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणंभावेमाणे विहरइ ।

ततेणं से रोहे अणगारे जायसड्ढे जावपज्जुवासमाणे एवं वदासी—

पुव्विं भंते ! लोए, पच्छा अलोए ? पुव्विं अलोए, पच्छा लोए ?

रोहा ! लोए य अलोए य पुव्विं पेते, पच्छा पेते दो वेते सासया भावा, अण्णाणुपुव्वी एसा रोहा ।

श्रमण भगवान् महावीर के शिष्य रोह नामक अनगार थे । वे स्वभाव से भद्र, स्वभाव से कोमल थे । सयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर के पास विचरते थे । रोह अनगार ने भगवान् से पूछा—

हे भगवन् ! क्या पहले लोक है और पीछे अलोक है ? या पहले अलोक है और पीछे लोक है ?

प्रत्युत्तर मे भगवान् ने कहा—

हे रोह ! लोक और अलोक पहले भी है और पीछे भी है । ये दोनों ही शाश्वत भाव है । हे रोह ! इन दोनों मे 'यह पहला और यह पीछला' ऐसा क्रम नही है ।

'९९ रोहिणेय —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ११

इतश्च राजगृहस्य वैभारगिरि कन्दरे ।
चोरो लोहखुराख्योऽभूद्रौद्रोरसइवांगवान् ॥ २ ॥
मर्यायां रोहिणीनाम्न्या रौहिणेयोऽभिधानतः ॥ ६ ॥
अथ श्रणिकराज्ञेन कृतनिष्क्रमणोत्सवः ।
सजग्राह परिव्रज्यां पार्श्वे श्री वीरपादयोः ॥ १०७ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ११ । श्लो २, ६ १०७

राजगृह नगर के पास वैभारगिरि मे लोहखुर नामक एक चोर रहता था । उसकी स्त्री का नाम रोहिणी था । उसके रौहिणेय नामक एक पुत्र था । रौहिणेय भी एक नामी चोर हुआ । भगवान् महावीर की वाणी का उस पर प्रभाव पडा फलस्वरूप उनके पास प्रव्रज्या ग्रहण की । चतुर्थ भक्त से आरंभ कर छ: मासी तप किया । शुभ ध्यान मे कालकर देवत्व प्राप्त किया ।

'१०० वरदत्ते (वरदत्त कुमार) —विवा० श्रु २ । अ १० । पृ १

××× वरदत्ते कुमारे ××× तित्थयरागमण । सावगधम्म । ××× जाव पवज्जा ××× ।

साकेत नगर के मित्रनदी राजा के श्रीकांता नामक देवी थी । उसके वरदत्त कुमार था । भगवान् महावीर से श्रावक धर्म स्वीकार किया तथा कालान्तर मे उनके पास प्रव्रज्या ग्रहण की ।

'१०१ वायुभूई (वायुभूति) —भग० श ३ । उ १ सू २०

मूल —भंतेत्ति ! भगवं तच्चे गोयमे वायुभूई अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ ××× ।

तृतीय गौतम गणधर भगवान् वायुभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदन नमस्कार किया ।

××× गणि वाउभूई ××× —वीरजि० सधि २ । कड ७ । पृ १४

दिगम्बर परम्परानुसार भगवान् महावीर के द्वितीय गणधर वायुभूति थे ।

पुहई - वसुभूइ - सुओ गणहारी जयइ वाउभूइत्ति
इह सत्तरिवासाऊ गोव्वरगामुब्भवो तइओ।

—धर्मो० पृ० २२७

गणधर वायुभूति सत्तर वर्ष की सर्वायु का पालन कर सिद्ध-बुद्ध यावत् सर्व दुःखका अंत किया।

१०२ विअत्ते (व्यक्त) —सम० सम ११। सू ४

मूल—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स एक्कारस गणहरा होत्था, तंजहा—इंदभूती अग्गिभूती वायुभूती विअत्ते सुहम्मे मंडिए मोरियपुत्ते अकंपिए अयलभाया मेतज्जे पभासे।

श्रमण भगवान् महावीर के चतुर्थ गणधर व्यक्त थे।

कोल्लाग-सन्निवेसे उप्पण्णो जयइ गणहर-चउत्थो
धारिणि-धणमित्त-सुओ असीइ - वरिसाउओ वुत्तो।

—धर्मो० पृ० २२७

गणधर व्यक्त अस्सी वर्ष का सर्वायु पालकर सिद्ध हुए।

१०३ समुद्दपालो अणगार (समुद्रपाल अनगार) —उत्त० अ २१। गा ९-१०

तं पासिऊण संविग्गो, समुद्दपालो इणमब्बवी।
अहोऽसुभाण कम्माणं, णिज्जाणं पावगं इमं॥
संबुद्धो सो तहिं भगवं, परं संवेगमागओ।
आपुच्छऽम्मापियरो· पव्वए अणगारियं॥

फाँसी पर ले जाते हुए अपराधी को देखकर समुद्रपाल संवेग को प्राप्त होकर, इस प्रकार कहने लगा कि, अहो! अशुभ कर्मों का अंतिम फल पाप रूप ही होता है—जैसा कि यह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। प्रासाद के गवाक्ष में स्थित ऐश्वर्य संपन्न वह समुद्रपाल को बोध प्राप्त हुआ और परम संवेग को प्राप्त हुआ। इसके बाद अपने माता-पिता को पूछ कर उसने अनगार वृत्ति अंगीकार कर ली।

१०४ सव्वाणुभूती अणगारे (सर्वानुभूति अनगार) —भग० श १५। सू १०४

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी पाईण-जाणवए सव्वाणुभूती नामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए धम्मायरियाणुरागेणं एयमट्ठं असद्दहमाणे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ।

उस काल उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पूर्व देश मे उत्पन्न सर्वानुभूति अनगार था —जो प्रकृति का भद्रिक तथा विनीत था।

·१०५ सामहत्थी अणगारे (श्यामहस्ती अनगार) —भग० श० १० । उ ४ । सू ४४

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी सामहत्थी नामं अणगारे पगइभद्दए × × × संजमेणंतवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

उस काल उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर के शिष्य 'श्यामहस्ती' अनगार थे।

·१०६ साल राजा

·१०७ महासाल युवराज —त्रिशलाका० पर्व० १० । सर्ग ९ । श्लो १९७ से १९९

सालो राजा महासालो युवराजश्च बान्धवौ।
त्रिजगद्बान्धवं वीरं तत्र वन्दितुमेयतुः॥
श्रुत्वा तौ देशनां बुद्धौ जामेयं गागलिं स्वयम्।
यशोमतीपिठरयोः सुतं राज्येऽभ्यषिञ्चताम्।
अथ सालमहासालौ विरक्तो भववासतः।
श्रीमहावीरपादाब्जमूले जगृहतुर्व्रतम्॥

पृष्ठ चपा के राजा साल; युवराज महासाल दोनों भाई थे। भगवान् की देशना सुनकर प्रतिबोध प्राप्त किया। दोनों ने भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की। यशोमती और पिठर के पुत्र गागली (भाणेज था) को राज्य भार सौंपा।

१०८ सिरिसालिभद्द-वरमुणिणो (श्री शालिभद्रवरमुनि) — धर्मो० पृ० १००
— त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १० । श्लो १४७

धर्मो० × × × तक्कालाणुरूव - निव्वत्तियासेसकायव्वो महाविच्छड्डेणं पव्वइओ तित्थयर-समीवे सालिभद्दो सह बत्तीसाए वहूहिंसेस-लोगेणय। ×××। तं चिय दूहिं पारिऊण कय पादवोवगमणं पंच नमोक्कार-परो उप्पन्नो सव्वट्ठविमाणम्मि। ××× सिरिसालिभद्दवरमुणिणो।

भगवान् महावीर के पास शालिभद्र ने बत्तीस स्त्रियों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की। पादोपगमन संथारा ग्रहण कर सर्वार्थसिद्धि अनुत्तर विमान मे उत्पन्न हुए।

·१०९ सीहे अणगार (सिंह अनगार) —भग० श १५ । सू १४७

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी सीहे नामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए मालुयाकच्छगस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढंबाहाओ जाव विहरइ।

श्रमण भगवान् महावीर के अंतेवासी 'सिंह' नाम के अनगार थे। वे प्रकृति से भद्र और विनीत थे। वे मालुकाकच्छ के निकट निरंतर बेले-बेले के तप से दोनों हाथों को ऊपर उठाकर आतापना लेते थे। उस समय भगवान् की अवस्था लगभग छप्पन वर्ष की थी।

·११० सुओ (सुत)—

××× सुओ ×××

—वीरजि० संधि २ । कड ७ । पृ० ३४

दिगम्बर मतानुसार सातवें गणधर सुत (पुत्र) थे।

·१११ सुजाए कुमारे (सुजात कुमार) 		विवा० श्रु २ । अ ३ । सु १

वीरपुरं नयरं। मणोरमं उज्जाणं। वीरकण्हमित्ते राया। सिरी देवी। सुजाए कुमारे ××× सामी समोसरणं।

वीरपुर नगर के वीरकृष्ण मित्र राजा के श्रीदेवी थी। उसके सुजात कुमार था। भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। गृहस्थ से अनगार बने।

·११२ सुणक्खत्ते अणगारे (सुनक्षत्र अनगार)

—अणुत्त० व ३ । अ २ । सु ११

तएणं से सुणक्खत्ते जं चेव दिवसं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे (भवित्ता अगाराओ अणगारियं) पव्वइए तं चेव दिवसं अभिग्गहं तहेव ×××।

सुनक्षत्र—श्रमण भगवान् महावीर से जिस दिन आगार से अनगार हुए उस दिन से अभिग्रह ग्रहण किया।

·११३ सुनक्खत्ते अणगारे (सुनक्षत्र अनगार) 		— भग० श १५ । सु १०१

तएणं से सुनक्खत्ते अणगारे गोसालेणं मखलिपुत्तेणं तवेणं तेएणं परिताविए समाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ। ×××।

मंखलिपुत्र गोशालक के तप तेज से जले हुए सुनक्षत्र अणगार श्रमण भगवान् महावीर के निकट आए।

·११४ सुबाहू अणगारे (सुबाहु अनगार) 		—विवा० श्रु २ । अ १ । सु ११

तएणं से सुबाहू अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स थेराणं अंतिए समाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ ×××। कालमासे कालंकिच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववण्णे।

सुबाहु अनगार श्रमण भगवान् महावीर के तथारूप स्थविरो के पास सामायिकादि एकादश अंगों का अध्ययन किया। काल मासमे काल करके सौधर्म देवलोक मे देव रूप मे उत्पन्न हुए।

अनगार होने के पूर्व श्रावकत्व धर्म का भी परिपालन किया था।

·११५ सुवासवे कुमारे (सुवासव कुमार) —विवा० श्रु २ । अ ४ । सू १

विजयपुरं णगरं × × × × वासवदत्ते राया। कण्हादेवी। सुवासवे कुमारे × × ×। इह जाव सिद्धे।

विजयपुर नगर का वासवदत्त राजा था। उसकी पत्नी का नाम कृष्णदेवी था। उसके सुवासवकुमार था। यावत् भगवान् महावीर से प्रव्रज्या ग्रहण की।

·११६ सुहम्मे (सुधर्म) —सम० सम १०० । सू ५

—नाया० श्रु १ । अ १ । सू ४, धर्मो० पृ० । २२७

श्रमण भगवान् महावीर के पंचम गणधर थे।

(क) सम०—थेरे णं अज्जसुहम्मे एक्कं वाससयं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

(ख) धर्मो०—भद्दिल-धम्मिल तणओ गणहारी जयइ पंचम-सुहम्मो।
कोल्लाग सन्निवेसे उप्पण्णो वरिस-सय-जीओ।

स्थविर आर्य सुधर्म एक सौ वर्ष का सर्वायुष्य पालन कर सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त हुए। सुधर्म पाँचवें गणधर थे।

सुधम्मो मुणिंदो कुलायास-चंदो।

—वीरजि० संधि । २ । कड ७ । पृ० ३४

दिगम्बर मतानुसार चौथे गणधर सुधर्म मुनीन्द्र थे।

·११७, ११८ हल्ल-विहल्ल कुमार —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १२, श्लो ३११ । पूर्वार्ध

तदा च प्रव्रजितयोरपि हल्लविहल्लयोः।

हल्ल-विहल्लकुमार श्रेणिक राजा के पुत्र थे भगवान् महावीर से प्रव्रज्या ग्रहण की।

·११९ आर्द्रक मुनि —सूय० श्रु २ । अ ६

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ७ । श्लो २६०, २६१, ३५६

अनार्य देश मे उत्पन्न आर्द्रक मुनि आर्य देश म आकर स्वय दीक्षा ग्रहण की।

त्रिशलाका०—अथाऽऽर्द्रककुमारोऽपि स्वमूरीकृत्य पौरुषम्।

दैवीं वाचमनादृत्य प्रव्रज्यां स्वयमाददे ॥ २६० ॥

प्रत्येकबुद्धः स मुनिर्निशितं पालयन् व्रतम्।

विहरन्नन्दा प्राप वसन्त पुरपत्तनम् ॥ २६१ ॥

आर्द्रक कुमार स्वय दीक्षा ग्रहण की। आर्द्रकमुनि प्रत्येक बुद्ध होकर व्रत पालन करने लगे। बीच मे एक बार व्रत से भ्रष्ट होकर पुन दीक्षा ली।

तदापुरे राजगृहेऽभ्युपेतं
श्रीवीरनाथं स मुनिर्ववन्दे
तत्पादपद्मद्वयसेवया स्वयं
कृतार्थयित्वा च शिवप्रपेदे ॥ ३५६ ॥

राजगृह मे भगवान् महावीर के समवसरण मे आये ; वदना की, अत मे मोक्ष पद प्राप्त किया।

१२० उसभदत्त (ऋषभदत्त) —भग० श ६ । उ ३३ । सू १३७, १५१

तत्थणं माहणकुंडग्गामे णयरे उसभदत्ते णामं माहणे परिवसइ। ××× समणोवासए। ×××। तएणं समणे भगवं महावीरे उसभदत्त माहणं सयमेव पव्वावेइ ×××।

माहण कुडग्राम मे ऋषभदत्त माहण रहता था। वह श्रमणोपासक था। कालान्तर में भगवान् से दीक्षा भी ग्रहण की थी।

·१२१ से ·१२३ करकंडू-दुमुख-नगइ राजा

करकंडू कलिंगेसु, पंचालेसु य दुम्महो।
णमी राया विदेहेसु, गंधारेसु य णग्गई ॥
एए णरिंदवसभा, णिक्खंता जिणसासणे।
पुत्ते रज्जे ठवित्ताणं, सामण्णे पज्जुवट्ठिया ॥

—उत्त० अ १८ । गा ४६, ४७

कलिंग देश मे करकडूराजा और पञ्चाल देश मे दुर्मुख राजा, विदेह देश मे नमि राजा और गधार देश मे नगई राजा हुए। राजाओं मे वृषभ के समान श्रेष्ठ ये सभी राजा अपना राज्य पुत्रों को सौंपकर जिन शासन मे दीक्षित हुए और श्रमण वृत्ति का सम्यक् पालन कर मोक्ष को प्राप्त हुए।

प्रत्येक बुद्धाश्चत्वार, समकालसुरलोकच्यवनप्रत्येकप्रतिबोधप्रव्रज्याग्रहण-

केवलज्ञानोत्पत्तिसिद्धिगमनभाजो जाताः, तेषु प्रथमः करकंडूः १, द्वितीयो द्विमुखः २, तृतीयो नमिराजा ३, चतुर्थो नगातिः ४, × × × ।

— उत्त० अ ९ । गा १ । टीका

प्रत्येक बुद्ध चार राजा हुए—जिनका एक काल में सुरलोक से च्यवन, प्रत्येक प्रतिबोध प्रव्रज्या ग्रहण, केवलज्ञानोत्पत्ति तथा सिद्धिगमन को प्राप्त किया। उनमें प्रथम करकंडू, द्वितीय द्विमुख, तृतीय नमिराजा तथा चतुर्थ नगाति ४।

·६·२ प्रमुख साध्वियों के नाम

·१ अंगारवती —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ८ श्लो २३३-२३४

सहागृह्णन्मृगावत्या प्रव्रज्यां स्वामिसन्निधौ ।
अष्टावंगारवत्याद्याः प्रद्योतनृपतेः प्रियाः ॥२३३॥
मृगावत्याद्याः प्रभुणाऽप्यनुशिष्य समर्पिताः ।
चन्दनायास्तदुपास्त्या सामाचारीं च जज्ञिरे ॥२३४॥

उज्जयिनी के चंडप्रद्योत राजा की अंगारवती आदि आठ स्त्रियों ने मृगावती के साथ भगवान् के पास दीक्षा अंगीकार की। भगवान् ने उन्हें चंदना आर्या को सौंप दिया।

·२ आभीरी कुमारी —त्रिशलाका० पर्व १० सर्ग ७ । श्लो १७५-१७६

श्रेणिक राजाकी धर्मपत्नी थी।

राजाऽपि स्वामिनाऽऽख्यातं तस्याः पूर्वभवादिकम् ।
पृष्ठारोहणपर्यन्तं वृत्तान्त तपचीकथत् ॥
तच्छ्रुत्वा द्राग्विरक्ता साऽनुज्ञाप्य पतिमादरात् ।
श्री महावीरपादान्ते परिव्रज्यामुपाददे ॥

आभीरी कुमारी ने भगवान् के पास प्रव्रज्या ग्रहण की।

·३ चंदणऽज्जा (आर्य चंदना)

(क) एएसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं पढमसिस्सिणीओ होत्था, तंजहा—

बंभी फग्गू सम्मा, अतिराणी कासवी रई सोमा ।
× × ×, चंदणऽज्जा य आहिया ॥
उदितोदितकुलवंसा, विसुद्धवंसा गुणेहि उववेया ।
तित्थप्पवत्तयाणं, पढमासिस्सी जिणवराणं ।

—सम० पइसम । सु २३३

(ख) (चंदणा) एसा पढमसिस्सिणी × × × ।

—आव० निगा ५१८ । मलय टीका

(ग) आर्यिकाश्चंदनाद्याः षट्त्रिंशत्सहस्रसंमिताः ।
नमंति तत्पदाब्जौ सत्तपोमूलगुणान्विताः ।

—वीरवर्धच० अधि १९ । श्लो २११

(घ) × × × चंदणणामाओ उसहपहुदीणं
एदा पढमगणीओ एक्केक्का सव्वविरदीओ ।

—तिलोप० अधि ४ । गा ११८०

(च) साध्वीनां संयमोद्योगघटनार्थं तदैव च ।
प्रवर्तिनीपदे स्वामी स्थापयामास चन्दनाम् ॥१८१॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ५

भगवान् महावीर के चन्दना नामक आर्यिका मुख्य थी । प्रथम शिष्या थी । भगवान् ने प्रवर्तिनी पद पर स्थापित किया ।

'४ कण्हा अज्जा (कृष्णा आर्या)
'५ सुकण्हा अज्जा (सुकृष्णा आर्या)
'६ महाकण्हा अज्जा (महाकृष्णा आर्या)
'७ वीरकण्हा अज्जा (वीरकृष्णा आर्या)
'८ रामकण्हा अज्जा (रामकृष्णा आर्या)
'९ पिउसेणकण्हा अज्जा (पितृसेनकृष्णा आर्या)
'१० महासेणकण्हा अज्जा (महासेनकृष्णा आर्या)

—अंत० वर्ग ८ । अ ४ से १०

कृष्णा आर्या यावत् महासेन कृष्णाआर्या श्रमण भगवान् महावीर की आर्या—साध्वियां थी ।

'११ काली अज्जा (काली आर्या-साध्वी)

—अंत० व० ८ । अ १ । सू ८

तएणं सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तव उवसंपज्जित्ता णं विहरइ ।

आर्या चन्दनबाला की आज्ञा लेकर काली आर्या, रत्नावली तप करने लगी ।

·१२ देवाणंद (देवानंदा)

—भग० श ९ । उ ३३ । सू १५४

– अंत० वर्ग ८ । अ १ । सू ८

भग० —तएणं सा अज्जचंदणा अज्जा देवाणंदं माहणिं सयमेव मुंडावेति, सयमेव सेहावेति । × × × ।

श्रमण भगवान् महावीरने देवानंदा को स्वयमेव दीक्षा दी। दीक्षा देकर चंदना आर्या को शिष्या रूप में दिया। इसके पश्चात् आर्य चन्दनाने आर्य देवानन्दा को स्वयमेव प्रव्रजित किया, स्वयमेव मुंडित किया, स्वयमेव शिक्षा दी।

देवानन्दा चन्दनायै स्थविरेभ्यस्त्वथर्षभम्।
स्वामी समर्पयामास तौ चाऽपातां परव्रतम्।
अधीतैकादशांगौ तौ नानाविध तपः परौ।
अवाप्य केवलज्ञान मृत्वा शिवमुपेयतुः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ८ । श्लो २६, २७

भगवान् ने दीक्षा देकर देवानंदा को चंदना आर्या को सौंपा। एकादशांगी का अध्ययन किया। विविध प्रकार का तप किया; केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष पधारीं।

·१३ नंदा (नंदा)
·१४· नंदवई (नंदवती)
·१५ नंदुत्तर (नन्दोत्तरा)
·१६ नंदिसेणिया (नन्दश्रेणिका)
·१७ मरुता (मरुता)
·१८ सुमरुत्ता (सुमरुत्ता)
·१९ महमरुता (महामरुता)
२० मरुदेवा (मरुदेवा)
·२१ भद्दा (भद्रा)
·२२ सुभद्दा (सुभद्रा)
·२३ सुजाया (सुजाता)
·२४ सुमणाइया (सुमनातिया
·२५ भूयदिण्णा (भूतदत्ता)

—अंत० व ७ । अ १ से १३

१ नंदा तह २ नंदवई, ३ नंदुत्तर, ४ नंदिसेणियाचेव।

५ मरुता, ६ सुमरुता, ७ महमरुता, ८ मरुदेवाय अट्ठमा ॥ १ ॥

९ भद्दा य, १० सुभद्दा य, ११ सुजाया, १२ सुमणाइया।

१३ भूयदिण्णा य बोधव्वा, सेणियभज्जाण नामाइं ॥ २ ॥

(क) × × × तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। से णिए राया—वण्णओ ॥४॥

तस्स णं सेणियस्स रण्णो नंदा नाम देवी होत्था —वण्णओ। सामी समोसढे। परिसा निग्गया ॥५॥

तए णं सा नंदा देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा हट्ठतुट्ठा कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता जाण दुरुहइ, जहा पउमावई जाव एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता वीसं वासाइं परियाओ जावसिद्धा ॥ ६ ॥

एवं तेरसवि देवीओ नंदागमेण नेयव्वाओ ॥ ७ ॥

नंदा, नन्दवती, नन्दोत्तरा नदश्रेणिका, मरुता, सुमरुता, महामरुता, मरुद्देवा, भद्रा, सुभद्रा, सुजाता, सुमनातिका और भूतदत्ता।

ये तेरह नाम श्रेणिक राजा की रानियों के हैं—महाराज श्रेणिक की आज्ञा लेकर उन्होंने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण कर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया तथा बीस वर्ष श्रमण पर्याय का पालन कर अंत मे सिद्ध हुई।

(ख) तदाऽभयोव्रतायानुजज्ञे राज्ञा प्रमोदतः ॥१०२॥

× × ×

श्रीमहावीरपादान्ते नन्दाऽपि व्रतमग्रहीत् ॥१०४॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग १२। श्लो १०२ उत्तरार्ध, १०४ उत्तरार्ध

अभय कुमार ने दीक्षा ली है—ऐसा सोच-समझकर नंदा ने भी भगवान् महावीर के पास आकर प्रव्रज्या ग्रहण की।

·२६ प्रियदर्शना —त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग। ८। श्लो ३४

जमालिभार्या भगवद्दुहिता प्रियदर्शना।

सहिता स्त्रीसहस्त्रेण प्राव्राजीत् स्वामिनोऽन्तिके।

जमाली की स्त्री व भगवान् की पुत्री-प्रियदर्शना ने एक हजार स्त्रियों के साथ भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की।

·२७ महाकाली अज्जा (महाकाली आर्या) —अंत० व ८ । अ ३ । सू २१

महाकाली (अज्जा) वि, नवरं खुड्डागं सीहणिक्कीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

महाकाली आर्याने लघुसिंहनिक्रीडित तप कर्म किया ।

·२८ मियावई (मृगादेवी)— —आव० नि गा ५१८ टीका
—भग० श० १२ । उ २ । सू ३०

(क) आव०— × × × तत्थ सयाणितो राया मियादेवी ।

शतानिक राजाकी रानी का नाम मृगावती था । कालान्तर मे भगवान् के शासन मे दीक्षित हुई ।

(ख) सहागृह्णमृगावत्या प्रव्रज्यां स्वामिसन्निधौ ।
—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ८ । श्लो २१३ पूर्वार्ध

मृगावती (कोशाम्बी के राजा शतानिक की मृत्यु के बाद) ने भगवान् महावीर से प्रव्रज्या ग्रहण की ।

(ग) × × × महावीरसमवसरणे सविमानागतचंद्रादित्योद्योतेन काल विभागमजानती मृगावतीनाम्नी साध्वी स्थिता ततस्तद्गमनेऽतिकालोऽयमिति संभ्रान्ता सह साध्वीभिरार्यचंदना समीपंगता तया चोपालब्धा अयुक्तमिदं भवादृशीनामुत्तमकुलजानानामिति । × × × ।
—ठाण० स्था ४ । उ ३ । सू ४६६ । टीका

(घ) चन्द्रार्कयोर्गतवतोर्ज्ञात्वा रात्रिं मृगावती ।
प्रतिश्रयमुपेयाय चकिता काललंघनात् ।
—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ८ । श्लो ३४२

एकबार भगवान् महावीर के समवसरण मे सविमान चंद्रादि का आगमन हुआ । मृगावती देवी वही थी । रात हो गई थी । चंद्र विमान का प्रकाश था । चंद्रादि सविमान अपने स्थान चले गये । कालातिक्रम के भय से चलित होकर साध्वी मृगावती उपाश्रय मे आयी ।

·२९ सुकाली अज्जा (सुकाली आर्या) - अंत० व ८ । अ २ । सू २०

तए णं सा सुकाली अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव अज्जचंदणा अज्जा ××× । तहा कणगावली वि × × × ।

सुकाली आर्या— आर्य चंदना की आज्ञा लेकर कनकावली तप किया ।

·३० सुज्येष्ठा (सुज्येष्ठा) — ठाण० स्था ६ । सू ६१

टीका —××× चेटकमहाराजदुहिता सुज्येष्ठाभिधाना वैराग्येण प्रव्रजिता उपाश्रयस्यान्तरातापयति स्म ।

सुज्येष्ठा चेटक महाराजा की पुत्री थी । वैराग्य भाव से प्रव्रजित हुई ।

·०७ प्रमुख श्रावक-श्राविकाओं के नाम

·०७·१ प्रमुख श्रावकों के नाम

·१ अम्मडे परिव्वायते (अंबड़ परिव्राजक) — ठाण० स्था ६ । सू ६१, ओवा० सू १४०

(क) ठाण० टीका —××× अंमडो अंमडाभिधानः परिव्राजकविद्याधरश्रमणोपासकः ।

अंबड़ परिव्राजक-श्रमणोपासक था ।

(ख) अत्रान्तरे जगद्भर्तुश्चरणोपासकः ।
परिव्राडंबडस्तत्रायायौ छत्री त्रिदंडभृत् ॥
स त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च जिनेश्वरम् ।
रोमाञ्चितवपुर्भक्त्या रचिताञ्जलिरस्तवीत् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ९ । श्लो २६२, २६३

भगवान् महावीर के चरण की उपासना करने वाला अंबड नामक परिव्राजक छत्री और त्रिदंडी हाथ में लेकर भगवान् के निकट आया और तीन प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया और भक्ति से रोमांचित होकर अञ्जलि जोड़कर स्तुति की ।

नोट — परिव्राजक होते हुए भी अंबड भगवान् का श्रमणोपासक था । नाग नामक रथकार की पत्नी सुलसा की परीक्षा भी की थी ।

·२ अभीयीकुमारे समणोवासए (अभीची कुमार श्रमणोपासक)

— त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १२ । श्लो ३२ से ३४

—भग० श १३ । उ ६ । सू १२०

(क) भग० ××× तएणं से अभीयीकुमारे समणोवासए यावि होत्था । अभिगय० जाव विहरइ, उद्दायणंमि रायरिसिंमि समणुबद्धवेरे यावि होत्था ।

(ख) त्रिशलाका०—श्रमणोपासकः सम्यग्जीवाजीवादितत्त्ववित् ।
अभीचिः श्रावकधर्मं यथावत् पालयिष्यति ।
गृहिधर्मं समा बह्वीः पालयन्नप्यखंडितम् ।
पराभवं स्मरन् वैरं न स हास्यत्युदायने ॥
कृत्वा संलेखनां सम्यक पाक्षिकानशनेन सः ।
पितृवैरमनालोच्य मृत्वा भाव्यसुरोत्तमः ॥

अभीचीकुमार—राजा उदायन का पुत्र था। उदायन ने दीक्षा ली। वह श्रमणोपासक हुआ। श्रमणोपासक होने पर भी अभीचीकुमार—उदायन राजर्षि के प्रति वैर के अनुबंध से युक्त था।

·३ आणंदे समणोवासए (आनंद श्रमणोपासक) —उवा० अ १ । सू ८४

(क) तएणं से आणंदे समणोवासए × × ×। वीसं वासाइं समणोवासग-परियागं पाउणित्ता × × ×। सोहम्मे कप्पे × × × देवत्ताए उववण्णे।

आनद श्रमणोपासक बीस वर्ष श्रमणोपासक की पर्याय का पालन कर सौधर्म कल्प मे देव रूप मे उत्पन्न हुआ।

(ख) त्रिकालदर्शी भगवान् कथयामासिवानिति।
श्रावकव्रतमानन्दः सुचिरं पालयिष्यति॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ८ । श्लो २६३

भगवान् ने कहा कि आनंदश्रावक चिरकाल श्रावकधर्मका पालन करेगा।

·४ इसिभद्दपुत्त (ऋषिभद्रपुत्र) —भग० श ११ उ १२ । सू १७४

तत्थ णं आलभियाए नयरीए बहवे इसिभद्दपुत्तपामोक्खा समणोवासिया परिवसंति।

आलभिका नगरी मे ऋषिभद्र पुत्र आदि श्रावक बसते थे।

·५ उदाइणा (उदायी) —ठाण० स्था ९ । सू ६०
— त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १२ । श्लो १३१

(क) ठाण° टीका उदायी कोणिकपुत्र, यः कोणिकेऽपक्रान्ते पाटलिपुत्रं नगरं न्यवीविशत् × × × परमसंवेगरसप्रकर्षमनुसरन् सामायिकपौषधादिकं सुश्रमणो-पासकप्रायोग्यमनुष्ठानमनुतिष्ठते × × ×।

कोणिक का पुत्र उदायी भी श्रमणोपासक था।

(ख) त्रिशलाका°—आलेख्यशेषता प्राप्ते कूणिकेतु तदात्मजम्।
सर्वे प्रधानपुरुषा राज्ये न्यधुरुदायिनम्॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १२ । श्लो ४२६

कूणिक राजा की मृत्यु के बाद उसके प्रधान पुरुष उसके पुत्र उदायन को राज्य पर बैठाया। राजा श्रावक था।

·६ कामदेवे (कामदेव) —उवा० अ २ । सू १४

मूल—तएणं से कामदेवे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सावयधम्मं पडिवज्जइ।

कामदेव गाथापति ने श्रमण भगवान् महावीर के पास श्रावकधर्म को अंगीकार किया।

·७ कुंडकोलिए (कुंडकोलिक) —उवा० अ ६ । सू १४

तएणं से कुंडकोलिए गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सावय-धम्मं पडिवज्जइ ॥

कुडकोलिक गाथापति ने श्रमण भगवान् महावीर के पास श्रावकधर्म स्वीकार किया।

·८ चुलणीपिता (चुलनीपिता) - —उवा० अ ३ । सू १४

तएणं से चुलनीपिता गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सावयधम्मं पडिवज्जइ।

चुलनीपिता गाथापति ने श्रमण भगवान् महावीर के पास श्रावकधर्म अंगीकार किया।

९ चुल्लसयए (चुल्लशतक) —उवा० अ ५ । सू १४

तएणं से चुल्लसयए गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सावय-धम्मं पडिवज्जइ।

चुल्लशतक गाथापति ने श्रमण भगवान् महावीर के पास श्रावक धर्म अंगीकार किया।

.१० चेटक श्रावक — त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १२ । श्लो २४९–२५०

चेटक राजा—बारह व्रतधारी श्रावक था।

साधार्मिकश्चेटको मे तं निहन्मि न जातुचित्।

शक्रेन्द्र ने कूणिक राजा से कहा कि चेटक श्रावक है अतः हमारा साधार्मिक है। अतः मैं उसको कदापि नही मार सकता।

११ जिनदत्त श्रावक —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ श्लो १४१

परमश्रावकस्तत्र जिनदत्ताभिधोऽवसत्।

दयावान् विश्रुतो जीर्णश्रेष्ठीतिविभवक्षयात्।

विशाला नगरीमे जिनदत्त नामक एक परम श्रावक रहता था। वैभव के क्षयसे जीर्ण-श्रेष्ठी नाम से प्रख्यात था।

·१२ ढंक-श्रावक —त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ८ । श्लो ८८-८९

आर्यासहस्रसहिता साप्यार्या प्रियदर्शना।

तस्थौ ढंककुलालस्य शालायामृद्धिशालिनः।

परमश्रावको ढंकस्ता दृष्टवा कुमतस्थिताम्।

बोधयिष्याम्युपायेन केनापीति व्यचिन्तयत् ॥

भगवान् के शासन से अलग होकर प्रिय-दर्शनासाध्वी श्रावस्ती नगरीमे एक हजार आर्या के साथ ढंक श्रावक (समृद्धवान कुम्हार) की शाला मे ठहरी। ढंक श्रावक परम श्रावक था। ढंक श्रावकने प्रियदर्शना को समझाकर वापस भगवानके शासन मे मिला दिया।

—उवा० अ ६ । सु १४

·१३ नंदिणीपिया (नंदिनीपिता)

तएणं से नंदिणीपिया गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सावयधम्मं पडिवज्जइ।

नंदिनीपिता गाथापति ने श्रमण भगवान् महावीर के पास श्रावकधर्म को स्वीकार किया।

·१४ नंदे मणियारसेट्ठी (नंद मणिकारश्रेष्ठी) —नाया० श्रु १ । अ १३ । सु ११

नंदे मणियारसेट्ठी धम्मं सोच्चा समणोवासए जाए।

नन्द मणियार श्रेष्ठी भगवान् महावीर के पास धर्म को सुनकर श्रमणोपासक हुआ। कालान्तर में साधुओं के दर्शन वगैरह का संयोग न मिलने के कारण श्रावकत्व में धीरे-धीरे कमी आने लगी।

—उत्त० अ २१ । गा १

·१५ पालिए सावए (पालित श्रावक)

चंपाए पालिए नाम, सावए आसी वाणिए।
महावीरस्स भगवओ, सीसे सो उ महप्पणो।

चम्पा नगरी में पालित नामक एक वणिक् श्रावक रहता था। वह महात्मा भगवान् महावीर का शिष्य था।

·१६ पोक्खली समणोवासए (पुष्कली श्रमणोपासक)

—भग० श १२ । उ १ । सु १

××× तत्थं सावत्थीए नगरीए पोक्खली नामं समणोवासए परिवसइ।

श्रावस्ती नगरी में पुष्कली श्रमणोपासक रहता था।

·१७ मद्दुए समणोवासए (मद्रुक श्रमणोपासक) —भग० श १८ । उ ७ । सु १३६

तत्थणं रायगिहे नगरे मद्दुए नामं समणोवासए परिवसति।

राजगृह नगर में मद्रुक श्रावक वास करता था।

·१८ महासतए (महाशतक) —उवा० अ ८ । सु १९

तएणं से महासतए गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सावयधम्मं पडिवज्जइ ××× रेवतीपामोक्खाहिं तेरसहिं भारियाहिं अवसेसं मेहुणविहिं पच्चक्खाइ ×××।

महाशतक गाथापति ने श्रमण भगवान् महावीर के पास श्रावक धर्म को स्वीकार किया। रेवती आदि तेरह भार्याओं के उपरान्त मैथुन विधि का प्रत्याख्यान किया।

·१६ लेइयापिता (लेतियापिता) —उवा० अ १० । सू १४

तएणं से लेतियापिता गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सावय-धम्मं पडिवज्जइ ।

लेतिया पिता गाथापति ने श्रमण भगवान् महावीर के पास श्रावक धर्म अंगीकार किया ।

·२० लेव गाहावई (लेप गाथापति) —सूय० श्रु २ । अ ७ । सू १, ४

तत्थणं णालंदाए बाहिरियाए लेवे णामं गाहावई होत्था । ×××। से णं लेवे णामं गाहावई समणोवासए होत्था ।

नालंदा के बाहरी भाग मे लेप गाथापति रहता था । वह श्रमणोपासक था ।

·२१ वरुणे नागनत्तुए (वरुणनागनत्तुआ) भग० श ७ । उ ६ । सू २०७

(क) वरुणे णं भंते ! नागनत्तुए कालमासे कालं किच्चा कहिंगए ! कहिं उववण्णे ? गोयमा । सोहम्मे कप्पे, अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववन्ने ।

वरुण नाग नत्तुआ काल के समय काल कर सौधर्म देवलोक के अरुणाभ नामक विमान मे देवरूप मे उत्पन्न हुआ ।

युद्ध मे प्रवृत्त होने के पूर्व उसने यह नियम लिया था कि रथमूसल संग्राम में युद्ध करते हुए मुझ पर जो पहले वार करेगा, उसी को मारना मुझे योग्य है, दूसरे को नहीं ।

(ख) पौत्रोऽथ नागरथिनो द्वादशव्रतपालकः ।
सम्यग्दृष्टिः षष्ठभोजी सदाभवविरक्तधीः ।
राजाभियोगतः षष्ठभक्तान्तेऽपि कृताष्टमः ।
श्री चेटकक्षितीशेन स्वयमत्यर्थमर्थितः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १२ । श्लो २५६, २५७

नागरथी का पौत्र वरुण बारहव्रत धारी था, सम्यग्दृष्टि था, बेले-बेले की तपस्या करने वाला था, संसार से विरक्त था, राजाभियोग से षष्ठ के अन्त मे भी अष्टम तप करने वाला था ।

·२२ वग्गुरो (वग्गुरः) आव० नि गा ४८१ । टीका

(क) ततो सामी पुरिमतालं गच्छइ, तत्थ वग्गुरो नाम सेट्ठी । ×××। एवं सो सावगो जातो ।

पुरिमताल नगर का श्रावक वागुर था ।

(ख) तत्रासीद्वागुरः श्रेष्ठी धनी भद्रा च तत्प्रिया ।
वन्ध्या श्रान्ता सुतकृते वृतैर्देवोपयाचितैः ॥२०॥

× × ×

साधूनां नित्यसंसर्गाच्छ्रेष्ठिनौ श्रेष्ठबुद्धिकौ।
श्रावकत्वं प्रपेदाते विधिज्ञौ च बभूवतुः ॥३०॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४

पुरिमताल नगर में साधनाकाल में भगवान् महावीर पधारे। वागुर श्रावक ने भगवान को वंदन किया। वहाँ वागुर ने कालान्तर में श्रावक के व्रत ग्रहण किये। उसकी पत्नी भद्रा ने भी श्रावक के व्रत ग्रहण किये।

·२३ संखे समणोवासए (शंखश्रमणोपासक) —भग० श १२ । उ १ । सू १६

××× संखे णं समणोवासए पियधम्मे चेव दढधम्मे चेव, सुदक्खुजागरियं जागरिए।

श्रमण भगवान ने श्रावकों को कहा—शंख श्रावक प्रियधर्मी और दृढधर्मी है। इसने प्रमाद और निद्रा का त्याग करके सुदर्शन जागरिका जाग्रत की है।

·२४ सद्दालपुत्ते (सद्दाल पुत्र) – उवा० अ ७ । सू ११

(क) तएणं से सद्दालपुत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खाइयं—दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जइ। ×××।

सद्दालपुत्र श्रमण भगवान् महावीर के पास पंचाणुव्रत एवं सात शिक्षाव्रत द्वादशविध श्रावक धर्म को स्वीकार किया।

(ख) त्यक्त्वा नियतिवादं स प्रमाणीकृत्य पौरुषम्।
आनन्द इव शिश्राय स्वाम्यग्रे श्रावकव्रतम् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ८ । श्लो ११६

नियतिवाद को छोड़कर सद्दालपुत्र ने आनन्द श्रावक की तरह भगवान के पास श्रावक धर्म अंगीकार किया।

·२५ सुदंसणे समणोवासए (सुदर्शन श्रमणोपासक)

—अंत० व ६ । अ ३ । सू ४६

तएणं सुदंसणे समणोवासए अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ।

सुदर्शन श्रमणोपासक अर्जुन मालागार के साथ जहाँ गुणशिलक चैत्य में श्रमण भगवान् महावीर थे—वहाँ आया।

·२६ सुदंसणे समणोवासए (सुदर्शन श्रमणोपासक)

—भग० श ११ । उ ११ । सू ११५

×××। तत्थणं वाणियग्गामे नगरे सुदंसणे नामं सेट्ठी परिवसइ—अड्ढेजाव

सुदंसणस्स अपरिभूए समणोवासए अभिगयजीवाजीवे जाव अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। सामीसमोसढे जावपरिसा पज्जुवासइ।

वाणिज्य नगर मे सुदर्शन नामक सेठ रहता था। वह आढय यावत् अपरिभूत था। वह जीवाजीवादि तत्वों का जाननेवाला श्रमणोपासक था।

कालान्तर मे वह श्रमण भगवान् महावीर के शासन मे दीक्षित हुआ।

·२९ सुरादेवे समणोवासए (सुरादेव श्रमणोपासक) —उवा० अ ४। सू ५२

तए णं से सुरादेवे समणोवासए ××× वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता × × × सोहम्मे कप्पे अरुणकंते विमाणे उववण्णे।

सुरादेव श्रमणोपासक बीस वर्ष श्रमणोपासक की पर्याय का पालन कर सौधर्म कल्प में अरुणकंत विमाण मे उत्पन्न हुआ।

·०७·२ प्रमुख श्राविकाओं के नाम

·१ अग्गिमित्ता (अग्निमित्रा) —उवा० अ ७। सू ३८

तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जइ × × ×।

सद्दालपुत्र की पत्नी का नाम अग्निमित्रा था। उसने भगवान् महावीर के पास पचाणुव्रत, सात शिक्षाव्रत—द्वादशविध गृहस्थ धर्म को स्वीकार किया।

·२ अस्सिणी (अश्विनी) —उवा० अ ६। सू १७

तए णं सा अस्सिणी भारिया समणोवासिया जाया—अभिगयजीवाजीवा × × ×।

नदिनीपिताकी भार्या का नाम अश्विनी था। वह भी श्रमणोपासिका थी।

·३ उप्पला समणोवासिया (उत्पला श्रमणोपासिका) —भग० श १२। उ १। सू १

तस्स णं संखस्स समणोवासगस्स उप्पला नामं भारिया होत्था—सुकुमालपाणिपाया जाव सुरूवा, समणोवासिया अभिगयजीवाजीवा जाव अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

शख श्रावक की स्त्री का नाम उत्पला था। वह सुकुमाल हाथ-पाँव वाली यावत् सुरुप और जीवाजीवादितत्वों को जानने वाली श्रमणोपासिका थी।

·४ जयंती समणोवासियाए (जयंती श्रमणोपासिका) —भग० श १२। उ २। सू ३०

× × × जयंतीए समणोवासियाए ××× तत्थणं कोसंबीए नगरीए सहस्साणीयस्स रण्णो धूया, सयाणीयस्स रण्णो भगिणी, उदयणस्स रण्णो पिउच्छा, मिगावतीए

वैदेही ननंदा, वेसालियसावयाणं अरहंताणं पुव्वसेज्जातरी जयंती नामं समणो-वासिया होत्था—सुकुमालपाणिपाया जाव सुरूवा अभिगयजीवाजीवा जावअहा-परिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

जयंती श्रमणोपासिका—वह सहस्रानीक राजा की पुत्री, शतानिक राजा की बहिन, उदायन राजा की बूआ, मृगावती देवी की ननद, और श्रमण भगवान् महावीर के साधुओं की प्रथम शय्यातर थी। वह सुकुमाल यावत् सुरूप और जीवाजीव आदि तत्वों की जानकार यावत् विचरती थी।

·५ देवाणंदा समणोवासिया (देवानंदा श्रमणोपासिका) —भग० श ९। उ ३३

तस्स णं उसभदत्तस्स माहणस्स-देवाणंदा णामं माहणी होत्था ××× समणो-वासिया ×××।

ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी का नाम देवानन्दा था। वह श्रमणोपासिका थी।

·६ धन्ना समणोवासिया (धन्या श्रमणोपासिका) —उवा० अ ४। सू १७

तएणं सा धन्ना भारिया समणोवासिया जाया—अभिगयजीवा ×××।

सुरादेव श्रमणोपासक की धन्या नाम की पत्नी थी। वह भी श्रमणोसिका थी।

·७ नंदा श्राविका —त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ४। श्लो ४७६

राज्ञस्तस्य च सचिवः सुगुप्तो नाम तत्प्रिया।
नंदा नाम श्राविकेति मृगावत्याः परा सखी॥

कौशाम्बी के शतानिक राजा के सुगुप्त नामक एक मन्त्री था। उसके नंदा नामक स्त्री थी। वह श्राविका थी और मृगावती की सखी थी।

·८ पूसा समणोवासिया (पूषा श्रमणोपासिका) —उवा० अ ६। सू १७

तए णं सा पूसा भारिया समणोवासिया जाया अभिगयजीवाजीवा ×××।

कुंडकोलिक की पत्नी का नाम पूषा था। वह भी श्रमणोपासिका थी।

·९ फग्गुणी समणोवासिया (फाल्गुनी श्रमणोपासिका) —उवा० अ १०। सू १७

तएणं सा फग्गुणी भारिया समणोवासिया जाया—अभिगयजीवाजीवा ×××।

लेतिया पिता की पत्नी का नाम फाल्गुनी था। वह भी श्रमणोपासिका थी।

·१० बहुला समणोवासिया (बहुला श्रमणोपासिका) उवा० अ ५। सू १७

तए णं सा बहुला भारिया समणोवासिया जाया—अभिगयजीवाजीवा ×××।

चुल्लशतक श्रमणोपासक के बहुला नामक पत्नी थी। वह भी श्रमणोपासिका थी।

·११ भद्दा समणोवासिया (भद्रा श्रमणोपासिका) —उवा० अ २ । सु १७

तए णं सा भद्दा भारिया समणोवासिया जाया । × × × ।

कामदेव गाथापति की भार्या का नाम भद्रा था । वह भी श्रमणोपासिका थी ।

·१२ सामा समणोवासिया (श्यामा श्रमणोपासिका) —उवा० अ ३ । सु १७

तएणं सा सामा भारिया समणोवासिया जाया—अभिगयजीवाजीवा जाव × × × ।

चुलनीपिता की पत्नी का नाम श्यामा था । वह भी श्रमणोपासिका थी ।

·१३ सिवनंदा (शिवनंदा). —उवा० अ १ । सु ५२

(क) तए णं सिवणंदा भारिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जइ ।

आणंद श्रावक की भार्या का नाम शिवनदा था । उसने श्रमण भगवान् महावीर के पास पंचाणुव्रत, सात शिक्षाव्रत—द्वादश विध गृहस्थ धर्म को स्वीकार किया ।

(ख) आनन्दः शिवनन्दाया उपेत्याथ ससंमदः ।
अशेषं कथयामास गृहिधर्मं प्रतिश्रुतम् ॥ २५८ ॥
× × ×
प्रपेदे शिवनन्दाऽपि गृहधर्मं समाहिता ॥ २६० ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ८

आनंद श्रावक की पत्नी शिवनदा भगवान महावीर के पास आयी । वंदन नमस्कार कर गृहिधर्म को अगीकार किया ।

·१४ सुलसाए सावियाए (सुलसा श्राविका) —ठाण० स्था ६ । सु ६०

—आव० चू० उत्तरार्द्ध पत्र सं० १६४

—भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति, पत्र सख्या २४८-२, २५५-१

(क) ठाण०—समणस्स णं भगवतो महावीरस्स तित्थंसि णवहिं जीवेहिं तित्थगरणामगोत्ते कम्मे णिव्वत्तिते, तंजहा—सेणिएणं, सुपासेणं, उदाइणा, पोट्टिलेणं अणगारेणं, दढाउणा संखेणं, संतएणं, सुलसा सावियाए, रेवतीए ।

टीका — × × × तथा श्राविकां—श्रमणोपासिका सुलसाभिधानां बुद्धः-सर्वज्ञधर्मे भावितेयमित्यवगतवान् श्राविका वा बुद्धा—ज्ञाता येन स श्राविकाबुद्धः ।

(राजगृह मे) एक सुलसा श्राविका थी । वह अपने श्रावक धर्म मे बहुत दृढ़ थी ।

(ख) इतश्च शक्रः सदसि प्रशंसामिति निर्ममे।
श्राविका उप सुलसां साम्प्रतं भरतावनौ॥
एको देवस्तदाकर्ण्य विस्मयोत्कर्णिताननः।
सुलसायाः श्राविकात्वं परिक्षितुमुपाययौ॥
—त्रिशलाका० पर्व । १० । सर्ग ५ । श्लो ६४, ६५

भरत क्षेत्र मे सुलसा सची श्राविका है—ऐसी प्रशंसा शक्रेन्द्र ने की। एक देव सुलसा श्राविका की परीक्षार्थ आया।

—०—

·१०८ सम सामयिक विशिष्ट व्यक्तियों के नाम

·०८·१ राजाओं के नाम

·१ अज्जुणो राया (अर्जुन राजा) —विवा० श्रु २ । अ ८ । सू १

सुघोसं णगरं। देवरमणं उज्जाणं। वीरसेणो जक्खो। अज्जुणो राया।

सुघोष नगर का अर्जुन राजा था।

·२ अदीणसत्तू राया (अदीनशत्रु राजा) —विवा० श्रु २ । अ १ सू ७

तत्थणं हत्थिसीसे नयरे अदीणसत्तू नामं राया होत्था।

हस्तिशीर्ष नगर का अदीनशत्रु राजा था।

·३ अप्पडिहओ राया (अप्रतिहत राजा) —विवा० श्रु २ । अ ५ । सू १

सोगंधिया नयरी। नीलासोगं उज्जाणं। सुकालो जक्खो। अप्पडिहओ राया।

सौगंधिका नगरी का अप्रतिहत राजा था।

·४ अलक्के राया (अलक्ष राजा) —अंत० वर्ग ६ । अ १६ । सू ८७, ८८

ते णं कालेणं तेणं समएणं वाराणसी नगरी, काममहावणे चेइए।

तत्थणं वाणारसीए अलक्के नामं राया होत्था।

वाराणसी नगरी का राजा का नाम अलक्ष था। कालान्तर मे श्रमण भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की।

'५ आर्द्रक राजा — त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ७ । श्लो १७७ से १७९

इतश्च मध्येऽम्भोराशि पातालभवनोपमः ।
आर्द्रको नाम देशोऽस्ति पुरं तत्रार्द्रकाभिधम् ॥१७७॥
राजमानः श्रिया राजा राजेवानन्दको दृशाम् ।
तत्राभूद्रार्द्रक इति महिषी तस्य चार्द्रका ॥१७८॥
तयोरार्द्रककुमारोऽभवदार्द्रमनाः सुतः ।
स प्राप्त यौवनो भोगान् भुञ्जानोऽस्थाययथारुचि ॥१७९॥

समुद्र के मध्य मे पाताल भुवन जैसा आर्द्रक नामक देश है वहाँ आर्द्रक नामक मुख्य नगर है । वहाँ का राजा आर्द्रक था । उसकी पत्नी का नाम आर्द्रका था । उसके आर्द्रकुमार नामक पुत्र था ।

'६ उदयणे नामं राया (उदयन नाम राजा) —भग० श १२ । उ २ । सू ३०

(क) मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं कोसंबी नामं नगरी होत्था × × × । उदयणे नाम राया होत्था ।

कौशाम्बी नगरी मे उदयन नाम का राजा था । वह शतानिक राजा का पुत्र था । वीतिभय नगर के उदायन राजा —मासाजी लगते थे । चूंकि शतानिक राजा की पत्नी मृगावती तथा उदायन राजा की पत्नी प्रभावती थी । दोनो सहोदर बहन थी ।

(ख) स्वामीप्रभावान्निर्वाणवैरः प्रद्योतभूपतिः ।
तामनुज्ञाय कौशाम्ब्यां चकारोदयनं नृपम् ।

त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ८ । श्लो २३२

कौशाम्बी के राजा शतानिक की मृत्यु के कई वर्षो बाद उसका पुत्र उदयन राजगद्दी पर बैठा । चूंकि चडप्रद्योत ने उसको राजा बनाना उचित समझा ।

'७ उदायणे राया (उदायन राजा) भग० श १३ । उ ६ । सू १०२

तत्थणं वीतिभए णयरे उदायणे णाम राया होत्था । × × × समणोवासए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ ।

वीतिभय नगर मे उदायन नाम का राजा था । वह जीवाजीवादि तत्त्वों का जानकार श्रमणोपासक था ।

'८ करकंडू राया (करकंडू राजा) —धर्मो० पृ० ११६, ११९

करकंडू कलिंगेसु × × × ।

कलिंग जनपद का राजा करकडू था ।

•९ कोणिए (कोणिक) - ओव० सू १४, नाया० श्रु० १ । अ १ । सू १
निरय० व २ । सू ४

(क) तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कुणियस्स रन्नो ×××।
—निरय० व २ । सू ४

(ख) तत्थ णं चंपाए नयरीए कोणिए नामं राया होत्था।
—नाया० श्रु १ । अ १ । सू १

चंपा नगरी मे श्रेणिक राजा का पुत्र कोणिक राजा था।

•१० चण्डप्रद्योतभूपतिः (चंडप्रद्योतराजा) —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ११ । श्लो ११४

अन्यदोज्जयिनीपुर्याश्चण्डप्रद्योतभूपतिः
× × ×

उज्जयिनीका राजा चडप्रद्योत था। राजा की स्त्री का नाम शिवा था—जो चेटक महाराज की पुत्री थी।

•११ चेटक —त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग १२ । श्लो १६६ पूर्वार्ध, २००

वैशाली का राजा चेटक था।

अन्यस्मिंश्च दिने हल्लविहल्लौ पृथिवीपतिः
× × ×

(क) मातामहश्चेटकस्तौ परिरभ्य समागतौ।
स्नेहेन प्रतिपत्त्या च ददर्श युवराजवत्।

कुणिक के भय से हल्ल-विहल्ल अतपुर और हार आदि लेकर वैशाली के चेटक राजा (नाना था) के पास आ गये थे।

(ख) नष्टवा स्वस्वपुरं यात्सु गजराजेषु चेटकः।
प्रणश्य प्राविशत् पुर्यां कूणिकोऽपि रुरोध ताम्॥ २६०॥
— त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १२

महाशिला कटक और रथमूशल सग्राम मे गज सहित राजा चेटक अपनी नगरी मे आ गये और गणराजा अपनी-अपनी नगरी मे चले गये।

(ग) सिंधु-विसइ वइसाली पुरवरि।
× × ×
चेडउ णाम णरेसरु णिवसइ॥

—वोरजि० संधि १ । कड ७

सिंधु विषय (नदी प्रधान विदेह नामक प्रदेश) मे वैशाली नामक नगर था। उस नगर मे चेटक नामक नरेश्वर निवास करते थे।

·१२ जणगो राया (जनक राजा) 	—आव० निगा ५१५

- त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ४ श्लो ३४२

मिथिला का जनक राजा था ।

(क) आव०—मिहिलाए जणगो राया पूयं करेइ ।

जब भगवान महावीर मिथिला नगरी पधारे तब जनक राजा ने भगवान् की पूजा की ।

(ख) गतोऽथ मिथिलापुर्यां स्वामी जनक भूभुजा ।

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ३४२ पूर्वार्ध

मिथिला नगरी के राजा जनक थे ।

·१३ जियसत्तू राया (जितशत्रु राजा) 	—अणुत्त० व ३ । अ १ । सू ४

तेणंकालेणं तेणं समएणं काकंदी नामं नयरी होत्था × × × जियसत्तू राया ।

काकंदी नगरी का राजा जितशत्रु था ।

·१४ जियसत्तू राया (जितशत्रु राजा) 	राय० सू १४६

(क) तत्थ णं कुणालाए जणवए सावत्थी नाम नयरी होत्था × × × तत्थणं सावत्थीए नयरीए पएसिस्स रन्नो अंतेवासी जियसत्तू नामं राया होत्था ।

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएण सावत्थी नयरी । कोट्ठए चेइए । जियसत्तू राया ।

—उवा० अ ६ । सू २

कुणाल देश मे श्रावस्ति नामकी नगरी थी । उस नगरी मे प्रदेशी राजा का अंतेवासी (आज्ञा धारक मित्र) जितशत्रु राजा था ।

·१५ जियसत्तू राया (जितशत्रु) 	—दसासु० अ ५ । सू २, उवा० अ १ । सू १०

तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियगामे नामं नयरे होत्था । × × × जियसत्तू राया ।

उस काल उस समय मे वाणिज्य ग्राम नाम का एक नगर था । वहाँ जितशत्रु राजा था ।

१६ जियसत्तू (जितशत्रु) 	—आव० नि० गा ४८६ ।

मलय टीका—ततो भगवान् लोहार्गले नगरे गतः, तत्र जितशत्रू राजा ।

लोहार्गल नगर मे जितशत्रु राजा था ।

·१७ जियसत्तू राया (जितशत्रु राजा) 	—उवा० अ २ । सू २

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नाम नयरी । पुण्णभद्दे चेइए । जियसत्तू राया ।

चंपा नामक नगरी थी । उसका राजा जितशत्रु था ।

—उवा० अ ३ । सू १

·१८ जियसत्तू (जितशत्रु)

तेणं कालेण तेणं समएणं वाराणसी नामं नयरी। कोट्ठए चेइए। जियसत्तू राया।

वाराणसी नामक नगरी का राजा जितशत्रु था।

— उवा० अ ५ । सू २

१९ जियसत्तू राया (जितशत्रु राजा)

तेणं कालेणं तेणं समएणं आलभिया नामं नयरी। संखवणे उज्जाणे। जियसत्तू राया।

आलभिया नगरी का राजा जितशत्रु था।

— उवा० अ ६ । सू २

·२० जियसत्तू राया (जितशत्रु राजा)

तेणं कालेणं तेणं समएणं कंपिल्लपुरे नयरे। सहस्सववणे उज्जाणे। जियसत्तू राया।

कपिल्लपुर नगर का राजा जितशत्रु था।

उवा० अ ७ । सू २

·२१ जियसत्तू राया (जित शत्रु राजा)

तेणं कालेणं तेणं समएणं पोलासपुरं नामं नयरं। सहस्संबवणं उज्जाणं। जियसत्तू राया।

पोलासपुर नगर का जितशत्रु राजा था।

—विवा० श्रु २ । अ ९ । सू १

·२२ दत्ते राया (दत्त राजा)

चंपा नयरी। पुण्णभद्दे उज्जाणे। पुण्णभद्दे जक्खे। दत्ते राया। रत्तवती देवी।

चपा नामक नगरी थी। पुर्णभद्र उद्यान था तथा पूर्णभद्र यक्ष था। दत्त नामक राजा था। उसके रक्तवती देवी थी।

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ९ श्लो

·२३ दधिवाहन राजा

(क) सचास्य सूनुः सचिवैर्दधिवाहनभभुजा।
चंपानाथेन संभूय राज्यात्प्रच्यावयिष्यते।

चपानगरी का राजा दधिवाहन था। जब प्रसन्नचद्र राजर्षि एकांत मे ध्यान कर रहे थे तब रास्ते मे श्रेणिक राजा के दो सैनिक परस्पर बातचीत कर रहे थे कि पोतनपुर के मंत्री दधिवाहन से मिलकर पोतनपुर के राज्य का हरण कर लेंगे।

(ख) अंगाजणवए सग्गनयरि-संकासाए चंपाए नयरीए नरिंदलच्छि संकेयट्ठाणो।

—धर्मो पृ० ११६

अंगजनपद मे चपानगरी का राजा दधिवाहन था।

•

·२४ दुम्मुहो राया (दुर्मुखराजा) —धर्मो॰ पृ॰ १२०

तह पंचाल - जणवए कंपिल्लपुरे नयरे गुण-रयण - जलनिही दुम्मुहो राया। ×××।

पंचाल जनपद में कंपिलपुर नगर का राजा दुर्मुख था।

·२५ धणावहो राया (धनावाह राजा) —विवा॰ श्रु २। अ २। सू १

तेणं कालेणं तेण समएणं उसभपुरे नयरे। थूभकरंडग उज्जाणं। धण्णो जक्खो। धणावहो राया। सरस्सई देवी।

ऋषभपुर नगर का राजा धनावाह था।

·२६ नग्गई राया (नग्गई राजा) —धर्मो॰ पृ॰ १२१

तहा गंधार - जणवए पुरिसपुरे नगरे जयसिरिकुलमंदिरं नग्गई राया। ×××।

गंधार जनपद में पुरुषपुर नगर का राजा नग्गई था।

·२७ नमीराया (नमि राजा) —धर्मो॰ पृ॰ १२१

तहा विदेहा-जणवए मिहिला नयरीए नमी राया। ×××।

मिथिला नगरी—विदेह जनपद—का राजा नमि था।

·२८ पएसीराया (प्रदेशी राजा) —राय॰ सू १४२

तत्थणं केइयअद्धे जणवए सेयविया णामं नगरी होत्था। ××× तत्थणं सेयवियाए णगरीए पएसी णामं राया होत्था।

केकयार्द्ध जनपद में श्वेताम्बिका नगरी थी। वहाँ प्रदेशी राजा राज्य करता था। कालान्तर में प्रदेशी राजा श्रमणोपासक भी हुआ।

·२९ पज्जोयहो (प्रद्योत) —जोयजि॰ सधि १। कड १

××× उज्जेणिपुरि।

××× पज्जोयहो णवरि॥

उज्जयिनी पुरी का राजा प्रद्योत था।

·३० प्रसेनजित् राजा —त्रिशलाका॰ पर्व १०। सर्ग ६। श्लो १, २

इतश्चाऽत्रैव भरते कुशाग्रपुरपत्तने।

कुशाग्रीयमतिरभूत् प्रसेनजिदिलापतिः॥ १॥

कुशाग्रपुर का प्रसेनजित् राजा था।

·३१ पालओ राया (पालक राजा) —वायुपुराण अ ९९। श्लो ३१२

—मत्स्यपुराण अ २७१। श्लो ३

—तित्थोगाली पइन्नय विविधतीर्थ कल्प, १२०, २१, अपापाबृहत्कल्प

तित्थो०—जं रयणिं सिद्धिगओ अरहा तित्थंकरो महावीरो ।
तं रयणिमवंतिए, अभिसित्तो पालओ राया ॥
पालगरण्णो सट्ठी, पण पणसयं वियाणि णंदाणमू ।
मुरियाणं सट्ठिसयं तीसापुण पूसमित्ताणं ॥

भगवान् महावीर जिस दिन निर्वाण प्राप्त होते हैं उसी दिन उज्जैनी मे पालक राजा राजगद्दी पर बैठता है ।

नोट—चन्द्रप्रद्योत राजा का पुत्र पालक होता है ।

·३२ पियचंदो राया (प्रियचंद्र राजा) —विवा० श्रु २ । अ ६ । सू १

कणगपुरं नयरं । सेयासोय उज्जाणं । वीरभद्दोजक्खो । पियचंदो राया । सुभद्दा देवी । × × × ।

कनकपुर का राजा—पियचंद्र था ।

·३३ बल राया (बल राजा) —विवा० श्रु २ । अ ७ । सू १

महापुरं नयरं । रत्तासोगं उज्जाणं । रत्तपाओ जक्खो । बले राया । सुभद्दा देवी । × × × ।

महापुर नगर का राजा बल था ।

·३४ मित्तनंदी राया (मित्रनंदी राजा) —विवा० श्रु २ । अ १० । सू १

तेणं कालेणं तेणं समएणं साएयं णामं नगरं होत्था । × × × मित्तनंदी राया ।

उस काल उस समय । साकेत नामक नगर था । मित्रनंदी राजा था ।

·३५ महचंद राया (महाचन्द्र राजा) —विवा० श्रु १ । अ ४ । सू ५

तत्थणं साहंजणीए णयरीए महचंदे णामं राया होत्था ।

साहजनी नगरी के राजा का नाम महाचन्द्र था ।

·३६ महब्बल राया (महाबल राजा) —विवा० श्रु १ अ ३ । सू ५

तत्थणं पुरिमताले नयरे महब्बले नामं राया होत्था ।

पुरिमताल नगर के राजा का नाम महाबल था ।

·३७ मित्ते राया (मित्र राजा)— विवा० श्रु १ । अ २ । सू ५

तत्थणं वाणियगामे नयरे मित्ते नामं राया होत्था ।

वाणिज्य ग्राम के राजा का नाम मित्र था ।

·३८ वासवदत्त राया (वासवदत्त राजा) —विवा० श्रु २ । अ ४ । सू १

विजयपुरं नयरं । नंदणवणं उज्जाणं । असोगो जक्खो । वासवदत्ते राया ।

विजयपुर नगर का राजा वासवदत्त था ।

·३९ विजयमित्त राया (विजयमित्र राजा) —विवा० श्रु १ । अ १० । सू २

तेणं कालेणं तेणं समएणं वड्ढमाणपुरे नामं नयरे होत्था । विजयवड्ढमाणे उज्जाणे । माणिभद्दे जक्खे । विजयमित्ते राया ।

वर्द्धमानपुर नगर का राजा विजय मित्र था ।

·४० विजए राया (विजय राजा) —विवा० श्रु १ । अ १ । सू १२

तत्थणं मियग्गामे नयरे विजए नामं खत्तिए राया परिवसइ ।

मृगाग्राम नगर मे विजय नामक एक क्षत्रिय राजा निवास करता था ।

·४१ विजय राया (विजय राजा) —अंत० व ६ । अ १५ । सू ७२

तत्थणं पोलासपुरे नयरे विजय नामं राया होत्था । × × × ।

पोलासपुर नगर मे विजय नामक राजा था ।

·४२ वीरकण्हमित्ते राया (वीरकृष्णमित्र राजा) विवा० श्रु २ । अ ३ । सू १

वीरपुरं नयरं । मणोरमं उज्जाणं । वीरकण्हमित्ते राया । × × × ।

वीरपुर नगर के राजा का नाम वीरकृष्णमित्र था ।

·४३ वीरंगए (वीरांगक)

·४४ वीरजसे (वीरयशा)

·४५ संजय (संजय)

—ठाण० स्था ८ । सू ४१

वीरंगए वीरजसे, संजय × × × ।

वीरांगक वीरयशा और संजय—ये भी भगवान् महावीर के समकालीन राजा रहे हैं ।

·४६ वेसमणदत्त (वैश्रमणदत्त) —विवा० श्रु १ । अ ९ । सू २

तेणं कालेणं तेणं समएणं रोहीडए नामं नयरे होत्था । × × × वेसमणदत्ते राया । सिरीदेवी । पूसनंदी कुमारे जुवराया ।

उस काल उस समय मे रोहीतक नामक नगर था । उस नगरी का राजा वैश्रमणदत्त था । उसके श्रीदेवी नाम की रानी थी । उसके पुष्यनंदी कुमार युवराज था ।

·४७ सेणिए राया (श्रेणिक राजा)

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ५ । श्लो १०९, ११०, ११२ उत्तरार्ध

(क) कुमारा हस्त्यादि समादाय यथारुचि।
निर्ययुः श्रेणिकस्त्वेकां भम्भामादाय निर्ययौ ॥ १०९ ॥
किमेतत्कृष्टमित्युक्तो नृपेण श्रेणिकोऽवदत्।
जयश्चिह्नं भम्भेयं प्रथमं पृथिवीभुजाम् ॥ ११० ॥
× × ×
श्रेणिकस्य ददौ भम्भासार इत्यपराभिधाम् ॥ ११२ ॥

महल मे आग लगने पर श्रेणिक ने भभा को निकाला। यह भभा वाद्य राजाओं का प्रथम चिह्न है। प्रसेनजित् राजा ने श्रेणिक का उपनाम भभासार रखा।

(ख) सेणिए भंभसारे —नाया० श्रु० १। अ० १३

—दसासु० दशा १०। सु १

(ग) सेणिय कुमारेण पुणो जयढक्का कड्डिया पविसिऊणं।
पिऊण तुट्ठे ण तओ भणिओ सो भंभासारो।

— उपदेशमाला सटीक पत्र ३३४-१

महलों मे आग लग जाने से सभी राजकुमार विविध वस्तुएं लेकर भागे। श्रेणिक भभा (भेरो) को ही राजचिह्न के रूप मे सारभूत समझ कर भागा। इसलिए उसका नाम भभासार पड़ा।

(घ) तत्थणं रायगिहे नयरे सेणिए नामं राया होत्था। ×××।

-- नाया० श्रु। १। अ १। सु १४

राजगृह नगर मे श्रेणिक नामक राजा था।

.४८ संखो गणराया (शंखगण राजा) आव०निगा ४९२। टीका

आव० चू। पूर्वभाग पृ २९९

त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ४। श्लो १३८

आव० —ततो भगवं वेसालि नगरिं पत्तो, तत्थो संखो नाम गणराया, सिद्धत्थस्स रण्णे मित्तो, सो तं पूयइ।

वैशाली का शख गणराजा जो भगवान् के पिता का मित्र था।

.४९ संख राया (शंख राजा) ठाण० स्था ८। सू ४१

तह संखे कासिवद्धणे।

टीका ××× शंख काशीवर्द्धनो वणारसीनगरीसंबंधिजनपदवृद्धिकर इत्यर्थः।

वाराणसी का राजा शंख था।

·५० सच्चइ (सात्यकि) —वीरजि० संधि ५ । कड १

महिउरि × × × × ।

× × × सच्चइ णामे ॥

महीपुर का राजा सात्यकि था ।

·५१ समरवीर राजा —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो १२५

राजा समरवीरोऽथ यशोदां कन्यकां निजाम् ।

प्रदात् वर्धमानाय प्राहिणोन्मंत्रिभिः सह ॥

राजा समवीर ने यशोदा नामक स्वयंकी कन्या को वर्धमान के लिये मन्त्रियों के साथ भेजा ।

५२ सयाणितो राया (शतानिक राजा) —आव० निगा ५१८ टीका

(क) ततो सामी कोसंबिं गतो, तत्थ सयाणितो राया मियादेवी । × × × । ततो सामी कोसंबिंगतो, तत्थसयाणियो राया मियावई देवी तच्चावादी धम्मपाढगो × × × ।

जब छद्मस्थावस्था मे भगवान् महावीर कोसंबी नगरी पधारे । तब वहाँ का राजा शतानिक था ।

(ख) शशंस पुरि कौशाम्ब्यां शतानीकोऽस्ति भूपतिः ॥ १५४ ॥

नाम्ना मृगावती पूर्णमृगांकास्या मृगेक्षणा ।

एषाऽग्रमहिषी तस्य मृगारातिसमौजसः ॥ १५५ ॥

त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ८ । श्लो १५४ उत्त०, १५५

कौशाम्बी नगरी का राजा शतानिक था । उसकी पटरानी का नाम मृगावती था ।

·५३ सिद्धत्थे राया (सिद्धार्थ राजा) —विवा० श्रु १ । अ ७ । सू ३

तत्थणं पाडलिसंडे नयरेसिद्धत्थे राया ।

पाटलीसंड नगर का राजा सिद्धार्थ था ।

·५४ सिरिदाम राया (श्रीदाम राजा) —विवा० श्रु १ । अ ६ । सू २

तेणं कालेणं तेणंसमएणं महुरां नाम नयरी । भंडीरे उज्जाणे । सुदरिसणे जक्खे सिरिदामे राया ।

उस काल उस समय में मथुरा नगरी का राजा—श्रीदाम था ।

·५५ सेओ राया (सेये राजा) —राय० सू १, ५

तेणं कालेणं तेणं समएणं आमलकप्पा नामं नयरी होत्था × × × तत्थणं आमलकप्पाए नयरीए सेओ राया ।

आमलकल्प नगरी का राजा सेये था। कालान्तर मे भगवान् महावीर के पास दीक्षा ली।

·५६ सोरियदत्त राया (शोरिकदत्त राजा) – विवा० श्रु १। अ ८। सू २

तेणं कालेणं तेणं समएणं सोरियपुरं नयरं। सोरियवडेंसगं उज्जाणं। सोरिओ जक्खो। सोरियदत्ते राया।

शोरिकपुर नगर मे शोरिकदत्त राजा था।

५७ हस्तिपाल —त्रिशलाका पर्व १०। सर्ग १३। श्लो ३

स्वामिनं समवसृत्यं ज्ञात्वाऽपापापुरीपतिः।

हस्तिपालः समागत्य नत्वा च समुपाविशत्॥

जब श्रमण महावीर पावापुरी पधारे—तब हस्तिपाल राजा ने उनके दर्शन किये। भगवान् ने हस्तिपाल राजा के द्वारा देखे गये हाथी आदि सात स्वप्नों का फल बतलाया।

·५८ णेज्जरायाणो (निजकः राजा) —ठाण० स्था ८। सू ४१
आव० नि गा ४६८

आव०—सेयवियाए पदेसी पंचरहो णेज्जरायाणो।

मलय टीका—ततः श्वेताम्ब्यां नगर्यां गतः, तत्र प्रदेशी राजा, स भगवतो महिमां कृतवान्, तथा पंचभो रथेरागता ये प्रदेशिपार्श्वे निजा एव निजका—नैयक गोत्रा राजानस्तेऽपि महिमां कृतवन्तः।

××× कथानकादवसेयः, तच्चेदम्—

×××, ततो सेयवियं गतो, तत्थ पएसी राया समणोवासतो भयवतो महिमं करेइ, ततो भयवंसुरभिपुर वच्चइ, तत्थ अंतराए णिज्जया रायाणो पंचहिरहेहिं ए ति पएि.रत्तो पासं, तेहिं तत्थ सामी वंदितो पूइतो य।

श्वेताम्बिका नगरी के प्रदेशि राजा के नैयक गोत्र पाँच राजाओं ने भगवान् की महिमा की।

·५९ सिवेरायरिसी (शिव राजर्षि) —भग० श ११। उ ९। सू ५८, ६३,६४

तत्थ णं हत्थिणापुरे नगरे सिवे नामं राया होत्था ×××।

जे इमे गंगा कूलगा वाणपत्था तापसा भवंति, तं चेव जाव तेसिं अंतियं मुंडे भवित्ता दिसापोक्खियतावसत्ताए पव्वइए। ×××।

हस्तिनापुर का राजा शिव था। शिवभद्र राजा की आज्ञा लेकर शिवराजा तापसोचित उपकरण ग्रहण किये और गगानदी के किनारे दिशा प्रोक्षक तापसों के पास दिशाप्रोक्षक तापसी प्रव्रज्या ग्रहण की।

आगे जाकर उन्हें तापस अवस्था मे विभग ज्ञान भी उत्पन्न होता है। अततः श्रमण भगवान् महावीर के पास प्रव्रज्या ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध यावत् सर्व दुखों का अन्त किया।

·०८·२ सम-सामायिक अन्य धर्मनेता—धर्माचार्यों के नाम

·१ अच्छन्दक —त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो १७१

तस्मिन्नच्छन्दको नाम पाखंडी संन्निवेशने ।
ज्योतिष्कर्ममंत्रतंत्रादिकरणेन स्म जीवति ।

दीक्षाके एक वर्ष बाद भगवान् महावीर अस्थिग्राम से बिहार मोराक ग्राम पधारे, उस समय उस ग्राम मे अच्छंदक नामक एक पाखंडी रहता था ।

·२ अजितो केसकम्बलो (अजित केशकम्बल)

·३ पकुधो कच्चायनो (पक्रुध कात्यायन)

·४ सञ्जयो बेलट्ठपुत्तो (संजयबेलट्ठिपुत्र)

—सयुत्तनिकाय— २-३०, ४४, ४५

× × × पूरणो कस्सपो × × × अजितो केसम्बलो, पकुधोकच्चायनो, सञ्जयो बेलट्ठपुत्तो × × × ।

अजितकेशकम्बल, पक्रुध कात्यायन, सजयबेलट्ठिपुत्र—भगवान् महावीर के समकालिन धर्मनायक थे ।

·५ अम्मड परिव्वायग (अंबड़ परिव्राजक) —ओव० सू० ११५

(क) तेणं कालेणं तेण समएणं अम्मडस्स परिव्वायगस्स सत्त अंतेवासिसया गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूलमासंसि गंगा महानईए उभओ कूलेणं कंपिल्लपुराओ नयराओ पुरिमतालं णयरं संपट्ठिया विहाराए ।

उस काल उस समय मे अबड परिव्राजक के सात सौ अतेवासी—शिष्य ग्रीष्मकाल के ज्येष्ठा मूल अर्थात् ज्येष्ठ मास मे गगा महानदीके दो किनारों से कपिल्लपुर नगरसे पुरिमताल नगरको जाने के लिए रवाना हुए ।

(ख) अम्मडेणं परिव्वायए समणोवासए अभिगयजीवाजीवे जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

—ओव० सू १२०

भगवान् ने कहा—अम्बड परिव्राजक श्रमणोपासक होकर जीव और अजीव को जानता हुआ यावत् आत्माको भावित करता हुआ विचरण करता रहेगा ।

·६ अयंपुले आजीविओवासए (अयंपुल नाम आजीविक)

—भग० श १५ । सू १२८

तत्थ णं सावत्थीए णयरीए अयंपुले णामं आजीविओवासए परिवसइ,

अड्ढे जाव अपरिभूए, जहा हालाहला, जाव आजीवियसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

श्रावस्ती नगरीमें अयंपुल नामक आजीविकमत का उपासक रहता था। वह ऋद्धि सपन्न यावत् अपराभूत था। वह हालाहला कुम्भारिन की तरह यावत् आजीविक सिद्धांत से अपनी आत्माको भावित करता हुआ रहता था।

·७ आजीवियसमयस्स (आजीविक समय)

आजीवियसमयस्स णं अयमट्ठे —अक्खीणपडिभोइणो सव्वे सत्ता ; से हंता, छेत्ता, भेत्ता, लुम्पित्ता, विलुम्पित्ता, उद्दवइत्ता आहारमाहारेंति। तत्थ खलु इमे दुवालस आजीवियोवासगा भवंति, तंजहा—१ ताले, २ तालपलंबे, ३ उव्विहे, ४ संविहे, ५ अववहे, ६ उदए, ७ णामुदए, ८ णम्मुदए, ६ अणुवालए, १० संखवालए, ११ अयंपुले, १२ कायरए-इच्चेए दुवालसं आजीविओवासगा अरिहंतदेवतागा, अम्मा-पिउसुस्सूसगा, पंचफलपडिक्कंता, [तंजहा—उंबरेहिं, वडेहिं, बोरेहिं, सतरेहिं, पिलक्खूहिं] पलंडु-ल्हसुणकंदमूलविवज्जगा, अणिल्लंछिएहिं अणक्कभिण्णेहिं गोणेहिं तसपाणविवज्जिएहिं छित्तेहिं वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति ×××।

—भग० श ८। उ ५। सु २४१, २४२

आजीविक (गोशालक) के सिद्धांत का यह अर्थ है कि—प्रत्येक जीव अक्षीण परिभोगी अर्थात् सचित्ताहारी है। इसलिए वे लकड़ी आदि से पीटकर, तलवार आदि से काटकर, शूलादि से भेदन कर, पाख आदि को कतरकर, चमड़ी आदि को उतारकर और विनाश करके खाते है, अर्थात् ससार के दूसरे प्राणी इस प्रकार जीवों को हननेमे तत्पर हैं परन्तु आजीविक मत मे ये बारह आजोविसकोपासक कहे गये हैं—यथा, १ ताल, २ तालप्रलम्ब ३ उद्विध, ४ संविध, ५ अवविध, ६ उदय, ७ नामोदय, ८ नर्मोदय, ६ अनुपालक, १० शंखपालक, ११ अयम्बुल और १२ कातर।

ये बारह आजीविक के उपासक हैं। इनका देव गोशालक हैं। वे माता-पिता की सेवा करने वाले हैं। ये पाँच प्रकार के फल नहीं खाते, यथा—१ उम्बरके फल, २ बड़के फल, ३ बोर, ४ सतर (शहतूत) फल और ५ पीपल का फल।

वे प्याज, लहसुन और कदमूलके विवर्जक (त्यागी) होते है। वे अनिलांछित (खसी नही किये हुए) और नहीं नाथे हुए। जिनका नाक बिंधा हुआ नहीं—ऐसे बैलों द्वारा त्रसप्राणी की हिंसा रहित व्यापार मे आजीविका करते हैं।

'८ उप्पलो परिव्वायओ (उत्पल परिव्राजक) –त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ३ श्लो १२५
—आव० निगा ४६३ । टीका

भगवान् पार्श्वनाथके साधुओं के साथ रहने वाला उत्पल परिव्राजक ।

त्रिशलाका० --नाम्ना तत्रोत्पलः पार्श्वतीर्थसाधुवरस्तदा ।

परिव्राडष्टांगमहानिमित्तज्ञानपण्डितः ॥

पार्श्वनाथके तीर्थ के साधुओं के साथ रहने वाला उत्पल नामक अष्टांग निमित्तके ज्ञानमें पंडित एक परिव्राजक—

भगवान् महावीरके अस्थिग्रामके चतुर्मासमें वहाँ आया था ।

'६ कालोदाई (कालोदायी)

१० सेलोवाई (शैलोदायी)

'११ सेवालोवाई (शैवालोदायी)

'१२ उदए (उदय)

१३ नामुदए (नामोदय)

'१४ नम्मुदए (नर्मोदय)

'१५ अण्णवालए (अन्यपालक)

'१६ सेलवालए (शैलपालक)

'१७ संखवालए (शंखपालक)

'१८ सुहत्थी गाहावई (सुहस्ती गृहपति)

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहेनामं नगरे होत्था—वण्णओ । गुणसिलए चेइए—वण्णओजाव पुढविसिलापट्टओ । तस्सणं गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामंते बहवे अण्णउत्थिया परिवसति, तंजहा—कालोदाई सेलोवाई, सेवालोवाई, उदए, नामुदए, नम्मुदए अण्णवालए सेलवालए, संखवालए, सुहत्थी गाहावई ।
—भग० श ७ । उ १० । सु २१२

उसकाल उस समय मे राजगृह नगर था । गुणशील नामक चैत्य था । उसमे पृथ्वी शिलापट्ट था । उस गुणशील चैत्यके पास थोड़ी दूर पर बहुत से अन्यतीर्थी रहते थे - कालोदायी, शैलोदायी, शैवालोदायी, उदय, नामोदय, नर्मोदय, अन्यपालक, शैलपालक, शंखपालक और सुहस्ती गृहपति ।

'१६ खंधए परिव्वायगे (स्कन्दक परिव्राजक) —भग० श २ । उ १ । सु २४

तत्थणं सावत्थीए नयरीए गद्दभालस्स अंतेवासी खंदए नामं कच्चायणसगोत्त' परिव्वायगे परिवसइ ।

कृतंगला नगरीके पास मे श्रावस्ती नामकी नगरी थी। उस श्रावस्ती नगरीमे कात्यायन गोत्री गर्दभाल नामक परिव्राजक का शिष्य स्कन्दक नामक परिव्राजक (तापस) रहता था।

कालान्तर में स्कंदक परिव्राजक ने श्रमण भगवान् के पास प्रव्रज्या ग्रहण की।

·२० दिसाचरा (दिशाचर) — भग० श १५ । सु ३, ४

तए णं तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अण्णयाकदाइ इमे छ दिसाचरा अंतियं पाउब्भविस्था, तंजहा—साणे, कलंदे, कण्णियारे, अच्छिद्दे, अग्गिवेसायणे, अज्जुणे गोमायुपुत्ते। तएणं ते छ दिसाचरा अट्ठविहं पुव्वगयं मग्गदसमं सएहिं सएहिं मइदंसणेहिं णिज्जुहंति, णिज्जुहित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं उवट्ठाइंसु।

किसी दिन मंखलिपुत्र गोशालक के पास निम्नलिखित छह दिशाचर आये। यथा—१—शान, २—कलन्द, ३—कर्णिकार, ४—अच्छिद्र, ५—अग्निवेश्यायन और ६—गोमायुपुत्र अर्जुन। इन छह दिशाचरोंने पूर्वश्रुत मे कहे हुए आठ प्रकार के निमित्त, नौवां गीतमार्ग तथा दसवां नृत्यमार्ग को अपने-अपने मतिदर्शन से पूर्वश्रुत मे से उद्धृत कर मंखलिपुत्र गोशालक का शिष्यभाव से आश्रय ग्रहण किया।

शान, कलन्द आदि छह दिशाचर श्रमण भगवान् महावीर के संयम से पतित (पार्श्वस्थ) शिष्य थे—ऐसा प्राचीन टीकाकार कहते हैं और चूर्णिकार तो इन्हें भगवान् पार्श्वनाथके सन्तानिये शिष्य माना है।

·२१ दुइज्जंतक तापस (दुइज्जंतक तापस) — आव० निगा० ४६२ । पूर्वार्ध
त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ४६

आव—दूइज्जंतग पिउणो वयंस तिव्वे अभिग्गहेपंच।

टीका—विहरतो मोराकसन्निवेशं प्राप्तस्य तन्निवासी दूइज्जंतकाभिधानपाषंडस्था दूइज्जंतका एवोच्यते, पितु—सिद्धार्थस्य वयस्यो—मित्रं स भगवन्तमभिवाद्य वसतिं दत्तवान्।

उन तापसों का कुलपति भगवान् के पिता का मित्र था।

अस्थिग्राम के प्रथम चतुर्मासके पूर्व भगवान् महावीर का मोराकग्राम मे पदार्पण हुआ। वहाँ दूइज्जतक तापस रहते थे।

·२२ पुसो सामुद्दितो (पुष्य सामुद्रिक) त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ३४६
आव० निगा ४७१ । मलय टीका

आव०—तत्थ पुसो नाम सामुद्दितो, सो ताणि पासिऊण चिंतइ-एस चक्कवट्टी एगागी × × × सामीवि थूणागसंनिवेसस्स बाहिं पडिमं ठितो। × × ×

थूणाए बहिं पुसो लक्खणमब्भितरे य देविंदो।

—आव० निगा ४७२। पूर्वार्ध

मलय टीका—थूणायां सन्निवेशे बहिर्भगवान् प्रतिमास्थित, पुष्यो लक्षणं निरीक्षितवान् अभ्यंतरं च लक्षणं देवेन्द्रोऽचकथत्।

भगवान् महावीरके धूलिमें पादचिह्न को देखकर पुष्य सामुद्रिकने चिंतन किया कि—इस मार्गसे चक्रवर्ती अकेला ही गया हुआ मालूम देता है। आभ्यंतर लक्षण देवेन्द्रने पुष्य सामुद्रिक को कहा।

·२३ पूरणे बालतवस्सी (पूरणबालतपस्वी) —भग० श ३। उ २। सू १०७

×××। तएणं से पूरणे बालतवस्सी बहुपडिपूण्णाइं दुवालसवासाइं परियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए ××× कालमासे कालं किच्चा चमर-चंचाए रायहाणीए उववायसभाएजाव इदंत्ताए उववण्णे।

पूरण बालतपस्वी पूरे बारह वर्ष तक तापप पर्यायका पालनकर, एकमास का संलेखना करके आत्माको सेवित करके काल के अवसर पर कालकरके चमरचंचा राजधानी की उपपात सभा मे इन्द्रके रूप मे उत्पन्न हुआ।

·२४ पूरणो कस्सपो (पूरण काश्यप) —अंगुत्तरनिकाय ९। ४। ७ पृ ९६, ९७

अथ खो द्वे लोकायन्तिका ब्राह्मणा येन भगवा तेनुपसंकमिंसु ; उपसंकमित्वा भगवता सद्धिं समोदिंसु ×××।

पूरणो, भो गोतम, कस्सपो सब्बञ्जू सब्बदस्सावी अपरिसेसं आणदस्सनं पटिजानाति।×××।

दो लोकायतिक ब्राह्मण भगवान् के पास आये और कहा कि भंते। पूरण काश्यप सर्वज्ञ सर्वदर्शी ज्ञान दर्शन का अधिकारी आपको मानता है।

·२५ पोग्गले परिव्वायए (पुद्गल परिव्राजक) —भग० श ११। उ १२। सू १८६

तेणं कालेणं तेणं समएणं आलभियानामं नगरी होत्था—वण्णओ। तत्थणं संखवणे नामं चेइए होत्था—वण्णओ। तस्सणं संखवणस्स चेइयस्स अदूरसामंते पोग्गले नामं परिव्वायए—रिउव्वेदजजुव्वेद जाव बंभण्णएसु परिव्वायएसु य नएसु सुपरिनिट्ठिए छट्ठंछट्ठेणं 'अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं' बाहाओ जाव आया-वेमाणे विहरइ।

उस काल उस समय मे आलभिका नामकी नगरी थी। वहाँ शंखवन नामक उद्यान था। उस शंखवन उद्यान से थोड़ी दूर 'पुद्गल' नामक परिव्राजक रहता था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद

आदि यावत् बहुत से ब्राह्मण विषयक नयों मे कुशल था। कालान्तर मे पुद्गल परिव्राजक को विभंगज्ञान भी समुत्पन्न हुआ। अंत मे भगवान् महावीर के द्वारा अपनी शंका का निवारण हो जाने पर स्कंदक की तरह त्रिदंड, कुंडिका एवं भगवा वस्त्र छोड़कर प्रव्रजित हुए।

·२६ वेसियायणे बालतवस्सी (वेश्यायन बालतपस्वी) — भग० श १५। सू० ६०
आव० निगा ४६२। मलयटीका
त्रिशलाका पर्व १२। सर्ग ४। श्लो १२०

(क) भग०—तएणं अहंगोयमा ! गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं सद्धिंजेणेव कुम्मगगामे नगरे तेणेव उवागच्छामि। तएणंतस्स कुम्मग्गामस्स नगरस्स बहिया वेसियायणे नामं बालतवस्सी ××× विहरइ।

श्रमण भगवान् महावीर साधना कालमे कूर्मग्राम नगर में आये। उस समय कूर्मग्राम के बाहर वैश्यायन नामक बाल तपस्वी रहता था।

(ख) मगहा गोब्बरगामे गोसंखी वेसियाण पाणामा।
कुम्मागामायावण गोसाले कोवण पउट्टे॥

आव० निगा ४६३

मलय टीका—मगधजनपदे चंपाराजगृहयोरपान्तकाले गोब्बरग्रामे गोशङ्खी कौटुम्बिकः, तस्योक्तप्रकारेण वैश्यायन्नो नामपुत्रः, तस्य प्राग्व्यावर्णित कारणवशतः प्राणामानाम प्रव्रज्या, ततो यथामुखं विहरतस्तस्य तत्कालं कूर्म्मग्रामे आतापनावतो गोशालः कोपनं—कोपोत्पादनमकार्षीत्, भगवता च गोशालस्यानुकम्पया रक्षा कृता, ततस्तेन भगवता सह कूर्म्मग्रामात् सिद्धार्थ पुरंगच्छता अपान्तराले पूर्वोत्पाटितं तिलस्तम्बं भगवन्तमापृच्छ्य भगवता च सोऽयं तिलस्तम्बो निष्पन्न इति।

मगधजनपद मे गोब्बर ग्राममे गोशंखी कौटुम्बिक रहता था। उसके वैश्यायन नाम एक पुत्र था। उसने प्राणामा प्रव्रज्या ग्रहण की। जब कूर्मग्राम मे भगवान् महावीर पधारे थे उस समय वह आतापना मे था।

·२७ सोमिले माहणे (सोमिल ब्राह्मण) — भग० श १८। उ १०। सू २०४

तत्थणं वाणियगामे णयरे सोमिले णामं माहणे परिवसइ, अड्ढे-जाव अपरिभूए, रिउव्वेद जाव सुपरिणिट्ठिए पंचण्हं खंडियसयाणं सयस्स य कुंडुबस्स आहेवच्चं जाव विहरइ।

वाणिज्य ग्राम नगरमे सोमिल नामक ब्राह्मण रहता था। वह आढ्य यावत् अपराभूत था और ऋगवेद यावत् ब्राह्मणों के शास्त्रों मे कुशल था। उसके पाँच सौ शिष्य थे।

कालान्तर मे उस पर भगवान् की वाणी का प्रभाव पड़ा—फलस्वरूप श्रमणोपासक भी हुआ। कालान्तर मे भगवान्के पास दीक्षा भी ग्रहण की।

'२८ हालाहला कुंभकारी (हालाहलाकुंभारण) —भग० श १५। सू १, २

तत्थणं सावत्थीए नयरीए हालाहला णामं कुंभकारी आजीविओवासिया परिवसइ। ×× ×। तेणं कालेणं तेणं समएणं गोसाले मंखलिपुत्ते चउव्वीस-वासयरियाए हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणंसि अजीवियसंघसंपरिवुडे आजीवियसमणं अप्पाण भावेमाणे विहरइ।

श्रावस्ती नगरी मे आजीविक (गोशालक) मतकी उपासिका हालाहला नामक कुंभारण रहती थी।

उस काल, उस समय चौबीस वर्षकी दीक्षा पर्याय वाला मखलिपुत्र गोशालक, हालाहला नामक कुंभारण की कुंभारापण (मिट्टी के बर्तनों की दूकान) मे आजीविक संघ से परिवृत्त हुआ आजीविक सिद्धांत से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरता था।

'०८'३ विभिन्न श्रेणी के अन्तेवासी

·०१ पार्श्वनाथ भगवान् के श्रमण— श्रमणियाँ

'१ आणंदरक्खिए (आनंदरक्षित) —भग० श २। उ ५। सू १०२

×××। तत्थणं आणंदरक्खिए नामं थेरे। ×××।

भगवान् पार्श्वनाथके शिष्यानुशिष्य आनन्दरक्षित स्थविर थे।

'२ कालिय थेरे (कालिकस्थविर) भग० श २ उ ५। सू १०२

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जा थेरा भगवतो ×××। तत्थणं कालियपुत्ते नामं थेरे ×××।

उस काल उस समय मे भगवान् पार्श्वनाथके शिष्यानुशिष्य भगवान् के कालिक पुत्र नामक स्थविर थे।

'३ कासवे (काश्यप) —भग० श २। उ ५। सू १०२

××× तत्थणं कासवे नामं थेरे ×××।

काश्यप स्थविर थे।

'४ केसीकुमार समणे (केशीकुमारश्रमण) —राय० सू १४७

तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जे केसीनाम कुमारसमणे ××× संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

उस काल उस समय में पार्श्वपत्य अणगार केशी कुमार श्रमण संयम और तपसे अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते थे।

·५ नंदिसेणाथेरा (नंदिसेन स्थविर) —आव० निगा ४८३। टीका

ततो भयवंतंबायं नामगामो, तत्थ आगच्छति, तत्थ नंदिसेणानाम थेरा बहुस्सुया बहुपरिवारा पासावच्चिज्जा, तेऽविजिणकप्पस्स परिकम्मं करेंति।

साधना काल में जब भगवान् महावीर तंबाक ग्राम पधारे। वहाँ पार्श्वनाथ भगवान् के संतानीय नंदिसेन स्थविर बहुश्रुत बहु परिवार से पधारे थे।

·६· मुनिचंद्राचार्य - त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो ४४७ ४४८

·७ सूरिवर्धना

तच्छालायां पार्श्वनाथशिष्यः शिष्यगणावृत्तः।
बहुश्रुतो मुनिचंद्राचार्य आसीत्तदा स्थितः॥
शिष्यं गच्छे स्थापयित्वा स सूरिर्वर्धनाभिधम्।
जिनकल्पप्रतिकर्म विदधेऽत्यन्तदुष्करम्।

कुमारसंनिवेशमें कुम्भकार की शाला में मुनिचन्द्राचार्य नामक एक पार्श्वनाथ प्रभु के बहुश्रुत शिष्य बहुत शिष्य वर्ग के साथ थे। वे स्वय के शिष्य वर्द्धन नामक सूरिको गच्छ में मुख्यरूप से स्थापन कर जिनकल्प स्वीकार किया।

·८ मेहिले थेरे (मेधिल स्थविर) —भग० श २। उ ५। सू १०२

× × ×। तत्थणं मेहिले नामं थेरे ते समणोवासए × × ×।

पार्श्वनाथके शिष्यानुशिष्य मेघिल स्थविर थे।

·९,१० सोमा-जयंती —आव० निगा० ४७७, त्रिशलाका० पर्व ३। श्लो ४८२

त्रिशलाका—पार्श्वशिष्ये उत्पलस्य जामी सोमा जयंतिके।
साधुवर्यौ परिव्राजौ चोराकेऽवासतां तदा।

सोमा और जयंती नामक (उत्पल निमित्तज्ञ की बहिन) पार्श्वनाथ भगवान् की शिष्या हुई थी। कालान्तर में साधुत्वको छोड़कर वे दोनों परिव्राजिका हुई थी। कुमारग्राम में भगवान् महावीरके साधना काल में वे मिली थी।

·११ बुद्धकित्तिमुणी (बुद्धकीर्ति मुणी) —दर्शनसार श्लो ६-८

सिरिपासणाहतित्थे सरयूतीरे पलासणयरत्थो
पिहियासवस्स सिस्सो महासुरो बुद्ध कित्तिमुणी

गौतम बुद्ध को जैन श्रमण पिहिताश्रवने सरयूनदी के तटपर पलाश नामक ग्राम में श्री पार्श्वनाथके संघमें दीक्षा दी। और उनका नाम बुद्धकीर्ति रखा। कुछ समय बाद वे संघसे अलग हो गये। और एक वस्त्र पहनकर अपने नवीन धर्मका उपदेश करने लगे।

'१२,'१३ प्रगल्भा-विजया परिव्राट —त्रिशलाका पर्व १० सर्ग ३ । श्लो ५८३
— आव० निगा ४८३ । मलयटीका

त्रिशलाका—पार्श्वशिष्ये च प्रगल्भाविजये प्रोज्भितव्रते ।
निर्वाहाय परिव्राडत्वं प्रपन्ने तत्र तिष्ठतः ॥
—आव० निगा ४८३ मलय टीका

भगवान् पार्श्वनाथ की प्रगल्भा और विजया नामक दो शिष्या --जिन्होंने चारित्रको छोड़कर निर्वाह के लिए परिव्राजिका हो गई थी । उन्होंने भगवान् के छद्मस्थ काल मे कपिकाग्राममे दर्शन किये ।

'२ श्रावकवर्ग

तुंगिका के श्रावक

तेणं कालेणं, तेणं समएणं तुंगिया नामं नगरी होत्था, वण्णओ । तीसेणं तुंगियाए नगरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे पुप्फवत्तिए नामं चेइए होत्था, वण्णओ । तत्थणं तुंगियाए नयरीए बहवे समणोवासया परिवसंति ।
—भग० श २ । उ ५ । सू १२ से १

तुगिका नामक नगरी थी । उस तुगिका नगरी मे बहुत से श्रमणोपासक रहते थे ।

०८४ व्यक्ति विशेष

'१ अंजू (अंजू) —विवा० श्रु १ । अ १० । सू १

तत्थणं धणदेवे नामं सत्थवाहे होत्था-अड्ढे । पियंगू नामं भारिया । अंजू दारिया जाव उक्किट्ठसरीरा ।

वर्द्धमान नगरमे धनदेव सार्थवाह रहता था । उसकी स्त्रीका नाम प्रियगू था । उसकी अजू नामक पुत्री थी ।

'२ उज्भियए (उज्भितक) —विवा० श्रु १ । अ २ । सू १०

तस्सणं विजयमित्तस्स पुत्ते सुभद्दाए भारियाए अत्तए उज्भियए नामं दारए होत्था ।

वाणिज्यनगर मे विजयमित्र—सार्थवाह रहता था । उसकी पत्नीका नाम सुभद्रा था । उसके उज्भितक नामक एक पुत्र था ।

'३ अभग्गसेण (अभग्नसेन) — विवा० श्रु १ अ ३ । सू ११

तस्सणं विजयस्स चोरसेणावइस्स पुत्ते खंदसिरी भारियाए अभग्गसेणे नामं दारए होत्था ।

पुरिमताल नगर के बाहर चोरपल्ली मे विजय नामक चोरसेनापति था । उसके स्कंद श्री नामकी भार्या थी । अभग्नसेन नामक एक पुत्र था ।

·४ असिबंधकपुत्तो गामणि (असिबंधक पुत्र ग्रामणी)

—संयुत्तनिकाय, भाग २ । पृ० ५८५-८६

एकं समयं भगवा नालन्दायं विहरति पावारिकम्बवने । अथ खो असिबंधकपुत्तो गामणि निगण्ठसावको येन भगवा तेनुपसंकमि × × × ।

एक समय भगवान् नालंदा पधारे । नातपुत्र का श्रावक असिबंधक पुत्र ग्रामणी वहाँ आया था ।

·५ उबंरदत्त (उबंरदत्त) विवा० श्रु १ । अ ७ । सू ५

तस्सणं सागरदत्तस्स पुत्ते गंगदत्ताए भारियाए अत्तए उंबरदत्ते नामं दारए होत्था ।

पाटलीसंड नगरमे सागरदत्त सार्थवाह रहता था । उसकी भार्या का नाम गंगदत्ता था । उसके उंबरदत्त नामक एक पुत्र था ।

·६ काल सौकरिक —त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ९ । श्लो ६३, १३८, १४५

× × ×

काल सौकरिकेणापि क्षुते मा जीव मा मृथाः ॥ ६३ ॥

भगवान् महावीरके समवसरण मे कालसौकरिकको छींक आने पर कोढ़ की काया से गलित पुरुष बोला कि न जीना है, न मरना है । वह गलित पुरुष दुर्दुरांकदेव था ।

जीवन् पापपरो मृत्वा सप्तमं नरकं व्रजन् ।

कालसौकरिकस्तेन प्रोक्तो मा जीव मा मृथा ॥ १३८ ॥

जीने पर पाप कर्म करेगा, मरने पर सप्तम नरक जायेगा । अतः दुर्दरांकदेव ने कालसौकरिक को छींक आने पर कहा कि जीना भी नहीं है, मरना भी नहीं है ।

कालसौकरिकेणाथ सूना मोचयसे यदि ।

तदाते नरकान्मोक्षो राजन्नायेत माऽन्यथा ॥ १४५ ।

भगवान् ने श्रेणिक राजा को कहा कि यदि तुम कालसौकरिक से कसाई का काम छुटादो तो तुम नरक नही जाओगे—मोक्ष प्राप्त करोगे ।

·७ चित्तो गहपति (चित्र गृहपति) —संयुत्त निकाय ४ । ८ ८, पृष्ठ २६५-६६

तेन खो पन समयेन निगण्ठो नाटपुत्तो मच्छिकासण्डं अनुप्पत्तो होति महतिया निगण्ठपरिसाय सद्धिं । अस्सोसि खोचित्तो गहपति—"निगण्ठो किर नाटपुत्तो मच्छिकासण्डं अनुप्पत्तो महतिया निगण्ठपरिसाय सद्धिं" ति × × × ।

एक बार निगंठ नातपुत्त मच्छिकासंड मे अपनी बड़ी मंडली के साथ ठहरे हुए थे । गृहपति चित्र भी वहाँ आया था ।

·८ जम्बू (जम्बू) —परिशिष्ट पर्व सर्ग १ । श्लो २६२ से २६४, २८७ से २८६

अह्नोऽमुष्यास्सप्तमेऽह्नि च्युत्वा भावी पुरे तव ।

श्रेष्ठि ऋषभदत्तस्य जंबूः पुत्रोऽन्त्यकेवली ।। २६४ ।।

(भगवान् महावीर की आयु जब छप्पन वर्ष की थी) तब श्रेणिक राजा को कहा कि आज से सातवें दिन ऋषभदत्त भार्या के उदर मे विद्युन्माली देव आयेगा और वह आगे चलकर जंबू नामक अंतिम केवली होगा ।

भगवान् महावीर के निर्वाण के अनतर सुधर्मा स्वामी के हाथों उनकी दीक्षा होती है ।

·६ जाइअंधपुरिसे (जातिअंधपुरुष) —विवा० श्रु १ अ १ । सू ६, १८

तेणं कालेणं तेणं समएणं मियग्गामे नामं नयरे होत्था वण्णओ ।

तए णं से जाइअंधे पुरिसे तं महयाजणसद्दं च (जणवूहंए जणबोलं च जण-कलकलं च) सुणित्ता । × × × ।

मृगग्राम मे जाति अंध पुरुष रहता था । दड, पुरुष आदि के सहारे जाति अंध पुरुषने भगवान् महावीर के दर्शन किये ।

·१०,·११ जिणपालिए य जिणरक्खिए (जिनपालित-जिनरक्षित)

—नाया० श्रु १ । अ ६ । सू २, ३

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी । × × × तत्थणं मायंदी नामं सत्थवाहे परिवसइ—अड्ढे । तस्स णं भद्दा नामं भारिया । तीसे णं भद्दाए अत्तया दुवे सत्थवाहदारया होत्था, तंजहा—जिणपालिए य जिणरक्खिए य ।

चपानगरीमे माकदी नामक सार्थवाह बसता था । उसके भद्रा नामक भार्या थी । उसके दो पुत्र थे —जिनपालित और जिनरक्षित । कालान्तर मे जिनपालितने श्रमण भगवान् महावीरसे प्रव्रज्या ग्रहण की ।

·१२ देवदत्ता (देवदत्ता) —विवा० श्रु १ । अ ६ । सू ३, ४

तत्थ णं रोहीडए नयरे दत्ते नामं गाहावई परिवसइ—अड्ढे । कण्हसिरी भारिया । तस्सणं दत्तस्स धूया कण्हसिरीए अत्तया देवदत्ता नामं दारिया होत्था ।

रोहीतक नगरमे दत्त गाथापति रहता था । उसकी स्त्रीका नाम कृष्ण श्री था । उसके देवदत्ता नाम पुत्री थी ।

·१३ देवशर्मा द्विज —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १३ । श्लो २१८ से २२१

स्वामी तद्दिनयामिन्यां विदित्वा मोक्षमात्मनः ।

दध्यावहो गौतमस्य मयि स्नेहो निरत्ययः ।।

स एव केवलज्ञानप्रत्यूहोऽस्य महात्मनः।
स च्छेद्य इति विज्ञाय निजगादेति गौतमम् ॥
देवशर्मा द्विजो ग्रामे परस्मिन्नति स त्वया।
बोध प्राप्स्यति तद्गतोस्तत्र त्वं गच्छ गौतम।
यथाऽऽदिशति मे स्वामीत्युदित्वा च प्रणम्य च।
जगाम गौतममुनिस्तथा चक्रे प्रभोर्वचः ॥

कार्तिक कृष्णा अमावस्या को भगवान् ने रात्रि मे अपना परिनिर्वाण जानकर गौतम गणधर को देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए भेज दिया। (अपापा नगरीके नजदीक अन्य ग्राम मे देवशर्मा ब्राह्मण रहता था।) वह तुम्हारे से प्रतिबोध प्राप्त करेगा।

·१४ दुर्गन्धा —त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ७। श्लो १३७, १५३ १५४

राजगृह वासी एक वेश्या की लडकी थी। वेश्याने दुर्गंधाको एकान्त में विसर्जन कर दिया था। यही आगे जाकर श्रेणिक राजा की पत्नी हुई।

दुर्गन्धाग्राश्च गन्धोऽथ कर्मनिजरया ययौ।
आभीर्या चैकया दृष्टोपाददे साऽनपत्यया ॥१५३॥
आभीर्योदरजातेव पाल्यमाना क्रमेण सा।
बभूव यौवन प्राप्ता रूपलावण्यशालिनी ॥ १५४॥

पूर्वकर्मकी निर्जरा होने से दुर्गन्धाकी गध समाप्त हो गयी। किसी वंध्या आभीरी ने उसे पुत्री की तरह मानकर घर ले आया। उसका नाम आभोरी कुमारी रखा।

आगे जाकर यही आभीरा कुमारी ने भगवान् महावीर के पास प्रव्रज्या ग्रहण की।

·१५ धन्वभृत्पुमान् (धनुष्यधारी पुरुष)

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ८। श्लो १८८ से १९१

सर्वज्ञोऽसाविति जनाच्छ्रुत्वैको धन्वभृत्पुमान्।
संशयं मनसाऽपृच्छद दूरस्थो जगद्गुरुम् ॥ १८८॥
तं बभाषे जगन्नाथो वचसा पृच्छ संशयम्।
अन्येऽपि प्रतिबुध्यन्ते भव्यसत्त्वा अमी यथा ॥१८९॥
इत्युक्तेऽपि त्रपानिम्नो व्यक्तं वक्तुमनीश्वरः।
स ऊचे भगवन् या सा सा सेति प्रमिताक्षरम् ॥१९०॥
एवमेतदिति स्वामी प्रोचे मुकुलिताक्षरम् ॥

एकबार भगवान् महावीर कौशाम्बी नगरी पधारे। एक धनुष्यधारी पुरुष भगवान् के पास आया। मन द्वारा स्वयका सशय पुछा। भगवान् ने कहा कि हे भद्र ! तुम्हारे संशयका

उत्तर वाणी द्वारा दिया जाय जिससे अन्य लोग भी प्रतिबोध को प्राप्त हो फिर वह पुरुष लज्जावश स्पष्ट नहीं बोला परन्तु थोड़ा बोला। हे स्वामी! यासा, सासा कहा। प्रत्युत्तर मे भगवान् ने एवमेव कहा।

·१६ धारिणी —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ५११

दधिवाहनराजस्य धारिणीं नामतः प्रियाम् ।
वसुमत्या समं पुत्र्या तत्र कोऽप्यौष्ट्रिकोऽग्रहीत् ।

चंपानगरी के दधिवाहन राजाकी पत्नी का नाम धारिणी था। वसुमती उसकी पुत्री थी। वसुमती का अपर नाम चदना भी पड़ा। भगवान महावीर के शासन मे प्रथम शिष्या हुई थी।

·१७ णंदिवद्धण (नंदीवर्धन) —विवा० श्रु १ । अ ६ । सू २

तेणं कालेणं तेणं समएणं महुरा नामं नयरी। भंडीरे उज्जाणे। सुदरिसणे जक्खे। सिरिदामे राया। बंधुसिरी भारिया। पुत्ते नंदिवद्धणे कुमारे—अहीण जाव जुवराया।

मथुरा नगरीके दाम राजा की पत्नी का नाम बंधुश्री था। उसके नंदीवर्धन एक पुत्र था। वह युवराज था।

·१८ पिङ्गल कोच्छो ब्राह्मणो (पिंगल कोच्छ ब्राह्मण) —संयुत्तनिकाय २-१०-४४-४५

एवं सुतं! एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो पिंगल कोच्छो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसंकमि। × × ×

एक समय भगवान् श्रावस्ती के जेतवन मे विचरण करते थे। वहाँ पिंगल कच्छ ब्राह्मण आया था।

·१९ पहावइ (प्रभावती)
·२० पद्मावती
·२१ मिगावई (मृगावती)
·२२ जेट्ठ (ज्येष्ठा)
·२३ सुज्येष्ठा
·२४ चेल्लणा
·२५ पियकारिणी (प्रियकारिणी)
·२६ सुप्पइ (सुप्रभादेवी)

'२७, '२७क चंदण (चंदना), शिवा—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ६। श्लो १८४,१८६,१८७
वीचवि० संधि ५, कड १

(क) वैशालीति श्रीविशाला नगर्यस्त्यगरीयसी ॥ १८४ ॥
पृथग्राज्ञीभवास्तस्य बभूवुः सप्त कन्यकाः।
सप्तानामपि तद्रा ज्यांगानां सप्तेवदेवता ॥ १८६ ॥
प्रभावती पद्मावती मृगावती शिवाऽपि च।
ज्येष्ठा तथैव सुज्येष्ठा चेल्लणा चेति ताः क्रमात् ॥ १८७ ॥

वैशाली का राजा चेटक था। पृथा उसकी पत्नी थी। श्वेताम्बर मतानुसार उसके सात पुत्रियाँ थी—प्रभावती, पद्मावती, मृगावती, शिवा, ज्येष्ठा, सुज्येष्ठा व चेल्लणा।

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। चेल्लणा देवी। सामी समोसढे। परिसा निग्गया जाव परिसा पज्जुवासइ।
—नाया० श्रु २। अ १। सू ९

उस काल उस समय मे राजगृह नगर था। श्रेणिक राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम चेल्लणा था। भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। चेल्लणा देवी श्रेणिक राजा के साथ भगवान् महावीर के दर्शनार्थ गयी।

(ग) इतश्च श्रेणिकोऽपृच्छत् समये परमेश्वरम्।
एकपत्नी किमनेकपत्नी वा चेल्लणा प्रभो!
स्वाम्याख्यद्धर्म पत्नी ते चेल्लणाहि महासती।
तामन्यथा मा शंकिष्ठाः शीलालंकारशालिनीम्।
—त्रिशलाका० पर्व १० सर्ग ७। श्लो ३४, ३५

श्रेणिक राजा को भगवान् ने कहा कि हे राजन्! तुम्हारी धर्मपत्नी चेल्लणा महासती है और शीलालंकार से शोभित है।

नोट—वीतभय नगरके उदायनका विवाह प्रभावती के साथ, चंपापति दधिवाहन का विवाह पद्मावती के साथ, कौशांबिक नगरी के राजा शतानिक काविवाह मृगावतीके साथ, उज्जयिनी के राजा चडप्रद्योत के साथ, शिवाका विवाह, कुडग्राम के अधिपति नंदिवर्धनके साथ ज्येष्ठा का विवाह और राजगृह के राजा श्रेणिक के साथ चेल्लणा का विवाह हुआ।

(घ) सेयंसिणि सूहव पियकारिणी।
अवर मगावइ जण-मण-हारिणि ॥
सुप्पह देवि पहावइ चेल्लिणि।
बाल-मराल-लील-गइ-गामिणि।
जेट्ठविसिट्ठ भडारी चंदण।

—वीरचि० संधि ५। कड १

वैशाली नगर का राजा चेटक था। दिगम्बर मतानुसार उसकी पत्नीका नाम सुभद्रा था। उनके सात पुत्रियाँ थी —

१- श्रेयांसिनी सुभगा प्रियकारिणी, २—जनमनोहारिणी मृगावती, ३ सुप्रभा देवी, ४—प्रभावती, ५—चेलिनी, ६—बालहसलीलागामिनी ज्येष्ठा और ७- विशेष रूप से पूज्यचंदना।

नोट—श्वेताम्बर मतानुसार चदना चपानगरी के दधिवाहन राजाकी पुत्री थी। श्रेयांसिनी सुभगा प्रियकारिणी चेटक राजा की बहन थी (वर्धमान महावीर की माता थी।)

·२८ महाकाल आदि नव कुमार —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १२ । श्लो २४०, २४१

चंपानाथेनाभिषिक्तं सेनानीत्वेऽपरेऽहनि ।
महाकाल कालमिव मारयामास चेटकः ।
अष्टौ सेनापतीनन्यानपि श्रेणिकनन्दनान् ।
एकैकमहन्येकैकस्मिन् पूर्ववच्चेटकोऽवधीत् ।

द्वितीय दिन कूणिक के सेनापति के पद पर कालका छोटा भाई महाकाल संग्राम में आया। वह भी चेटक राजाके द्वारा मारा गया। इसी प्रकार सुकाल आदि आठ भाई भी एक-एक दिन (श्रेणिक के नदन) चेटक के द्वारा मारे गये।

·२९ मागधियं गनियं —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १२ । श्लो ३१५, ३१६

तदा चाशोकचन्द्रस्य खिन्नस्य गगनस्थिता ।
देव्याख्यदीदृशं रुष्टा श्रमणे कूलवालके ।
गनियं चे मागधियं शमने कुलवालके ।
लभिज्ज कूणि एलाए तो वेशालिं गहिस्सिदि ।

कर्मयोगसे कुलबालुक के ऊपर दृष्टमान हुई देवी आकाश मे स्थित होकर कहा कि— हे अशोकचन्द्र—कुणिक ! यदि मागधिका वेश्या कुलबालक मुनिको मोहित करके वश करे तो विशाला नगरी को तुम ग्रहण कर सकते हो।

·३० मियापुत्ते (मृगापुत्र) —विवा० श्रु० १ अ १ । सू १२ से १५

तत्थणं मियग्गामे नयरे विजए नामं खत्तिए राया परिवसइ। ××× ।

तस्सणं विजयस्स खत्तियस्स पुत्ते मियाए देवीए अत्तए मियापुत्ते नामं दारए होत्था—जातिअंधे जातिमूए जातिबहिरे जातिपंगुले हुंडे य वायव्वे। नत्थिणं तस्स दारगस्स हत्था वा पाया वा कण्णावा अच्छी वा नासा वा। केवलं से तेसिं अंगोवंगाणं आगिती आगितिमेत्ते ।

तए णं सा मियादेवी तं मियापुत्त' दारगं रहस्सियंसि भूमिघरंसि रहस्सिएण भत्तपाणेणं पडिजागरमाणी-पडिजागरमाणी विहरइ।

मृगाग्राम नगरमे विजय नामका एक क्षत्रिय राजा निवास करता था। उसके मृगा नाम की रानी थी।

उस विजय क्षत्रियका पुत्र और मृगादेवी का आत्मज मृगापुत्र नामका एक बालक था जो कि जन्म से ही अंधा, गूंगा, बहरा, पंगु, हुण्ड और वातरोगी था। उसके हस्त, पाद, कान, नेत्र और नासिका भी नहीं थी। केवल उन अंगोंपागों का मात्र आकार था।

वह मृगादेवी गुप्तभूमिगृह (मकान के नीचे का घर) में गुप्तरूप से आहारादि के द्वारा इस मृगापुत्र बालक का पालन-पोषण करती हुई जीवन व्यतीत करती थी।

·३१ रेवई गाहावइणी (रेवती गाथापत्नी) —भग० श १५। सू १५१

तए णं तीए रेवईए गाहावईणीए तेणं दव्वसुद्धेणं जाव दाणेण सीहे अणगारे पडिलाभिए समाणे देवाउए णिबद्धे।

रेवती गाथापति ने सारा पाक सिंह अनगार के पात्र में डाल दिया। द्रव्य की शुद्धि युक्त प्रशस्त भावों से दिये गए दानसे सिंह अणगार को प्रतिलभित करने से रेवती गाथापत्नी ने देव का आयुष्य बांधा।

·३२ बहस्सइदत्ते (बृहस्पतिदत्त) — विवा० श्रु १। अ ५। सू ८६

तस्स णं सोमदत्तस्स पुत्ते वसुदत्ताए अत्तए बहस्सइदत्ते नामं दारए होत्था।

कौसाम्बी नगर के राजा का नाम शतानिक था। उसके सोमदत्त नामक पुरोहित था। सोमदत्त की पत्नी का नाम वसुदत्ता था। उसके बृहस्पतिदत्त नामक पुत्र था।

·३३ वरुण नागनत्तुयस्सपियबालवयंसाए (वरुणनागनतुआ का प्रिय बालमित्र) —भग० श ७ उ ६। सू २०६

वरुणस्स णं भंते! नागनत्तुयस्स पियबालवयंसए कालमासे कालं किच्चा कहिंगए? कहिं उववन्ने?

गोयमा! सुकुले पच्चायाते।

वरुणनागनतुआ का एक प्रिय बाल मित्र रथ-मूसल संग्राम में युद्ध करता था। वह एक पुरुष के द्वारा घायल हुआ। वह काल कर सुकुल मे (अच्छे मनुष्य कुल मे) उत्पन्न हुआ।

·३४ श्रीमति —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ७

इतश्च तस्मिन्नगरे (वसन्तपुर) वरश्रेष्ठी महाकुलः ।
देवदत्तोऽभवत्तस्य पत्नी धनवती पुनः ॥ २६३॥
स तु बन्धुमतीजीवश्च्युत्वाऽजनि सुता तयोः ।
सुरूपा श्रीमती नाम श्रीमतीनां शिरोमणिः ॥२६४॥

बसंतपुर नगरमे देवदत्त नामक एक मोटा सेठ रहता था । उसकी पत्नी का नाम धनवती था । बंधुमती का जीव देवलोक से च्यवकर सेठ के पुत्री रूप मे उत्पन्न हुआ । पुत्री का नाम श्रीमती रखा ।

इसी श्रीमती ने आर्द्रक मुनि के मन को चवल कर दिया । उसको पति बनाया । एक पुत्र भी हुआ । पुत्र के बडे होने पर आर्द्रकुमार ने पुन दीक्षा ली ।

·३५ सगड (शकट) —विवा० श्रु १ । अ ४ । सु १०

तस्स ण सुभद्दस्स सत्थवाहस्स पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए सगडे नामं दारए होत्था ।

साहजनी नगरीमे सुभद्र सार्थवाह रहता था । उसकी पत्नी का नाम भद्रा था । उसके शकट नामक पुत्र था ।

३६ सच्चई-सत्यकि नभचर (सत्यकि विद्याधर)

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १२ । श्लो ३८८ से ३९०
—ठाण० स्था ९ सू ६१ । टोका

त्रिशलाका०—इतश्च सत्यकिर्नाम सुज्येष्ठासूर्नभश्चरः ।
दौहित्रश्चेटकस्यागाच्चिन्तयामास चेति सः ।
मातामहप्रजामेतां लुंट्यमानामरातिभिः ।
कथं द्रक्ष्यामि तदिमा नयाम्यन्यत्र कुत्रचित् ।
इति तन्नगरीलोकं सर्वमुत्पाट्य विद्यया ।
निनाय नीलवत्यद्रौ लाललन् पुष्पदामवत् ।

सत्यकि नामक एक खेचर था । वह सुज्येष्ठा का पुत्र और चेटक राजा का दोहित्र था । अपने मातामह को सकट मे देखा । फलस्वरूप मातामह को व प्रजा को विद्या के प्रभाव से नीलवान् पर्वत पर ले गया ।

·३७ सोमविप्र — त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो २

भगवान् महावीरके पिता सिद्धार्थ के मित्र—सोम नामक एक वृद्ध ब्राह्मण—

चारित्ररथ मारूढं विहारप्रस्थितं प्रभुम् ।
वृद्धः पितृसुहृद्विप्रः सोमो नत्वेत्यभाषत ।

चारित्र रूपी रथ में आरूढ होकर जब भगवान् विहार करने लगे, तब उनके पिता का सोम नामक एक वृद्ध ब्राह्मण आया था।

·३८ सोरियदत्त (शौरिकदत्त) —विवा० श्रु० १। अ ८। सू ६

तस्सणं समुद्दत्तस्स मच्छंधस्स पुत्ते समुद्ददत्ताए भारियाए अत्तए सोरियदत्ते नामं दारए होत्था।

शौरिकपुर मे समुद्रदत्त मच्छीमार रहता था। उसको स्त्रीका नाम समुद्रदत्ता था। उसके शौरिकदत्त पुत्र था।

३९ खेडुत —त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ९

इतश्च यः सुदंष्ट्राहिकुमारो नोजुषः प्रभोः।
उपसर्गानकृत स क्वचिद् ग्रामेऽभवद्धली॥१॥
स कृष्याजीवकोऽन्येद्युः सीरेण कष्टुमुर्वराम्॥
यावत्प्रवृत्तस्तावत्तं श्रीवीरो ग्राममाययौ॥२॥
स्वामिना तस्य बोधाय प्रेपितो गौतमोऽवदत्।
किमिदं क्रियते? दैवनियुक्तमिति सोऽब्रवीत्॥३॥
प्रबुद्ध इतिविज्ञाय गौतमस्तमदीक्षयत्॥४॥

छद्मस्थ अवस्था मे जब भगवान् नदी पार किया था। तब सुदंष्ट्रा नागकुमारदेवने भगवान् पर उपसर्ग किये वह देव मरकर खेडुत हुआ। वह कृषि कर्म करके आजीविका चलाता था। जिस समय वह जमीन को छोल रहा था उस ग्राममें भगवान् महावीर पधारे। गौतम को उसे प्रतिबोध देने के लिए भेजा। गौतम के पास दीक्षा भी ग्रहण की लेकिन कुछ समय बाद साधुत्व को छोड़ दिया।

·४०, ·४१ हल्ल-विहल्ल —त्रिशलाका पर्व १०। सर्ग १२ श्लो १०५। ११३

परिव्रजन्त्या त्वभयं नन्दयाकुंडल द्वयम्।
क्षौमद्वयं च तद्दिव्यंदत्तं हल्लविहल्लयोः॥१०४॥
निश्चित्य कूणिकं राज्ये सोऽदाद्धल्लविहल्लयोः।
हारमष्टादशचक्रं गजसचेनकंचतम्॥११३॥

अभय कुमार और नंदा के दीक्षा लेने के समय दिव्य दो कुडल और दिव्य वस्त्र युग्म जो पहले श्रेणिक राजाने दिये थे उन्हें हल्लत्र विहल्ल को दिया। श्रेणिकने कूणिक को राज्य देना उचित समझा अतः हल्ल-विहल्ल को अठारह चक्र का हार और सचेनक हाथी दिया।

·४२ कालकुमारे —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १२ । श्लो २२६, २३६

कूणिकस्य बले कालः कुमारो बलनायकः ।

आदावपि प्रववृते योद्‌धुं चेटकसेनया ।।२२६।।

× × ×

प्रहृत्य चेटकः कालं प्रापयामास पंचताम् ।।२३६।।

दिव्य हार आदि के कारण चेटक पर कूणिक ने चढाई कर दी । कूणिक के सैन्य का नायक अपना छोटा भाई काल कुमार—राजा चेटक के एक ही बाण से मारा गया ।

·४३ नव मल्लई नव लेच्छई गणरायाणो (नव मल्लि-नवलच्छी गणराजा)—निरय० व १

तएणं से चेडए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे नव मल्लई नवलेच्छई कासी-कोसलगा अट्ठारसवि गणरायाणो सद्दावेइ × × × ।

चेटक राजा ने नव मल्लो व नव लच्छी काशीकोसलदेश के अट्ठारह गण राजाओं को कहा—

·४४ धनावहो श्रेष्ठी —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ४७७, ४७८

श्रेष्ठी धनावहो नाम्ना तत्र चाऽऽसीन्महाधनः ।

मूलाऽभिधाना तस्यापि गृहिणी गृहकर्मठा ।।४७७।।

तत्र स्वामी पोषमासबहुलप्रतिपद्दिने ।

दुराचरं दुर्ग्रहं च जग्राहैवमिमग्रहम् ।।४७८।।

कौशाम्बी नगरी मे धनावाह सेठ रहता था । मूला उसकी स्त्री थी । पौष कृष्णा एकम को भगवान् महावीर का वहाँ पदार्पण हुआ ।

४५ नागरथिक —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ६ । श्लो ४६, ४७ पूर्वार्ध

इतश्च तत्रैव पुरे रथिको नाग इत्यभूत् ।

प्रसेनजिन्महीपालचरणाम्भोजषट्पदः ।।४६।।

× × ×

नामधेयेन्न सुलसाऽनलस्मा पुण्यकर्मणि ।

कुशाग्रपुर मे नाग नामक रथिक रहता था । उसकी पत्नी का नाम सुलसा था ।

·४६ नागसेन —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो २८१

पक्षान्ते पारणार्थं च भ्रमन् गोचरचर्यया ।

गृहिणो नागसेनस्य सदने प्रययौ प्रभुः ।।

प्रथम चतुर्मास के बाद पक्षोपवास के पारणार्थ भगवान् महावीर उत्तर चावला ग्राम मे नागसेन के घर पधारे ।

'४७ मातंगपति —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ७ । श्लो ७०,७३,७५

विद्यासिद्धस्य मातंगपतेस्तत्पुरवासिनः ।
पत्न्या अन्येद्युरुत्पेदे माकन्दफलदोहदः ।।७०।।

× × ×

तदैव चेल्लणोद्यानसमीपं मुपेयिवान् ।
अतितुंगान् स मातंगोऽद्राक्षीच्च तान् सदा फलान् ।।७३।।
क्षणादेवाऽवनामन्या विद्यासिद्धः स विद्यया ।
आम्रशाखा नमयित्वा स्वैरमाम्राण्युपाददे ।।७५।।

राजगृह नगर मे एक विद्यासिद्ध मातंगपति रहता था । उसकी स्त्री को एकदा आम्र फल खाने का दोहद उत्पन्न हुआ । चेल्लणा रानी के उद्यान में आम्रफल प्रफुल्लित थे तथा उसने अवनामिनी विद्या के बल से आम्रफल को ग्रहण किया ।

नोट इसी मातंगपति से श्रेणिक राजा ने उन्नामिनी व अवनामिनी विद्या ग्रहण की ।

'४८ वाइलवणिए (वायल वणिक) —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ६०३, ६०४
- आव० निगा ५२१

त्रिशलाका० —नाथोऽथ पालकग्रामे ययौ तत्र त्वदृश्यत ।
वणिजा वायलाख्येन यात्रायै चलतासता ।।६०३।।
असावशकुनं भिक्षुः क्षिप्याम्यस्यैव मूर्धनि ।
इतिहन्तुं प्रभुं पापः स कृष्टवाऽसिमधावत ।

भगवान् पालक ग्राम पधारे । वहाँ वायल वणिक् यात्रा के लिए जारहा था । भगवान् को देखकर उसने अपशकुन समझा । अतः उनके मस्तक पर खड्ग का प्रहार करने का सोचा । खड्ग उठाया —बीच में ही सिद्धार्थ देव ने उसका मस्तक खग से छेद डाला ।

'४९ स्वातिदत्तद्विजन्मनः —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ६०५, ६०६

स्वामी च विहरन् प्राप चंपा नाम महापुरीम् ।।६०५।।
तत्राग्निहोत्रशालायां स्वातिदत्तद्विजन्मनः ।
तस्थौ वर्षाचतुर्मासीं द्वादशीस्वाम्युपोषितः ।।६०६।।

पालक ग्राम से बिहार कर भगवान् चम्पा नगरी पधारे । वहाँ स्वातिदत्त ब्राह्मण की अग्निहोत्र शाला मे बारहवाँ चतुर्मास किया । स्वातिदत्त भगवान महावीर से प्रभावित हुआ ।

'५० संपुलोकंचुकी —त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ५८६, ५८७

दधिवाहनराजस्य संपुलोनाम कंचुकी ।
चंपावस्कंद आनीतो राज्ञा मुक्तस्तदैव हि ॥
तत्रायातो वसुमतीं दृष्टवा तत्पादयोर्नतः ।
विमुक्तकंठमरुदत् सद्यस्तामपि रोदयन् ।

दधिवाहन राजा का सपुल नाम कचुकी को शतानिक राजा ने बदी किया था। वसुमति (चंदना) के द्वारा भगवान् महावीर का अभिग्रह पूर्ण हुआ—तब उसे मुक्त किया गया था। वह वहाँ वसुमती को देखा ; उसके चरणों मे पड़ा, अश्रुधारा बह निकली।

—o—

·०६ नामकरण का नय और निक्षेप की अपेक्षा विवेचन

·०६·१ नय की अपेक्षा

आगम साहित्य मे 'वर्धमान' का नय की अपेक्षा विवेचन नहीं मिला।

·०६·२ निक्षेप की अपेक्षा —सूय० श्रु १ । अ ६ । नि गा ८३ उत्तरार्ध

(क) वीरस्स उ णिक्खेवो चउक्कओ होइ णायव्वो ॥

वीरस्य द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदाच्चतुर्धा निक्षेपः, तत्र ज्ञशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तो द्रव्यवीरो द्रव्यार्थसंगामादावद्भूतकर्मकारितया शूरोयदिवा-यत्किंचित् वीर्यवद् द्रव्यं तत् द्रव्यवीरे अन्तर्भवति, तद्यथा—तीर्थकृदनन्तबलवीर्यो लोकमलोके कन्दुकवत् प्रक्षेप्तुमलं तथा मन्दरं दण्डं कृत्वा रत्नप्रभां पृथिवीं छत्रवद्विभृयात्, तथा चक्रवर्तिनोऽपिबलं दो सोला बत्तीसा, इत्यादि, तथा विषादीनां मोहनादिसामर्थ्यमिति, क्षेत्रवीरस्तु यो यस्मिन् क्षेत्रेऽद्भूतकर्मकारी वीरो वा यत्र व्यावर्ण्यते, एवंकालेऽप्यायोज्यं, भाववीरो यस्य क्रोधमानमायालोभैः परीषहादिभिश्चात्मा, न जितः तथा चोक्तम्—

कोहं माणं च मायंच, लोभं पंचेदियाणि य ।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वमप्पे जिएजियं ॥१॥
जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।
एक्कं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥२॥
तथा—एक्को परिभमउ जए वियडं जिणकेसरी सलीलाए ।
कंदप्पदुट्ठदाढो मयणो विड्डारिओ जेणं ॥ ३ ॥

तदेवं वर्धमानस्वाम्येव परीषहोपसर्गैरनुकूलप्रतिकूलैरपराजितोऽद्भूतकर्मकारित्वेन गुणनिष्पन्नत्वात् भावतो महावीर इति भण्यते, यद्वा—द्रव्यवीरो व्यतिरिक्त एकभविकादिः, क्षेत्रवीरो यत्र तिष्ठत्यसौ व्यावर्ण्यते वा, कालतोऽप्येवमेव, भाववीरो नोआगमतो वीरनामगोत्राणि कर्माण्यनुभवन्, स च वीरवर्धमानस्वाम्येवेति।

—सूय० श्रु १। अ ६। टीका

'वीर' शब्द का द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव भेद से चार प्रकार का निक्षेप है। इनमे, शरीर और भव्य शरीर से व्यतिरिक्त द्रव्यवीर वह है जो द्रव्य के लिए युद्ध आदि मे अद्भूत कर्म करने वाला शूर है। अथवा जो कोई वीर्यवान् द्रव्य है वह द्रव्य शरीर मे अन्तर्भूत होता है, जैसे कि—तीर्थङ्कर अनन्त बल और वीर्य्य से युक्त है। वे लोक को गेन्द के समान अलोक मे फेंक सकते है तथा मन्दर पर्वत को दण्ड बनाकर उस पर रत्नप्रभा पृथ्वी को छत्र के समान धारण कर सकते है तथा चक्रवर्ती का बल भी "दो सोला बत्तीसा" कहा है। तथा विष आदि का मोहन करने का सामर्थ्य है।

क्षेत्रवीर वह है जो क्षेत्र मे अद्भूत कर्म करता है या वीर कहकर वर्णन किया जाता है।

इसी तरह के काल के विषय मे भी जानना चाहिए।

भाववीर वह है जिसका आत्मा, क्रोध, मान, माया, लोभ और परीषह आदि के द्वारा जीता गया है। कहा है कि—क्रोध, मान, माया, लोभ और पाँच इन्द्रिय दुर्जेय हैं इसलिये आत्मा को जीत लेने पर सब जीत लिये जाते है। जो पुरुष युद्ध मे हजार-हजार दुर्जय दुश्मनों को जीतता है—वह यदि एक आत्मा को जीत लेवे तो यह उसका भारी जय है। इस जगत मे एक जिन सिंह ही विकट चाल से भ्रमण करे। जिन ने अपनी लीला से कामरूप तीक्ष्ण दाढवाले मदन (काम) को चीर डाला है। इस प्रकार परीषह और अनुकूल तथा प्रतिकूल उपसर्गों से नही जीते हुए तथा अदभूत कर्म करने के कारण वर्धमान स्वामी को ही गुणों के कारण भाव से महावीर कहा जाता है।

अथवा व्यतिरिक्त एकभविक आदि द्रव्यवीर ह। क्षेत्रवीर वह है जो क्षेत्र मे रहता है अथवा जिस क्षेत्र मे उसका वर्णन किया जाता है।

इसी तरह काल से भी जानना चाहिए।

भाव से वीर वह है जो नोआगम से वीर नाम गोत्र कर्मों का अनुभव करता है—वह वर्धमान स्वामी ही है।

(ख) नामं ठवणा दविए खेत्ते काले तहेव भावे य ।
एसो उ निगमस्सा निक्खेवोछव्विहो होइ ॥

—आव० नि गा १४२

मलय टीका—नाम-स्थापने सुप्रतीते, ××× तत्र द्रव्यं भगवान् वर्द्धमान-स्वामी, क्षेत्रं महासेनवनं, कालं प्रमाणकालो भावश्च पुरुषो वर्द्धमानस्वामिरूपः। एतानि सामायिकरूपप्रशस्त भावनिर्गमाङ्गनि, उक्तं च—

"वीरो दव्वं खेत्त महसेणवणं पमाणकालोय ।
भावोय भावपुरिसो समासतो निग्गमं गाइं ॥१॥
सामाइयं वीरातो महसेणवणे प्रमाणकाले य ।
भावपुरिसा हि भावे विणिग्गमो वक्खमाणोऽयं ॥२॥

अत्र वक्ष्यमाणो भावः—सामायिकलक्षणः। एतच्च सर्वं भगवन्महावीर-लक्षणद्रव्याधीनमतः।

निक्षेप के छः प्रकार हैं, यथा—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव। नाम और स्थापना निक्षेप सुगम है। द्रव्य की अपेक्षा - भगवान् वर्द्धमान स्वामी, क्षेत्र की अपेक्षा महासेन वन, काल की अपेक्षा—प्रमाण काल और भाव की अपेक्षा वर्द्धमान स्वामी रूप ।

—o—

·१० ·२० च्यवन से जन्म

·११ च्यवन के पूर्व

११ ०२ च्यवनका विमान

(क) समणे भगवं महावीरे इमाए ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए वीइक्कंताए, सुसमाए समाए वीतिक्कंताए, सुसमदुसमाए समाए वीतिक्कंताए, दुसमसुसमाए समाए बहुवीतिक्कंताए—पण्णहत्तरीए वासेहिं, मासेहिं य अद्धणव-मेहिं सेसेहिं, जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे, अट्ठमे पक्खे—आसाढसुद्धे, तस्सणं आसाढसुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं, महाविजय-सिद्धत्थ-पुप्फुत्तर-पवर-पुंडरीय-दिसोसोवत्थिय-वद्धमाणाओ महाविमाणाओ वीसं सागरो-वमाइं आउयं पालइत्ता आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं चुए ×××।

—आया श्रु २। अ १५। सू ३

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भयवं महावीरे जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढ़सुद्धे तस्स णं आसाढसुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं महाविजय-

पुप्फुत्तरपवरपुडरीयाओ महाविमाणाओ वीसं सागरोवमट्ठिईयाओ—आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चइ ×××।

—कप्प० सू २। पृ० ४

(ग) पुप्फुत्तरे उववन्नो तओ चुओ माहणकुलम्मि।

—आव० निगा ४५०। उत्तरार्ध

मलयटीका 'पुप्फुत्तरे उववन्नो' त्ति प्राणतकल्पेषु पुष्पोत्तरावतंसके विंशतिसागरोपमस्थितिर्देव उत्पन्न इति, 'ततो चुतो माहणकुलंमि' त्ति ततः—पुष्पोत्तरात् च्युतो ×××।

(घ) सव्वट्ठसिद्धिठाणा अवइण्णा उसहधम्मपहुदितिया। ×××।
पुप्फोत्तराभिधाणा अणंतसेयंसवड्ढमाणजिणा।

-तिलोप० अधि ४। गा ५२२ पूर्वार्ध, ५२४ पूर्वार्ध। पृ० २०७

(च) सुरमहिदोच्चुदकप्पे भोगं दिव्वाणुभागमणुभूदो।
पुप्फुत्तरणामादो विमाणदो जो चुदो संतो ॥ २१ ॥
बाहत्तरिवासाणि य थोवविहीणाणिलद्धपरमाऊ।
आसाढजोण्हपक्खे छट्ठीए जोणिमुवयादो ॥ २२ ॥
कुंडपुरपुरवरिस्सरसिद्धत्थक्खत्तियस्स णाहकुले।
तिसलाए देवीए देवीसदसेवमाणाए ॥ २३ ॥

—कसापा० भाग १। गा१ में उद्धृत। पृ० ७७-७८

(छ) तदैवाषाढमास्य शुक्ले षष्ठी दिने शुचौ।
उत्तराषाढनक्षत्रे शुभे लग्नादिके सति ॥
सोऽमरेन्द्रोऽच्युताच्च्युत्वा धर्मध्यानेन धर्मकृत्।
सुगर्भे प्रियकारिण्याः शुचौ पुण्यादवातरत् ॥

—वीरवर्धच० अधि ७। श्लो ११०, १११

(ज) जीवितान्ते समासाद्य सर्वमाराधनाविधिम्।
पुष्पोत्तरविमानेऽभूदच्युतेन्द्रः सुरोत्तमः ॥

उत्तपु० पर्व ७४। श्लो २४१

(झ) तओ सो सुराहीसु पुप्फुत्तराओ
विमाणाय आवेवि सोक्खायराओ।

—वड्ढच० सधि १। कड ७। गा १३

(ख) परमागम - साहिय - दिव्व - माणि।
णिवसंतहु पुप्फुत्तर - विमाणि ॥
जइयहुँ वट्टइ छम्मासु तासु।
परमाउ - माउ परमेसरासु ॥
तइयहुँ सोहम्म - सुराहिवेण।
पभणिउ कुबेरु इच्छिय - सिवेण ॥
इह जंबुदीवि भरहंतरालि।
रमणीय-विसइ सोहा-विसालि ॥
कुंडउरि राउ सिद्धत्थु सहिउ।
जो सिरिहरु मग्गण - वेस - रहिउ ॥

× × ×

घत्ता —पियकारिणि देवि तुंग - कुंभित्थणि।
तहु रायहु इट्ठ णारीयण - चूडामणि ॥ ६ ॥

दुवई—एयहँ बिहिं मि जक्ख कमलक्ख मलक्खणु रक्खियासओ।
चउवीसमु जिणिंदु सुउ होही पय- जुय - णविय - वासओ ॥

× × ×

घत्ता —पहुपंगणि तेत्थु वंदिय - चरम - जिणिंदे।
छम्मास विरइय रयणविट्ठि जक्खिंदे ॥ ७ ॥

- वीरजि० संधि १। कड ६, ७। पृ १०, १२, १४

वीरेऽवतरति त्रातुं धरित्रीमसुधारिणः।
तीर्थेनाच्युतकल्पोच्चैः पुष्पोत्तरविमानतः ॥

- हरिपु० सर्ग २। श्लो २०

इस अवसर्पिणी काल के दुषम-सुषम आर के ७५ वर्ष ८॥ मास अवशेष रहे तब भगवान महावीर के जीव ने प्राणत देवलोक के महाविजय, सिद्धार्थ, प्रवर पुण्डरीक और दिशा स्वस्तिक नाम से प्रसिद्ध पुष्पोत्तर विमान से आषाढ शुक्ला षष्ठी के दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में च्यवन किया।

सौधर्म इन्द्र ने कुबेर से कहा—मरीचि का जीव पुष्पोत्तर स्वर्ग के विमान से आकर राजा सिद्धार्थ व रानी प्रियकारिणी का पुत्र होगा -

११ ०२ च्यवन का ज्ञान

(क) समणे भगवं महावीरे तिण्णाणोवगए यावि होत्था—चइस्सामित्ति जाणइ, चुएमित्ति जाणइ, चयमाणे न जाणेइ, सुहुमे णं से काले पन्नत्ते ।

—आया० श्रु २ । अ १५ । सू ४ । पृ० २३२

—कप्प० सू ३ । पृ० ४

(ख) मलयटीका—× × × । भयव तिनाणोवगए चुए, सो चइस्सामित्ति जाणइ, चयमाणे न जाणइ, समयस्य छद्मस्थोपयोगाविषयत्वात्, चुएमित्ति जाणइ ।

—आव० नि गा ४५८ । टीका मे उद्धृत

श्रमण भगवान् महावीर तीन ज्ञान से युक्त थे । मैं देवलोक से च्यवन करूंगा तथा च्यवन कर गया हूँ—ऐसा जानते थे लेकिन वर्तमान काल मे च्यवन कर रहा हूँ —इसको नही जानते थे क्योंकि वर्तमान काल सूक्ष्म होता है ।

११ ०३ धनवर्षा

(क) तस्मिन् षण्मासशेषायुष्यानाकादागमिष्यति ।
भरतेस्मिन् विदेहाख्ये विषये भवनांगणे ॥
राज्ञः कुंडपुरेशस्य वसुधाराप तत्पृथु ।
सप्तकोटीमणीः सार्द्धाः सिद्धार्थस्य दिनं प्रति ॥

—उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो २५१-५२

(ख) पहुपंगणि तेत्थु वंदिय - चरम - जिणिंदं ।
छम्मास विरइय रयणविट्ठि जक्खिंदं ॥

—वीरजि० सधि १ । कड ७ । पृ १४

(ग) यस्यावतारतः पूर्वं पित्रोः सौधे धनाधिपः ।
मासान् षण्णवसंपूर्णांश्चक्रे रत्नादिवर्षणम् ।

—वर्धच० अधि १ । श्लो २

(घ) अथ सौधर्मकल्पेशो ज्ञात्वाच्युतसुरेशिनः ।
षण्मासावधिशेषायुः प्राहेति धनदं प्रति ॥ ४२ ॥
श्रीदात्र भारते क्षेत्रे सिद्धार्थनृपमन्दिरे ।
श्रीवर्धमानतीर्थेशश्चरमोऽवतरिष्यति ॥ ४३ ॥
अतो गत्वा विधेहि त्वं रत्नवृष्टि तदालये ।
शेषाश्चर्याणि पुण्याय स्वान्यशर्माकराणि च ॥ ४४ ।
इत्यादेशं स यक्षेशो मूर्ध्नादायामरेशिन. ।

द्विगुणीभूतसद्भाव आजगाम महीतलम् ॥ ४५ ॥
ततः प्रत्यहमारेभे मणिकाञ्चनवर्षणैः ।
रत्नवृष्टिं मुदा कर्तुं भूपधामनि सोऽमरः ॥ ४६ ॥
प्राग्गर्भाधानतः षण्मासान्तं सिद्धार्थमन्दिरे ।
सार्धं कल्पद्रुमोद्भूतपुष्पगन्धाम्बुवृष्टिभिः ॥ ४६ ॥
रत्नवृष्टिं चकारोच्चैर्महार्घ्यमणिकाञ्चनैः ।
धनदोऽनुदिनं भूत्या सेवया श्रीजिनेशिनः ॥ ५० ॥

—वीरच० अधि ७ । श्लो ४२ से ४६, ४९-५०

(च) सक्काण लेवि भत्तिए णविवि ।
णिहि-कलस-हत्थु धणवइ महत्थु ।
मण-भंति तोडि आहुट्ठ-कोडि ।
वर-मणि-गणेहिं गयणंगणेहिं ।
वरिसियउ ताम छम्मास जाम ।
घर-पंगणम्मि अइ-सोहणम्मि ॥

—वड्ढच० संधि ६ । कड ६

सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने भगवान महावीर के जीव—अच्युतेन्द्र की छह मास प्रमाण शेष आयु को जानकर कुबेर से कहा— भरतक्षेत्र मे सिद्धार्थ राजा के घर में अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म होगा। तुम उनके पिता के भवन मे रत्नों की वर्षा करो। अतः कुबेर ने छह मास धन की वर्षा की।

११·०४ च्यवन का काल—तिथि-नक्षत्र

(क) समणे भगवं महावीरे इमाए ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए वीइक्कंताए, सुसमाए समाए वीतिक्कंताए सुसमदुसमाए समाए वीतिक्कंताए दुसमसुसमाए समाए बहुवीतिक्कंतयाए-पण्णहत्तरीए वासेहिं, मासेहि य अद्धणवमेहिं सेसेहिं, जे सेगिम्हाणं चउत्थे मासे, अट्ठमे पक्खे-आसाढसुद्धे, तस्सण आसाढ सुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं महाविजय-सिद्धत्थ-पुप्फुत्तर-पवर-पुंडरीय-दिसासोवत्थिय-वद्धमाणाओ महाविमाणाओ वीसं सागरोवमाइं आउयं पालइत्ता आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं चुए। × × ×।

—आया० श्रु २। अ १५। सू ३। पृ २३१

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भयवं महावीरे जे से गिम्हाणं चउत्थे मासेअट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे तस्सणं आषाढसुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं महाविजय-

पुप्फुत्तरपवरपुंडरीयाओ महाविमाणाओ वीसं सागरोवमट्ठिईयाओ—आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं-अणंतरं चइ × × × ।

—कप्प० सु २ । पृ० ४

(ग) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे × × × हत्थुत्तराहिं चुए × × × ।

—आचा० श्रु २ । अ ५१ । सु १ । पृ० २११

—ठाण० स्था ५ । उ १ । सु ६७ । पृ० ६१४

—कप्प० सु १ पृ० १

(घ) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स पंचहत्थुत्तरा होत्था, तंजहा हत्थुत्तराहि चुए × × × ।

- दसासु० श्रु० द८ । सु १

श्रमण भगवान महावीर ने चतुर्थ आरे की समाप्ति मे ७५ वर्ष सार्ध अष्ट मास अवशेष रहे तब ग्रीष्म ऋतु के चतुर्थ मास आषाढ शुक्ला षष्ठी के दिन महाविजय पुष्पोत्तर प्रवरपुंडरिक महाविमान मे बीस सागर की आयुष्य-भव-स्थिति को क्षय करने के अनंतर हस्तोत्तर नक्षत्र मे च्यवन किया ।

(च) पुप्फुत्तरविमाणादो आसाढ-जोण्हपक्ख-छट्टीए महावीरो बाहत्तरिवासाउओ तिण्णाणहरो गब्भमोहिण्णो । × × × । एत्थुवउज्जंतीओ गाहाओ—

"सुर महिदोच्चुदकप्पे भोगं दिव्वाणुभागमणुभूदो ।
पुप्फुत्तरणामादो विमाणदो जो चुदो संतो ।
बाहत्तरिवासाणि य थोवविहीणाणिलद्धपरमाऊ ।
आसाढजोण्हपक्खे छट्टीए जोणिमुवयादो ॥

— कसापा० भाग १ । गा २ टीका मे

(छ) तदैवाषाढमासस्य शुक्ले षष्ठी दिने शुचौ ।
उत्तराषाढनक्षत्रे शुभे लग्नादिके सति ॥
सोऽमरेन्द्रोऽच्युताच्च्युत्वा धर्मध्यानेन धर्मकृत् ।

—वीरव० अधि ७ । श्लो ११०,१११ पूर्वार्ध

(ज) तओ सो सुराहीसु पुप्फुत्तराओ विमाणाय आवेवि सोक्खायराओ ।
× × × । × × × ।
मुणिवर भणिया सावण तणिया सिय छट्ठिहे जिय-सरुहे ॥

—वड्ढव० संधि ६ कड ७ । गा १२ गा, १३ उत्तरार्ध

भगवान महावीर के जीवने आषाढ शुक्ला षष्ठी के दिन अच्युत देवलोक के पुष्पोत्तर विमान से उत्तराषाढा नक्षत्र मे च्यवन किया।

(ज) पाठ के अनुसार भगवान महावीर के जीवने श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन पुष्पोत्तर विमान से च्यवन किया।

·१२ वर्धमान (महावीर) की माता का स्वप्न दर्शन

·०१ देवानंदा ब्राह्मणी का चतुर्दश स्वप्नदर्शन

(क) जं रयणि च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंते तंरयणि च णं सा देवाणंदा माहणी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेयारूवे ओराले कल्लाणे सिवेधन्ने मंगल्ले सस्सिरीए चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा। तंजहा —

गयवसह सीह अभिसेय दाम ससि दिणयर झयं कुभं।
पउमसर सागर विमाण भवण रयणुच्चय सिहिंच।

— कप्प० सू ४, ५। पृ० ४, ५

(ख) जं रयणि देवाणंदाए कुच्छिसि गब्भत्ताए उववन्ने तं रयणि सा सयणिज्जंसि सुत्तजागरा इमे चोद्दस महासुमिणे पासइ, तथा चाह —

गय १ वसह २ सीह ३ अभिसेय ४ दाम ५ ससि ६ दिणयरं ७ झयं ८ कुंभं ९।

पउमसर १० सागर ११ विमाणभवण १२ रयणुच्चय १३ सिहिं १४च ॥ ४६ ॥ भाष्य।

मलयटीका — गजं वृषमं सिहं अभिषेकं, स चाभिषेकः श्रियः परिगृह्यते, दाम-पुष्पदाम रत्नविचित्रं, शशिनं दिनकरं ध्वजं कुम्भं पद्मसरः, पद्मभूषितं सरः पद्मसर इति समासः, सागरं च, तथा विमानं च तद्भवनं च विमानभवनं, वैमानिक — देवनिवास इत्यर्थः। × × ×।

एए चोद्दस सुमिणे पासइ सा माहणी सुहपसुत्ता।
जंरयणि उववन्नो कुच्छिंसि महायसो वीरो ॥४८॥ भाष्य

मलयटीका — एतान् चतुर्दश महास्वप्नान् पश्यति सा ब्राह्मणी सुखप्रसुप्ता यस्यां रजन्यामुपपन्नः कुक्षौ महायशाः वीरः, पश्यतीति वर्त्तमाननिर्देशः पूर्ववत् × × ×।

— आव० नि गा ४५८ टीका में

(ग) देवानंदा सुखसुप्ता महास्वप्नांश्चतुर्दश ।
ददर्श प्रातराख्यच्च पत्ये सोऽपि व्यचारयत् ।

त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ४

जिस रात्रि में श्रमण भगवान महावीर जालधर गोत्रकी देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में गर्भरूप में उत्पन्न हुए, उस रात्रि में सुप्त-जाग्रत अवस्था में देवानंदा ब्राह्मणी ने निम्नलिखित चौदह महास्वप्न देखे -

१—गज, २—वृषभ, ३—सिंह, ४ अभिषेक—लक्ष्मी देवीका अभिषेक, ५—फूलों की माला, ६—चंद्र, ७—सूर्य, ८—ध्वज ९—कुंभ—पूर्णकलश, १०—पद्मसरोवर, समुद्र, १२—देवविमान (अथवा भवन), १३- रत्न राशि और १४ -अग्नि शिखा (धूम रहित)

(घ) × × × । गोयमा ! तित्थगरमायरो णं तित्थयरंसि गब्भं वक्कमाणंसि एएसिं तीसाए महासुविणाणं इमं चोद्दस महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति, तंजहा—गय उसभ सीह अभिसेय जावसिहिंच ।

—भग० श १६ । उ ६ । सू ८६

सभी तीर्थंकरों की माताएं जब तीर्थंकर गर्भ में उत्पन्न होते हैं तब तीस महा स्वप्नों में से चौदह महा स्वप्न देखती है ।

·०२ स्वप्नार्थ पृच्छा

(क) तएणं सा देवाणंदा माहणी इमेतारूवे ओराले कल्लाणे सिवे धन्ने मंगल्ले सस्सिरीए चोद्दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया पिइमणा परमसोमणसिया हरिसवसविसप्पमाणहियया धाराहयकलंबुयं पिव समुस्ससितरोमकूवा सुमिणोग्गहं करेइ, सुमिणोग्गहं करित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेत्ता अतुरियमचवलमसंभंताए राइहंससरिसीए गईए जेणेव उसभदत्ते माहणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उसभदत्तं माहणं—जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता भद्दासणवरगया आसत्था वीसत्था करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं दसनहं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! अज्ज सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमे एयारूवे ओराले जाव सस्सिरीए चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा । तंजहा—गय जाव सिहिं च । एएसिणं देवाणुप्पिया ! ओरालाणं जाव चोद्दसण्हं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ।

तएणं से उसभदत्ते माहणे देवाणंदाए माहणीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियए धाराहयकलंबुयं पिव समूससियरोमकूवे सुमिणोग्गहं करेइ, करित्ता ईहं अणुपविसइ, ईहं अणुपविसित्ता अप्पणो साभाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविन्नाणेणं तेसिं सुमिणाणं अत्थोग्गहं करेइ, करेइ करेत्ता देवाणंदं माहणिं एवं वयासी ॥ ७ ॥

ओरालाणं तुमे देवाणुप्पिए सुमिणा दिट्ठा, कल्लाणा णं० सिवा धन्ना मंगला मस्सिरीया आरोग्गतुट्ठिदीहाउकल्लाणमंगल्लकारगा णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणा दिट्ठा। तंजहा—अत्थलाभो देवाणुप्पिए! भोगलाभो देवाणुप्पिए! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए! सोक्खलाभो देवाणुप्पिए!, एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं अहीणपडिपुन्नपंचिंदियसरीरं लक्खणवंजणगुणोववेयं माणुम्माणपमाणपडिपुण्ण-सुजायसव्वंगसुंदरंगं ससिसोमाकारं कंतं पियदंसणं सुरूवं देवकुमारोवमं दारयं पयाहिसि ॥ ८ ॥

से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते रिउव्वेय जउव्वेय सामवेय अथव्वणवेय इतिहासपंचमाणं निघंटछट्ठाणं संगो-वंगाणं सरहस्साणं चउण्हं वेयाणं सारए पारए धारए सडंगवी सट्ठितंतविसारए संखाणे सिक्खाणे सिक्खाकप्पे वागरणे छंदे निरुत्ते जोइसामयणे अण्णेसु य बहूसु बंभन्नएसु परिव्वायएसु नएसु परिनिट्ठिए यावि भविस्सइ ॥ ९ ॥

तं ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणा दिट्ठा जाव आरोग्गतुट्ठिदीहा-उयमंगलकल्याणकारगा णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणा दिट्ठा ॥ १० ॥

तएणं सा देवाणंदा माहणी उसभदत्तस्स माहणस्स अंतिए एवमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जावहियया करलयपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु उसभदत्तं माहणं एवंवयासी ॥ ११॥

एवमेयं देवाणुप्पिया! तहमेयं देवाणुप्पिया अवितहमेयं देवाणुप्पिया!, असंदिद्धमेयं देवाणुप्पिया!, इच्छियमेयं देवाणुप्पिया!, पडिच्छियमेय देवाणुप्पिया! इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया! सच्चे णं एसमट्ठे से जहेयं तुब्भे वयहत्ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ। ते सुमिणे सम्मं पडिच्छित्ता उसभदत्तेणं माहणेणं सद्धिं ओरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ ॥ १२ ॥

—कप्प० सू ६ से १२। पृ० ५ से ७

(ख) मलय टीका—तएणं सा पासित्ता पडिबुद्धा हट्ठतुट्ठा उसभदत्तस्स माहणस्स कहेइ, से य एवं वयासी उराला णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणादिट्ठा, तं अत्थलाभो देवाणुप्पिए! भोगलाभो देवाणुप्पिए! पुत्तलाभो देवाणुप्पि ! सोक्खलाभो देवाणुप्पिए !, एवं खलु तुम देवाणुप्पिए ! नवण्हं मासाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं वइक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं अहीणपडिपुण्णपंचदियसरीरं सव्वलक्खणोववेयं दारयं पयाहिसि, सेय उम्मुक्कबालभावे सव्वविज्जाठाणपरिनिट्ठिए भविस्सइ, तएणं सा देवाणंदा एयमट्ठं सोच्चाहट्ठतुट्ठा एवं वयासीएवमेवं देवाणुप्पिया ! अवितहमेयं देवाणुप्पिया ! जहेयं तुब्भे वयह इति ।

आव० निगा ४५८ । टीका

(ग) ददर्श प्रातराख्यच्च पत्ये सोऽपिव्यचारयत् ।
चतुर्णां छन्दसां पारदृश्वा परमनैष्ठिकः ।
सूनुर्भवस्या भविता स्वप्नैरेभिर्न संशयः ।।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ४ उत्त०, ५

महास्वप्न देखकर देवानंदा ब्राह्मणी जाग्रत हुई और उठकर अपने पति ऋषभदत्त ब्राह्मण के पास गई और उसने अपने पति से कहा कि उसने १४ महा स्वप्न देखे, और उनका विवरण बतलाया और उनके अर्थ की पृच्छा की ।

स्वप्नों का विवरण सुनकर ऋषभदत्त ब्राह्मण ने कहा कि तुम्हारी कुक्षि से किसी महापुरुष का जन्म होगा । ऐसा सुनकर देवानंदा ब्राह्मणी अत्यन्त हर्षित हुई ।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ४ उत्तरार्ध ५

·१२·०३ पुनः स्वप्न दर्शन

(क) जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरस-गोत्ताए कुच्छीओ तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरिए तं रयणि च णं सा देवाणंदा माहणी सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमे एयारूवे ओराले कल्लाणे सिवेधन्ने मंगल्ले सस्सिरीए चोद्दस महासुमिणे तिसलाए खत्तियाणए हडेत्ति पासित्ताणं पडिबुद्धा । तंजहा—गयजाव सिहिंच ।। ३२ ।।

—कप्प० सू ३२

(ख) गयसीहवसहअभिसेयदामससिदिणयरं झयंकुंभ ।
पउमसर सागर विमाणभवण रयणुच्चय सिहिंच ।
एए चोद्दस सुमिणे पासइ सा माहणी पडिनियत्ते ।
जरयणि अवहरितो कुच्छीउ महायसो वीरो ।।

—आव० मूल भाष्य गा० ५४, ५५

(ग) देवानंदा ब्राह्मणी सा शयिता पूर्ववीक्षितान्।
मुखान्निःसरतोऽद्राक्षीन्महास्वप्नांश्चतुर्दश॥
उत्थाय बक्ष आघ्नाना निःस्थामा ज्वरजर्जरा।
केनापि जह्रे मे गर्भ इति चुक्रोश साचिरम्॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो २७, २८

देवद्वारा गर्भ सहरण होने के पश्चात् देवानदा ब्राह्मणी ने महास्वप्नों को पुनः देखा लेकिन उसे अनुभव हुआ कि चौदह महास्वप्नों को कोई हरण करके ले जा रहा है। फलस्वरूप वह ज्वर से जर्जरित हो गयी—बैठकर रोने लगी।

(घ) जं रयणि च णं भयवं देवाणंदाए कुच्छीतो तिसलाए कुच्छिसि साहरिए तं रयणि देवाणंदा ते सुमिणे तिसलाए हडे पासित्ताणं पडिबुद्धा, ×××।

— आव० निगा ४५८ । मलय टीका

—०—

·१३ देवानंदा के गर्भ में प्रवेश

·०१ देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में प्रवेश

(क) हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते।

—आया० श्रु २ । अ १५ । सू १ पृ० २११

— कप्प० सू १ । पृ० ३

—ठाण० स्था ५ । उ १ । सू ९७ । पृ १९४

— दशासु० अ ८ । सू १

(ख) समणे भगवं महावीरे ××× महाविमाणाओ ××× आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं चुए चइत्ता इह खलु जंबुद्दीवे दीवे, भारहे वासे, दाहिण-ड्ढभरहे दाहिणमाहणकंडपुर सन्निवेसंसि उसभदत्तस्स माहणस्स कोडाल-सगोत्तस्स देवाणंदाए माहणीए जालंधरायण—सगोत्ताए सीहोब्भवभूएण अप्पाणेणं कुच्छिंसि गब्भं वक्कंते।

—आया० श्रु २ । अ १५ । सू ३ । पृ० २३५

(ग) समणे भगवं महावीरे ××× महाविणाओ ××× आउक्खएणं

भववक्खएणं ठिइक्खएणं—अणंतरं चइं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे—दाहिणड्ढभरहे—इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए विइक्कंताए सुसमाए समाए विइक्कंताए सुसमदुस्समाए समाए विइक्कंताए दुस्समसुसमाए समाए बहु-विइक्कंताए—सागरोवमकोडाकोडीए बायालीसवाससहस्सेहिं ऊणियाए - पंचहत्तरीए वासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहिं सेसेहिं इक्कवीसाए तित्थयरेहिं इक्खागकुलस-मुप्पन्नेहिं कासवगुत्तेहि दोहि य हरिवंसकुलसमुप्पन्नेहिं गोतमसगुत्तेहिं तेवीसाए तित्थयरेहिं वीइक्कंतेहि—समणे भगवं महावीरे चरिमे तित्थकरे पुव्वतित्थकरनि-द्दिट्ठे माहणकुण्डग्गामे नगरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवा-णंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आहारवक्कंतीए भववक्कंतीए सरीरवक्कतीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते।

—कप्प० सू २ । पृ० ४

(घ) पुप्फुत्तरे उववन्नो तओ चुओ माहणकुलम्मि ।

—आव० नि । गा ४५०

माहणकुंडग्गामे कोडालसगुत्तमाहणो अत्थि ।
तस्स घरे उववन्नो देवाणंदाइ कुच्छिंसि ॥

—आव० नि गा ४५७

टीका—× × × 'ततो चुतो माहणकुलम्मि' त्ति ततः—पुष्पोत्तरात् च्युतो ब्राह्मण कुण्डग्रामे नगरे सोमिलस्य ब्राह्मणस्य देवानंदायाः पत्न्याः कुक्षौ समुत्पन्न इति ।

भगवनन् महावीर का जीव पुष्पोत्तर विमान से हस्तोत्तरा नक्षत्र मे च्यवन कर दक्षिण ब्राह्मण कुण्डपुर मे कोडाल गोत्री ऋषभदत्त (सोमिल) ब्राह्मण की जालधर गोत्र की देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि मे उत्पन्न हुए ।

(च) इतश्च जंबूद्वीपेऽस्मिन् क्षेत्रेऽस्ति भरताभिधे ।
ब्राह्मणकुण्डग्रामाख्यसंनिवेशोद्विजन्मनाम् ॥
तत्र चर्षभदत्तोऽभूत् कौडालसकुलो द्विज ।
देवानंदा च तद्भार्या जालंधरकुलोद्भवाः ॥
च्युत्वा च नंदनो हस्तोत्तरर्क्षस्थे निशाकरे ।
आषाढस्य श्वेतषष्ठ्यां तस्याः कुक्षावतारत् ।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ ।श्लो १ से ३

(छ) तएणं सा देवाणंदा माहणी आगयपण्हया पप्पुयलोयणा संवरियवलय-बाहा कंचुयपरिक्खित्तिया धाराहयकलंबगं पिव समूसवियरोमकूवा समणं भगवं महावीरं अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ।

भंतेति ! भगवं गोयमे समणे भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—किं णं भंते ! एसा देवाणंदा माहणी आगयपण्हया × × × रोमकूवा देवाणुप्पियं अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ ?

गोयमादि। समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी एवं खलु गोयमा ! देवाणंदा माहणी ममं अम्मगा, अहण्णं देवाणंदाए माहणीए अत्तए। 'तण्णं एसा' देवाणंदा माहणी तेणं पुव्वपुत्तसिणेहरागेणं आगयपण्हया × × × समूसवियरोमकूवा ममं अणिमिसाए दिट्ठीए देहमाणी-देहमाणी चिट्ठइ।

—भग० श ९। उ ३३। सू १४७-१४८

भगवान महावीर को देखने के बाद देवानदा ब्राह्मणी के स्तनों मे दूध का उफान आया। उसके नेत्र आनन्दाश्रुओं से भींग गये। हर्ष से उसका शरीर प्रफुल्लित हो गया।

भगवान महावीर ने गौतम से कहा—यह देवानन्दा मेरी माता है, मैं देवानन्दा का आत्मज पुत्र हूँ। इसलिए देवानन्दा को पूर्व के पुत्र—स्नेहानुराग से उसके स्तनो मे दूध का उफान आया और वह मुझे अनिमेष दृष्टि से देख रही है।

·०२ गर्भस्थ भगवान महावीर के जीव को शक्रेन्द्र द्वारा वंदन

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया × × ×। इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे आभोएमाणे विहरइ, तत्थ णं समणं भगवं महावीरं जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे माहणकुंडग्गामे नगरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंतं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए × × × सुरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, सीहासणाओ अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहइ वेरुलियवरिट्ठरिट्ठअंजणनिउणोवियमिसिमिसितमणिरयणमंडियाओ पाउयातो ओमुयइ, ओमुयइ ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ· एगसाडियं उत्तरासंगं करित्ता अंजलिमउलियग्गहत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, वामं जाणुं जाणुं त्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवेसइ, तिक्खुत्तो मुद्धाणं निवेसित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ता कडगतुडियथंभियाओ भुयाओ साहरइ, कड कड त्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं दसनहं मत्थए अंजलिं कट्टु, एवं वयासी।

णमोत्थुणं × × × [पूरा पाठ है] जियभयाणं।

नमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स चरिमतित्थयरस्स पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठस्स जाव संपाविकामस्स वंदामि णं भगवंत तत्थगय इहगए पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं,—त्ति कट्टु समण भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, नमंसइ सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने।

—कप्प० सू १३, १५, १६। पृ० ७ से ६

(ख) तेणं कालेणं तेण समएणं सक्के नामं देविंदे देवराया वज्जपाणी सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सक्कंसि सीहासणंसि सुहनिसन्ने दिव्वाइं भोगाइं भुंजमाणे इमं जंबुद्दीवं दीवं कहचि आभोएइ, तत्थ समणं भयवं महावीरं देवाणंदाए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कतं पासित्ता हट्ठतुट्ठे हरिसवसविसप्पमाणहियए सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता पायपीढातो पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता नाणामणिरयणभडियातो पाउयातो ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करित्ता तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ उत्पाटयतीत्यर्थः, दाहिणं जाणुं धरणितलंसि निहट्टु तिक्खत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवाडेइ, निवाडित्ता पच्चुन्नमइ, ततो करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी × × × नमोत्थुणं समणस्स भगवतो महावीरस्स (आइगरस्स) तित्थगरस्स जाव सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपाविउकामस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थ गयं इहगतेत्ति कट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे संनिसण्णे।

— आव० नि गा ४५८। मलय टीका मे उद्धृत

(ग) तस्या गर्भस्थिते नाथे द्व्यशीतिदिवसात्यये।
सौधर्मकल्पाधिपतेः सिंहासनमकंपत॥
ज्ञात्वा चावधिना देवानन्दागर्भगतं प्रभुम्।
सिंहासनात् समुत्थाय शक्रो नत्वेत्यचिन्तयत्॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ७,८

सौधर्म देवलोक के शक्रेन्द्र ने सुधर्म सभा म शक्रनाम के सिंहासन पर उपविष्ट अवधिज्ञान द्वारा देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि म भगवान महावीर के जीव को देखकर हृष्ट-पुष्ट हुआ, परम आनद को प्राप्त हुआ।

तत्पश्चात् सिंहासन से नीचे उतर कर 'णमोत्थुण' के पाठ से देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भस्थित भगवान महावीर के जीवको वंदन-नमस्कार किया।

'०३ गर्भ प्रवेश की तिथि आदि

(क) समणे भगवं महावीरे। ××× जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे, अट्ठमे पक्खे—आसाढसुद्धे, तस्सणं आसाढसुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं हत्थुत्तराहि नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं ××× देवाणंदाए माहणीए जालंधरायणसगोत्ताए सीहोब्भवभूएणं अप्पाणेणं कुच्छिंसि गब्भं वक्कंते।

— आया० श्रु २। अ १५। सू २

(ख) देवानंदा च तद्भार्या जालंधरकुलोद्भवा।
च्युत्वा च नंदनो हस्तोत्तरर्क्षस्थे निशाकरे।
आषाढस्य श्वेतषष्ठ्यां तस्याः कुक्षाववातरत्॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग २। श्लो २ उत्तरार्ध, ३

भगवान महावीर का जीव आषाढ शुक्ला षष्ठी, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के योग के आगमन रूप देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ मे प्रवेश किया।

'०४ गर्भ अवस्थान काल

'समणे' इत्यादि आषाढस्य शुक्लपक्षषष्ठ्या आरभ्य द्व्यशीत्यां रात्रिन्दिवेष्वतिक्रांतेषु त्र्यशीतितमे वर्त्तमाने अश्वयुजः कृष्णत्रयोदश्यामित्यर्थः गर्भात्—गर्भाशयाद्देवानंदाब्राह्मणीकुक्षित इत्यर्थः। ×××।

—सम० सम ८२। सू २। टीका

भगवान महावीर का जीव देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ में द्वयशी (बियासी) रात्रि अवस्थान किया।

'५ गर्भस्थ भगवान संबंधी—शक्रेन्द्र के संकल्प

(क) तएणं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—न एयं भूयं न एवं भव्वं न एयं भविस्सं, जं न अरहंता वा ××× अंतकुलेसु वा जाव माहणकुलेसु वा आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा, एवं खलु अरहंता वा ××× उग्गकुलेसु वा भोगकुलेसु वा राइण्णकुलेसु वा इक्खागकुलेसु वा खत्तियकुलेसु वा हरिवंसकुलेसु वा अन्नतरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजातिकुलवंसेसु वा आयाइंसु वा ॥१७॥

अत्थि पुण एसे वि भावे लोगच्छेरयभूए अणंताहिं ओसप्पिणीउस्सप्पिणीहिं वीइक्कंताहिं समुप्पज्जति, नामगोत्तस्स वा कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइयस्स अणिज्जिण्णस्स उदएणं जन्न अरहंता वा ××× अंतकुलेसु वा जाव किविणकुलेसु ·

आयाइसु वा, ३ कुच्छिसिगब्भत्ताए वक्कमिसु वा वक्कमंति वा वक्कमिस्संति वा, नो चेवणं जोणीजम्मणनिक्खमणेणं निक्खमिसु वा निक्खमेंति वा निक्खमिस्संति वा ॥१८॥

अयं च णं समणे भगवं महावीरे जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥१९॥

तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं अरहंते भगवंते तहप्पगारेहिंतो अंतेकुलेहिंतो वा जाव किविणकुलेहिंतो वा तहप्पगारेसु उग्ग० कुलेसु वा जाव विसुद्ध जातिकुलवंसेसु वा साहराविचए। तं सेयं खलु मम विसमणं भगव महावीरं चरिमतित्थयरं पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठं माहणं कुंडग्गामाओ देवाणंदा माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुंडग्गामे नयरं नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगोत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठस गोत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहराविचए, जे वि य णं से तिसलाए खत्तियाणीए गब्भेतं पिय णं देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरा विचए त्ति कट्टु० एवं संपेहेइ, एवं संपेहित्ता हरिणेगमेसिं देवं सदावित्ता एवं वयासी ॥२०॥

—कप्प० सू १७ से २०

(ख) तए णं सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अयमेयारूवे सकप्पे समुप्पण्णे—उप्पण्णे खलु समणे भयवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए कुच्छिसि. तन्नं एवं भूयंवा भवइ वा भविस्सइवा जण्ण अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा अंतकुलेसु वा पतकुलेसु वा तुच्छकुलेसु वा दरिद्दकुलेसु वा भिक्खागकुलेसु वा आयाइंसुवा आयायंतिवा आयाइस्संतिवा, एवं खलु अरहंतावा जाव वासुदेवा उग्गकुलेसु वा भोगकुलेसु वा रायन्नकुलेसु वा इक्खागुकुलेसु वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु वा विसुद्धजाइएसु कुलेसु महंतं रज्जसिरिं कारेमाणेसु गब्भं वक्कमिसुवा वक्कमंति वा वक्कमिस्संति वा, अत्थि पुण एसभावे लोगच्छेरयभूए अणंताहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं वइक्कंताहि समुप्पज्जइ, जहाणीयागोयस्स कम्मस्स उदएणं अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा अंतकुलेसु वा जाव भिक्खागकुलेसु वा आयाइंसु वा आयायंतिवा आयाइस्संति वा, नोचेवणं जोणीतो निक्खमिसु वा निक्खमंति वा निक्खमिस्सति वा, तं जीयमेयं तीतपच्चुप्पन्नअणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवराईणं अरहंते भगवंते तहप्पगारेहिंतो अंताइकुलेहिंतो तहप्पगारेसु उग्गाइकुलेसु जाव विसुद्धजाइएसु कुलेसु साहरावेत्तए. तं सेयं खलु समणं भगवं

महावीरं चरमतित्थयरं माहणकुंडग्गामातो नगरातो खत्तियकुंडग्गामे नयरे सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगोत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरावेत्तए, जेऽवियणं से तिसलाए गब्भे तं देवानंदाए कुच्छिंसि, एवं संपेहित्ता हरिणेगमेसिं पायत्ताणियाहिवइं देवं सद्दावेइ ×××।

—आव० निगा ४५८। मलय टीका

(ग) तस्या गर्भस्थिते नाथे ह्यशीतिदिवसात्यये।
सौधर्मकल्पाधिपतेः सिंहासनमकंपत ॥ ७॥

× × ×

त्रिजगद्गुरवोऽर्हन्तो नोत्पद्यन्ते कदाचन।
तुच्छकुले रोरकुले भिक्षावृत्तिकुलेऽपि वा ॥९॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभृतिक्षत्रवंशेषु किल्वमी।
जायन्ते पुरुषसिंहा मुक्ताः शुक्त्यादिकेष्विव।
तदसंगतमापन्नं जन्म नीचकुले प्रभोः।
प्राच्यं कर्मान्यथा कर्तुं यद्वाऽर्हन्तोऽपि नेशते ॥
मरीचिजन्मनि कुलमदं नाथेन कुर्वता।
अर्जितं नीचकैर्गोत्रकर्माद्यापि ह्युपस्थितम् ॥
कर्मवशान्नीचकुलेषूत्पन्नानर्हतोऽन्यतः।
क्षेप्तुं महाकुलेऽस्माकमधिकारोऽस्ति सर्वदा ॥
कोऽधुनाऽस्ति महावंश्यो राजा राज्ञी च भारते।
यत्र संचार्यते स्वामी कुन्दाद्भृंग इवांबुजे ॥
ज्ञातमस्तीह भरते महीमंडलमंडनम्।
क्षत्रियकुंडग्रामाख्यं पुरं मत्पुर सोदरम् ॥

× × ×

तत्रैक्ष्वाको ज्ञातवंश्यः सिद्धार्थोऽस्ति महीपतिः।
धर्मेणैव हि सिद्धार्थं सदाऽऽत्मानममंस्तयः ॥

× × ×

तस्यास्ति त्रिशला नाम सतीजनमतल्लिका।
पुण्यभूरग्रमहिषी महनीयगुणाकृतिः ॥ २१ ॥

× × ×

सावास्ति सांप्रतं गुर्वी कार्यः संचारणाद्द्रुतम् ।
तस्या देवानंदायाश्च गर्भयोऽर्यस्ययो मया ॥
× × ×

--त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ७, ६ से १५, १८, २१, १४

(घ) "अह दिवसे बासीइ वसइ तहिं माहणीइ कुच्छिसि ।
चिंतेइ मुहम्मवई साहरिउं जे जिणकालो ॥ ४८ ॥
अरहंत चक्कवट्टी बलदेवा चेव वासुदेवा य ।
एए उत्तिमपुरिसा न हु तुच्छकुलेसुजायन्ति ॥४६॥
उग्गकुलभोगखत्तियकुलेसु इक्खागनायकोरव्वो ।
हरिवंसे य विसाले जायंति तहिं पुरिससीहा ॥५०॥
अह भणइ णेगमेसिं देविदो एस इत्थतित्थयरो ।
लोगुत्तमो महप्पा उववन्नो माहणकुलम्मि ॥ ५१ ॥
खत्तियकुंडग्गामे सिद्धत्थो नामखत्तिओ अत्थि ।
सिद्धत्थभारियाए साहर तिसलाए कुच्छिसि ॥ ५२ ॥

—आव० मूल भाष्य ४८ से ५२

मलयटीका—× × ×। उग्रकुलेषु भोगकुलेषु क्षत्रियकुलेषु इक्ष्वाकुकुलेषु ज्ञातकुलेषु कौरव्यकुलेषु हरिवंशे च विशाले आयान्तिआगच्छिन्ति उत्पद्यन्ते तत्र—उग्रकुलादौ पुरुषसिंहाः—तीर्थकरादयः। यस्मादेवं तस्माद्भुवनगुरुभक्त्या चोदितो देवराजो हरिणेगमेषिमभिहितवान्—एष भरतक्षेत्रचरमतीर्थकृत् प्रागुपात्तकर्मशेषपरिणतिवशात्तुच्छकुले जातस्तदयमितः संहृत्य क्षत्रिये स्थाप्यतामिति, स हि तदादेशात्तथैव चक्रे। × × ×।

'णेगमेसिं' हरिणेगमेषि देवेन्द्रः—'एषः' भगवान् 'अत्र ब्राह्मणकुले लोकोत्तमो महात्मा उत्पन्न।

देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ में भगवान महावीर के जीवको अवधि ज्ञान से देखकर सुधर्म देवलोक के शक्रेन्द्र ने विचार किया कि तीर्थङ्कर आदि शलाका पुरुष उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल, इक्ष्वाकुवंश कुल, क्षत्रियकुल अथवा हरिवंश कुल आदि में जन्म लेते हैं लेकिन अत्यकुल अधमकुल, तुच्छकुल अथवा ब्राह्मण कुल में जन्म नहीं लेते हैं। कभी ऐसा नहीं हुआ है, न कभी ऐसा होगा। लेकिन तीर्थंकर भगवान महावीर के जीवने ब्राह्मणी के गर्भ में जन्म लिया है जो कि एक आश्चर्यजनक घटना है। अत. उनके गर्भको क्षत्रिय कुलमें साहरण करना चाहिए। ऐसा विचार कर उसने हरिनैगमैषिन् देवको आह्वान किया।

'०६ कालचक्र की अपेक्षा गर्भ में अवतीर्ण

(क) समणे भगवं महावीरे इमाए ओसप्पिणीए - सुसमसुसमाए समाए वीइक्कंताए' सुसमाए समाए वीतिक्कंताए, सुसमदुसमाए समाए वीतिक्कंताए,, दुसमसुसमाए समाए बहुवीतिक्कंताए-पण्णहत्तरीए वासेहि, मासेहिय अद्धणवमेहि सेसेहि' जेसेगिम्हाणं चउत्थे मासे, अट्ठमे पक्खे— आसाढसुद्धे। तस्सणं आसाढ-सुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं ××× । देवाणंदाए माहणीए जालंधरायणसगोत्ताए सीहोब्भवभूएणं अप्पाणेणं कुच्छिसि गब्भं वक्कंते ।

- आया० श्रु० २ । अ १५ । सू ३ ।

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे तस्सणं आसाढसुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं ××× इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए विइक्कंताए सुसमाए समाए विइक्कंताए सुसमदुस्समाए समाए विइक्कंताए दुस्सम-सुसमाए समाए बहुविइक्कंताए सागरोवमकोडाकोडीए बायालीसवाससहस्सेहि ऊणियाए। पंचहत्तरीए वासेहि अद्धनवमेहि य मासेहि सेसेहि ××× समणे भगवं महावीरे ××× देवाणदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए ××× कुच्छिसि गब्भत्ताए वक्कंते ।

- कप्प सू २ । पृ ३, ४

इस अवसर्पिणी काल के चतुर्थ दुषम-सुषम आरे के ७५ वर्ष, ८ मास, १५ दिन अव-शेष रहे तब ग्रीष्म ऋतुके चतुर्थ मास में, अष्टमपक्ष में आषाढ शुक्ला षष्ठी के दिन श्रमण भगवान् महावीर ने जालन्धर गोत्र की देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षिमें अवतरण किया।

वह गणना निम्नप्रकार से की गई है ।

	वर्ष	मास	दिन
गर्भस्थकाल	०	९	८
गृहस्थ काल	२९	२	२२
छद्मस्थकाल	१२	६	१५
केवलिकाल	२९	५	१५
निर्वाणपश्चात् चतुर्थ आरा	३	८	१५
	योग ७५	८	१५

देखो—

(१) आया० श्रु२ । अ १५ । सू ३ — गर्भस्थकाल
(२) सम० सम ३० । सू ७ — गृहस्थकाल
(३) सम० सम ४२ टीका — छद्मस्थकाल
(४) ,, ,, — केवलीकाल
(५) सम० सम ८३ — निर्वाण

·०७ गर्भ में तीन ज्ञान

समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए यावि होत्था। चइस्सामित्ति जाणइ, चुएमित्ति जाणइ, चयमाणे न जाणइ, सुहुमे णं से काले पन्नत्ते ।

—आया० श्रु २ । अ १५ । सू ४

श्रमण भगवान् महावीर के गर्भ मे तीन ज्ञान (मति-श्रुत-अवधि ज्ञान) थे।

·०८ परिवार में धनादिकी वृद्धि

देवानंदागर्भगते प्रभौ तस्य द्विजन्मनः।
बभूव महती ऋद्धिः कल्पद्रुम इवागते ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ६

जब भगवान् महावीर का जीव देवानदा ब्राह्मणी की कुक्षि मे आया उसी दिन से महती ऋद्धि प्राप्त हुई।

— —

·१४ गर्भ साहरण—

·०१ शक्रेन्द्र का आदेश

(क) तएणं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—××× देवानंदा माहणीए जालंधर-सगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराविनए त्तिकट्टु एवं संपेहेइ, एवं संपेहित्ता हरिणेगमेसिं पायत्ताणियाहिवइं देवं सद्दावेइ, हरिणेगमेसिं पायत्ताणियाहिवइं देवंसद्दावित्ता एवं वयासी ×××।

तं गच्छणं तुमं देवाणुप्पिया! समणं भगवं महावीरं माहणकुंडग्गामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवसगोत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराहि, साहरित्ता मम एयमाणत्तियं खिप्पमेव पच्च-प्पिणाहि ॥ २५ ॥

—कप्प० सू १७, २०, २१

(ख) तएणं सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अयमेयारूवे संकप्पे समुप्पण्णे—उप्पण्णे खलु समणे भयवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए कुच्छिसि × × × । एवं संपेहित्ता हरिणेगमेसिं पायत्ताणियाहिवइं देवं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—एवं खलु समणं भयवं महावीरं देवाणंदा कुच्छीतो तिसलाए कुच्छिंसि साहरह ।

—आव० निगा ४५८ । मलय टीका

(ग) × × × । देवराजो हरिणेगमेषिमविहितवान् - एष भरतक्षेत्रचरमतीर्थकृत् प्रागुपात्तकर्मशेषपरिणतिवशात्तुच्छकुले जानस्तदयमितः संहृत्य क्षत्रिये स्थाप्यतामिति, स हि तदावेशान्तथैव चक्रे × × ×

आव० मूल भाष्य गा ५० । मलय टीका

(घ) अह भणइ णेगमेसिं देविंदो एस इत्थतित्थयरो ।
लोगोत्तमो महप्पा उववन्नो माहणकुलम्मि ॥
खत्तियकुंडग्गामे सिद्धत्थो नाम खत्तिओ अत्थि ।
सिद्धत्थभारियाए साहर तिसलाए कुच्छिसि ॥

—आव० मूल भाष्य गा ५१, ५२

मलय टीका—'णेगमेसिं' हरिणेगमेषि देवेन्द्रः—'एष' भगवान् 'अत्र' ब्राह्मणकुले लोकोत्तमो महात्मा उत्पन्नः । इदं चासाधु, ततश्चेदं कुरु—क्षत्रियकुंडग्राम सिद्धार्थो नाम क्षत्रियोऽस्ति, तत्र सिद्धार्थभार्यायाः संहर त्रिशलायाः कुक्षौ ।

(च) ज्ञात्वा चावधिना देवानंदा गर्भगतं प्रभुम् ।
× × ×
विमृश्यैवं शतमखः समाहूय जगित्यपि ।
आदेश तथा कर्तुं सेनान्यं नैगमेषिणम् ।
विदधे नैगमेषी च तथैव स्वामिशासनम् ।
देवानंदात्रिशलयोर्गर्भव्यत्ययलक्षणम् ॥

त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ८ पूर्वार्ध, २१, २१

देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ में भगवान महावीर के जीवको अवधि ज्ञान से देखकर सौधर्म देवलोक के शक्रेन्द्र ने पदातिक सेना के सेनापति हरिणेगमैषिन् देव को आह्वान किया और कहा—तुम ब्राह्मण कुंडग्राम जाओ । देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ में स्थित भगवान महावीर के जीवको साहरणकर क्षत्रिय कुंडग्राम में स्थित ज्ञातृवंश के क्षत्रिय वंशज और काश्यप गोत्रीय सिद्धार्थ क्षत्रिय की वाशिष्ठ गोत्रीय त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में स्थापित करो ।

·०२ देव का गर्भ-साहरण हेतु गमन

(क) तए णं से हरिणेगमेसी पायत्ताणियाहिवई देवे सक्केणं देविंदेणं देवरन्ना एवं वुत्ते समाणे हट्ठ जाव हयहियए करयल जाव त्ति कट्टु एवं जं देवो आणवेइ त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, वयणं पडिसुणित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अंतियाओ पडिनिक्खमइ, × × ×। वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ × × × अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ· परिसाडेइत्ता अहासुहुमे पोग्गले परियादियति ।। २६ ।।

परियादित्ता दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, ~ उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वइ × × × जेणेव जंबुद्दीवेदीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव माहणकुंडग्गामे नयरे जेणेव उसभदत्तस्स माहणस्स गिहे जेणेव देवाणंदा माहणी तेणेव उवागच्छइ तेणेव उवागच्छइत्ता आलोए समणस्स भगवओ महावीरस्स पणामं करेइ। × × × ।। २७ ।।

कप्प० सू २६, २७। पृ० ११, १२

(ख) × × ×। तए णं से हरिणेगमेसी पायत्ताणीयाहिवई एयमट्ठं हट्ठतुट्ठे विणएणं सम्मं पडिसुणित्ता उत्तरपुरच्छिमंदिसिभागमवक्कम्म एक्कपि दोच्चंपि वेउव्वियसमुग्घाएण समोहणित्ता उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता तुरियाए गईए जेणेव देवाणदा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए भगवतो महावीरस्स पणामं करेइ।

आव० निगा ४५८। मलय टीका

शकेन्द्र के आदेश को शिरोधार्य कर हरिणैगमेषिन् देव वहाँ से निकला। वैक्रिय समुद्घात के द्वारा देव शरीर स्थित स्थूल पुद्गलों का परिशाटन किया और सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण किया। इस प्रकार दो, तीन बार वैक्रिय समुद्घात के द्वारा स्थूल पुद्गलों का परिशाटन कर और सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण कर उत्तर वैक्रिय शरीर की विकुर्वणा की।

तत्पश्चात् ब्राह्मणकुंडग्राम में ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी देवानंदा ब्राह्मणी के निकट आया और देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ में स्थित श्रमण भगवान महावीर के जीव को प्रणाम किया।

·०३ त्रिशला के गर्भ में साहरण

(क) ताओ णं 'समणस्स भगवओ महावीरस्स' अणुकंपए णं देवे णं "जीयमीयं" ति कट्टु जे से वासाणं तच्चे मासे, पंचमे पक्खे—आसोयबहुले, तस्स णं आसोयबहुलस्स तेरसीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेहिं जोगमुवागएणं बासी-

तिहिं राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं तेसीइमस्स राइंदियस्स परियाए वट्टमाणे दाहिण-माहणकुंडपुर-सन्निवेसाओ उत्तरखत्तियकुंडपुर-सन्निवेसंसि णायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगोत्तस्स तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठ-सगोत्ताए असुभाणं पुग्गलाणं अवहारं करेत्ता, सुभाणं पुग्गलाणं पक्खेवं करेत्ता कुच्छिंसि गब्भं साहरइ।

जे वि य से तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिंसि गब्भे, तं पि य दाहिणमाहण-कुंडपुरसन्निवेसंसि उसभदत्तस्स माहणस्स कोडाल-सगोत्तस्स देवाणंदाए माहणीए जालंधरायणसगोत्ताए कुच्छिंसि साहरइ।

—आया० श्रु २ । अ १५ । सू ५,६ । पृ २१२

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे आसायबहुले, तस्स णं आसोयबहुलस्स तेरसी-पक्खेणं बासी-इराइंदिएहिं विइक्कंतेहिं तेसीइमस्स राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणे हियाणुकंपएणं देवेणं हरिणेगमेसिणा सक्कवयणसंदिट्ठेणं माहणकुंडगामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ खत्तियकुंडगामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासव-गोत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं कुच्छिंसि साहरिए।

— कप्प० सू ३० । पृ० ११

(ग) तथा गर्भस्य-उदरसत्त्वस्य हरणं उदरान्तर-संक्रामणं गर्भहरणं एतदपि तीर्थकरापेक्षयाऽभूतपूर्वं सद्भगवतो महावीरस्य जातं,पुरन्दरादिष्टेन हरिणेगमेषि-देवेन देवानंदाभिधानब्राह्मण्युदरात्त्रिशलाभिधानाया राजपत्न्या उदरेसंक्रमणाद्, एतदप्यनन्तकालभावित्वादाश्चर्यमेवेति।

—ठाण० स्था १० । सू १६० । टीका

(घ) तएणं हरिणेगमेसी पायत्ताणियाहिवई देवे ××× जेणेव माहण-कुंडग्गामे नयरे जेणेव उसभदत्तस्स माहणस्स गिहे जेणेव देवाणंदा माहणी तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छइत्ता आलोए समणस्स भगवओ महावीरस्स पणामं करेइ, करेइत्ता देवाणंदाए माहणीए सपरिजणाए ओसोवणिं दलयइ, ओसोवणिं दलइत्ता असुहे पोग्गले अवहरइ, अवहरित्ता सुहेपोग्गले पक्खिवइ, सुहे पोग्गले पोग्गले सा अणुजाणउ मे भगवं! त्ति कट्टु समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं

करयलसंपुडेणं गिण्हइ समणं भगवं महावीरं महावीरं त्ता जेणेव खत्तियकुंडग्गामे नयरे, जेणेव सिद्धत्थस्सखत्तियस्सगिहे, जेणेव तिसलाखत्तियाणी तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता तिसलाए खत्तियाणीए सपरिजणाए ओसोवणिं दलयइ, ओसो ओसोवित्ता असुहे पोग्गले अवहरइ, असुहे अवहरइत्ता सुहे पोग्गले पक्खिवइ, सुहे सुहेत्ता समणं भगवं महावीर अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरइ।

जेविय णं से तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तपियणं देवाणंदाए माहणीए आलंधरसगोत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ताए साहरइ, साहरित्ता जामेवदिसं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।।२७।।

—कप्प० सू २६, २७। पृ० १२,१३

(ख) तएणं से हरिणेगमेसी पायत्ताणीयाहिवई एयमट्ठं हट्ठतुट्ठे विणएणं सम्मं पडिसुणित्ता उत्तरपुरच्छिमंदिसिभागमवक्कमं एक्कंपि दोच्चंपि वेउव्वियस-मुग्घाएण समोहणित्ता उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता तुरियाए गईए जेणेव देवाणंदा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए भगवतो महावीरस्स पणामं करेइ, करित्ता अणुजाणउ मं भयवंतिकट्टु देवाणंदाए सपरियणाए ओसोयणिं दलेइदलेइत्ता दिव्वेणं पभावेणं करयलपुडेहिं अव्वाबाहं गेण्हइ गेण्हेत्ता बासीईए राइंदिएसु वइक्कंतेसु तेसीइमे राइंदिए वट्टमाणे जे से वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे आसोय-बहुलतेरसीं तंमि देवाणंदाए माहणीए कुच्छीतो तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिसि अव्वाबाहं साहरइ, जे से तिसलाए गब्भे तं देवाणंदाए कुच्छिसि साहरइ, साहरइत्ता सट्ठाणे गतो सक्कस्स कहेइ।

—आव० नि। गा ४५८ मलय टीका

शक्तिमान हरिणेगमेषिन् देव ने जीताचार के अनुसार वर्षाऋतु के तीसरे मास में, पाँचवें पक्ष मे, आश्विन कृष्णा त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के योग मे द्व्यशीति रात्रि के व्यतीत होने के बाद त्र्यशीति रात्रि मे दक्षिण ब्राह्मण कुण्डपुर मे देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि मे स्थित भगवान महावीर के जीव को निकाल कर उत्तर क्षत्रिय कुण्डपुर मे ज्ञातृ वंश के काश्यप गोत्रीय सिद्धार्थ राजा की वाशिष्ठ गोत्रीय त्रिशला क्षत्रियाणी कुक्षि मे से अशुभ पुद्गलों को दूर कर, शुभ पुद्गलों का प्रक्षेप कर कुक्षि मे स्थापित किया।

त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि मे स्थित गर्भ को निकाल कर दक्षिण ब्राह्मणकुण्डपुर मे कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की जालंधर गोत्रीय देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि मे स्थापित किया।

•४ गर्भ साहरण की तिथि आदि

(क) तओ णं 'समणस्स भगवओ महावीरस्स अणुकंपए णं देवे णं "जीयमेयं" तिकट्टु जे से वासाणं तच्चे मासे, पंचमे पक्खे आसोयबहुले, तस्सणं आसोयबहुलस्स तेरसीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेहिं जोगमुवागएणं बासीतिहिं राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं तेसीइमस्स राइंदियस्स परियाए वट्टमाणे दाहिणमाहणकुंडपुर-सन्निवेसाओ उत्तरखत्तियकुंडपुर-सन्निवेसंसि णायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगोत्तस्स तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठ-सगोत्ताए असुभाणं पुग्गलाणं अवहारं करेत्ता, सुभाणं पुग्गलाण पक्खेवं करेत्ता कुच्छिसि गब्भं साहरइ ।

—आया० श्रु० २ । अ १५ । सू ५ । पृ० २१२

(ख) समणे भगवं महावीरे बासीए राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए ॥

—सम० सम ८२ । सू २

टीका—'समणे' इत्यादि आषाढस्य शुक्ल पक्षषष्ठ्या आरभ्य द्व्यशीत्यां रात्रिन्दिवेष्वति क्रान्तेषु त्र्यशीतितमे वर्त्तमाने अश्वयुजः कृष्णत्रयोदश्यामित्यर्थः गर्भात्—गर्भाशयाद्देवानंदा—ब्राह्मणीकुक्षित इत्यर्थः गर्भं त्रिशलाभिधानक्षत्रियाकुक्षि संहृतो—नीतो देवेन्द्रवचनकारिणा हरिणेगमेष्यभिधानदेवेनेति ।

(ग) हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरए ।

—आया० श्रु २ । अ १५ । सू १ । पृ० २११

—कप्प सू १ । पृ १

—ठाण० स्था ५ । उ १ । सू १७ । पृ ६१४

—दसासु० अ ८ । सू १

(घ) समणे भगवं महावीरे बासीइराइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं तेयासीइमे राइंदिए वट्टमाणे गब्भाओ गब्भं साहरिए ।

—सम० सम ८३ । सू १ । पृ ४११

'च' बाढंति भाणिऊणं वासारत्तस्स पंचमे पक्खे ।
साहरइ पुव्वरत्ते हत्थुत्तरतेरसीदिवसे ॥

—आव० भाष्य गा ५३ ।

टीका स हरिणैगमेषिः बाढमित्यभिधाय अस्यर्थं करोम्यादेशं, शिरसि स्वाम्यादेशः इति उक्त्वा, वर्षारात्रस्य पंचमे पक्षे मासद्वये अतिक्रान्ते (संहरति)

अश्वयुगबहुलत्रयोदश्यां पूर्वरात्रे- प्रथमप्रहरद्वयान्ते हस्तोत्तरायाम् उत्तरायामुत्तर-फाल्गुनी नक्षत्रे त्रयोदशीदिवसे।

आश्विन कृष्णा त्रयोदशी के दिन, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र योग में—पूर्व रात्रि में—प्रथम दो पहर के अन्त में देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि से भगवान महावीर के जीव को साहरण कर, देव द्वारा त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ में स्थापन हुआ था।

·०५ साहरण का ज्ञान

(क) समणे भगवं महावीरे तिण्णाणोवगए यावि होत्था—साहरिज्जिस्सामित्ति जाणइ, साहरिएमित्तिजाणइ, साहरिज्जमाणे वि जाणइ, समणाउसो!

—आया० श्रु २। अ १५। सू ७। पृ २३२

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं महावीरे तिण्णाणोवगए याविहोत्था, साहरिज्जिस्सामि त्तिजाणइ, साहरिज्जमाणे नो जाणइ, साहरिए मित्ति जाणइ।

कप्प० सू ३१। पृ १३

(ग) भयवंपि तिनाणोवगए साहरिज्जिसामिति जाणइ, साहरिज्जमाणे जाणइ, संहरणस्यानेकसामयिकतया छद्मस्थोपयोगविषयत्वात्, साहरिएमित्ति जाणइ।

—आव० नि गा ४५८। मलयटीका

पाठ (क) और (ग) के अनुसार श्रमण भगवान महावीर गर्भ में भी तीन ज्ञान से युक्त थे। मेरा साहरण होगा तथा साहरण हुआ है ऐसा जानते थे तथा वर्तमान काल में साहरण काल अनेक (असंख्यात) समय रूप होने के कारण छद्मस्थ जानता है।

पाठ (ख) के अनुसार कहा है कि श्रमण भगवान महावीर का जीव वर्तमान काल में साहरण हो रहा है—ऐसा नहीं जानते थे।

·०६ गर्भ साहरण क्रिया

·०१ देव द्वारा 'स्वकाय तथा 'वायुमंडल' का परिशोधन

(क) स्वकाय परिशोधन

तएणं से हरिणेगमेसी ××× सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता उत्तरपुरच्छिमदिसिभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडंनिस्सिरइ। तंजहा—रयणाणं वयराणं वेरुलियाणं लोहियक्खाणं मसारगल्लाणं हंसगब्भाणं पुलयाणं सोगंधियाणं जोइरसाणं अंजणाणं अंजणपुलयाणं रयणाणं

आवलवाणं सुभगाणं अंकाणं फलिहाणं रिट्ठाणं अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, परिसाडेइत्ता अहासुहुमे पोग्गले परियादियति।

—कप्प० सू २६

हरिणगमेषी देव—शक्रेन्द्र के समीप से प्रस्थान कर वैक्रिय समुद्घात से आत्मप्रदेशों के समूह और कर्मपुद्गलों के समूह को संख्यात योजन प्रमाण लंबा—दण्डाकार परिणति करता है तथा रत्न, वज्र, वैडूर्य, लोहिताक्ष, मसारगल्ल, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, ज्योतिरस, अंजन, अंजनपुलक, रजत, जातरूपसुभग, अंक, कुटिक, रिष्ट आदि सब जाति के रत्नों के समान स्थूल पुद्गल परमाणुओं का परिशाटन कर उनके स्थान में सूक्ष्म पुद्गल अर्थात् उत्तम पुद्गलों को ग्रहण करता है।

(ख) देवका प्रस्थान और ब्राह्मण कुण्डग्राम में

(ख) ×××। परियादित्ता दोच्चंपि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ॰ २ उत्तरवेउव्वियं रूवं विउव्वइ, उत्तर २ त्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए जयणाए उद्धुयाए सिग्घाए दिव्वाए देवगईए वीयीवयमाणे वीनी २ तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं ×××।

—कप्प० सू २७

हरिणगमेषी देव ने फिर दूसरी बार वैक्रिय समुद्घात से (आवश्यक) उत्तर वैक्रिय रूप की विकुर्वणा की। तत्पश्चात् उत्कृष्ट, त्वरा, चपल, प्रचण्ड, विशेष वेग वाली शीघ्र दिव्य देवगति से असंख्यात द्वीप-समुद्रों के बीचोबीच गमन करता हुआ जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के ब्राह्मण कुण्डग्राम में आगमन किया।

(ग) देव का ब्राह्मण कुण्डग्राम में आगमन और साहरण की अनुज्ञा का निवेदन

(ग) ×××। जेणेव जंबुद्दीवे दीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव माहणकुंडग्गामे नयरे जेणेव, उसभदत्तस्स माहणस्स गिहे, जेणेव देवाणंदा माहणी तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छइत्ता आलोए समणस्स भगवओ महावीरस्स पणामं करेइ, करेइत्ता देवाणंदाए माहणीए सपरिजणाए ओसोवणिं दलयइ, ओसोवणिं दलइत्ता असुहे पोग्गले अवहरइ, अवहरित्ता सुहे पोग्गले पक्खिवइ, पोग्गले २ त्ता 'अणुजाणउ मे भगवं। ×××।

—कप्प सू २७

वह हरिणगमेषी देव ब्राह्मण कुंडग्राम के ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नि देवानंदा ब्राह्मणी के समीप आया। गर्भ में स्थित श्रमण भगवान महावीर को देखकर प्रणाम किया।

तत्पश्चात् उस देवने सपरिवार देवानंदा ब्राह्मणी को अवस्वापिनी निद्रा से निद्रित किया। इसके बाद देवने (वायुमंडल के) अशुभ पुद्गलों का अपहरण कर शुभ पुद्गलों का (चतुर्दिग्) प्रक्षेप किया। तत्पश्चात् देवने गर्भस्थित भगवान महावीर से (साहरण करने की) अनुज्ञा मांगी।

(घ) गर्भ साहरण की प्रक्रिया

त्तिकट्टु समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं करयलसंपुडेणं गिण्हइ, समणं भगवं महावीरं २ त्ता जेणेव खत्तियकुंडग्गामे नयरे, जेणेव सिद्धत्थस्स खत्तियस्सगिहे, जेणेव तिसला खत्तियाणी तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता तिसलाए खत्तियाणीए सपरिजणाए ओसोवणिं दलयइ, ओसोवणिं दलइत्ता असुहे पोग्गले अवहरइ, असुहे २ त्ता सुहे पोग्गले पक्खिवइ, सुहे २ त्ता समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरइ।

—कप्प सू २९।

उस हरिणगमेषी देवने देवानंदा ब्राह्मणी के गर्भ से श्रमण भगवान महावीर के गर्भ को अव्याबाध (पीड़ा रहित) निकाल कर स्वहस्त संपुट मे ग्रहण किया। तत्पश्चात् उस देवने क्षत्रिय कुंडग्राम के सिद्धार्थ राजा की रानी त्रिशला क्षत्रियाणी के समीप आगमन किया। फिर उसने सपरिवार त्रिशला क्षत्रियाणी को अवस्वापिनी निद्रा से निद्रित किया। तब उस देवने (वायु मंडल के) अशुभ पुद्गलों का अपहरण कर शुभ पुद्गलों का (चतुर्दिग्) प्रक्षेप किया। और अव्याबाध श्रमण भगवान महावीर के गर्भ को त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि मे साहरण (स्थापन) किया।

·१५ भगवान महावीर की माता का स्वप्नदर्शन

·०१ (श्वे) त्रिसला क्षत्रियाणी का चौदह स्वप्न दर्शन

(क) जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगोत्ताए कुच्छीओ तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरिए तं रयणिं च णं सा तिसलाए खत्तियाणी तंसि तारिसगंसि वासघरंसि अब्भिंतरओ सचित्तकम्मे बाहिरओ दूमियघट्ठमट्ठे × × × सुगंधवरकुसुमचुण्णसयणोवयारकलिए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेयारूवे ओराले चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा॥ ३३॥

संज्ञा –

गय वसह सीह अभिसेय दाम ससि दिणयरं झयंकुभं।
पउमसर सागर विमाण-भवण रयणुच्चय सिहिंच ॥ १ ॥

××× । एमेते एयारिसे सुभे सोमेपियदंसणे सुरूवे सुविणे दट्ठूण सयणमज्झे पडिबुद्धा अरविंदलोयणा हरिसपुलइयंगी।

एए चोद्दस सुमिणे सव्वा पासेइ तित्थयरमाया।
जं रयणि वक्कमई, कुच्छिसि महायसो अरहा ॥१॥

—कप्प० सू ३३, ४८ । पृ० १४, १६

(ख) जं रयणिं च णं भयवं देवाणंदाए कुच्छीतो तिसलाए कुच्छिसि साहरिए तं रयणिं सा देवाणंदा ते सुमिणे तिसलाए हडे पासित्ताणं पडिबुद्धा, तिसलावि य णं मणोरमसि सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ते चोद्दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा, ततो सिद्धत्थस्स साहइ, सोऽवि साभाविएणं बुद्धिपगरिसेणं तेसिं सुमिणाणं अत्थं परिभावइत्ता एवं वयासी—उराला णं तुमए देवाणुप्पिए। सुमिणादिट्ठा, तं अम्हं कुलकरं कित्तिकरं सुकुमालपाणिपायं अहीणपडिपुन्नपंचिंदियसरीरं दारगं पयाहिसि, ततो तिसला एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा तं वयणं सम्मं पडिसुणेइ।

—आव० निगा ४५८ । मलयटीका

(ग) कृष्णाश्विनत्रयोदश्यां चंद्रे हस्तोत्तरास्थिते।
स देवस्त्रिशलागर्भे स्वामिनं निभृतं न्यधात् ॥
गजो वृषो हरिः साभिषेकश्री स्रक् शशीरवि।
महाध्वजः पूर्णकुंभः पद्मसरः सरित्पतिः॥
विमानं रत्नपुंजश्च निर्धूमोऽग्निरिति क्रमात्।
ददर्श स्वामिनी स्वप्नान्मुखे प्रविशतस्तदा ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० सर्ग २ । श्लो २१ से ३१

(घ) गयसीहवसहअभिसेयदामससिदिणयरं झयंकुंभं।
पउमसर सागर विमाणभवण रयणुच्चय सिहिं च ॥
एए चोद्दस सुमिणे पासइ सा तिसलया सुहपसुत्ता।
जं रयणि साहरिओ कुच्छिसि महायसो वीरो ॥

आव० मूल भाष्य गा ५६,५७

जिस रात्रि मे श्रमण भगवान महावीर के गर्भ को देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि से साहरण कर त्रिसला क्षत्रियाणी की कुक्षि मे स्थापित किया गया उस रात्रि मे सुप्तजागृतावस्था में त्रिसला क्षत्रियाणी ने चौदह महास्वप्न देखें—

१ गज, २—वृषभ, ३—सिंह, ४—अभिषेक, ५—माला, ६—चंद्र, ७—सूर्य, ८—ध्वज, ९—कुंभ, १०—पद्मसरोवर, ११—सागर, १२—विमान या भवन, १३—रत्न-राशि और १४—अग्नि शिखा।

सर्व तीर्थंकरों की माताएं जब तीर्थंकर गर्भ मे आते हैं तब उक्त चौदह महास्वप्न देखती हैं।

·०२ (दिग) त्रिसला क्षत्रियाणी (प्रियकारिणी) का सोलह स्वप्न दर्शन

(क) आसाढस्य सिते पक्षे षष्ठ्यां शशिनि चोत्तरा-षाढे।
सप्ततलप्रासादस्याभ्यंतरवर्तिनि ॥२५३॥
नद्यावर्तगृहे रत्नदीपिकाभिः प्रकाशिते।
रत्नपर्यंकके हंसतूलिकादिविभूषिते ॥२५४॥
रौद्रराक्षसगांधर्वयामत्रितयनिर्गमे।
मनोहराख्यतुर्यस्य यामस्याते प्रसन्नधीः ॥२५५॥
दरनिद्राव्यलोकिष्ट विशिष्टफलदायिनः।
स्वप्नान् षोडशाविच्छिन्नान् प्रियास्य प्रियकारिणी ॥२५६॥

— उत्तपु० पर्व ७४। श्लो २५३ से २५६

(ख) ठियइ—सउहयल—णिहिय सयणयलइ
सयल - दुहोह - हारिणी।
णिसि णिद्दं गयाइ सिविणा वणि
दीसइ सोक्खकारिणी॥
सुरिंदच्छरा - थोत्त - संमाणियाए।
सुसिद्धत्थ - सिद्धत्थ -रायाणियाए॥
सलीलं चरंतो चलोणं गिरिंदो।
जिणंबाइ दिट्ठो पमत्तो करिंदो॥
विसेसो विलंबंत-सण्हासमेओ।
हरी भीसणो दिव्व-पोमाहिसेओ॥
वरं दाम-जुम्मं विहू वोअ-धंतो।
रवी रस्सि-जालावली - विप्फुरंतो॥

सरंते सरंतं विसारीण दंदं ।
घडाणं जुयं लीय - कल्लाण-वंदं ।
पहुल्लंत - राईव - राई - णिवासो ।
पयडढं त-वेला - विसासो सरीसो ॥
पहा - उज्जलं हेम - सेहीर - पीढं ।
महाहिंद - हम्मं विलासेहि रूढं ॥
मरुद्धूय-चिधं सुभित्ती - विचित्तं ।
घरं चारु आहंडलीयं पवित्तं ॥
मणीणं समूहं पहा - विप्फुरंतं ।
परं सोहमाणं तमोहं हरंत ॥
जलंतो हुयासो धरायां सधामे ।
णियच्छेवि दीहच्छि सामा विरामे ॥

— वीरजि० संधि १ । कड ८

(ग) अथैकदा महादेवी सौधान्तर्मृदुतल्पके ।
सुप्रातिशर्मणा स्वस्था पश्चिमे प्रहरे शुभे ॥५९॥
निशायाः पुण्यपाकेनापश्यत्स्वप्नान् जगद्धितान् ।
इमान् षोडश तीर्थेशविश्वाभ्युदयसूचकान् ॥६०॥
ददर्शादौ गजेन्द्रं सा त्रिमदं श्वेतमूर्जितम् ।
ततो दीप्रं गवेन्द्रं च चद्राभं मन्द्रनिःस्वनम् ॥६१॥
लसत्कान्ति, महाकायं मृगेन्द्रं रक्तकन्धरम् ॥
पद्मां स्नाप्यां हरिण कुम्भैर्विष्टरे देवदन्तिभिः ॥६२॥
सादृशाक्षीशमनी दिव्यामोदाकृष्टमदालिनी ।
हतध्वान्तं च संपूर्णं ताराधीशं सतारकम् ॥६३॥
निर्धूततमसोद्योतं भास्करं मोदयाचलात ।
कुम्भौ हेममयौ पद्मपिहितावास्यावलोकयत् ॥६४॥
मत्स्यौ सरसि संफुल्लकुमुदाम्भोजसंचये ।
तरत्सरोजकिञ्जल्कं पूर्णं दिव्यं सरोवरम् ॥६५॥
उद्वेलं च महाध्वानमब्धिमेषा व्यलोकयत् ।
स्फुरन्मणिमयं तुंगं दिव्यं सिंहासनं परम् ॥६६॥
स्वर्विमानं मुदापश्यत्परार्घ्यं रत्नभास्वरम् ।
फणीन्द्रभवनं पृथ्वीमुद्भिद्योद्गतमूर्जितम् ॥६७॥

अद्राक्षीद् रत्नराशिंच तदंशूद्योतिताम्बरम्।
निर्धूमवपुषं दीप्रं पावकंसा जिनाम्बिका ॥६८॥

—वीरव० अधि ७। श्लो ५१ से ६८

सा तं षोडशसुस्वप्नदर्शनोत्सवपूर्वकं।
दध्रे गर्भेश्वरं गर्भे श्रीवीरं प्रियकारिणी।

-- हरिवं० खंड १। सर्ग २। श्लो २१

(च) घर-पंगणम्मि अइ-सोहणम्मि।
मह सोक्खमूले वर-हंस-तूले।
सुत्ती सुहेण जण-दुलहेण।
पर-चित्त-हारि सिद्धत्थ-णारि।
रयणी-विरामे सुमणोहिरामे।
सुयणइँ वराइँ मण-सुहयराइँ।
पेक्खइ कमेण हयविब्भमेण।
अइरावएहु चंदाह-देहु।
धोरेउ धीरु मयवइ अभीरु।
लच्छी ललाम अंभोयधाम।
सेलिंध-माल अलिउल-रवाल।
छण-सेयभाणु भयणइँ पहाणु।
उवयंतु मित्तु किरणेहिं दित्तु।
कीलंत-मीण हरिसंवु लीण।
कणय-मय-कुंभ बहु-जलणिसुंभ।
सरवरु विसालु सायरु रवालु।
रयणेहिं गीढ़ हरिणारिवीढ।
सुरवर विमाणु मणि-भासिमाणु।
फणिवइ-णिकेउ धुव्वंत केउ।
वर-मणि-समूहु पयडिय-मऊहु।
सिहि-सिह-पयास कवसी कयासु।
घत्ता—सुहणइँ पियहो जणवयहियहो देविए ताए पयासड।
तं णिसुणेवि तहो तक्खिय दुम्मोहोजायए सहरिस गत्तइँ॥१७६॥

—वड्ढमाण० संधि १। कड १। का १ से २१

आषाढ़ शुक्ला षष्ठी के दिन, उत्तराषाढ़ नक्षत्र में राजा सिद्धार्थ की रानी प्रियकारिणी ने रात्रि के चतुर्थ प्रहर पश्चिम रात्रि में सुप्त-जाग्रतावस्था में तीर्थङ्कर के सर्व अभ्युदय के सूचक सोलह स्वप्न देखे--

१ लीलामय गति से गिरीन्द्र के समान मदोन्मत्त हाथी।

२ लटकती हुई सास्नायुक्त (*गलक कंबल से*) महान् वृषभ।

३ भीषण सिंह।

४—दिव्य अभिषेक युक्त लक्ष्मी देवी।

५—उत्तम दो पुष्प मालाएँ।

६ अन्धकार को दूर करता हुआ चंद्रमा।

७—किरण जालावलि से स्फुरायमान सूर्य।

८—सरोवर में चलती हुई दो मछलियाँ।

९—लोक कल्याण के प्रतीक वंदनीय दो कलश।

१०—फूले हुए कमलों की पंक्ति से युक्त सरोवर।

११—उछलती हुई तरंगों को नियंत्रित करने वाला समुद्र।

१२—प्रभा से उज्ज्वल स्वर्णमयी सिंहासन।

१३—विलासों से समृद्ध महानागेन्द्र का प्रासाद।

१४—पवन से उड़ती हुई ध्वजाओं सहित उत्तम भित्तियों से विचित्र सुन्दर और पवित्र इन्द्र भवन—सुरपति विमान।

१५—प्रभा से स्फुरायमान अत्यन्त शोभनीय तथा अन्धकार के समूह को दूर करने वाला मणिपुंज।

१६ जाज्वल्यमान अग्नि—धूम रहित अग्नि।

०३ प्रियकारिणी का सत्तरवाँ स्वप्न दर्शन

(क) स्वप्नान् षोडशाविच्छिनान् प्रियास्य प्रियकारिणी।
तदन्तेऽपश्यदन्य च गजं वक्त्रप्रवेशिनम्॥ २५६॥

—उत्त० पर्व ७४। श्लो २५६ (उत्तरार्ध), २५७ (पूर्वार्ध)

(ख) तेषामन्ते मुदाद्राक्षीत् तुङ्गकायं गजोत्तमम्।
प्रविशन्तं स्ववक्त्राब्जे सुतागमनसूचकम्॥

—वीरवर्धच० अधि ७। श्लो ५९

प्रियकारिणी रानी ने सोलह स्वप्न देखने के पश्चात् अपने मुख में प्रवेश करता हुआ एक भव्य गज देखा। इस प्रकार उन्होंने सतरहवाँ स्वप्न गज रूप देखा।

(ग) सुणेऊण एयं कमेणं मुहाओ,
स-कंतस्स धारेवि साणंदभाओ।
गया सुंदरे मंदिरे जामदेवी,
तुरंती तिलोए गणासार मेवी।
तओ सो सुराहीसु पुप्फुत्तराओ,
विमाणाय आवेवि सोक्खायराओ।
सिविणए पवरु गय-रूव-धरू णिसिपविट्ठ देवी-मुहे।
मुणिवर भणिया सावण तणिया सिय छट्ठिहे जिय-सररुहे।

—वड्ढच० संधि ६। कड ७। पृ २०१

राजा सिद्धार्थ के मुख से सोलह स्वप्नों के फल को क्रमशः सुनकर प्रियकारिणी आनन्द को प्राप्त हुई। तत्पश्चात प्रियकारिणी अपने शयन कक्ष में वापस गयी। उसके बाद पुष्पोत्तर विमान से च्यवनकर श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन रात्रि के समय में प्रियकारिणी ने स्वप्न में गजरूप भगवान महावीर के जीव को प्रविष्ट करते हुए देखा।

·०४ स्वप्नार्थ पृच्छा

(क) तए णं सा तिसला खत्तियाणी इमेयारूवे ओराले चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठजाव हयहियया धाराहयकलंबपुप्फगं पिव समुससियरोमकूवा सुमिणोग्गहं करेइ, सुमिणोग्गहं करित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, सय सयत्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चो पच्चो त्ता अतुरियं अचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए जेणेव सयणिज्जे जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सिद्धत्थं खत्तियं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं × × × पडिबोहेइ ॥ ४६ ॥

तएणं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थेणं रन्ना अब्भणुन्नाया समाणी नाणा-मणीरयणभत्तिचित्तंसि भद्दासणंसि निसीयइ, निसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहा-सणवरगया सिद्धत्थं खत्तियं ताहिं इट्ठाहिं जाव संलवमाणी संलवमाणी एवं वयासी ॥ ५० ॥

एवं खलु अहं सामी ! अज्ज तंसि तारिसयंसि सयणिज्जंसि वन्नओ जाव पडिबुद्धा। तंजहा—गय वसह० गाहा। तं एतेसिं सामी ! ओरालाणं चोद्दसण्ह महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ? ॥ ५१ ॥

तएणं से सिद्धत्थे राया तिसलाए खत्तियाणीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्ते आणंदिए पीइमणे परमसोमणसिए हरिसवसविसप्पमाणहियए धाराहयनीवसुरहिकुसुमचंचुमालइयरोमकूवे ते सुमिणे ओगिण्हति, ते सुमिणे ओगिण्हित्ता ईहं अणुपविसइ, ईहं अणु अणुत्ता अप्पणो साहाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धिविन्नाणेणं तेसिं सुमिणाण अत्थोग्गहं करेइ, अत्थो अत्थं त्ता तिसलं खत्तियाणीं ताहिं इट्ठाहिं जाव मंगल्लाहिं मियमहुरसस्सिरीयाहिं वग्गूहिं संलवमाणे संलवमाणे एवं वयासी ॥ ५२ ॥

ओराला णं तुमे देवाणुप्पिए। सुमिणादिट्ठा ××× एवं सिवाधन्ना मंगल्ला सस्सिरीया आरोग्गतुट्ठिदीहाउयकल्लाणमंगल्लकारगा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा। तंजहा—अत्थलाभो देवाणुप्पिए जावरज्जलाभो देवाणुप्पिए ! ××× नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाण य राइ दियाणं विइक्कंताणं अम्हं कुलकेउं अम्हं कुलदीवं कुलपव्वयं कुलवडिंसयं कुलतिलयं कुलकित्तिकरं कुलवित्तिकरं कुलदिणयरं कुलआहारं कुलनंदिकरं कुलजसकरं कुलपायवं कुलविवद्धणकरं सुकुमालपाणिपायं अहीणसंपुन्नपंचिंदियसरीरं लक्खणवंजणगुणोववेयं माणुम्माणं पमाण पडिपुन्नसुजायसव्वंगसुंदरंगं ससिसोमाकारं कंतं पियं सुदंसणं दारयं पयाहिसि ॥

से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते विच्छन्नविउलबलवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ, तंजहा—ओरालाणं तुमे जाव दोच्चंपि तच्चं पि अणुवूहइ ॥५४॥

तएणं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थस्स रन्नो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा जावहियया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी ॥५५॥

एवमेयं सामी ! तहमेयं सामी ! अवितहमेयं सामी ! असंदिद्धमेयं सामी ! इच्छियमेयं सामी ! पडिच्छियमेयं सामी ! इच्छियपडिच्छियमेयं सामी !, सच्चेणं एसमट्ठे से जहेय तुब्भे वयहत्ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ, ते० सम्मं पडिच्छित्ता सिद्धत्थेणं रन्ना अब्भणुन्नाया समाणी नाणामणिरयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेइत्ता अतुरियमचवलमसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए ; जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता एवं वयासी ॥५६॥

मा मे ते उत्तमा पहाणा मंगल्ला महासुमिणा अन्नेहिं पावसुमिणेहिं पडि-हम्मिस्संति त्ति कट्टु देवयगुरुजणसबद्धाहिं पसत्थाहिं मंगल्लाहिं धम्मियाहिं लट्ठाहिं कहाहिं सुमिणजागरियं जागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ।

—कप्प सु ४१ से ५७

चतुर्दश महास्वप्न देखकर त्रिसला क्षत्रियाणी जाग्रत हुई और उठकर अपने पति राजा सिद्धार्थ के पास गई और उसने राजा सिद्धार्थ से कहा कि उसने चतुर्दश महास्वप्न देखे और उनका विवरण बतलाया और उनके अर्थ की पृच्छा की।

महास्वप्नों का विवरण सुनकर राजा सिद्धार्थ ने कहा कि तुम्हारी कुक्षि से किसी महापुरुष—उत्तम पुरुष का जन्म होगा, ऐसा सुनकर त्रिसला क्षत्रियाणी हृष्ट-पुष्ट हुई।

(ख × × × कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेइत्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अट्ठंगमहानिमित्तसुत्तत्थधारए विविहसत्थकुसले सुविणलक्खपाढए सद्दावेह ॥ ६४ ॥

तएणं ते कोडुंबियपुरिसा × × × कुंडग्गामं नगरं मज्झं मज्झेण जेणेव सुमिणलक्खणपाढगाणं गिहाइं तेणेव उवागच्छति, तेणे २ त्ता सुविणलक्खणपाढए सद्दाविंति ॥ ६५ ॥

तएणं ते सुविणलक्खणपाढगासिद्धत्थस्स खत्तियस्स कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दा-विया समाणाहट्ठतुट्ठ जाव हियया × × × सएहिं सएहिं गेहेहिंतो निग्गच्छंति ।६६॥

तएणं ते सुविणलक्खणपाढगा सिद्धत्थेणं रन्ना वंदियपूइयसक्कारियसम्मा-णिया समाणापत्तेयं पत्तेयं पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु निसीयंति ॥ ६८ ॥

तएणं सिद्धत्थे खत्तियं × × × वयासि एवं खलु देवाणुप्पिया! अज्ज तिसला खत्तियाणी तंसि तारिसगंसि जाव सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेयारूवे ओराले जाव चोद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा। तंजहा गय वसभ० गाहा।

तंएतेसिं चोद्दसण्ह महासुमिणाणं देवाणुप्पिया! ओरालाणं जाव के मण्णे कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ॥६९॥ × × ×।

एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं सुमिणसत्थे बयालीसं सुविणा तीसं महा-सुमिणा बाहत्तरिं सव्वसुमिणा दिट्ठा, तत्थ णं देवाणुप्पिया! अरहंतमातरो वा चक्कवट्टिमायरो वा अरहंतसि वा चक्कहरंसि वा गब्भं वक्कममाणंसि एतेसिं तीसाए महासुमिणाणं इमे चोद्दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुज्झंति, तंजहा — गय० गाहा ॥७१ ॥

इमे य णं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा जाव मंगल्लकारगा णं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणादिट्ठा, ××× तिसला खत्तियाणीया नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं विइक्कंताणं तुम्हं कुलकेउं जाव कुलविविद्धिकरं सुकुमालपाणिपायं अहीणपडिपुन्नपंचिंदियसरीरं लक्खणवंजणगुणोववेयं माणुम्माणप्पमाणपडिपुन्नसुजायसव्वंगसुंदरंगं ससिसोमाकारं कंतं पियदंसणं सुरूवं दारयं पयाहिइ ।। ७५ ।।

—कप्प सू ६४, ६५, ६६, ६८, ६९, ७१, ७५

(ग) ××× तएणं सिद्धत्थे खत्तिए पच्चूसकालसमए सुमिणपाढए सद्दावित्ता आपुच्छइत्ति, तेवि सुमिणसत्थत्थं परिभाविऊण भणंति—

चाउरंतचक्कवट्टी राया वा भविस्सइ ।
जिणे वा तेलोक्कनायए धम्मवरचक्कवट्टी वा ॥

—आव० नि गा ४५८ । मलयटीका

(घ) इन्द्रैः पत्या च तज्ज्ञैश्च तीर्थकृज्जन्मलक्षणे ।
उदीरिते स्वप्नफले त्रिशला देव्यमोदत ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ३२

राजा सिद्धार्थ ने कौटुम्बिक पुरुषों को आह्वान किया और कहा कि आप अष्टांग महानिमित्त शास्त्रों के ज्ञाता स्वप्न लक्षण-पाठकों को बुलाओ । तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों ने स्वप्न-लक्षण-पाठकों को बुलाकर राजा सिद्धार्थ के सम्मुख उपस्थित किया ।

तत्पश्चात् राजा सिद्धार्थ ने स्वप्न-लक्षण-पाठकों का सम्मान किया और एक भद्रासन पर उन्हें बैठाया ।

राजा सिद्धार्थ ने स्वप्न-लक्षण-पाठकों को कहा कि रानी त्रिशला क्षत्रियाणी ने सुप्तजाग्रतावस्था में गज, वृषभादि चौदह महास्वप्न देखे है । इन महास्वप्नो का उदार, कल्याणप्रद फल होना चाहिए ।

स्वप्न-लक्षण-पाठकों ने विचार विवेचन करते हुए राजा सिद्धार्थ को कहा -"हे देवानुप्रिय । स्वप्न-शास्त्र में बयालीस प्रकार के (सामान्य) स्वप्न और तीस प्रकार के महास्वप्न कहे गये है —कुल स्वप्न के बहत्तर प्रकार हैं ।

जब तीर्थंकर अथवा चक्रवर्ती के जीव गर्भ में आते हैं तब तीर्थङ्कर अथवा चक्रवर्ती की माताएं उपर्युक्त तीस महास्वप्नों में से चौदह महास्वप्न देखकर जाग्रत होती है, यथा —गज, वृषभ आदि ।

हे देवानुप्रिय ! त्रिशला क्षत्रियाणी ने जो गज आदि चौदह महास्वप्न देखे है । ये

उदार स्वप्न देखे हैं, मंगलकारक, कल्याणप्रद स्वप्न देखे है। फलस्वरूप अर्थ का लाभ होगा, भोग का लाभ होगा, राज्य का लाभ होगा, सुख का लाभ होगा, हे देवानुप्रिय त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ से ६ मास, ७।। अहोरात्रि के पश्चात् किसी महापुरुष का जन्म होगा।

.०५.१ (दिग्) स्वप्नार्थ पृच्छा (सोलह स्वप्नों की)

(क) प्रभातपटहध्वानैः पठितैर्वन्दिमागधैः ॥ २५७ ॥
मंगलैश्च प्रबुद्धयाशु स्नात्वा पुण्यप्रसाधना।
सा सिद्धार्थमहाराजमुपगम्य कृताननतिः ॥ २५८ ॥
संप्राप्तार्धासना स्वप्नान्यथाक्रममुदाहरत्।
सोऽपि तेषां फलं भावि यथाक्रममबूबुधत् ॥ २५९ ॥
श्रुतस्वप्नफला देवी तुष्टा प्राप्तेव तत्फलम्।

—उत्तरपु० पर्व ७४। श्लो २५७ उत्तरार्ध, २५८, २५९, २६० पूर्वार्ध

(ख) विउद्धा गया जत्थ रायाहिराओ।
धरित्तीस-चूड़ामणी-चिट्ठ-पाओ ॥
पियाए सुहं दंसणाणं वरिट्ठं।
फलं पुच्छियं तेणं सिट्ठं विसिट्ठं ॥
सुओ तुज्झ होही महा-देवदेवो।
महा-वीयराओ विमुक्कावलेवो ॥
महा-वीरवीरो महा-मोक्खगामी।
तिलोयस्स वंदो तिलोयस्स सामी ॥

—वीरजि० संधि १। कड ८

(ग) देवाद्य पश्चिमे भागे यामिन्याः सुखनिद्रिता।
अद्राक्षं षोडशस्वप्नानहमद्भुतकारणान् ॥
इमान् गजादिवह्न्यन्तान् महाश्चर्यकरान् परान्।
पृथक् पृथक् त्वमेतेषां फलं नाथ ममादिश।
तदाकर्ण्येति सोऽवादीत् त्रिज्ञानी शृणुसुन्दरि ॥
एकाग्रचेतसामीषां दिशामि फलमूर्जितम् ॥
इत्यमीषां च सम्यक् सत्फलाकर्णनतः सती।
कृत्वा रोमाञ्चितं गात्रं पुत्रं प्राप्तेव सातुषत्।

—वीरव० अधि ७। श्लो ९२ से ९४, १०४

(घ) घत्ता—सुइणइँ पियहो जयवयहियहो देविए ताए पवुत्तइ ।
तंणिसुणेवि तहो तज्जिय दुग्गहो जायए सहरिसगत्तइँ ॥१७६॥
पुणो सोवि आहासए संपहिट्ठो
फलंताइ देवी पुरो संनविट्ठो ।
× × ×
सुणेऊण एयंकमेणं मुहाओ ।
स-कंतस्स धारेवि साणंदभाओ ।
गया सुंदरे मंदिरे जाम देवी ।
तुरंती तिलोए गणासार सेवी ।

—वड्ढच० संधि ९, कड ६, ७

सोलह स्वप्नों को देखने के बाद रानी प्रियकारिणी शीघ्र ही स्नानकर पवित्र वस्त्राभूषण पहनकर राजा सिद्धार्थ के पास गयी। यथाक्रम से उसने राजा को अपने स्वप्नों का विवरण सुनाया। राजा सिद्धार्थ ने यथाक्रम से स्वप्नों का फल बतलाया और विशेष बात यह कही कि तुम्हारे एक पुत्र होगा जो महादेवों का देव, महान् वीतराग, अभिमान से मुक्त, महावीरों का वीर, महामोक्षगामी, त्रैलोक्य द्वारा वंदनीय और त्रैलोक का स्वामी होगा।

इस प्रकार इन स्वप्नों का फल सुनने से रानी प्रियकारिणी परम आनंद को प्राप्त हुई।

तुलनात्मक चार्ट

स्वप्न-शृंखला में स्वप्न दर्शन की श्वेताम्बर-दिगम्बर दोनों परम्परा द्वारा शृंखलित है।

दिगम्बर परम्परा	श्वेताम्बर परम्परा
१—गज	१—गज
२—वृषभ	२—वृषभ
३—सिंह	३—सिंह
४—लक्ष्मी	४—श्री अभिषेक
५—माल्यद्विक	५—दाम (माला)
६—शशि	६—शशि
७—सूर्य	७—दिनकर
८—कुम्भद्विक	८—कुम्भ

६—मत्स्ययुगल	६—झय (ध्वजा)
१०—सागर	१०—सागर
११—सरोवर	११—पद्मसर
१२—सिंहासन	१२—विमान
१३—देव-विमान	१३—रत्न-उच्चय
१४—नाग-विमान	१४—शिखि-अग्नि
१५—रत्नराशि	
१६—निर्धूम अग्नि	

५·०२ स्वप्नार्थ पृच्छा (सतरहवें स्वप्न की)

तेषामन्ते मुदाद्राक्षीत्तुङ्गकायं गजोत्तमम्।
प्रविशन्तं स्ववक्त्राब्जे सुतागमनसूचकम्।
× × ×
गजेन्द्राकारमादाय भवत्यास्यप्रवेशनात्।
त्वद्गर्भे निर्मले तीर्थेऽन्तिमोऽवतरिष्यति।

—वीरच० अधि ७। श्लो ६६, १०३

सोलह स्वप्नों के अंत मे प्रमोद संयुक्त माताने पुत्र के आगमन का सूचक, उन्नत गजराज को अपने मुख मे प्रवेश करते हुए देखा।

इस स्वप्न के फल की पृच्छा करने पर राजा सिद्धार्थ ने कहा—मुख मे प्रवेश करते हुए गजेन्द्र के देखने से तुम्हारे निर्मल गर्भ में अन्तिम तीर्थङ्कर गजेन्द्र के आकार को धारण करके अवतरित होंगे।

—o—

·१६ त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ में प्रवेश

·०१ गर्भ प्रवेश का काल

(क) देखो ·१४ गर्भसाहरण

भगवान महावीर के जीव ने देव प्रयोग से देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ से साहरित होकर त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ मे वर्षाऋतु के तीसरे मास मे, पाँचवें पक्ष मे, आश्विन कृष्णा त्रयोदशी के दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के योग मे प्रवेश पाया। गर्भ-हरण का प्रसंग दिगम्बर परम्परा मे अभिमत नहीं है।

(ख) अत्थेत्थ भरहवासे, कुंडग्गामं पुरं गुणसमिद्धं ।
तत्थ य नरिन्दवसहो, सिद्धत्थो नाम नामेणं ॥ २१ ॥
तस्स य बहुगुणकलिया, भज्जा, तिसल त्ति रूवसंपन्ना ।
तीए गब्भम्मि जिणो, आयाओ चरिमसमयम्मि ॥ २२ ॥
—पउच० अधि २ । गा २१, २२

भगवान महावीर पूर्वजन्म के चरम समय होने पर भरतक्षेत्र के कुंडपुर नगर के राजा सिद्धार्थ की रानी बहुगुणयुक्ता, रूप सम्पन्ना त्रिशला के गर्भ में आये।

(ग) पण्णरसदिवसेहि अट्ठहि मासेहि य अहियपंचहत्तरिवासासेसे चउत्थ-काले ७५-८-१५ पप्फुत्तरविमाणादो आसाढ-जोण्हपक्ख छट्ठीए महावीरो बाहत्तरि-वासाउओ तिण्णाणहरो गब्भमोइण्णो ।
—कसापा० । गा० १ । टीका । भाग १ । पृ ७४

(घ) सव्वट्ठसिद्धिठाणा अवइण्णा उसहधम्मपहुदितिया
× × ×
पुप्फोत्तराभिधाणा अणंतसेयंसवड्ढमाणजिणा ॥
—तिलोप० अधि ४ । गा ५२२ पूर्वार्ध, ५२४ उत्तरार्ध

(च) पंचसप्ततिवर्षाष्टमासमासार्धशेषकः ।
चतुर्थस्तु तदा कालो दुःखमः सुखमोत्तरः ॥
आषाढशुक्लषष्ठ्यां तु गर्भावतरणेऽर्हतः ।
उत्तराफाल्गुनीनीडमुडुराजाद्विजः श्रितः ॥
—हरिपु० खड १ । सर्ग २ । श्लो २२, २३

(छ) दुवई—कय विब्भय - विलास-परमेसरि
बाल - मराल - चारिणी ।
कंकण - हार - दोर - कडिसुत्तय—
कुंडल - मउड - धारिणी ॥
चंदक्क - कंति - संपण्ण - कित्ति ।
सिरि हरि सलच्छि दिहि पंकयच्छि ।
सइ किंत्ति बुद्धि कय गब्भ-सुद्धि ।
आषाढ - मासि-ससियर-पयासि ॥
पक्खंतरालि हय - तिमिर - जालि ।
दिस - णिम्मलम्मि छट्ठी-दिणम्मि ।
संसार - सेउ थिउ गब्भि देउ ।
—वीरजि० संधि १ । कड ६ । पृष्ठ १८

(ज) तदैवाषाढमासस्य शुक्ले षष्ठी दिने शुचौ।
उत्तराषाढनक्षत्रे शुभे लग्नादिके सति ॥
सोऽमरेन्द्रोऽच्युताच्च्युत्वा धर्मध्यानेन धर्मकृत्।
सुगर्भे प्रियकारिण्याः शुचौ पुण्यादवातरत्।

—वीरचि० अधि ७। श्लो ११०, १११

भगवान महावीर का जीव पुष्पोत्तर विमान से चतुर्थकाल (सुखम-दुखम आरा) में ७५ वर्ष, ८ महीना, १५ दिन अवशेष रहने पर आषाढ शुक्ला षष्ठी के दिन बहत्तर वर्ष की आयु से युक्त होकर तथा मति, श्रुत और अवधि ज्ञान से सहित रानी प्रियकारिणी के त्रिशला गर्भ में अवतीर्ण हुए।

.०२ गर्भप्रवेश की तिथि और नक्षत्र

(क) देखो '१४ गर्भसाहरण

भगवान महावीर के जीव ने हरिणैगमैषिन् देव द्वारा वर्षाऋतु के तीसरे मास मे, पाँचवे पक्ष मे, आश्विन कृष्णात्रयोदशी की पूर्व रात्रि के उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र के योग मे देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ से साहरित होकर त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ मे प्रवेश पाया।

(ख) आषाढस्य सिते पक्षे षष्ठ्यां शशिनि चोत्तराषाढे।
× × ×
तदन्तेऽपश्यदन्यं च गजं वक्त्रप्रवेशिनम्।

—उत्तपु० पर्व ७४। श्लो २५३ पूर्वार्ध, २५७ पूर्वार्ध

(ग) तदैवाषाढमासस्य शुक्ले षष्ठी दिने शुचौ।
उत्तराषाढनक्षत्रे शुभे लग्नादिके सति ॥ ११० ॥
सोऽमरेन्द्रऽच्युताच्च्युत्वा धर्मध्यानेन धर्मकृत्।
सुगर्भे प्रियकारिण्याः शुचौ पुण्यादवातरत् ॥१११॥

—वीरवर्धच० अधि ७। श्लो ११०, १११

आषाढ शुक्ला षष्ठी के दिन जबकि चद्रमा उत्तराषाढा नक्षत्र मे था तब रानी प्रियकारिणी (त्रिशला) ने (सोलह स्वप्न देखने के पश्चात्) अपने मुख मे प्रवेश करता हुआ एक अन्य गज देखा। अर्थात् भगवान महावीर का जीव अच्युत स्वर्ग (पुष्पोत्तर विमान) से च्युत होकर पुण्योदय से प्रियकारिणी के पवित्र गर्भ मे अवतरित हुआ।

(घ) पुप्फुत्तरविमाणादो आसाढ-जोण्हपक्ख-छट्ठीए महावीरो बाहत्तरि-वासाउओ तिण्णाणहरो गब्भमोइण्णो।

—कसापा० भाग १। गा १। टीका पृष्ठ ७४

(च) आषाढ - मासि, ससियर - पयासि।
पक्खंतरालि, हय-तिमिर जालि ॥
दिस-णिमलम्मि, छट्ठी दिणम्मि।
संसार - सेउ, थिउ गब्भि देउ ॥

—वीरजि० संधि १ कड ६ । पृष्ठ १८

आषाढ मासके चन्द्र से प्रकाशमान व अधकार समूह को दूर करने वाले शुक्ल पक्षमे षष्ठी के दिन जब दिशाएँ निर्मल थी तब ससार के सेतुभूत भगवान महावीर पुष्पोत्तर विमान से प्रियकारिणी के गर्भ मे आकर अवस्थित हुए।

(छ) सिविणए पवरु गय-रूव-धरू णिसि पविट्‌ठु देवि-मुहे
मुणिवर भणिया सावण तणिया सिय छट्ठिहे जियसररुहे ॥

—वड्ढ्‌च० सधि ६ । कड ७ । पृ २०७

राजा सिद्धार्थ के मुख से स्वप्नो के फल को क्रमश सुनकर उनकी माता प्रियकारिणी आनदलहरसे भर उठी। वह देवी शीघ्र ही जब अपने सुन्दर भवन मे गयी, तभी वह सुराधीश सुखकारी पुष्पोत्तर विमान से चयकर रात्रि के समय प्रवर स्वप्न मे देवी—प्रियकारिणी के मुख मे गज के रूप मे प्रविष्ट हुआ। उसे मुनिवरों ने कमलों को जीतने वाली श्रावण सबधी शुक्ला छट्ठी तिथि कही है।

०३ गर्भ प्रवेश के समय स्वर्ग में आनन्दानुभूति

तद्‌गर्भाधानमाहात्म्याद् घंटाशब्दो महानभूत्।
स्वर्लोकेषु सुरेशां विष्टराणि प्रचकम्पिरे ॥ ११२ ॥
स्वमेवाभवत्सिंहनादो ज्योतिष्कधामसु।
शंखध्वनिर्महानासीद् भवनाधिपसद्‌मसु ॥ ११३ ॥
भेरीरवोऽतिगम्भीरो व्यन्तराणा गृहेषु च।
शेषाश्चर्याणि जातानि बहूनि सर्वधामसु ॥ ११४ ॥

— वीरवर्धच० अधि ७ । श्लो ११२ से ११४

उनके गर्भ धारण के महात्म्य से स्वर्ग लोक मे घटाओं का भारी शब्द हुआ और इन्द्रो के आसन कपित हुए। ज्योतिष्क देवों के स्थानों में स्वयमेव ही सिंहनाद हुआ। भवनवासियों के भवन मे शंख ध्वनि होने लगी। व्यतरो के घरों मे अति गभीर भेरियों का शब्द हुआ। उस समय सर्व ही स्थानों मे इसी प्रकार के अनेक आश्चर्य हुए।

·०४ गर्भ कल्याणक

(क) अथामराधिपाः सर्वे तयोरभ्येत्य संपदा ।
कल्याणाभिषवं कृत्वा नियोगेषु यथोचितम् ।
—उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो २६० उत्तरार्ध, २६१ पूर्वार्ध

सब देवों ने आकर बड़े वैभव के साथ राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणी का गर्भ-कल्याणक संबधी अभिषेक किया ।

(ख) इत्यादि विविधाश्चर्यदर्शनाच्छ्रीजिनेशिनः ।
विवेदुरवतारं ते चतुर्णिकायवासवाः ॥ ११५ ॥
ततस्ते त्रिदशाधीशाः स्वस्वभूत्युपलक्षिताः ।
स्वं स्वं वाहनमारूढाः सद्धर्मकरणोद्यताः ॥ ११६ ॥
स्वाङ्गाभरणतेजोभिर्द्योतयन्तो दिशादश
ध्वजछत्रविमानाद्यैश्छादयन्तो नभोऽङ्गणम् ॥ ११७ ॥
सामराः सकलत्रा जयवाद्यादिरवाङ्किताः ।
जिनकल्याणसंसिद्ध्यै ह्याजग्मुस्तत्पुरं परम् ॥ ११८ ॥
जिनेन्द्रपितरौ भक्त्या ह्यारोप्य हरिविष्टरे ।
अभिषिच्य कनत्काञ्चनकुम्भैः परमोत्सवैः ॥ १२० ॥
प्रपूज्य दिव्यभूषास्रग्वस्त्रैः शक्राः सहामरैः ।
गर्भान्तस्थं जिनं स्मृत्वा प्रणेमुस्त्रिःपरीत्य ते ॥ १२१ ॥
—वीरच० अधि ७ । श्लो ११५ से ११८, १२०, १२१

नाना प्रकार के आश्चर्यों को देखने से चतुर्णिकाय के देवों ने श्री तीर्थंकर देवके गर्भावतार को जाना ।

तब वे सभी देवेन्द्र अपनी अपनी विभूति के साथ अपने-अपने वाहनों पर आरूढ हो उत्तम धर्म के करने मे उद्यत हुए, अपने शरीर के आभूषणों के तेज से दशों दिशाओं को उद्योतित करते, ध्वजा, छत्र, विमानादिसे गगनाङ्गण को आच्छादित करते और जय जय नाद करते और बाजे को बजाते हुए अपनी स्त्रियों और देव परिवार के साथ भगवान् के गर्भ-कल्याण की सिद्धि के लिए उस उत्तम कुडपुर नगर मे आये ।

उस समय अनेक विमानों से, अप्सराओं से और देव-सैनिकों से वह कुडपुर सर्व प्रकार से व्याप्त होकर अमरपुर के समान शोभित होने लगा ।

इन्द्रों ने तीर्थंकर भगवान के माता-पिता को भक्ति से सिंहासन पर बैठाकर चमकते हुए सुवर्ण कलशों द्वारा परम उत्सव के साथ अभिषेक करके दिव्य वस्त्र, आभूषण और

मालाओं से सर्व देवों के साथ पूजा करके उन्होंने गर्भ के भीतर विराजमान जिनदेव का स्मरण कर और तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया।

०५ गर्भ प्रवेश के पश्चात् धन वर्षा—

(क) यस्यावतारतः पूर्वं पित्रोः सौधे धनाधिपः।
मासान् षण्णवसंपूर्णांश्चक्रे रत्नादिवर्षणम्॥

—वीरवर्धच० अधि १, श्लो २

(ख) घत्ता—घरपंगणि तासु रायहु सुहु - पब्भारहिं।
वुट्ठउ धणणाहु अविहंडिय-धण-धारहिं।

—वीरजि० संधि १। कड ९। पृ ११

(ग) आषाढ-मासि ससियर पयासि।
पक्खंतरालि हय-तिमिर-जालि॥
सिस-णिम्मलम्मि छट्ठी-दिणम्मि।
संसार - सेउ थिउ गब्भि देउ॥
संपण्ण - हिट्ठि कयकणय-विट्ठि।
जक्खेण ताम णव-मास जाम॥

—वीरजि० संधि १। कड ६। पृष्ठ १८

(घ) धणवइ वसु वरिसिउ पुणुवि तेम
णव मासु सुपाउसे मेहु जेम।

—वड्ढच० संधि ६। कड ८

भगवान् महावीर के जीवके रानी प्रियकारिणी के गर्भ मे आने के पश्चात् नवमास तक धनपति—कुबेर या यक्ष ने राजा सिद्धार्थ के प्रासाद के प्रांगण मे प्रचुर रत्नादिकी वृष्टि की।

(च) गर्भस्थेऽथ प्रभौ शक्राऽऽज्ञया जृंभिकनाकिनः।
भूयो भूयो निधानानि न्युधुः सिद्धार्थवेश्मनि।

—त्रिशलाका पर्व १०। सर्ग २। श्लो ३४

जब भगवान महावीर गर्भ मे आये तब शक्रेन्द्र की आज्ञा से जृंभिक देवों ने सिद्धार्थ राजा के घर मे धनका निधान लाकर स्थापित किया।

०६ गर्भ-अवस्थान-काल

(क) देवानंदा व त्रिशला के गर्भवास का संयुक्त काल

दोण्हं वरमहिलाणं गब्भे वसिऊण गब्भसुकुमालो।
नवमासे सत्त य दिवसे समइरेगे॥

—आव० मूल भाष्य गा ६०

मलय टीका—द्वयोर्वरमहिलयोर्गर्भे उषित्वा गर्भे सुकुमारो गर्भसुकुमारः, प्रायोऽप्राप्तदुःख इत्यर्थः, कियन्त कालं यावदित्याह— नव मासान् परिपूर्णान् सप्त दिवसान् सातिरेकान्-समधिकान्।

भगवान महावीर का जीव-देवानंदा ब्राह्मणी तथा त्रिशला क्षत्राणी—दो गर्भों मे कुल मिलाकर संयुक्त काल रूप नवमास साधिक सात दिन रहे। दोनो गर्भों के अवस्थान मे भगवान महावीर को किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ।

तत्पश्चात् त्रिशला क्षत्राणी के गर्भ से भगवान महावीर का जन्म हुआ।

(ख) अण्णे के वि आइरिया × × × परूवेंति। × × × आसाढजोण्हपक्ख-छट्ठीए कुडपुरणगराहिवणाहवंस-सिद्धत्थणरिदस्स तिसिलादेवीए गब्भमागंतूण तत्थ अट्ठदिवसाहिय णवमासे अच्छिय चइत्त-सुक्कपक्ख-तेरसीए रत्तीए उत्तरफग्गुणीणक्खत्ते गब्भादो णिक्खंतो वड्ढमाणजिणिंदो। एत्थ आसाढजोण्हपक्खछट्ठिमादि कादूण जाव पुण्णमात्ति दसदिवसा होंति ॥१०॥

पुण्णो सावणमासमादि कादूण अट्ठमासे गब्भम्मि गमिय, चइत्तमास-सुक्कपक्ख-तेरसीए उप्पण्णोत्ति अट्ठावीसदिवसा तत्थ लब्भंति।

एदेसु पुव्विल्लदसदिवसे पक्खित्ते मासो अट्ठदिवसाहिओ होदि।

तम्मि अट्ठमासेसु पक्खित्ते अट्ठदिवसाहियणवमासा वड्ढमाणजिणिंदगब्भत्थ-कालो होदि। तस्स सदिट्ठी ९-८। × × × एवं गब्भट्ठिदकालपरूवणा कदा।

—कसापा० भाग १। गा १। टीका। पृ० ७६, ७७

कई एक आचार्य भगवान महावीर के गर्भ-अवस्थान काल की परूपणा इस प्रकार करते है—

आषाढ महिने के शुक्लपक्ष की षष्ठी के दिन कुडपुर (कुडलपुर) नगर के स्वामी नाथवंशी सिद्धार्थ नरेन्द्र की त्रिशला देवी के गर्भ मे आकर और वहाँ नौ मास आठ दिन रहकर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन रात्रि मे उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के रहते हुए भगवान महावीर गर्भ मे आये।

यहाँ आषाढ शुक्ला षष्ठी से लेकर पूर्णिमा तक दस दिन होते है। पुनः श्रावण मास से लेकर फाल्गुन मास तक आठ मास गर्भावस्था मे व्यतीत करके चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को उत्पन्न हुए। इसलिए चैत्र मासके अट्ठाइस दिन और प्राप्त होते है। इन अट्ठाइस दिनोंमे पूर्व के दस दिन मिला देने पर आठ दिन अधिक एक मास होता है। इसे पूर्वोक्त आठ महिनों मे मिलादेने पर नौ मास आठ दिन प्रमाण वर्द्धमान जिनेन्द्र का अवस्थान काल होता है।

•०७ (विग) कालचक्र की अपेक्षा गर्भ में अवतीर्ण

(क) इम्मिस्सेवसप्पिणीए चउत्थकालस्स पच्छिमे भाए।
चोत्तीसवासावसेसे किंचि विसेसूणकालम्मि ॥२०॥

तंजहा—पण्णरसदिवसेहि अट्ठहि मासेहि य अहियपंचहत्तरिवासावसेसे चउत्थकाले ७५-८-१५ पुप्फुत्तरविमाणादो आसाढ-जोण्हपक्ख-छट्ठीए महावीरो बाहत्तरिवासाउओ तिण्णाणहरो गब्भमोइण्णो। ×××।

—कसापा० भाग १। गा १। टीका। पृ०७४

इस अवसर्पिणी काल के दुःषमसुषमा चतुर्थकाल के पिछले भाग में कुछ कम चौतीस वर्ष बाकी रहने पर धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई।

यथा—चतुर्थकाल में पंद्रह दिन और आठ महिने अधिक पचहत्तर वर्ष बाकी रहने पर आषाढ महिने की शुक्लपक्ष की षष्ठी के दिन बहत्तर वर्ष की आयु से युक्त तीन ज्ञान से युक्त भगवान महावीर पुष्पोत्तर विमान से गर्भ में अवतीर्ण हुए।

यह गणना निम्न प्रकार से की गई है :—

	वर्ष	मास	दिन
गर्भ प्रवेश से गृहस्थ काल	३०	०	०
छद्मस्थकाल	१२	०	०
बिना तीर्थके केवली काल	०	२	६
तीर्थकाल	२९	६	२४
निर्वाण पश्चात् चतुर्थ आरा	३	८	१५
योग	७५	८	१५

(ख) अण्णे के वि आइरिया ×××। परूवेंति × × ×। परिणिव्वुदे जिणिदे चउत्थकालस्स अब्भंतरे सेसं वासा तिण्णि मासा अट्ठदिवसा पण्णरस ३-८-१५। संपहि कत्तियमासम्हि पण्णरसदिवसेसु मग्गसिरादितिण्णिवासेसु अट्ठमासेसु च महावीरणिव्वाणगयदिवसादो गदेसु सावणमासपडिवयाए दुस्सम-कालो ओइण्णो। इमं कालं वड्ढमाणजिणिदाउअम्मि पक्खित्ते दसदिवसाहिय-पंचहत्तरिवासावसेसे चउत्थकाले सग्गादो वड्ढमाणजिणिदो ओदिण्णो होदि ७५-०-१०।

—कसापा० भाग १। गा १। टीका। पृ ७६, ८१

कुछ अन्य आचार्य ऐसे प्ररूपणा करते है—

महावीर जिनेन्द्र के मोक्ष चले जाने पर चतुर्थकाल मे तीन वर्ष, आठ माह और पंद्रह दिन शेष रहे थे। जिस दिन महावीर जिन निर्वाण को प्राप्त हुए उस दिन से कार्तिक मासके पंद्रह दिन और मार्गशीर्ष मास से लेकर तीन वर्ष, आठ मास काल के व्यतीत हो जाने पर श्रावणमास की प्रतिपदा से दुःषमकाल अवतीर्ण हुआ। इस तीन वर्ष, आठ मास और पंद्रह दिन प्रमाण काल को वर्द्धमान जिनेन्द्र की इकहत्तर वर्ष, तीन मास और पच्चीस दिन प्रमाण आयु में मिला देने पर पचहत्तर वर्ष और दस दिन प्रमाण काल चतुर्थकाल मे से शेष रहने पर वर्द्धमान जिनेंद्र स्वर्ग से अवतीर्ण हुए।

यह गणना निम्न प्रकार से की गई है—

	वर्ष	मास	दिन
गर्भस्थकाल	०	९	८
कुमार काल	२८	७	१२
छद्मस्थ काल	१२	५	१५
केवली काल	२९	५	२०
निर्वाण पश्चात् चतुर्थ आरा	३	८	१५
योग	७५	०	१०

·०८ परिवार में धनादि की वृद्धि

(क) जओणं पभिइ समणे भगवं महावीरे तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिंसि गब्भं आहुए, तओ णं पभिइ कुलं विउलेणं हिरण्णेणं सुवण्णेणं धणेणं धण्णेणं माणिक्केणं मोत्तिएणं संख-सिलप्पवालेणं अईव-अईव परिवड्ढइ।

—आया० श्रु २। अ १५। सू १२

(ख) जप्पभिइं च णं समणे भगवं महावीरे तं नायकुलं साहरिए तप्पभिइं च णं बहवे वेसमणकुंडधारिणो तिरियजंभगा देवा सक्कवयणेणं सेजाइं इमाइं पुरा-पोराणाइं महानिहाणाइं भवंति, तजहा—पहीणसामियाइं जाव सुसाणसुन्नागार-गिरिकंदरसंतिसेलोवट्ठाणभवणगिहेसु वा सन्निक्खित्ताइं चिट्ठंति ताइं सिद्धत्थ-रायभवणंसि साहरंति॥

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे नायकुलंसिसाहरिए तं रयणिं च णं नायकुलं हिरण्णेणं वड्ढित्था सुवण्णेणं वड्ढित्था धणेण धन्नेणं रज्जेणं रिट्ठेणं बलेणं वाहणेणं कोसेणं कोट्ठागारेणं पुरेणं अतेउरेणं जणवएणं जसवाएणं वड्ढित्था, विपुल-

धनकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयणमाइएणं संतसारसावएज्जेणं पीइसक्कारसमुदएणं अईव-अईव अभिवड्ढित्था।

—कप्प० सू ८४, ८५। पृ० २६, ३०

(घ) ××× जं रयणि भयवं तिसलाए गब्भेसाहरिते तं रयणि सक्कवयणेणं तिरियजंभगा देवा विविहाइं मणिनिहाणाइं सिद्धत्थरायभवर्णसि साहरंति तं च नायकुलं हिरण्णेणं सुवण्णेणं धन्नेणं रज्जेणं बलेणं वाहणेणं कोट्ठागारेणं पुरेणं अंतेउरेणं जयवयपुत्ते हि पसूहिं सावइज्जेणं च अतीव-अतीव अभिवड्ढइ ×××।

—आव० नि गा ४५८। मलय टीका पृ० २५५

(च) सर्वज्ञातकुलं भूरिधनधान्यादिऋद्धिभिः।
गर्भावतीर्णभगवत्प्रभावाद्ववृधेतराम्॥
सिद्धार्थस्यापि नृपतेर्दर्पादप्रणताः पुरा।
प्रणेमुभूर्भूजोऽभ्येत्य स्वयं प्राभृतपाणयः॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग २। श्लो ३५, ३६

जिस रात्रि मे भगवान महावीर के जीव को साहरित कर त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि मे प्रवेश कराया गया उस रात्रि से चाँदी, सोने, धन, धान्य, राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, भडार, कोठार, नगर, अतपुर, जनपद, यशोकीर्ति, विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, दक्षिणावर्तशख, शिला—राजपट्ट, प्रवाल, रक्त रत्न, माणिक आदि खरे बहुमूल्य रत्नादि की ज्ञातकुल मे वाणव्यंतर (तिर्यक्जृंभिक) देव योग से वृद्धि हुई और ज्ञातकुल मे परस्पर प्रीति, सत्कार भाव बहुलता से अभिवृद्धि को प्राप्त हुआ।

देवयोग से जो धन वृद्धि हुई वह देवताओं ने स्वामित्व विहीन धनागारो से एकत्रित करके प्रदान किया।

—०—

·१७ गर्भकाल-गर्भस्थ काल की घटना

·०१ गर्भ में हलन-चलन की क्रिया

(क) तएणं समणे भगवं महावीरे माउअणुकंपणट्ठाए निच्चले निप्फंदे निरेयणे अल्लीणपल्लीणगुत्ते यावि होत्था।

तएणं तीसे तिसलाए खत्तियाणीए अयमेयारूवे जावसमुप्पज्जित्था - हडे मे से गब्भे मडे मे से गब्भे चुए मे से गब्भे गलिए मे से गब्भे एस मे गब्भे पुव्विं एयति इयाणि

नो एयति त्ति कट्टु ओहतमणसंकप्पा चिंतासोगसायरं संपविट्ठा करयलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया भूमिगयदिट्ठीयाझियायइ। तं पि य सिद्धत्थरायभवणं उवरय-मुइंगतंतीतलतालनाडइज्जजणमणुज्जं दीणविमणं विहरइ ॥

तएणं समणे भगवं महावीरे माऊए अयमेयारूवं अज्झत्थियं पत्थियं मणोगयं संकप्प समुप्पण्णं विजाणित्ता एगदेसेणं एयइ।

तएणं सा तिसला खत्तियाणी हट्ठतुट्ठ जावहियया एवं वयासी णो खलु मे गब्भे हडेजाव नो गलिए मे गब्भे पुव्वि नो एयइ इयाणि एयइत्ति कट्टु हट्ठतुट्ठ जाव एवं वा विहरइ।

—कप्प सु ८७ से ९० । पृ० ३०-३१

(ख) मयि परस्पन्दमानेऽत्र मातुर्मा वेदना स्म भूत्।
इत्यस्थान्निभृतः स्वामी गर्भवासेऽपि योगिवत् ॥
स्वामी संवृतसर्वांगव्यापारोऽस्थात्तथोदरे।
नालक्ष्यत यथा मात्राप्यन्तस्तिष्ठति वा न वा ॥
तदा च त्रिशला दध्यौ किं गर्भो गलितो मम।
केनाप्यपहृतः किंवा विनष्टस्तंभितोऽथवा ॥
यद्येतदपि संजातं तदलं जीवितेन मे।
सह्यं हि मृत्युजं दुःखं गर्भभ्रंशभवं न तु ॥
इत्यार्त्तध्यानभाग्देवी रुदती लुलितालका।
त्यक्तांगरागा हस्ताब्जविन्यस्त मुखपंकजा ॥
त्यक्ताभरणसंभारा निःश्वासविधुराधरा।
सखीष्वपि हि तुष्णीका नाशेत बुभुजे न च।
तत् विज्ञाय सिद्धार्थमहिपतिरखिद्यत्।
तत्पुत्रभांडे च नंदिवर्धनोऽथ सुदर्शना ॥
पित्रोर्विज्ञाय तद् दुःखं ज्ञानत्रयधरः प्रभुः।
अगुलिं चालयामास गर्भज्ञापनहेतवे ॥
मद्गर्भोऽक्षत एवेति ज्ञात्वा स्वामिन्यमोदत।
अमोदयच्च सिद्धार्थं गर्भस्पंदनशंसनात् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ३७ से ४५

(ग) मलय टीका —भयवंपि माऊए अणुकंपाए निच्चलं अच्छइ।

तएणं सा तिसला किं मे गब्भे हडे ? किं मे गब्भे मए ? जं एस मे गब्भे पुव्विं एजइ इयाणि नो एजइत्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा चित्तासोगसागरसंपविट्ठा करयलपल्हत्थियमुही अट्टज्झाणोवगया भूमिगयदिट्ठीया झियाइ, तंपि य सिद्धत्थरायभवणं उवरयमुइंगतंतीतलतालनाडइज्जं जायं, ततो भगवया चिंतितं—किं मुइंगादिसद्दो न सुम्मइ ?

ततो ओहिणा नायवुत्तं तेण अंगुट्ठेगदेसो चालिओ। ततो सा तिसला हट्ठतुट्ठा जाया, सिद्धत्थरायभवणंपि पमुइयपक्कीलियं विहरइ।

– आव० नि गा ४५८। टीका

गर्भ मे मेरे हलन चलन से माता त्रिशलाको कष्ट होता है—ऐसा विचार कर माता की अनुकम्पा के कारण भगवान ने अपनी हलन-चलन की क्रिया बद कर दी।

गर्भ मे हलन-चलन की क्रिया बद होने से त्रिशला क्षत्राणी के विचार आया कि मेरे गर्भ का हरण हो गया है, वा मेरा गर्भ मर गया है वा मेरा गर्भ च्युत हो गया है वा मेरा गर्भ गल गया है क्योंकि मेरा गर्भ पूर्व हलन-चलन की क्रिया करता था अब नही करता है। इन विचारों से वह कुलषित चिंतातुर—शोकाभिभूत हो गई। हथेली पर मुँह रखकर आर्त्तध्यान को प्राप्त हुई। वह भूमिपर एक दृष्टि रखकर चिंता करने लगी।

इस प्रकार भगवान महावीर ने अवधिज्ञान से अपनी माता को चिंतातुरजान—देखकर स्वयं के शरीर को एक देश से (अंगुष्ठ से) कम्पन किया।

भगवानको हलन-चलन क्रिया पुन चालू होने पर त्रिशला क्षत्राणी हृष्ट-पुष्ट हुई, परम आनद को प्राप्त हुई और मन मे विचार कि—यह निश्चित है कि मेरे गर्भ का हरण नहीं हुआ है यावत् मेरा गर्भ नही गला है। मेरा गर्भ हलन-चलन की क्रिया नही करता था लेकिन अब करता है। ऐसा कहकर रानी त्रिशला हृष्ट-पुष्ट होकर विचरने लगी।

०२ वर्द्धमान (महावीर) का गर्भ में अभिग्रह

(क) तएणं समणे भगवं महावीरे गब्भत्थे चेव इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ नोखलु मे कप्पइ अम्मापिएहिं जीवंतेहिं मुंडे भवित्ता अगारवासाओ अणगारियं पव्वइत्तए।

—कप्प० सू ९१। पृ० ३१

(ख) ततो भयवं चिंतेइ—ममं गब्भत्थेऽवि माउपितूणमेवं पडिबंधो तो जइ उम्मुक्कबालभावो देवदाणवपरियरिओ पवज्जं गिण्हिस्सामि ततो महंतमट्टज्झाण मेयासिं भविस्सइत्ति चिंतिऊण माउपिऊणमणुकंपाए सत्तमे मासे गब्भत्थो चेव अभिग्गहं गेण्हइ…'जाव एयाणि जीवंति ताव नाहं समणे भवामि' पतद्देवाह—

तिहिं नाणेहिं समग्गो देवीतिसलाए सो य कुच्छिसि ।
अह वसइ सन्निगब्भो छम्मासे अद्धमासं च ॥ ५८ ॥
अह सत्तमम्मि मासे गब्भत्थो चेवऽभिग्गहं गेण्हे ।
नाहं समणो होहं अम्मापियरंमि जीवंते ॥ ५६ ॥

—आव० मूल भाष्य गा ५८, ५६

(ग) मलय टीका —××× त्रिभिर्ज्ञानैः—मतिश्रुतावधिरूपैः समग्रः, कियन्तं कालं यावद्वसतीत्यत आह-षण्मासान् अर्द्धमासं च। अथ गर्भादारभ्य सप्तमे मासे तयोर्मातापित्रोर्गर्भप्रयत्नकरणेनात्यन्तं स्नेहमवबुद्ध्य अहो ममोपर्यनी-वानयोः स्नेहो, यद्यहमनयोर्जीतोः प्रव्रज्यां गृह्णामि नूनं भवत एवैताबित्यतो गर्भस्थ एवाभिग्रहं गृह्णाति, ज्ञानत्रयोपेतत्वात् , किंविशिष्टमित्याह नाहं श्रमणो भविष्यामि मातापित्रोर्जीवतोरिति ।

—आव० नि० गा ४५८ । मलय टीका

(घ) अचिन्तयच्च भगवान्मय्यदृष्टेऽपि कोऽप्यहो ।
मातापित्रोर्महान् स्नेहो जीवतोरनयोर्यदि ॥
प्रव्रजिष्याम्यहं स्नेहमोहादेतौ तदा ध्रुवम् ।
आर्तध्यानगतौ कर्माशुभं बह्वर्जयिष्यतः ॥
अथैवं सप्तमे मासि जग्राहाभिग्रहं प्रभुः ।
उपादास्ये परिव्रज्यां न पित्रोर्जीवतोरहम् ॥
अथ दिक्षु प्रसन्नासु स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषु च ।
प्रदक्षिणेऽनुकूले च भूमिसर्पिणी मारुते ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ४६ से ४६

गर्भस्थकाल मे अवधि ज्ञानी भगवान ने चिंतन किया कि मेरे पर जब गर्भस्थकाल मे भी माता-पिता का अधिक स्नेह है, अतः यदि मैं बाल-भाव को छोड़कर देव-दानव के मध्य मे प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा तो मेरी माता अत्यन्त आर्तध्यान को प्राप्त होगी । ऐसा चिंतनकर माता की अनुकम्पा से गर्भ के सातवें मास मे भगवान महावीर ने अभिग्रह लिया कि जब-तक माता-पिता जीवित रहेंगे तब तक मैं मुडित होकर गृहवास छोड़कर अनगार वृत्ति—प्रव्रज्या ग्रहण नहीं करूँगा । कहा जाता कि गर्भ मे हिलने-डूलने की क्रिया सार्ध छःमास व्यतीत हो गये थे तत्पश्चात् भगवान् मातृ स्नेह के वशीभूत होकर हिलने-डूलने की क्रिया कुछ दिन बंद रखी ।

·३ गर्भ की प्रतिपालना

(क) तए णं सा तिसला खत्तियाणी ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगल-पायच्छित्ता सव्वालंकारभूसिया तं गब्भं नाइसीएहिं जाव नातिसुक्केहिं ××× ववगयरोगसोगमोहभयपरित्तासा जं तस्स गब्भस्स हियं मियं पत्थं गब्भपोसणं तं देसे यकाले य आहारमाहारेमाणी ××× विहारभूमीए पसत्थदोहला जाव विणीयदोहला सुहं सुहेणं आसयइ सयति चिट्ठइ निसीयइ तुयट्टइ सुहं सुहेणं तं गब्भं परिवहइ ॥

—कप्प० सु ९२

(ख) ततो णं सा तिसला ण्हाया कयकोउयमंगलोवयारा तं गब्भं नातिउण्हेहिं नाइसीएहिं नातितित्तेहिं नातिकडुएहिं नातिकसाएहिं अंबिलेहिं नाइमहुरेहिं जं तस्स गब्भस्स हियं पत्थं तं देसे काले य आहारमाहारेमाणी विवित्तमउएसु सयणासणेसु सुहंसुहेण चिट्ठइ।

—आव० नि गा ४५८। मलय टीका।

भगवान महावीर के जीव ने गर्भस्थकाल मे माता की अनुकम्पा से पुनः हलन-चलन की क्रिया प्रारम्भ की फलस्वरूप माता त्रिशला आर्तध्यान से निवृत्त हुई।

इसके बाद त्रिशला क्षत्राणी ने स्नानादि कार्य किया और कौतुक, मंगल, प्रायश्चित किया। सर्वालंकारों से विभूषित होकर वह अपने गर्भ की रक्षा करने लगी। वह न अति शीत, न अति तिक्त, न अति उष्ण, न अति कटुक, न अति कषाय, न अति आंबिल, न अति मधुर रस का सेवन करती थी। रोग, शोक, मोह, भय, परिताप को छोड़कर गर्भ की रक्षा के लिये हित, मित, पथ्य आहार ग्रहण करती थी। देश, काल के अनुसार उचित आहार ग्रहण करती थी। मन के अनुकूल आसन आदि मे सोती-बैठती थी। इस प्रकार वह सुखपूर्वक गर्भ का प्रतिपालन करने लगी।

(ग) दधार त्रिशलादेवी मुदिता गर्भमद्भुतम्।
अप्रमत्तं विहरन्ती लीलासदनभूष्वपि ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग २। श्लो० ३१

·०४ गर्भ-अवस्था के ज्ञान

(क) समणे भगवं महावीरे तिण्णाणोवगए यावि होत्था।

—आया० श्रु २। अ १५। सू ७

—कप्प० सू २१। सू १३

(ख) तिहिं नाणेहिं समग्गो देवीतिसलाए सो य कुच्छिसि।

—आव० मूल भाष्य गा ५८। पूर्वार्ध

(ग) × × × महावीरो × × × तिण्णाणहरो गब्भमोइण्णो ।

—कसापा० भा १ । गा १ । टीका । पृ ७४

(घ) × × × गब्भ-ट्ठिओवि णाणतएणं सो मुक्कु ण मुणिय-जयत्तएणं ।

—वड्ढ़च० संधि ६ । कड ८ । पृ० २०६

गर्भस्थकाल मे भी भगवान महावीर को मति-श्रुत एव अवधि—ये तीन ज्ञान थे ।

—o—

.१८ दोहद

कल्प सूत्र के अतिरिक्त आगम साहित्य मे त्रिशला क्षत्राणी को दोहद उत्पन्न हुआ - ऐसा उल्लेख नहीं है ।

कल्पसूत्र की कल्पलता व्याख्या, पत्र संख्या १०८-२, १०६-१ मे त्रिशला क्षत्राणी को दोहद उत्पन्न हुआ—ऐसा उल्लेख मिलता है । उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार त्रिशला को इन्द्राणियों से छीन कर कुंडल पहनने का दोहद उत्पन्न हुआ । किन्तु ऐसा हो पाना सर्वथा असंभव था, अत: वह दुर्मनस्क रहने लगी । एकाएक इन्द्र का आसन कंपित हुआ । अपने अवधि ज्ञान के बल से यह सब जाना । इसे पूर्ण करने के उद्देश्य से उसने इन्द्राणी प्रभृति अप्सराओं को साथ लिया और एक दुर्गम पर्वत के अन्तर्वर्ती विषम स्थान मे देव-नगर का निर्माण कर रहने लगा । सिद्धार्थ ने उक्त घटना को जाना, ससैन्य इन्द्र के पास आया और उससे कुंडलों की याचना की । इन्द्र ने सिद्धार्थ को कुंडल देना मना किया । परिणाम स्वरूप दोनों ओर से युद्ध के लिए तैयार हुए । इन्द्र युद्ध में समर्थ था फिर भी कुछ समय युद्ध कर वहाँ से भाग निकला । सिद्धार्थ ने अवसर देखकर अप्सराओं को लूट किया । विलपती हुई इन्द्राणियों के हाथों बलपूर्वक राजा ने कुंडल छीने और त्रिशला को लाकर दिये । रानी ने कुंडल पहन कर अपना दोहद पूर्ण किया ।

—o—

'१९ भगवान महावीर का जन्म

'१ जन्म की तिथि, नक्षत्र और समय

(क) (समणे भगवं महावीरे) हत्थुत्तराहिं जाए ।

—आयाo श्रु २ । अ० १५ । सू १ । पृ० २३१

—कप्प० सू १ । पृ० १

—ठाण स्था ५ । उ १ । सू ९७ । पृ ६६४

—दसासु० अ ८ । सू १

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं नवण्हं मासाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं वइक्कंताणं चेतसुद्धतेरसीदिवसे × × × अड्ढरत्तकालसमए हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं आरोगा आरोगं दारयं पसूया।

—आव० नि० गा ४५८। मलय टीका। पृ २५६

(ग) अह चेत्तसुद्धपक्खस्स तेरसी पुव्वरत्तकालम्मि।
हत्थुत्तराहिं जातो कुंडग्गामे महावीरो॥

—आव० मूल भाष्य गा ६१

मलय टीका—चैत्रस्य शुद्धपक्षस्तस्य त्रयोदश्यां पूर्वरात्रकाले प्रथमप्रहरद्वयान्ते इत्यर्थः, हस्तोत्तरासु जातः हस्त उत्तरा यासां ता हस्तोत्तराः, उत्तरफाल्गुन्य इत्यर्थः।

(घ) प्रमोदपूर्णे जगति शकुनेषु जयिष्वलम्।
अर्धाष्टमदिनाग्रेषु मासेषु नवसूक्ष्मकैः।
शुक्लचैत्रत्रयोदश्यां चंद्रे हस्तोरागते।
सिंहांकं काञ्चनरुचिं स्वामिनी सुषुवे सुतम्॥
॥ त्रिभिर्विशेषकम्॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग २। श्लो ५०,५१

(च) नवमासेष्वतीतेषु स जिनोऽष्टदिनेषु च।
उत्तराफाल्गुनीष्विंदौ वर्तमानेऽजनि प्रभुः॥

—हरिपु० खण्ड १। सर्ग २। श्लो २५

भगवान महावीर का चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन प्रायः मध्य रात्रि के समय हस्तोत्तरा नक्षत्र में कुंडग्राम में जन्म हुआ।

(छ) सिद्धत्थरायपियकारिणीहिं णयरम्मि कुंडले वीरो।
उत्तरफग्गुणिरिक्खे चित्तसियातेरसीए उप्पण्णो॥

—तिलोप० अधि ४। गा ५४९

(ज) × × × चइत्त-सुक्कपक्ख-तेरसीए उप्पण्णो × × ×।
एत्थुवउज्जंतीओ गाहाओ—
"× × ×—× × ×।"
अच्छित्ता णवमासे अट्ठय दिवसे चइत्त-सियपक्खे।
तेरसिए रत्तीए जादुत्तरफग्गुणीए दु॥ २४॥

—कसापा० भाग १। गा १। टीका। पृ० ७७-७८

(झ) नवमे मासि संपूर्णे चैत्रे मासे त्रयोदशी
दिने शुक्ले शुभे योगे सत्यर्यमणि नामनि ॥२६२॥
× × × × × × ।
तस्यां सुतोऽच्युताधीशो लोकालोकैकभास्करः ॥२६७॥

—उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो २६२, २६७ उत्तरार्ध

(ञ) इत्याद्यैः परमोत्साहैर्महोत्सवशतैः परैः ।
नवमे मासि संपूर्णे चैत्रे मासि शुभोदये ॥५६॥
त्रयोदशीदिने शुक्ले योगेऽर्यमणि नामनि
शुभे लग्नादिके देवीसुखेन सुषुवे सुतम् ॥६०॥

—वीरव० अधि ८ । श्लो ५९, ६०

(ट) सुउ-जणिउ ताए उत्थट्टिएसु
महु-मासे सेय तइयहे गहेसु ।
उत्तरफग्गुणीए सतेइचंदे
वियसाविय-कइरव-कलिय-वंदे ।

—वड्ढव० संधि ९ । कड ९

राजा सिद्धार्थ को रानी प्रियकारिणी ने कुण्डलनगर में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में, चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन अर्यमा नामक शुभ योग में, शुभलग्नादि के समय अच्युत देवलोक से आगत (श्रमण भगवान महावीर जीव को) जन्म दिया ।

(ठ) मासम्मि पत्ति चित्ता-णिउत्ति ।
सिय तेरसीइ जणिओ सईइ ।
जिणु भुवण-णाहु भम्माह-देहु ।

—वीरजि० संधि १ । कड ६

जब चैत्र मास चित्रा नक्षत्र युक्त हुआ तब शुक्लपक्ष की त्रयोदशी के दिन सतिप्रियकारिणी ने भुवननाथ जिनेन्द्र भगवान महावीर को जन्म दिया ।

(ड) तेणं कालेणं तेणं समएणं तिसला खत्तियाणी अह अण्णया कयाइ णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं, अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं वीतिक्कंताणं, जे से गिम्हाणं पढमे मासे, दोच्चे—पक्खे-चेत्तसुद्धे, तस्सणं चेत्तसुद्धस्स तेरसीपक्खेणं, हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगोवगएणं समणं भगवं महावीरे अरोया अरोयं पसूया ।

—आया० श्रु २ । अ १५ । सू ८ । पृ २३२

(ढ) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से गिम्हाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे चित्तसुद्धे तस्स णं चित्तसुद्धस्स तेरसीदिवसेणं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं विइक्कंताणं-उच्चट्ठाणगतेसु गहेसुपढमे चंदजोगे सोमासु दिसासु वितिमिरासु विसुद्धासु जतिएसु सव्वसउणेसु पयाहिणाणु-कूलंसि भूमिसप्पिंसि मारुयंसि पवातंसि निप्फण्णमेदिणीयंसि कालंसि पमुदित-पक्कीलिएसु जणवएसु-पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आरोगा आरोगं दारयं पयाया।

– कल्प० सू ९३ । पृ० ३१-३२

गर्भ मे नव मास सार्ध सात दिन परिपूर्ण होने पर ग्रीष्म ऋतु के प्रथम भाग में, दूसरे पक्ष मे, चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन, हस्तोत्तरा—उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के आगमन होने पर, ग्रहों के उच्च स्थान पर आगमन होनेपर, चन्द्रके प्रथम योग मे प्राय: अर्द्धरात्रि के समय मे श्रमण भगवान महावीर का त्रिशला क्षत्राणी की कुक्षि से जन्म हुआ।

सम्भवत: यह नव मास आठ दिन की सख्या दोनों गर्भों (देवानन्दा तथा त्रिशला) की संयुक्त है। गणना इस प्रकार बनती है—

	मास	दिन
गर्भप्रवेश तिथि—आषाढ शुक्ला षष्ठी	०	०
गर्भसाहरण तिथि—आश्विन कृष्णा त्रयोदशी		
अत: देवाणंदा गर्भकाल	२	२२
जन्मतिथि—चैत्र शुक्ला त्रयोदशी		
अत: त्रिशला गर्भकाल	६	१६
	योग—९	८

(ण) मुणि-भासियाइँ पण्णासियाइँ।
सह दोसयाइँ जइयहुँ गयाइँ।
णिव्वुइ जिणिंदि अह-तिमिरयंदि।
सिरिपासणाहि लच्छी-सणाहि।
तणु - कंति - कंतु तइयहुं तियंतु।
बड्ढाउमाणु सिरिवड्ढमाणु।
जइवहु पहूउ जय-तिलयभूउ।

—वीरजि० संधि १ । कड १ । पृ १८

जब पापरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिये चन्द्र के सदृश लक्ष्मीनाथ श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र को निर्वाण प्राप्त किये २५० वर्ष व्यतीत हुए थे—तभी उन शरीर कांति से युक्त जन्म जरा-मरण अतीत, व्याधियों का अन्त करने वाले, जगत के तिलकभूत श्री वर्धमान जिनेन्द्र अपनी आयु बांध कर उत्पन्न हुए,

.०२ कालचक्र की अपेक्षा जन्मकाल

(क) अण्णे के वि आइरिया पंचहिदिवसेहि अट्ठहि मासेहि य ऊणाणि बाहत्तरि वासाणि त्ति वड्ढमाणजिणिंदाउअं परूवेंति ७१-३-२५। तेसिमहिप्पाएणं गब्भत्थकुमार-छदुमत्थ केवलिकालाणं परूवणा कीरदे। तंजहा, आषाढजोण्हपक्ख-छट्ठीए कुण्डपुर-णगराहिव णाहवंस-सिद्धत्थणरिंदस्स तिसलादेवीए गब्भमागंतूण तत्थ अट्ठदिवसाहिय णवमासे अच्छियचइत्त-सुक्कपक्ख-तेरसीए रत्तीए उत्तरफग्गुणी-णक्खत्ते गब्भादोणिक्खंतो वड्ढमाणजिणिंदो ×××।

परिणिव्वुदे जिणिंदे चउत्थकालस्स अब्भंतरे सेसंवासा तिण्णि मासा अट्ठ दिवसा पण्णारस ३-८-१५। ×××। इमंकालं वड्ढमाणजिणिंदाउअम्मि पक्खित्ते दसदिवसाहिय-पंचहत्तरिवासावसेसे चउत्थकाले सग्गादो वड्ढमाणजिणिंदो ओदिण्णो होदि। ७५-०-१०।

—कसापा०। गा १। टीका। भाग १। पृ० ७१, ७७, ८१

आषाढ़ महीने के शुक्लपक्ष की षष्ठी के दिन कुण्डपुर (कुण्डलपुर) नगर के स्वामी नाथवंशी सिद्धार्थ नरेन्द्र की त्रिशला देवी के गर्भ में आकर और वहाँ नौ माह आठ दिन रहकर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन रात्रि में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के रहते हुए भगवान महावीर अवतरित हुए।

.०३ जन्मभूमि

(क) ××× जातो कुंडग्गामे महावीरो।

—आव० मूलभाष्य गा ११ उत्तरार्ध

मलय टीका—कुंडग्रामे महावीरः जातः।

भगवान महावीर का कुंडग्राम में जन्म हुआ।

(ख) ×××, णयरम्मि कुंडले वीरो।

×××, चित्तसियातेरसीए उप्पण्णो॥

—तिलोप० अधि ४। गा ५४९

भगवान महावीर का कुंडलपुर में जन्म हुआ।

(ग) णिवसइ विदेहु णामेण देसु।

× × ×।

तहिं णिवसइ कुंडपुराहिहाणु,

× × ×।

तत्थत्थि सिद्धत्थु

णरणाहु सिद्धत्थु।

× × ×।

तहो णरवरहो, साहिय-धरेहो पियकारिणि णामे पिय।

× × ×

सुउ जणिउ ताए उत्थट्टिएसु,

महुमासे सेयतइयहे गहेसु।

× × ×।

आसा पसण्ण संजाय जेम,

× × ×।

—वड्ढमाण० संधि ६। कड १, ३, ६

इस भरत क्षेत्र मे विदेह नामक एक सुप्रसिद्ध देश है। उसी विदेह देश मे कुडपुर नामक एक नगर है। उस कुडपुर मे समस्त अर्थो को सिद्ध कर लेने वाला सिद्धार्थ नामक राजा राज्य करता था। उस राजा सिद्धार्थ के मनको प्रिय लगने वाली 'प्रियकारिणी नाम की प्रिया थी।

उस माता प्रियकारिणी ने ग्रहों के उच्च स्थल मे स्थित होते ही मधुमास चैत्र की शुक्ल त्रयोदशी के दिन पुत्र को (भगवान् महावीर) जन्म दिया।

'०४ जन्मके पश्चात् धनवर्षा

(क) जण्णं रयणिं तिसला खत्तियाणी समणं भगवं महावीरं अरोया अरोयं पसूया, तण्णं रयणिं बहवे देवा य देवीओ य एगं महं अमयवासं च, गंधवासं च, चुण्णवासं च, हिरण्णवासंच, रयणवासं च वासिंसु।

—आचा० श्रु २। अ १५। सू १०। पृ० २३३

(ख) जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे जाए तं रयणिं च णं बहवे वेसमण-कुंडधारिणो तिरियजंभगा देवा सिद्धत्थरायभवणंसि हिरन्नवासं च सुवन्नवासं च रयणवासं च वयरवासं च वत्थवासं च आहरणवासं च पत्तवासं च पुप्फवासं च फलवासं च बीयवासं च मल्लवासं च जाव वसुहारवासं च वासिंसु।

—कप्प० सु ६५। पृ० १२

(ग) ××× बहवे य वेसमणवयणचोइया तिरियजंभगा देवा सिद्धत्थराय-भवणंसि हिरण्णवासं सुवण्णवासं रयणवासं आभरणवासं पत्तवासं पुप्फवासं गंधवासं चुण्णवासं वासंति।

—आव० नि । गा ४५८ । मलयटीका

(घ) आभरणरयणवासं वुट्ठं तित्थंकरंमि जायंमि।

—आव० मूल भाष्य गा ६२ पूर्वार्ध

टीका – आभरणानि—कटककेयूरादीनि रत्नानि—इन्द्रनीलादीनि तद्वर्षं वृष्टं तीर्थकरे जाते × × ×।

(च) तदेन्द्रादिष्टधनदप्रेरिता जृंभकामराः।
ववृषुः स्वर्णमाणिक्यवसुधारा नृपौकसि॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ६०

जिस रात्रि मे त्रिशला देवी ने भगवान महावीर को जन्म दिया उस रात्रि मे बहुत से देव, देवियों, ने (तिर्यक्जृंभकदेव ने) अमृत, सुगन्धित द्रव्य, सुगंधित चूर्ण, रजत, रत्न, सुवर्ण, वज्रवल्ल, वस्त्र, आभरण, पत्र, पुष्प, फूल, बीज, माला, विविध रंग आदि भी धन और द्रव्य की वर्षा की।

(छ) मणिकणगरयणवासं उवच्छुभे जंभगादेवा॥६७॥
वेसमणवयणसंचोइया उते तिरियजंभगादेवा।
कोडिग्गसो हिरण्णं रयणाणि य तत्थ उवणेंति॥६८॥

—आव० मूल भाष्य गा ६७, ६८

मलय टीका - × × × 'से' तस्मै भगवते, मणयः—चंद्रकांताद्याः कनकं प्रतीतं रत्नानि कर्केतनादीनि तद्वर्षमुपक्षिपन्ति जृम्भकाः व्यंतरविशेषा देवाः।

वैश्रमणवचनसंचोदितास्ते तिर्यग्लोके जृम्भकाः तिर्यग्जृम्भिकादेवाः। कोटय-ग्रशः—कोटिपरिमाणेन हिरण्यमघटितं (स्वर्णं) रत्नानि - इन्द्रनीलादीनि तत्रोप-नयति।

जब देवों ने भगवान का मेरुपर्वत पर जन्माभिषेक कर माता त्रिशला के पास उनको वापस प्रदान कर दिया तब शक्रेन्द्र की आज्ञा से तिर्यगजृंभक देवों ने मणि, रत्न, कनकादि की वर्षा की।

वैश्रमण की आज्ञा से तिर्यक्जृंभकदेव ने कोटिपरिमाण, हिरण्य-सुवर्ण, रत्न, इन्द्रनील आदि को एकत्रित करके राज-भवन (कोठागार में) मे रख दिया।

(ज) आसणकम्पेण सुरा, मुणिऊण, जिणेसरं समुप्पन्नं ।
सव्वे वि समुच्चलिया, परिओसुब्भिन्नरोमञ्चा ॥
आगन्तूण य नयरे, गन्धोदयवारिवरिसणं काउं ॥

—पउच० सधि २ । श्लो २३, २४ उत्तरार्ध

आसन-कंपन के द्वारा जिनेश्वर का जन्म हुआ है—ऐसा जानकर आनंद विभोर होकर देवों ने प्रस्थान किया और कुण्डग्राम नगर मे आकर उन्होंने सुगंधित जल की वृष्टि की ।

·०५ जन्म-कल्याणक

·०१ जन्मके अवसर पर देवों को खुशी—

तम्मि जायए जिणेसें
भव्व-कंज - वासरेसें ।
सुप्पसिद्ध तित्थणाहे
तप्पमाण - कंचणाहे
हेलए सुरेसराहँ
तेय-जित्त - णेसराहँ ।
कंपियाइँ आसणाइँ
अंधयार- णासणाइँ ।
सुप्पहुव - संट - सद
देव - चित्त -संविमद ।

—वड्ढच० सधि ९ । कड १० । पृ २०८

भव्य रूपी कमलों के लिए दिनकर के समान तथा तप्त कांचन की आभावाले सुप्रसिद्ध तीर्थनाथ जिनेश के जन्म लेते ही अपने तेज से सूर्य को भी जीत लेने वाले सुरेश्वरो के तत्काल ही अंधकार का नाश करने वाले सिंहासन काँप उठे और देवों के चित्त को विमर्दित कर देने वाले घण्टे तीव्रता के साथ बज उठे ।

·०२ देवों का आगमन

(क) जण्णं राइं तिसला खत्तियाणी समणं भगवं महावीरं अरोया अरोयं पसूया, तण्णं राइं भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-विमाणवासिदेवेहि य देवीहि य ओवयंतेहि य उप्पयंतेहि य एगे महं दिव्वे देवुज्जोए देव-सण्णिवाते देवकहक्कहे उप्पिंजलगभूए यावि होत्था ।

— आया० श्रु २ । अ १५ । सू ९ । पृ० २३२, २३३

(ख) जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे जाए सा णं रयणी बहूहिं देवेहि य देवीहि य उवयंतेहि य उप्पयंतेहि य उप्पिंजलमाणभूया कहकहभूया यावि होत्था।

—कप्प० सू ९४। पृ० १२

(ग) × × × तं रयणिं च णं बहूहि देवेहिं देवीहिं ओवयमाणेहिं उप्पयमाणेहिं एगालोए देवुज्जोए होत्था।

—आव० निगा ४५८। मलय टीका पृष्ठ २५६

जिस रात्रि मे त्रिशला देवीने भगवान महावीर को जन्म दिया, उस रात्रि मे चारों देव निकाय के देव-देवियों के आवागमन से एक महान दिव्य ज्योति दृश्यमान हुई। तथा स्थान-स्थान पर देव-सगम (समूह), देवो के परस्पर वार्तालाप से उत्पन्न कोलाहल तथा भगवान दर्शन हेतु देवो की आतुरता परिलक्षित हुई।

(घ) × × × तित्थंकरंमि जायंमि।
सक्कोऽवि देवराया उवागतो आगया निहओ।
तुट्ठातो देवीतो देवा आणंदिया सपरिसागा॥
भयवंमि वद्धमाणे तेलुक्कसुहावहे जाए।
भवणवइवाणमंतरजोइसवासी विमाणवासी य।
सव्विड्ढीए सपरिसा चउव्विहा आगया देवा।

—आव० मूल भाष्य गा १२ से १४

मलय टीका—× × × तीर्थकरे जाते, शक्रश्च देवराजस्तत्रैवोपागतः तथा आगता महापद्मादयो निधयः। तुष्टा देव्यो देवा आनंदिताः सह पर्षदो येषां वा ते सपर्षत्काः, भगवति वर्द्धमाने त्रैलोक्यसुखावहे जाते सति। भवनपतयश्च व्यंतराश्च ज्योतिर्वासिनश्चेति द्वन्द्वः, तथा विमानवासिनश्च च सर्वद्धर्या समर्षद्श्चागताश्चतुर्विधा देवाः।

भगवान महावीर के जन्मोपलक्ष मे शक्रेन्द्र देवराज का भी आगमन हुआ। महापद्म आदि निधियों का भी आगमन हुआ। देव-देवी सपरिषद आनंद को प्राप्त हुए। भगवान वर्द्धमान का जन्म होने पर त्रिलोक मे सुख की अनुभूति हुई। चतुर्निकाय देवों का सपरिषद कुण्डपुर आगमन हुआ।

(च) × × × शक्रा ज्ञात्वा जन्मजिनेशिनः।
तत्कल्याणे मतिं चक्रुः सौधर्मेन्द्रादयोऽखिलाः॥६६॥

× × ×

अथ सौधर्मकल्पेश आरुह्य देवदन्तिनम्।
ऐरावतं सहेन्द्राण्या प्रतस्थे निजरैर्वृतः ॥६६॥
ततः खाङ्गणमारुध्य स्वैः स्वैश्छत्रैर्ध्वजोत्करैः
विमानैर्वाहनैर्वाद्यैरवतीर्य महीतलम् ॥७३॥
विभूत्या परया सार्धं क्रमात्कुण्डपुरं परम्।
चतुर्णिकायदेवेशाः प्रापुर्नाक्यङ्गनावृताः ॥७४॥

—वीरवर्धच० अधि ६। श्लो ६६, ६६, ७३, ७४

घंटा शंख, भेरी आदि के नाद से अन्य देवों के साथ सौधर्मेन्द्र ने तीर्थंकर देव के जन्म को जानकर भगवान का जन्म-कल्याणक करने का विचार किया और उनकी आज्ञा से देव-देवी गण महा-ध्वनि करते हुए महासागर की तरंगों के समान क्रमश स्वर्ग से निकले। सौधर्मेन्द्र ने भी ऐरावत गजराज पर इन्द्राणी सह आरोहण किया, सब देवों से आवेष्ठित होकर निकला और भूतलपर उतरा। चतुर्निकाय के अन्य देवेन्द्र भी अपनी देवांगणा से परिवेष्ठित होकर कुंडपुर पहुँचे।

.०३ देवों द्वारा कुण्डपुर में जन्माभिषेक

(क) जण्णं रयणि तिसला खत्तियाणी समणं भगवं महावीरं अरोया अरोयं पसूया, तण्णं रयणि भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-विमाणवासिणो देवा य देवीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स कोउगभूइकम्माइं तित्थयराभिसेयं च करिंसु॥

—आया० श्रु २। अ १५। सू ११

(ख) षट्पंचाशद्दिक्कुमार्योऽभ्येत्य भोगंकरादयः।
स्वामिनः स्वामिमातुश्च सूतिकर्माणि चक्रिरे॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग २। श्लो ५२

(ग) × × × कुण्डग्रामे महावीरः जातः, जातकर्मादि दिक्कुमार्यादिनिर्वर्त्तितं पूर्ववदवसेयम्।

—आव० मूल भाष्य गा ६१ मलय टीका

जिस रात्रि मे भगवान महावीर का जन्म हुआ, उस रात्रि मे चतुर्निकाय के देव-देवियों ने भगवान महावीर का कौतुक, भूतिकर्म और तीर्थंकराभिषेक किया। दिक्कुमारियों ने जात कर्मादि कार्य किये।

(घ) इत्यभिष्टुत्य गूढाङ्गी तां मायानिद्रयान्विताम्।
कृत्वा मायामयं बालं निधाय तत्पुरोऽपरम्॥

छत्रं ध्वजं सुभृङ्गारं कलशं सुप्रतिष्ठकम् ।
चामरं दर्पणं तालमित्यादाय स्वपाणिभिः ॥
अष्टौ मङ्गलवस्तूनि जगन्मंगलकारिणः ।
तदा मङ्गलधारिण्यः दिक्कुमार्यः पुरो ययुः ॥
ततो मुदा समानीय जगदानन्दवर्तिनम् ।
इन्द्राणी देवराजस्य व्यधात् करतले जिनम् ॥

—वीरव० अधि ८ । श्लो ८०, ८४ से ८६

जिन माताकी स्तुति कर इन्द्राणी ने उन्हें माया रूप निद्रा से युक्त करके और उनके समीप दूसरा मायामयी बालक रखकर इन्द्रको देने चली ।

उस समय जगत मे मगल करने वाली दिक्कुमारियाँ छत्र, ध्वजा, भृङ्गार, कलश सुप्रतिष्ठत (स्वस्तिक) चमर, दर्पण और ताल इन आठ वस्तुओ को अपने हाथो मे लेकर इन्द्राणी के आगे चली ।

इस प्रकार ससार को आनद प्रदान करने वाले बालक को इन्द्राणी ने हर्ष के साथ देवेन्द्र के करतल मे दिया ।

.०४ देवों द्वारा मेरुपर्वत पर जन्माभिषेक

(क) देवेहिं संपरिवुडो देविंदो गिण्हिऊण तित्थयरं ।
नेऊण मंदरगिरिं अभिसेअं तत्थ से कासी ॥६५॥
काऊणय अभिसेयं देविंदो देवदाणवेहिं समं ।
जणणीए अप्पइत्ता जम्मणमहिमंच कासी य ॥६६॥

मलय टीका—××× देवैः संपरिवृतो देवेन्द्रो गृहीत्वा तीर्थकरं नीत्वा मन्दरगिरिं तत्राभिषेकं 'से' तस्य भगवतोऽकार्षीत् ।

देवेन्द्रो देवदानवैः सार्द्धं, देवग्रहणाज्ज्योतिष्कवैमानिकपरिग्रहः दानवग्रहणाद् भवनपतिव्यंतरग्रहणम्, अभिषेकं कृत्वा । ××× ।

— आव० मूल भाष्य गा० ६५, ६६ । पृ० २५७

देवों द्वारा संपरिवृत्त देवेन्द्र भगवान महावीर को ग्रहण किया तथा जन्माभिषेक के लिए उनको मेरु पर्वत पर ले गया तथा मेरु पर्वत पर भगवान महावीर का जन्माभिषेक किया ।

(ख) गत्वा मेरावतिपांडुकंबलामासदच्छिलाम् ।
तत्र सिंहासनं भेजे शक्रोऽङ्कारोपित प्रभुः ॥

तदा स्नपयितुं नाथं त्रिषष्टिरपरेऽपिहि।
एयुरिन्द्रा आभियोग्यैस्तीर्थानायितवारयः॥
इयन्तं वारिसंभारं कथं स्वामी सहिष्यते।
इत्याशशंके शक्रेण भक्तिकोमलचेतसा॥
तदाशंकानिरासाय लीलया परमेश्वरः।
मेरुशैलं वामपादाऽङ्गुष्ठाग्रेण न्यपीडयत्॥
शिरांसि मेरोरनमन्नमस्कर्तुमिव प्रभुम्।
तदन्तिकमिवायातुमचलंश्च कुलाचलाः॥
अतुच्छमुच्छलंति स्म स्नात्रं कर्तुमिवार्णवा।
विवेपे सत्वरं तत्र नर्तनामिमुखेव भूः॥
किमेतदिति संचिन्त्यावधिज्ञानप्रयोगतः।
लीलायितं भगवतो विदाञ्चक्रे बिडौजसा॥
स्वामिन्नन्यसामान्यं सामान्यो मादृशो जनः।
विदांकरोतु माहात्म्यं कथंकारं तवेदृशम्॥
तन्मिथ्यादुष्कृतं भूयाच्चिन्तितं यन्मयान्यथा।
इतीन्द्रेण ब्रुवाणेन प्रणेमे परमेश्वरः॥
सानन्दं वादितातोद्यं चक्रे भर्तुः सुरेश्वरैः।
तीर्थगंधोदकैः पुण्यैरभिषेकमहोत्सवः॥
अभिषेकजलं तत्तु सुरासुरनरोरगाः।
ववन्दिरे मुहुः सर्वाङ्गीणं च परिचिक्षिपुः॥
प्रभुस्नात्रजलालीढा वंदनीया मृदप्यभूत्।
गुरूणां किल संसर्गाद्गौरवं स्याल्लघोरपि॥
निवेश्येशाननाथांके सौधर्मेन्द्रोऽप्यथ प्रभुम्।
स्नपयित्वार्चयित्वाथ कृत्वारात्रिकमस्तवीत्॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ५८ से ७०

शक्रेन्द्र भगवान महावीर को मेरुगिरि पर ले जाकर अति पांडुकबल नामक शिलापर ले गया और उन्हें उत्संग में लेकर सिंहासन पर बैठाया। उस समय अन्य त्रेसठ इन्द्र भी प्रभु को स्नान कराने के लिए वहाँ आये। आभियोगिक देव स्नान कराने के लिए तीर्थ का जल लेकर आये। इस अवसर पर भक्ति से कोमल चित्तवाले शक्रेन्द्र को यह संकल्प हुआ कि—इस सर्व जलका स्नान रूप भार प्रभु किस तरह सहन करेंगे।

जैसे ही इन्द्र के शंका उत्पन्न हुई कि इन्द्र की आशंका को दूर करने के लिए लीला-वश महावीर प्रभु ने वाम पाद अंगुष्ठ से मेरुपर्वत को दबाया उससे तत्काल मानो महावीर को नमस्कार करने के लिए हुआ हो—मेरुपर्वत के शिखर नम गये हो। कुलगिरि के पास आते हो—ऐसा मालूम होता था—इस प्रकार चलायमान हुए।

समुद्र मानो कि भगवान को स्नान कराने की इच्छा करते हो—इस प्रकार उछलने लगे।

पृथ्वी मानो कि भगवान के पास नृत्य करने के लिए उन्मुख हो गई हो वैसे सत्वर कंपन करने लगी।

इस प्रकार उत्पात देखकर, यह क्या हुआ—इस प्रकार चिंता करते हुए शक्रेन्द्र ने अवधि ज्ञान से देखा फलस्वरूप भगवान महावीर द्वारा की गई सर्व लीला देखने में आयी।

तत्पश्चात् इन्द्र ने कहा—हे नाथ! आपका माहात्म्य असामान्य है, हमारा जैसा सामान्य प्राणी कैसे जान सकता है? हमने इसके विपरीत चिंतन किया, इसका मिथ्या दुष्कृत हो। इस प्रकार कहकर इन्द्र ने भगवान को नमस्कार किया।

तत्पश्चात् आनंद सहित अनेक प्रकार के वादित्र बजते हुए इन्द्रों ने तीर्थ के सुगंधी और पवित्र जल से भगवान का अभिषेक महोत्सव किया। उस जन्माभिषेक के जल को सुर असुर, मनुष्य और नाग कुमार वदन करने लगे। और सर्व प्राणिओं के अंगों पर छाँटने लगे।

भगवान के स्नात्र जलके साथ मिली हुई मृत्तिका भी वदन करने योग्य हो गई। जैसे गुरु के संसर्ग से लघु की भी गौरवता होती है।

तत्पश्चात् सौधर्मेन्द्र भगवान को ईशानेंद्र के उत्संग में रखकर स्नान, अर्चन आरात्रिक कर स्तुति की।

(ग) घेत्तूण जिणवरिन्दं, मंदरसिहरम्मि संपत्ता ॥२४॥
ठविऊण पाण्डुकम्बल-सिलाए सीहासणे मणिविचित्ते।
अभिसिञ्चन्ति सुरिन्दा, खीरोदहिवारिकलसेहिं ॥२५॥

—पउम० अधि २। श्लो २४ उत्तरार्ध, २५

देवगण भगवान महावीर को लेकर मेरुपर्वत के शिखर पर गये और पांडुकबल शिला के ऊपर मणियों से देदीप्यमान सिंहासन पर भगवान को स्थापित कर क्षीरोदधि के जल से भरे हुए कलशों से उनका जन्माभिषेक किया।

(घ) अवातरन्सुराः सर्वेऽप्युद्वास्यावासमात्मनः ।
मायाशिशुं पुरोधाय मातुः सौधर्मनायकः ॥२७१॥
नागेन्द्रस्कंधमारोप्य बालं भास्करभास्वरम् ।
उत्तेजसा दिशो विश्वाःकाशयन्नमरावृतः ॥२७२॥
संप्राप्य मेरुमारोप्य शिलायां सिंहविष्टरम् ॥
अभिषिच्य ज्वलत्कुंभैः क्षीरसागरवारिभिः ॥२७३॥
विशुद्धपुद्गलारब्धदेहस्य विमलात्मनः ।
शुद्धिरेतस्य कांभोभिर्दूष्यैरशुचिभिः ॥२७४॥
चोदितास्तीर्थकृन्नाम्न स्वाम्नायोऽयं समागतः ।
इति कैङ्कर्यमस्यैत्य कृताभिषवणा वयम् ॥२७५॥

—उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो २७१ से २७५

भगवान का जन्म जानकर देवगण अपने अपने निवास स्थान से भूतल पर आये । सौधर्मेन्द्र ने मायामय बालक को माता के सामने रखकर सूर्य के समान देदीप्यमान उस बालक को ऐरावत हाथी के कंधे पर विराजमान किया । बालक के तेज से दशों-दिशाओं को प्रकाशित करता और देवों से घिरा हुआ वह देवेन्द्र सुमेरु पर्वत पहुँचा । वहाँ उसने जिन बालक को पाण्डुकशिला पर विद्यमान सिंहासन पर विराजमान किया और क्षीरसागर के जल से भरे हुए देदीप्यमान कलशों से उनका अभिषेक कर स्तुति की ।

(घ) पयणिहि-खीरेहिं कलसहिजिय-छणयंदहिं ॥
अहिसित्तु जिणिंदु मंदर-सिहरि सुरिंदहिं ॥

—वीरजि० संधि १ । कड ६ । पृ १८

सुरेन्द्रों ने जिनेन्द्र को मन्दर (मेरु) पर्वत के शिखर पर ले जाकर पूर्ण चन्द्र की कांति को जीतने वाले कलशों द्वारा क्षीरोदधि के जल से उनका अभिषेक किया ।

पावेविणु सहली - कय-भवेण,
रायउलु समाउलु उच्छवेण ।
मायहे पुरत्थु सो गुण गरिट्ठु,
णय-सीसहिं देविंदेहिं दिट्ठु ।
मायामउ मायहे बालु देवि,
इंदाणिए जिणु णिय-करहिँ लेवि ।

अप्पिउ सहसक्खहो हत्थि जाम,
तेणवि करि-खंधे णिहित्त ताम ।
× × × ।
वेएण पत्त गिव्वाण-सेले,
आणंदिय चउविह तियस मेले ।

— वड्ढव० संधि ९ । कड १२, १३

जिनेन्द्र के जन्मोत्सव से अपने जन्म को सफल मानकर वे सभी (देव-देवेन्द्र मिलकर) राजकुल —(सिद्धार्थ राज के राजभवन मे) आये । गुणगरिष्ठ एव नतशिर उस देवेन्द्र ने जिनेन्द्र की माता के सम्मुख आकर उनके दर्शन किये तथा इन्द्राणी ने माता के पास (प्रच्छन्न रूप से) एक मायामयी बालक को रखकर तथा (बदले मे वास्तविक) बालक को अपने हाथों मे लेकर जब उसे सहस्राक्ष—इन्द्र को अर्पित किया, तब उसने भी उसे ऐरावत हाथी पर विराजमान कर दिया ।

आनंदित हुए वे चतुर्निकाय देव मिलकर वेग पूर्वक उस सुमेरु-पर्वत पर पहुँचे ।

(च) शक्रोऽप्यासनकंपेन तत्कालं सपरिच्छदः ।
विज्ञाय स्वामिनो जन्म सूतिकागृहमाययौ ॥
अर्हन्तमर्हदम्बां च दूरतोऽपि प्रणम्य सः ।
उपसृत्याऽऽगतो देव्याश्चावस्वापनिकां ददौ ॥
देव्याः पार्श्वे च भगवत्प्रतिरूपं निधाय सः ।
विचक्रे पंचधाऽऽत्मानमतृप्तो भक्तिकर्मणि ॥
एकः शक्रः स्वपाणिभ्यां भगवन्तमुपाददे ।
उपरि स्वामिनश्छत्रं द्वितीयीकस्त्वधारयत् ॥
स्वामिनः पार्श्वयोर्द्वौ तु बिभ्रतुश्चारुचामरे ।
वज्रमुल्लालयन्नन्यो नृत्यंश्च पुरतो ययौ ॥
गत्वा मेरावतिपांडुकंबलामासदच्छिलाम् ।
तत्र सिंहासनं भेजे शक्रोऽङ्कारोपितप्रभुः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ५३ से ५८

सौधर्म इन्द्र भी आसन कपने से प्रभु का जन्म जान कर तत्काल परिवार सहित सूतिका गृह मे आया ।

अर्हन्तको तथा उनकी माता को दूर से प्रणाम किया। नजदीक आकर अवस्वापनिका निद्रा से माता को निद्रित किया, माता के पास भगवान् का प्रतिबिम्ब रखा। भक्ति वश इन्द्र ने अपने पाँच रूप बनाये। एक शक्रने भगवान को स्वहस्त में ग्रहण किया, दूसरे रूप ने भगवान के ऊपर छत्र धारण किया, दो रूप ने दोनों तरफ सुन्दर चामर धारण किये, एक रूप ने वज्र उछालते और नृत्य करते हुए प्रभु के आगे चले।

इस प्रकार भगवान महावीर को मेरु पर्वत पर ले जाकर अति पांडु-कंबल-शिलाके सिंहासन पर उत्संग मे बैठाया।

(छ) घत्ता—जिणवर तणउँ अइ जसु घणउँ सिल-मिसेण संठिउ किल।
ससि-दल-सरिस-पवणिय-हरिस-परम-पंडु-णामेण सिल॥
—वड्ढच० संधि ६। कड १३

चद्रमा के समान, हर्ष को प्रकट करने वाली, श्रेष्ठ पाण्डु नामक एक शिला है, जो ऐसी प्रतीत होती है, *मानो जिनवर का गभीर यश ही उस शिला के बहाने वहाँ आकर स्थित हो गया हो।*

(ज) तहे उवरि परिट्ठिय तीणि पीढ, पंचसय-चाव-मिय-रयण-गीढ।
तहेउवरि मयंदासणु विहाइ, एक्केक्क - फुरिय - माणिक्कराइ।
पचसय - चाव - उच्चत्तणेण, पंच - सय अद्ध पिहुलत्तणेण।
तहि विणिवेसिवि तिल्लोकणाडु, परमेसरु तित्थंकरु अणाहु।
मज्झिमइँ पास सिहासणेसु, दइ - पढम - इंदसइँ सोहणेसु।
पारद्धु पवरु जम्माहिसेउ, देवेहि जय जय सद्दहि समेउ।
× × ×।
कलसहिदहसय - अट्ठोत्तरेहिं, अहिसित्तु जिणेसरु सुरवरेहिं।
—वड्ढच० संधि ६। कड १४

उस पांडुकशिला मे रत्नजटित तीन पीठ बने हुए हैं तथा माणिक्य-राजियों से स्फुरायमान प्रत्येक पीठ पाँच-पाँच सौ धनुष प्रमाण है। उस पाडुक-शिला की ऊपरी पीठ पर एक मृगेन्द्रासन सुशोभित है जो ऊँचाई मे ५०० धनुष प्रमाण तथा पृथुलता से २५० धनुष प्रमाण है। उसपर पाप विकार रहित त्रैलोक्यनाथ, परमेश्वर, तीर्थङ्कर को विराजमान करके मध्य के पार्श्ववर्ती सिंहासन पर दोनों ओर प्रथम और द्वितीय सौधर्मेन्द्र (दायीं ओर) एवं ईशानेंद्र (बायीं ओर) ने स्वयं ही स्थित होकर देवों द्वारा जय-जयकार की ध्वनियों के साथ विधिपूर्वक जन्माभिषेक प्रारम्भ कर दिया। १००८ स्वर्ण कलशों से झालर एवं काहल बजाते हुए तथा देवों द्वारा जय-जय के कोलाहल पूर्वक जिनेश्वरका अभिषेक किया।

(म) स्तुत्वेति तं जगन्नाथं स्वाङ्कमारोप्य देवराट् ।
हस्तमुच्चालयामास मेरुं गन्तुं गजाश्रितः ॥६५॥
जय नन्देश वर्धस्व स्वमित्योच्चैर्ध्वनिव्रजैः ।
सुराः कलकलं चक्रुस्तदा व्याप्तं दिगन्तरम् ॥६६॥
सौधर्माधिपतेरङ्कमध्यासीनस्य सद्गुरोः ।
शिरसीन्दुसमं छत्रमैशानेन्द्रः स्वयं दधे ॥१०३॥
सनत्कुमारमाहेन्द्रौ चामरोत्क्षेपणैर्मुदा ।
क्षीराब्धिवीचिसादृश्यैर्भजतो धर्मनायकम् ॥१०४॥
क्रमात्प्रापुः सुराधीशा महोत्सवशतैः परैः ।
विभूत्यामा महत्या च महामेरुं महोन्नतम् ॥१०७॥

—वीरवर्धच० अधि ८ । श्लो ६५, ६६, १०३, १०४, १०७

भगवान को करतल मे लेकर वह देवेन्द्र स्तुति करता हुआ - हाथ पर बैठकर भगवान् को अपनी गोद मे विराजमान कर सुमेरुपर्वत की ओर प्रस्थान किया ।

तब देवोंने उच्च स्वर से भगवान का जय-जय नाद किया ।

सौधर्मेन्द्र की गोद मे विराजमान भगवान के शिरपर चंद्रके समान शुभ्र, छत्र, स्वय ईशानेंद्र ने लगाया । सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग के इन्द्र, क्षीरसागर की तरगों के समान उज्ज्वल चवर हर्ष से ढुलाते हुए भगवान की सेवा करने लगे । ऐसे विविध प्रकार के महोत्सव करते हुए क्रमशः मेरुपर्वत पर पहुचे ।

(य) मेरोरीशानदिग्भागे महती पाण्डुकाह्वया ।
योजनानां शतायामा पञ्चाशद्विस्तृता शिला ॥११८॥
अष्टोच्छ्रिता पवित्राङ्गा क्षालिता क्षीरवारिभिः ।
अर्धचंद्रसमाकारा भातीवान्त्याष्टमीधरा ॥११९॥
वैडूर्यसंनिभं तस्या मध्ये सुहरिविष्टरम् ।
क्रोशपादोच्छ्रितं क्रोशपादभूभागविस्तृतम् ॥१२१॥

—वीरच० अधि ८ । श्लो ११८ से १२१

सुमेरु की ईशान दिशामें एक विशाल पाण्डुकशिला है, जो सौ योजनलम्बी और पचास योजन चौड़ी है, तथा आठ योजन ऊँची है, क्षीरसागर के जल से प्रक्षालित होने के कारण पवित्र अंगवाली है; अर्धचंद्र के आकार वाली है, जो ईषत्प्राग्भार पृथ्वी के समान शोभती है ।

उस पांडुक शिलाके मध्य मे वैडूर्यमणि के समान वर्ण वाला सिंहासन है जो चौथाई कोश ऊँचा, चौथाई कोश लम्बा और उसके आधे प्रमाण चौड़ा है।

(ट) तस्य दक्षिणदिग्भागेऽस्त्यन्यसिंहासनं महत्।
सौधर्मेन्द्रस्य चेशानेन्द्रस्योत्तरदिशि स्फुटम् ॥१२३॥
तस्य मध्यस्थहर्यासनस्योपरि सुरेश्वरः।
विभूत्या परयानीय सुरैः सार्धं महोत्सवैः ॥१२४॥
परीत्याद्यं गिरीन्द्रं तं सुरचारणसेवितम्।
न्यधाच्छ्रीतीर्थकर्तारंप्राङ्मुखं स्नानसिद्धये ॥१२५॥

—वीरव० अधि ८। श्लो १२३ से १२५

(पांडुकशिला के मध्य भाग मे जो सिंहासन है) उस सिंहासन की दक्षिण दिशा मे सौधर्मेन्द्र के खडे होने का और उत्तर दिशा मे ईशानेन्द्र के खडे होने का एक-एक सुन्दर सिंहासन है। सौधर्मेन्द्र ने मध्य के सिंहासनपर तीर्थङ्कर भगवान को जन्माभिषेक के लिए पुर्वाभिमुख विराजमान किया।

(ठ) अथ सौधर्मनाकेशो विभोः प्रथममज्जने।
प्रचक्रे कलशोद्धारं कृत्वा प्रस्तावनाविधिम् ॥८॥
ऐशानेन्द्रोऽपि सानन्दो मुक्तास्रक्चन्दनार्चितम्।
आददे कलशं पूर्णं कलशोद्धारमन्त्रवित् ॥९॥
ततो जयेति संप्रोच्य त्रिवारं निजमूर्धनि।
महतीं प्रथमां धारां सौधर्मेन्द्रो न्यपातयत् ॥१७॥
तथा सर्वैः सुराधीशैः समं धारा निपातिताः।
बहुशस्तैर्महाकुम्भैः स्वर्नदीपूरसंनिभाः ॥१९॥

—वीरवर्धच। अधि ९। श्लो ८, ९, १७, १९

सौधर्मेन्द्र ने प्रस्तावना विधि करके भगवान के प्रथमाभिषेक के लिए कलशों का उद्धार किया। कलशोद्धार के मंत्रको जानने वाले ईशानेंद्र ने भी आनंद के साथ मोती, माला और चदन से चर्चित जल से भरे हुए कलश को हाथ मे लिया।

सौधर्मेन्द्र ने तीन बार जय-जय शब्दको बोलकर भगवान के मस्तक पर पहली महान् जलधारा छोड़ी। इसी प्रकार शेष सर्व देवेन्द्रोंने भी एक साथ उन महाकुम्भों के द्वारा गंगा के पूर के सदृश जलधारा छोड़ी।

·०५ मेरुपर्वत से प्रत्यागमन

(क) नमिऊण जिणवरिंदं, थोऊण पयाहिणं च काऊणं।
पुणरवि माउसयासे, ठवेंति देवा तिलोयगुरु ॥२७॥

—पउम० अधि २। श्लो २७

जिनेन्द्र महावीर को वदन, स्तुति एवं प्रदक्षिणा करके देव मेरुपर्वत से वापस लौटे और तीनों लोकों के गुरु भगवान को पुनः माता के समीप रखा।

(ख) मलयटीका—××× जनन्याः समर्प्य जन्ममहिमां नंदीश्वरे स्वर्गे च कृतवान् ×××।

—आव० मूल भाष्य गा ६६। टीका

मेरुपर्वत से वापस आकर इन्द्र ने भगवान महावीर को, माता को समर्पित किया। तत्पश्चात् नंदीश्वर द्वीप जाकर स्तुति की, फिर स्वर्ग में पहुँचकर पुनः जन्म-महिमा की।

(ग) इति स्तुत्वा गृहीत्वेशं मातुः पार्श्वे निधाय च।
संहृत्य तत्प्रतिच्छंदमवस्वापनिकामपि।
निधायोच्छीर्षके क्षौमं कुंडले चोपरि प्रभोः।
श्रीदामगंडकं शक्रः कृत्वा चागात्स्वमाश्रयम्॥

--त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग २। श्लो ८८, ८९

भगवान महावीर की स्तुति कर मेरु पर्वत से वापस लाकर माता को सौंपा। और उनका प्रतिबिंब और अवस्वापनिका निद्रा का हरण किया। दो कुंडल और महावीर की शय्या पर श्रीदामगंडक छोड़कर इन्द्र अपने स्थान गया।

(घ) ततस्त समानीय सर्वामरसमन्वितः।
मातुरंके निवेश्योच्चैर्विहितानंदनाटकः ॥२७७॥
विभूष्यपितरौ चास्य तयोर्विहितसम्मदः।
श्रीवर्धमानमानम्य स्वंधाम समगात्सुरैः ॥२७८॥

—उत्तपु० सर्ग ७४। श्लो २७७, २७८

सब देवों से घिरे हुए इन्द्र ने मेरु पर्वत से जिन बालक को वापस लाकर माता की गोद में विराजमान किया। बड़े उत्सव से आनंद नाम का नाटक किया। माता-पिता को आभूषण पहनाये, उत्सव मनाया। इसके बाद श्रीवर्धमान स्वामी को नमस्कार कर देवों के साथ अपने स्थान पर चला गया।

(च) पुणु मरुवहे णीयउ सुरवरेहिं,
सो वीरणाहु जिणु णियकरेहिं।
गेहग्ग बद्धधय रम्ममाणे,
कुंडउरि सुरेसर - पुर - समाणे।
पियरहँ अप्पिउ खय देह रुक्खु,
पुत्तावहरण - संजाउ दुक्खु।

वड्ढव० संधि ९। कड ११

(स्तुति-पूजा के बाद) पुनः वे सुरवर (सुमेरु पर्वत से) वीरजिन को हाथों हाथ लेकर वायुमार्ग से चले और इन्द्रपुरी के समान उस कुण्डपुर मे ध्वजा-पताकाओं से सुसज्जित भवन मे ले आये और देहरूपी वृक्ष के क्षयकारी पुत्रापहरण से दुख से दुखी माता-पिता को अर्पित किया।

(छ) इत्याख्याद्वयं कृत्वा तथैवातिमहोत्सवैः
आरोप्यैरावतस्कंधं दिव्यरूपं जिनेश्वरम् ॥६०॥
विभूत्या परया साकं जयनन्दादिघोषणैः।
शेषकार्याय नाकेशा आजग्मुस्तत्पुरं पुरम् ॥६१॥

--वीरवर्धच० अधि ९। श्लो ६०, ६१

दिव्य रूपधारी जिनेश्वर को ऐरावतगज के कंधे पर विराजमान करके अत्यन्त महोत्सव और भारी विभूति के साथ 'जय, नंद' आदि शब्दों को उच्चारण करते हुए वे देवेन्द्र शेष कार्यों को सम्पन्न करने के लिए मेरुपर्वत से कुंडपुर प्रत्यागमन किया।

०६ जन्मोत्सव परिवार द्वारा

·०१ जन्मोत्सव पर आनंदानुभूति

(क) जओ णं पभिइ भगवं महावीरे तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिंसि गब्भं आहुए, ततो णं पभिइ तं कुलं विपुलेगं हिरण्णेणं सुवण्णेणं धणेणं धण्णेणं माणिक्केणं मोत्तिएणं संखसिलप्पवालेणं अईव-अईव परिवड्ढइ।

ततो णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो एयमट्ठं जाणेत्ता णिव्वत्तदसाहंसि वोक्कंतंसि सुचिभूयंसि विपुलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडावेंति, विपुलं असण-पाण-खाइम-खाइमं उवक्खडावेत्ता मित्तणातिसयणसंबंधिवग्गं उवणिमंतेंति, मित्त-णाति-सयण-संबंधिवग्गं उवणिमंतेत्ता बहवे समणमाहणकिवणवणिमग भिच्छुंडगपंडरगातीण विच्छड्डेंति विगोवेंति विस्साणेंति दातारेसु णं दायं पज्जभाएंति, विच्छड्डित्ता विगोवित्ता विस्साणिता दायारेसु णं दायं पज्जभाएत्ता मित्तणाइसयणसंबंधिवग्गं भुंजावेंति ××× भुंजावेत्ता।

—आया० श्रु २। अ १५। सू १२

(ख) तएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे ठिइपडियं करेंति, तइए दिवसे चंदसूरस्स दंसणियं करिंति, छट्ठे दिवसे जागरियं करेंति, एक्कारसमे दिवसे विइक्कंते निव्वत्तिए असुतिजातकम्मकरणे संपत्ते बारसाह-दिवसे विउलं असणपाणखाइमसाइमंउवक्खडाविंति, उवक्खडावित्ता मित्तनाइ-नियगसयणसंबंधिपरिजणं नायए य खत्तिए च आमंतेत्ता तओ पच्छाण्हाया कयबलिकम्मा कयकोयमंगलपायच्छित्ता × × × तेणं मित्तनाइनियगसयणसंबंधिपरि-जणेणं नायएहि य सद्धिं त विउलं असणपाणखाइमसाइमं आसाएमाग विसाए माणा परिभुंजेमाणा परिभाएमाणा विहरंति ।

—कप्प० सू १०१ । पृ० ३५

(ग) × × × । सिद्धत्थोऽवि राया भयवंमि तिहुयणनाहे जाते कोडुबियपुरिसे सद्दावित्ता दसदेवसियं उस्सुक्कं उक्करं अदेज्जं अमेज्जं अभडप्पवेसं सव्वत्थ सियप-डागातिपडागं नाडगसहस्ससंकुलं महइमहोस्सयं निव्वत्तावेइ, ततेणं अम्मापियरो दारगस्स तइयदिवसे चंदसूरदंसणं करेंति, छट्ठदिवसे जागरियं करेंति, एक्कारसमे दिवसे अइक्कंते निव्वत्ते असुइजायकम्मकरणे संपत्ते बारसमे दिवसे विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावित्ता मित्तनाइसयणपरिजणं नायए य खत्तिए य भोयणवेलाए आमंतित्ता भोयणमंडवसि तेहिं सद्धिं सुहासणवरगया विउलं असणं जाव साइमं परिभुंजेमाणा विहरंति, तएणं भुत्तुत्तरकालं ते विउलेण वत्थगंधमल्ला-लंकारेणं सक्कारेंति सम्माणेंति सक्कारित्ता सम्माणित्ता × × × ।

—आव० मूल भाष्य गा ६८ । मलय टीका

(घ) काराभ्योऽमोचयज्जन्तून् सुनोर्जन्मोत्सवे नृपः ।
अर्हज्जन्म हि मोक्षाय भवभाजां भवादपि ॥
तृतीये दिवसे सुनोश्चंद्रमार्तंडबिंबयोः ।
दर्शनं पितरौ प्रीतौ कारयामासतुःस्वयम् ॥
षष्ठेऽह्न्यविधवाभिः कलमंगलगीतिभिः ।
सकुंकुमांगरागाभिरनल्पाकल्पचारुभिः ॥
कंठालंबितमाल्याभिः कुलस्त्रीभिरनेकशः ।
राजा राज्ञी चाकृषातां रात्रिजागरणोत्सवम् ॥
सिद्धार्थत्रिशलादेव्यौ प्राप्त एकादशे दिने ।
निर्वर्तयामासतुश्च जातकर्ममहोत्सवम् ॥

दिनेतु द्वादशे राजा सिद्धार्थः सिद्धवांछितः ।
आजूहवत्समस्तान्स्वाञ्ज्ञातिसबंधिबांधवान् ।।
मंगलोपायनकरान् सचक्रे तान्महीपतिः ।
यथोचितप्रतिदानव्यवहारपरो हि सः ।।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ११ से १७

भगवान महावीर के जन्म होने पर माता-पिता ने पहले दिन कुल परम्परा के अनुसार करने योग्य अनुष्ठान किया, तृतीय दिन चद्र, सूर्य के दर्शन रूप उत्सव किया, छट्ठे दिन (रात्रि में) जागरण का उत्सव किया । ग्यारह दिन व्यतीत होने के पश्चात् और अशुचि जात सर्व कार्य सपूर्ण होने के पश्चात् बारहवें दिन विपुल, असन, पान, खादिम और स्वादिम रूप भोजन तैयार करवाया ।

इसके बाद स्वय के मित्रों को, ज्ञातिजनों को, स्वजनों को, सबधियों को, पारिवारिक जनों को तथा ज्ञात वशके क्षत्रियों को आमन्त्रित किया । इसके बाद स्नानादि कार्य किया, मगल रूप प्रायश्चित किया ।

तत्पश्चात् स्वय के मित्रों, ज्ञातिजनों, संबंधियों, पारिवारिक जनों तथा ज्ञात वंशके क्षत्रियों के साथ अशन, पान, खादिम स्वादिम रूप भोजन किया । इसके बाद आगत जनों को विपुल वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य, माला, अलकार से सत्कार-सम्मान किया ।

०२ जन्माभिषेक के अवसर पर कैदी आदि को छोड़ना

(क) तएणं से सिद्धत्थे खत्तिए भवणवइवाणमंतरजोइसवेमाणिएहिं देवेहिं तित्थयरजम्मभिसेयमहिमाए कयाए समाणीए पच्चूसकालसमयंसि नगरगुत्तिए सद्दावेइ, नगरगुत्तिए नगरगुत्तित्ता एवं वयासी ।।९६।।

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! कुडपुरे नगरे चारगसोहणं करेह, चारगसोहणं करेत्ता माणुम्माणवद्धणं करेह, माणु २ त्ता कुंडपुरं नगरं सब्भितरबाहिरियं आसियसम्मज्जियोवलेविय सिंघाडगतियचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापहपहेसु × × × करेह कारवेह, करेत्ता कारवेत्ता य जूयसहस्सं च मूसलसहस्सं च उस्सवेह, उस्सवित्ता य मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणेह ।

तएणं ते णगरगुत्तिया सिद्धत्थेणं रन्ना एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जावहियया करयल जावपडिसुणित्ता खिप्पामेव कुडपुरे नगरे चारगसोहणं जाव उस्सवेत्ता जेणेव सिद्धत्थे राया तेणेव उवागच्छंति २ त्ता करयल जाव कट्टु सिद्धत्थस्स रन्नो एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

—कप्प० सु ९९ से ९८ । पृ ३२, ३३

देवों द्वारा जन्माभिषेक होने के पश्चात् सिद्धार्थ राजा ने नगर रक्षकों को बुलाकर आज्ञा दी—बंदियों को मुक्त कर दिया जाय। नगर के बाहर भीतर के पंथों, त्रिकोणों, चौराहों की सफाई की जाय तथा जल का छिड़काव किया जाय और नानाविध उत्सव मनाया जाय। और हल तथा मूसल से होने वाली हिंसाओं को (आज के लिए) बन्द किया जाय।

(ख) कारोभ्योऽमोचयज्जन्तून् सुनोर्जन्मोत्सवे नृपः।
अर्हज्जन्म हिमोक्षाय भवभाजां भवादपि य ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग २। श्लो ६१

—०—

·२० से २९ गृहवासकाल

·२१ बाल्यकाल

·२११ प्रतिपालन

(क) तओ णं समणे भगवं महावीरे पंचधातिपरिवुडे तंजहा—खीरधाईए, मज्जणधाईए, मंडावणधाईए, खेलावणधाईए, अंकधाईए। अंकाओ अंकं साहरिज्जमाणे रम्मे मणिकोट्टिमतले गिरिकंदरमल्लीणे व चंपयपायवे अहाणुपुव्वीए संवड्ढइ।

—आया० श्रु २। अ १५। सू १४। पृ २३४

जन्म के पश्चात श्रमण भगवान महावीर पाँच धायों से घिर हुए रहने लगे। वे पाँच धाएं इस प्रकार थी—

१—क्षीरधाय—दूध पिलाने वाली धाय,

२—मज्जनधाय—स्नान कराने वाली धाय,

३—मण्डनधाय—आभूषण पहनाने वाली धाय,

४—खेलावनधाय—क्रीड़ा कराने वाली धाय और

५—अंकधाय—गोद लेने वाली धाय।

इस प्रकार एक गोद से दूसरी गोद में लिए जाते हुए वर्धमान कुमार रमणीय मणियों के स्पर्श वाले राजमहल में उसी प्रकार वृद्धि को प्राप्त होने लगे जैसे पर्वत की गुफा में चंपक वृक्ष की वृद्धि होती है।

(ख) अह वड्ढइ सो भयवं दिवभोगचुओ अणुवमसिरीओ।
दासीदासपरिवुडो परिकिण्णो पीढमद्देहिं ॥

—आव० मूल भाष्य गा ६९

मलय टीका—अथ वर्द्धते भगवान् देवलोकाच्च्युतः अनुपमश्रीको दासीदास-परिवृत्तः, तथा परिकीर्णो व्याप्तः, पीठं मर्द्दयित्वा ये प्रत्यासन्ना उपविशन्ति ते पीठ-मर्दा—महानृपतिसुतास्तैः।

देवलोक से च्युत होकर जन्म के बाद निरुपम देह कांति से युक्त भगवान् महावीर दासदासी से परिवृत्त वृद्धि को प्राप्त होने लगे।

२१२ शरीर का विवेचन

(क) असियसिरओ सुनयणो बिंबोट्ठो धवलदंतपंतीओ।
वरपउमगब्भगोरो फुल्लुप्पलगंधनीसासो ॥

—आव० मूल भाष्य गा ७०

मलयटीका—तथा असिताः-कृष्णाः शिरोजा-केशाः यस्यासौ असितशिरोजः, शोभने नयने यस्यासौ सुनयः, बिम्बं-गोल्हाफलं तद्वत् ओष्ठौ यस्य स बिम्बोष्ठः, धवलेदंतपंक्ति यस्य स धवलदंतपंक्तिकः, वरपद्मगर्भ इव गौरो-निर्मलो वरपद्म-गर्भगौरः, फूल्लोत्पलगंधवन्निः श्वासो यस्य स तथा।

भगवान् के बाल कृष्ण वर्ण के थे, जिनके नयन शोभायमान थे, बिम्ब-गोल्हा फल की तरह ओष्ठ थे, धवल दांतो की पंक्ति थी। श्रेष्ठ कमल के पौधे की तरह गौर-निर्मल थे। कमल के फूलोंकी तरह जिनके श्वास की सुगंध थी।

(ख) तहो तणु सहु-जायहिं दहगुणेहिं,
भूसिउ णस्सेय - पुरस्सरेहिं।
× × ×
कणियार - कुसुम - संकास-वण्णु।

— वड्ढच० संधि ९। कड १८

(ग) निःस्वेदत्वादिनिर्दिष्टदशात्मजगुणोदयः।

—उत्तपु० पर्व ७४। श्लो २८१ पूर्वार्ध

भगवान महावीर का शरीर जन्मकाल से ही निःस्वेदत्व आदि दस (अतिशय) गुणों से विभूषित तथा कनेर पुष्प के वर्ण के समान सुन्दर था।

(घ) स्वेददरं वपुः कान्तं मलनीहारवर्जितम् ।
क्षीराच्छशोणितं रम्यमादिसंस्थानभूषितम् ।।
स वज्रर्षभनाराचज्येष्ठसंहननान्वितम् ।
सौरूप्योत्कृष्टसंयुक्तं महासौरभ्यमंडितम् ।।
अष्टोत्तरसहस्रप्रमैर्लक्षणैरलंकृतम् ।
अप्रमाणमहावीर्याङ्कितं दधद्वयोऽमलम् ।।
प्रियं विश्वहितं चाभूद्विभोः कर्णसुखावहम् ।
इत्थं चातिशयैर्दिव्यैः सहजैर्दशभिर्युतम् ।।
अप्रमाणैर्गुणैश्चान्यैः सौम्याद्यैः कीर्तिकांतिभिः ।
कलाविज्ञानचातुर्यैर्व्रतशीलादिभूषणैः ।।

— वीरवर्धच० अधि १० । श्लो १७ से २१

भगवान् का शरीर अतिशय सुन्दर, पसीना रहित, मल-मूत्रादि से रहित, दूधके समान उज्ज्वल रक्तवाला और सुगंधित था। वे आदि समचतुरस्रसंस्थान से भूषित थे, वज्रवृषभ नाराचसंहनन के धारक थे, उत्कृष्ट सौंदर्य से युक्त, महासुख से मंडित, एक हजार आठ शुभ लक्षण–व्यंजनों से अलंकृत और अप्रमाणमहार्घार्य से युक्त थे। प्रभु विश्वहितकारक और कर्णों को सुखदायक प्रिय, निर्मल वचनों के धारक थे। इस प्रकार इन सहज उत्पन्न हुए दस दिव्य अतिशयों से युक्त थे, तथा सौम्यादि अप्रमाण अन्य गुणों से, कीर्तिकांति से, कला-विज्ञान चातुर्य से और व्रतशीलादि भूषणों से भूषित थे।

·२१·३ बालक्रीड़ा

एहि ह्येहि जगत्स्वामिन् प्रसार्य स्वकराम्बुजान् ।
मुहुरित्युक्तवत्योऽन्याः प्रीत्यैनं क्रीडयन्त्यहो ।।४।।
तदासौ स्मितमातन्वन् प्रसर्पन्मणिभूतले ।
पित्रोर्मुदं ततानोच्चैर्मनोज्ञैर्बालचेष्टितैः ।।५।।
जगद्बन्ध्वादिनेत्राणां चंद्रस्येवोत्सवप्रदम् ।
कलोज्ज्वलं तदास्यासीच्छैशवं विश्ववंदितम् ।।६।।
प्रस्खलत्पादविन्यासैः शनैर्मणिधरातले ।
स रेजे संचरन् बालभानुवद्भूषणांशुभिः ।।९।।
इत्यन्यैः शिशुचेष्टौघैर्बंधूनां जनयन्मुदम् ।
क्रमात्सुधान्नपानाद्यैः स कौमारत्वमाप्तवान् ।।११।।

—वीरवर्धच० अधि १० । श्लो ४, ५, ६, ९, ११

कितनी ही देवियाँ अपने कर-कमलों को पसारकर कहती—हे जगत्स्वामिन् ! इधर आइये, इधर आइये' इस प्रकार प्रीति से कहकर उन्हें अपनी ओर बुलाती और खिलाती थीं। उस समय वे बाल वीर जिन मंद-मंद मुस्कराते और मणिमयी भूतल पर इधर-उधर घूमते हुए अपनी सुन्दर बालचेष्टाओं के द्वारा माता-पिता को आनंदित करते थे। उस समय भगवान के शैशवकाल की उज्ज्वल कलाएं समस्त बंधुजनादिकों के नेत्रों को चद्रमा के समान उत्सव करने वाली विश्ववंदित थी।

मणिमयी धरातल पर धीरे-धीरे डगमगाते चरण विन्यास से विचरते हुए भगवान् ऐसे शोभित होते थे मानो भूषण रूपी किरणों के साथ बालसूर्य ही घूम रहा हो। नाना प्रकार की बाल चेष्टाओं के द्वारा बन्धुओं को प्रमोद उत्पन्न करते और अमृतमयी अन्न-पानादि के सेवन द्वारा क्रम से बढते हुए भगवान् कुमारावस्था को प्राप्त हुए।

२१·४ विद्याध्ययनार्थ लेखाचार्य के पास आगमन

अन्यदा भगवन्तमधिकाष्टवर्षं कलाग्रहणयोग्यं विज्ञाय मातापितरौ लेखाचार्यायोपनीतवंतौ, तथा चाह—

अह तं अम्मापियरो जाणित्ता अहियअट्ठवासं तु।
कयकोउअलंकारं लेहायरियस्स उवणेंति ।।७।।

—आव० मूल भाष्य गा ७६

मलयटीका—'अथ' भीषणानन्तरं कियत्कालातिक्रमे भगवन्तमधिकाष्टवर्षं मातापितरौ ज्ञात्वा कृतानि रक्षादीनि कौतुकादीनि अलकाराश्च—केयूरादयो यस्य स तथा तं प्रवरहस्तिस्कन्धवरगतमुपरि समुक्ताजालशालयदाम्ना छत्रेण ध्रियमाणेन चामराभ्यां वीज्यमानं मित्रज्ञातिपरिजनसमेतं लेखाचार्याय—उपाध्यायाय उपनयतः, पाठान्तरं वा 'उवणिंसु' उपनीतवन्तौ। उपाध्यायस्य महत् सिंहासनं रचितम्। ×××।

जब भगवान् की साधिक आठ वर्षकी आयु हुई तब भगवान् के माता-पिता ने कला ग्रहण योग्य जानकर उन्हें लेखाचार्य के पास भेजा। कहा है—

भगवान की आयु साधिक आठ वर्ष की हुई है—ऐसा जानकर भगवान के माता-पिता ने भगवान के कौतुकादि कर, अलकारादि—केयूरादि पहनाया। श्रेष्ठ हस्ती के स्कंध पर भगवान् को बैठाया। छत्र से ध्रियमान तथा चामरादि से वीज्यमान भगवान, मित्र, ज्ञाति, परिजन समेत लेखनाचार्य—उपाध्याय के पास आये। उपाध्याय के लिए महत् सिंहासन की रचना की।

·२१·४ इन्द्र के द्वारा भगवान से प्रश्नोत्तर

(क) पित्रा साग्राष्टवर्षस्यारब्धेऽथाध्यापने प्रभोः ।
सिंहासनं क्षणेनापिकंपते स्म बिडौजसः ॥
अवधिज्ञानतो ज्ञात्वा पित्रोरार्जवमद्भूतम् ।
आः सर्वज्ञास्य शिष्यत्वमितीन्द्रस्तमुपास्थितः ॥
उपाध्यायासने तस्मिन् वासवेनोपवेशितः ।
प्रणम्य प्रार्थितः स्वामी शब्दपारायणं जगौ ॥
इदं भगवतेन्द्राय प्रोक्तं शब्दानुशासनम् ।
उपाध्यायेन तच्छ्रुत्वा लोकेष्वैन्द्रमितीरितम् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ११६ से १२२

जब भगवान् साधिक आठ वर्ष के हुए तब उनके माता-पिता ने उनको अध्ययन करने के लिए उपाध्याय के पास भेजना शुरू किया ।

उस समय इन्द्र का सिंहासन कंपायमान हुआ । अवधिज्ञान से इन्द्र ने माता-पिता की अद्भुत सरलता जानी । अरे क्या ! प्रभु को शिष्यपन होता है ? ऐसा विचार कर इन्द्र तत्काल वहाँ आया ।

इन्द्रने भगवान् को उपाध्याय के आसन पर बैठाया । तत्पश्चात् प्रणाम कर प्रार्थना की । फलस्वरूप भगवान ने शब्दपारायण (व्याकरण) बताया । भगवान ने यह शब्दानुशासन इन्द्र को कहा ; फलस्वरूप उपाध्याय ने भी सुना-लोक में ऐन्द्र व्याकरण प्रसिद्ध हुआ ।

(ख) × × × अत्रान्तरे देवराजस्य खल्वासनकम्पो बभूव, अवधिना च प्रयोजनविधिं विज्ञाय अहो खल्वपत्यस्नेहविलसितं भुवनगुरुं प्रति मातापित्रोः येन भगवंतमपि लेखाचार्यायोपनेतुमभ्युद्यताविति संप्रधार्यागत्य च उपाध्यायपरिकल्पते बृहदासने भगवंतं निवेश्य शब्दलक्षणं पृष्टवान् । अमुमेवार्थं प्रतिपादयति—

सक्को य तस्समक्खं भयवंतं आसणे निवेसित्ता ।
सद्दस्स लक्खणं पुच्छे वागरणं अवयवा इंदं ॥

—आव० मूल भाष्य गा ७७

टीका—शक्रो-देवराजः तत्समक्षं - लेखाचार्यसमक्षं भगवंतं-तीर्थकरमासने निवेश्य शब्दस्य लक्षणं पृच्छति, भगवता च व्याकरणमभ्यधायि, व्याक्रियन्ते लौकिकाः सामयिकाश्च शब्दा अनेनेति व्याकरणं—शब्दशास्त्रं, तदवयवाः केचन उपाध्यायेन गृहीतास्ते च सन्दर्भिताः, ततः ऐन्द्रं व्याकरणं सञ्जातं, लोकश्च

सर्वोऽपि विस्मयमुपागतः, शक्रेण च कथितं यथा भगवान् सर्वं जानाति, त्रिज्ञानोपेतत्वात्।

जब भगवान् महावीर उपाध्याय के पास अध्ययन कर रहे थे ; तब देवराज—इन्द्र का आसन कंपित हुआ। इन्द्र ने अवधिज्ञान से प्रयोजन-विधि को जाना।

अहो ! निश्चय यह स्नेहकारी है, माता-पिता का भी भुवनगुरु है। जिन भगवान को भी माता-पिता ने लेखाचार्य उपाध्याय के पास अध्ययन करने के लिए भेजा है। तत्पश्चात् इन्द्र ने उपाध्याय द्वारा परिकल्पित-महत् आसन पर भगवान को बैठाकर शब्दलक्षण को पूछा—यह अर्थ प्रतिपादन किया—

शक्रेन्द्र ने लेखाचार्य के समक्ष भगवान तीर्थङ्कर को आसन पर बैठाकर शब्दलक्षण की पृच्छा करता हैं। चूंकि भगवान व्याकरण के अभ्यासी है। वे कहते है—लौकिक और सामाजिक—ये व्याकरण के दो भेद हैं। जिससे शब्दों का परिज्ञान होता है वह व्याकरण-शब्दशास्त्र है। उसके कितनेक अवयवों को उपाध्याय ने सदर्भ रूप मे ग्रहण किया। इसके बाद इन्द्र से व्याकरण की उत्पत्ति हुई, लोग भगवान से अर्थ सुनकर विस्मित हुए। शक्रेन्द्र ने कहा—भगवान सब जानते है, मति-श्रुति-अवधि ज्ञान—ये तीन ज्ञान सहित है।

२१·६ बाल्यकाल की विशेष घटनाएँ

·१ आमलकी क्रीड़ा में सर्परूपमें देव

(क) अष्टोत्तरसहस्रेण लक्षणैरुपलक्षितः।
निसर्गेण गुणैर्वृद्धो वयसा ववृधे क्रमात्॥
राजपुत्रैः सवयोभिः समंन्यूनाष्टवत्सरः।
वयोऽनुरुपक्रीडाभिः सोऽन्यदा क्रीडितुं ययौ॥
तदा ज्ञात्वाऽवधिज्ञानान्मध्येसुरसभं हरिः।
धीरा अनुमहावीरमिति वीरमवर्णयत्॥
क्षोभयिष्यामि तं वीरमेषोऽहमिति मत्सरी।
आजगामामरः कोऽपि यत्र क्रीडन्नभूद्विभुः॥
कुर्वत्यामलकीं क्रीडां राजपुत्रैः सह प्रभौ।
सोऽधस्तस्थौ विटपिनो भुजगीभूय मायया॥
तत्कालं राजपुत्रेषु वित्रस्तेषु दिशो दिशि।
स्मित्वा रज्जुमिवोत्क्षिप्य तंचिक्षेप क्षितौ विभुः॥

— त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो १०२ से १०७

(ख) मलयटीका तएणं एवं वड्ढमाणे भयवं अट्ठवासे जाते, सया अइए विणीए सूरे धीरे महापरक्कमे, तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया ओहिणा भयवंतमालोइय पणमिय भयवतो सत्तगुणुक्कित्तणं करेइ—अहो भयवं बाले अबालभावे अबालपरक्कमे अवुड्ढे वुड्ढसीले महावीरे, न सक्को देवेण वा दाणवेण वा भेसेउं परक्कमेण व पराजिणित्तु छलेण वा छलितुं, तत्थएगो देवो सक्कस्स एयमट्ठमसद्दहंतो जेणेव भयवं महावीरे तेणेव उवागतो, भयवं च पमयवणे चेडरूवेहिं समं संकलिखेड्डएण अभिरमइ-तत्थ तेसु रुक्खेसु मज्झे जो विवक्खियं रुक्खं पढमं विलग्गइ छिवइ वा सो चेडरूवाणि वहेइ, सो य देवो आगंतुग हेट्ठतो रुक्खस्स सामिभेसणट्ठं एगं महं उग्गविसं महाकायं अंजणपुंजनियरप्पगासं वियडफडाडोवकरणदच्छं चंडतिव्वरोसं दिव्वं दिट्ठीविससप्परूवं विउव्वित्ता अच्छइ, सामिणा अमूढेण वामहत्थेण सत्ततले उड्डुमुच्छूढो, ताहे देवो चिंतेइ एत्थ ताव न छलितो । × × ×

—आव० निगा० ४५८ । टीका

(ग) अह ऊणअट्ठवासस्स भयवतो सुरवराण मज्झमि ।
संतगुणुक्कित्तणयं करेइ सक्को सुहम्माए ॥७२॥
बालो अबालभावो अबालपरक्कमो महावीरो ।
नहु सक्को भेसेउं देवेहि सइंदिएहिपि ॥७३॥
तं वयणं सोऊणं अह एगो सुरो असद्दहंतो य ।
एइ जिणसंनिगासं तुरियं सो भेसणट्ठाए ॥७४॥
सप्पं च तरुवरम्मि × × × ।

—आव० मूल भाष्य गा ७२ से ७४,७५ पूर्वार्ध

टीका—अथानन्तरमूनाष्टवर्षस्य भगवतः सूरवराणं मध्ये संतश्च ते गुणाश्च सद्गुणास्तेषामुत्कीर्त्तनं-संशब्दनं करोति शक्रोदेवराजः सभायां व्यवस्थितः, किम्भूतमित्याह—बालः अबालभावः—अबालस्वरूपः, भावशब्दः स्वरूपवाची, तथा न बालपराक्रमोऽबालपराक्रमः, पराक्रमः—चेष्टा,-वीरः-कषायादिशत्रुजयं प्रति विक्रांतो, महांश्चासौ वीरश्च महावीरः, 'नहु' नैव शक्यते भीषयतुं देवैः सेन्द्रैरपि ।

तत् सद्गुणोत्कीर्त्तनरूपं शक्रवचनं श्रुत्वाऽथानन्तरमेकः सुरो—देवोऽश्रद्धान 'एति' आगच्छति 'जिनसकाशं' जिनसमीपं 'तुरियं सो भेसणट्ठाए' त्वरितं-शीघ्रं 'स' विवक्षितो भीषणार्थं भीषणनिमित्तं । स चागत्येदं चक्रे—

सप्पं—सर्प्परूपं च 'तरुवरे' तरुपरस्याधः कृत्वा × ×× ।

भगवान महावीर जब आठ वर्ष के हुए, तब भगवान प्रकृति से भद्र और विनीत थे, सुर, वीर और महापराक्रमी थे।

एकदिन शक्रेन्द्र देवराज ने भगवान् को अवधि ज्ञान से देखा। इन्द्र ने सुधर्मसभा मे भगवान महावीर का सत्तगुण कीर्तन किया—अहो! भगवान् महावीर अप्रमाण पराक्रमी है, कुमारपद से युक्त है, असाधारण गुणो के भडार है। कोई भी देव अथवा दानव भयानक पराक्रम से उन्हें पराजित नहीं कर सकता है अथवा छल से नहो छल सकता है। शक्रेन्द्र के पास यह अर्थ सुनकर एक देव को यह बात पसद नही आयी। जिस स्थान पर श्रमण भगवान् महावीर थे वह वहाँ आया। भगवान् महावीर प्रमदवन मे बालकों के साथ आनद से वृक्षों पर चढे हुए क्रीड़ा कर रहे थे। उन्हें भयभीत करने के लिए वह देव वहाँ आया। उसने क्रूर उग्रविषघारी महाकाय दृष्टिविष सर्प की विकुर्वणा की और वृक्ष के मूल भाग से लेकर स्कघतक उस पर लिपट गया। तब भगवान ने वामहस्त से सर्प को पकड़ा और धरणी तल पर पटक दिया और उसके ऊपर आरुढ हो गये। तब सर्प रूप उक्तदेव ने विचार किया कि मैं इनको छलित नहीं कर सका।

(घ) अहिसेय-सलिल-धुय-मंदरेण।
जो णिब्भउ भणिउ पुरंदरेण॥
तं णिसुणिवि देव संगमेण।
होइवि भीमें उरजंगमेण॥
णंदणवणि कीला - तरु णिरुद्धु।
गय सहयर सिसु थिउ तिजगबन्धु॥
तहु फणि - माणिक्कइँ फंसमाणु।
अविचलु अचलुवि सिरि - वड्ढमाणु॥

घत्ता - फण—मुह—दाढाउ कर फुसंतु णउ संकिउ।
पुज्जिवि देवेण वीरणाहु तहि कोक्किउ॥

—वीरजि० सधि १। कड १०। पृ २०

उनके अभिषेक-जल से मन्दर पर्वत को घोने वाले पुरन्दर ने उन्हें निर्भय कहा। देवों की सभा मे उनकी ऐसी प्रशसा सुनकर सगम नामक एक देव ने उनकी परीक्षा करनी चाही। वह भयकर सर्प का रूप धारण करके कुण्डपुर के नन्दन वन मे आया, जहाँ कुमार महावीर क्रीडा कर रहे थे। वे जिस वृक्ष पर क्रीड़ा कर रहे थे, उस क्रीड़ा वृक्ष को उस सर्प ने चारों तरफ से घेर लिया। यह देखकर उनके साथ क्रीड़ा करने वाले सहचर शिशु सब भाग गये,

किन्तु वे त्रिजगत् के बन्धु वहीं ठहरे रहे। वे श्री वर्धमान निर्व्याकुल और अचल होकर उस भयंकर सर्प के फण पर के माणिक्य का स्पर्श करने लगे। वे उसके फण और मुख की दाढ़ों का अपने हाथ से स्पर्श करते हुए जरा भी शंकित नहीं हुए। यह देख उस देव ने उनकी पूजा की और उन्हें वीरनाथ कहकर पुकारा।

(च) अथान्येद्युः सुराः प्राहुः कथामस्य परस्परम्।
सभायां कल्पनाथस्य महावीर्योद्भवामिति ॥२३॥
अहो वीरजिनस्वामी कौमारपदभूषितः।
धीरः शूराग्रणी वीरो ह्यप्रमाणपराक्रमः ॥२४॥
दिव्यरूपधरोऽनेकासाधारणगुणाकरः।
वर्तते क्रीडयासक्तोऽधुनासन्नभवो महान् ॥२५॥
संगमाख्योऽमरः श्रुत्वा तदुक्तं तंपरीक्षितुम्।
तस्मादेत्य महोद्याने द्रुमक्रीडापरायणम् ॥२६॥
कुमारं भासुराकारं ददर्शामा नृपात्मजैः।
काकपक्षधरैरेकयोभिर्बहुभिर्मुदा ॥२७॥
तं विभीषयितु क्रूरकालनागाकृतिं सुरः।
कृत्वा मूलाद् द्रुमस्याशु यावत्स्कंधमवेष्टत ॥२८॥
तद्भयात्ते निपत्याशु विटपेभ्यो महीतलम्।
दूरे पलायनं चक्रुः सर्वेऽतिभयविह्वलाः ॥२९॥
ललज्जिह्वाशतात्युग्रं तमहिं भीषणाकृतिम्।
मुदारुह्य विभीर्धीरो निःशंकोनिर्मलाशयः ॥३०॥
कुमारः क्रीडयामास मातृपर्यंकवत्तराम्।
तृणवन्मन्यमानस्तमप्रमाणमहाबली ॥३१॥

—वीरवर्धच अधि १० । श्लो २३ से ३१,

(च) अन्येद्युः स्वर्गनाथस्य सभायामभवत्कथा।
देवानामधुना शूरो वीरस्वामीति तच्छ्रुतेः।
देवः संगमको नाम संप्राप्तस्तं परिक्षितुम् ॥
दृष्ट्वोद्यानवने राजकुमारैर्बहुभिः सह।
काकपक्षधरैरेकवयोभिर्बाल्ययोचोदितम् ॥
कुमारं भास्वराकारं द्रुमक्रीडापरायणम्।
स विभीषयितुं वाञ्छन् महानागाकृतिं दधत् ॥

मूलात् प्रभृति भूजस्य यावत्स्कंधमवेष्टत ।
विटपेभ्यो निपत्याशु धरित्रीं भयविह्वलाः ॥
प्रपलायन्त तं दृष्टवा बालाः सर्वे यथायथम् ।
महाभये समुत्पन्ने महतोऽन्यो न तिष्ठति ॥
ललज्जिह्वाशतात्युग्रमारुह्य तमहिं विभीः ।
कुमारः क्रीडयामास मातृपर्यङ्कवत्तदा ॥
विजृम्भमाणहर्षाम्भोनिधिः संगमकोऽमरः ।
स्तुत्वा भवान्महावीर इति नाम चकार सः ॥

—उत्तपु० सर्ग ७४ । श्लो २८८ पूर्वार्ध, २८९ से २९५

(छ) एक्कहिं दिणे वड-महिरुहि स-डिंभु ।
सम्मइ रमंतु परिमुक्क-डिंभु ॥
देक्खेवि सुरेण सइं संगमेण ।
विउ रूठवेविणु तासण-कएण ॥
वेढिउ वडमूलु फणावलीहिं ।
दय-सयहिं णाहिं दीवावलीहिं ॥
तं णिएवि वाल णिवडिय-रएण ।
जो जेत्थु तेत्थु भाविय भएण ॥
लीलएँ ठवंतु पय-वड्डमाणु ।
तहो फणिणाहहो सिरि लद्ध माणु ॥
उत्तरिउ वडुहो गयसंकु जाम ।
जाणेवि निब्भउ देवेंहिं ताम ॥
हरिसिय-मणेण तहो जिणवरासु ।
हरिसिउ सरूउ परमेसरासु ॥
अहिसिंचिवि कणय-कलस-जलेहिं ।
पुज्जिवि आहरणहिं णिम्मलेहिं ॥
महवीरु णामु किउ तक्खणेण ।
जाणिउ असेस - तिहुवण - जणेण ॥

—वड्ढच० संधि ९ । कड १६ । पृ २१६

एक दिन सौधर्म इन्द्र की सभा मे देवगण भगवान् के महावीर्यशाली होने की कथा परस्पर कर रहे थे कि देखो—वीरजिनेश्वर जो अभी कुमार पद से भूषित हैं और क्रीड़ा में

आसक्त हैं, फिर भी वे बड़े धीर-वीर, शूरों में अग्रणी, अप्रमाण पराक्रमी, दिव्य रूपधारी, अनेक असाधारण गुणों के भण्डार और आसन्न भव्य हैं।

देवों की यह चर्चा सुनकर संगम नाम का देव उनकी परीक्षा करने के लिये स्वर्ग से उस महावन में आया, जहाँ पर कि वीरजिन सुन्दर केशों के धारक, समान अवस्था वाले अनेक राजकुमारों के साथ आनन्द से वृक्ष पर चढ़े हुए क्रीड़ा में तत्पर थे। प्रभु के प्रकाशमान आकार को उस देव ने देखा और उन्हें डराने के लिये उसने क्रूर काले साँप का आकार धारण किया और वृक्ष के मूल भाग से लेकर स्कन्ध तक उससे लिपट गया।

उस भयंकर साँप को वृक्ष पर लिपटता हुआ देखकर उसके भय से अति विह्वल होकर सभी साथी कुमार डालियों से भूमि पर कूद-कूदकर दूर भाग गये। किन्तु धीर, वीर, निर्भय, निःशंक, निर्मल हृदय वाले वीर कुमार तो लपलपाती सैकड़ों जीभों वाले भीषण आकार के धारक उस साँप के ऊपर चढ़कर माता की शय्या के समान क्रीड़ा करने लगे। अप्रमाण महाबली प्रभु ने उसे तृण के समान तुच्छ समझा।

कुमार की इस क्रीड़ा से जिसका हर्ष रूपी सागर उमड़ रहा था, ऐसे उस संगमदेव ने भगवान की स्तुति की और 'महावीर' नाम रखा।

·२ तिंदुषक क्रीड़ा में पिशाच रूप में देव

(क) सव्रीडाः क्रीडितुं तत्र कुमाराः पुनराययुः।
कुमारीभूय सोऽप्यागात् सर्वेऽप्यारुरुहुस्तरुम्॥
पादपाग्रं कुमारेभ्यः प्राप प्रथमतः प्रभुः।
यद्वा कियदिदं तस्य यो लोकाग्रं गमिष्यति॥
शुशुभे भगवांस्तत्र मेरुशृंग इवार्यमा।
लंबमाना बभुः शाखास्वन्ये शाखामृगा इव॥
जिग्ये भगवता तत्र क्रुनश्चासीदयं पणः।
जयेद्य इह स ह्यन्यान् पृष्ठमारुह्य वाहयेत्॥
आरुह्यावाहयद्वाहानिव वीरः कुमारकान्।
आरुरोह सुरस्यापि पृष्ठं प्रष्ठो महौजसाम्॥
ततः करालं वेतालरूपमाधाय दुष्टधीः।
भूधरानप्यधरयन् प्रारब्धो वर्धितुं सुरः॥
पातालकल्पे तस्यास्ये जिह्वया तक्षकायितम्।
पिंगैस्तुंगे शिरःशैले केशैर्दावानलायितम्॥

तस्यातिदारुणे दंष्ट्रे अभूतां क्रकचाकृती।
जाज्वल्यमाने अंगारशकट्याविव लोचने॥
घोणारंध्रे महाघोरे महीधरगुहे इव।
भृकुटीभंगुरे भीमे महोरग्याविव भ्रुवौ॥
स व्यरंसीद्वर्धनान्न यावत्तावन्महौजसा।
आहत्य मुष्टिना पृष्ठे स्वामिना वामनीकृतः॥
एवंच भगवद्धैर्यं साक्षात्कृत्येन्द्रवर्णितम्।
प्रभंनत्वाऽऽस्मरूपेण निजंधाम जगाम सः॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो १०८ से ११९

(ख) मलयटीका ×××। अह पुणरवि सामी तेदूसगेण अभिरमइ, सो य देवो चेडरूवं विउव्विऊण सामिणासमं अभिरमइ, तत्थ सामिणा सो जितो, तस्स उवरिं सामी विलग्गो, तते णं से देवे सामिभेसगट्ठं एगं महं तालपिसायरूवं विउव्वित्ता पवड्ढिउं पयत्तो' सोऽवि सामिणा दट्ठूण अभीएण (तहा) तलप्पहारेण आहतो जहा तत्थेव निबुड्डो, ताहे भीतो देवो चिंतेइ एत्थ वि न तिण्णो छलिउं ति, पच्छा सामिं वंदित्ता गतो।

—आव० नि गा ४६८। टीका। पृ २५८

(ग) ××× काउं तिंदूसणएण डिंभं च २।
पट्ठीए मुट्ठीए हतो वंदिय वीरं पडिनियत्तो॥७५॥

—आव० मूल भाष्य गा ७५

टीका—×××, तथातिंदूसकेन—क्रीडाविशेषरूपेण हेतूना तिंदूसकरूपया क्रीडया भगवता सह रमिष्ये इत्येषमर्थ 'डिम्भं' डिम्भंरूपं च, कृत्वेल्हनुवर्त्तते, पिशाचरूपेण प्रवर्द्धितुंलग्न इति शेषः, ततः पृष्ठे मुष्टया हतोवंदित्वा वीरंप्रतिनिवृत्तः एषोऽक्षरार्थो, भावार्थः प्रागेवोक्तः।

पुनः वह संगमदेव बाल रूप की विकुर्वणा की और भगवान महावीर के साथ गेन्द से खेलता रहा। खेल में भगवान् महावीर की जीत हुई। फलस्वरूप भगवान उसकी पीठ पर बैठे। तब देव ने डराने के लिए भीषण एक महाताल पिशाच रूप की विकुर्वणा की। तब भगवान उसकी पीठ पर मुष्टिका से प्रहार किया, जिससे वह आहत हुआ। जहाँ उस देव की हार हुई तब भयभीत हुआ देव विचार करता है कि मैं इनको स्खलित करने में समर्थ नहीं हूँ

बाद मे भगवान को वन्दन कर वह देव चला गया।

·२१.७ व्रत-ग्रहण

अष्टमे वत्सरे देवो गृहिधर्माप्तये स्वयम्।
आददौ स्वस्य भोग्यानि व्रतानि द्वादशैव हि ॥

—वीरवर्धच० अधि १० । श्लो ११

आठवें वर्ष में वीरजिन ने गृहस्थ धर्म की प्राप्ति के लिए स्वयं अपने योग्य श्रावक के बारह व्रतों को धारण कर लिया ।

२२ यौवन काल

·१ विवाह—

(क) उम्मुक्कबालभावो कमेण अह जुव्वणं समणुपत्तो ।
भोगसमत्थं नाउं अम्मापियरो उ वीरस्स ॥

—आव० भाष्य गा ७८

मलयटीका—क्रमेण उक्तप्रकारेण उन्मुक्तो बालभावो येन स उन्मुक्तबालभावः 'अथ' अनन्तरं यौवनं वयोविशेषलक्षणं सम्यकबालादिभावात्पश्चात् प्राप्तः समनुप्राप्तः, अत्रान्तरे भुज्यन्ते इति भोगाः शब्दादयस्तेषु समर्थो भोग समर्थस्तं भगवंतं ज्ञात्वा कौ ज्ञात्वेत्यत आह-मातापितरौ, भगवतो वीरस्य ।

तिहिरिक्खंमि पसत्थे महंतसामंतकुलपसूयाए ।
कारेंति पाणिगहणं जसोयवररायकण्णाए ॥

—आव० भाष्य गा ७९

मलयटीका—तिथिश्च ऋक्षं च तिथिऋक्षं, ऋक्षं—नक्षत्रं, तस्मिन् तिथिऋक्षे, प्रशस्ते-शोभने, महच्च तत् सामन्तकुलं तस्मिन् प्रसूतेतिसमासः, तस्याः कस्या इत्याह-यशोदा चासौ वरराजकन्या च यशोदवरराजकन्या तस्याः, पाणिग्रहणं मातापितरौ भगवंतं कारयतः, अत्र महासामंतकुलप्रसूताया इत्यनेनान्वयमहत्त्वमाह, वरराजकन्याया इत्यनेन तत्कालराजसंपद्युक्तत्वमाह ।

जब बालभाव का अतिक्रमण कर भगवान् ने यौवनवय में प्रवेश किया—तब माता-पिता ने भगवान को शब्दादि भोगों को भोगने में समर्थ जानकर शुभ तिथि और नक्षत्र में महा सामन्त कुल में (राजा समरवीर की पुत्री) उत्पन्न हुई—श्रेष्ठ राजकन्या यशोदा के साथ भगवान का पाणिग्रहण करवाया ।

(ख) सप्तहस्तोच्छ्रितवपुः क्रमात्प्राप च यौवनम् ।
× × × ॥१२३॥
राजा समरवीरोऽथ यशोदांकन्यकां निजाम् ।
प्रदातुं वर्धमानाय प्राहिणोन्मंत्रिभिः सह ॥१२५॥
× × ×
गत्वा च त्रिशलादेवी स्वयं सिद्धार्थभूभुजे ।
विवाहानुमतिं सूनोराचचक्षे प्रमोदभाक् ॥१५०॥
पुण्येऽह्नि महीनाथो जन्मोत्सवसमोत्सवम् ।
विवाहं कारयामास महावीरयशोदयोः ॥१५१॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो १२३, १२५, १५०-१५१

सप्त हाथ ऊँची काया वाले भगवान महावीर क्रमशः यौवनावस्था प्राप्त की । राजा समरवीर ने यशोदा नामक स्वय की कन्या को वर्धमान के लिए मन्त्रियों के साथ भेजा । महावीर से विवाह की अनुमति प्राप्त कर त्रिशला सिद्धार्थ के पास आयी । पवित्र दिवस मे सिद्धार्थ राजा ने महावीर कुमार का यशोदा के साथ विवाह कर दिया ।

२ मानुषिक काम-भोग

(क) तओणं समणे भगवं महावीरे विण्णायपरिणये विणियत्तबालभावे अप्पुस्सुयाइं उरालाइं माणुस्सगाइं पंचलक्खणाइं कामभोगाइं सद्द-फरिस-रसरूव-गंधाइं परियारेमाणे, एवं च णं विहरइ ॥

— आया० श्रु २ अ १५ । सू १५ । पृ० २१४

(ख) पंचविहे माणुस्से भोगे भोत्तूण सह जसोदाए ।

—आव० भाष्य गा ८० पूर्वार्ध

मलयटीका—पंचविधान्-पंचप्रकारान् मनुष्याणामेते मानुषास्तान् भोगान्-शब्दादीन् भुक्त्वा सह यशोदया भार्यया × × × ।

(ग) समं यशोदया देव्या स्वामी वैषयिकंसुखम् ।
अनासक्तोऽनुबभूव पित्रोर्नेत्रनिशाकरः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग । २ । श्लो १५३

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर विज्ञान द्वारा परिणत मति वाले हो जाने पर बालभाव से मुक्त हो जाने पर (युवावस्था को प्राप्त होकर) अनुत्सुक (अनासक्त) भाव से यशोदा के साथ मनुष्य सम्बन्धी पाँच प्रकार के उदार काम भोगों को अर्थात् शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध का अनुभव करते हुए विचरने लगे ।

·२३ वर्धमान (महावीर) की कुमारावस्था

·२३·१ कुमारावस्थाका अवस्थानकाल

(क) पासस्स कुमारत्तं तीसं परियाउ सत्तरी होइ।
तीसा य वद्धमाणे बायालीसा य परियाओ ॥३२१॥

—आव० निगा ३२१

टीका—ऋषभस्य कुमारत्वं पूर्वाणाम्—उक्तस्वरूपाणां विंशतिः शतसहस्राणि-लक्षाणि, त्रिषष्टि पूर्वलक्षाणि राज्येऽनुपालयगमयित्वा पश्चान्निष्क्रान्तः, तत एकं पूर्वलक्षं शेषं व्रतपर्यायः। ××× । वद्धमाने-वद्धमानस्वामिनो गृहवासस्त्रिंशद्-वर्षाणि, व्रतपर्यायः द्विचत्वारिंशद्वर्षाणि।

भगवान ऋषभदेव का कुमारत्व काल बीस लाख पूर्व का था, राजन्य काल त्रेसठ लाख पूर्वका था तथा व्रतपर्याय एक लाख पूर्व का था।

भगवान महावीर का कुमारत्व काल तीस वर्ष का था (उन्होंने राजन्य काल का भोग नहीं किया था) तथा उनका व्रतपर्याय काल बयालीस वर्ष का था।

(ख) समणे भगवं महावीरे तीसं वासाइं अगारमज्झे वसित्ता (मुंडे भवित्ता?) अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

—सम० सम० ३० । सू ७ । पृ० ८७३

(ग) सो देवपरिग्गहिओ तीसं वासाइं वसइ गिहवासे।

—आव० निगा ४६०

मलयटीका —××× अथ स कियंतं कालं सर्वसंकलनया गृहवासे वसति ? तत आह—स त्रिंशद्वर्षाणि वसति गृहवासे किं सामान्येन स्वजनमात्रपरिवृत्त एव ?' नेत्याह—देवपरिगृहीतः।

भगवान महावीर तीस वर्ष गृहवास (कुमार काल) मे रहे।

(घ) सुरवइदिन्नाहारो, अंगुट्ठयअमयलेवलेहेणं।
उम्मुक्कबालभावो' तीसइवरिसो जिणो जाओ।

--पउम० अधि २। श्लो २८

इन्द्र के द्वारा दिये गये आहार से तथा अगूठें पर किये गये अमृत के लेप के चूसने से धीरे-धीरे बाल भाव का त्याग करके जिन—भगवान् महावीर तीस वर्ष की अवस्था के हुए।

(च) तत्थ तीसवासाणि कुमारकालो ।

—कसापा० । गा १ । टीका । भाग १ । पृ० ७४

(छ) तत्तो कुमारकालो एगसयं सगसहस्सपंचसया ।
पणुवीससयं तिसयं तीसं तीसं च छक्कस्स ॥ ५८४ ॥
मल्लिणाह १०० । × × × वीरणाह ३०

—तिलोप० अधि ४ । गा ५८४

(ज) जे सिसु-दंसणेण रिउणो वि हु
होंति विमुक्क—मच्छरा ।
जस्स कुमार-काल-परिवट्टण
ववगय तीस वच्छरा ॥

—वीरजि० संधि १ । कड ११ । पृ० ३०

(झ) त्रिंशच्छरद्भिस्तस्यैवं कौमारमगमद् वयः ।

—उत्तपु० सर्ग ७४ । श्लो २९६ । पूर्वार्ध

भगवान् मल्लीनाथ का कुमारत्व काल १०० वर्ष था तथा भगवान् महावीर का कुमारत्व काल ३० वर्ष का था । अर्थात् भगवान महावीर कुमार काल की प्रवृत्ति मे तीस वर्ष व्यतीत किये ।

(ञ) कुमारलीलया दिव्यान् नृपशक्रार्पितान्मुदा ।
भुञ्जानो महतो भोगान् स्वपुण्यजनितान् शुभान् ॥
त्रिंशद्वर्षाणि पूर्णानि कुमारशर्मणानयत् ।
मंदरागो जगन्नाथः क्षणवत्सन्मतिर्महान् ॥

—वीरवर्धच० अधि १० । श्लो ७९, ८०

अपने पुण्य से उपार्जित एवं मनुष्यों और इन्द्रों से समर्पित दिव्य शुभ महान् भोगों को भोगते हुए कुमारकालीन लीला के साथ कुमार काल के तीस वर्ष एक क्षण के समान पूर्ण किये ।

इस अवस्था मे वे जगन्नाथ सन्मतिदेव परम मन्दरागी रहे ।

·२ कुमारावस्था का लेखा-जोखा

(क) संपहि कुमारकालपरूवणं कस्सामो । तंजहा—चइत्तमासस्स दो दिवसे २, वइसाहमादिं कादूण अट्ठावीसं वस्साणि २८, पुणो वइसाहमासमादिं कादूण जाव कत्तियमासो त्ताव सत्तमासे च कुमारत्तणेण गमिय ७, तदो मग्गसिरकिण्हपक्ख-

दसमीए णिक्खंतो त्ति कुमारकालपमाणं बारसदिवसेहि सत्तमासेहि य अहिय-अट्ठावीसवासमेत्तं होदि २८-७-१२। एत्थुवउज्जंतीओ गाहाओ—

मणुवत्तणसुहमतुलं देवकयं सेविऊण वासाइं।
अट्ठावीसं सत्त य मासे दिवसे य वारसयं॥ २५॥
आभिणिबोहिय बुद्धो छट्ठेण य मग्गसीसबहुलाए।
दसमीए णिक्खंतो सुरमहिदो णिक्खमणपुज्जो॥ २६॥
एवं कुमारकालपरूवणा कदा

—कसापा० । गा १ । टीका । भाग १ । पृ० ७८, ७९

कुछ अन्य आचार्य कुमारकाल की इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं।

चैत्र माह के दो दिन, बैसाख माह से लेकर अट्ठाईस वर्ष तथा पुन बैसाख माह से लेकर कार्तिक माह तक सात मास कुमार रूप से व्यतीत करके अनन्तर मार्ग शीर्ष कृष्णा दशमी के दिन भगवान महावीर ने जिन दीक्षा ग्रहण की। इसलिये कुमार काल का प्रमाण सात माह और बारह दिन अधिक अट्ठाईस वर्ष होता है। आगे इस विषय की उपयोगी गाथाएँ है —

"अट्ठाईस वर्ष, सात मास और बारह दिन तक देवोंके द्वारा किये गये मनुष्य सम्बन्धी अनुपम सुख का सेवन करके जो अभिनिबोधिक ज्ञान से प्रतिबुद्ध हुए और जिनकी दीक्षा सम्बन्धी पूजा हुई। ऐसे देवपूजित वर्धमान जिनेन्द्र ने षष्ठोपवास के साथ मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन जिनदीक्षा ग्रहण की।

'२ राज्याभिषेक नहीं हुआ

(क) वीरं अरिट्ठनेमिं पासंमल्लिं च वासुपुज्जं च।
एए मोत्तूण जिणे अवसेसा आसि रायाणो॥
रायकुलेसुऽवि जाया विसुद्धवंसेसु खत्तियकुलेसुं।
न य इच्छियाभिसेया कुमारवासंमि पव्वइया॥

आव० नि गा २४३, २४४

मलय टीका वीरं—महावीरमरिष्ठनेमिं पार्श्वनाथं मल्लि वासुपुज्यं च, एतान् सर्वसंख्यया पंच जिनान्—तीर्थकृतो मुक्त्वा अवशेषास्तीर्थकृतः—ऋषभस्वामि-प्रभृतय आसन् राजानः, एतेहिंमहावीरप्रभृतयः पंच तीर्थकृतो राजकुलेष्वपि विशुद्धी-वंशेषु क्षत्रियकुलेषु, राजकुलं हि किंचिदक्षत्रियकुलमपि भवति' यथा नन्दराजकुलमत उक्तं क्षत्रियकुलेषु जाता अपि, न ईप्सिताभिषेका —अभिलषितराज्याभिषेकाः किन्तु कुमारवास एव प्रव्रजिताः—प्रव्रज्यां प्रतिपेदिरे ×××।

(ख) णहि रज्जंमल्लिजिणे पण्णारसपणसहस्सवासाइं ।
सुव्वयणमिणाहाणं णेमित्तिदयस्स णहि रज्जं ॥
मल्लि० । मुणिसुव्वय १५००० । णमि ५००० । णेमि० । पास० । वीर०

—तिलोय० अधि ४ । गा ६०३

महावीर, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ, मल्लिनाथ, वासुपूज्य—ये पाँच तीर्थंकर विशुद्ध राजकुल में उत्पन्न हुए परन्तु राज्याभिषेक किसी का भी नहीं हुआ अर्थात् भगवान् महावीर आदि पाँच तीर्थंकरों ने राज्य नहीं किया किन्तु कुमारावस्था मे दीक्षा ग्रहण की थी ।

·२१·४ माता-पिता के स्वर्गवास के समय अवस्था

अष्टाविंशे जन्मतोऽब्दे स्वामिनः पितरावथ ।
विहितानशनौ मृत्वा जग्मतुः कल्पमच्युतम् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो १५६

जब भगवान के माता पिता अनशन कर मरण को प्राप्त कर अच्युतकल्प में उत्पन्न हुए तब भगवान की अवस्था जन्म से अट्ठाइस वर्ष की थी ।

·२१·५ माता-पिताकी अविद्यमानता में कुमारावस्था

अविसाहिए दुवे वासे, सीतोदं अभोच्चा णिक्खंते ।
एगत्तगए पिहियच्चे से अहिण्णायदंसणे संते ॥

—आया श्रु १ । अ ६ । उ १ । सू ११

दो वर्ष से कुछअधिक समय तक शीत जल यानी कच्चे जल का सेवन न करके भगवान् ने दीक्षा ग्रहण की थी । वे भगवान् एकत्व-भावना से भावित चित्तवाले, क्रोध की ज्वाला को शांत किये हुए तथा सम्यक्त्व की भावना से भावित और शान्त थे ।

नोट.—अपने माता-पिता के स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् भगवान् दीक्षा लेने को तैयार हुए किन्तु अपने परिवारवर्ग के अत्याग्रह से भगवान दो वर्ष से कुछ अधिक समय तक गृहस्थावास में और ठहरे थे । उस समय काल मे भगवान् ने कच्चे जल का सेवन नही किया था । उनके अन्तः करण मे सदा एकत्व की भावना विद्यमान थी और क्रोध की ज्वाला शान्त हो गई थी । वे सम्यक्त्व की भावना से युक्त, शान्त और शान्तेन्द्रिय थे । इस प्रकार भगवान् ने गृहस्थावास मे ही सावद्य आरम्भ का त्याग कर दिया था । चूंकि भगवान् तीस वर्ष की अवस्था मे दीक्षा ग्रहण की । अतः माता-पिता के स्वर्गवास के बाद साधिक दो वर्ष कुमार अवस्था मे रहे ।

२१·६ कुमारकाल के ज्ञान

·१ जाति-स्मर-ज्ञान

(क) जाईसरो उ भयवं अप्परिवडिएहिं तिहिउ नाणेहिं।
कंतीए बुद्धीए य अब्भहिओ तेहिं मणुएहिं ॥

—आव० मूल भाष्य गा ७१

मलयटीका—जातिस्मरतीति जातिस्मरो भगवान्, 'लिहादिभ्य' इत्यणपवादोऽच्, कथं जातिस्मर इत्याहअप्रतिपतितै रेवत्रिभिः—मतिश्रुतावधिरूपैर्ज्ञानैः, अवधिज्ञानंहि भगवतो देवलोकिकमेवाप्रच्युतं भवति ×××।

(ख) तिहिं नाणेहिं समग्गा तित्थयरा जावहोंति गिहवासे।

– आव० मूल भाष्य गा १·० । पूर्वार्ध

मलयटीका –त्रिभिर्ज्ञानैः—मतिश्रुतावधिभिः समग्राः—संपूर्णास्तीर्थकरा यावद् गृहवासे भवंति, वसन्तीत्यर्थ।

भगवान् को गृहवास में जातिस्मरण ज्ञान था। अर्थात् मति, श्रुति, अवधि ज्ञान—ये तीन अप्रतिपत्ति रूप मे थे। भगवान् को अवधिज्ञान तो देवलोक से च्युत होने के समय से ही होता है।

(ग) मतिश्रुतावधिज्ञानत्रितयं सहजं तदा।
विभोरुत्कर्षतां प्रायाद्दिव्येन वपुषा समम्।

—वीरवर्धच० अधि १० । श्लो ११

भगवान् के मति, श्रुति और अवधि – ये तीन ज्ञान जन्म से ही प्राप्त थे, फिर ज्यों-ज्यों उनका दिव्य शरीर बढने लगा, त्यो त्यों वे तीनों ज्ञान और भी अधिक उत्कर्षता को प्राप्त हुए।

·२ आधोवधिक ज्ञान—अवधिज्ञान

(क) पुव्विं पि य णं समणस्स भगवओ महावीरस्स माणुस्साओ गिहत्थधम्माओ अणुत्तरे आहोहिए अप्पडिवाई नाणदंसणे होत्था।

तएणं समणे भगवं महावीरे तेणं अणुत्तरेणं आहोहिएणं नाणदंसणेणं अप्पणो निक्खमणकालं आभोएइ।

—कप्प० सु १११ । पृ० ३७

यद्यपि श्रमण भगवान् महावीर को गृहस्थ धर्म अर्थात् विवाहित जीवन के पूर्व भी अणुत्तर आधोवधिक अप्रतिपाती ज्ञान-दर्शन था। स्वय के निष्क्रमण काल का समय आ गया है—यह उस अनुत्तर आभोगिक ज्ञानदर्शन द्वारा- श्रमण भगवान महावीर ने जाना।

·३ पूर्व जन्म की स्मृति रूप ज्ञान

त्रिंशच्छरद्भिस्तस्यैवं कौमारमगमद् वयः।
ततोन्येद्युर्मतिज्ञानक्षयोपशमभेदतः ॥२९६॥
समुत्पन्नमहाबोधिः स्मृतपूर्वभवांतरः।

—उत्तपु० पर्व ७४। श्लो २९६, ९७ पूर्वार्ध

तीस वर्षों में भगवान का कुमारकाल व्यतीत हुआ। तदनन्तर दूसरे ही दिन मतिज्ञाना-वरणीय कर्म के क्षयोपशम विशेष से उन्हें महाबोधि-आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ और पूर्व भव का स्मरण हो उठा।

२३·७ भगवान् का गृहस्थकाल में अनारंभ

१ शीतोदक का भोग नहीं किया—

(क) अविसाहिए दुवे वासे, सीतोदं अभोच्चा णिक्खंते।

—आया० श्रु १। अ ९। उ १। गा ११ पूर्वार्ध। पृ० ७३

टीका—×××। 'अविसाहिए' इत्यादि अपि साधिके द्वे वर्षे शीतोद-कमभुक्त्वा-अनभ्यवहृत्यापीत्वेत्यर्थः, अपरा अपिपादधावनादिकाः प्रासुकेनैव प्रकृत्या ततो निष्क्रांतो यथा च प्राणातिपातं परिहृतवानेवं शेषव्रतान्यपि पालित-वानिति।×××।

मूल—अभिनिष्क्रमण के पूर्व गृहस्थावास में भगवान ने साधिक दो वर्ष तक शीतोदक सचित्त जल का भोग नहीं किया।

टीका—टीकाकार ने 'अभोच्चा' का अर्थ पीने के वास्ते सचित्त जल का व्यवहार नहीं किया—ऐसा अर्थ किया है तथा आगे कहा है कि 'अपरा-पैर वगैरह धोने के वास्ते भी प्रासुक जल का सहज भाव से उपयोग किया था। प्राणातिपात का परिहार किया तथा इसी प्रकार अन्य व्रतों का भी (सहज भाव से) पालन किया।

(ख) मलयगिरि टीका।×××। एवं भगवान् वर्धमानोऽष्टाविंशतिवर्षोजातः, अत्रान्तरे भगवतो मातापितरौ कालगतौ भगवानपि तीर्णप्रतिज्ञः प्रव्रज्याग्रहणा-हितमतिर्नन्दिवर्द्धनपुरस्सरं स्वजनमापृच्छति स्म, सपुनराह—भगवन्! माक्षारं क्षतेनिक्षिप, कियन्तमपि कालं प्रतीक्षस्व, भगवानाह—कियन्तं? स्वजन आह-वर्षद्वयं, भगवानाह—यद्येवं तर्हि भोजनादौ मम व्यापारो न वोढव्यः, एवं प्रतिपन्ने समधिकं वर्षद्वयं प्रासुकैषणीयाहारः शीतोदकमप्यपिबन् तस्थौ, न च प्राशुकेनापि जलेन सर्वस्नानं

कृतवान्, केवलं लोकस्थित्या हस्तपादमुखमात्रप्रक्षालनं प्राशुकेन जलेन चकार, निष्क्रमणमहोत्सवेतु सचित्तोदकेन स्नातवान्, ब्रह्मचर्यं च सविशुद्धं ततः प्रभृति यावज्जीवं परिपालितवान्, इह यदा भगवान् जातस्तदैवं लोके प्रसिद्धिरभूत्।

—आव० निगा। ४५८। टीका। पृ २१०

जब भगवान की अवस्था २८ वर्ष की हुई तब इस अन्तकाल मे भगवान के माता-पिता काल-मरण को प्राप्त हुए। भगवान की प्रतिज्ञा पूरी हुई। प्रव्रज्या ग्रहण करने की अनुमति प्राप्त करने के लिए भगवान् नंदिवर्द्धन तथा स्वजन के पास आये।

वे बोले—भगवन्! अभी माता-पिता काल को प्राप्त हुए हैं।

भगवान् बोले—कितने काल की प्रतीक्षा करनी चाहिए।

स्वजन बोले—दो वर्ष और प्रतीक्षा करनी चाहिए।

भगवान् बोले—यदि ऐसा ही तो भोजनादि मे मेरा व्यापार अर्थात् भोजनादि मेरे लिए नहीं होना चाहिए। साधिक दो वर्ष तक प्रासुक-ऐषणीय आहार ग्रहण करूँगा। शीतोदक—सचित जलका भोग नहीं करूँगा। प्रासुक जल से भी सर्वस्नान नहीं किया केवल लोक मर्यादा से प्रासुक जल से हस्त, पाद, मुख मात्र धोये।

निष्क्रमण महोत्सव के अवसर पर ही भगवान् ने सचित उदक से स्नान किया। यावज्जीव विशुद्ध ब्रह्मचर्य व्रत पालन किया।

इससे भगवान् की लोक मे प्रसिद्धि हुई।

·२ अन्यान्य नियम

(क) चिरेप्सितपरिव्रज्याग्रहणायाथ सादरः।
आपप्रच्छे महावीरो भ्रातरं नंदिवर्धनम्॥१६३॥
× × ×।
एवं च ज्यायसो भ्रातुः सशोकस्योपरोधतः।
जगत्पतिर्भावयतिरलंकारैरलंकृतः॥१६६॥
कायोत्सर्गधरो नित्यं ब्रह्मचर्यपरायणः।
स्नानांगरागरहितो विशुद्धध्यानतत्परः॥१६७॥
एषणीयप्रासुकान्नप्राणवृत्तिर्महामनाः।
वर्षमेकं कथमपि गृहवासेऽस्यवाहयत्॥१६८॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग २। श्लो १६३, १६६ से १६८

(माता-पिता के स्वर्गवास होने के कुछ दिन बाद) चिरकाल से प्रव्रज्या ग्रहण करने के इच्छुक भगवान महावीर ने स्वय के भाई नंदिवर्धन से दीक्षा की अनुमति मांगी। शोक संतप्त ज्येष्ठ बधु के आग्रह से भगवान महावीर भावयति के अलंकारों से अलंकृत होकर नित्य कायोत्सर्ग करते, ब्रह्मचर्य मे तत्पर रहते, स्नान नहीं करते, विशुद्ध ध्यान करते, ऐषणीय और प्रासुक अन्नकी प्राण वृत्ति करते, इस प्रकार साधना करते हुए भगवान को एक वर्ष हो गया।

·३ निरवद्य भावना

(क) एगत्तगए पिहियच्चे, से अहिण्णायदंसणे संते ॥

—आया० श्रु १ । अ ६ । उ १ । गा ११ । उत्तरार्ध । पृष्ठ ७१

टीका—× × ×। तथा एकत्वमिति तत एकत्वभावना भावितांतःकरणं, पिहितस्थगितार्चाक्रोधज्वालायेन स तथा (यदि वापिहितार्चो गुप्ततनुः) स भगवां श्च्छद्मस्थकालेभिज्ञातदर्शनः सम्यक्त्वभावतया भावितशांतइन्द्रिय नोइन्द्रियैः स एव भूतो भगवान् गृहवासेपि सावद्यारंभत्यागी। × × ×।

मूल—(गृहस्थावस्था के शेष दो वर्षों मे) भगवान एकत्वभावना और सम्यक्त्व भावना से भावित चित्त वाले थे। उनकी क्रोध की ज्वाला शांत हो गई थी और वे प्रशांत थे।

टीका—भगवान के अंतकरण मे एकत्व की भावना थी, क्रोध की ज्वाला शांत हो गई थी।

वे भगवान छद्मस्थकाल मे भी अतिज्ञातदर्शन सम्यक्त्व की भावना से भावित थे। इन्द्रिय और मन से शांत थे। इस प्रकार भगवान ने गृहस्थावस्था मे भी सावद्य आरंभ का त्याग कर दिया था।

(ख) चित्रं त्रिज्ञाननेत्रोऽहं मूढवत्संयमादृते।
इयन्तं कालमात्मज्ञः स्थितो गेहाश्रमे वृथा।

—वर्धमानच० अधि १०। श्लो ८१

आश्चर्य है कि तीन ज्ञान रूप नेत्रों का धारक और आत्मज्ञ भी मैं भगवान् महावीर मूढ के समान सयम के बिना इतने काल तक वृथा गृहस्थाश्रम मे रह रहा हूँ।

(ग) अथान्येद्युर्महावीरः काललब्ध्या प्रपेरितः।
चारित्रावरणदीनां क्षयोपशमतः स्वयम् ॥
प्राक् परिभ्रमणं स्वस्य विचिन्त्य भवकोटिभिः।
उत्कृष्टं प्राप वैराग्यं विश्वभोगाङ्गवस्तुषु ॥

- वीरवर्धच० अधि १०। श्लो ८१, ८२

(तीस वर्ष पश्चात्) अथानन्तर काल लब्धि से प्रेरित महावीर प्रभु किसी दिन चारित्रावरणीय कर्मों के क्षयोपशम से स्वय ही अपने कोटि भवों के पूर्व परिभ्रमण का चिन्तवन करके संसार, शरीर और भोग के कारणभूत द्रव्यों मे उत्कृष्ट वैराग्य को प्राप्त हुए।

'२३'८ वैराग्य का कारण

(क) समणे भगवं महावीरे दक्खे दक्खपतिन्ने पडिरूवे आलीणे भद्दए विणीए नाए नायपुत्ते नायकुलचंदे विदेहे विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहंसि कट्टु अम्मापिईहिं देवत्तगएहिं गुरुमहत्तरएहिं अब्भणुन्नाए समत्तपइन्ने ×××।

—कप्प० सू ११० । पृ० ३६

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे णाते णायपुत्ते णायकुल-विणिव्वत्ते विदेहे विदेहदिण्णे विदेहजच्चे विदेहसुमाले तीसं वासाइं विदेहत्ति कट्टु अगारमज्झे वसित्ता अम्मापिऊहिं कालगएहिं देवलोगमणुपत्तेहिं समत्तपइण्णे चिच्चा ××× अभिणिक्खमणाभिप्पाए यावि होत्था ।

—आया० श्रु २ । अ १५ । सू २६

उस काल उस समय मे ज्ञातपुत्र, ज्ञात नामक वश मे उत्पन्न, विदेह वैदेहदत्ता त्रिशला के सुपुत्र विदेहयात्य, विदेहसुमाल श्रमण भगवान् महावीर तीस वर्ष गृहस्थावास मे रहकर— माता-पिता के कालगत एव स्वर्गवासी हो जाने पर अपनी प्रतिज्ञा पूरी हुई जानकर अभि-निष्क्रमण—दीक्षा ग्रहण करने का विचार किया । श्रमण भगवान महावीर दक्ष, प्रतिरूप, आलीन, भद्र और विनयवान् थे ।

'२३'६ वर्षीदान

(क) संवच्छरेण होहिति, अभिणिक्खमणं तु जिणवरिंदस्स ।
तो अत्थ - संपदाणं, पव्वत्तई पुव्वसूराओ ॥
एगाहिरण्णकोडी, अट्ठेव अणूणया सयसहस्सा ।
सूरोदयमाईयं, दिज्जइ जा पायरासोत्ति ॥
तिण्णेव य कोडिसया, अट्ठासीतिं च होति कोडीओ ।
असितिं च सहसहस्सा, ऐयंसंवच्छरे दिण्णं ॥

—आया श्रु २ । अ १५ । सू २६ मे । २३५, २३६

(ख) मलयगिरि टीका—भगवानपि तथा तिष्ठन् संवत्सरातिक्रमे महादानं दत्तवान् ।

— आव० निगा ४५८ । टीका पृष्ठ २६०

संवच्छरेण होहिइ अभिणिक्खमणं तु जिणवरिंदाणं ।
तो अत्थसंपयाणं पवत्तए पुव्वसूरम्मि ॥८१॥
एगा हिरण्णकोडी अट्ठेव अणूणगा सयसहस्सा ।
सूरोदयमाईयं दिज्जइ जा पायरासो उ ॥८२॥
संघाडगतियचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापहपहेसु ।
दारेसु पुरवराणं रत्थामुहमज्झकारेसु ॥८३॥
वरवरिया घोसिज्जइकिमिच्छियं दिज्जइ बहुविहीयं ।
सुरअसुरदेवदाणवनरिंदमहियाण निक्खमणे ॥८४॥
तिन्नेव य कोडिसया अट्ठासीई य होंति कोडीओ ।
असियं य सहसहस्सा एयं संवच्छरे दिन्नं ॥८५॥

—आव० भाष्य गा ८१ से ८५

(ग) यथाकामिनमर्थिभ्यो दानं स्वाम्याब्दिकं ददौ ।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो १६६ । उत्तरार्ध

जिनेंद्र भगवान वर्धमान का एक वर्ष के पश्चात् अभिनिष्क्रमण होगा, अतः सूर्योदय से पहले द्रव्यदान मे प्रवृत्ति की जाती थी । प्रतिदिन सूर्योदय से एक प्रहर तक एक करोड़ और आठ लाख स्वर्ण मोहरों का दान दिया जाता था । एक वर्ष में कुल तीन सौ अठासी करोड़ और अस्सी लाख स्वर्ण मोहरें दान मे दी ।

शृंगाटक पथ, त्रिकोण स्थान, चतुष्क स्थान, चतुर्मुख, महापथ आदि स्थानों मे यह उद्घोषणा की जाती है कि जिसकी जैसी इच्छा हो वैसा दान दिया जाता है ।

·२३·१० लोकांतिक देवों के द्वारा—दीक्षार्थ संबोधन

(क) वेसमणकुंडलधरा, देवा लोगंतिया महिड्ढीया ।
बोहिंति य तित्थयरं, पण्णरससु कम्मभूमिसु ॥
बंभंमि य कप्पंमि य, बोद्धव्वा कण्हराइणो मज्झे ।
लोगंतिया विमाणा अट्ठसु वत्था असंखेज्जा ॥
एए देवणिकाया, भगवं बोहिंति जिणवरं वीरं ।
सव्वजगजीवहियं, अरहं तित्थं पव्वत्तेहिं ॥

—आया० श्रु २ । अ १५ । सू २६

(ख) × × × । पुणरवि लोयंतिएहिं जियकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहि कंताहि पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं ओरालाहि कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं मियमहुरसस्सिरीयाहिं हिययगमणिज्जाहि हिययपल्हायणिज्जाहिं गंभीराहि

अपुणरुत्ताहिं वग्गूहिं अणवरयं अभिनंदमाणा य अभिथुव्वमाणा य एवं वयासी-जय-जय नंदा। जय-जय भद्दा! भद्दंते जय-जय खत्तियवरवसहा! बुज्झाहि भगवं-लोगनाहा! पवत्तेहि धम्मतित्थं हियसुहनिस्सेयसकरं सव्वलोए सव्वजीवाणं भविस्सई त्ति कट्टु जय-जयसद्दं पउंजंति।

—कप्प० सू ११०

महान ऋद्धिके धारक कुबेर तथा कुंडलधारी लोकांतिक देव पन्द्रह कर्मभूमियों मे तीर्थंकर भगवान् को प्रतिबोध करते हैं। ब्रह्म नामक पाँचवें देवलोक मे आठ कृष्ण राजियों के बीच-बीच मे लोकांतिक देवों के विमान हैं। वे विमान असख्यात योजन के विस्तार वाले है।

भगवान महावीर का दीक्षा काल निकट जानकर -लोकांतिक देव - जितकल्पी देव उस प्रकार की इष्ट, मनोहर, प्रियकारी-मनोज्ञ, मन को खुश करने वाली उदार, कल्याणरूप शिवरूप, धन्य रूप, मगलरूप, परिमित मधुर और शोभावाली तथा हृदयगम, हृदय मे आह्लाद उत्पन्न करने वाली, गम्भीर और अपुनरुक्ति वाणी से भगवान् का निरन्तर अभिनदन किया और भगवान की बहु स्तुति की और बोले—

हे नंद! आपकी जय हो, आपकी जय हो। हे भद्र! आपकी जय हो, आपकी जय हो हे उत्तमोत्तम क्षत्रिय—क्षत्रिय नरपुगव—आपकी जय हो, आपकी जय हो। हे भगवन! लोकनाथ आप प्रतिबोध को प्राप्त हों। जगत मे सर्वजीवों के हित, सुख और निःश्रेयस करने वाले धर्मतीर्थका प्रवर्तन करो। ऐसा कहकर वे देव जय-जय की नादपर प्रयुजन करने लगे।

(ग) × × × तत्र तदा भगवान् निष्क्रमिष्यामीति मन· सम्प्रधारयति तदा ये लोकान्तिका देवाः सारस्वतादयो ब्रह्मलोके कल्पेरिष्टे विमानप्रस्तटे स्वकीये स्वकीये विमाने स्वकीये स्वकीये प्रासादावतंसके प्रत्येकं चतुर्भि· सामानिकसहस्रैस्तिसृभिः पर्षद्भिः सप्तभिरनीकैः सप्तभिरनीकाधिपतिभिः षोडशभिरात्मरक्षकदेवसहस्रै-रन्यैश्च स्वस्वविमानवास्तव्यैर्देवैर्देवीभिश्च संपरिवृता दिव्यान् भोगान् भुजमाना आसते, तेषामासनानि प्रचलन्ति, ततोऽवधिं प्रयुञ्जते· प्रयुज्य चाभोगयन्ति, ततो जानन्ति यथा—स्वामी निष्क्रमिष्यामीति मनः सम्प्रधारितवान्? ततश्चिन्तयन्ति कल्प एष लोकान्तिकानां देवानां—भगवतामर्हतां निष्क्रमणकाले संबोधनं कर्त्तव्य-मिति· तत एवं चिन्तयित्वा उत्तरपूर्वां दिशमवक्रम्य द्विकृत्वो वैक्रियसमुद्घातेन समवहत्योत्तरवैक्रियाणि रूपाणि विकुर्वते· विकुर्वित्वा भगवतः समीपमागत्याकाशे स्थिता मधुराभिर्वाग्भिरेवमवादिषुः—'जय जय नंदा! जय जय भद्दा!' जय जय

मुणिवरवसभा ! बुज्झाहि भगवं ! लोगनाहा । पवत्तेहि भयवं ! धम्मतित्थं, हिय-सुहनिस्सेसकरं जीवाणमेयं भविस्सइ' त्ति, ततो वंदन्ते नमस्यन्ति, वंदित्वा नमस्यित्वा यत आगतास्तत्र गताः । एतदेवाह—

सारस्सयमाइच्चा वण्ही वरुणा य गद्दतोया य ।
तुसिया अव्वाबाहा अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य ॥८६॥
एए देवनिकाया भयवं बोहिंति जिणवरिंदं तु ।
सव्वजगज्जीवहियं भयवं ! तित्थं पवत्तेहि ॥८७॥
एवं अभिथुव्वंतो बुद्धो बुद्धारविंदसरिसमुहो ।
लोगंतियदेवेहिं कुंडग्गामे महावीरो ॥८८॥

—आव० मूल भाष्य गा ८६ से ८८

जब भगवान् महावीर ने अभिनिष्क्रमण का विचार किया तब सारस्वत आदि लोकांतिक देव ब्रह्म देवलोक के रिष्ट विमान के प्रस्तट में अपने-अपने विमान, अपने-अपने प्रसादावतसक में प्रत्येक चार हजार सामानिक, तीन परिषद, सात अनीक, सात अनीकाधिपति, सोलह हजार आत्मरक्षक देव, अन्य स्व-स्व विमानों मे अवस्थित देव-देवियों से सपरिवृत्त दिव्य भोगों को भोगते हुए विचरते थे । उस समय उनका आसन्न प्रकपित हुआ । तब उन्होंने अवधिज्ञान से जाना कि भगवान् के मन मे अभिनिष्क्रमण होने का विचार उत्पन्न हुआ है । तत्पश्चात् चिंतन करते है कि लोकांतिक देवों का यह कल्प है कि भगवन् – अर्हन् के निष्क्रमण काल के समय उन्हें संबोधित करते हैं ।

ऐसा विचार कर लोकांतिक देव उत्तर-पूर्व दिशा मे आ गये और दो बार वैक्रिय समुद्घात से समवहत होकर उत्तर वैक्रिय की विकुर्वणा की ।

तत्पश्चात् भगवान के समीप आकर आकाश मे स्थित होकर मधुर वचनों से इस प्रकार बोले—हे नद ! जय हो, जय हो । हे भद्र ! जय हो, जय हो । हे मुनिवरपुगव ! जय हो, जय हो । हे भगवन्, लोकनाथ ! आप जागो । जीवों के हित, सुख और निःश्रेयस करने वाले धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करो ।

तत्पश्चात् भगवान को वंदन, नमस्कार किया—वदन, नमस्कार कर जिस स्थान से आये थे – वहाँ गये ।

(ग) तीर्थं प्रवर्तयेत्युक्तस्ततो लोकांतिकामरैः ।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो १६९ । पूर्वार्ध

(भगवान के दीक्षा ग्रहण करने के एक वर्ष पूर्व) लोकांतिक देवों ने आकर कहा कि भगवान् ! तीर्थ का प्रवर्तन करो।

(घ) णिव्वेइउ सो मउलिय - करेहिं।
संबोहिउ लोयंतिय - सुरेहिं ॥
अहिसिंचिउ पुणु सयलामरेहिं।
विज्जिज्जंतउ चामर - वरेहिं ॥

—वीरजि० संधि १ । कड ११

लोकांतिक देवों ने आकर उन्हें संबोधित किया और हाथ जोड़कर उन्हें वैराग्य भाव उत्पन्न करा दिया। फिर उत्तम चमरों से व्यजन करते हुए समस्त देवों ने उनका अभिषेक किया।

(च) संबोहि भव्व - जीवइँ जिणेस, भव-वास - विहीयइँ सुद्धलेस।
इय - भणि सुररिसि गयगेहि जाम, सरहसु संपत्त तुरंत ताम।
गुरु-भत्ति-णविउ साणंदकाउ, चउविहु विसुद्ध मणु सुर-णिकाउ।
पुज्जिउ विहिणा भयवंतु तेहिं, अहिसिंचेवि मणि-मय भूसणेहिं।

—वड्ढमाण० संधि ९ । कड १९

शुद्धलेश्याधारी हे जिनेश, आप भववास से भयभीत भव्य प्राणियों को संबोधित कीजिये। इस प्रकार प्रतिबोधित कर वे सुरऋषि—लोकांतिक देव, जैसे ही अपने निवास स्थल को लौटे कि तभी तुरन्त हो वहाँ हर्षित मन वाला इन्द्र आ पहुँचा। उसने आनंद से भरकर गुरुभक्ति पूर्वक वर्धमान को नमस्कार किया। उसके साथ विशुद्ध मन वाले चारों निकायों के देव भी थे। मणिमय आभूषणोंवाले उन देवों ने भगवान का विधिवत् अभिषेक कर पूजा की।

(छ) अथ सारस्वता देवा आदित्या वह्नयोऽरुणाः।
गीर्वाणा गर्दतोयाख्या निर्जरास्तुषिताभिधाः ॥ २ ॥
अव्याबाधा अरिष्टा इत्यष्टभेदाः सुरोत्तमाः।
ब्रह्मलोकालयाः सौम्याः लौकान्तिक समाह्वयाः ॥ ३ ॥
प्राग्भवेऽभ्यस्तनिःशेषश्रुतवैराग्यभावनाः।
सर्वे पूर्वविदो दक्षा निसर्गब्रह्मचारिणः ॥ ४ ॥
परिनिःक्रान्तकल्याणशंसिनोऽमलमानसः।
एकावतारिणो वन्द्याः शक्रैर्देवर्षयोऽमरैः ॥ ५ ॥

स्वज्ञानेन परिज्ञायतत्कल्याणमहोत्सवम् ।
अवतीर्य महीं स्वर्गादाजग्मुर्निकटं गुरोः ॥ ६ ॥
मूर्ध्ना नत्वा महावीरं कर्मारिहननोद्यतम् ।
प्रपूज्य परया भक्त्या स्वर्गोद्भवमहार्चनैः ॥ ७ ॥
विरक्तिजनकैर्वाक्यैश्चार्घ्याभिः स्तुतिभिर्मुदा ।
इति प्रारेभिरे स्तोतुमृषयस्ते महाधियः ॥ ८ ॥
किन्तु देव नियोगोऽयं भवत्संबोधनादिषु ।
स्तुतिव्याजेन नोऽद्यैवंमुखरीकुरुते बलात् ॥ १२ ॥
इति स्तुत्वा जगन्नाथं जगत्त्रयबुधेडितम् ।
निजेष्टप्रार्थनां कृत्वा स्वनियोगं विधाय च ॥ १३ ॥
उपार्ज्य परमं पुण्यं नमःस्तुतिशतार्चनैः ।
तत्पादाब्जौ मुहुर्नत्वा ययुःस्वर्गंमहर्षयः ॥ १४ ॥

—वीरवर्धच० अधि १२ । श्लो २ से ८, १२, १३, १४

सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट—ये आठ लौकांतिक देव-ब्रह्मलोक निवासी, सौम्यमूर्ति, पूर्वभव में सम्पूर्ण श्रुत और वैराग्य भावना के अभ्यासी, सर्वपूर्वों के वेत्ता, जन्म जात ब्रह्मचारी, एकाभवतारी, निर्मल चित्तधारी, इन्द्र और देवों के द्वारा वन्द्य एवं अभिनिष्क्रमण कल्याणक में तीर्थंकरों को संबोधन करने वाले देवर्षि जब अपने अवधिज्ञान से भगवान् महावीर के चित्त को विरक्त जाना, तब वे स्वर्ग से नीचे उतरकर इस भूतल पर जगद्गुरु के समीप आये और कर्म शत्रुओं के घात करने के लिए उद्यत श्रीमहावीर प्रभु को मस्तक से नमस्कार कर तथा स्वर्ग में उत्पन्न हुए महान् द्रव्यों से परम भक्ति के साथ पूजकर विरक्ति वर्धक वाक्यशाली अर्थपूर्ण स्तुतियों के द्वारा अत्यन्त प्रमोद के साथ उन महाबुद्धिशाली देवर्षियों ने स्तुति की—हे देव ! आपको संबोधन करने का यह हमारा नियोग है, इसलिये वह आज स्तुति के छल से हमें वाचाल कर रहा है ।

इस प्रकार वे देवर्षि लौकांतिक देव तीन लोक के ज्ञानियों से पूजित जगन्नाथ वीर प्रभु की स्तुति करके, अपनी इष्ट प्रार्थना करके, अपना नियोग पूरा करके, नमस्कार, स्तुति और पूजन में परम पुण्य उपार्जन करके और भगवान् के चरण कमलों को बार-बार नमस्कार करके स्वर्गलोक चले गये ।

(ज) समुत्पन्नमहाबोधिःस्मृतपूर्वभवान्तरः ।
लौकांतिकामरैः प्राप्य प्रस्तुतस्तुभिः स्तुतः ॥

सकलामरसंदोहकृतनिष्क्रमणक्रियः ।
स्ववाक्प्रीणितसद्बन्धुसंभावितविसर्जनः ॥

—उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो २१७, २१८

भगवान महावीर तीस वर्ष कुमारावस्था मे रहे । इसके बाद दूसरे ही दिन मति ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उन्हें आत्मज्ञान प्रकट हो गया और पूर्वभव का स्मरण हो उठा । उसी समय स्तुति पढते हुए लौकांतिक देवों ने आकर उनकी स्तुति की ।

समस्त देवों के समूह ने उनके निष्क्रमण कल्याण की क्रिया की, उन्होंने अपने मधुर वचनों से बंधुजनों को प्रसन्न कर उनसे बिदा ली ।

(झ) जावच्छइ जिणुत्ता गलिय तासु ।
वच्छरइँ तीस णिज्जिय - सरासु ॥
× × ×
इंदिय - वितित्ति विसएसु जाम ।
लोयंतिय देवपहुत्त ताम ॥
मउडामर णाणा - मणियरेहि ।
सुरधणु करंतु णहेसुहयरेहि ॥

—वड्ढच० संधि ९ । कड १८

काम बाण को जीत लेने वाले भगवान महावीर की आयु के जब ३० वर्ष निकल गये, तब उन्हें इन्द्रिय विषयों मे वितृप्ति हो रही थी कि उसी समय नाना प्रकार की सुखकारी मणि-किरणों से नभस्तल में इन्द्रधनुष की शोभा करने वाले मुकुटधारी लौकांतिक देव वहाँ आ पहुँचे ।

(ञ) णिक्खवण - वेल्ल - संपत्तएहिं ।
वज्जिय - घर - पुर परिवाणेहिं ॥
तवलच्छिए णं सइँ सहरसेण ।
पेसिय दूई संगम - कएण ॥
× × ×
इयभणि सुररिसि गय गेहि जाम ।
सरहसु संपत्त - तुरंत ताम ॥

—वड्ढच० संधि ९ । कड १९

हे भगवन ! अब निष्क्रमण वेला आ गयी है । घर, पुर एवं परिवार को छोड़िए । तपो-

लक्ष्मी ने समागम करने की इच्छा से हर्षपूर्वक स्वयं ही मानों उस वेलारूपी दूती को (आपके-पास) भेजा है।

इस प्रकार प्रतिबोधितकर वे मुखऋषि (लौकांतिक देव) जैसे ही अपने निवास स्थल को लौटे कि तभी तुरन्त ही वहाँ हर्षितमन वाला इन्द्र आ पहुँचा।

·२३·११ परिवार से दीक्षा की आज्ञा-मांगना

(क) × × × यदा भगवान् लोकान्तिकदेवैः संबोधितस्तदा स्वामी नंदिवर्द्धन-प्रमुखस्वजनवर्गसमीपमुपागतवान्, उपागत्य चैवमवादीत्—इच्छामि युष्मदनुज्ञातः प्रव्रज्या ग्रहीतुमिति, ते चाक्रामा अप्येवमवादिषुः—यद्भगवत· प्रतिभासते तत्प्रमाणं × × ×।

—आव० भाष्य गा ६१। मलय टीका

जब भगवान महावीर को लौकान्तिक देवों ने दीक्षा के लिये सम्बोधित किया, तब भगवान् महावीर नंदिवर्द्धन आदि स्वजन वर्ग के समीप आये। आकर उन्हें बोले—मुझे आप प्रव्रज्या ग्रहण करने की आज्ञा दीजिये। प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा— आप जो कहते हैं वह हमें स्वीकार है।

(ख) तदा स मातरं स्वस्य महामोहात्तमानसाम्।
बन्धूंश्च पितरं दक्षं महाकष्टेन तीर्थकृत् ॥४१॥
विविक्तैर्मधुरालापैरुपदेशशतादिभिः।
वैराग्यजनकैर्वाक्यैः स्वदीक्षायै ह्यबोधयत् ॥४२॥

—वीरवर्धच० अधि १२। श्लो ४१, ४२

वीर प्रभु ने महामोह से व्याप्त चित्तवाली अपनी माता को, दक्ष पिता को और अन्य बन्धुजनों को वैराग्य-उत्पादक मधुर वचनों के द्वारा और सैंकड़ों प्रकार के उपदेशी वाक्यों से अलग-अलग सबोधित करते हुए महाकष्ट से उन्हें अपनी दीक्षा के लिए समझाया।

·२४ दीक्षा के पूर्व परिग्रह का परित्याग

·२४·१ दीक्षा के पूर्व हिरण्य-सुवर्ण-वस्त्र आदि का परित्याग

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे णाते णायपुत्ते णाय-कुलविणिव्वत्ते विदेहे विदेहदिण्णे विदेहजच्चे विदेहसुमाले तीसं वासाइं विदे-हंसि कट्टु अगारमज्झे वसिता अम्मापिऊहिं कालगएहिं देवलोगमणुपत्तेहिं

समस्तपइण्णे चिच्चा हिरण्णं, चिच्चा सुवण्णं, चिच्चा बलं, चिच्चा वाहणं, चिच्चा धण-धण्ण-कणय-रयण-संत-सार-सावदेज्जं विच्छड्डेत्ता विगोवित्ता विस्साणित्ता, दायारे [ए ?] सु णं 'दायं पज्जभाएत्ता' संवच्छरंदलइत्ता जे से हेमताणं पढमे मासे पढमे पक्खे—मग्गसिरबहुले, तस्सणं मग्गसिरबहुलस्स दसमीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं णक्खत्तेणं जोगोवगएणं अभिणिक्खमणाभिप्पाए यावि होत्था—

—आया० श्रु २ । अ १५ । सू २६

श्रमण भगवान् महावीर गृहवास में तीस वर्ष रहकर, माता-पिता के स्वर्गवास हो जाने पर, अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई जानकर हिरण्य-सुवर्ण का त्याग करके, बल-वाहन का त्याग करके, धन-धान्य, कनक, रत्न आदि बहुमूल्य रत्नों का दान करके, उनका बँटवारा करके, प्रकट रूप से दान करके याचकों को दान का विभाग करके, वर्षी दान देकर—शीत ऋतु के प्रथम मास, प्रथम पक्ष में—मार्गशीर्ष कृष्णा दसमी के दिन, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का योग आने पर दीक्षा ग्रहण करने का अभिप्राय हुआ।

(ख) तएणं समणे भगवं महावीरे तेणं अणुत्तरेणं आहोहिएणं नाणदंसणेणं अप्पणो निक्खमणकालं आभोएइ, अप्पणो २ त्ता चेच्चा हिरण्णं चिच्चा सुवन्नं चेच्चा धणं चेच्चा रज्जं चेच्चा रट्ठं एवं बलं वाहणं कोसं कोट्ठागारं चेच्चा पुरं चेच्चा अंतेउरं चेच्चा जणवयं चेच्चा विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालरत्तरयण-माइयं संतसारसावत्तेज्जं विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दाणं दायारेहिं परिभाएत्ता दाइयाणं परिभाएत्ता × × ×।

—कप्प० सू १११ । पृ० १७

श्रमण भगवान महावीर ने अनुत्तर आधोवधिक—आभोगिक ज्ञान दर्शन से स्वयं निष्क्रमण काल को जाना। अपने निष्क्रमण काल—प्रव्रज्या लेने के समय को जानकर श्रमण भगवान महावीर ने हिरण्य, सुवर्ण, धन, राज्य, राष्ट्र को छोड़ दिया। इसी प्रकार सेना, वाहन, धनभंडार, पुर अंतःपुर जनपद, विपुल धन, कनक, मणि, मोती, शंख, राजपट्ट, प्रवाल लाल रत्न, माणक आदि सारभूत द्रव्यों को छोड़ दिया।

(ग) उज्जाणं संपत्तो ओरुहिउं उत्तमाउ सीयाओ।

—आव० मूल भाष्य गा ०६ । उत्तरार्ध

मलयटीका—उद्यानं सम्प्राप्तः सन् यत्रैवाशोकवरपादपस्तत्रैवागच्छति, आगत्य च तस्या उत्तमायाः शिबिकाया अवतरति, अवतीर्य च स्वयमेवाभरणान् मुञ्चति, × × ×।

भगवान महावीर चंद्रप्रभा शिविका पर आरूढ़ होकर ज्ञातृखंड वन में अशोक वृक्ष के नीचे आते हैं। उस उत्तम शिविका से नीचे उतर आते हैं तथा उतरकर स्वयं ही आभरणों का परित्याग कर देते है।

(घ) यानादवातरद् वीरो वीरकर्मासमानसः।
निराकाङ्क्षी शरीरादौ साकाङ्क्षी मोक्षसाधने ॥६१॥
अथ शान्ते जनक्षोभे तत्रासीन उदङ्-मुखः।
सर्वत्रारातिमित्रादौ समतां भावयन् पराम् ॥६२॥
क्षेत्रादीन् दशबाह्यस्थानुपधींश्चेतनेतरान्।
मिथ्यात्वाद्यन्तरङ्गांश्च चतुर्दशातिदुस्त्यजान् ॥६३॥
वस्त्राभरणमाल्यानि त्रिशुद्धया मोहहानये।
अत्यजन्निःस्पृहोऽङ्गादौ सस्पृहः स्वात्मशर्मणि ॥६४॥

—वीरवर्धच० अधि १२। श्लो ६१ से ६४

(भगवान महावीर संयम की प्राप्ति के लिए ज्ञातृखण्ड महावन में पहुँच जाते हैं।)

वीर कार्य करने में जिनका मन संलग्न है, जो शरीरादिक मे आकांक्षा रहित हैं और मोक्ष के साधन आकांक्षा युक्त हैं—ऐसे श्रीवीरप्रभु जन-संक्षोभ (कोलाहल) के शांत हो जानेपर उस शिलापट्ट के ऊपर उत्तर दिशा की ओर मुख करके विराजमान हुए। उस समय वे शत्रु-मित्रादि सर्व प्राणियों पर परम समता-भाव की भावना कर रहे थे।

तभी उन्होंने क्षेत्र-वास्तु आदि दसों प्रकार के चेतन-अचेतन परिग्रहों को तथा अति दुःख से छोड़े जाने वाले मिथ्यात्व आदि चौदह प्रकार के अंतरंग परिग्रहों को एव वस्त्र, आभूषण, माला आदि की शरीरादि मे निःस्पृह और स्वात्मीय सुख मे संस्पृह होते हुए मोह के नाश करने के मन-वचन-काय की शुद्धि पूर्वक सर्वदा के लिए परित्याग कर दिया।

·२५ अभिनिष्क्रमण-अभिप्राय जानकर देवागमन

(क) भवनपति आदि चार निकाय देवों का

तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अभिणिक्खमणाभिप्पायं जाणेत्ता भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-विमाणवासिणो देवाय देवीओ य ××× जेणेव जंबुद्दीवे दीवे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता जेणेव उत्तर-खत्तियकुण्डपुर-सन्निवेसस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए तेणेव झत्तिवेगेण ओवइया।

—आया० श्रु २। अ १५। सु २७। पृ० २३१

(ख) मणपरिणामो उ कतो अभिनिक्खमणंमिजिणवरिंदेण।
देवेहि य देवीहि य समंततो उच्छुयं गयणं ॥

—आव० मूल भाष्य गा ८९

मलय टीका—मनःपरिणामश्च कृतोऽभिनिष्क्रमणे—अभिनिष्क्रमणविषयो जिनवरेन्द्रेण, तावत् किं सञ्जातमित्याह—देवैर्देवीभिश्च समन्ततः—सर्वासु दिक्षु सर्वं अवस्तृतं—व्याप्तं गगनं।

भवणवइवाणमंतरजोइसवासी विमाणवासी य।
धरणियले गयणयले विज्जुज्जोओ कतो खिप्पं ॥९०॥
जाव य कुंडग्गामो जाव य देवाण भवणआवासा।
देवेहि य देवीहि य अविरहियं संचरंतेहि ॥९१॥

—आव० मूल भाष्य गा ९०, ९१

मलय टीका—यैर्देवैर्गगनतलं व्याप्तंते खल्वमी वर्त्तन्ते—भवनपतयश्च व्यन्तराश्च ज्योतिर्वासिनश्चेति द्वन्द्वः समासः, तथाविमानवासिनश्च, अमीभिरागच्छद्भिर्धरणितले गगनतले च विद्युद्वत् उद्योतो विद्युदुद्योतः कृतः क्षिप्रं-शीघ्रम्।

यावत् कुण्डग्रामो यावच्च देवानां भवनवासा अत्रान्तरे गगनतलं धरणितलं च देवैर्देवीभिश्च अविरहितं—व्याप्तं सञ्चरद्भिः, एतत्सामान्येनोक्तम् × × ×।

श्रमण भगवान महावीर के संयम ग्रहण करने के अभिप्राय को जानकर भवनपति, वाणव्यंतर ज्योतिष्क और विमानवासी देव-देवी विद्युत की तरह उद्योत करते हुए जंबूद्वीप में आये। जंबूद्वीप में आकर उत्तर-क्षत्रिय-कुंडपुर में—सन्निवेश में आये। और उत्तर क्षत्रिय कुंडपुर सन्निवेश के उत्तरपूर्व दिशा में वेग के साथ उतरे।

मानो देव-देवियों के आगमन से सर्व दिशा और सर्व गगन व्याप्त हो गया हो।

(ग) तदैव सामराः सर्वे चतुर्णिकायवासवाः।
सकलत्रा महाभूत्या स्वस्ववाहनमाश्रिताः ॥
घंटानादादिचिह्नौघैर्ज्ञात्वा तत्संयमोत्सवम्।
आजग्मुस्तत्पुरं भक्त्या महोत्सवशतैः समम् ॥
तत्पुरंतद्वनं मार्गांश्चारुध्य सुरसैन्यकाः।
नभोभागं मुदा तस्थुः सकलत्राः सवाहनाः ॥

—वीरवर्धच० अधि १२। श्लो ५५ से ५७

उन लौकान्तिक देवोंके जाते ही भवनपति आदि चारों जातिके सभी देवगण वटानाद आदि चिह्नों से भगवान् का समवोत्सव जानकर अपनी-अपनी देवियों के साथ अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर भक्ति के साथ सैकड़ों महोत्सवों को करते हुए उस कुण्डपुर नगर को आये और उसके वनों को और सर्व मार्गों को अवरुद्ध कर वे सैनिक अपनी देवियों और अपने वाहनों के साथ हर्षित हो आकाश में ठहर गये।

(घ) शक्रेन्द्र आदि इन्द्रों का—

नओ णं सक्के देविंदे देवराया × × × जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छति, तेणेव उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदति णमंसति, वंदित्ता णमंसित्ता समणं भगवं महावीरं गहाय जेणेव देवच्छंदए तेणेव उवागच्छति, उवागछित्ता सणियं-सणियं पुरत्थाभिमुहे सीहासणे णिसीयावेइ।

—आया० श्रु २। अ १५। सू २८। पृ० २११

देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र श्रमण भगवान महावीर के पास आये। पास आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार, दाहिनी ओर से आरभ करके आवर्त्त किया; वंदना की, नमस्कार किया। वदन-नमस्कार करके श्रमण भगवान को लेकर देवच्छदक के समीप आये। धीरे-धीरे पूर्व को ओर मुख करके सिंहासन पर आसीन किया।

(च) × × ×। तदनन्तरमासनं शक्रस्य चलितं, ततो यथा प्राक् ऋषभदेव-जन्माभिषेकद्वारे शक्रागमनमुपवर्णितं तथैवात्राप्यन्यनातिरिक्तमुपवर्णयितव्यं। यावत्तेन दिव्येन यानविमानेन स्वामिभवनस्य त्रिकृत्वः प्रदक्षिणां कृत्वा भगवतो भवनस्य उत्तरपूर्वस्यां दिशि चतुरंगुलैर्धरणितलमसंप्राप्तं तत् दिव्यं यानविमानं स्थापयति, ततो दिव्ययानविमानाद्विनिर्गत्य सर्वसामग्रीपरिकलितो भगवंतं पर्युपासीन आस्ते।

—आव० मूल भाष्य गा ९१। मलय टीका

जब भगवान महावीर के दीक्षा लेने का विचार हुआ तब शक्रेन्द्र का आसन चलित हुआ ; फलस्वरूप शक्रेन्द्र का आगमन हुआ। उसने दिव्ययान-विमान से भगवान के भवन की तीन प्रदक्षिणा करके भगवान के भवन से उत्तरपूर्व दिशा में धरणितल से चार आंगुल ऊँचा दिव्य यान-विमान रखा। तत्पश्चात् दिव्य यान-विमान से निकल कर सर्व सामग्री से सुसज्जित होकर भगवान् महावीर की सेवा करने लगा।

(छ) एवं पूर्वक्रमेण ईशानेन्द्रादयोऽच्युतेन्द्रपर्यवसाना इन्द्राः सपरिवारा वक्तव्याः, तथा भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्केन्द्रा अपि सपरिच्छदाः।

जैसे शक्रेन्द्र का (भगवान महावीर के दीक्षा लेने का विचार होने पर) आगमन हुआ वैसे ही ईशानेन्द्र से अच्युतेन्द्र तक के इन्द्रों का सपरिवार भगवान के पास आगमन हुआ।

इसी प्रकार भवनपति देवों के इन्द्रों का, व्यंतर देवों के इन्द्रों का, ज्योतिष्क देवों के इन्द्रों का सपरिवार भगवान के पास आगमन हुआ।

.२६ अभिनिष्क्रमण के पूर्व देवों द्वारा अभिषेक

(क) तओ णं सक्के देविंदे देवराया सणियं-सणियं जाणविमाणं ठवेति सणियं-सणियं जाणविमाणं ठवेत्ता सणियं-सणियं जाणविमाणाओ पच्चोत्तरति, सणियं-सणियं जाणविमाणाओ पच्चोत्तरित्ता एगंतमवक्कमेति, एगंतमवक्कमेत्ता महया वेउव्विएणं समुग्घाएणं समोहण्णति, महया वेउव्विएणं समुग्घाएणं समोहणित्ता एगं महं णाणामणिकणयरयणभत्तिचित्तं सुभं चारुकंतरूवं देवच्छंदयं विउव्वति।

तस्स णं देवच्छंदयस्स बहुमज्झदेसभाए एगं महं सपायपीढं णाणामणि-कणयरयणभत्तिचित्तं सुभं चारुकंतरूवं सिंहासणं विउव्वइ।

विउव्वित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छति, तेणेव उवा-गच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदति णमं-सति।

वंदित्ता णमंसिता समणं भगवं महावीरं गहाय जेणेव देवच्छंदए तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सणियं-सणियं पुरत्थाभिमुहे सीहासणे णिसीयावेइ।

सणियं-सणियं पुरत्थाभिमुहे सीहासणेणिसीयावेत्ता सयपाग-सहस्सपागेहिं तेल्लेहिं अब्भंगेति, अब्भंगेत्ता गंधकसाएहिं उल्लोलेति, उल्लोलित्ता सुद्धोदएणं मज्जा-वेइ, मज्जावित्ता जस्स जं तपलं सयसहस्सेणंति पडोलतित्तएणं साहिएणं सीतएणं गोसीसरत्तचंदणेणं अणुलिंपति।

— आया० श्रु २। अ १५। सू २८। पृ० २३६, ३७

देवेन्द्र देवराज शक्रेन्द्र ने धीरे-धीरे विमान को स्थिर किया। फिर वे धीमे-धीमे विमान से नीचे उतरे और एकान्त मे गये। एकान्त मे आकर महान वैक्रिय समुद्घात से आत्म-प्रदेशों को बाहर निकाला। बाहर निकालकर एक महान तथा विविध मणि, कनक और रत्नों से जडे, सुन्दर वर्ण वाले, शुभ सुन्दर-कमनीय रूपवाले देवच्छंदक की विकुर्वणा की।

उस देवच्छंदक के मध्य भाग मे एक महान् पीठिका युक्त, नाना प्रकार के मणि, कनक और रत्नों से जड़े शुभ-सुन्दर-कमनीय सिंहासन की विकुर्वणा की।

विकुर्वणाकर इन्द्र श्रमण भगवान महावीर के पास आये। पास आकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार, दाहिनी ओर से आरम्भ करके आवर्त्त किया, वंदना की, नमस्कार किया।

वंदना नमस्कार करके श्रमण भगवान से लेकर देवच्छदक के समीप आये। धीरे-धीरे पूर्वकी ओर मुख करके सिंहासन पर आसीन किया। फिर शतपाक और सहस्रपाक तेल से मालिश की। सुगध युक्त काषायिक वस्त्र से शरीर को पौंछा, तत्पश्चात् शुद्धजल से स्नान कराया। स्नान के बाद सुगंधित काषायिक वस्त्र से शरीर साफ किया। तत्पश्चात् लाख (मोहर) मूल्य के बहुमूल्य शीत गोशीर्ष रक्त चदन का लेप किया।

(ख) अहिंसिचिउ पुणु सयलामरेहिं।
विज्जिज्जंतउ चामर-वरेहिं॥

—वीरजि० संधि १। कड ११

उत्तम चमरों से व्यजन करते हुए समस्त देवों ने उनका अभिषेक किया।

(ग) आदौ तं मुक्तिभर्तारमारोप्य हरिविष्टरे।
सभूय वासवाः सर्वेऽभ्यषिञ्चन् परमोत्सवैः॥३६॥
क्षीरोदाब्धिपयः पूर्णैर्हेमकुंभैर्महोन्नतैः।
गीतनर्तनवाद्याद्यैर्जयकोलाहलस्वनैः॥३६॥

—वीरवर्धच० अधि १२। श्लो ३८,३९

सर्व प्रथम उन सब देवों ने (चतुर्निकाय) मुक्ति के भर्तार उन वीर प्रभु को सिंहासन पर विराजमान करके क्षीर सागर के जल से भरे हुए महोन्नत कलशों के द्वारा परम उत्सव से, गीत, नृत्य, वादित्र आदि से, तथा जय-जयनाद के कोलाहल पूर्ण शब्दों के साथ भगवान का अभिषेक किया।

(घ) xxx यदा भगवान् लोकान्तिकदेवैः संबोधितस्तदा स्वामी नन्दिवर्द्धन-प्रमुखस्वजनवर्गसमीपमुपागतवान्, उपागत्य चैवमवादीत् इच्छामि युष्मदनुज्ञातः

प्रव्रज्या ग्रहीतुमिति, ते चाकामा अत्येवमवादिषुः—यद्भगवतः प्रतिभासते तत्प्रमाणं ततः स नंदिवर्द्धनः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दापयित्वा निष्क्रमणाभिषेकसामग्रीं कारितवान्, तत्राष्टाधिकं सहस्रं सौवर्णिककलशानां १ अष्टसहस्रं रूप्यमयानां २ अष्टसहस्रं मणिमयानां ३ अष्टसहस्रं सुवर्णरूप्यमयानां ४ अष्टसहस्रं सुवर्ण-मणिमयानां ५ अष्टसहस्रं रूप्यमणिमयानां ६ अष्टसहस्रं सुवर्णरूप्यमणिमयानां ७ अष्टसहस्रं भौमेयानां ८ निष्पन्नं। तदनन्तरमासनं शक्रस्य चलितं।

- आव० मूल भाष्य गा ६१। मलय टीका

जब भगवान् महावीर को लोकांतिक देवों ने दीक्षा के लिए सम्बोधित किया, तब भगवान महावीर नंदिवर्धन आदि स्वजन वर्ग के समीप आये। आकर उन्हें बोले—मुझे आप प्रव्रज्या ग्रहण करने की आज्ञा दीजिये। प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा—आप जो कहते हैं वह हमें स्वीकार है। इसके बाद नंदिवर्धन ने कौटुम्बिक पुरुषों को आह्वान किया कि भगवान के निष्क्रमणाभिषेक सामग्री की तैयारी करो।

तत्पश्चात् १००८ सौवर्णिक कलशों को, १००८ रूप्यमय कलशों को, १००८ मणिमय कलशों को, १००८ सुवर्णरूप्यमय कलशों को, १००८ सुवर्ण-मणिमय कलशों को, १००८ रूप्यमणिमय कलशों को, १००८ सुवर्ण रूप्यमणिमय कलशों को तथा १००८ भौमेय कलशों को भगवान के निष्क्रमणाभिषेक के लिए तैयार किया।

इसके बाद शक्रेन्द्र का आसन चलित हुआ।

(च) × × ×। ततो यथा प्राग् ऋषभस्वामिनो जन्माभिषेकमच्युतेन्द्रादयः कृतवन्त उक्तास्तथाऽत्रापि वक्तव्या यावत् शक्रेण कृतोऽभिषेकः, ततो येऽच्युतेन्द्राद्या-भियोग्यदेवकृताः सौवर्णादिकलशास्ते नंदिवर्द्धनकौटुम्बिकपुरुषनिर्वर्त्तितसौवर्णादिकल-शेषु दिव्यानुभावतः प्रविष्टाः ततस्ते अधिकतरं शोभितवन्तः, ततः स नन्दिवर्द्धनो राजा स्वामिनं सिंहासने पूर्वाभिमुखंनिवेश्य देवानीतक्षीरोदसमुद्रादिपानीयैः सर्व-तीर्थमृत्तिकाभिः सर्वकषायैः सौवर्णादिकलशैरभिषेकं कर्त्तुमारब्धवान्, तस्मिंश्चा-भिषेकं कुर्वति सर्वे इन्द्राः सपरिवाराः केचित् कृताञ्जलिपुटाः केचित्कलशहस्तगताः केचित् भृङ्गारहस्तगताः केचिदादर्शहस्तगताः जयजयशब्दं प्रयुञ्जानाः स्वामिनः पुरतो-ऽवतिष्ठंते, शेषं सर्वं हिरण्यवर्षादि ऋषभनाथजन्माभिषेकवद्वाच्यं।

—आव० मूल भाष्य गा ६१। मलय टीका

अच्युतेन्द्र आदि ने भगवान का अभिनिष्क्रमण अभिषेक किया।

राजा नंदिवर्द्धन ने पूर्व की ओर मुख करके सिंहासन पर भगवान को बैठाया। तत्पश्चात् देवों द्वारा क्षीरोदधि से लाये हुए जलसे, सर्व तीर्थों की मृत्तिका से, सर्व कषायिक वस्तु से, सौवर्ण कलशों आदि से अभिषेक प्रारंभ किया।

सर्व इन्द्र सपरिवार भगवान का अभिषेक करते हैं जय-जय शब्द से (आकाश) गुंज उठा।

(छ) देवैः शक्रादिभिर्नंदिवर्धनाद्यैश्च पार्थिवैः।
दीक्षाभिषेको विदधे श्रीवीरस्य यथाविधि॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो १७०

शक्रादि इन्द्र, देवों, नंदिवर्धन आदि राजाओं ने भगवान् महावीर का यथाविधि दीक्षाभिषेक किया।

(ज) लौकांतिकामरैः प्राप्य प्रस्तुतस्तुतिभिः स्तुतः॥२९७॥
सकलामरसंदोहकृतनिःक्रमणक्रियः।
स्ववाक्-प्रीणितसद्बंधुसंभावितसंभावितविसर्जनः॥२९८॥

— उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो २९७, २९८

लोकांतिक देवों ने आकर उनकी स्तुति की। समस्त देवों के समूह से आकर उनके निष्क्रमण कल्याण की क्रिया की। उन्होंने अपने मधुर वचनों से बंधुजनों को प्रसन्न कर उनसे विदा ली।

(झ) जिननिष्क्रमणं दृष्ट्वा तुष्टाः सर्वे नरामराः।
कृत्वा तृतीयकल्याणपूजां जग्मुर्यथायथं॥

—हरिपु० खंड १ । सर्ग २ । श्लो ५५

भगवान् का अभिनिष्क्रमण-काल देखकर सर्व मनुष्य और देव सन्तुष्ट हुए और तृतीय कल्याण—दीक्षा कल्याण की पूजा की।

—•—

.२७ अभिनिष्क्रमण के पूर्व अलंकरण

(क) अणुलिंपित्ता इसिणिस्सासवातवोज्झं वरणगरपट्टणुग्गयं कुसलणरपसंसितं अस्सलालापेलवं छेयायरियकणगखचियंतकम्मं हंसलक्खणं पट्टजुयलं णियंसावेइ, णियंसावेत्ता हारं अद्धहारं उरत्थं एगावलिं पालंबसुत्त-पट्ट-मउड-रयणमालाइं आवि-

धावेति, आविंधावेत्ता गंथिम - वेढिमपूरिम - संघातिमेणं मल्लेणं कप्परुक्खमिव समालंकेति, समालंकेत्ता दोच्चंपि महया वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहृण्णइ।

—आया० श्रु २। अ १५। सू २८। पृ० २३७

भगवान् के शरीर पर गोशीर्ष रक्त चंदन का लेप करके, हल्की सी श्वास की वायु से भी उड़ने वाले, श्रेष्ठनगर पट्टन मे निर्मित, कुशल जनों द्वारा प्रशंसित, घोड़े के मुख के फेन के समान स्वच्छ, मनोरम, चतुर कारीगरों के द्वारा स्वर्ण के तारों से खचित, हंस लक्षणवाले दो वस्त्र पहनाये।

फिर हार, अर्धहार, वक्षस्थल का आभूषण, एकावली, माला, स्वर्ण सूत्र, कदोरा, मुकुट तथा रत्नमाला आदि आभूषण पहनाये।

आभूषण पहनाने के पश्चात् गूंथी हुई, वेष्टित की हुई, भरकर बनाई हुई और एक दूसरे से जोड़कर बनाई हुई मालाओं से भगवान का कल्पवृक्ष के समान शृङ्गार किया।

शृंगार करके शक्रेन्द्र ने दूसरी बार महान् वैक्रिय समुद्‌घात किया।

(ख) ××× ततो जन्माभिषेकानन्तरमलंकारसभायां केशालंकारेण वस्त्रालंकारेण माल्यालंकारेण आभरणालंकारेण भगवंतमलंकारितवान्, यावच्च निष्क्रमणाभिषेकोऽलंकारश्च क्रियमाणो वर्त्तते, तावद्धरणितलं गगनतलं चागच्छद्‌भिर्गच्छद्‌भिश्च देवैर्देवीभिश्च निरंतरं व्याप्तमुद्योतितं चावतिष्ठते, तत् उक्तम्—

धरणितले गयणतले विज्जुज्जोओकतो खिप्पं।

जावणकुंडगामो' इत्यादि ततएवं निष्क्रमणाभिषेकेणाभिषिक्ते सर्वालंकारविभूषिते च भगवति ×××।

—आव० मूल भाष्य गा ९१। मलय टीका

(ग) आलइयमालमउडो भासुरबोंदी पलंबवणमालो।
सेययवत्थनियत्थो जस्स य मोल्लं सयसहस्सं॥

– आव० मूल भाष्य गा ९५

मलय टीका—आलइयं—आविद्धमुच्यते, माला—अनेकसुरकुसुमग्रथिता मुकुटः प्रसिद्ध एव, माला च मुकुटश्च मालामुकुटौ ××× आविद्धौ माला देवद्रुमप्रवालकिशलयादिमयी यस्य स प्रलम्बवनमालः, तथानियत्थं—परिहितमुच्यते, निवसितंश्वेतम्—आकाशस्फटिकसमप्रभं नासानिःश्वासवातवाह्यमपूर्वस्पर्शोपेतं कनकखचितान्तप्रदेशं वस्त्रं येन स निवसितश्वेतवस्त्रः सुखादिदर्शनान्निवसितशब्दस्य पाक्षिकः परनिपातः, यस्य वस्त्रस्य मूल्यं शतसहस्रं दीनाराणामिति।

स्नानादि कराने के बाद अलंकार सभामे भगवान को केश, वस्त्र, माला और आभरण से अलकृत किया। जबतक भगवान का निष्क्रमणाभिषेक और अलकार होता रहा तबतक धरणितल तथा गगनतल मे देव-देवी का आगमन निरन्तर होता रहा। कहा है—धरणितल और गगनतल मे देवविद्युत से उद्योत कर रहे थे।

———

·२८ देवों द्वारा शिबिका-निर्माण

(क) तओणं सक्के देविंदे देवराया × × × दोच्चंपि महया वेउव्विय-समुग्घाएण समोहण्णइ, समोहणित्ता एगं महं चंदप्पभं सिवियं सहस्सवाहिणि विउव्वइ, तंजहा—ईहामिय-उसभ-तुरग-णर-मकर-विहग-वाणर-कुंजर-रुरु-सरभ-चमर-सद्दूलसीह-वणलय-विचित्तविज्जाहरमिहुण-जुयल-जंत-जोगजुत्तं, अच्चीसहस्समालिणीयं, सुणिरूवितमिसिमिसितरूवगसहस्सकलियं, ईसिंभिसमाणं, भिब्भिसमाणं, चक्खुल्लोयणलेस्सं, मुत्ताहलमुत्तजालंतरोवियं, तवणीय पवरलंबूस-पलंबंतमुत्तदामं, हारद्धहारभूसणसमोणयं, अहियपेच्छणिज्जं, पउमलयभत्तिचित्तं, असोगलयभत्तिचित्तं, कंदलयभत्तिचित्तं णाणालयभत्ति-विरइयं सुभं चारुकंतरूवं णाणामणिपच्चवण्णघंटा पडाय-परिमंडियग्गसिहरं पासादीयंदरिसणीयं सुरूवं।

—आयाः श्रु २ । अ १५ । सू २८ । पृ० २३७

शकेन्द्र ने दूसरी बार वैक्रिय समुद्घात किया और विकुर्वणा करके चद्रप्रभा नामक हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य एक महान् शिबिका बनाई। वह शिबिका भेड़िया, बैल, घोड़ा, नर, मगर, पक्षी, नागर, कुंजर, रुरुमृग, शरभ, चमर, शार्दूल, सिंह, वनलता आदि के विविध प्रकार के चित्रों से वह युक्त थी। विद्याधर युग्म एव यंत्र योग से युक्त थी। उसमे से सहस्रों किरणें बिखर रही थीं। वह सुन्दर रूप से अद्भुत बनी हुई थी। जगमगाती हुई, सहस्र रूपों से सम्पन्न, देदीप्यमान, अत्यन्त देदीप्यमान और निर्निमेष दृष्टि से देखने योग्य थी। उसमे मोतियों के गुच्छे लटक रहे थे। तप्त स्वर्ण के सुशोभन लटकन से युक्त थी। मोतियों की माला लटक रही थीं। वह हार तथा अर्धहार आदि आभूषणों से नमी हुई थी। अत्यन्त ही दर्शनीय थी।

उस पर पद्मलता, अशोकलता तथा कनकलता के चित्र थे तथा अन्यान्य विविध प्रकार की लताओं के चित्रों से सुशोभित थी। शुभ-सुन्दर और कांत थी। उसका अग्रभाग अनेक

प्रकार के पंचवर्णों मणियुक्त घन्टाओं और पताकाओं से सुशोभित था। वह दर्शक को प्रसन्नता प्रदान करने वाली, दर्शनीय और सुरूप थी।

(ख) स्नानादिदेशेति तदा कथंचिन्नन्दिवर्धनः ॥१७१॥

× × ×

पंचाशद्धनुरायामां षट्त्रिंशद्धनुरुन्नताम् ॥१७४॥
पंचाग्रविंशतिधनुर्विस्तृता शिबिकोत्तमाम्।
चन्द्रप्रभाख्यां कुर्वन्तु श्रीवीरस्यासनोचिताम् ॥१७५॥
त्वरितं कारयामासुः शिबिकां तां तथैव ते।
राज्ञां हि वचसाऽर्थः स्यान्मनसा द्युसदामिव ॥१७६॥
तादृशीमेव शिबिकां तदा शक्रोऽप्यकारयत्।
युग्मजाते इवाऽभाता यथो मे तुल्यया श्रिया ॥१७७॥
प्रथमायां शिबिकायां द्वितीयशिबिका तदा।
देवशक्त्यान्तर्बभूव नद्यामिव नदी क्षणात् ॥१७८॥

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग २ । श्लो १७१, १७४ से १७८

(ग) नंदिवर्द्धनराज्ञा उपदिष्टाः। कौटुम्बिकपुरुषाः—अनेकस्तंभशतसन्निविष्टां मणिकनकविचित्रां पंचाशद्धनुरायामां पंचविंशतिधनुर्विस्तीर्णां षट्त्रिंशद्धनुरुच्चां चन्द्रप्रभाभिधानां शिबिकामुपस्थापयतेति, तेऽपि तथैवोपस्थापयन्ति (एवं शक्रोऽपि शिबिकां कारयति) नवरं तस्याः प्रागुक्तविमानस्येव वर्णको वक्तव्यः, केवलं सा शिबिकातामेव नंदिवर्द्धनकारितां शिबिकां दिव्यानुभावतः प्रविष्टा, ततः साऽतीव सुन्दरतरा जाता।

—आव० मूल भाष्य गा ६१ । मलय टीका

नंदिवर्धन के आदेशानुसार स्वय के सेवक पुरुषों ने अनेक स्तम्भवाली विचित्र मणि-कनक सहित पचास धनुष लम्बी, छतीस धनुष ऊँची तथा पचीस धनुष विस्तीर्ण एक चंद्रप्रभा शिबिका वीर भगवान के बैठने के लिए तैयार की।

शक्रेन्द्र भी उसी प्रकार की शिबिका तैयार कराई। दोनों तुल्य शोभा वाली होने से मानो युगल रूप मे शिबिका उत्पन्न हुई हो।

तत्पश्चात् देवशक्ति से नदी में नद की तरह दूसरी शिबिका प्रथम शिबिका में अवहित हो गई। वह चंद्रप्रभा शिबिका अति सुन्दर थी।

'२८'२ अभिनष्क्रमणके पूर्व शिविका में आरूढ़ होने के समय लेश्या

(क) छट्ठेणं भत्तेणं अज्झवसाणेण सोहणेण जिणो ।
लेस्साहि विसुज्झंतो आरुहई उत्तमं सोयं ॥

—आव० मूल भाष्य गा ९६, आया० श्रु २। अ १५। सू २८

मलय टीका—स एवंभूतो भगवान् मार्गशीर्षबहुलदशम्यां सुव्रते दिवसे हस्तोत्तरानक्षत्रयोगे षष्ठौ विजये मुहूर्त्ते षष्ठेन भक्तेन, दिनद्वयोपवासेनेत्यर्थः, अध्यवसानम्—अन्तःकरणसव्यपेक्षं विज्ञानं तेन सुन्दरेण—शोभनेन जिनो-भगवान् वर्द्धमानस्वामी, तथा लेश्याभिर्विशुद्धयमानो, मनोवाक्कायपूर्विकाः कृष्णादिद्रव्य-संबंधजनिताः खल्वात्मपरिणामा लेश्याः × × × ताभिर्विशुद्धयमान आरोहत्युत्तमां शिबिकाम् ।

जब भगवान् चंद्रप्रभा शिविका मे मार्गशीर्ष दसमी को आरूढ हुए उस समय विशुद्धमान लेश्या थी ।

.२९ अभिनिष्क्रमण की असवारी विशेष

'२९'१ अभिनिष्क्रमण की असवारी

(क) जे से हेमंताणं पढमे मासे पढमे पक्खे मग्गसिरबहुले तस्सणं मग्गसिरब-हुलस्स, दसमीपक्खेणं पाईणगामिणीए छायाए पोरिसए अभिनिविट्ठाए पमाणपत्ताए सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं चंदप्पभाए सीयाए सदेवमणुयासुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे संखियचक्कियनंगलियमुहमंगलियवद्धमाणगपूसमाणगघंटि-यगणेहिं ताहिं इट्ठाहि कंताहिं पियाहि मणुण्णाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिंमंगल्लाहिं मियमहुरसस्सिरीयाहि वग्गूहिं अभिनंदमाणा अभिसंथु वमाणा य एवं वयासी ।

जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दंते—अभग्गेहिं णाणदंसणचरित्तेहिं अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालेहिसमणधम्मं, जिअविग्घो वि य वसाहि तं देव ! सिद्धिमज्झे, निहणाहि रागदोसमल्ले, तवेणं धिइधणियबद्धकच्छे मद्दाहि अट्ठकम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं अप्पमत्तो हराहि आराहणपडागं च वीर ! तेलोक्करंगमज्झे, पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलं वरणाणं, गच्छ य मोक्खं परमपयं जिणवरोवदिट्ठेणं मग्गेणं अकुडिलेण, हंता परीसहचमूं—जय जय खत्तियवरवसहा ! बहूइं दिवसाइं बहूइं पक्खाइं बहूइं मासाइं बहूइं उऊइं बहूइं अयणाइं बहूइं

संवच्छराइं अभीए परीसहोवसग्गाणं खंतिखमे भयभेरवाणं धम्म ते अविग्घं भवउत्तिकट्टु जय जय सद्दं पउंजंति ।

—कप्प० सू १११, ११२, । पृ० ३७, १८

(ख) एवं सदेवमणुयासुराए परिसाए परिवुडो भयवं ।
अभिथुव्वंतो गिराहि संपत्तो नायसंडवणं ॥

— आव० मूल भाष्य गा १०५

मलय टीका—एवम्-उक्तेन विधिना सह देवमनुष्यासुरा यया सा सदेव-मनुष्या सुरा तया, कयेत्याह्—पर्षदा— परिवृतो भगवान् गीर्भिः—वाग्भिः अभिष्टूय-मानः क्षत्रियकुंडपुरमध्येन नरनारीदेवदेवीसंघातानां नयनमालासहस्रैः प्रतीक्ष्यमाणः हृदयमालासहस्रैरभिनंद्यमानो मनोरथमालासहस्रैः संस्पृश्यमानोऽंगुलिसहस्रै-र्दर्श्यमानो भवनपंक्तिसहस्राणि समतिक्रामन् तावद् गतो यावत् संप्राप्तो ज्ञानखंडव-नमिति ।

हेमंत ऋतु के प्रथम मास, प्रथम पक्ष, मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन, छाया जब पूर्व दिशा मे ढल रही थी, प्रमाणोपेत पोरुषी, (अंतिम पोरुषी) सुव्रत दिन, विजय मुहूर्त मे भगवान महावीर चंद्रप्रभा शिबिका मे आसीन हुए । उस चन्द्रप्रभा शिविका के पीछे-पीछे देव, मनुष्य, असुरकुमारों का समूह चलता था तथा आगे कितनेक शंख बजाने वाले, कितनेक चक्रधारी, कितनेक गलधारी, कितनेक मुख मांगलिक मिष्ट भाषी, कितनेक वर्द्धमानक स्वय के कधे पर अन्य को बैठाने वाले, कितनेक चारण, कितनेक घंटी बजाने वाले, घांटिक थे ।

उन सब लोगों से घिरे हुए भगवान को शिविका मे बैठे हुए देखकर कुल महत्तर इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम, उदारकल्याण रूप शिवरूप, धन्य मगलरूप परिमित मधुर वाणी से भगवान का अभिनदन-स्तुति करते हुए इस प्रकार बोले ।—

"हे भद्र ! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे भद्र ! तुम्हारी जय, जय हो । आपका भद्र हो । निर्दोष ज्ञान, दर्शन, चारित्र द्वारा अजेय इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करो । श्रमण धर्म का पालन करो । विघ्नों पर विजय प्राप्त कर हे देव ! तुम साध्य ! सिद्धि मे वासस्थान करना । तप से राग-द्वेषरूपी मल्ल का हनन करना, धैर्य रूपी कच्छ बाँधकर उत्तम शुक्ल ध्यान द्वारा अष्ट कर्मरूपी शत्रुओं का मर्दन करो । अप्रमत्त होकर हे वीर । आप तीन लोक मे रग-मंडप मे विजयपताका वरण करना । तिमिर को नष्ट करने वाला अनुत्तर केवल ज्ञान प्राप्त करना । जिनेश्वर के द्वारा उपदिष्ट सरल धर्म का अनुसरणकर तुम परम पदरूप मोक्ष प्राप्त करना । परीषहों से सेना को जीतकर हे उत्तम क्षत्रिय ! क्षत्रिय वरपुंगव । तुम्हारी जय

हो, जय हो। बहु दिवस, बहुपक्ष, बहुमहिने, बहुऋतु, बहुअयन, बहुत वर्षों तक परीषह और उपसर्गों से निर्भय होकर, भयंकर और भयानक प्रसगों मे क्षमा-प्रधान होकर तुम विचरण करना। तुम्हें धर्म मे विघ्न हो ऐसा कहकर वे लोग भगवान महावीर का जय-जय नाद करने लगे।

(ग) तएणं समणे भगवं महावीरे नयणमालासहस्सेहिं पेच्छिज्जमाणे-पेच्छिज्जमाणे वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे-अभिथुव्वमाणे हिययमालासहस्सेहिं ओनंदिज्जमाणे ओनंदिज्जमाणे मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे-विच्छिप्पमाणे × × × दाहिणहत्थेणं बहूणं नरनारिसहस्साणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छमाणे २ भवणपंतिसहस्साइं समतिच्छमाणे × × ×। महता समुदएणं महता वरतुडितजमगसमगप्पवादितेगं संखपणवपडहभेरिझल्लरिखरमुहिहुडुक्क-दुंदुभिनिग्घोसनादियरवेणं कुंडपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ निगच्छइत्ता जेणेव णायसंडवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ ॥११३॥

—कप्प० सू ११३। पृ० ३८

तत्पश्चात् हजारो नेत्रों द्वारा देखते-देखते, हजारों मुँह द्वारा अभिस्तुति को प्राप्त होतेहोते, हृदय द्वारा अभिनदन को प्राप्त होते-होते भगवान को देखकर लोग ऐसा मनोरथ करने लगे। दाहिने हस्त से हजारों नर-नारी द्वारा हजारों प्रणाम झेलते झेलते भगवान को इस प्रकार हजारों वरों के हार के हार पहनाये।

वीणा, हाथ के वादक, वादित्र और गीतों के गाने-बजाने के मधुर, मनोहर जयजय नाद के साथ होने वाली मजु-मजु जय-नाद का घोष सुनकर भगवान सावधान रहते थे। सर्व ऋद्धि (स्वय के छत्र, चामर आदि सर्व वैभव), सर्व द्युति, सर्वसेना, सर्ववाहन, सर्वजन समुदाय, सर्व आदर, सर्व विभूति, सर्व विभूषा, सर्व उत्कठा, सर्व संगम, सर्व प्रजा, सर्व नाटकों सर्व ताल करने वाले, सर्व अतःपुर, सर्वफूल, वस्त्र, गध, माला और अलंकार की विभूषा, सर्वत्र वादित्र की आवाज के साथ भगवान महावीर कुडपुर नगर से निकलते हैं।

इस प्रकार महान (ऋद्धि, द्युति, सेना, वाहन, समुदाय, एक साथ बजते हुए वादित्रों अर्थात् मिट्टी का ढोल, लकड़ी का ढोल, भेरी झालर, खरमुखी हुडुककदुन्दुभी आदि वादित्रों के नाद के साथ भगवान महावीर कुडपुर नगर के मध्योमध्य होकर निकलते हैं, निकलकर जहाँ ज्ञातखण्ड नामक उद्यान में अशोक वृक्ष था; वहाँ आते हैं।

(घ) सीया उवणीया, जिणवरस्स जरमरणविप्पमुक्कस्स।
ओसत्तमल्लदामा, जलथलयदिव्वकुसुमेहिं ॥ ७ ॥

सिवियाए मज्झयारे, दिव्वं वररयणरूवचेवइयं ।
सीहासणं महरिहं, संपादपीढं जिणवरस्स ॥ ८ ॥
आलइयमालमउडो, भासुरबोंदी वराभरणधारी ।
खोमयवत्थणियत्थो, जस्स य मोल्लं सयसहस्सं ॥ ६ ॥
छट्ठेण उ भत्तेणं, अज्झवसाणेणं सोहणेण जिणो ।
लेसाहिं विसुज्झंतो, आरुहइ उत्तमं सीयं ॥ १० ॥
सीहासणे णिविट्ठो, सक्कीसाणा य दोहिं पासेहिं ।
वीयंति चामराहिं, मणिरयणविचित्तदंडाहिं ॥ ११ ॥
पुव्विं उक्खित्ता, माणुसेहिं साहट्ठरोमपुलएहिं ।
पच्छा वहंति देवा, सुरअसुरगरुलणागिंदा ॥ १२ ॥
पुरओ सुरा वहंती, असुरा पुण दाहिणंमि पासंमि ॥
अवरे वहंति गरुला, णागा पुण उत्तरे पासे ॥ १३ ॥
वणसंडं व कुसुमियं, पउमसरो वा जहा सरयकाले ।
सोहइ कुसुमभरेणं, इय गयणयलं सुरगणेहिं ॥ १४ ॥
सिद्धत्थवणं व जहा, कणियारवणं व चंपगवणं वा ।
सोहइ कुसुमभरेणं, इय गयणयलं सुरगणेहिं ॥ १५ ॥
वरपडहभेरिझल्लरि - सखसयसहस्सिएहिं तूरेहिं ।
गयणतले धरणितले, तूर-णिणाओ परमरम्मो ॥ १६ ॥
ततविततं घणझसिरं, आउज्जं चउविहंबहुविहीयं ।
वायंति तत्थ देवा, बहूहिं आणट्टगसएहिं ॥ १७ ॥

— आया० श्रु २ । अ १५ । सू २८ मे उद्धृत गा० । पृ० २३७, २३८

(घ) मलय टीका— × × × भगवान् सिंहासनादुत्थाय अलंकारसभातो विनिर्गच्छति, विनिर्गत्य यत्र चन्द्रप्रभा शिबिका तत्रागच्छति, ततस्तांप्रदक्षिणीकृत्य समारोहति, आरुह्य च सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखः सन्निषण्णः । आह च—

चंद्रप्पभाय सीया उवणीया जम्ममरणमुक्कस्स ।
आसन्नमल्लदामा जलथलयंदिव्वकुसुमेहिं ॥ ६२ ॥
पंचासइआयामा धणूणि विच्छिण्ण पण्णवीसंतु ।
छत्तीसं उव्विद्धा सीयाचंदप्पभा भणिया ॥६३॥

— आव० मूल भाष्य । गा ६२, ६३

मलयटीका—चंद्रप्रभाभिधाना शिबिका या उपनीता-आनीता, कस्येत्यत आह—जन्ममरणाभ्यां मुक्तइव मुक्तस्तस्य, वर्द्धमानस्येत्यर्थः। किंभूता सेत्याह—आसक्तानि माल्यदामानि यस्यां सा तथा, तथा जलस्थलजैश्च दिव्यकुसुमैरर्चितेति वाक्यशेषः ॥ संप्रति शिबिकाप्रमाणदर्शनार्थ माह—

पंचाशद्धनूंषि आयामो—दैर्घ्यं यस्याः सा पंचाशदायामा, धनूंषि पंचविंशतिर्विस्तीर्णा, तथा षट्त्रिंशद् धनूंषि उद्विद्धा-उच्चा शिबिका चंद्रप्रभाभिधाना गणधरैर्भणिता, अनेन शास्त्रस्य पारतन्त्र्यमाह।

सीयाए मज्झयारे दिव्वं मणिकणगरयणचिचइयं।
सिंहासणं महरिहं सपायपीढं जिणवरस्स ॥

—आव० मूल भाष्य गा १४

टीका—शिबिकाया मध्य एव मध्यकारस्तस्मिन् दिव्यं सुरनिर्मितं मणयः-चंद्रकान्तादयः कनकं—देवकांचनं रत्नानि—मरकतेन्द्र नीलादीनि तैः 'चिचइयं' देशीपदमेतत्, भूषितमित्यर्थः, सिंहप्रधानमासनं सिंहासनं, महान्तं—भुवनगुरुमर्हतीति महार्हं, सह पादपीठं यस्य येन वा तत् 'सपादपीठं' जिनवरस्य कृतमिति वाक्यशेषः।

जरा और मरण से मुक्त तीर्थंकर भगवान के लिए जल और स्थल मे उत्पन्न होने वाले दिव्य फूलों की मालाओं से सजी हुई शिबिका लाई गई। उस शिविका के मध्य भाग मे तीर्थकर भगवान के लिए पादपीठ सहित एक सिंहासन बनाया गया था। वह सिंहासन दिव्य और उत्तम रत्नो से चमक रहा था। भगवान मालाओं और मुकुट से मंडित, तेजोमय शरीर वाले, ऐसे उत्तम आभूषणों को धारण करने वाले तथा जिनका मूल्य एक लाख मोहर था ऐसे वस्त्रों को धारण करने वाले वाले षष्ठभक्त की तपस्या करके, सुन्दर अध्यवसाय से युक्त, तथा विशुद्ध लेश्या वाले जिनेंद्र भगवान उस उत्तम शिबिका पर आरूढ हुए। वह चन्द्रप्रभा शिबिका पचीस धनुष विस्तीर्ण और छत्तीस धनुष ऊँची थी।

भगवान सिंहासन पर आसीन हुए। शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र दोनों बगलों मे खड़े होकर मणियों एवं रत्नों से विचित्र दण्डों वाले चामर ढोलने लगे।

सबसे पहले हर्ष से रोमांच युक्त हुए मनुष्यों ने पालखी उठाई, फिर सुरों, असुरों, गरुड़ों एवं नागिन्द्रों आदि ने उठाई। शिबिका को पूर्व की ओर देव वहन करने लगे, दक्षिण की ओर असुर, पश्चिम की ओर गरुड़ देव और उत्तर की ओर नागेन्द्र वहन करने लगे।

जैसे फूला हुआ वनखण्ड सुशोभित होता है अथवा शरद ऋतु में सरोवर कमलों से शोभायमान होता है उसी प्रकार देवगणों से आकाश सुशोभित हो उठा।

जैसे सरसों का वन, कनेर का वन अथवा चंपकवन फूलों के समूह से सुशोभित होता है उसी प्रकार देवगणों से आकाश सुशोभित होने लगा।

उत्तम ढोल, भेरी झालर, शंख आदि लाखों वाद्यों से, पृथ्वी और आकाश में अत्यन्त रमणीक ध्वनि व्याप्त हो गई।

देव तत, वितत, घन और शुषिर—ये चार प्रकार के तरह-तरह के बाजे बजाने लगे और सैकड़ों प्रकार के नृत्य करने लगे।

(छ) तेणं कालेणं तेणं समएणं जेसे हेमताणं पढमे मासे पढमे पक्खे—मग्गसिरबहुले, तस्स णं मग्गसिर बहुलस्स दसमीपक्खेणं, सुव्वएणं दिवसेणं, विजएणं मुहुत्तेणं, 'हत्थुत्तराहिं णक्खत्तेणं जोगोवगएणं, पाईणगामिणीए छायाए, वियत्ताए पोरिसीए, छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं, एगसाडगमायाए, चंदप्पहाए सिवियाए सहस्सवाहिणीए, सदेवमणुयासुराएपरिसाए समण्णिज्जमाणे समण्णिज्जमाणेउत्तर-खत्तियकुंडपुर—संणिवेसस्स मज्झंमज्झेणं णिगच्छइ, णिगच्छित्ता जेणेव णायसंडे उज्जणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ईसिंरयणिप्पमाणं अच्छुप्पेणं भूमिभागेणं सणियं-सणिय चंदप्पभंसिवियं सहस्सवाहिणि ठवेइ, ठवेत्ता सणियं-सणिय चंदप्पभाओ सिवियाओ सहस्सवाहिणीओ पच्चोयरइ, पच्चोयरित्ता सणियं-सणियं पुरत्थाभिमुहे सीहासणे णिसीयइ, आभरणालंकारं ओमुयइ।

तओ णं वेसमणे देवे जन्नुव्वायपडिए समणस्स भगवओ महावीरस्स हंस लक्खणेणं आभरणालंकारं पडिच्छइ॥

—आया० श्रु २। अ १५। सू २६। पृ० २३८, २३९

हेमत ऋतु—शीतऋतु का प्रथम मास और प्रथम पक्ष – मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष था। उस कृष्णपक्ष की दसमी तिथि के दिन, सुव्रत नामक दिन में, विजय नामक मुहूर्त में, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रका योग होने पर, छाया जब पूर्व दिशा में ढल रही थी, तब अंतिम प्रहर में चौविहार षष्ठ भक्त तपस्या के साथ, एक वस्त्र धारण करके, पुरुष सहस्रवाहिनी चंद्रप्रभा नामक शिविका में देवों, मनुष्यों और असुरकुमारों के समूह के साथ उत्तर-क्षत्रिय-कुण्डपुर सन्निवेश के मध्य में होकर जहाँ ज्ञातखण्ड नामक उद्यान था, वहाँ आते हैं। आकर भूमि से रत्नि-प्रमाण अर्थात् कुछ कम एक हाथ की ऊँचाई पर धीमे-धीमे सहस्रवाहिनी चंद्रप्रभा शिविका

को ठहराते हैं। भगवान धीरे-धीरे उस शिविका से नीचे उतरते है। उतरकर पूर्व दिशा में मुख करके सिंहासन पर विराजते है।

तत्पश्चात् आभूषणों और अलकारो को उतारते हैं। तब वह श्रमण देव गोदोहासन से स्थित होकर भगवान महावीर के उतारे हुए आभूषणो-अलकारों को हसलक्षण वाले वस्त्र में ग्रहण करता है।

(ज) ततोऽसौ शिविकां दिव्यां दीप्रां चंद्रप्रभाभिधानम्।
सुरेन्द्रनिर्मितां देवः संयमश्रीसुखोत्सकः ॥ ४३ ॥
आरूरोह मुदा शक्रदत्तहस्तावलम्बनः।
प्रतिज्ञामेव दीक्षायां त्यक्त्वा बन्धून् श्रिया समम् ॥४४॥

तदारूढो जगन्नाथो विश्वाभरणभूतिभिः।
वरोत्तम इवाभासीत्तपोलक्ष्म्याः सुरावृतः ॥४५॥

आदौ तां शिविकामूहुः पदानि सप्त भूमियाः।
ततः खगाधिपा व्योम्नि निन्युः सप्तक्रमान्तरम् ॥४६॥

स्वस्कंधारोपितां कृत्वा ततोऽमुं त्रिजगत्सुराः।
खमुत्पेतुर्द्रुतं भूत्या धर्मरागरसोत्कटाः ॥ ४७ ॥

—वीरवर्धच० अधि १२। श्लो ४३ से ४७

देवेन्द्र रचित, चद्रप्रभा नामकी देदीप्यमान दिव्यपालकी पर सयम रूपी लक्ष्मी के सुख प्राप्त करने के लिए उत्सुक और इन्द्र के द्वारा जिनको हाथ का सहारा दिया गया है ऐसे श्रीवीर जिनदेव राज्यलक्ष्मी के साथ सब बन्धुजनों को छोड़कर दीक्षा मे प्रतिज्ञाबद्ध के समान चढे। उस समय समस्त आभूषणों की विभूति से युक्त और देवों से आवृत्त वे जगत के नाथ महावीर प्रभु उस पालकी पर विराजित होकर ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो तपोलक्ष्मी को वरने के लिए जाने वाले उत्तम वर ही हो।

सर्व प्रथम उस पालकी को राजाओं ने सात पद तक उठाया, तत्पश्चात् सात पदों तक विद्याधरों ने उठाया और उस पश्चात् धर्मानुराग के रस से परि-पूरित वे सभी देवगण उस पालकी को अपने कंधों पर आरोपण करके बड़ी विभूति के साथ शीघ्र आकाश मे उड़कर ले चलें।

(झ) जिनेन्द्रो नातिदूरं खमुत्पत्य नेत्रगोचरम्।
जनानां मंगलारम्भैर्यथोक्तैः संयमाप्तये ॥

आजगाम सुरैः सार्धं वनं खंडाभिधं महत् ।
सच्छायं सफलं रम्यं ध्यानाध्ययनवृद्धिदम् ॥
तत्रैकस्मिन् शिलापट्टे चंद्रकांतमये शुचौ ।

—वीरवर्धच० अधि १२ । श्लो ८६, ८७, ८८ । पूर्वार्ध

तदनन्तर यथोक्त मांगलिक आयोजनों से मनुष्यों के नेत्र-गोचर आकाश में न अति दूर, न अति समीप जाते हुए वीर जिनेन्द्र सयम की प्राप्ति के लिए देवों के साथ ज्ञातृखंड नामक महावन मे पहुँचे, जो उत्तम छाया वाला, फूल युक्त, रमणीय और ध्यान अध्ययन की वृद्धि करने वाला था। उस वन मे देवों के द्वारा पहले ही निर्मित एक गोल चंद्रकांतमयी पवित्र शिलापट्ट पर वीर भगवान पालकी से उतरकर आ विराजे।

(ञ) चन्द्रप्रभाख्यशिबिकामधिरूढो दृढव्रतः ।
ऊढां परिवृढैर्नृणां ततो विद्याधराधिपैः ॥ २९९ ॥
ततश्चानिमिषाधीशैश्चलच्चामरसंहतिः ॥
प्रभ्रमद्भ्रमरारावैः कोकिलालाणनैरपि ॥ ३०० ॥
आह्वयद्वा प्रसूनौघैः प्रहसद्वा प्रमोदतः ।
पल्लवैरनुरागं वा स्वकीयं संप्रकाशयत् ॥ ३०१ ॥
नाथः षण्डवनं प्राप्य स्वयानादवरुह्य सः ॥

—उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो २९९, ३००, ३०१, ३०२ । पूर्वार्ध

(ट) चंदप्पह-सिवियहि पहुचडिण्णु ।
तहि णाह-संड-वणि-णवर दिण्णु ॥

—वीरजि० संधि १ । कड ११

व्रतों को दृढता से पालन करने वाले वे भगवान चद्रप्रभा नामक पालकी पर आरूढ हुए। उस पालकी को सबसे पहले भूमि गोचरी राजाओ ने, फिर विद्याधर राजाओं ने और फिर इन्द्रों ने उठाया था। उनके दोनों ओर चामरो के समूह ढुल रहे थे। इस प्रकार भगवान षण्डवन मे पहुँच अपनी पालकी से नीचे उतरे।

(ठ) × × × उपस्थापितायां भगवान् सिंहासनादुत्थाय अलंकारसभातो विनिर्गच्छति, विनिर्गत्य यत्र चंद्रप्रभा शिबिका तत्रागच्छति, ततस्तां प्रदक्षिणीकृत्य समारोहति, आरुह्य च सिंहासनवरगतः पूर्वाभिमुखः सन्निषण्णः × × × ।

—आव० मूल भाष्य गा ९१ । मलय टीका

भगवान् महावीर अलकार सभा से निकल कर चन्द्रप्रभाशिविका के पास आये। पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर बैठ गये।

(ड) × × × तओ णं वेसमणे देवे जन्नुव्वायपडिए समणस्स भगवओ महावीरस्स हंसलक्खणेणं पडेणं आभरणालंकारं पडिच्छइ।

—आया० श्रु २ अ १५। सू २६। पृ० २३६

वैश्रमणदेव गोदोहासन से स्थित होकर भगवान महावीर के उतारे हुए आभूषणों-अलकारों को हस लक्षण वाले वस्त्र मे ग्रहण करता है।

(ढ) वस्त्राभरणमाल्यानि स्वयं शक्रः समाददे।
मुक्तान्येतेन पूतानि मत्वा माहात्म्यमीदृशम्॥

—उत्तपु०। पर्व ७४। श्लो ३०५

भगवान ने जो वस्त्र, आभरण तथा माला आदि उतारकर फेंक दिये थे उन्हें इन्द्र ने स्वय उठा लिया—यह ठीक है क्योंकि भगवान का माहात्म्य ही ऐसा था।

·२६ २ दीक्षा के पूर्व पंचमुष्टि लोच

१ स्वयमेव पंचमुष्टि लोच—

(क) तओ णं समणे भगवं महावीरे दाहिणेणं दाहिणं वामेणं वामं पंचमुट्ठियं लोयं करेइ।

—आया० श्रु २। अ १५। सू ३०

(ख) × × × ततः स्वमेव भगवान् पंचमुष्टिकं लोचं करोति। शक्रश्च देवराजो हंसलक्षणेन पटशाटकेन केशा (शी) न् प्रतीच्छति।

—आव० मूल भाष्य गा १०६। टीका

श्रमण भगवान ने दाहिने हाथ से दाहिनी ओर के और बायें हाथ से बायीं ओर के केशों का पचमुष्टिक लोच किया।

·२ भगवान के केशों का क्षीर सागर में निक्षेप

(क) तओ णं सक्के देविंदे देवराया समणस्स भगवओ महावीरस्स जन्नुवायपडिए वयरामएणं थालेणं केसाइं पडिच्छइ, पडिच्छत्ता 'अणुजाणेसि भंते" त्तिकट्टु खीरोयसायरं साहरइ।

— आया० श्रु २। अ १५। सू ३१। पृ० २३९

(ख) मलय टीका ××× ततः स्वयमेव भगवान् पंचमुष्टिकं लोचंकरोति शक्रश्च देवराजो हंसलक्षणेन पटशाटकेन केशा (शी) न् प्रतीच्छति॥

जिणवरमणुण्णवित्ता अंजणघणरुगयविमलसकासा ।
केसा खणेण नीया खीरसरिसनामयंउदहिं ॥

—आव० मूल० भाष्य गा० १०७

टीका—शक्रेण जिनवरं—भगवंतं वर्द्धमानस्वामिनमनुज्ञाप्य अंजनं प्रसिद्धं घनो-मेघः रुचकः—कृष्णमणिविशेषः तेषामिव विमला छाया येषां ते अंजनघनरुचक-विमलसंकाशाः के ते इत्याह—केशाः, किं ? क्षणेन नीताः क्षीरसदृशनामानमुदधिं, क्षीरोदधिमित्यर्थः ।

(ग) मुष्टिभिः पंचभिः केशानुद्दध्रे त्रिजगद्गुरुः ।
प्रतीक्ष्य दूष्ये तान् शक्रश्चिक्षेप क्षीरनीरधौ ।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ११७

भगवान महावीर ने स्वयमेव पंचमुष्टिक लोच किया, शक्र देवेन्द्र देवराज ने श्रमण भगवान महावीर के सामने गोदोहासन से स्थित होकर हीरे के थाल में केशों को ग्रहण किया। तत्पश्चात् शक्र देवराज ने भगवान की अनुज्ञा प्राप्त कर अंजन के समान, घन मेघ के समान, कृष्ण मणि के समान और उसकी विमल छाया के समान कृष्ण वर्णवाले केशों को क्षीरसागर में संहरण किया।

(घ) मलिना कुटिला मुग्धैः पूज्यास्त्याज्या मुमुक्षुभिः ।
केशाः क्लेशसमास्तेन यन्नामूलात्समुद्धृताः ॥३०७॥
सुराधीशः स्वहस्तेन तान्प्रतीक्ष्य महामणि ।
ज्वलत्पटलिकामध्ये विन्यस्याभ्यर्च्य मानितान् ॥३०८॥
विचित्रकरवस्त्रेण पिधाय विभृतान्सुरैः ।
स्वयं गत्वा समं क्षीरवारिराशौ न्यवेशयत् ॥३०९॥

—उत्तपु० । पर्व ७४ । श्लो ३०७ से ३०९

(च) केशान् भगवतो मूर्ध्नि चिरवासात्पवित्रितान् ।
मत्वा प्रतीक्ष्य देवेशो निधाय पाणिना स्वयम् ॥१०१॥
स्फुरद्रत्नपटल्यां हि मुदाभ्यर्च्य पिधाय च ।
दिव्यांशुकेन नीत्वा सा सुरैरन्यैर्महोत्सवैः ॥१०२॥
क्षीरोदाब्धे पवित्रस्य निसर्गेण शुचौ जले ।
न्यक्षिपत् परया भूत्या बहुमानशुभाप्तये ॥१०३॥

—वीरवर्धच० अधि १२ । १०१ से १०३

(छ) लुअ पंचमुट्ठि केसइँ जिणासु
तणु कंति-पराजिय-कंचणासु।
मणि-भायणे करेवि सुरेसरेण
सयमेव संमरिय जिणेसरेण।
खीराकुवारि - णिवेसियाइँ
अमयासणगणहिं पसंसियाइँ।

—वड्ढच० संधि १। कड २०। पृ० २११

(ज) मणिमय-पडलें लेप्पिणुससेस।
इंदें खीरण्णवि घित केस॥

—वीरजि० संधि १। कड ११। पृ० २२

मलिन और कुटिल पदार्थ अज्ञानी जनों के द्वारा पूज्य होते है। परन्तु मुमुक्षु लोग उन्हें त्याज्य समझते है। ऐसा जानकर ही मानो उन तरुण भगवान ने मलिन और कुटिल। (काले और घुंघुराले) केश जड़ से उखाड़ कर दूर फेंक दिये थे।

इन्द्रने वे सब केश अपने हाथ से उठा लिये, मणियों के देदीप्यमान पिटारे मे रखकर उनकी पूजा की, आदर सत्कार किया, अनेक प्रकार की किरण रूपी वस्त्र से उन्हें लपेटकर रखा और फिर देवों के साथ स्वय जाकर उन्हें क्षीरसागर मे पधरा दिया।

·२६·२ भगवान का दीक्षा ग्रहण—

·१ दीक्षा-प्रतिज्ञा

(क) × × × ; जहा से समणं भगवं उट्ठाय।
संखाए तंसि हेमंते, अहुणा पव्वइए रीयत्था॥

—आया० श्रु १। अ ९। उ १। गा १। पृ० ७२

टीका—× × × तीर्थकृता वीरवर्द्धमानस्वामिना स्वतएवाचीर्ण इत्येतन्नवमेऽध्ययने प्रतिपाद्यते।

दीक्षा अंगीकार करने के लिये श्रमण भगवान ने उत्थान—प्रस्थान किया और उत्थान करते ही विशिष्ट ज्ञान को प्राप्त किया तथा उस हेमन्त ऋतु मे स्वतः दीक्षा अंगीकार कर अविलम्ब विहार कर दिया।

(ख) तएणं समणे भगवं महावीरे ××× उवागच्छइत्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ, अहे अहेत्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, सीयाओ सीयाओ त्ता सयमेव आहरण-मल्लालंकारं ओमुयइ, आभर-आभर सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, स स त्ता छट्ठेणं

भत्तेणं अपाणएणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एगं देवदूसमायाय एगे अबीए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

—कप्प० सू ११४

श्रमण भगवान महावीर अशोकवर वृक्ष के नीचे स्थित चंद्रप्रभा शिबिका से नीचे उतरकर, स्वयमेव आभरण, माला, अलकार को शरीर से उतारकर स्वयमेव पंचमुष्टि लोच किया। फिर छट्ठ भक्त उपवास में, हस्तोतरा नक्षत्र के योग होने पर, एक देवदूष्य वस्त्र धारण कर अकेले गृहवास छोड़कर अनगार हुए।

(ग) अह अन्नया कयाई, संवेगओ जिणो मुणियदोसो।
लोगंतियपरिकिण्णो, पवज्जमुवागओ वीरो॥

—पउम० उद्देसो २। श्लो २६

ससार के दोषों को जानने वाले और इसीलिए लोकान्तिक देवों से घिरे हुए जिनेश्वर महावीर ने एकदिन दीक्षा ली।

·२ दीक्षा का काल-तिथि-नक्षत्र

(क) × × × समणे भगवं महावीरे × × ×। हत्थुत्तराहिं सव्वओ सव्वत्ताए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

—आया० श्रु २। अ १५। सू १

(ख) × × × समणे भगवं महावीरे ××× हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वईए।

—कप्प० सू १। पृ० ३

—ठाण० स्था ५। उ १। सू ९७। पृ० ६६४

—दसासु० दशा ८। सू १

(ग) हत्थुत्तरजोगेण × × ×।
× × × ।
अम्मापिईहिं भगवं देवत्तगएहिं पव्वइतो।

—आव० निगा। ४५६ पूर्वार्ध, ४६० उत्तरार्ध

मलय टीका—हस्तोत्तरायोगेन—उत्तराफाल्गुनीयोगेन × × × वीरो भगवान् मातापितृभ्यां देवत्वगताभ्यां प्रव्रजितः।

श्रमण भगवान महावीर माता-पिता के स्वर्गवास होने के बाद उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में गृहवास त्यागकर प्रव्रजित हुए।

(घ) वर्षत्रिंशति जन्मतोऽथ समतीतायां सहे मासि च।
श्यामायां दसमीतिथौ हिमकरे हस्तोत्तरासुस्थिते॥
यामेऽह्नश्चरमे तु षष्ठतपसः।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो १९९

जन्म से तीस वर्ष निगर्मन होने पर मार्गशीर्ष दसमी, चंद्र हस्तोत्तरा नक्षत्र में गमन करते हुए पश्चिम प्रहर में भगवान ने चारित्र ग्रहण किया।

(च) चंदप्पह—सिवियहि पहुचडिण्णु।
तहि णाह-संड-वणि णवरदिण्णु॥
मग्गसिर-कसण-दसमी- दिणंति।
संजायइ तियसुच्छवि महंति॥
वोलीणइ चरियावरण—पंकि।
हत्थुत्तर—मज्झासिइ ससंकि॥
छट्ठोववासु किउ मलहरेण।
तवचरणु लइउ परमेसरेण॥
मणिमय-पडलें लेप्पिणु ससेस।
इंदे खीरण्णवि घित्त केस॥
घत्ता—परमेट्ठि रिसिदु
थिउ पडिवज्जिवि संजमु।

—वीरजि० संधि १ । कड ११

(छ) उत्तराफाल्गुनीष्वेव वर्तमाने निशाकरे।
कृष्णस्य मार्गशीर्षस्य दशम्यामगमद्वनं॥
अपनीय तनोः सर्वं वस्त्रमाल्यविभूषणं।
पञ्चमुष्टिभिरुद्धृत्य मूर्धजानभवन्मुनिः॥

—हरिपु० खण्ड १ । सर्ग २ । श्लो ५१, ५२

भगवान चंद्र की प्रभा से युक्त पालकी पर विराजमान हुए और ज्ञातृषण्डवन में पहुँचे। वहाँ उन पापहारी परमेश्वर ने मार्गशीर्ष (अगहन) कृष्णपक्ष दशमी के दिन जब देवों द्वारा महोत्सव हो रहा था और चंद्रमा उत्तरा फाल्गुनी और हस्तनक्षत्रों के बीच स्थित था, तभी अपने चारित्रावरण कर्म रूपी मलको दूरकर, षष्ठोपवास (दो दिन की तपस्या) तपश्चरण

ग्रहण किया। तभी उन्होंने केशों का लोच किया और इन्द्र ने उन केशों को एक मणिमय पटल मे लेकर क्षीरोदधि मे विसर्जित कर दिया।

इस प्रकार वे मुनीन्द्र परमेष्ठी संयम ग्रहण कर आसीन हुए।

(ज) नाथः षंडवनं प्राप्य स्वायानादवरुह्य सः।
श्रेष्ठः षष्ठोपवासेन स्वप्रभापटलावृते ॥३०२॥
निविश्योदङ्मुखोवीरो रुन्द्ररत्नशिलातले।
दशम्यां मार्गशीर्षस्य कृष्णायां शशिनि श्रिते ॥३०३॥
हस्तोत्तरर्क्षयोर्मध्यं भागं चापास्तलक्ष्मणि।
दिवसावसितौ धीरः संयमाभिमुखोऽभवत् ॥३०४॥

—उत्तपु० पर्व ७४। श्लो ३०२ से ३०४

भगवान महावीर, षण्डवन मे पहुँचकर अपनी पालकी से उतर गये और अपनी ही कांति के समूह से घिरी हुई रत्नमयी बड़ी शिलापर उत्तर की ओर मुँहकर षष्ठ भक्त उपवास का नियम ले विराजमान हो गये। इस तरह मगसिर बदी दसमी के दिन जबकि निर्मल चन्द्रमा हस्त और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के मध्य भाग मे था तब दिवस के अवशेष मे (सन्ध्या) अतिशय धीर वीर भगवान महावीर ने सयम धारण किया।

(झ) अगहणमासे दसमी दिणम्मि
अत्थहरि—सिहरि पत्तइ इणम्मि।
विरएवि , छट्ठदिक्खिउजिणिंदु।

—वड्ढ च० सधि ९। कड २०

अगहन मास दसमी के दिन जब सूर्य अस्ताचल पर्वत पर पहुँच रहा था उसी समय भगवान महावीर षष्ठोपवास को प्रतिज्ञा पूर्वक दीक्षित हो गये।

'१ दीक्षा का समय

(क) पासो अरिट्ठनेमी सेज्जंसो सुमति मल्लिनामो य।
पुव्वण्हे निक्खंता सेसापुण पच्छिमण्हंमि ॥

—आव० नि गा २५४

मलय टीका—पार्श्वनाथोऽरिष्ठनेमिः श्रेयांसः सुमतिर्मल्लिनामा च, एते पंच तीर्थकृतः पूर्वाह्णे निष्क्रांता, शेषाः पुनः—ऋषभस्वामिप्रभृतयः पश्चिमाह्णे।

भगवान पार्श्वनाथ, अरिष्टनेमि, श्रेयांसनाथ, सुमतिनाथ और मल्लिनाथ—इन पाँचों तीर्थंकरों ने पुर्वाह्ण काल मे दीक्षा ग्रहण की तथा शेष तीर्थंकर तथा भगवान महावीर ने अपराह्ण काल मे दीक्षा ग्रहण की।

(ख) × × × अवरण्हे उत्तरासु णाधवणे।
× × × गहिदं महव्वदं वड्ढमाणेण ॥

—तिलोप० अधि ४ । गा ६६७

(ग) × × × यामेऽह्नश्चरमे तुषष्ठतपसः × × ×।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो १६६

(घ) मग्गसिरबहुलदसमीअवरण्हे उत्तरासु णाधवणे।
तदियखवणम्मि गहिदं महव्वदं वड्ढमाणेण।

—तिलोप० अधि ४ । गा ६६७

वर्धमान भगवान ने मार्गशीर्ष कृष्णा दसमी को अपराह्न काल मे उत्तरा नक्षत्र के रहते हुए नाथवन मे तृतीय भक्त के साथ महाव्रतों को ग्रहण किया।

(च) इत्यसौ मार्गशीर्षस्य कृष्णपक्षेऽप्यराह्णके।
हस्तोत्तरर्क्षयोर्मध्यभागं चंद्रे समाश्रिते ॥६६॥
दशम्यां सुमुहूर्तादौ मुक्तिकान्तासखीं पराम्।
एकाकी ह्याददे जैनीं दीक्षां मुक्त्यै सुदुर्लभाम् ॥१००॥

—वीरवर्धच० । अधि १२ । श्लो ६६ । १००

मार्गशीर्ष मास के कृष्णपक्ष की दसमी के दिन अपराह्न काल मे उत्तरा और हस्त नक्षत्र के मध्यभाग में चंद्रमा के आश्रित होने पर उत्तम मुहूर्त मे वीर प्रभु ने अकेले ही मुक्ति कांता की परम सखी और अति दुर्लभ ऐसी जैनी दीक्षा को मुक्ति-प्राप्ति के लिए धारण किया।

(छ) आभिणिबोहियबुद्धो छट्ठेण य मग्गसीस बहुलाए।
दसमीए णिक्खंतो सुरमहिदो णिक्खमणपुज्जो ॥

—कसापा० । भाग १ । गा १ । टीका । पृ० ७८

देव पूजित वर्द्धमान जिनेन्द्र षष्ठोपवास के साथ मार्ग-शीर्ष कृष्णा दसमी के दिन दीक्षित हुए।

·४ दीक्षा का स्थान

(क) तएणं समणे भगवं महावीरे × × × कुंडपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छइत्ता जेणेव णायसंडवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ × × × मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

—कप्प० सू ११३, ११४ । पृ० ३८, ३६

(ख) आसमपयंमि पासो वीरजिणिंदो य नायसंडमि।
अवसेसा पव्वइया (निक्खंता) सहसंबवणंमिउज्जाणे ॥

आव० नि गा २५३

मलय टीका—तथा आश्रमपदे—आश्रमपदाभिधान उद्याने पार्श्वनाथो निष्क्रान्तः, वीरजिनेन्द्रो ज्ञातखंडाभिधाने उद्याने, अवशेषाः—अजितस्वामि-प्रभृतयस्तीर्थंकराः सहस्राम्रवने निष्क्रान्ताः।

भगवान महावीर कुंडपुर नगर के मध्यो-मध्य होकर निकलते हैं, निकलकर जहाँ ज्ञात खण्डवन है, जहाँ अशोकवर वृक्ष हैं वहाँ आते हैं और गृहवास का परित्याग कर प्रव्रजित हो जाते हैं।

भगवान पार्श्वनाथ ने आश्रम पद उद्यान मे दीक्षित हुए। भगवान महावीर ज्ञात खण्ड उद्यान मे तथा अवशेष तीर्थंकर सहस्राम्रवन में दीक्षित हुए।

(ग) हत्थुत्तरजोगेणं कुंडग्गामंमि खत्तिओ जच्चो।
वज्जरिसभसंघयणो भवियजणविबोहतोवीरो
× × ×
अम्मापिईहि भगवं देवतगएहि पव्वइतो।

—आव० निगा ४५६, ४६० उत्तरार्ध

मलय टीका—हस्तोत्तरायोगेन—उत्तरफाल्गुनीयोगेन कुंडनगरग्रामे जात्यः उत्कृष्ट क्षत्रियो वज्रर्षभसंहननो भव्यजनविबोधको वीरो भगवान् मातापितृभ्यां देवगताभ्यां प्रव्रजितः।

भगवान महावीर माता-पिता के स्वर्गवास होने के बाद कुंडग्राम मे प्रव्रजित हुए।

(घ) वारवदीए णेमी सेसा तेवीस तेसु तित्थयरा।
णियणियजादपुरेसुं गिण्हंति जिणिंददिक्खाइ।

—तिलोप० अधि ४। गा ६४३

भगवान नेमीनाथ द्वारावती नगरी में तथा शेष तीर्थंकर तथा भगवान महावीर ने अपने-अपने जन्मस्थानों मे जिनेन्द्र दीक्षा ग्रहण की। (भगवान का जन्मस्थान—कुण्डपुर)

(च) उसभो य विणीयाए बारवईए अरिट्ठवरनेमी।
अवसेसा तित्थयरा निक्खंता जम्मभूमीसु ॥

—आव० नि गा २५१

भगवान ऋषभदेव विनीता नगरी मे, अरिष्टनेमी भगवान द्वारावती में तथा शेष तीर्थङ्कर तथा भगवान महावीर अपनी-अपनी जन्मभूमि मे दीक्षित हुए (भगवान की जन्मभूमि उत्तर-क्षत्रिय कुण्डग्राम थी)।

(छ) मग्गसिरबहुलदसमीअवरण्हे उत्तरासु णाधवणे।
तदियखवणम्मि गहिदं महव्वदं वड्ढमाणेण॥

—तिलोप० अधि ४। गा ६६७

(ज) तहिं णाह-संड-वणि णवर दिण्णु॥
मग्गसिर-कसणं-दसमी दिर्णति।
× × × ।
तवचरणु लइउ परमेसरेण॥
× × × ।

घत्ता—परमेट्ठि रिसिदु
थिउ पडिवज्जिवि मंजमु।

—वीरजि० संधि १। कड ११। पृ० २२

(झ) नाथः षंडवनं प्राप्य स्वयानादवरुह्य सः।
श्रेष्ठः षष्ठोपवासेन तत्प्रभापटलावृत्तेः।
निविश्योदङ्मुखो वीरो रुन्द्ररत्नशिलातले।
× × ×
दिवसावसितौ धीरः संयमाभिमुखोऽभवत्।

—उत्पु० पर्व ७४। श्लो ३०२, ३०३ पूर्वार्ध, ३०४ उत्तरार्ध

भगवान महावीर षण्डवन (नाथवन, ज्ञातषडवन) मे पहुँचकर अपनी पालकी से उतर गये। अपनी ही कांति के समूह से घिरी हुई रत्नमयी बड़ी शिला पर उत्तर की ओर मुँहकर षष्टभक्त उपवास का नियम ले (तिलोप० के अनुसार तृतीय भक्त के साथ) विराजमान हो गये। दिवस के अन्तिम भाग मे धीर-वीर भगवान महावीर सयम के अभिमुख हुए।

(ञ) जिनेन्द्रो नातिदूरं खमुत्पत्य नेत्रगोचरम्।
जनानां मंगलारम्भैर्यथोक्तैः संयमाप्तये॥८६॥
आजगाम सुरैः सार्धं वनं खण्डाभिधं महत्।
सच्छायं सफलं रम्यं श्वापदाद्युपद्रवमुक्तम्॥८७॥

तत्रैकस्मिन् शिलापट्टे चंद्रकांतमये शुचौ।
देवैः प्राग्निर्मिते वृत्ते द्रुमौघच्छायशीतले ॥८८॥
चंदनद्रवदत्ताच्छच्छटामंगलमंडिते।
इन्द्राणीकरविन्यस्तरत्नचूर्णोपहारके ॥८६॥
केतुमालावृताकाशे विचित्रपटमंडपे।
धूपधूमात्तदिग्भागे पर्यन्तधृतमंगले ॥६०॥
यानादवातरद् वीरो वीरकर्मात्तमानसः।
निराकाङ्क्षी शरीरादौ साकाङ्क्षी मोक्षसाधने ॥६१॥
अथ शांते जनक्षोभे तत्रासीन उदङ्मुखः।
सवत्रारातिमित्रादौ समतां भावयन् पराम् ॥६२॥
सर्वत्र समतापन्नः सामायिकाख्यसयमम्।
कृत्स्नदोषानिर्गं सारं स्वीचकार गुणकरम् ॥ ६८ ॥

वीरवर्धच० अधि १२ । श्लो ८६ से ६२, ६८

तदनन्तर यथोक्त मांगलिक आयोजनों से मनुष्यों के नेत्रगोचर आकाश मे न अति दूर, न अतिसमीप जाते हुए वीर जिनेन्द्र सयम की प्राप्ति के लिए देवो के साथ ज्ञातखण्ड नामक महावन मे पहुँचे, जो कि उत्तम छायावाला, फलयुक्त, रमणीय और ध्यान-अध्ययन की वृद्धि करने वाला था।

उस वन मे देवो के द्वारा पहले से ही निर्माण किये गये एक गोल चन्द्रकान्तमयी पवित्र शिलापट्टपर वीर भगवान पाल्की से उतरकर जा विराजे। वह शिलापट्ट वृक्षों की समूह की छाया से शीतल था घिसे हुए चदन के रस से जिस पर छींटे दिये गये थे, साथिया आदि मगल चिह्नो से जो मडित था। इन्द्राणी के हाथों रत्नों के चूर्ण से जिस पर नन्द्यावर्त आदि बनाये गये थे, जिसके ऊपर चित्र, विचित्र वस्त्रो का मडप शोभायमान था और जो ध्वजा पंक्तियों से आकाश को व्याप्त कर रहा था, जिसके सर्व ओर दिशाओं मे धूप का सुगधित धुआँ फैल रहा था और जिसके चारो ओर मगल द्रव्य रखे हुए थे।

वीर कार्य करने मे जिनका मन सलग्न है, जो शरीरादिक मे आकांक्षा रहित है और मोक्ष के साधन मे आकांक्षा युक्त है, ऐसे श्री वीर प्रभु जनसक्षोभ (कोलाहल) के शांत हो जाने पर उस शिलापट्ट के ऊपर उत्तर दिशा की ओर मुख करके विराजमान हुए। उस समय वे शत्रु-मित्रादि सर्व प्राणियों पर परम समता भाव की भावना कर रहे थे।

सर्वत्र समता भाव को प्राप्त होकर, सर्व दोषों से रहित, सर्व गुणों का आकर ऐसा सामायिक नामक सारभूत संयम स्वीकार किया।

(ट) सइँ णिग्गउ णयणाणंदिरासु
जिणु सत्त पयाइँ समंदिरासु।

घत्ता—पुणुरयणमय गयणयले गय ससिपह सिवियहिँ चडिवि जिणु।
चल्लिउ पुरहो सुर-मणहरहोजणवेढिउ चुव-भुव-रिणु।
वणु णायसंडु णामेण एवि
जाणहो जिणु सामिउ उत्तरेवि।
फलिहमय-सिलायले वइसरेवि
पुव्वामुहेण सिद्धइँ सरेवि।
विप्फुरियाहरणइं परिहरेवि
सुह-रिउ-तिण-मणि-समु-मणु-करेवि।
आगहणमासे दसमी दिणम्मि
अत्थइरि-सिहरि पत्तइ इणम्मि।
विरएवि छट्ठु दिक्खिउ जिणिंदु।

—वड्ढच० संधि ९। कड १९,२०

नेत्रों को आनंदित करने वाले वे जिनेन्द्र स्वयं ही अपने राजभवन (का परित्यागकर वहाँ) से निकले और सातपद (आगे) चले।

घत्ता—पुनः नभस्थल में स्थित रत्नमय चन्द्रप्रभा नाम की शिविका—पालकी में चढ़कर वे जिनेन्द्र देवों के मन को अपहरण करने वाले उस कुंडपुर से (बाहर की ओर) चले।

नागखण्ड नामक वन को आया हुआ जानकर महावीर जिनेन्द्र शिविका से उतर पड़े और एक स्फटिक मणि-शिला पर बैठकर पूर्वाभिमुख होकर सिद्धों का स्मरणकर स्फुरायमान आभूषणों का परित्याग कर, मित्र, शत्रु और तृण-मणि में समभाव धारणकर अगहन मास की दसमी के दिन जबकि सूर्य अस्ताचल शिखर पर पहुँच रहा था। उसी समय वे षष्ठोपवास की प्रतिज्ञा पूर्वक दीक्षित हो गये।

५ दीक्षा के समय भगवान के तप

(क) सुमइत्थ णिच्चभत्तेण, णिग्गओ वासुपुज्जो जिणो चउत्थेणं।
पासो मल्ली वि य, अट्ठमेण सेसा उ छट्ठेणं॥

—सम० पइसम। सू २२८। पृ० १४४

—आव० निगा २५०

(ख) समणे भगवं महावीरे छट्ठेणं भत्तेण अपाणएणं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

—ठाण० स्था ६ । सू १०४ । पृ० ७२६
कप्प० सू ११४ । पृ० ३९

(ग) × × × छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं × × × समणे भगवं महावीरे × × × सामाइयं चरित्तं पडिवज्जइ ।

—आया० श्रु २ । अ १५ । सू २६,३२ । पृ० २३८, २३६

(घ) छट्ठोववासु किउ मलहरेण ।
तवचरणु लइउ परमेसरेण ॥
× × ×

(च) घत्ता—परमेट्ठि रिसिंदु थिउ पडिवज्जिवि संजमु ।

—वीरजि० संधि १ । कड ११

(छ) श्रेष्ठः षष्ठोपवासेन तत्प्रभापटलावृत्तः ।
निविश्योदङ्-मुखोवीरो रुन्द्ररत्नशिलातले ।
× × ×
दिवसावसितौ धीरः संयमाभिमुखो अभवत् ।

—उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो ३०२ उत्तरार्ध, ३०३ पूर्वार्ध, ३०४ उत्तरार्ध

भगवान महावीर षष्ठभक्त उपवास का नियम ले, दिवस के अंतिम भाग मे सामायिक चारित्र ग्रहण किया ।

(ज) तदियखवणम्मि गहिदं महव्वदवड्ढमाणेण ।

—तिलोप अधि ४ । गा ६६७ । उत्तरार्ध

वर्धमान महावीर ने तृतीय भक्त के साथ महाव्रतों को ग्रहण किया ।

·६ दीक्षा के समय वस्त्र

·१ दीक्षा के अवसर पर केवल इन्द्रप्रदत्त वस्त्र का ग्रहण

(क) णो चेविमेण वत्थेण, पिहिस्सामि तंसि हेमंते ।
सेपारए आवकहाए, एयं खु अणुधम्मियं तस्स ॥

—आया० श्रु० १ । अ ९ । उ १ । गा २ । पृ० ७२

टीका—×××। न चैवाहमनेन वस्त्रेण इन्द्रप्रक्षिप्तेनात्मानं पिधास्यामिस्थगमिष्यामि तस्मिन् हेमन्ते तद्वास्त्रं त्वक्‌त्राणी करिष्यामि लज्जाप्रच्छादनं वा विधास्यामि किं भूतोऽसाविति दर्शयति स भगवान् प्रतिज्ञायां परीषहाणां संसारस्य वा पारंगच्छतीति पारगः कियंतं कालमितिदर्शयति यावत्कथं यावज्जीवमित्यर्थः किमर्थं पुनरसौबिभर्त्तीतिचेद्दर्शयति खूरवधारणे स च भिन्न क्रम एतद्वस्त्रावधारणं तस्य भगवतोनुपश्चात् धार्मिकमनुधार्मिकमेवेत्यपरैरपि तीर्थकृद्भिः समाचीर्णमित्यर्थस्तथागमः से बेमि ये अतीता जे य पडुप्पन्ना जे य आगमेस्या अरहंता भगवन्तो जे य पव्वयं इंसु जे पव्वयन्ति जे य पव्वइस्सन्ति सव्वे सो वही धम्मदेसियव्वे ति।

भगवान ने दीक्षा के समय इन्द्र प्रदत्त वस्त्र को ग्रहण किया।

इस (इन्द्र प्रदत्त) वस्त्र के द्वारा उस हेमंत ऋतु मे अपने अंगों को प्रच्छादत इस भावना से भगवान ने वस्त्र को धारण नहीं किया था। वे यावज्जीवन के लिये सांसारिक परिग्रह की ममता से पार हो गये थे। (इन्द्र के द्वारा प्रदत्त वस्त्र का धारण करना) आनुगमिक—पारंपरिक धर्म कर्तव्य था क्योंकि अतीत के तीर्थंङ्करों ने ऐसा ही किया था।

भगवान ने इन्द्रप्रदत्त वस्त्र (देवदुष्य वस्त्र) को इस कारण धारण नहीं किया था कि इस वस्त्र के द्वारा हेमन्त ऋतु मे शीत निवारण होगा अथवा लज्जा को प्रच्छादन। क्योंकि भगवान ने जीवन पर्यन्त के लिए सांसारिक पदार्थों का परित्याग कर दिया था अर्थात् भगवान परीषहों के पारगामी बन गये थे। इन्द्र के द्वारा प्रदत्त वस्त्र को परंपरागत तीर्थंकरों ने धारण किया था—अतः भगवान ने भी वस्त्र धारण किये।

(ख) ×××। भदन्तेति न भणति, तथाकल्पत्वात्, आह—चूर्णिकृत्—"भदंतत्ति, न भणइ, जीयमिति" चारित्रप्रत्तिपतिकाले च स्वभावतो भुवनभूषणस्य भगवतो निर्भूषणस्य सन इन्द्रो देवदूष्यंवस्त्रमुपनीतवान्, अत्रान्तरे कथानकम्—एगेण देवदूसेणं पव्वइए,

—आव० मूल भाष्य गा १०६। मलयटीका

चारित्रप्रतिपत्तिकाल मे भगवान ने सब आभूषणों को छोड़कर निर्भूषण हो गये थे। इन्द्र द्वारा प्रदत्त (देवदुष्य) वस्त्र को ग्रहण किया।

(ग) तया शिबिकया स्वामी त्रिदशैरुह्यमानया।
ज्ञातखंडवनं नाम ययावुपवनोत्तमम्॥
× × ×
शिबिकायाः समुत्तीर्य भूषणान्यत्यजत्प्रभु।
देवदूष्यं देवराजः स्कंधे च निदधे प्रभोः॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग २। श्लो १६२। १६६

देवों के द्वारा वहन की हुई शिविका में आरूढ भगवान महावीर ज्ञातृखण्ड नामक उत्तम उपवन में पहुँचे। तत्पश्चात् वे शिविका से उतरकर सर्व आभूषणों को छोड़ दिया। उस समय इन्द्र ने भगवान के स्कंध पर एक देव दूष्य वस्त्र रखा।

• सामायिक चारित्र का ग्रहण—

भगवान महावीर ने सर्वसावद्य योग का प्रत्याख्यान रूप सामायिक चारित्र ग्रहण किया—

(क) ततः सिद्धान्नमस्कृत्य पल्यंकासनमाश्रितः।
मोहपाशानिवालुञ्चत्केशौघान् पंचमुष्टिभिः ॥ ६५ ॥
विरम्य सर्वसावद्यान्मनोवाक्कायकर्मभिः।
अष्टाविंशतिमेवाद्यान् सारान्मूलगुणान् परान् ॥ ६६ ॥
आतापनादियोगोत्थान् नामोत्तरगुणान् वरान्।
व्रतानि समितिर्गुप्तीः स्वीकृत्य सकला जिनेट् ॥ ६७ ॥
सर्वत्र समतापन्नः सामायिकाख्यसंयमम्।
कृत्स्नदोषातिगं सारं स्वीचकार गुणाकरम् ॥ ६८ ॥

—वीरवर्धच० अधि १२। श्लो ६५ से ६८

तत्पश्चात् पद्मासन से बैठकर तथा सिद्धों को नमस्कार कर मोहपाश के समान अपने केश समूह को पाँच मुट्ठियों से उखाड़कर फेंक दिया और मन-वचन-काय के द्वारा सर्व सावद्यों का परित्याग कर सर्व गुणों के आद्यस्वरूप सारभूत अट्ठाईस परम मूल गुणों को, आतापन आदि योगों से उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकार के उत्तर गुणों को पंच महाव्रतों, पंच समितियों को और तीनों गुप्तियों को वीर जिनराज ने स्वीकार करके सर्वत्र समताभाव को प्राप्त होकर सर्व दोषों से रहित और सर्व गुणों का आकर ऐसा सामायिक नाम का सारभूत संयम अंगीकार किया।

(ख) तओ णं समणे भगवं महावीरे दाहिणेणं दाहिणं वामेणं वामं पंचमुट्ठियं लोयं करेत्ता, "सव्वं मे अकरणिज्जं पावकम्मं" तिकट्टु सामाइयं चरित्तं पडिवज्जइ,

सामाइयं चरित्तं पडिवज्जेत्ता देवपरिसं मणुयपरिसं च आलिक्ख—चित्त भूयमिव ट्ठवेइ।

दिव्वो मणुस्सघोसो, तुरियणिणाओ य सक्कवयणेण।
खिप्पामेवणिलुक्को, जाहे पडिवज्जइ चरित्तं ॥

पडिवज्जित्त् चरित्तं, अहोणिसिं सव्वपाणभूतहितं ।
साहट्ठलोमपुलया, पययादेवानिसामिंति ।।

—आया० श्रु २ । अ १५ । सू ३२ । पृ० २३१

(ग) काऊण नमोक्कारं सिद्धाणमभिग्गहंतुसोगिण्हे ।
सव्वं मेऽकरणिज्जं पावंति चरित्तमारुढो ।।

—आव० मूल भाष्य गा १०६

टीका—कृत्वा नमस्कारं सिद्धेभ्यो, यथा 'नमोत्थुणं सिद्धाणं' मिति, अभिग्रहमसौ गृह्णाति, किंविशिष्टमित्याह—'सर्वं मे—मम अकरणीयं पापमित्येवं चारित्रमारूढः, किमुक्तं भवति ? भदंत शब्दरहितं सामायिकमुच्चारयति, तद्यथा—'करेमि सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवाए जाव वोसिरामि', भदन्तेति न भणति, तथा कल्पत्वात्, आहचूर्णिकृत्—भदंतेत्ति न भणइ, जीयमिति" × × × ।

श्रमण भगवान महावीर दाहिने हाथ से दाहिनी ओर के और बायें हाथ से बायीं ओर के केशों का पचमुष्टि लोच करके, सिद्धों को नमस्कार करके मेरे लिए समस्त पाप कर्म अकरणीय है, मैं जीवन पर्यंत सर्व सावद्य योग का प्रत्याख्यान करता हूँ । इस प्रकार प्रतिज्ञा कर सामायिक चारित्र स्वीकार किया तीर्थङ्कर—भदंत का उच्चारण नहीं करते—यह जीताचार है ।

चारित्र अंगीकार करके भगवान ने देवों और मनुष्यों की परिषद् को चित्रलिखित सा कर दिया अर्थात् उस समय क्या देव और क्या मनुष्य सभी स्तब्ध और चकित रह गये ।

जिस समय भगवान ने चारित्र ग्रहण किया, उस समय शक्रेन्द्र की आज्ञा से देवों की, मनुष्यों की और वाद्यों की आवाज बन्द हो गई, अर्थात् पूर्ण शांति हो गई ।

तीर्थङ्कर भगवान महावीर चारित्र को अंगीकार करके दिन-रात समस्त प्राणियों और भूतों के हित में संलग्न रहने लगे । सर्व लोग रोमांचयुत होकर उनकी वाणी सुनने लगे ।

(घ) मुष्टिभिः पंचभिः केशानुद्दध्रे त्रिजगद्गुरुः ।
प्रतीक्ष्य दूष्ये तान् शक्रश्चिक्षेपक्षीर नीरधौ ।
तेनागत्यनिषिद्धेऽथ तुमुले त्रिजगत्प्रभुः ।
कृत्वा सिद्धनमस्कारं चारित्रं प्रत्यपद्यत ।।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो० ११७ ११८

(च) चतुर्थज्ञाननेत्रस्य निसर्गबलशालिनः।
तस्याद्यमेव चारित्रं द्वितीयं तु प्रमादिनाम् ॥

—उत्तपु० पर्व ७४। श्लो ३१४

मनःपर्यव ज्ञान रूपी नेत्र को धारण करने वाले और स्वाभाविक बल से सुशोभित भगवान महावीर के पहला सामायिक चारित्र ही था।

·८ दीक्षा ग्रहण के समय मनःपर्यव ज्ञान की उपलब्धि

(क) ××× श्रमणो भगवान् वीरवर्द्धमानस्याभ्युत्थायोद्यतविहारं प्रतिपद्य सर्वालंकारं परित्यज्ज पंचमुष्टिकं लोचं विधायैकेन देवदुष्येणद्रक्षिप्तेन युक्तः कृत सामायिकप्रतिज्ञः आविर्भूत मनःपर्यायज्ञानः ×××।

—आया० श्रु १। अ ६ उ १। गा २ टीका

श्रमण भगवान महावीर ने (वासभवन से दीक्षा लेने हेतु) विहार किया। (दीक्षा स्थान में पहुँचकर) सर्वालंकारों का परित्याग किया। विधिवत् पचमुष्टि लोच किया। इन्द्र द्वारा (भगवान के स्कंध पर) निक्षिप्त देवदुष्य वस्त्र सहित भगवान ने सामायिक (चारित्र) की प्रतिज्ञा की। (प्रतिज्ञा करते ही) भगवान के मनःपर्यवज्ञान आविर्भूत हो गया।

(ख) तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स सामाइयं खाओवसमियं चरित्तं पडिवन्नस्स मणपज्जवणाणे णामं णाणे समुप्पने—अड्ढाइज्जेहिं दीवेहिं दोहिं यसमुद्देहिं सण्णीणं पंचेंदियाणं पज्जत्ताणं वियत्तमणसाणं मणोगयाइं भावाइं जाणेइ।

—आया० श्रु २। अ १५। सू ३३। पृ २३६

तत्पश्चात् क्षायोपशमिक सामायिक चारित्र को स्वीकार करते ही श्रमण भगवान महावीर को मनःपर्यवज्ञान नामक ज्ञान उत्पन्न हुआ। उस ज्ञान से भगवान अढाई द्वीपों तथा दो समुद्रों के पर्याप्त व्यक्त मन वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मन के पर्यायों को जानने लगे।

(ग) मलय टीका—तस्य भगवतश्चारित्रप्रतिपत्तिसमनन्तरमेव मनःपर्यायज्ञान-मुदपादि,सर्वतीर्थकृतां चायंक्रमः' यत आह—

तिहिं नाणेहिं समग्गा तित्थयरा जाव होंति गिहवासे।
पडिवन्नंमि चरित्ते चउनाणी जाव छउमत्था ॥

—आव० मूल भाष्य गा ११०

टीका—त्रिभिर्ज्ञानैः—मतिश्रुतावधिभिः समग्राः—संपूर्णास्तीर्थकरा यावद् गृहवासे भवंति, वसन्तीत्यर्थः, प्रतिपन्ने पुनश्चारित्रे चतुर्ज्ञानिनो भवन्ति, कियन्तं कालं यावदित्याह—यावच्छद्मस्थास्तावच्चतुर्ज्ञानिनः।

भगवान महावीर को चारित्र ग्रहण करते ही मन.पर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ। कहा है—

समस्त तीर्थकरों को गृहवास में ही—मति-श्रुति-अवधि—ये तीन ज्ञान होते हैं। चारित्र को ग्रहण करते ही चतुर्ज्ञानि हो जाते हैं। छद्मस्थावस्था तक चतुर्ज्ञानी रहते है।

(घ) × × × प्रभोश्चारित्रेण समं तदा समभवज्ज्ञानं मनःपर्ययम्।

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग २। श्लो १६६

(च) चतुर्थोप्यवबोधोस्य संयमेन समर्पितः।
तदैवास्यावबोधस्य सत्यंकार इवेशितुः॥

—उत्तपु० पर्व ७४। श्लो ३१२

उसी समय संयम ने उन भगवान महावीर को केवल ज्ञान के बयाने के समान चौथा मनःपर्यव ज्ञान भी समर्पित किया था।

(छ) × × × कुंडपुरान्निर्गत्य ज्ञातखंडवनेमार्गशीर्षकृष्णदशम्यामेककः प्रव्रज्य मनःपर्यायज्ञानमुत्पाद्य × × ×।

—ठाण स्था १०। सू १०३। टीका

.३० .४६ साधनाकाल

.३१ चारित्र ग्रहण के समय

.१ विविध प्रकार का घोष शांत

दिव्वो मणुस्सघोसो तुरियनिनादो उ (य) सक्कवयणेणं
खिप्पामेव निलुक्को जाहे पडिवज्जइ चरित्तं॥

- आया० श्रु २। अ १५। सू ३२ में उद्धृत

—आव० मूल भाष्य गा १०८

आव० मलय टीका—दिव्यो-देवसमुत्थो, घोष इति गम्यते, मनुष्यघोषः, च शब्दस्य व्यवहितः संबंधः, तथा तूर्यनिनादश्च शक्रवचनेन क्षिप्रमेव—शीघ्रमेव 'निलुक्को' इति देशीवचनमेतत्, विरत इत्यर्थः, यदा—यस्मिन्काले प्रतिपद्यते चारित्रम्।

जिस समय भगवान ने सामायिक चारित्र ग्रहण किया, उस समय शकेन्द्र की आज्ञा से देवों की, मनुष्यों की और वाद्यों की आवाज बंद हो गई अर्थात् पूर्ण शांति हो गई।

·२ सह-दीक्षित—अकेले दीक्षित

(क) एगो भयवं वीरो पासो मल्ली य तिहि तिहि सएहिं।
भयवंपि वासुपुज्जो, छहि पुरिससएहि निक्खतो।

—आव० निगा २४६

—सम० । पइसम । सू २२७ । पृ ६४४

मलय टीका—एको भगवान् वीरो वर्द्धमानस्वामी प्रव्रजितः।

भगवान महावीर ने अकेले दीक्षा ग्रहण की तथा पार्श्वनाथ और मल्लीनाथ भगवान ३००-३०० पुरुषों के साथ तथा वासुपूज्य भगवान ने ६०० पुरुषों के साथ दीक्षा ग्रहण की।

(ख) पव्वजिदो मल्लिजिणो रायकुमारेहि तिसयमेत्तेहिं।
पासजिणोवि तहच्चिय एकच्चियवड्ढमाणजिणो॥

—तिलोप० अधि ४ । गा ६६८

भगवान मल्लिनाथ तीन सौ राजकुमारों के साथ दीक्षित हुए। पार्श्वनाथ भी ३०० राजकुमारों के साथ तथा वर्द्धमान जिनेन्द्र अकेले ही दीक्षित हुए।

·३ दीक्षा के समय भगवान की अवस्था

(क) समणे भगवं महावीरे तीसं वासाइं अगारमज्झे वसित्ता (मुंडे भवित्ता ?) अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

—सम० सम० ३० । सू ७ । पृ ८७३

(ख) सो देवपरिग्गहिओ तीसं वासाइं वसइगिहवासे।
अम्मापिईहिं भगवं देवत्तगएहिं पव्वइतो॥

—आव० निगा ४६०

मलय टीका—× × × वीरो भगवान् मातापितृभ्यां देवत्वगताभ्यां प्रव्रजितः, अथः स कियन्तं कालं सर्वसंकलनया गृहवासे वसति ? तत आह—स त्रिशद्वर्षाणि वसति गृहवासे। × × ×।

माता-पिता के स्वर्गवास होने के बाद, तीस वर्ष गृहवास में रहकर प्रव्रजित हुए।

(ग) तेणं कालेणं तेणं समएणं अहं गोयमा ! तीसं वासाइं अगारवासमज्झावसित्ता अम्मा-पिईहिं देवत्तगएहिं समत्तपइण्णे एवं जहा भावणाए जाव एगं देवदूसमादाय मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

भग० श १५ । सू २०

भगवान महावीर गौतम को कहते हैं कि—हे गौतम ! उस काल उस समय तीस वर्ष तक गृहवास में रहकर और माता-पिता का स्वर्गवास हो जाने पर (आचारांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध के पन्द्रहवें भावना अध्ययन के अनुसार माता-पिता के जीवित रहते मैं दीक्षा नहीं लूंगा—इस प्रकार का अभिग्रह पूर्ण होने पर, मैंने स्वर्णादिका त्यागकर इत्यादि बावत्) एक देवदूष्य वस्त्र को ग्रहण कर मुंडित हुआ और गृहवास का त्यागकर अनगार प्रव्रज्या ग्रहण की।

'४ भगवान ने प्रथम वयस् में दीक्षा ली

(क) वीरो अरिट्ठनेमी पासो मल्ली य वासुपुज्जो य।
पढमवए पव्वइया सेसा पुण मज्झिमवयंमि ॥

—आव० निगा २४८

मलयटीका—वीरो—महावीरः अरिष्ठनेमिः पार्श्वनाथो मल्लिर्वासुपूज्य इत्यते पंचतीर्थकृतः प्रथमवयसि—कुमारत्वलक्षणे प्रव्रजिताः, शेषा पुनः—ऋषभस्वामि-प्रभृतयो मध्यमे वयसि—यौवनलक्षणे वर्त्तमाना प्रव्रजिताः।

भगवान महावीर तथा अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ, मल्लिनाथ, वासुपूज्य —ये पाँचतीर्थङ्कर प्रथम वयमे—कुमारत्व काल में प्रव्रजित हुए तथा शेष तीर्थंकर ऋषभनाथ आदि मध्यमवय—यौवन काल में प्रव्रजित हुए।

(ख) णेमी मल्ली वीरो कुमारकालम्मि वासुपुज्जो य।
पासो वि य गहिदतवा सेसजिणा रज्जचरम्मि ॥

—तिलोप० अधि ४। गा ६७०

भगवान नेमीनाथ, मल्लिनाथ, वासुपूज्य, पार्श्वनाथ और महावीर—इन पाँच तीर्थंकरों ने कुमारकाल में और शेष तीर्थंकरों ने राज्य के अंत में तप—(प्रव्रजित) ग्रहण किया।

'३२ प्रथम विहार

'३२'१ दीक्षा के बाद का प्रथम विहार

(क) तओ णं समणे भगवं महावीरे इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हेत्ता 'वोसट्ठकाए चत्तदेहे' दिवसे मुहुत्तसेसे कम्मारं गामं समणुपत्ते।

—आया० श्रु २। अ १५। सू ३५

(ख) मलय टीका—× × × एवमसौ भगवान् प्रतिपन्नचारित्रः समासादित मनःपर्यायज्ञानो ज्ञातखंडादापृच्छ्य स्वजनान् कर्माग्राममगयत्। तथा चाह—

बहिया य नायसंडे आपुच्छित्ताण णायए सव्वे ।
दिवसे मुहुत्तसेसे कमारगामं समणुपत्तो ॥

—आव० मूल भाष्य गा १११

टीका—बहिः कुंडपुरात् ज्ञातखंडे उद्याने आपृच्छ्य ज्ञातकान् सर्वान् यथासन्निहितान् तस्मान्निर्गतः कर्मारग्रामगमनायेति वाक्यशेषः, तत्र च पथद्वयम्—एको जलेनापरः पाल्या, तत्र च भगवान् पाल्या गतवान्, गच्छंश्च दिवसे मुहूर्त्तशेषे कर्मारग्राममनुप्राप्तः, तत्र य प्रतिमायां स्थितः ।

बारह वर्षों तक शरीर की ममता का त्यागकर तथा सार संभाल का त्यागकर श्रमण भगवान महावीर कुंडपुर के ज्ञातृखण्ड उद्यान से बिहार कर एक मुहूर्त दिन शेष रहते कुमार ग्राम पहुँचे । वहाँ दो रास्ते थे—(१) एक जल से (२) दूसरा पाल्य से । भगवान महावीर पाल्य से कर्मार ग्राम पधारे । वहाँ जाकर भगवान प्रतिमा में स्थित हो गये ।

(ग) ततश्च त्रिजगन्नाथः सोदर्यं नंदिवर्धनम् ।
आपप्रच्छेऽन्यतो गंतुं ज्ञातवंश्यान् परानपि ॥१॥
चारित्रारथमारूढं विहारप्रस्थितं प्रभुम् ।
ईर्यासमितिमान् सायं कूर्मारग्राममासदत् ।
नासाग्रन्यन्यस्तनयनः प्रलंबितभुजद्वयः ।
प्रभुः प्रतिमया तत्र तस्थौ स्थाणुरिवस्थिरः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो १,२ पूर्वार्ध १५, उत्तरार्ध १६

दीक्षा लेने के पश्चात भगवान महावीर ने वहाँ से विहार करने के लिए सहोदर बन्धु नंदिवर्धन और अन्य ज्ञातवंश के व्यक्तियों की आज्ञा ली । भगवान चारित्र रूपी रथ में आरूढ होकर विहार कर ईर्यासमिति का ध्यान रखते हुए कुर्मार ग्राम पधारे । वहाँ जाकर नासिका के अग्रभाग ऊपर नेत्र को आरोपित कर दोनों भुजायें लंबी कर स्थाणु की तरह प्रतिमा में स्थित हो गये ।

(घ) नातिमंदं न शीघ्रं च न्यसन् पादं दयार्द्रधीः ।
क्रमादसौ पुरं रम्यं प्राविशत्कूलसंज्ञकम् ॥

—वीरवर्धच० अधि ११ । श्लो ६

न अति मंद और न अति शीघ्र पादविन्यास रखते वे दयार्द्र चित्त महावीर प्रभु क्रम से विचरते हुए कूल नामक रमणीकपुर में पधारे ।

(ख) परमेट्ठि रिसिदु थिउ पडिवज्जिवि संजमु।
× × × ।
मणपज्जय - संजुत्तउ देवदेउ थिर - चित्तउ।
तार-हार पंडुर-घरि, कूलगाम-णामइपुरि ॥

—वड्ढ० संधि १। कड ११

—वड्ढ० संधि २। कड १

वे मुनीन्द्र परमेष्ठी (भगवान महावीर) संयम ग्रहण कर आसीन हुए। देवों के देव भगवान महावीर स्थिर चित्त तथा मनःपर्यव ज्ञान से युक्त होकर उस कूलग्राम नामक पुरी मे पहुँचे।

·३३ भगवान् की प्रथम भिक्षा—साधनाकाल का प्रथम पारणा

·१ प्रथम भिक्षा काल

(क) संवच्छरेण भिक्खा लद्धा उसभेण लोगनाहेण।
सेसेहिं बीयदिवसे लद्धाओ पढमभिक्खाओ ॥३४२।

—सम० पइसम। सू २३०। पृ० १४५

—आव० नि। गा ३४२

मलय टीका—संवत्सरेण भिक्षा ऋषभेन लोकनाथेन—प्रथमतीर्थकृता लब्धा, शेषैः अजितजिनादिभिर्द्वितीयदिवसे प्रथमभिक्षा लब्धा।

भगवान ऋषभ को एक वर्ष बाद प्रथम भिक्षा मिली तथा शेष तीर्थंकर तथा भगवान महावीर को दो दिन के बाद प्रथम भिक्षा मिली।

(ख) मलय टीका—××× तद्दिवसं सामिस्स छट्ठभत्ते पारणगं, ततो भयवं कोल्लागे संनिवेसे भिक्खापविट्ठो घयमहुसंजुत्तेणं परमण्णेणं बहुलेण माहणेण पडिलाभितो। तत्थ पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं। एतदेवाह—

× × ×।

कुल्लाग बहुल छट्ठस्स पारणे पयस वसुहारा॥

—आव०। नि। गा ४६१। पूर्वार्ध

टीका—×××। भगवतोऽपि कोल्लाके सन्निवेशे बहुलो नाम ब्राह्मणः षष्ठस्य—तपोविशेष्य पारणके पायसमुपनीतवान् 'वसुहारे' ति तद्गृहेवसुधारा पतिता, एष गाथाक्षरार्थः।

भगवान महावीर ने प्रथम दो दिन की तपस्या का पारण कोल्लाकसन्निवेश मे बहुल ब्राह्मण के द्वारा प्रदत्त परमान्न—खीर से किया।

·२ भिक्षा की आहारवस्तु—प्रथम पारणे का आहार

(क) उसभस्स प्रथमभिक्खा, खोयरसो आसि लोगणाहस्स।
सेसाणं परमण्णं, अमयरसरसोवमं आसि॥

—सम० । पइसम । सू २१० । पृष्ठ १४५

उसभस्स उपारणए इक्खुरसो आसि लोगनाहस्स।
सेसाणं परमन्नं अमयरसरसोवमं आसि॥

आव० नि । गा ३४३

मलय टीका – ऋषभस्य लोकनाथस्य पारणके इक्षुरस आसीत्, शेषाणामजित-स्वाम्यादीनां परमान्नं—पायसम् अमृतरसेन रसस्योपमा यत्र तदमृतरसरसोपममासीत्।

भगवान ऋषभनाथ ने इक्षुरस से तथा शेष तीर्थ कर तथा भगवान महावीर ने परमान्न से पारण किया।

(ग) स्वामी षष्ठपारणाय कोल्लाकेऽगाग्निवेशने॥ ३४॥
तत्र द्विजातेर्बहुल्लाभिधस्य सदने प्रभुः।
चक्रे सितादिमिश्रेण परमान्नेन पारणम्॥ ३५॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग २ । श्लो० ३४, ३५

(घ) एक्कवरिसेण उसहो उच्छुरसं कुणइ पारणं अवरे।
गोक्खीरे णिप्पण्णं अण्णं बिदियम्मि दिवसम्मि॥

—तिलोप० अधि ४ । गा६७१

भगवाम ऋषभ देव ने एक वर्ष से इक्षुरस का पारणा किया था और इतर तीर्थंकरों ने दूसरे दिन गोक्षीर में निष्पन्न अन्न—खीर का पारणा किया था।

(च) परमान्न विशुद्ध्यास्मै सोदितेष्टार्थ साधनम्।

—उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो ३२१ उत्तरार्ध

(छ) ततस्तस्मै सुपात्राय हिताय दातृदेहिनाम्।
त्रिशुद्धया विधिना भक्त्या क्षीरान्नदानमूर्जितम्।
प्रासुकं मधुरं भूपः सरसं दोषदूरगम्।
तपोवृद्धिकरं शुद्धं ददौ क्षुत्तृड् विनाशकम्॥

—वीरवर्धच० अधि १३ । श्लो० २२, २३

धर्म बुद्धि राजा ने बीर प्रभु जैसे उत्तम सुपात्र के लिये दाताजनों के हितार्थ मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक विधि से भक्ति के साथ उत्तम प्रासुक, मधुर, सरस, निर्दोष, तप की वृद्धि करने वाला और क्षुधा-तृष्णा का विनाशक क्षीरान्न का उत्कृष्ट दान दिया।

·३ भिक्षा का स्थान

·१ प्रथम (पारण) का स्थान

(क) हत्थिणउरं × × × × × ×।
× × × कोल्लयगामो।

—आव० नि गा ३२३ से २५

मलय टीका—भगवत ऋषभस्वामिनः प्रथमभिक्षास्थानं हस्तिनागपुरम् ××× वर्द्धमानस्वामिनः कोल्लाकग्रामः।

(ख) स्वामी षष्ठपारणाय कोल्लाकेऽगान्निवेशने।

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग २ । श्लो ३४ उत्तरार्ध

भगवान महावीर को प्रथम भिक्षा कोल्लाग्राम में प्राप्त हुई।

(ग) मणपज्जय-संजुत्तउ देवदेउ थिर-चित्तउ।
तार-हार-पडुर-घरि कूल-गाम-णामइ पुरि॥
भिक्खहि परमेसरु पइसरइ।
घरि घरि सुसमंजसु संचरइ॥
मणपज्जय - णयणें परियरिउ।
कूलहु घर - पंगणि अवयरिउ॥
रायहु पियंगु - वण्णुज्जलहु।
पणवंतहु मउलिय - करयलहु॥
थिउ भुवण - णाहु दिण्णउ असणु।
णव - कोडि-सुद्धु मुणिंदिव्वसणु॥
त लेप्पिणु किर जा णीसरिउ।
ता भूमि - भाउ रयणहिं भरिउ॥
देवहि जयतूरइँ ताडियइँ।
भो चारु दाणु उग्घोसियउ।
अइ - सुरहिउ पाणिउ वरसियउ॥
मंदाणिलु वूढउ सीयलउ।
णिउ णर-वंदिउ बहु - गुणणिलउ॥

—वीरजि० संधि २। कड १

देवो के देव भगवान महावीर स्थिर चित्त तथा मनःपर्यवज्ञान से युक्त होकर उस कुल ग्राम नामक पुरी मे पहुँचे जहाँ के निवास गृह, तारों और आहारों के समान उज्ज्वल दृष्टि-गोचर होते थे। वहां उन परमेश्वर ने भिक्षा के लिए प्रवेश किया और बडे साम्य-भाव से एक घर से दूसरे घर की ओर गमन करने लगे। वे अपने मनःपर्यय ज्ञानरूपी नेत्र से ही अपने आस-पास के लोगों के मन को जान रहे थे। वे वहाँ के राजा कूल के गृह प्रांगण मे अवतरित हुए। उस प्रियंगु वर्ण से उज्ज्वल नरेश ने हाथ जोडकर उन्हें प्रणाम किया। वे भुवननाथ वहाँ ठहर गये और राजा ने उन्हें मुनि के योग्य नव कोटि शुद्ध आहार दिया।

(घ) नातिमंदं न शीघ्रं च न्यसन् पादं दयार्द्रधीः।
क्रमादसौ पुरं रम्यं प्राविशत्कूलसंज्ञकम्
तत्र कूलाभिधो राजा वीक्ष्य पात्रोत्तमं जिनम्।
निधानमिव दुष्प्राप्यं प्राप्यानन्दं परं हृदि ॥७॥

त्रिःपरीत्य प्रणम्याशु धृत्वाङ्गपंचकं भुवि।
तिष्ठतिष्ठ मुदेत्युक्त्वा प्रतिजग्राह धर्मधीः ॥८॥
ततस्तस्मै सुपात्राय हिताय दातृदेहिनाम्।
त्रिशुद्ध्या विधिना भक्त्या क्षीरान्नदानमूर्जितम् ॥ २२ ॥

प्रासुकं मधुरं भूपः सरसं दोषदूरगम्।
तपोवृद्धिकरं शुद्धं ददौ क्षुतृड-विनाशकम ॥२३॥

—वीरवर्ध० अधि १३। श्लो ६, ७, ८, २२, २३

न अति मद, और न अति शीघ्र पादविन्यास रखते वे दयार्द्र चित्त महावीर प्रभु क्रम से विचरते हुए कूल नामक रमणीक पुर मे पहुँचे। वहाँ धर्मबुधि राजा ने वीर प्रभु को क्षीरान्न का उत्कृष्ट दान दिया।

·४ प्रथम भिक्षादाता

सेज्जंस बंभदत्ते सुरेंददत्ते य इंददत्ते य।
××× ×××।
××× बहुले य बोद्धवे ॥

—आव० नि०। गा० ३२७ (पूर्वार्ध), ३२६ (शेषाक्षर)

मलय टीका—भगवते ॠषभस्वामिने प्रथमभिक्षां श्रेयांसः—श्रेयांसनामा दत्तवान्। ××× वर्द्धमानस्वामिने बहुलः।

भगवान ऋषभ को प्रथम भिक्षा श्रेयांस ने तथा भगवान महावीर को प्रथम भिक्षा बहुल ब्राह्मण ने दी। भिक्षा के प्रतिलाभित के समय विशुद्ध लेश्या थी।

(ख) ततो बीयदिवसे छट्ठपारणए कोल्लाए सन्निवेसे घतमधुसंजुत्तेणं परमन्नेणं बलेणमाहणेणं पडिलाभितो।

—आव० चू पूर्वभाग पृ० २७०

भगवान दीक्षा के दूसरे दिन कर्मार ग्राम से विहार कर कोल्लागसन्निवेश पहुँचे। वहाँ बहुल नाम का ब्राह्मण रहता था। भगवान उसके घर गये। उसने भगवान को घृत-शर्करायुक्त परमान्न (खीर) का भोजन दिया।

(ग) एएसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं पढमभिक्खादया होत्था, तंजहा—

सेज्जंसे × × × × × ×।
× × × ×।
× × × धन्ने बहुले य अणुपुव्वीए।
एते विसुद्धलेस्सा, जिणवरभत्तीए पंजलिउडा य।
तं कालं तं समयं पडिलाभेई जिणवरिंदे॥

—सम० पइसम० सु २२६। पृ० ६४४, ४५

(घ) तत्र द्विजातेर्बहुलाभिधस्य सदने प्रभुः।
चक्रे सिताज्यमिश्रेण परमान्नेन पारणम्॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो० ३५

(च) अथ भट्टारकोऽप्यस्मादगात्कायस्थितिप्रति।
कुलग्रामपुरीं श्रीमन्व्योमगामिपुरोपमम्॥ ३१८॥
कूलनाम महीपालो दृष्ट्वातं भक्तिभावितः।
प्रियंगुकुसुमांगाभस्त्रिपरीत्यःप्रदक्षिणम्॥३१६॥
गंधादिभिर्विभूष्यैतत्पादोपात्तमहीतलम्।
परमान्नं विशुद्ध्यास्मै सोऽदितेष्टार्थसाधनम्॥ ३२१॥

—उत्तपु० पर्व ७४। श्लो ३१८ से ३१६, ३२१

पारणा के दिन वे भट्टारक महावीर स्वामी आहार के लिये वन से निकले और विद्याधरों के नगर के समान सुशोभित कूलग्राम नगरी में पधारे। वहाँ प्रियंगु के फूल के समान

कांतिधारी कूल नामक राजा ने भक्ति-भाव से युक्त हो उनके दर्शन किये, तीन प्रदक्षिणाएँ दी, चरणों में सिर झुकाकर नमस्कार किया और घर पर आयी हुई निधि के समान माना। उत्तम व्रतों को धारण करने वाले उन भगवान को उस राजा ने श्रेष्ठ स्थान पर बैठाया। अर्घ आदि के द्वारा उनकी पूजा की, उनके चरणों के समीपवर्ती भूतल को गंध आदिक से विभूषित किया और उन्हें मन, वचन, काय की शुद्धि के साथ इष्टार्थ को सिद्ध करने वाला परमान्न (खीर का आहार) समर्पण किया।

(छ) नातिमंदं न शीघ्रं च न्यसन् पादं दयार्द्रधीः।
क्रमादसौ पुरं रम्यं प्राविशत्कूलसंज्ञकम्।
तत्र कूलाभिधो राजा वीक्ष्य पात्रोत्तमं जिनम्।
निधानमिव दुष्प्राप्यं प्राप्यानन्दं परं हृदि॥

× × ×

त्रिशुद्ध्या विधिना भक्त्या क्षीरान्नदानमूर्जितम्।
प्रासुकं मधुरं भूपः सरसं दोषदूरगम्।
× × × ददौ क्षुत्तृड्विनाशकम्॥

—वीरवर्धच० अधि १३। श्लो ६, ७, २२ उत्तरार्ध, २३

न अति मंद और न अति शीघ्र पादविन्यास रखते वे दयार्द्र चित्त महावीर प्रभु क्रम से विचरते हुए कूल नामक पुर में पधारे। वहाँ पर कूल नामक धर्मबुद्धि राजा ने सर्व पात्रों में श्रेष्ठ वीर जिनको देखकर दुष्प्राप्य निधान को पाने के समान हृदय में परम आनन्द को प्राप्त हुआ।

राजा ने मन-वचन काय की शुद्धिपूर्वक विधि से भक्ति के साथ उत्तम प्रासुक, मधुर, सरस, निर्दोष, क्षुधातृषा का विनाशक क्षीरान्न का उत्कृष्ट दान दिया।

(ज) अवरहिं दिणे जिणु मज्झन्न-यालि।
दस-दिसि पसरिय रवि-किरण जालि॥
कूलउरि दयालंकरिय-चित्तु
सम्मइ पइट्ठु भोयण-णिमित्तु।

घत्ता—णिउ तहो पुरहो मोहिय-सुरहो णामेंकूलु भणिज्जइ।
अणुवय-सहिउ संसय रहिउ जो पाढयहिं पढिज्जइ॥

वड्ढ़च० संधि ९। कड २०

विहन्नउ॔ तेण करेविणु माणु
जिणिंदहो भत्तिए भोयण - दाणु।

—वड्ढव० संधि ६ । कड २१

दीक्षा के दूसरे दिन मध्याह्न काल में जब सूर्य-किरणें दसों दिशाओं में फैल रही थीं, तभी दया से अलंकृत चित्तवाले वे सम्मति जिनेंद्र भोजन-पारण के निमित्त कुलपुर में प्रविष्ट हुए।

देवों को भी मोहित करने वाले उस पुर के नृपका नाम 'कूल' कहा जाता था। जो अणुव्रतों का पालक तत्त्वों के प्रति संशयरहित था तथा जिसने पाठकों के पास पढ़ा था।

उस राजा कूल ने विनयपूर्वक सम्मान कर जिनेन्द्र महावीर को भक्ति सहित आहार-दान दिया।

(ञ) भिक्खहि परमेसरु पइसरइ।
घरि घरि सुसमंजसु संचरइ॥
मणपज्जय - णयणें परियरिउ।
कूलहु घर - पंगणि अवयरिउ॥
रायहु पियंगु - वण्णुज्जलहु।
पणवंतहु मउलिय - करयलहु॥
थिउ भुवण - णाहु दिण्णउ असणु।
णव - कोडि-सुद्धु मुणि दिव्वसणु॥

—वीरजि० संधि २। कड १

भगवान महावीर ने भिक्षा के लिए कूलग्राम में प्रवेश किया और बड़े साम्य-भाव से एक घर से दूसरे घर की ओर गमन करने लगे। वे अपने मन:पर्यय ज्ञानरूपी नेत्र से ही अपने आसपास के लोगों के मन को जान रहे थे। वे वहाँ के राजा कूल के गृह प्रांगण में अवतरित हुए। उस प्रियगु वर्ण के उज्ज्वल नरेश ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। वे भुवननाथ वहाँ ठहर गये और राजा ने उन्हें मुनि के योग्य नवकोटि शुद्ध आहार दिया।

'४ प्रथम भिक्षादाता के समय सोनैयाँ आदि की वृष्टि

(क) विहमउ॔ तेण करेविणु माणु
जिणिंदहो भत्तिए भोयण-दाणु॥
× × ×।
णहाउ तओ पडिया वसुधार
पसूणइँ रिद्धि जुवा मणहार।

पवज्जिउ दुंदुहि घोर - णिणाउ
सुअंधु समुच्छलिओ वर-वाउ।
पघोसिउ देवेहिं साहुस साहु
सवंधउ तुट्ठु मणे महि - णाहु

वड्ढच० सन्धि ६। कड २१

राजा कूल ने विनयपूर्वक सम्मान कर जिनेन्द्र महावीर को भक्ति सहित आहार-दान दिया। उसी समय आकाश से युवाजनों के मन को हरने वाली ऋद्धि पूर्ण रत्नवृष्टि तथा पुष्प वृष्टि पड़ने लगी। गम्भीर निनाद करने वाले दुन्दुभी बाजे बजने लगे। मन्द-सुगन्धिपूर्ण वायु बहने लगी। देवों ने साधु-साधु का जय घोष किया। कूल नामक वह नृप बन्धु-बांधवों सहित मन मे बड़ा सन्तुष्ट हुआ।

(ख) सव्वाण पारणदिणे णिवडइ वररयणवरिसमंबरदो।
पणघणहददहलक्खं जेट्ठं अवरं सहस्सभागं च ॥६७२॥
दत्तिविसोहिविसेसोब्भेदणिमित्तं खु रयणमल्लीए।
वायंति दुंदुहीओ देवा जलदेहि अंतरिदा ॥ ६७३ ॥

—तिलोप० अधि ४। गा ६७२-३

पारणा के दिन सब दाताओं के यहाँ आकाश से उत्तम रत्नों की वर्षा होती है जिसमे अधिक से अधिक पाँच के घन से गुणित दस लाख प्रमाण अर्थात् साढे बारह करोड़ और कम से कम इसके हजारवें भागप्रमाण रत्न बरसते है। दान-विशुद्धि की विशेषता को प्रकट करने के लिये देव मेघों से अन्तर्हित होते हुए रत्न वृष्टिपूर्वक दुन्दुभी बाजों को बजाते है।

(ग) पसरइ दाणुग्घोसो वादि सुयंधो सुसीयलो पवणो।
दिव्वकुसुमेसु गयणं वरिसइ इय पंच चोज्जाणि।।

—तिलोप० अधि ४। गा ६७४

उस समय दान का उद्घोष अर्थात् 'जय जय' शब्द फैलता है, सुगंधित एवं शीतल वायु चलती है और आकाश से दिव्य फूलों की वर्षा होती है। इस तरह ये पंचाश्चर्य होते हैं।

(घ) तं लेप्पिणु किर जा णीसरिउ।
ता भूमि - भाउ रयणहिं भरिउ ॥
देवहि जयतूरइँ ताडियइँ।
गयणयलहु फुल्लइँ पाडियइँ ॥
× × ×
अइ - सुरहिउ पाणिउ वरसियउ ॥

—वीरजि० संधि २। कड १

जब आहार लेकर भगवान बाहर निकले तब जिस भूमि-भाग पर उन्होंने आहार किया था वह रत्नों से परिपूर्ण हो गया। देवों ने जयध्वनि करते हुए तूर्य बजाये तथा आकाश से फूल बरसाये। इस समय अति सुगंधयुक्त पानी बरसा।

(च) तदा तद्दानतस्तुष्टा निर्जराः शुभयोगतः।
राजाङ्गणे नभोभागाद्रत्नवृष्टिं पराव्यधुः॥ २४॥
अनर्घ्यमणिकोटीनां स्थूलैर्धाराव्रजैर्घनैः।
अखण्डैः पुष्पगन्धोदकमिश्रैश्च तमोपहैः॥ २५॥

—वीरवर्धच० अधि १३। श्लो २४-२५

उस समय उस दान से सन्तुष्ट हुए देवों ने पुण्ययोग से राजा के अगण मे अन्धकार-नाशक अनमोल करोड़ों मणियों की स्थूल, अखण्ड, सघन, धारा समूहों से, फूलों की सुगन्धि से मिश्रित जल वर्षा के साथ आकाश से भारी रत्नवर्षा की।

(छ) आनुषंगिकमेतत्ते फलं भावि महत्तरं।
इति वक्तुमिवाश्चर्यपंचकं तद्गृहेऽभवत्॥

—उत्तपु० पर्व ७४। श्लो ३२२

यह तो तुम्हारे दान का आनुषंगिक फल है परन्तु उसका होनहार फल बहुत बड़ा है। यही कहने के लिए मानो उसके घर पंचाश्चर्यों की वर्षा हुई।

(ज) सव्वेसिं पि जिणाणं, जहियं लद्धाओ पढमभिक्खातो।
तहियं वसुधाराओ, शरीरमेत्तीओ वुट्ठाओ॥

—सम० पइसम सू २३०। पृ० १४५

(झ) सव्वेहिंपि जिणेहिं जहियं लद्धाउ पढमभिक्खाउ।
तहियंवसुहारातो वुट्ठाओ पुप्फवुट्ठोतो॥ ३३१॥
अद्धत्तेरसकोडी उक्कोसा तत्थ होइ वसुहारा।
अद्धतेरसलक्खा जहन्निया होइ वसुहारा॥ ३३२॥

—आव० नि गा ३३१, ३३२

मलयटीका — सर्वैरपिजिनैः ऋषभादिभिर्यत्र प्रथमभिक्षा लब्धास्तत्र वसुधारा — हिरण्यप्रपातरूपा वृष्टा पुष्पवृष्टयश्च वृष्टाः। साम्प्रतं वसुधाराया जघन्यत उत्कर्षतश्च परिणाममाह —

अर्द्ध त्रयोदशं यासां ता अर्द्धत्रयोदशाः, सार्द्धा द्वादश इत्यर्थः, हिरण्यानां कोटय उत्कृष्टाः तत्र—प्रथमपारणकस्थाने भवति वसुधारा, अर्द्धत्रयोदशानां हिरण्यानां लक्षाणि जघन्या भवति वसुधारा।

भगवान ऋषभनाथ से महावीर तक सब जिनेश्वरों को—जिन्होंने प्रथम भिक्षा दी—उनके स्थान पर शरीर प्रमाण सोनैयों की तथा पुष्पवृष्टि हुई। कहा जाता है कि—जिनेश्वरों के प्रथम पारणक स्थान में जघन्यतः साढ़े बारह लाख तथा उत्कृष्टतः साढ़े बारह करोड़ सोनैयों की वृष्टि होती है। वसुधारादि पाँच दिव्य प्रगट किये।

(ञ) वसुधाराप्रभृतीनि द्विजातेस्तस्य सद्मनि।
पंचदिव्यान्याविरासन् कृतानि दिविषद्गणैः॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ३६

(ट) घुट्ठं च अहोदाणं दिव्वाणि य आहयाणि तूराणि।
देवा य संनिवइया वसुहारा चेव वुट्ठा य॥

—आव० नि गा ३४४

मलय टीका—दैवैराकाशस्थितैर्घुष्टं यथा अहो दानमिति, अहो शब्दो विस्मये, अहो दानमहो दानम्, अस्यायमर्थः—एवं दीयते, एवं हि दत्तं भवतीति, तथा दिव्यानि तूराणि त्रिदशैराहतानि, देवाश्च तत्रैव सन्निपतिताः, वसुधारानिपातार्थमाकाशे जृम्भका देवाः समागताः, ततो वसुधारा वृष्टा, द्रव्यवृष्टिरभूदित्यर्थः।

देवों द्वारा दान की प्रशंसा हुई। देवों द्वारा प्रथम भिक्षा के समय धन वर्षा हुई।

·३४ सचेलक-अचेलक

१ देवदूष्य वस्त्र का परित्याग

(क) संवच्छरं साहियं मासं, जंणरिक्कासिवत्थं भगवं।
अचेलए ततो चाई, तं वोसज्ज वत्थमणगारे॥

आया० श्रु० १ । अ ९ । उ २ । गा ४ पृ० ७२

टीका—××× । कियन्मात्रं कालं तत् देवदूष्यं भगवतिस्थितमित्येतद्दर्शयितुमाह संवत्सर इत्यादिकं रूपकं तदिंद्रोपाहितं वस्त्रं संवत्सरमेकं साधिकञ्च मासं जंणरिक्कासित्ति यत्र त्यक्तवान् भगवांस्तत् स्थितकल्प इति कृत्वा तावत ऊर्ध्वं तद्वस्त्रत्यागात् त्यागी व्युतसृज्य च तदनगारो भगवान चेलो भूदिति तच्च सुवर्णबालुकानदीपुराहृतकंटकालग्नं धिग्जातिनागृहीतमिति। ×××।

(ख) समणे भगवं महावीरे संवच्छरं साहियं मासं जाव चीवरधारी होत्था, तेण परं अचेलेपाणिपडिग्गहए।

—कप्प० सू ११५

इन्द्रप्रदत्त वस्त्र का भगवान् ने एक वर्ष, साधिक एक मास तक त्याग नहीं किया। तत्पश्चात् उस देवदुष्य वस्त्र का व्युत्सर्ग कर –छोड़कर अनगार भगवान् अचेलक-वस्त्र-रहित हो गये।

टीका - एक वर्ष और साधिक एक मास तक स्थितकल्प (जीताचार) समझकर भगवान ने इन्द्रप्रदत्त वस्त्र को धारण किया, उसका परित्याग नहीं किया। उसके पश्चात् उस देव-दुष्य वस्त्र का परित्याग कर अनगार भगवान अचेलक-वस्त्ररहित हो गये।

भगवान के वस्त्र त्याग कर अचेलक होने की घटना सुवर्णवालुका नदी के किनारे पर [illegible] थी। देवदुष्य वस्त्र नदी के (पुर) तट पर कांटों मे (अवलग्न) अटक गया और उसे धिग् जाति के किसी व्यक्ति ने ग्रहण कर लिया।

अब प्रश्न है—क्या वस्त्र अपने आप गिर गया था कांटों मे अटक कर गिर गया। यदि नदी के किनारे अपने आप गिर गया तो पानी के बहाव मे आकर बह गया और कहीं तट स्थित कटकों मे फँस गया।

(ग ××× । तं च भगवया तेरस मासे आहाभावेण धरियं, ततो वोसिरियं, ततो सामी अचेलए विहरइ।

—आव० नि गा ४६५। टीका

श्रमण भगवान महावीर साधिक एक वर्ष सचेलक (वस्त्रधारी) थे। इसके बाद अचेलक हो गये।

(घ) ततश्च त्रिजगन्नाथः सोदर्यं नंदिवर्धनम।
आपप्रच्छेऽन्यतो गन्तुं ज्ञातवंश्यान् परानपि ॥१॥
चारित्ररथमारूढं विहारप्रस्थितं प्रभुम्।
वृद्धः पितृसुहृद्विप्रः सोमो नत्वेत्यभाषत ॥२॥
स्वामिन्! संवत्सरदानमदाः स्वान्यानपेक्षया।
अदरिद्रं जगज्जज्ञे विना मां मंदभाग्यकम् ॥३॥
अहं हि जन्मतो नाथ! महादारिद्र्यविद्रुतः।
क्वचिद्प्युत्तरादानं मुखमोटनकं क्वचित् ॥
धनाशया तदाप्युच्चैर्बहिर्भ्रमत एव मे।
अजानतो वात्सरिकं त्वद्दानं निष्फलं गतम् ॥

संप्रत्यपि कृपां कुर्वन् जगन्नाथ! प्रयच्छ मे।
निर्भर्त्स्य प्रेषितः पत्न्या स्वामिन्नस्मि त्वदंतिके।
स्वाम्यप्युवाच कारुण्यात्त्यक्तसंगोऽस्मि संप्रति।
तथाप्यंसस्थितस्यास्य वाससोऽर्धं गृहाण भोः।
सोऽपि वासोऽर्धमादाय हृष्टो निजगृहं ययौ।
दशाबंधकृते तुन्नवायस्यादर्शयच्चतत्।।
त्वया क्वेदं प्राप्तमिति तुन्नवायेन भाषितः।
शशंस श्रीमहावीरादवाप्तमिति द्विजः॥
बभाषे तुन्नवायस्तं द्वितीयमपि वाससः।
अस्यार्धमानय मुनेस्तस्यानुपदमभ्यट॥
मुनेः पर्यटतस्तस्य लगित्वा कंटकादिषु।
तत्पतिष्यति वासोऽर्धं सोऽनीहो न ग्रहीष्यति॥
तदादाऽया त्रानयेस्त्वं योजयित्वा दले उभे।
अहं पुर्णीकरिष्यामि शुक्लपक्ष इवोडुपम्॥
दीनारलक्षं मूल्येऽस्य भविष्यति विभज्यतत्।
अर्धमर्धं ग्रहीष्यावो भ्रातरौ सोदराविव॥
आमेत्युक्त्वा प्रभुमगात् स द्विजः प्रचुरर्प्यथ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो १ से १४, १५ पूर्वार्ध

(ख)××× । चारित्रप्रतिपत्तिकाले च स्वभावतो भुवनभूषणस्य भगवतो निर्भूषणस्य सत इंद्रो देवदूष्यं वस्त्रमुपनीतवान्, अत्रान्तरे कथानकम् – एगेण देवदूसणं पव्वइए, तंजाहे अंसेकरेइ एत्थंतरा पित्तवयंसोधिज्जाइतो उवट्ठितो, सो य दाणकाले कहिपि य गतेल्लतो, पच्छा आगतो भज्जाए अंबाडितो सामिणा एवं दाणं दत्तं· तुमं पुण कहिंचि हिंडसि, जइपुण एत्थंतरेवि लभेज्जासि, ततो सो आगतो भणइ, जहा मम सामि! न किंचि तुब्भेहिं दिन्नं, इयाणिंपि देहित्ति, ताहे सामिणा तस्स देवदूसस्स अद्धं दिन्नं, अन्नं सव्वं परिक्खत्तंति नत्थि, तेण तुन्नागस्स उवणीयं, जहा एयस्स दसिया बंधाहि, तेण पुच्छितो—इमं कतो लद्धं? सो भणइ—भगवतादिन्नं, तुन्नागो भणइ—तंपि से अद्धं आणेहि जया पडिहिइ भयवतो अंसातो, तो णं अहं तुन्नामि ताहेलक्खं मोल्लं भविस्सइत्ति, ता तुज्झवि अद्धं मज्झवि अद्धं, पडिवन्नं, ताहे पओलग्गितो, सेसमुवरि भणीहामि।

—आव० मूल भाष्य गा १०६ । मलय टीका

चारित्र प्रतिपत्तिकाल में स्वभावतः भगवान वस्त्र रहित हो गये थे, इन्द्र ने देवदूष्य वस्त्र उनके शरीर पर रखा अर्थात् भगवान एक देवदूष्य वस्त्र को ग्रहण कर प्रव्रजित हुए।

प्रव्रजित होने के बाद जब भगवान चारित्र रूपी रथ में आरूढ़ होकर विहार करने के लिए चले तब उनके पिता का मित्र सोम नामक एक वृद्ध ब्राह्मण भगवान के पास आया, आकर नमस्कार कर बोला—

हे स्वामिन्! आपने स्वयं तथा अन्य की अपेक्षा बिना सांवत्सरिक दान अर्पण किया उससे सारा जगत दारिद्र बिना हो गया परन्तु मैं एक भाग्यहीन दरिद्री वंचित रह गया हूँ। हे नाथ! मैं जन्म सेही महादरिद्री हूँ। और दूसरों की प्रार्थना करने के लिए अहर्निश ग्रामानुग्राम भ्रमण करता रहता हूँ। कोई स्थान मे मेरी निर्भत्सना होती है, कोई स्थान मे उत्तर नहीं मिलता है, कोई स्थान में मुख मोड़ लेते है। इन सब को मैं सहन करता हूँ।

हे भगवान्! आप जिस समय सांवत्सरिक दान देते थे उस समय मैं धन की इच्छा से बाहर भ्रमण करता था, फलस्वरूप मुझे आपके द्वारा प्रदत्त दान की खबर नही मालूम हुई और आपका दान मेरे लिए निष्फल हो गया अतः हे प्रभो! अब भी हमारे पर कृपाकर के मुझे दान अर्पण करो क्योंकि हमारी पत्नी ने मेरा तिरस्कार कर मुझे आपके पास भेजा है।

प्रत्युत्तर मे भगवान महावीर करुणा कर बोले। हे विप्र। अभी मैं नि संग हो गया हूँ। तथापि मेरे कंधे पर यह (देवदूष्य) वस्त्र है उसका अर्ध भाग तुम ले लो। फलस्वरूप वस्त्र का आधाभाग लेकर विप्र अपने घर गया।

तुन्नवाय के पास उपरोक्त वस्त्र दस्साबंध करने के लिए विप्र लाया। तुन्नवाय ने पूछा कि विप्र! तुमने यह वस्त्र कहाँ से प्राप्त किया। विप्र बोला—भगवान् महावीर ने दिया है। फिर तुन्नवाय ने विप्र से कहा कि तुम वापस जाओ और इसका दूसरा अर्द्ध भाग मुनि से प्राप्त करने के लिए उनके अगल-बगल मे फिरो। मुनि पर्यटन करते हुए जब कभी वस्त्र कंटकादि मे अटक जायेगा तब वह अर्द्ध वस्त्र मुनि के कंधे से पड़ जायेगा। चूंकि पड़े हुए वस्त्र को मुनि फिर ग्रहण नहीं करेंगे—फलस्वरूप तुम उस अर्द्ध वस्त्र को ग्रहण कर आ जाना।

फिर उन दोनों अर्द्ध भाग को जोड़कर मैं तुमको वह वस्त्र शुक्लपक्ष के चंद्र की तरह एक करके दूंगा तब उसका मूल एक लक्ष दीनार होगा। सहोदर बन्धु की तरह अपने दोनों आधा-आधा हिस्सा करलेंगे।

तुन्नवाय के कथनानुसार विप्र भगवान के पास वापस आया........।

(छ) दक्षिणादुत्तरे यातश्चावालेऽथालगत्प्रभोः।
कंटकेदूष्यार्धं सुवर्णवालुका तटे।
किञ्चिद्गत्वा प्रभुर्मा भूदभ्रष्टमस्थंडिलेह्यदः।
इति तद्वीक्ष्य वस्त्रार्धं गंतुं प्रववृते ततः॥
पृष्ठलग्नस्त्रयोदशमास्यन्ते ब्राह्मणस्तुसः।
तद्वस्त्रार्धमुपादाय वंदित्वा च प्रभुं ययौ॥
तुन्नवायस्य तस्यै च हृष्टो विप्रस्तदार्पयत्।
सोऽपि ते देवदूष्यार्धे अयोजयदसंधिवत्॥
दीनारलक्षं तन्मूल्यं बंध इवविभज्य तौ।
अर्धमर्धं जगृहतुस्तुन्नवायोद्विजश्च सः॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो २२० से २२४

(ज) मलय टीका—ताहे सामी दाहिणचावालातो संनिवेसातो उत्तराचावालं वच्चइ, तत्थ सुवण्णवालुयाए नदीए पुलिणे कंटियाए त वत्थं विलग्गं, सामी गतो, पुणो अवलोइयं, किं निमित्तं ? केइ भणंति—जहा ममत्तीए, अवरे भणंति—किं थंडिल्ले पडियं अथंडिल्ले वा ? अण्णे भणंति—सहसाकारेणं, केइ पुण एव सुलभं वत्थपत्तं सिस्साणंभविस्सइ दुलहं वा ? एयनिमित्तमवलोइयं, तं च भगवया तेरसमासे अहाभावेणधरियं, ततो वोसिरियं, ततो सामी अचेलए विहरइ, तं च तेण पितवय-सधिज्जाइ एण गहियं, तुण्णगस्स उवणीयं, सयसहस्स मोल्लं जायं, इमस्सवि पण्णासं सहस्साइं पण्णासं सहस्साइं जायाइं, अमुमेवार्थमाह—

'तइयमवच्चं भज्जा कहए नाहं ततो पितवयंसो।
दक्खिणचावालसुवन्नवालुया कंटए वत्थं॥४६६॥

टीका तृतीयं पुनः पदमवाच्यं तत्तस्यैव भार्या कथयिष्यति, नाहं, सा कतिवती, ततो भगवान् निर्गतः तत पितृवयस्यो दक्षिणचावालात् सन्निवेशा-दुत्तरचावालं प्रति प्रस्थि तस्य भगवतो वस्त्र सुवर्णवालुकाया नद्याः पुलिने कंटके लग्नं गृहीतवान्।

—आव० नि० गा० ४६५।४६६। टीका

जब भगवान महावीर दक्षिण तरफ के चावाल ग्राम से उत्तर तरफ के चावाल ग्राम की ओर जा रहे थे, तब सुवर्णवालुकानदी के तट पर उनका अर्ध देवदूष्य वस्त्र कांटों में अटक गया।

पूर्व कथित ब्राह्मण –(पिता का मित्र सोम ब्राह्मण) जो भगवान महावीर के पीछे-पीछे चलता था तेरह महिने के बाद उस अर्ध वस्त्र को लेकर, भगवान् को वंदन कर स्वयं के ग्राम की ओर प्रस्थान किया। वस्त्र को लेकर तुन्नवाय के पास गया। तुन्नवाय ने दोनों अर्धवस्त्र को जोड़ दिया। बिक्री करने पर एक लक्ष दीनार मिली। दोनों ने भाई की तरह अर्ध–अर्ध भाग किया।

(झ) णो चेविमेण वत्थेण, पिहिस्सामि तंसि हेमंते।
से पारए आवकहाए, एवं खु अणुधम्मियं तस्स।

- आया० श्रु १। अ ९। उ १। गा० २

इस वस्त्र के द्वारा उस हेमन्त ऋतु मे अपने अंगों को ढकूंगा इस भाव से भगवान् ने उस वस्त्र को धारण नहीं किया था क्योंकि वे जीवन भर के लिए सांसारिक समस्त पदार्थों से पार हो चुके थे अर्थात् उनका त्याग कर चुके थे। किन्तु इसको यानी देवदूष्य वस्त्र को धारण करना भगवान् के लिए आनुगामिक यानी पूर्व तीर्थंकरों द्वारा आचरण किया हुआ कार्य था।

(ञ) सिसिरंसि अद्धपडिवण्णे, तं वोसिज्ज वत्थमणगारे।
पसारित्तु बाहुं परिक्कमे, णो अवलंबियाण खंधंसि।

—आया० श्रु १। अ ९। उ १। गा २२

अनगार भगवान् महावीर स्वामी शिशिर ऋतु के आरम्भ मे ही उस देवदूष्य वस्त्र को त्याग कर भुजाओं को फैलाकर चलते थे किन्तु शीत से पीड़ित होकर भुजाओं को सकुचित कर तथा कन्धों का अवलम्बन लेकर नहीं चलते थे।

(ट) णो सेवइ य परवत्थं।

—आया० श्रु १। अ ९। उ १। गा १९। पूर्वार्ध

भगवान् उत्तम वस्त्र अथवा दूसरे के वस्त्र का सेवन नहीं करते थे।

·१५ वर्धमान के अभिग्रह।

·१ प्रथम अभिग्रह—दीक्षा के दिन का

(क) तओ णं समणे भगवं महावीरे पव्वइते समाणे मित्त-णाति-सयण-संबंधि-वग्गं पडिविसज्जेति, पडिविसज्जेत्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ—"बारस-वासाइं वोसट्ठकाए चत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति, तंजहा—दिव्वा वा, माणुसा वा, तेरिच्छिया वा, ते सव्वे उवसग्गे समुप्पण्णे समाणे 'अणाइले अव्वहिते

अदीणमाणसे तिविहमणवयणकायगुत्ते सम्मं सहिस्सामि खम्मिस्सामि अहिया सइस्सामि।

एवं विहरमाणस्स जे केइ उवसग्गा समुपज्जिंसु—दिव्वा वा माणुसा वा तेरिच्छिया वा, तेसव्वे उवसग्गे समुप्पन्ने समाणे अणाइले अव्वहिए अदीणमाणसे तिविहमणवयणकायगुत्ते सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ।

—आया० श्रु २। अ १५। सू १४, ३७। पृ० २४०

(ख) समणे भगवं महावीरे साइरेगाइं दुवालसवासाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उपज्जंति, तंजहा—दिव्वा वा माणुस्सा वा तिरिक्खजोणिया वा अणुलोमा वा पडिलोमा वा ते उप्पन्ने सम्मं सहइखमइ तितिक्खइ अहियासेइ।

—कप्प० सू ११६

दीक्षित हुए श्रमण भगवान महावीर ने मित्रों एवं ज्ञाति जनों को तथा स्वजनों और सम्बन्धी जनों को विसर्जित करके इस प्रकार का अभिग्रह ग्रहण किया—"बारह वर्षोंतक शरीर की ममता त्याग कर तथा सार-संभाल का त्यागकर विचरते हुए मेरे ऊपर जो भी देवों, मनुष्यों तथा तिर्यचों द्वारा कृत उपसर्ग आयेंगे, उन सब उपसर्गों के उत्पन्न होने पर मैं उन्हें सम्यक् प्रकार से सहन करूंगा सहन करने में समर्थ रहूँगा। लेश मात्र भी चलायमान हुए बिना सहन करूंगा।

इस प्रकार विचरते हुए भगवान महावीर को जो कोई देव, मनुष्य या तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग उत्पन्न हुए, उन सब उत्पन्न हुए उपसर्गों को अनाकुल, अव्यथित तथा अदीन मन से मन, वचन, कायकी त्रिविध गुप्ति के साथ उन्होंने सहन किया, सबको सहन करने में समर्थ हुए और लेशमात्र भी विचलित हुए बिना सहन किया।

·२ प्रथम चतुर्मास के प्रारंभ अर्द्धमास में—

दूइज्जंतकाग्राम में—मोराक्कवसन्निवेश में

(क) ××× ताहे सामी अट्ठउउबद्धिए मासे विहरिता वासावासे उवगो। तंचेवं दूइज्जंतगगामं एइ, तत्थेगंमि उमढे वासावासं ठितो। ×××। ताहे सामी अचियत्तोग्गहोत्ति काउं निग्गतो, इमेण तेण पंच अभिग्गहा गहिया, तंजहा—अचियत्तोग्गहे न वसियव्वं १ निच्चं वोसट्ठकाए २ मोणं च ३ पाणीसु भोत्तव्वं ४ गिहत्थो न वंदियव्वो—न अब्भुट्ठेयव्वो ५, एए पंच अभिग्गहा गहिया, इह सपात्रो धर्म्मो बभूव, ततः पाणिपात्रभोजिना मया भवितव्यमित्यभिग्रहो गृहीतः।

—आव० नि। गा ४६१। मलय टीका

—आव० चू० पूर्वभाग। पृ० २७१,२७२

(ख) ××× अभिहितार्थोपसंहारायेदं गाथा द्वयमाह—

दूइज्जंतगपिउणो वयंस तिव्वे अभिग्गहे पंच।
अचियत्तुग्गहऽनिवसण निच्चं वोसट्ठ मोणेणं।
पाणीपत्तं गिहिवंदणं च तह वद्धमाणवेगव्वई।

—आव० नि। गा ४६२, ४६३। पूर्वार्ध

मलय टीका—विहरतो मोराकसंनिवेशं प्राप्तस्य तन्निवासी दूइज्जंतकाभिधानपाषंडस्था दूइज्जंतका एवोच्यंते, पितुः—सिद्धार्थस्यवयस्यो—मित्रं स भगवंतमभिवाद्य वसतिं दत्तवानिति वाक्यशेषाः, विहृत्य चान्यत्र वर्षाकालगमनाय पुनस्तत्रैवागतेन विदितः कुलपस्यभिप्रायः, तीव्रा—रौद्रा अभिग्रहीः पंच, गृहीता इति शेषः, ते चामी—'अचियत्त' ति देशीवचनमप्रीत्यभिधायकं, ततस्तत्स्वामिनो न प्रीतिर्यस्मिन्नवगहे सोऽप्रीत्यवग्रहस्तस्मिन् न वसनं—न वस्तव्यं तत्र मयेत्येकोऽभिग्रहः, 'निच्चं वोसट्ठ' मोणेणं' ति नित्यं—सदा व्युत्सृष्टकायेन स्थातव्यमिति द्वितीयः, सदा मौनेन विहर्त्तव्यमिति तृतीयः, यदि परं तथाविधे प्रयोजने एकंद्वे वा वचने वक्तव्ये, 'पाणीपत्त' ति पाणिपात्रभोजिना भवितव्यमिति चतुर्थः, 'गिहिवंदणं चे' ति गृहस्थस्य वंदनं च शब्दादभ्युत्थानं च न कर्त्तव्यम्, एतान् पंचाभिग्रहान् गृहीत्वा तथा तस्मान्निर्गत्य 'वास अट्ठियगामे' त्ति वर्षाकालमस्थिग्रामे, स्थित इत्यध्याहारः स चास्थिकग्रामः पूर्वं वद्धमानाभिधः खल्वासीत्, पश्चादस्थिग्रामसंज्ञामित्थं प्राप्तः ×××।

(ग) स्वामी प्रावृषमत्येतुं मोराकं पुनरभ्यगात्॥५५॥

× × ×।

एवं च चिन्तयन् स्वामी वैराग्यमधिकं दधत्।
अभिग्रहानिमान् पंच जग्राह करुणानिधिः॥७५॥
नैवाप्रीतिमतो गेहे वसनीयं कदाचन।
स्थातव्यं च शरीरेण कायोत्सर्गजुषासदा॥७६॥
स्थेयं मौनेन च प्रायो भोक्तव्यं पाणिभाजने।
गृहस्थस्य च विनयो न कार्य इति पंच ते॥७७॥
अभिग्रहान् गृहीत्वामूनर्धमासादनन्तरम्।
ग्रामं नाम्नास्थिकग्रामं ययौ प्रावृष्यपि प्रभुः॥७८॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३।

ऋतुबद्धकाल के आठ मास व्यतीत कर भगवान् महावीर पुनः मोराक ग्राम (दूइज्जतक

ग्राम) पधारे। अत्यन्त वैराग्य धारण कर दयानिधि भगवान ने निम्नलिखित पाँच अभिग्रह धारण किये —

१—जिस स्थान में वास करने से अप्रीति उत्पन्न हो, वहाँ न रहना।

२—जहाँ वासस्थान हो वहाँ हमेशा कायोत्सर्ग करके रहना।

३—प्रायः मौन धारण करना।

४—करपात्र से भोजन ग्रहण करना।

५ – गृहस्थ को वंदन न करना।

ये पाँच अभिग्रह ग्रहण कर, वर्षाऋतु का अर्धमास व्यतीत होने के बाद भगवान महावीर वहाँ से विहार कर अस्थिकग्राम पधारे।

अस्थिग्राम का पहले 'वर्द्धमान' नाम था।

·३ अप्रीतिकर स्थान का परिहार

(क) श्री वीरं विजने गत्वा नत्वा दीनो जगादसः।
भगवन्नन्यतो याहि पूज्यः सर्वत्र पूज्यते ॥२१५॥
अत्रै वाच्योऽस्मि नान्यत्र नामापि ज्ञायते मम।
स्वदर्यामेव शौर्यं हि गोमायोर्न पुनर्बहिः ॥२१६॥
अजानता दुर्विनयो यो मयाऽकारि नाथ! ते।
संप्राप्तं तत्फलं संप्रत्यनुकंपस्य मामतः ॥२१७॥
अप्रीतिमत्परिहाराभिग्रही भगवान थ।
च चालोत्तरचावालं सन्निवेशं प्रतिप्रभुः ॥२१८॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३

भगवान् महावीर को मोराकग्राम के बाहर प्रतिमा में स्थित थे। एक अच्छन्दक वीर प्रभु के पास आकर बोला—हे भगवान्! आप यहाँ अन्यत्र ग्राम पधारे। आप पूज्य हैं। ऐसा वचन सुनकर अप्रीति वाले स्थान का परिहार करने के लिए अभिग्रहधारी भगवान् वहाँ से विहार कर दिया।

(ख) ततो निष्क्रम्य भगवान् कौशाम्बीं नगरीं ययौ।
राजा तस्यां शतानीकः परानीकभयंकरः ॥४७४॥
चेटकोर्वीशदुहिता तद्राज्ञी च मृगावती।
श्राविका तीर्थकृत्पादपूजानिष्ठा सदैव हि ॥४७५॥

राज्ञस्तस्य च सचिवः सुगुप्तो नाम तत्प्रिया ।
नन्दा नाम श्राविकेति मृगावत्या परा सखी ॥४७६॥
श्रेष्ठीधनावहो नाम्ना तत्र चाऽऽसीन्महाधनः ।
मूलाऽभिधाना तस्यापि गृहिणी गृहकर्मण ॥४७७॥
तत्र स्वामी पोषमासबहुलप्रतिपद्दिने ।
दुराचरं दुर्ग्रहं च जग्राहैवमिमग्रहम् ॥४७८॥
अयोनिगडबद्धांघ्रिमुण्डिताऽनशिता सती ।
रुदती मन्युना राजकन्यापि प्रेष्यतां गता ॥४७९॥
देहल्यन्तः स्थितैकांघ्रिर्बहिः क्षिप्राऽपरांघ्रिका ।
गृहात् प्रतिनिवृत्तेषु सर्वभिक्षाचरेषु च ॥४८०॥
यदि मे शूर्पकोणेन कुल्माषान् संप्रदास्यति ।
चिरेणापि तदैवाऽहं पारयिष्यामि नान्यथा ॥४८१॥
गृहीत्वाऽलक्ष्यमाणाभिग्रहं प्रतिदिनं प्रभुः ।
उच्चावचेषु गेहेषु भ्रमति स्म यथाक्षणम् ॥४८२॥
अभिग्रहवशाद्भिक्षां दीयमानामगृह्णति ॥
स्वामिनि प्रत्यहं पौरास्ताम्यन्ति स्मात्मनिन्दिनः ॥४८३॥

× × ×

चन्दनोर्ध्वस्थिता चैवमचिन्तयदहो क्व मे ।
तस्मिन् राजकुले जन्म क्व चावस्थेयमीदृशी ॥५७० ।
भवेऽस्मिन्नाटकप्राये क्षणाद्वस्त्वन्यथाभवेत् ।
स्वानुभूतमिदं मे हि किं संप्रति करोमि हा ॥५७१॥
षष्ठस्य पारणायामी कुल्माषाः सन्ति संप्रति ।
यद्यायात्यतिथिस्तस्मै दत्त्वा भुञ्जेऽन्यथा ॥५७२॥
एवं विचिन्त्य सा द्वारे ददौ दृष्टिमितस्ततः ।
तदाऽऽगान्महावीरो भिक्षायै पर्यटन् प्रभुः ॥५७३॥
अहो पात्रमहो मे पुण्यसंचयः ।
मुनिर्महात्मा कोऽप्येष भिक्षायै यदुपस्थितः ॥५७४॥
चिन्तयित्वेति साऽचालीद्वाली कुल्माषशूर्पभृत् ।
एकमंघ्रिं न्यधादन्तर्देहल्या अपरं बहिः ॥५७५॥

निगडर्देहलीं सा तु सम्मुल्लंघितुमक्षमा।
तत्रस्थैवाऽऽद्र्या भक्त्या भगवन्तमभाषतः ॥५७६॥
स्वामिन्ननुचित्त भोज्यं यद्यप्येतत्तथापिहि।
परोपकारैकरत ! गृह्णानुगृहाण माम् ॥५७७॥
द्रव्यादिभेदसंशुद्धं ज्ञात्वा पूर्णमभिग्रहम्।
तस्यै कुल्माषभिक्षायै स्वामी प्रासारयत् करम् ॥५७८॥
अहो धन्याऽहमेति ध्यायन्ती चंदनापि हि।
चिक्षेप शूर्पकोणेन कुल्माषान् स्वामिनः करे॥ ७६॥
स्वाम्यभिग्रहसंपूर्त्या प्रीतास्तत्राययुः सुराः—

—त्रिशलाका० पर्व ४। श्लो४७४ से ४८३, ५७० से ५८०। पूर्वार्ध

(ख) टीका—ततो सामी कोसंबिंगतो, तत्थ सयाणितो राया मियावई देवी तच्चावादी धम्मपाढगो सुगुत्तो अमच्चो नंदा से भारिया, सा य समणोवासिया, ततो सड्ढित्ति मियावतीए वयंसिया, तत्थेव नगरे धणावहो सेट्ठी, तस्स मूला भारिया, एवंते सकम्मसंपडत्ता अच्छंति, सामीय पोसबहुलपाडिवए इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगेण्हइ चउव्विहं, तंजहा—दव्वतो, खेत्ततो, कालतो, भावतो, दव्वतो कुम्मासे सुप्पकोणेणं, खेत्ततो एलुगं विक्खंभइत्ता कालतो नियत्तेसु भिक्खायरेसु भावतो जइ राधूया दासत्तणं पत्ता नियलबद्धा मुंडियसिरा अट्ठमभत्तिया एवं कप्पइ, सेसं न कप्पइ, एवं अभिग्गहं घेत्तूण कोसंबीए अच्छइ, दिवसे-दिवसे भिक्खायरियं फुसइ, किं निमित्तं ? बावीसं परिसहा भिक्खायरियाए उदिज्जंति, एवं चत्तारि मासे कोसंबीए हिंडइ, ताहे नंदाए घरमणुपविट्ठो, तीए सामिणो आयरेण भिक्खा नीणिया, सामी निग्गतो, सो अद्धिति पकया, ताहे दासीतो भणंति—एस देवज्जगो दिवसे-दिवसे एत्थ एइ, ताहे ताए नायं—नूणं भयवतो अभिग्गहो कोइ, ततो निरायं चेव अद्धिती जाया, ×××। सो (धणावहो) सेट्ठी आगतो पुच्छइ कहिं चंदणा ?, न कोइ साहइ भएण, सो जाणइनूणं रमइ उवरिं वा चिट्ठइ, एवं रत्तिं पिपुच्छिया, जाणइ—सा नूणं सुत्ता, बिइयदिवसेवि न दिट्ठा, तइयदिवसे घणं पुच्छइ, साहेह मा भे मारेह, तो थेरदासी एकाचिंतेइ—किंमम जीविएण ?, सा जीवउ वराई, ताए कहियं—अमुयघरे, तेण उग्घाडिया दारा, पेच्छइ छुहाहयं चंदणं, ततो कूरं पमग्गितो, जाव समावत्तीए नत्थि, ताहे कुम्मासा दिट्ठा. ते सुप्पकोणे घेत्तूण तीसे दिन्ना, सेट्ठी लोहकारघरं गतो, नियलाणि छिंदावेमि, ताहे सा हत्थिणीव कुलं संभारिउमारद्धा एलुगं विक्खंभइत्ता, तेहिं पुरतो कतेहिं अब्भंतरतो रोयइ, सामी

आगतो, ताए चिंतियं—सामिस्स देमि, ममएयं अहम्मफलं भणइ भयवं ! कप्पइ ? सामिणा पाणी पसारितो, चउव्विहोऽवि पुन्नो अभिग्गहो। ×××। आह—

कोसंबीइ सयाणिअ अभिग्गहो पोसबहुलपाडिवए।
चाउम्मासि मिगावइ विजय सुगुत्तो अ नंदा य ॥५१९॥
तच्चावाई चंपा दधिवाहण वसुमई अ बीअनामा।
धणावह मूलाऽऽलोअण संपुल दाणे अ पव्वज्जा ॥५२०॥

—आव० नि गा ५१८, ५१९, ५२०

(ग) गोअरमभिग्गहजुअं खमणं छम्मासिअं च कासी अ।
पंचदिवसेहि ऊणं अव्वहिओ वच्छनयरीयए॥

—आव० निगा ५३०

मलय टीका—गोचरे अभिग्रहः गोचराभिग्रहस्तेन युतं गोचराभिग्रहयुतं क्षपणकंपाण्मासिकं पञ्चभिर्दिवसैरूनमव्यथितः—अपीडितो वत्सनगर्यां—कोशाम्ब्यामकार्षीत्।

(घ) ततो कोसंबि गतो। तत्थ य सयाणिओ राया। ××× एवं संगोवाहि जावसामिस्स नाणं उप्पज्जति, एसा पढमा सिस्सिणी सामिस्स, ताहे कण्णंतेपुरं छूढा संवड्ढति, छम्मासा तदा पंचहिं दिवसेहिं ऊणगा जद्दिवसं सामिणा भिक्खा लद्धा, साविमूला लोगेणं अंबाडिना हीलिया य।

—आव० चू पूर्व भाग पृ ३१९ से ३२०

(च) जहा सयाणीएणं विल्लियस्स चंपाए दहिवाहण-खंधावारस्स पा(प) लायमाणस्स भारिया धारिणी नामा वसुमइए धूयाए सह इक्केणं पुरिसेण गहिया। पंथम्मि धारिणीए मयाए दिन्ना मोल्लेण वसुमई वणिणो। अइविणिय त्ति दिन्नं से नामं चंदणा। जह य वणिय-जायाए ईसाए केसे मुंडाविऊण नियलिऊण घरे छूढा, विलवंतस्स य वणिणो जहा कम्मयरिए साहिया, कुंमासे दाऊण लोहार-गेहं वणिओ गओ; जहा य छम्मासोववासी तित्थयरो परम-भत्तीए पाराविओ, तियसा-अवयरिया, रयण-वुट्ठी जाया, तह सव्वमिणं सवित्थरं उवएसमाला-विवरणाओ नेयव्वं ति।

—धर्मो० पृ ८६

.४ तेरह बातों पर अभिग्रह

ग्यारवें चतुर्मास के बाद भगवान् मेढक ग्राम से विहार कर कौशांबी नगरी पधारे। कौशाम्बी नगरी का शतानिक राजा था। उसे मृगावती नामक एक रानी थी। वह श्राविका

थी। शतानिक राजा के सुगुप्त नामक एक मंत्री था। उसके नंदा नामक स्त्री थी। वह भी परम श्राविका तथा मृगावती की सखी थी। उस नगर में धनावह सेठ रहता था। वह धनी था उसकी पत्नी का नाम मूला था।

अस्तु भगवान् महावीर यहाँ पोष कृष्णा प्रतिपदा को पधारे और उस दिन से ही भगवान् अतिकठोर अभिग्रह धारण किया—

कोई सती व राजकन्या हो, दासत्वपन को प्राप्त हो, पैर में लोहमय बेड़ी बांधी हुई हो, सिर मुंडा हुआ हो, तीन दिन का उपवास किया हो, न घर में हो, न बाहर हो, एक पैर देहली के भीतर हो तथा दूसरा बाहर हो, सर्व भिक्षु उसके घर आकर गये हुए हो, रुदन करती हुई हो—ऐसी स्त्री यदि मुझे उड़द के सूप मे स्थित बाकले देवें तो मैं भिक्षाग्रहण करूंगा अन्यथा चिरकाल में (छह मास पूर्ण होने तक) पारणा करूंगा।

उपर्युक्त अभिग्रह धारण कर भगवान् प्रतिदिन भिक्षा के समय उच्च-नीच गृह मे गोचरी ग्रहण की घर के लिए पर्यटन करने लगे। परन्तु भगवान् का अभिग्रह फलित नहीं हुआ।

इस प्रकार बावीस परीषह को सहन करते हुए चार मास भगवान् को हो गए। एक समय भगवान् नंदा के स्त्री के घर मे भिक्षार्थ प्रविष्ट हुए। अभिग्रह फलित न होने के कारण भगवान् ने भिक्षा नहीं ली। भगवान् वापस पधार गए। उसकी दासी ने उसे कहा कि हे भद्र! ये देवार्य प्रतिदिन भिक्षा के लिए पर्यटन करते है परन्तु भिक्षा का सयोग नहीं मिला है। उसके वचन सुनकर उस नंदा ने विचार किया कि प्रभु ने कोई अपूर्व अभिग्रह धारण किया है।

इधर तीन दिन बाद धनावह सेठ आया और पूछा कि चंदना कहाँ है। मूला के भय से किसी ने उत्तर नहीं दिया। सेठ ने विचार किया कि हमारी वत्सा चदना कहीं रमती होगी अथवा घर के ऊपर होगी। इस प्रकार रात्रि मे पूछताछ की।

तीसरे दिन वृद्ध दासी ने कहा कि अमुक बंद कमरे मे चंदना है। तत्काल सेठ ने कमरे का दरवाजा खोला। क्षुधातृषा से त्रासित बेड़ी से बाँधी हुई चदना को सेठ ने देखा। सुपड़ा के कोणे मे रखे हुए कुल्माष को देखा और तुरन्त धनावह सेठ ने भूख से व्याकुल चदना को कुल्माष दिया। सेठ ने चन्दना को कहा कि तुम्हारी बेड़ी को काटने के लिए लुहार को बुलाता हूँ तब तक कुल्माष का आहार करना। चन्दना ने विचार किया कि अहो ? हमारा राजकूल मे जन्म हुआ ? और इस समय क्या स्थिति है ! इस नाटक के समान संसार क्षण भर मे वस्तु मात्र अन्यथा हो जाती है। अट्ठम के पारणे कुल्माष प्राप्त हुआ है—यदि कोई अतिथि पधारे तो प्रतिलाभित कर भोजन करूं। वह ऐसा चिंतन कर ही रही थी कि इतने

में भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ। भगवान् महावीर को देखकर बोली कि कैसा शुभ पात्र, कैसा उत्तम पात्र। मेरे पुण्य का सवार भी कैसा है जिसके कारण अचानक भिक्षा के लिए महात्मा का सयोग मिला है। इस प्रकार चिंतन कर उस बाला ने कुल्माष वाला सुपड़ हाथ मे लेकर एक पैर देहली के बाहर, एक पैरके देहली अंदर रखकर आर्द्र हृदय वाली चन्दना भक्ति से भगवान् से बोली—हे भगवान्! यह भोजन आपके लिए उचित है तथापि आप परोप-कार मे तत्पर हैं अतः आप ग्रहण कर हमारे ऊपर अनुग्रह करो।

द्रव्यादि चार प्रकार से शुद्ध रूप से अभिग्रह पूरा हुआ जानकर प्रभु ने कुल्माष की भिक्षा लेने के लिए हाथ प्रसारित किया।

उस समय अहो! मैं धन्य हूँ—ऐसा ध्यान करती हुई चन्दना ने सुपड़ा के एक कुणे से कुल्माष प्रभु के हाथ में दिये। प्रभु का अभिग्रह पूर्ण होने से देवगण वहाँ आये।

(छ) पंचहन्यूनषण्मासतपःपर्यन्तपारणम्।
कृत्वा धनावहगृहान्निर्ययौ भगवानपि ॥ ५६२ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४

भगवान् का अभिग्रह पाँच मास तथा पचीस दिन से पूर्ण हुआ।

छः मास से पाँच दिन न्यून—तप का पारण कर धनावह सेठ के घर से भगवान बाहर निकले।

(ज) चंदना का दान (अभिग्रह फलित)

(झ) कौशाम्बी में चंदनाकुमारी द्वारा भगवान का दर्शन

(१) चेडय - रायहु लय - ललिय - भुय।
णिय - पुर - वरि चंदण णाम सुय ॥
णंदणवणि कीडइ कमल - मुहि।
जिह जणणि - जणणु णवि मुणइ सुहि।

घत्ता—तिह विलसिय-वम्मीसें णियकेणविखयरीसें।
पुणुणिय - घरिणिहि भीएं वणि घल्लिय सु - विणीएं ॥ ३ ॥

—वीरजि० संधि २ । कड १ । पृ०२८

(२) णिय - बंधु - विओय - विसण्ण - मइ।
तहिं दिट्ठी वाहें हंसगइ ॥
धणयत्तें वसहयत्त वणिहि।
तें दिण्णी वणी-चूडामणिहि।

वणिणा णिय-मंदिरि णिहिय सइ।
रूवेण णाइँ पच्चक्ख रइ॥
पडिवक्ख-गुणेहिँ विमद्दियइ।
चिंतिउ तहु पियइ सुहद्दियइ॥
एही कुमारि जइ रमइ वरु॥
तो पुणु महु दुक्करु होइ घरु॥
एयहिँ केरउ सहुँ जोव्वणिण।
णासमि वररूउ कुभोयणिण॥
इय भणिवि णियंबिणि रोसवस।
घल्लंति भीम - दुव्वयण -कस॥
कोद्दव - कूरहु सराउ भरिउ।
सहुँ कंजिएण रस - परिहरिउ॥
× × × ।
अण्णहिँ दिणि भव्व - समुद्धरणु।
पिंडत्थिउ जाणिय - जीव - गइ।
कोसंबी पुर - वरि पइसरइ॥

घत्ता—णियल णिरुद्ध- पयाइ चेडय-णिव-दुहियाइ॥
आविवि संमुहियाइ पणवेप्पिणु दुहियाइ॥ ४॥

—वीरजि० संधि २। कड ४। पृ० २८, ३०

(३) कोद्दव - सित्थइँ सरावि कयइँ।
सउवीर— विमीसइँ हयमयइँ॥
मुणि-णाहहु करयलि ढोइयइँ।
तेणवि णियदिट्ठिइ जोइयइँ॥
जायाइँ भोज्जु रस - दिण्ण-दिहि।
अट्ठारह —खण्ड - पयार - विहि॥
जिण—दाण—पहावें दुद्दमइँ।
आयस-घडियइँ रोहिय-कमइँ॥
सज्जण - मण - णयणाणंदणहि।
परिगलियइँ णियलइँ चंदणहि॥

अमरेहिं महुयर-मुह - पेल्लियइँ ।
कुंदइँ मंदराइँ घल्लियइँ ॥
रयणाइँ वण्ण - कब्बुरियाइँ ।
पसरंत - किरण - विप्फुरियाइँ ॥
हय दुंदुहि साहुक्कारु कउ ।
गुणि-संगे कासुण जाउ जउ ॥
कण्णहि गुणोहु वित्थरेहिं थुउ ।
सहुँ बंधवेहिं संजोउ हुउ ॥

—वीरजि० संधि २ । कड ५

(४) कदाचिच्चेटकाख्यस्य नृपतेश्चंदनाभिधाम् ।
सुतां वीक्ष्य वनक्रीडासक्तां कामशरातुरः ॥३३८॥
कृतोपायो गृहीत्वैनां कश्चिद्गच्छन्नभश्चरः ।
पश्चाद्भीत्वास्वभार्याया महाटव्यां व्युसर्जयत् । ३३९॥
वने चरपतिः कश्चित्तत्रालोक्य धनेच्छया ।
एनां वृषभदत्तस्य वाणिजस्य समर्पयत् ॥३४०॥
तस्य भार्या सुभद्राख्या तथा संपर्कमात्मनः ।
वणिजः शंकमानासौ पुराणंकोद्रवौदनम् ॥३४१॥
आरनालेन संमिश्रं शरावे निहितं सदा ।
दिशती शृंखलाबंधभागिनीं तां व्यधाद्रुषा ॥३४२॥
परेद्युर्वत्सदेशस्यकौशांबीनगरान्तरम् ।
कायस्थित्यै विशंतं तं महावीरं विलोक्य सा ॥३४३॥
प्रत्युद्व्रजंती विच्छिन्नशृंखलाकृतबधना ।
लोलालिकुललीलोरुकेशभाराच्चलाचलात् ॥३४४॥
विगलन्मालतीमालादिव्यांबरविभूषणा ।
नवप्रकारपुण्येशा भक्तिभारभरानता ॥३४५॥
शीलमहात्म्यसंभूतपृथुहेमशराविका ।
शाल्यन्नभावयत्कोद्रवौदनं विधिवत्सुधीः ॥३४६॥
अन्नमाश्राणयत्तस्मै तेनाप्याश्चर्यपंचकम् ।
बंधुभिश्च समायोगः कृतश्चंदनया तदा ॥३४७॥

—उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो० ३३८ से ३४७

(५) अथ चेटकराजस्य चंदनाख्यां सुतां सतीम्।
वनक्रीडासमासक्तां कश्चित्कामातुरः खगः ॥८४॥
वीक्ष्योपायेन नीत्वाशु गच्छन् पापपरायणः।
पश्चाद्भीत्या स्वभार्याया महाटव्यां व्यसर्जयत् ॥८५॥
स्वैनः कर्मोदयं ज्ञात्वा सा तत्रैव महासती।
जयन्ती सन्नमस्कारान् धर्मध्यानपराभवत् ।८६॥
वनेचरपतिः कश्चित्तामालोक्यधनेच्छया।
नीत्वा वृषभसेनस्य समर्पयद्वणिकपतेः ॥८७॥
श्रेष्ठिभार्या सुभद्राख्या दृष्ट्वा तद्रूपसंपदः।
भविता मे सपत्नीयमिति शंकां व्यधाद्धृदि ॥८८॥
ततस्तद्रूपहान्यै सा पुराणं कोद्रवोदनम्।
आरनालेन सम्मिश्रं शरावे निहितं सदा ॥८९॥
ददती चंदनायाश्च शृंखलाबंधनं व्यधात्।
तत्रापि सा सती दक्षा नात्यजद्धर्मभावनाम् ॥९०॥
अन्येद्युर्वत्सदेशेऽत्र तत्कौशाम्बीपुरं परम्।
कायस्थित्यै महावीरः प्राविशद्रागदूरगः ॥९१॥
पात्रोत्तमंतमालोक्य विच्छिन्नबंधनाभवत्।
तद्दानाय तदा प्रत्युद्व्रजन्ती चंदना शुभात् ॥९२॥
ततो नीलालिभाकेशभारस्रग्भूषणाङ्किता।
गत्वा सा विधिना नत्वा प्रतिजग्राह सन्मतिम् ॥९३॥
शीलमहात्म्यतस्तस्या अभवत्कोद्रवोदनम्।
शाल्यन्नं तच्छरावं च पृथुकांचनभाजनम् ॥९४॥
ततोऽस्मै परया भक्त्या तदन्नदानमूर्जितम्।
नवप्रकारपुण्याढ्या ददौ सा विधिना मुदा ॥९६॥

—वीरवर्धच० अधि १३। श्लो ८४ से ९४, ९६

चेटक राजा की वन-क्रीड़ा मे आसक्त, चन्दना नाम की सती पुत्री को देखकर कोई कामातुर और पाप-परायण विद्याधर किसी उपाय से उसे शीघ्र ले उड़ा और आकाश मार्ग से जाते हुए उसने अपनी भार्या के भय से पीछे किसी महाअटवी मे उसे छोड़ दिया। तब वह महासती अपने पापकर्मोदय को जानकर पंचपरमेष्ठी नमस्कार मंत्र को जपती हुई उसी अटवी मे धर्मधारा में तत्पर होकर रहने लगी। वहाँ पर किसी भीलों के राजा ने उसे देखकर धन-प्राप्ति

की इच्छा से ले जाकर वृषभसेन नाम के वैश्यपति को सौंप दी। सुभद्रा नाम की उस सेठ की स्त्री ने उसकी रूप-सम्पदा को देखकर 'यह मेरी सौत बनेगी, ऐसी शंका को मन मे धारण किया। तब उसने उसके रूप सौन्दर्य की हानि के लिए (उसके केश मुंडा दिये और) सांकल से बाँधकर (उसे एक कालकोठरी मे बंद कर दिया) तथा आरनाल (कांजी) से मिश्रित कोदों का भात मिट्टी के सकोरे मे रखकर उसे नित्य खाने को देने लगी। ऐसी अवस्था मे भी उस सती ने अपनी धर्मभावना को नहीं छोडा।

किसी एक दिन उन महावीर प्रभु ने राग से रहित होकर शरीर स्थिति के लिए वत्सदेश की इस कौशाम्बी पुरी मे प्रवेश किया। उन उत्तम पात्र महावीर प्रभु को देखकर चन्दनाके भाव दान देने के हुए। पुण्योदय से उसके तत्काल बंधन टूट गये। सिर काले भौंरों के समान केशभार से और शरीर माला-आभूषणों से युक्त हो गया। तब उसके सामने जाकर और उन्हें नमस्कार कर सम्मति प्रभु को पडिगाह लिया। उसके शील के महात्म्य से कोदों का भात-शालि-चावलों का हो गया और वह मिट्टी का सकोरा विशाल सुवर्ण पात्र बन गया।

तब उस चन्दना सती ने परम भक्ति के साथ नव प्रकार के पुण्यों से युक्त होकर अर्थात् नवधा भक्ति पूर्वक विधि से हर्षित होते हुए श्री महावीर प्रभु को वह उत्तम अन्नदान दिया।

·४ पाँच मास २५ दिन से अभिग्रह पूर्ण होने से देवों द्वारा वृष्टि —

(क) स्वाम्यभिग्रहसम्पूर्त्या प्रीतास्तत्राययुः सुराः।
वसुधाराप्रभृतीनि पंच दिव्यानि च व्यधुः॥

— त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो० ५८०

(ख) चउव्विहोऽवि पुन्नो अभिग्गहो, पंच दिव्याणि पाउब्भूयाणि।

—आव० निगा ५११ । टीका

(द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) चार प्रकार का भगवान् महावीर का अभिग्रह पूर्ण हुआ जानकर देवों ने वसुधारा आदि पाँच दिव्य प्रगट किये।

·३६ विहार स्थल

·१ प्रथम विहार

(क) अहासुयं वइस्सामि, जहा से समणे भगवं उट्ठाए।
संखाए तंसि हेमंते, अहुणो पव्वइए रीइत्था॥१॥

—आया० श्रु १ । अ ९ । उ १

उन श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने उठ कर और समझ कर उस हेमन्त ऋतु में दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् तत्काल जिस प्रकार विहार किया था, उसका वर्णन जैसा मैंने सुना है वैसा ही मैं तुम से कहूँगा।

(ख) तओ ण समणे भगवं महावीरे इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हेत्ता 'वोसट्ठकाए चत्तदेहे दिवसे मुहुत्तसेसे कम्मारं गामं समणुपत्ते'।

—आया० श्रु २। अ १५। सू ३५। पृ० २४०

(ग) बहिआ च नायसंडे आपुच्छिताण णायए सव्वे।
दिवसे मुहुत्तसेसे कमारगामं समणुपत्तो॥

—आव० भाष्य गा १११

टीका—बहिः कुंडपुरात् ज्ञातखंडे उद्याने आपृच्छ्य ज्ञातकान् सर्वान् यथा सन्निहितान् तस्मान्निर्गतः, कर्मारग्रामगमनायेति वाक्यशेष, तत्रच पथद्वयम्—एको जलेनापर पालया, तत्र च भगवान् पाल्या गतवान्, गच्छश्च दिवसे मुहूर्त्तशेषे कर्मारग्राममनुप्राप्तः, तत्र च प्रतिमायां स्थितः।

(घ) तएणं सामी अहासंनिहिए सव्वे नायए आपुच्छित्ता णायसंडबहिया चउभागऽवसेसाए पोरुसीए कंमारग्गाम पहावितो।

—आव० चू पूर्वभाग। पृ० २६८

श्वे०—कुण्डपुर के ज्ञातखण्डोद्यान में दीक्षा ग्रहण कर, अभिग्रह धारण कर (देव-मनुष्य-तिर्यंच कृत उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहन करूँगा) श्रमण भगवान महावीर पाल्या के रास्ते से एक मुहूर्त दिन शेष रहते कर्मार ग्राम पधारे।

(च) नातिमन्दं न शीघ्रं च न्यसन् पादं दयार्द्रधीः।
क्रमादसौ पुरं रम्यं प्राविशत्कूलसंज्ञकम्॥ ३४॥
श्रीवर्धमानतीर्थेशो वीतरागहृदा तदा।
रागादीन् दूरतस्त्यक्त्वा पाणिपात्रेण संस्थितः॥ ३५॥
तनुः स्थित्यै तदाहारं गृहीत्वातो ययौ वनम्।
पवित्रं तद्गृहं भूपं कृत्वा दानफलेन च॥ ३६॥

—वीरवर्धच० अधि १३। श्लो ३४,३५,३६

दिग०—न अति मंद और न अति शीघ्र पाद-विन्यास रखते वे दयार्द्र चित्त महावीर प्रभु क्रम से विचरते हुए कूल नामक रमणीकपुर में पधारे।

उस समय श्री वर्धमान तीर्थेश रागादि को दूर से ही छोड़कर वीतराग हृदय से अवस्थित रहते हुए शरीर की स्थिति के लिए पाणिपात्र द्वारा आहार को ग्रहण कर और दान के फल से राजा को और उसके घर को पवित्र कर के वन को चले गये।

'२ कर्मारग्राम से कोल्लाक ग्राम की ओर विहार

(क) स्वामी षष्ठपारणाय कोल्लाकेऽगान्निवेशने ।
तत्रद्विजातेर्बहुलाभिधस्य सदने प्रभुः ॥
चक्रे सिताज्यमिश्रेण परमान्नेन पारणम् ।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ३४ पूर्वार्ध, ३५

कर्मार ग्राम से विहार कर छट्ठतप के पारणार्थ भगवान दूसरे दिन कोल्लाक ग्राम पधारे। वहाँ बहुल ब्राह्मण के घर पर भगवान ने घृत-शर्करायुक्त परमान्न (खीर) पारण किया।

(ख) × × × तद्दिवसं सामिस्स छट्ठभत्ते पारणगं, ततोभयवं कोल्लागे संनिवेसे भिक्खापविट्ठो घयमहुसंजुत्तेणं परमण्णेणबहुलेण माहणेण पडिलाभितो, तत्थ पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं ।

—आव० भाष्य गा १११ । टीका

३ कोल्लाक ग्राम से अन्यत्र विहार—

(क) प्रभुः प्रभञ्जन इवाऽप्रतिबद्धोऽब्धिमेखलाम् ।
नानाग्रामपुरारण्यां विजहार वसुन्धराम् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ४५

कोल्लाक ग्राम से विहार कर भगवान महावीर विविध ग्राम, पुर, अरण्यवाली पृथ्वी पर पवन की तरह अप्रतिबंध रूप से विहार करने लगे।

(ख) अन्यदा विहरन् स्वामी मोराके सन्निवेशने ।
ययौ दूइज्जन्तकाख्ये तापसव्रातसंकुले ॥
× × × ।
प्रतिमयैकरात्रिक्या श्रीमान् सिद्धार्थनन्दनः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ४६, ५१ उत्तरार्ध

(ग) ततो सामी विहरमाणो गतो मोरागसंनिवेसं, तत्थ मोराए दूइज्जंता नाम पासंडत्था। ×××। सामी एगराइंच वसित्ता पच्छा गतो विहरइ। ×××।

अन्यदा भगवान विहार करते हुए मोराक नामक ग्राम के पास आये। वहाँ दूईज्जंतक नामक तापस रहते थे। वहाँ एक रात्रि की प्रतिमा की।

—आव० नि गा ४६१ । मलय टीका

·४ मोराक संनिवेश से विहार

(क) वायुरिवाप्रतिबद्धो निर्लेपः पद्मपत्रवत्।
सर्वत्र विहरन् ग्रीष्मकालं स्वाम्यत्यवाहयत् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० ।सर्ग ३ । श्लो ५४

(ख) × × × ताहे सामी अट्ठ उउबद्धिए मासे विहरित्ता × × × ।

—आव० नि गा ४६१ । मलय टीका

भगवान ने मोराक ग्राम से विहार किया। सर्वत्र-स्थान-स्थान पर विहरन् कर भगवान ने ऋतुबद्ध अष्ट मास व्यतीत किये।

·५ पुनः मोराक ग्राम पधारे

(क) × × × ताहे सामी अट्ठ उउबद्धिए मासे विहरित्ता वासावासे संपत्ते तं चेव दूइज्जंतगगामं एइ। तत्थेगंमि उउए वासावासं ठितो × × × ।

—आव० नि गा ४६१ ।मलय टीका

(ख) सिद्धार्थसुहृदस्तस्य स्मरन् कुलपतेर्वचः।
स्वामी प्रावृषमत्येतुं मोराकं पुनरभ्यगात् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ५४

राजा सिद्धार्थ के मित्र कुलपति के वचन याद कर भगवान ग्रीष्मकाल व्यतीत कर चतुर्मासार्थ मोराक ग्राम पुनः पधारे।

·६ मोराक संनिवेश से अस्थिकग्राम की ओर विहार

(क) दध्यौ चैवं विभुरेषामप्रीतिर्मन्निबंधना।
तदत्र स्थातुमुचितं न मे सर्वहितैषिणः ॥
× × ×
अभिग्रहान् गृहीत्वामूनर्धमासादनन्तरम्।
ग्रामंनाम्नास्थिकग्रामं ययौ प्रावृष्यपि प्रभुः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ७४, ७८

(ख) × × × एतत्प्रसंगत उक्तम्, एवं तत्र भगवान् अर्द्धमासं स्थित्वा ततो पच्छा अट्ठियगामं गतो, तस्स पुण अट्ठियगामस्स पढमं वद्धमाणयमिति नाम होत्था। × × ×

—आव० नि गा ४६१

(ग) तएणं अहं गोयमा ! पढमं वासं अद्धपासं अद्धमासेणं खममाणे अट्ठिय-गामं निस्साए पढमं अंतरवासं वासावासं उवागए।

—भग० श १५ । सू २१

भगवान ने विचार किया कि मेरे कारण से इन तापसों को अप्रीति होगी—अतः मुझे यहाँ रहना नहीं चाहिए।

अतः भगवान महावीर पाँच प्रकार के अभिग्रह धारण कर वर्षाऋतु के अर्द्धमास व्यतीत होने के बाद मोराकग्राम से विहार कर अस्थिक ग्राम पधारे। यहाँ प्रथम चतुर्मास व्यतीत करने के लिए आये।

नोट :—कुछ गायें पुराने तृण वगैरह खाने लगी। तापसों ने धारण किया लेकिन भगवान ने निवारण नही किया। चूंकि भगवान एक झोंपड़ी मे एकांत मे ध्यान मे स्थित थे। इस कारण तापस भगवान से द्वेष करने लगे। अतः भगवान ने चतुर्मास मे विहार किया।

'७ अस्थिकग्राम से (प्रथम चतुर्मास के बाद) मोराक ग्राम की ओर विहार

(क) तत्रार्धमासक्षपणैश्चतुर्मासीमतीत्य ताम्।
निरगादस्थिकग्रामाद्विहर्तुं प्रभुरन्यतः॥
दीक्षादिनादतीतेऽब्दे मोराकं सन्निवेशनम्।
गत्वा तद्बहिरुद्याने स्वाम्यस्थात् प्रतिमाधरः॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लोक १६५, १७०

(ख) × × × ततो भगवान् मोराकसंनिवेशे गत्वा तत्र बहिरुद्याने स्थितः × × ×।

—आव० नि गा ४६४ । मलय टीका

अस्थिकग्राम मे आठ अर्धमास क्षमण व्यतीत कर भगवान् वहाँ से विहार कर के मोराक संनिवेश पधारे। दीक्षा के दिन से एक वर्ष व्यतीत होने के बाद भगवान वापस मोराक ग्राम पधारे थे। वहाँ बाहर के उद्यान मे प्रतिमा मे स्थित हो गये।

नोट—यद्यपि प्रथम चतुर्मास मे भगवान् एक अर्धमास मोराक ग्राम रहे।

८ मोराकग्राम से विहार

(ख) अप्रीतिमत्परिहाराभिग्रही भगवानथ।
चचालोत्तरवाचालं सन्निवेशं प्रति प्रभुः॥ २१८॥
दक्षिणश्चोत्तरश्चेति वाचालौ द्वौतदन्तरे।
सुवर्णवालुका रूप्यवालुका चेति निम्नगे॥ २१६॥
दक्षिणादुत्तरे यातश्चावालेऽथालगत्प्रभोः।
कंटके देवदूष्यार्धं सुवर्णवालुकातटे॥

किञ्चिद्गत्वा प्रभुर्माभूद् भ्रष्टमस्थं हिलेहृदः ।
इति तद्वीक्ष्य वस्त्रार्धं गन्तुं प्रववृते ततः ॥ २२० ॥

— त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो २१८ से २२१

(ख) (मोरागसंनिवेसं) सामी निग्गतो, ततो वच्चमाणस्स अंतरा दो वाचालातो दाहिणवाचाला य उत्तरा वाचाला य, तासिं दोण्हवि अंतरा दो नदीतो, तंजहा— सुवण्णवालुगा रुप्पवालुगा य, ताहे सामी दाहिणवाचालातो संनिवेसातो उत्तरा-वाचालं वच्चइ, तत्थसुवण्णवालुयाए नदीए पुलिणे कंटियाए तं वस्थं विलग्गं, सामी गतो ।

—आव० नि गा ४६५ । टीका

अच्छन्दक एकान्त मे भगवान् के पास आया और नम्रतापूर्वक बोला—हे भगवान् ! आप यहाँ से अन्यत्र विहार करे । जो पूज्य होता है वह सर्वत्र पूज्य होता है ।

फलस्वरूप अप्रीति वाले स्थानको परिहार करने वाले अभिग्रहधारी भगवान् महावीर वहाँ से उत्तर वाचाला नामक सन्निवेश की ओर विहार किया ।

दक्षिण और उत्तर—ये वाचाल ग्राम के दो ग्राम थे और उनके मध्य सुवर्णबालुका तथा रूप्य बालुका—दो नदियां थी । भगवान् दक्षिण वाचाला ग्राम से उत्तर की वाचाला ग्राम पधार रहे थे—वहाँ सुवर्णबालुका के तट पर उनका अर्ध देवदूष्य वस्त्र कांटे मे अटक गया ।

'६ उत्तर वाचाला से श्वेताम्बिका नगरी की ओर विहार

(क) इतश्च भगवान् वीरः समीरण इवास्खलन् ।
श्वेतव्यभिमुखं गच्छन्नित्यूचे गोपदारकैः ॥
देवार्यायमृजुः पंथाः श्वेतवीमुपतिष्ठते ।
किं त्वन्तरेऽस्य कनकखलाख्यतापसाश्रमः ॥
स हि दृग्विषसर्पेणाधिष्ठितो वर्ततेऽधुना ।
वायुमात्रैक सञ्चारोऽप्रचारः पक्षिणामपि ॥
विहाय तदमुं मार्गं वक्रेणाप्यमुना व्रज ।
सुवर्णेनापि किं तेन कर्णच्छेदो भवेद्युतः ॥
× × ×
तत्र चाथ जगन्नाथो यक्षमंडपिकान्तरे ।
तस्थौ प्रतिमयानासाग्रांतविश्रान्तलोचनः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो २२५ से २२८,२५१

(ख) ताहे सामी उत्तरवाचालं वच्चइ, तत्थ अंतरा कनकखलं नामं आसमपदं तत्थ दो पन्था—उज्जुगो वंकोय, जो सो उज्जुगो सोकणकखलमज्झेणं वच्चइ, वंकोपरिहरंतो. सामी उज्जुगेण पहावितो, गोवालेहिं वारितो—देवज्जगा! मा एएण मग्गेण गच्छह, एत्थ दिट्ठीविसोसप्पो अच्छइ, सामी जाणइ—जहास भवितो संबुज्झिहिइ, ताहे गतो, गंतूण जक्खघरमंडवियाए पडिमंठितो। × × × उत्तर-चावलान्तरवनखंडे चंडकोशिकः सर्प्पः।

आव० नि गा ४६६।४६७। टीका

अस्खलित रूप से भगवान् महावीर उत्तरवाचाला के विहार करते हुए श्वेतांबिका नगरी की ओर प्रस्थान किया। मार्ग मे गोप के लड़कों ने भगवान् से कहा—'हे देवार्य! यद्यपि यह मार्ग श्वेताम्बिका नगरी की ओर जाने का सरल मार्ग है। उसके मध्य मे कनकखल नामक तापसोंका आश्रम है वहाँ एक दृष्टि विषसर्प रहता है फलस्वरूप वहाँ पक्षियों का भी संचारण नहीं है मात्र वायु का हो सचारण है अत. आप सरल मार्ग को छोड़कर अन्य वक्रमार्ग से गमन कीजिये।

दृष्टि-विष सर्प को प्रतिबोध प्राप्त होगा—ऐसा जानकर भगवान् उसी मार्ग से विहार किया। भगवान् ने उत्तरवाचालान्तर वनखण्ड मे आगमन किया। वहाँ यक्ष मण्डप मे नासिका पर नेत्र को स्थिर कर प्रतिमा धारण की।

१० कनकखल आश्रम से उत्तरवाचालासन्निवेश की ओर विहार

(क) एवं कौशिकनागायोपकृत्य निरगाद्वनात्।
प्राप चोत्तरचावालसन्निवेशं जगद्गुरुः॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो० २८०

(ख) उत्तरचावालंतर वणसंडे चंडकोसिओ सप्पो।
× × ×
उत्तरचावला नागसेण खीरेण भोयणं दिन्नं॥

—आव० नि गा ४६७। पूर्वार्ध ४६८ पूर्वार्ध

मलय टीका—उत्तरचावालो नामसन्निवेशः, तत्र भगवान् पक्षक्षपणपारणके गतः।

उत्तर चावलान्तर—कनकखलआश्रम से विहार कर भगवान् उत्तरचावल ग्राम पधारे।

·११ उत्तरवाचाला ग्राम से विहार

(क) ततः श्वेताम्ब्यां नगर्यां गतः, तत्र प्रदेशीराजा, स भगवतो महिमां कृतवान्।

आव० नि० गा ४६८। मलय टीका

अर्द्धमास क्षमण का (उत्तरवाचाला ग्राम मे) पारण कर, वहाँ से विहार कर भगवान् श्वेताम्बीका नगरी पधारे। वहाँ प्रदेशी राजा ने भगवान् की महिमा की।

·१२ श्वेताम्बिका नगरी से सुरभिपुर की ओर विहार

(क) ततो भयवं सुरभिपुरं वच्चइ, तत्थ अंतराए णिज्जया रायाणो पंचहिं रहेहिं एंति पएसिरन्नो पासं, तेहि तत्थ सामी वंदितो पूइतो य, ततो सामी सुरभिपुरं गतो, तत्थ गंगा उत्तरियव्वा, तत्थ सिद्धजत्तो नामनावितो, खेमिलो नाम सउणजाणतो, तत्थ नावाए लोगो विलग्गइ। × × ×।

—आव० नि गा ४६८। मलय टीका

(ख) प्रदेशी स्वपुरेऽथागात् स्वामी च विहरन् क्रमात्।
नगरं सुरभिपुरं तपःसुरभिरभ्यात्॥
मेदिन्या इव संव्यानं प्रतिमानमिवांबुधेः।
गंगां तरंगिणीमुच्चतरंगामासदत् प्रभुः॥
तां तितीर्षुः सिद्धदंतनाविकप्रगुणीकृताम्।
आरोहद्भगवान्नावं पथिका अपरेऽपिहि॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो २८८ से २६०

श्वेताम्बिका नगरी से विहार भगवान सुरभिपुर नगर के अन्दर मे पधारे। वहाँ विहार करते हुए भगवान सुरभिपुर ग्राम पधारे। वहाँ गंगा नदी के पास आये। भगवान ने नाव द्वारा गंगा नदी से उतरने की इच्छा की। सिद्धदत्त नामक नाविक था। उसकी नाव मे भगवान तथा अन्य लोग बैठे।

·१३ सुरभिपुर के बाद—नाव से उतरकर भगवान स्थाणुक ग्राम पधारे

(क) प्रभुं नत्वेयतुर्नागौ तर्या उत्तीर्य च प्रभुः।
यथावदैर्यापथिकीं प्रतिक्रम्यान्यतोऽचलत्॥३४७॥
× × ×

स्यात्त्वेत्यनुपदं सोऽगात्स्थूणाके सन्निवेशने ।
अधोऽशोकस्य चापश्यत्प्रभुं प्रतिमया स्थितम् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ३४७,१५२

(ख) (उपसर्ग) ततो भगवन्तमुपसर्गयितुं प्रारब्धं कम्बलशम्बलौ नावमुत्तारितवन्तौ । ततो भयवं दगतोराए ईरियावहियं पडिक्कमिउं पत्थितो । × × × सामीवि थूणागसंनिवेसस्स बाहिं पडिमं ठितो × × × ।

—आव० नि गा ४७१ । मलय टीका

नाव से उतर कर भगवान ईर्यापथिकी प्रतिक्रमणकर वहाँ से विहार किया । विहार कर स्थाणुग्राम मे पधारे । वहाँ अशोक वृक्ष के नीचे प्रतिमा मे स्थित हो गये ।

विभिन्न राजाओं का सम्पर्क— प्रथम चतुर्मास के बाद

(ग) पच्छा सेयवियं गतो, तत्थ पएसी राया समणोवासए, सो महेति सक्कारेति, ततो सुरभिपुरं वच्चति, तत्थ अंतराए णेज्जगा रायाणो पंचहिं रहेहिं एंति पएसिस्स रण्णो पासं, तेहिं तत्थ गतेहिं सामी पूतितो य वंदितो य ।

—आव० चू० पूर्व भाग पृ २७९–२८०

(घ) पारयित्वा प्रभुरपि श्वेतवीं नगरीं ययौ ।
प्रदेशिना नरेन्द्रेण जिनभक्तेन भूपिताम् ॥ २८६ ॥
पौराऽमात्यचमूपाद्यैः पदेशी परिवारितः ।
मद्यवेवापरोऽभ्येत्य जगन्नाथमवन्दतः ॥ २८७ ॥
प्रदेशी स्वपुरेऽथागात् स्वामी च विहरन् क्रमात् ।
नगरं सुरभिपुरं तपःसुरभिरभ्यगात् ॥ २८८ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३

(ङ) सेयवियाए पदेसी पंचरहो णेज्जरायाणो ।

—आव० नि गा ४६८

टीका—उत्तरवाचला नाम सन्निवेश: × × × । ततः श्वेताम्व्यां नगर्यां गतः, तत्र प्रदेशी राजा, स भगवतो महिमां कृतवान् तथापञ्चभीरथैरागतायें प्रदेशिपार्श्वे निजाएवंनिजका चैवकगोत्रा राजानस्तेऽपि महिमां कृतवन्तः ।

उत्तर वाचाला से पन्द्रह दिन का पारणा कर भगवान श्वेताम्बिका नगरी पहुँचे । वहाँ राजा प्रदेशी ने भगवान को वंदन किया । वहाँ से सुरभिपुर की ओर भगवान ने विहार किया । मार्ग मे पाँच नैयक राजा ने भगवान को रथ से नीचे उतर कर वंदन किया ।

·१४ स्थाणुक ग्राम से राजगृह (नालंदा) की ओर विहार

(क) ततो सामी रायगिहं गतो, तत्थ नालंदाए बाहिरियाए तंतुवायसालाए एगंमि पदेसे अहापडिरूवं उग्गहमणुण्णवित्ता पढमं मासक्खमणमुवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

—आव० नि गा ४७१। मलय टीका

(ख) कायोत्सर्गं पारयित्वा विहरन् भगवानपि।
पादन्यासैः पुनानःक्ष्मां प्राप राजगृहं पुरम्।
पुरस्यादूरतस्तस्य नालंदाया बहिर्भुवि।
स्वाम्यगाच्छालां तंतुवायस्यकस्यचित्॥
तंतुवायमनुज्ञाप्यवर्षावस्तुं जगद्गुरुः।
शालाया एकदेशेऽस्थान्मासक्षपणमाश्रितः॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। गा ३७० से ३७२

स्थाणुक ग्राम मे कायोत्सर्ग पारकर भगवान विहार करते हुए राजगृह नगर पधारे। उस नगर के बाहर नालन्दा नामक भूमि-भाग मे किसी एक तंतुवाय की विशाल शाला मे पधारे। वहाँ वर्षा काल निगर्मन करने के लिए वणकर की भगवान आज्ञा ली। वहाँ मास क्षमण करते हुए शाला के एक भाग में भगवान् रहे।

(ग) ××× दोच्चं वासं मासं मासेण खममाणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव रायगिहे नयरे, जेणेव नालंदा बाहिरिया, जेणेव तंतुवायसाला, तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हामि, ओगिण्हित्ता तंतुवायसालाए एगदेसंसि वासावासं उवागए।

—भग० श १५। सू २१

·१५ नालंदा (तंतुवायशाला) से कोल्लाक ग्राम की ओर विहार

दीक्षातः प्रावृषं स्वामी द्वितीयामतिगम्य ताम्।
नालंदाया निरीयाऽगात् कोल्लाके सन्निवेशने॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। गा ३९८

ततो भयवं चउत्थमासक्खमणपारणगे नालंदातो निग्गंतूण कोल्लागसन्निवेसं गतो।

—आव० नि गा ४७३। मलय टीका।

भगवान महावीर ने दीक्षा लेने के बाद द्वितीय चतुर्मास नालंदा पाड़ा मे निर्गमन किया। वहाँ से विहार कर भगवान महावीर कोल्लाक ग्राम पधारे।

·१६ कोल्लाग संनिवेश से सुवर्णखल की ओर विहार
·१७ सुवर्णखल से ब्राह्मणग्राम की ओर विहार
·१८ ब्राह्मणग्राम से चंपा नगरी की ओर विहार

(क) मलय टीका—कोल्लाकः सन्निवेशः, तत्र भगवते बहुलो नाम ब्राह्मणः पारणके पायसं दत्तवान्, ततो दिव्यानि प्रादुर्भूतानि × × ×। ततो भगवान् गोशालेन सह सुवर्णखलं गतः, तस्य बहिः पायसस्थाली भग्ना, × × ×।

ततो सामी बंभणगामं गतो, तत्थ नदो य उवणंदो य दुवे भायरो, गामस्स दो पाडगा, एगो नंदस्स बिइतो उवनंदस्स, ततो सामी नंदस्स पाडयं पविट्ठो नंदघरं च, × × ×, ततो सामी निग्गतो, चंपं गतो, तत्थ वासावासं ठाइ।

—आव० नि गा ४७४। मलय टीका

(ख) गोशालेन समं स्वर्णखलाख्यं सन्निवेशनम्।
प्रत्यचालीत्प्रभुर्मार्गे युगमात्रप्रदत्तदृक् ॥४१३॥
× × ×
स्वाम्यगाद्ब्राह्मणग्रामे द्वौ स्तस्तत्र च पाटकौ।
तयोर्नंदोपनंदाख्यौ स्वामिनौ भ्रातरावुभौ ॥४१६॥
× × ×
स्वामी च प्रययौ चंपां वर्षारात्रं तृतीयकम्।
तत्र चास्थात् प्रतिज्ञातद्विमास क्षपणद्वयः ॥४२६॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो ४१३,४१६,४२६

प्रथम पारणे मे कोल्लाग संनिवेश से बहुल ब्राह्मण ने भगवान को दान दिया। कोल्लाक सन्निवेश से गोशाले के साथ भगवान स्वर्णखल की ओर विहार किया। मार्ग मे भगवान ने विश्राम किया। वहाँ से विहार कर ब्राह्मण ग्राम पधारे। वहाँ नंद और उपनंद नामक दो भाई थे। ग्राम के दो पाडे थे। एक पाडे का मालिक नद तथा दूसरे पाड़े का मालिक उपनन्द था। वहाँ से विहार कर भगवान तृतीय वर्षावास व्यतीत करने के लिए चम्पानगरी पधारे।

.१९ चंपा नगरी से कालाय संनिवेश की ओर विहार

(क) बहिः पुर्या द्वितीयं द्विमासक्षपणपारणम्।
कृत्वा स्वामी सगोशालः कोल्लाकेऽगान्निवेशने ॥
नक्तं तत्रगृहे शून्ये तस्थौ प्रतिमया प्रभुः।
तद्द्वारेऽस्थात्तु गोशालो लीत्वा कपिरिवाऽस्थिरः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो ४२८, ४२९

(ख) ततो चरिमं दोमासियपारणयं बाहिं पारित्ता कालायं नाम सन्निवेशंगतो गोसालेण समं, तत्थ भयवं सुन्नघरे पडिमं ठितो। × × ×।

चम्पानगरी के बाहर दूसरे दो मास क्षमण का पारण कर गोशाला के साथ भगवान कालाय ग्राम पधारे। वहाँ रात्रि मे एक शून्यगृह मे प्रतिमा में स्थित हो गये।

·२० कालाय ग्राम से पत्तकालाय ग्राम की ओर विहार

(क) ततो निग्गंतूण सामी पत्तकालयं नाम गामंगतो।

आव० नि गा ४७५। मलय टीका

(ख) निष्क्रम्य स्वाम्यगाद्ग्रामे पत्रकालेऽभिधानतः।
प्राग्वच्चास्थाच्छून्यगृहे निशायां प्रतिमाधरः॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो ४३६

कालाय ग्राम से निष्क्रमण कर भगवान पत्तकालाय नामक ग्राम पधारे।

·२१ पत्तकालय से कुमाराक संनिवेश की ओर विहार

·२२ कुमारकसंनिवेश से चौराक संनिवेश की ओर विहार

(क) ततो भगवं कुमाराए संनिवेसे गतो, तत्थचंपरमणिज्जेउज्जाणे पडिमंठितो, × × ×। तदनन्तरं भगवान् चोराके सन्निवेशे।

— आव० नि गा ४७७ मलय टीका

(ख) कुमारसन्निवेशेऽगाद् भगवानथ तत्र च।
चंपकरमणीयाख्योद्यानेऽभूत् प्रतिमाधरः।
× × ×।
इयाय नाथं नाथोऽपि चोराकेऽगात्सन्निवेशने॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो ४४५, ४७७ उत्तरार्ध

पत्तकालाय ग्राम से विहार कर भगवान महावीर कुमारक सनिवेश (ग्राम) पधारे। वहाँ चम्पक रमणीयोद्यान मे प्रतिमा मे स्थित हो गये। वहाँ से विहार कर चौराकसंनिवेश पधारे।

·२३ चौराक सन्निवेश से पृष्ठचंपा की ओर विहार

(क) दिनानि कतिचित्तत्रातिवाह्य परमेश्वरः।
तुर्यां प्रावृषमत्येतुं पृष्ठचंपां पुरीं ययौ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो ४८७

(ख) ततो भयवं पिट्ठिचंपं गतो, तत्थ वासारत्तं करेइ ।

आव० नि गा ४७७ मलय टीका मे उद्धृत

.२४ पृष्ठचंपा से कयंगला सन्निवेश की ओर विहार

(ख) पिट्ठीचंपा वासं तत्थ चउम्मासिएण खमणेण ।
कयंगल देउलवरिसे दरिद्दथेराण गोसालो ॥

—आव० नि गा ४७८

मलय टीका—भगवान् पृष्ठचंपायामावासं (वर्षावासं) कृतवान्, तत्र चातुर्मासिकेन क्षपणेन क्षपितवान्, ततो बहिः पारयित्वा कृतांगलसंनिवेशे देवकुले प्रतिमया स्थितः ।

(ख) चतुर्मासस्यन्तदिवसे पारयित्वा बहिः क्वचित् ।
जगाम त्रिजगन्नाथो नगरं कृतमंगलम् ॥
तस्य देवकुलस्यैककोणेतस्थौ समाहितः ।
तस्तंभ इवनिष्कंपः कायोत्सर्गधरः प्रभुः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० ।सर्ग ३ । श्लो ४५१, ४६२

भगवान महावीर ने चतुर्मास के अंत मे कायोत्सर्ग पारकर पृष्टचंपा से विहार कर कृतमंगल—कयंगला (कृतांगल) सन्निवेश पधारे । वहाँ देवालय के एक कोणे में स्तम्भ की तरह खड़े होकर कायोत्सर्ग करने लगे ।

.२५ कृतमंगल (कयंगला) सन्निवेश से श्रावस्ती की ओर विहार

(क) ततो सामी सावत्थि गतो, तत्थ सामी बाहिं पडिमं ठितो ।

—आव० नि गा ४७८ । मलय टीका

(ख) × × × जातेऽथतपतोदये ।
श्रावस्तीं स्वाम्यगात्तस्थौ बहिश्च प्रतिमाधरः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ५०५

कृतमंगल नगर से विहार कर भगवान श्रावस्ती नगरी पधारे । वहाँ नगर के बाहर प्रतिमा में स्थित हो गये ।

.२६ श्रावस्ती नगरी से हलेद्दुक ग्राम की ओर विहार

(क) ताहे सामी हलेद्दुको नाम गामो तंगतो, तत्थ महप्पमाणो हलेद्दुगरुक्खो × × × सामी पडिमं ठितो ।

—आव० नि गा ४७८ । मलय टीका

(ख) किंचित् स्थित्वा प्रभुरगाद्ग्रामं नाम्ना हरिद्रुकम्।
बहिर्हरिद्रुवृक्षस्य तलेऽस्थात् प्रतिमाधरः ॥
—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लोक ५२०

श्रावस्ती नगरी से विहार कर भगवान हरिद्दुक नामक ग्राम पधारे। वहाँ ग्राम के बाहर हरिद्दुक वृक्ष के नीचे प्रतिमा में स्थित हो गये।

·२७ हरिद्दुक ग्राम से नंगला ग्राम की ओर विहार

(क) शान्ते वह्नौ सगोशालो ग्रामेऽगाल्लांगलाभिधे।
स्वाम्यस्थाच्च प्रतिमया वासुदेवनिकेतने ॥
—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ५२७

(ख) ततो हरिद्रकात् ग्रामात् स्वामी नङ्गलायां ग्रामे वासुदेवगृहे प्रतिमया स्थितः।
—आव० नि गा ४८० । मलय टीका

हरिद्दुक ग्राम से विहार कर भगवान नंगला ग्राम पधारे। वहाँ वासुदेव के मन्दिर में प्रतिमा में स्थित हो गये।

·२८ नांगलाग्राम से आवर्त्त ग्राम की ओर विहार

(क) कायोत्सर्गं पारयित्वा ग्राम आवर्तनामनि।
गत्वा स्वामी बलदेवौकस्यस्थात् प्रतिमाधरः ॥
—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ५३४

(ख) ततो भगवान् आवर्त्ते ग्रामे बलदेवगृहे प्रतिमां प्रतिपन्नः।
—आव० नि गा ४८० ।मलय टीका

कायोत्सर्ग पार कर नांगल ग्राम से विहार कर भगवान आवर्त्त ग्राम पधारे। वहाँ बलदेव के मन्दिर में प्रतिमा में स्थित हो गये।

·२६ आवर्त्त ग्राम से चौराक सन्निवेश की ओर विहार

(क) ततो सामी चोरागं नाम सन्निवेशं गतो,
तत्थ गोट्ठियभत्तं सिज्झइ, तत्थ भयवं पडिमं ठितो।
— आव० नि गा ४८० । मलय टीका में उद्धृत

(ख) ततश्च प्रययौ स्वामी चोराके सन्निवेशने।
तत्रैकत्र रहःस्थाने तस्थौ च प्रतिमाधरः ॥
—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ५४२

आवर्त ग्राम से विहार कर भगवान चोराक सन्निवेश पधारे। वहाँ प्रतिमा मे स्थित हो गये।

·३० चौराक ग्राम से कलंबुका सन्निवेश की ओर विहार

(क) तओ सामी कलंबुया नाम संनिवेसो तत्थ गतो।

— आव० नि गा ४८०। मलय टीका मे उद्धृत

(ख) जगाम च जगन्नाथः सन्निवेशं कलंबुकम्।

—त्रिशलाका० पर्व ३। श्लो ५४८। उत्तरार्ध

चोराक ग्राम से विहार कर भगवान कलबुका ग्राम पधारे।

·३१ कलंबुका ग्राम से लाढ देश की ओर विहार—अनार्य देश में प्रवेश

(क) आर्यदेशे विहरता सहाया दुर्लभामया।
तस्मादनार्यदेशेषु विहरिष्यामि संप्रति ॥५५५॥
एवं विमृश्य भगवान्निसर्गक्रूरपुरुषम्।
विवेश लाढाविषयं यादोघोरमिवार्णवम् ॥५६६॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३

(ख) ततो भगवान् लाढासु जनपदे गतः।

—आव० निगा ४८२। टीका

भगवान कलबुका ग्राम से विहार कर अनार्य देश—लाढदेश मे पधारे।

·३२ अनार्य देश से आर्य देश की ओर विहार पूर्णकलाश ग्राम में प्रवेश

(क) तत्रैवं भूरिशः कृत्वा कर्मनिर्जरणं प्रभुः।
कृतकृत्य इवाचालीदार्यदेशस्य संमुखम् ॥
यान्तं च स्वामिनं पूर्णकलश ग्रामसन्निधौ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो ५६१,५६२ पूर्वार्ध

(ख) ततो लाढाभ्यो निर्गतोऽन्तरा पूर्णकलशो नाम ग्रामः।

—आव० नि गा ४८२ टीका

अनार्य देश मे कर्मों की घनीभूत निर्जरा कर भगवान ने आर्य देश की ओर विहार किया, विहार कर पूर्णकलश ग्राम पधारे।

·३३ पूर्णकलश ग्राम से भद्दिलपुर (भद्दिया) की ओर विहार

(क) क्रमेण भद्दिलपुरे स्वाम्यगात्तत्र पंचमीम्।
निन्ये वर्षाचतुर्मासीं चतुर्मासीमुपोषितः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो ५६६

× × × भद्दिय वासासु चउमासं ।

—आव० नि गा ४८२

(ख) टीका × × × ततो भगवान् भद्रिकां नगरीं गतः, तत्र चातुर्मासिकं क्षपणं कृतवान् ।

पूर्णकलश ग्राम से विहार कर भगवान भद्दिया नगरी—भद्दिलपुर पधारे । वहाँ चार मास का उपवास—चौमासी तप करके पचम चतुर्मास किया ।

·३४ भद्दिया नगरी से कदलीसमागम ग्राम की ओर विहार

(क) पारयित्वा बहिः क्वापि विहरंश्च प्रभुः क्रमात् ।

ग्रामे जगाम कदलीसमागम इतीरिते ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ५६७

(ख) ततो बाहिं पारेइ, विहरंतो कयलिसमागमो नाम गामो ।

× × × भगवतः प्रतिमा - कायोत्सर्गः ।

—आव० नि गा ४८२, ४८३ । टीका

भद्दिलपुर से बाहर तप का पारण कर भगवान वहाँ से विहार कर कदली समागम नाम ग्राम पधारे ।

·३५ कदली समागम से जम्बूसंड की ओर विहार

(क) ततो भगवान् जंबूखंडो नाम ग्रामस्तत्र गतः × × × भगवतस्तथैव । प्रतिमा ।

—आव० नि गा ४८३ । टीका

(ख) जंबूखंडाभिधं ग्रामं जगाम भगवानपि ।

प्रतिमास्थे प्रभौ × × ×

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लोक ५७३, ५७४ पूर्वार्ध

कदलिसमागम नामक ग्राम से विहार कर भगवान जबूखण्ड ग्राम पधारे । वहाँ प्रतिमा मे स्थित हो गये ।

·३६ जम्बुसंड से तम्बाय सन्निवेश की ओर विहार

(क) ततो भयवं तंबायं नाम गामो, तस्थ आगच्छति ।

× × × सामी बाहिं पडिमंठितो ।

—आव० निगा ४८३ । टीका

(ख) क्रमेण प्रययौ स्वामी तुंबाके सन्निवेशने ।

बहिश्चास्थत्प्रतिमया गोशालो ग्राममभ्यगात् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ५७५

जंबूसंड से विहार कर भगवान् तंबाय—तुम्बाक नामक ग्राम पधारे। वहाँ बाहर प्रतिमा में स्थित हो गये।

.३७ तम्बाय सन्निवेश से कूपिय सन्निवेश की ओर विहार

(क) अथगाद्विहरन् वीरः कूपिकां सन्निवेशनम्।

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो ५८१ पूर्वार्ध

(ख) भगवान् तंबाके नाम ग्रामे गतः × × ×। ततो भगवान् कूपिकानाम संनिवेशस्तं गतः।

—आव० नि गा ४८४। टीका

तम्बाय ग्राम से विहार कर भगवान कूपिय सन्निवेश पधारे।

३८ कूपिय सन्निवेश से वैशाली की ओर विहार

(क) अथतैश्चकितैर्मुक्तः क्षमितश्च प्रभुः पुरीम्।
विशालीं प्रतिचचाल द्वौ मार्गौ स्तस्तदन्तरे ॥५८७॥
तत्रावोचत गोशालो नायास्यामि त्वया समम्।
मां हन्यमानमपि यत्त्वं तटस्थ इवेक्षसे ॥५८८॥
× × ×
ततो जगाम भगवान् वैशालीगामिनाध्वना।
प्रचचाल गोशाल एको राजगृहाध्वना ॥५६५॥
× × ×
स्वामी जगाम विशाल्यां शालां कर्मारसंश्रिताम्।
अनुज्ञाय जनांस्तत्स्थांस्तस्थौ च प्रतिमाधरः ॥६०५॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३

(ख) तत्थ वच्चताणं दुवे पंथा, ताहे गोसालो भणइ - तुब्भे ममं हम्माणं न वारेह, तुब्भेहिं ममं बहूवसग्गं, अन्नं च अहं चेव पढमं हम्मामि, तो वरं एक्कल्लो विहरिहसं, सिद्धत्थो भणइ तुमं जाणसि, ताहे सामी वेसालीमुहो पयाइ इमो य भयवतो फिडितो अन्नतो पट्ठितो। × × ×।

—आव० नि गा ४८३। मलयटीका में उद्धृत

कूपिय ग्राम से विहार कर भगवान ने वैशाली-विशाला नगरी की ओर विहार किया। मध्य में दो मार्ग थे। (एक विशाला नगरी की ओर, दूसरा राजगृही की ओर।) गोशालक ने

भगवान से कहा—हे नाथ ! मैं आपके साथ नहीं आऊँगा । क्योंकि जब मुझे कोई मारता है तब आप तटस्थ रहते हैं । फलस्वरूप भगवान विशाला नगरी की ओर विहार किया, और गोशालक ने राजगृह की ओर ।

भगवान विशाला नगरी पधारे । वहाँ लोहार की शाला मे आज्ञा प्राप्तकर प्रतिमा मे स्थित हो गये ।

·३९ वैशाली (कम्मार शाला) से ग्रामाक सन्निवेश की ओर विहार

(क) स्वामी च विहरन् प्राप ग्रामाकं सन्निवेशनम् ।
बिभेलिकाभिधानस्य तस्य यक्षस्य सद्मनि ॥
विभेलकोद्यानस्थेस्थात् कायोत्सर्गधरः प्रभुः ।
स यक्षः प्राग्भवस्पृष्टसम्यक्त्वोऽपूजयत्प्रभुम् ।
दिव्यैः पुष्पांगरागाद्यै रनुरागाधिगाधिवासितः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ६११ उत्तरार्ध ६१२,६१३

(ख) गामाग बिहेलग जक्ख तापसी उवसमावसाणथुई ।

— आव० नि गा ४८९ । पूर्वार्ध

टीका—ततो भगवान् ग्रामकं नाम संनिवेशं गतः, तत्र बिभेलके उद्याने भगवतः प्रतिमास्थितस्य बिभेलकनामा यक्षः पूजां कृतवान् ।

वैशाली नगरी से विहार कर भगवान महावीर ग्रामाक नामक सन्निवेश पधारे । वहाँ बिभेलक उद्यान मे बिभेलक यक्ष के मन्दिर मे प्रतिमा मे स्थित हो गये । वहाँ उस यक्ष ने भगवान की पूजा की ।

·४० ग्रामक सन्निवेश से शालीशीर्ष ग्राम की ओर विहार

(क) ग्रामेऽथ शालिशीर्षेऽगात्तत्र च त्रिजगत्प्रभुः ।
उद्यानेऽस्थात्प्रतिमया माघमासस्तदा त्वभूत् ॥६१४॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३

(ख) तदनन्तरं भगवान् शालिशीर्षं नाम ग्रामं गतवान्, तत्रोद्याने प्रतिमा-प्रपन्नस्यकटपूतनाव्यंतरी तापसीरूपं विकुर्वित्वा शीतोपसर्गं कृतवती । अवसाने च रात्रेस्तस्या उपशमो बभूव ।

—आव० नि गा ४८९ । टीका—मलय टीका

ग्रामक ग्राम से विहार कर भगवान शालिशीर्ष ग्राम पधारे । वहाँ उद्यान मे माघ-महिने मे प्रतिमा मे स्थिर हो गये । कटपूतना व्यतरी ने तापसी रूप की विकुर्वणा कर शीतोपसर्ग किया ।

·४१ शालिशीर्ष नगर से भद्दिया नगरी की ओर विहार —

(क) ततो भयवं भद्दियं नाम नयरिं गतो, ततो छट्ठं वासमुवगतो, × × × पच्छा मगहाविसए विहरइ, निरुवसग्गं अट्ठमासे उडुबद्धिए। एतदेव संक्षेपेणाह —

पुणरवि भद्दियनयरे तवं विचित्तं तु छट्ठवासम्मि।
मगहाइ निरुवसग्गं मुणि उउबद्धम्मि विहरित्था॥

—आव० नि गा ४८७

(ख) अथ गत्वा भद्रिकायां पुर्यां तत्थौ तपः परः।
दीक्षायां प्रावृषं षष्ठीमतिवाहयितुं प्रभुः॥६२५॥
गोशालस्तत्र मिलितः षष्ठमासाञ्जगद्गुरोः।
सेवां कुर्वन् प्राग्वदस्थात् प्रत्यहं प्रीतमानसः॥६२६॥
विविधाभिग्रहणपूर्वकं चतुर्मासिक्षपणं तत्र च प्रभुः।
कृत्वा वर्षारात्रनिर्गमे विदधे पारणकं पुरो बहिः॥६२७॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो ६२५ से ६२७

शालीशीर्ष नगर से विहार कर भगवान भद्रिकापुरी पधारे। यहाँ भगवान ने दीक्षा के बाद छट्ठा चतुर्मास किया। वहाँ छह मास के बाद गोशालक भगवान के पास वापस आया।

वर्षाकाल निर्गमन कर नगर के बाहर चार मासक्षमण का पारण किया।

·४२ छट्ठे चतुर्मास के बाद भद्रिकापुरी से मगध देश के विभिन्न भाग की ओर विहार

(क) अथ स्वामी महावीरो गोशालेनानुसेवित·।
मासानष्टानुपसर्गं व्याहार्षीन्मगधावनौ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ४। श्लो १

ततो मुनिः—भगवान् मगधेषु जनपदे ऋतुबद्धे काले निरुपसर्गं व्यहार्षीत्।

—आव० नि गा ४८७। मलय टीका

भद्रिकापुरी से विहार कर भगवान गोशालक के साथ उपसर्गरहित मगध देश की भूमिका में पधारे। वहाँ मगध के विभिन्न भागों मे अष्टमास विचरण किया।

·४३ मगध जनपद से आलंभिया नगरी की ओर विहार

(क) ततो भयवं आलभिं नगरिं गतो, तत्थ सत्तमो वासारत्तो।

—आव० नि गा ४८७। टीका

(ख) पुरीमालभिकां गत्वा सप्तमीं प्रावृषं प्रभुः।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो २ । पूर्वार्ध

मगध देश से विहार कर भगवान् चतुर्मासार्थ आलंभिका नगरी पधारे।

•४४ आलंभिका नगरी से कुडांक सन्निवेश की ओर विहार

(क) ततो बाहिं पारित्ता कुंडागो नाम संनिवेसोतं, एइ, तत्थ वासुदेवघरे कोणे सामी पडिमं ठितो।

—आव० नि गा ४८७ । मलय टीका

(ख) चतुर्मासावसाने च पारयित्वा बहिः प्रभुः।
गोशालसंयुतोऽगच्छत् कुंडके सन्निवेशने॥
तत्र स्वामी वासुदेवायतनस्यैककोणके।
तस्थौ प्रतिमया रत्नप्रतिमेव निवेशिता॥

त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ३, ४

आलभिका नगरी के बाहर पारण कर भगवान गोशाला सहित कुण्डक नामक ग्राम पधारे। वहाँ वासुदेव के मन्दिर मे एक कोणे मे प्रतिमा में स्थित हो गए। मानो रत्नमय प्रतिमा निवेशित—स्थापित हो।

४५ कुंडक ग्राम से मद्दन (मर्दन) सन्निवेश की ओर विहार

(क) ततो निग्गया समाणा मद्दणा नाम गामो, तत्थ बलदेवघरे अंतो कोणे सामी पडिमंठितो।

—आव० नि गा ४८७ । मलय टीका

(ख) कर्मारिमर्दनः स्वामी मर्दनाख्ये निवेशने।
गत्वा चाऽस्थात्प्रतिमया बलदेवनिकेतने॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ११

कर्म रूपी शत्रुओं का मर्दन करने वाले भगवान-कुण्डक ग्राम से विहार कर मर्दन नामक ग्राम पधार। वहाँ बलदेव के मन्दिर मे भगवान प्रतिमा मे स्थित हो गये।

४६ मर्दन ग्राम से बहुसालग ग्राम की ओर विहार

(क) ततो सामी बहुसालगो नाम गामो, तत्थ सालवणं नामं उज्जाणं, तत्थ गतो।

—आव० नि गा ४८८ । मलय टीका

(ख) ग्रामेऽगादूबहुशालाख्ये तपःशाली जगद्गुरुः।
तत्र शालवनोद्याने तस्थौ च प्रतिमाधरः॥

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो १३

मर्दन ग्राम से विहार कर तपस्वी भगवान बहुशालग्राम पधारे। वहाँ शालवनोद्यान मे प्रतिमा मे स्थित हो गये।

·४७ बहुसाल्मा ग्राम से लोहार्गला नगर की ओर विहार —

(क) ततो भगवान् लोहार्गले नगरे गतः।

— आव० नि गा ४८९ ।मलय टीका

(ख) सा श्रान्ता नाथमानर्च नाथोऽपि विहरन् ययौ।
पुरं लोहार्गलंराज्ञाधिष्ठितं जितशत्रुणा ॥१५॥

त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो १५

बहुशाल ग्राम से विहार कर भगवान लोहार्गला नगर पधारे। वहाँ जितशत्रु नामक राजा था।

·४८ लोहार्गला नगर से पुरिमताल नगर की ओर विहार

(क) ततो सामी पुरिमतालं गच्छइ। × × ×। इतोय सामी विहरमाणो सगड-मुहस्स उज्जाणस्स नयरस्स य अंतरा पडिमं ठितो।

—आव ० नि गा ४८९ । मलय टीका

(ख × × × विहरन् भगवान् ययौ।
पुरिमतालाख्ये तत्र चेदं पुराऽभवत्॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो १६

लोहार्गला नगर से विहार कर भगवान पुरिमताल नगर पधारे। वहाँ शकटमुख नामक उद्यान में प्रतिमा मे स्थित हो गए।

·४९ पुरिमताल नगर से उन्नाग सन्निवेश की ओर विहार—

(क) ततो सामी उन्नागं वच्चइ।

—आव० नि गा ४८९। टीका

(ख) उण्णाकं सन्निवेशं च प्रत्यगादूभगवानपि।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ३६ । उत्तरार्ध

पुरिमताल नगर के शकटमुख नामक उद्यान से विहार कर भगवान उण्णाक सन्निवेश पधारे।

·५० उन्नाग ग्राम से गोभूमि की ओर विहार –

(क) स्वाम्यप्यदूरे गत्वाऽस्थात्तत्प्रतीक्षणकाम्यया।
वधूवरनरा नाथं प्रेक्ष्य चैवं व्यचिंतयन्॥
पीठभृच्छत्रभृद्‌वासौ यद्वान्योऽप्यस्य सेवकः।
देवार्यस्य तपोराशेर्यदेषोऽमुं प्रतीक्षते॥
एवं विचिन्त्य तेऽमुञ्चन् गोशालं स्वाम्यमपेक्षया।
समं तेन व्रजन् स्वामी क्रमाद्‌गोभूमिमासदत्॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ४४ से ४६

(ख) ताहे सामी अदूरं गंतुं पडिच्छइ, पच्छाते भणंति—एस एयस्स देवज्ज-गस्स पोढियावाहो वा छत्तधारो वा आसि, ततो एम अदूरे ठितो, ततो मुक्को ××× ततो विहरंतो सामी गोभूमिं वच्चइ।

—आव० नि गा ४८९,४९० । मलय टीका

उण्णाक ग्राम से कुछ दूर जाकर भगवान गोशाले की प्रतीक्षा करते रहे। वरवधू के पुरुष भगवान को देखकर विचार करने लगे कि—देखो ! यह महातपस्वी देवार्य इस पुरुष की प्रतीक्षा करते रहे है। इसलिए यह मनुष्य उनका पीठधारी, छत्रधारी अथवा दूसरा कार्य करने वाला सेवक होगा। ऐसा विचार कर उन लोगों ने भगवान के लिए गोशाले को छोड़ दिया।

तत्पश्चात् भगवान गोशाले के साथ विहरण करते हुए गोभूमि में पदार्पण किया।

·५१ गोभूमि से राजगृह की ओर विहार –

(क) ततो विहरंतो सामी रायगिहं गतो। तत्थ अट्ठमो वासारत्तो।

—आव० नि गा ४९० । मलय टीका

(ख) स्वामी राजगृहे गत्वा वर्षारात्रमथाष्टमम्।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ५२ । पूर्वार्ध

गोभूमि से विहार कर भगवान राजगृह नगर पधारे। वहाँ आठवाँ चतुर्मास किया

·५२ राजगृह नगर से लाढ, वज्रभूमि, सुम्हभूमि की ओर विहार—(आठवें चतुर्मास के बाद) अनार्य देश की ओर विहार—

(क) निर्जार्यं कर्म मेऽद्यापि बह्वस्तीति व्यचिन्तयत्॥५३॥
वज्रभूमिशुद्धभूमिलाढादिम्लेच्छभूमिषु।
कर्मनिर्जरणायाऽगात् स्वामी गोशालकान्वितः॥५४॥

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ५३ । उत्तरार्ध, ५४

(ख) ततो भगवान् राजगृहेऽष्टमं वर्षारात्रं कृतवान्, तदनन्तरं च वज्रभूमौ गतवान्।

आव० नि गा ४६१ । मलय टीका

आठवें चतुर्मास के पश्चात् भगवान ने चिंतन किया कि मुझे अभी बहु कर्मों की निर्जरा करनी है फलस्वरूप कर्म-निर्जरा के लिए भगवान गोशाला सहित वज्रभूमि, शुद्धभूमि, लाढादि म्लेच्छ देशों में विचरण किया। अतः भगवान् राजगृह से लाढ (राढ देश) पधारे।

·५३ वज्रभूमि-सुम्हभूमि-लाढभूमि से सिद्धार्थपुर की ओर विहार
(अनार्य देश से विहार)

·५४ सिद्धार्थपुर से कूर्मग्राम की ओर विहार

(क) ततो अणारियदेसातो निग्गया पढमसरए सिद्धत्थपुरातो कुम्मगामं संपत्थिता।

—आव० नि गा ४६१ । मलय टीका

(ख) सगोशालस्ततः स्वामी सिद्धार्थपुरमाययौ।
ततोऽपि प्राचलद् ग्रामं कूर्मग्रामाभिधं प्रति॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ६७

अनार्य देश से विहार कर भगवान गोशालक के साथ सिद्धार्थपुर ग्राम पधारे। इसके पश्चात् सिद्धार्थपुर ग्राम से कूर्म ग्राम की ओर विहार किया।

(ग) गोशालेनान्वीयमानो दुर्धिया भक्तमानिना।
कूर्मग्रामाभिधे ग्रामे जगाम भगवानपि॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ७५

(घ) ततो दोऽवि कुम्मगामं संपत्ता।

आव० नि गा ४६२ । मलय टीका

भगवान विहार करते हुए गोशाला सहित कूर्मग्राम पधारे।

·५५ कूर्मग्राम से सिद्धार्थपुर की ओर विहार

(क) अन्नया सामी कुम्मगामातो सिद्धपुरं पत्थितो।

—आव० नि गा ४६२ । मलय टीका

(ख) कूर्मग्रामाच्च गोशालेनान्वितः परमेश्वरः।
प्रतस्थे प्रतिसिद्धार्थपुराख्यं नगरोत्तमम्॥

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो० १२५

कूर्म ग्राम से विहार कर भगवान गोशाला सहित सिद्धार्थपुर नामक उत्तम नगरी की ओर चले।

·५६ सिद्धार्थपुर से वैशाली नगरी की ओर विहार—

(क) नाथोऽपि सिद्धार्थपुराद्वैशालीं नगरीं ययौ।
शंखः पितृसुहृत्तत्राभ्यानर्च गणराट् प्रभुम्॥

- त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो १३८

(ख) ततो भगवं वेसालिं नगरिं पत्तो, तत्थ संखो नाम गणराया, सिद्धत्थस्स रण्णो मित्तो, सो तं पूएइ।

—आव०नि गा ४९३ । मलय टीका

सिद्धार्थपुर से विहार कर भगवान वैशाली नगरी पधार। वहाँ भगवान के पिता के मित्र शंखगण राजा ने भगवान की पूजा की।

·५७ वैशाली से वाणिज्य ग्राम की ओर विहार

(क) ततः प्रतस्थे भगवान् ग्रामं वाणिजकं प्रति।
मार्गे गंडकिकां नाम नदीं नावोत्ततार च॥१३६॥
अथ वाणिजकग्रामं जगाम भगवानपि।
बहिश्च धर्मध्यानस्थस्तत्राऽस्थात् प्रतिमाधरः॥१४१॥

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो १३६,१४१

(ख) पच्छा वाणियगामं पहावितो, तत्थ अंतरा गंडइया नदी, तं सामी नावाए उत्तिण्णो। ××× ततो भयवं वाणियगामं गतो।

—आव० नि गा ४९३,९४ । मलय टीका

वैशाली से भगवान वाणिज्य ग्राम की ओर विहार किया। मार्ग मे गण्डकिका नदी (मण्डकिका नदी) नाव से पार की, नाव से उतरे।

तत्पश्चात् भगवान वाणिज्य ग्राम पधारे। ग्राम के बाहर प्रतिमा मे स्थित हो गये।

·५८ वाणिज्यग्राम से श्रावस्ती नगरी की ओर विहार

(क) कायोत्सर्गं पारयित्वा श्रावस्त्यां पर्युपेत्य च।
दीक्षातो दशमं वर्षाकालं स्वाम्यत्यवाहयत्॥

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो १४८

(ख) ततो सामी सावत्थिं गतो, तत्थ दसमं वासारत्तं। विचित्तं तवोकम्मं ठाणाईहिं।

—आव० नि गा ४९४ । मलय टीका

वाणिज्य ग्राम मे कायोत्सर्ग को पार कर वहाँ से विहार कर श्रावस्ती नगरी पधारे।

·५६ श्रावस्ती नगरी से सानुलष्टिय सन्निवेश की ओर विहार

(क) पारयित्वा बहिस्तत्र ग्रामेऽगात्सानुयष्टिके।
भद्रां च प्रतिमां तत्र भगवान् प्रत्यपद्यत॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो १४१

(ख) तदनन्तरं सानुलष्टिग्रामं गतः। तथ बाहिं भद्दपडिमं ठितो।

—आव० नि गा ४९५ । मलय टीका

श्रावस्ती नगरी के दशवें चतुर्मास के बाद नगर के बाहर पारणा कर भगवान सानुय-ष्टिक ग्राम पधारे।

·६० सानुयष्टिक ग्राम से दृढभूमि—पेढालग्राम की ओर विहार

(क) पारयित्वा प्रभुस्तत्र विहरन् पृथिवीमिमाम्।
दृढभूमिमनुप्राप बहुम्लेच्छकुलाऽऽकुलाम्॥१६०॥
पेढालग्रामं निकषा पेढालाराममन्तरा।
कृताष्टमतपःकर्मा पोलासं चैत्यमाविशत्॥१६१॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४

(ख) दढभूमि बहुमिच्छा पेढालग्गामागओ भयवं।
पोलासचेइयम्मि ठिएगराइं महापडिमं।

—आव० नि गा ४९७

टीका—दृढभूमिर्नाम बहुम्लेच्छा, तत्र पेढालग्राममागतो भगवान्, तस्यबहिः पोलाशे चैत्ये-व्यन्तरायतने एकरात्रिकीं महाप्रतिमांस्थितः।

सानुयष्टिक ग्राम से विहार कर भगवान महावीर प्रचुर म्लेच्छ लोगों से भरपूर दृढ-भूमि में पधारे। वहाँ पेढाल ग्राम के नजदीक पेढाल नामक चैत्य में अष्टभक्त (तीन दिन का उपवास) तप से प्रवेश कर एक रात्रि की महाप्रतिमा में स्थित हो गये।

·६१ पेढालग्राम से बालुका ग्राम की ओर विहार—

(क) पथि सूर्यकरस्पृष्टे युगमात्रप्रदत्तदृक्।
भगवान् बालुकाभिख्यं ग्रामं प्रत्यचलत्ततः॥२८४॥
जगाम बालुकाग्रामं प्रशमामृतसागरः।
जानुदघ्नं बालुकायां मज्जत्पादो जगद्गुरुः॥२८७॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो २८४, २८७

(ख) सामी वालुया नाम गामो तं पहावितो, तत्थंतरा पंच चोरसए विउव्वइ वालुगं च, जत्थ बहुतरं खुप्पइ, पच्छा तेहि पव्वयगुरुतरेहि माउलोत्ति वाहितो, सागयं च वज्जसरीरा देंति जेहिं पव्वयावि फुटेज्जा, ताहे वालुयागामं गतो।

—आव० नि गा ५०१ । टीका

पेढालग्राम से विहार कर भगवान वालुका ग्राम पधारे। मार्ग मे अधम संगमदेव ने पाँच सौ चोर और वालुका की विकुर्वणा की। वे पाँच सौ चोर 'मातुल! मातुल! कह कर भगवान का इस प्रकार आलिंगन करते थे यदि पर्वत होता तो फूट जाता।

·६२ वालुका ग्राम से सुभौम (सुयोग) ग्राम की ओर विहार

ततः सुभौमग्रामे गतः।

—आव० नि गा ५०६ । मलय टीका

वालुका ग्राम से विहार कर भगवान सुभौम ग्राम पधारे।

·६३ सुभौमग्राम से सुच्छेत्ता ग्राम की ओर विहार

ततो भयवं निग्गंतूण सुच्छेत्ता नाम गामो तहिंवच्चइ।

—आव० नि गा० ५०१ । टीका

सुभौम ग्राम से विहार कर भगवान सुक्षेत्र ग्राम पधारे।

·६४ सुच्छेत्ता ग्राम से मलय ग्राम की ओर विहार

ततो सामी सुच्छेत्तातो विनिग्गंतूण मलयं नाम गामं गतो।

—आव० नि गा ५०६ । मलय टीका

सुक्षेत्र ग्राम से विहार कर भगवान मलय ग्राम पधारे।

·६५ मलय ग्राम से हस्तिशीर्ष ग्राम की ओर विहार

ततो निग्गतो हत्थिसीसं नामं गामं गतो।

—आव० नि गा ५०६ मलय टीका

मलय ग्राम से विहार कर भगवान हस्तिशीर्ष ग्राम पधारे।

·६६ हस्तिशीर्ष नगर से तोसलि ग्राम की ओर विहार

ततो भगवान् तोसलिग्रामं गतः।

—आव० नि गा ५०८ । मलय टीका

हस्तिशीर्ष नगर से विहार कर भगवान् तोसलिग्राम पधारे।

·६७ तोसलि ग्राम से मोसलि की ओर विहार

भगवान् मोसलिं गतः।

—आव० नि गा ५०६ । मलय टीका

तोसलिग्राम से विहार कर भगवान् मोसलिग्राम पधारे।

·६८ मोसलि ग्राम से तोसलिक ग्राम की ओर विहार

तओ भगवान् तोसलिकग्रामं गतः ।

—आव० नि गा ५०९ मलय टीका

मोसलि ग्राम से विहार कर भगवान तोसलिक ग्राम पधारे ।

·६९ तोसलिक ग्राम से सिद्धार्थपुर की ओर विहार

ततो सामी सिद्धत्थपुरं गतो ।

—आव० नि गा ५०९ । मलय टीका में उद्धृत

तोसलिक ग्राम से विहार कर भगवान् सिद्धार्थपुर पधारे ।

·७० सिद्धार्थपुर से वज्रग्राम की ओर विहार

·७१ वज्रग्राम से आलंभिया नगरी की ओर विहार

(क) द्वितीयेऽथ दिवसे तत्रगोचरचर्यया ।

प्राविशद्गोकुलवरे पारणेच्छुर्जगद्गुरुः ॥३१९॥

× × ×

ततश्च विहरन् स्वामी पुरीमालभिकां ययौ ।

तस्थौ प्रतिमया तत्रालेख्यस्थ इव सुस्थिरः ॥३२२॥

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो० ३१९, ३२२

(ख) ततो द्वितीयदिने वजगामे गोकुले भिक्षार्थं हिण्डते । × × × । ततो सामी आलंभियं गतो ।

आव० नि गा ५१०, ५११ । मलय टीका

भगवान महावीर द्वितीय दिन वज्रग्राम पधारे । वहाँ से विहार कर आप आलंभिका नगरी पधारे ।

·७२ आलंभिया नगरी से सेयविया-श्वेताम्बिका नगरी की ओर विहार

·७३ श्वेताम्बिका नगरी से श्रावस्ती नगरी की ओर विहार

(क) ततो सेयवियं गतो, तत्थहरिस्सहोपियपुच्छगोएइ, ततो सावत्थिं गतो, बाहिंपडिमंठितो ।

—आव० नि गा ५१३ । मलय टीका

(ख) भगवानपि निर्गत्य नगरीं श्वेतवीं ययौ ।

विद्युदिन्द्रो हरिसहस्तत्रैत्याऽवन्दत प्रभुम् ॥

आख्यायसोऽपिहरिवज्जगामनिजमाश्रयम् ।

नाथोऽपि गत्वा श्रावस्त्यांतस्थौ प्रतिमयास्थिरः ।

त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो० ३२७, ३२८

आलंभिका नगरी से विहार कर भगवान श्वेताम्बिका नगरी पधारे। वहाँ हरिसह नाम इन्द्र ने भगवान को वन्दना की। वहाँ से विहार कर भगवान श्रावस्ती नगरी आये और वहाँ प्रतिमा मे स्थित हो गये।

·७ श्रावस्ती नगरी से कौशाम्बी नगरी की ओर विहार

·७५ कौशाम्बी नगरी से वाराणसी नगरी की ओर विहार

·७६ वाराणसी नगरी से राजगृह की ओर विहार

·७७ राजगृह से मिथिला नगरी की ओर विहार

(क) ततो सामी कोसंबिगतः, तत्थ चंदसूरासविमाणा महिमं करेंति पियं च पुच्छंति, वाणारसीए सक्कोपियं पुच्छइ, रायगिहे ईसाणो, मिहिलाए जणगो रायापूयं करेइ, धरणोय पियपुच्छतोएइ।

—आव० नि गा ५१५ मलय टीका

(ख) महिमानं प्रभोश्चक्रः कौशाम्बीं च ययौ प्रभुः ॥३३८॥
तत्राऽर्केन्दू सविमानौ जिनेन्द्रं प्रतिमास्थितम्।
भक्त्याऽभ्येत्य ववन्दाते सुयात्राप्रश्नपूर्वकम् ॥३३९॥
क्रमाच्च विहरन् स्वामी ययौ वाराणसीं पुरीम्।
अभ्येत्य तत्र शक्रेण ववन्दे मुदितात्मना ॥३४०॥
ततो राजगृहे गत्वा स्थितं प्रतिमया प्रभुम्।
ईशानेन्द्रोऽनमद्भक्त्या सुयात्राप्रश्नपूर्वकम् ॥३४१॥
गतोऽथ मिथिलापुर्यां स्वामी जनकभूभुजा।
धरणेन्द्रेण चाऽपूजि प्रियप्रश्नविधायिना ॥३४२॥

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो० ३३८ उत० ३३९ से ३४२

श्रावस्ती नगरी से विहार कर भगवान कौशाम्बी नगरी पधारे। वहाँ प्रतिमा मे स्थित भगवान को सूर्य-चन्द्र मूल विमानको साथ मे लेकर भक्ति से सुखसाता पूर्वक वन्दना की फिर वहाँ से अनुक्रम से विहार कर भगवान वाराणसी नगरी पधारे। वहाँ शक्रेन्द्र ने आकर भगवान को वन्दना की। वहाँ से विहार कर भगवान राजगृह पधारे। वहाँ प्रतिमा मे स्थित भगवान को ईशानेन्द्र ने वन्दना की। वहाँ से विहार कर भगवान मिथिला नगरी पधारे। वहाँ जनक राजा व धरणेन्द्र ने वन्दना की।

·७८ मिथिला नगरी से वैशाली की ओर विहार

ततो विहरमाणोऽगाद्वैशालीं नगरीं प्रभुः।
तत्र चैकादशो वर्षाकालो व्रतदिनादभूत् ॥

तस्यां च समरोद्याने बलदेवनिकेतने।
चतुर्मासक्षपणभृत्तस्थौ प्रतिमया प्रभुः॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ३८३, ४४

मिथिला नगरी से विहार कर भगवान वैशाली—विशाला नगरी पधारे। वहाँ दीक्षा के बाद ग्यारवाँ चतुर्मास किया। बलदेव के मन्दिर मे भगवान चार मास क्षमण स्वीकार कर प्रतिमा मे स्थित हो गये।

·७६ ग्यारहवें चतुर्मास के बाद वैशाली विशालानगरी से ससुमारपुर नगर की ओर विहार

(क) पारयित्वा प्रभुरपि विहरन्नन्यतो ययौ।

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो० ३६४ । पूर्वार्ध

विशाला नगरी मे चार मास क्षमण का पारणा कर भगवान वहाँ से विहार किया।

(ख) ते णं कालेणं, तेणं समए णं अहं गोयमा। छउमत्थकालियाए एक्कारस-वासपरियाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे, पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दुइज्जमाणे जेणेव सुंसुमारपुरे नगरे जेणेव असोय-वणसंडे उज्जाणे, जेणेव असोयवरपायवे, जेणेव पुढवीसिलापट्टओ तेणेव उवा-गच्छामि, असोगवरपायवस्स हेट्ठा पुढवीसिलावट्टयंसि अट्ठमभत्तं परिगिण्हामि, दो वि पाए साहट्टु वग्घारियपाणी, एगपोग्गलनिविट्ठदिट्ठी, अणिमिसणयणे ईसिपब्भा-रगएणं काएणं, अहापणिहिएहिं गत्तेहिं, सव्विंदिएहिं गुत्ते एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जेत्ता णं विहरामि।

भग० श ३ । उ २ । सू १०५

(ग) इतश्च नगरग्रामाकद्रोणमुखादिषु।
विहरन् भगवान् वीरः सुंसुमारपुरं ययौ।
तत्रोद्यानेऽशोकखंडेऽधोऽशोकद्रोः शिलातले।
कृताष्टमप्रभुर्भेजे प्रतिमामेकरात्रिकीम्॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो० १७२,१७३

(घ) ततो वैशालीनगरीमगमत्, ××× तदनन्तरं च भगवान् सुसमारपुरं गतः।

—आव० नि गा ५१७ । मलय टीका

वैशाली नगरी से विहार कर भगवान नगर, ग्राम, आण और द्रोणमुख आदि स्थानों में विहार करते हुए सुसुमारपुर आये।

वहाँ अशोक खण्ड नामक उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे एक शिलातल पर अष्टम भक्त तप कर भगवान एक रात्रि की भिक्षु-प्रतिमा धारण की। उस समय दीक्षा ग्रहण हुए भगवान को ग्यारह वर्ष हो गये थे।

·८० सुंसुमारपुर नगर से भोगपुर की ओर विहार

(क) प्रातर्नाथोऽपि संहृत्य प्रतिमामेकरात्रिकीम्।
क्रमेण विहरन् प्राप पुरं भोगपुराभिधम्।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो० ४६७

(ख) ततो भोगपुरं स्वामी गतवान्।

—आव० नि गा ५१७ । मलय टीका

प्रातः काल एक रात्रि की प्रतिमा पार कर अनुक्रमतः विहार करते-करते भगवान भोगपुर पधारे।

·८१ भोगपुर से नन्दी ग्राम की ओर विहार

·८२ नन्दी ग्राम से मेंढिक ग्राम की ओर विहार

·८३ मेंढक ग्राम से कौशाम्बी नगरी की ओर विहार

(क) नन्दिग्रामं ययौ ग्रामं विहरन् भगवानपि।
नन्दिना पितृमित्रेण भक्तितस्तत्र चार्च्यत॥४७१॥
ग्रामेऽथ मेण्ढकग्रामे भगवान् विहरन् ययौ।
दधावे तत्र हन्तुं च गोपालो वालरज्जुभृत्॥४७२॥
कूर्मार ग्रामवत्तत्र त्वन्तमेत्य पुरन्दरः।
गोपं निवारयामासववन्दे च जगद्गुरुम्॥४७३॥
ततो निष्क्रम्य भगवान् कौशाम्बीं नगरीं ययौ।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो० ४७१ से ४७३,४७४ पूर्वार्ध

(ख) ततो सामी नंदिगामं गतो, तत्थ नन्दीगामं भगवतो पियमित्तो सो महिमं करेति, ततो मिंढियगाममेति, तत्थ गोवो उवसग्गं काउमारद्धो, जहा कुमार-गामेताहेव वालरज्जुएण आहणंतो सक्केण तासितो। × × ×।

ततो सामी कोसंबिं गतो।

—आव० नि गा ५१७ मलय टीका

भोगपुर नगर से विहार कर भगवान नंदीग्राम पधारे। वहाँ नंदी नामक भगवान के पिता का मित्र था। उसने भक्ति पूर्वक भगवान की पूजा की। वहाँ से विहार कर भगवान मेंढक ग्राम पधारे। वहाँ एक गोपाल बाल रज्जू लेकर भगवान को मारने के लिए दौड़ा। वहाँ कुमार गाँव की तरह इन्द्र आकर गोप को वारण किया और भगवान को भक्ति से वन्दना की। वहाँ से विहार कर भगवान कौशाम्बी नगरी पधारे।

'८४ कौशाम्बी नगरी से सुमंगल ग्राम की ओर विहार

'८५ सुमंगल ग्राम से सुच्छेत्ता की ओर विहार

'८६ सुच्छेत्ता से पालक ग्राम की ओर विहार

(क) नाथोऽपि विहरन् प्राप ग्रामं नाम्ना सुमंगलम्।
तस्मिन् सनत्कुमारेन्द्रेणाऽभ्युपेत्याऽभ्यवन्द्यत ॥ ६०१ ॥
ततो जगाम भगवान् सुक्षेत्रे सन्निवेशने।
तस्मिन्माहेन्द्रकल्पेन्द्रेणैत्य भक्त्याऽनमस्यत ॥ ६०२ ॥
नाथोऽथ पालकग्रामे ययौ तत्रत्स्वदृश्यत।
वणिजा वायलाख्येन यात्रायै चलता सता ॥ ६०३ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४

(ख) ततो सामी कोसंबीतो निग्गंतूण सुमंगलं नाम गामं गतो, तत्थ सणंकुमारो एइवदति पियं च पुच्छइ, तत्थ पढमं सिद्धीकंदगनिवारणत्थमागतो संपयं पुण पियपुच्छगोत्ति। ततो सामी सुच्छेत्तं गतो, तत्थ माहिंदो पियपुच्छतो एइ, ततो सामी पालगं नाम गामं गतो। तत्थ वाइलो नाम वाणिओ जत्ताए पधावितो सामिं पेच्छइ।

—आव० नि गा ५२०

कोशांबी नगरी से प्रस्थान कर भगवान सुमंगल ग्राम पधारे। सनत्कुमार इन्द्र ने आकर वन्दना की। वहाँ से विहार कर भगवान सत्क्षेत्र ग्राम पधारे। वहाँ माहेन्द्र कल्प के इन्द्र ने आकर भक्ति से वन्दना की। वहाँ से विहार कर भगवान पालक ग्राम पधारे। वहाँ वाइल नामक वणिक ने भगवान को यात्रा करते हुए देखा।

'८७ पालक ग्राम से चम्पा नगरी की ओर विहार

(क) स्वामी च विहरन् प्राप चम्पां नाम महापुरीम् ॥ ६०५ ॥
तत्राग्निहोत्रशालायां स्वातिदत्तद्विजन्मनः।
तस्थौ वर्षाचतुर्मासीं द्वादशीं स्वाम्युपोषितः ॥ ६०६ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४

(ख) ततो सामीचंपं नयरिंगतो, तत्थ सोमदत्तमाहणस्स अग्गिहोत्तसालाए बसहिं उवगतो, तत्थ चाउम्मासं खमइ।

—आव० नि गा ५२१। टीका

पालक ग्राम से विहार कर भगवान चम्पानगरी पधारे। वहाँ सोमदत्त (स्वादिदत्त) नामक ब्राह्मण की अग्निहोत्र की शाला मे बारहवाँ चतुर्मास किया।

·८८ बारहवें चतुर्मास के बाद भगवान् चम्पा नगरी से जम्भिय ग्राम की ओर विहार

(क) चतुर्मास्यत्यये स्वामी जृम्भकग्राममाययौ।
तत्र नाट्यविधिं शक्रो दर्शयित्वाऽब्रवीदिति ॥ ६१४ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ४

(ख) ततो भयवं चंपातो निग्गतो जंभियगामं गतो, तत्थ सक्को आगतो वंदित्ता पुच्छत्ता नट्टविहिं उवदंसित्ता।

आव० नि गा ५२२। मलय टीका

चम्पा नगरी से विहार कर भगवान जृंभिक ग्राम पधारे।

·८६ जंभिय ग्राम से मेंढिय ग्राम की ओर विहार

(क) श्रीवीरोऽप्यगमद् ग्रामे मेंढकग्रामनामनि ॥ ६१६ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ४

(ख) ततो सामी मिंढियगामंगतो।

—आव० नि गा ५२२। मलय टीका

जृंभिक ग्राम से विहार कर भगवान मेढिक ग्राम पधारे।

६० मेंढिय ग्राम से छम्माणि ग्राम की ओर विहार

(क) ग्रामं षण्मानिनामानं जगाम भगवानपि।
बहिश्च कायोत्सर्गेण तस्थौ ध्यानपरायणः ॥६१८ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ४

(ख) ततो भयवं छम्माणिं नाम गामंगतो, तस्स बाहिं पडिमं ठितो।

—आव० नि गा ५२३। मलय टीका

मेढिक ग्राम से विहार कर भगवान छम्माणि-षण्मानि ग्राम पधारे। वहाँ ग्राम के बाहर प्रतिमा में स्थित हो गये।

·६१ छम्माणि ग्राम से मध्यम पावा नगरी की ओर भगवान् का विहार

(क) भयवतो तदारवेयणिज्जं कम्मं उइन्नं, ततो सामी मज्झिमं पावंगतो।

—आव० नि गा ५२३। मलय टीका

(ख) प्रणष्टमायामिथ्यादिशल्योऽपि श्रुतिशल्यभाग् ।
अकम्पितः शुभध्यानादपापां मध्यमां ययौ ॥ ६२६ ॥

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ६२६

माया और मिथ्यादर्शन रूप शल्य जिनके नाश हो गये हैं ऐसे भगवान कान में प्रवेशित शल्य से शुभ ध्यान से तनिक भी प्रकम्पित नहीं हुए। जृम्भक ग्राम से विहार कर भगवान मध्यम अपापानगरी पधारे।

·६२ मध्यम पावा नगरी से पुनः जम्भिय ग्राम की ओर विहार

(क) स्वामी जगाम ऋजुपालिकया महत्या ।
नद्या सनाथमथ जृम्भकसन्निवेशम् ॥ ६५८ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो० ६५८

(ख) ततो सामी जंभियगामं गतो ।

—आव० नि गा ५२४ । टीका

मध्यम अपापानगरी से विहार कर भगवान ऋजुबालिका नदी के निकट जृम्भक ग्राम पधारे।

·६२ १ जंम्भिय ग्राम के बाहर केवलज्ञान-केवलदर्शन समुपन्न

क) जंभिय बहिः उज्जुवालिय तीरवियावत्त सामसालअहे ।
छट्ठेणुक्कुडुयस्स उ उप्पन्नं केवलनाणं ।

—आव० नि गा ५२५

(ख) जगन्नाथोऽथ तत्रर्जुपालिकोत्तररोधसि ।
× × ×
यामे चतुर्थेऽह्नो भर्तुरुदपद्यत केवलम् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ५ । श्लो १ पूर्वार्ध, ४ उत्तरार्ध

चूंकि जृम्भक ग्राम के पदार्पण के समय भगवान महावीर छद्मस्थ थे। जृम्भक ग्राम के बाहर ऋजु बालिका नदी के उत्तर तीर पर भगवान महावीर को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

·६३ भगवान के जनपद विहार—आर्य-अनार्य देश में विहरण

(क) मगहारायगिहाइसु मुणओ खेत्तारिएसु विहरिंसु ।
उसभो नेमी पासो वीरो य अणारिएसुं पि ॥

—आव० नि गा

मलय टीका—मन्यन्ते स्म जगतः समस्तस्यापि त्रिकालावस्थामिति मुनयो—भगवंतस्तीर्थकृतस्ते सर्वेऽपि मगधादिषु जनपदेषु राजगृहादिषु नगरेषु क्षेत्रार्येषु—

आर्यक्षेत्रेषु विहृतवंतः, × × ×, ऋषभस्वामी अरिष्ठनेमिः पार्श्वनाथो वीरश्च भगवानित्येते चत्वारस्तीर्थकृतोऽनार्येष्वपि क्षेत्रेषु विहृतवंतः।

भगवान ऋषभनाथ से वद्धमान—सभी तीर्थंकरों ने आर्य क्षेत्र मे— मगधादि देशों मे, राजगृह आदि नगरी मे विचरण किया। लेकिन ऋषभनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और वीर भगवान ने अनार्यक्षेत्र मे भी विचरण किया।

(ख) जिनेशोऽपि बहून् देशान् नानाग्रामपुराटवीः।
वायुवद्विहरन्नित्यं निर्ममत्वः प्रयत्नतः॥ ३६॥

—वीरवर्धच० अधि १३। श्लो ३६

वीर जिनेश नाना ग्राम, पुर, अटवी और अनेक देशो मे वायु के समान निर्ममत्व होकर प्रयत्न के साथ (जीव रक्षा करते) और नित्य विहार करते हुए विचरने लगे।

(ग) प्रभुः प्रभञ्जन इवाऽप्रतिबद्धोऽब्धिमेखलाम्।
नानाग्रामपुरारण्यां विजहारवसुन्धराम्॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो ४५

भगवान महावीर दीक्षित होकर विविध ग्राम, पुर, अरण्य मे विचरने लगे।

·६३·१ उज्जयिनी में विहरण

(घ) इत्यादिपरमाचारालंकृतो विहरन्महीम्।
उज्जयिन्याः श्मशानं देवोऽतिमुक्तकाख्यमागमत्।

- वीरवर्धच० अधि १३। श्लो ५६

परम आचार से अलकृत वीर जिनेन्द्र पृथ्वी पर विहार करते हुए उज्जयिनी के अतिमुक्त नाम के श्मशान मे आये।

·६३·२ लाढ देश में विचरण का संकल्प

नोट—साधना काल के पाँचवे वर्ष मे और दूसरी बार नववें वर्ष मे भगवान लाढदेश की वज्रभूमि और सुम्हभूमि मे विहरण किया—

(क) भगवं चिंतेति बहुंकम्मं निज्जरेयव्वं लाढाविसयं वच्चामि, ते अणारिया, तत्थ निज्जरेमि, तत्थ भगवं अत्थारियदिट्ठतं हिदए करेति, ततो भगवं निग्गतो लाढाविसयं पविट्ठो।

× × ×

(ख) तत्थ अट्ठमं वासारत्तं चाउम्मासखमणं, विचित्ते य अभिग्गहे, बाहिं पारित्ता, सरदे समतीए दिट्ठंतं करेति, सामी चिंतेति—बहुंकम्मं 'ण सक्कामिज्जरेउ"

ताहे सतेमेव अत्थारियदिट्ठं त पडिकप्पेति, जहा एगस्स कुडुंबियस्स सालीजाता, ताहे सो कप्पडियपंथिए भणति तुब्भं हियच्छित्तं भत्तं देमि ममलुणह, पच्छाभे जहासुहं वच्चह, एवं सो ओवातेण लुणावेति, एवं चेव ममेवि बहुंकम्मं अच्छति, एतं तडच्छारिएहिं णिज्जरावेयव्वंति अणारियदेसेसु, ताहे लाढावज्जभूमिं सुद्धभूमिं च वच्चइ।

—आव० चू० पृ० २१०–२११

(ख) क्षमयित्वाऽमुचन्मेघो नाथं नाथोऽपि चावधेः।
ज्ञात्वाऽचिन्तयदद्यापि निर्जार्यं बहुकर्म मे ॥ ५५३ ॥
कर्मासहायैस्तन्मन्ये न हि क्षय्यं कथमपि।
जय्यं महद् द्विषच्चक्रं विना खलु सैनिकैः ॥५५४॥
आर्यदेशे विहरता सहाया दुर्लभा मया।
तस्मादनार्यदेशेषु विहरिष्यामि संप्रति ॥५५५॥
एवं विमृश्य भगवान्निसर्गक्रूरपूरुषम्।
विवेश लाढाविषयं याद्गोघोरमिवार्णवम् ॥५५६॥

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ३

(ग) निर्जार्यं कर्म मेऽद्यापि बहस्तीति व्यचिन्तयत्।
वज्रभूमिशुद्धभूमिलाढादिम्लेछभूमिषु।
कर्मनिर्जरणायाऽगात् स्वामी गोशालकान्वितः ॥ ४४ ॥

-त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ४

अभी मेरे कर्म बहुत बाकी है। कर्म-सहाय बिना जल्दी कर्मों का क्षय नहीं होता क्योंकि सैनिकों के बिना शत्रुओं को नहीं जिता जा सकता है —आर्य देश में मुझे वैसा सहाय्य मिलता नहीं है अत: लाढ देश में मुझे विहरण करना अच्छा है।

.३७ नौका में विहार

१ गंगा में नौका विहार

(क) सुरभिपुरं सिद्धदत्तो गंगा कोसिय विऊ य खेमलतो।
नागसुदाढे सीहे कंबलसबलाण जिणमहिमा ॥ ४६६ ॥

-- आव० नि गा ४६६ । उत्तरार्ध

मलय टीका—सुरभिपुरं भगवान् गतः, तत्र गंगा नाम नदी, सिद्धयात्रो नामनाविकः, तत्र नावमारोहति, जने कौशिको महाशकुनापरपर्यायो वासितवान्,

खेमलकश्च शकुनविद्वान्अवादीत्—यदि परमे तस्य भगवतः प्रभावेन जीवाम इति, अत्रान्तरे × × ×। नागो-नागकुमारः, सुदंष्ट्रनामा सिंहजीवो, भगवत उपसर्गं कर्त्तु मारब्धवानिति शेषः, कंबलशबलौ च नागकुमारौ तंवारयित्वा जिनस्य भगवतो महिमां चक्रतुः ॥

× × × ततो भक्ते प्रत्याख्याते सति नागकुमारेषूत्पन्नौ, तदन्तरमवधि-प्रयोजनं, ततो भगवतः समीपे आगमनं, किमर्थमित्यत आह 'वीरवरस्से' त्यादि, वीरवरस्स भगवतो नावारूढस्य मिथ्यादृष्टिः सुदंष्ट्रनामा नागकुमारोऽकार्षीत् (उपसर्गं) ततो भगवंतमुपसर्गयितु प्रारब्धं कम्बलशबलौ नावमुत्तारितवन्तौ।

(ख) ततो सुरभिपुरं गतो, तत्थ गंगा उत्तरियव्विया, तत्थ सिद्ध जत्तोणाम णाविओ, खेमिलो नेमित्तियो, तत्थ य णावाए लोगो विलग्गति, तत्थ य कोसिएण महासद्दणेण वासितं, तत्थ सो नेमित्तिओ वागरेति—जारिसंसउणेण भणियं तारिसं अम्हेहि मारणंतिय पावियव्वं, कि पुण इमस्स महरिसिस्स पभावेण मुच्चीहामो, सा य णावा पहाविता, × × × सो संवट्टगवातं विउव्वित्ता णावं उब्बोलेतु इच्छति × × × ततो सामीवि उत्तिन्नो।

—आव० चू० पूर्व भाग-पृ० २८०-८१

भगवान श्वेताम्बी से विहार कर सुरभिपुर जा रहे थे। बीच में गङ्गा नदी आगयी। भगवान ने नदी पार की। सिद्धदत्त नाम का नाविक था। उस नौका में खेमिल नाम का नैमित्तज्ञ था। उल्लूका अपशकुन हुआ-तब खेमिल नैमित्तज्ञ ने कहा—इस महर्षि के कारण नौका पार हो गए।

कम्बल-सबल नामक नागकुमारों ने नौका को पार करने में सहयोग दिया। यद्यपि सुदंष्ट्र नागकुमार भगवान का वैर पोषण करने के लिए नौका को डूबाना चाहता था -

·२ नववें चतुर्मास के बाद—वैशाली और वाणिज्यग्राम के बीच में गंडकोका नदी में नौका विहार—

(क) ततः प्रतस्थे भगवान् वाणिजकं प्रति।
मार्गे गंडकिकां नाम नदीं नावोत्ततारच ॥१३६॥
उत्तीर्णमात्रो भगवान् सैकते तप्तवालुके।
अधारि नाविकैर्नद्युत्तारणद्रविणार्थिभिः ॥१४०॥
तदा च शंखगणराड्जामेयश्चित्रनामकः।
नौसैन्येनागतो दूतो निवृत्तः प्रभुमैक्षत ॥१४१॥

भर्त्सयित्वा नाविकांस्तान् भगवन्तममोचयत्।
भक्त्या चाभ्यर्च्य परया चित्रो निजपुरं ययौ ॥१४२॥

अथ वाणिजकग्रामं जगाम भगवानपि।
बहिश्च धर्मध्यानस्थस्तास्थात् प्रतिमाधरः ॥१४३॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लोक १३९ से १४३

(ख) भगवंपि वेसालिं णगरिं संपत्तो, तत्थ संखो णाम गणराया, सिद्धत्थरन्नो मित्तो, सो तं पूजेति, पच्छा वाणियग्गामं पधावितो, तत्थंतरा गंडइता नदी, तं सामी णावाए उत्तिन्नो, ते णाविया सामिं भणंति—देहि मोल्लं, एवं वाहेंति, तत्थ संखरन्नो भाइणेज्जो चित्तो णाम दूइकाए गएल्लओ णावाकडएण एति, ताहे तेण मोइतो महितोय।

—आव० चू० पूर्व भाग पृ० २९९

(ग) गंडइआसरि तिन्नो चित्तो नावाए भगिणिसुओ।

—आव० नि गा ४९४ । उत्तरार्ध

मलय टीका —तथा भगवंतं वाणिग्रामं प्रति प्रचलितमन्तरा गंडकिकां सरितं नदीं तीर्णं नाविकधृत चित्रः शंखराजस्य भगिनीसुतो नावा समाच्छन् मोचितवान् पूजितवांश्च।

ततो भयवं वाणियगामं गतो, तस्स बाहिं पडिमं ठितो।

जब वैशाली से विहार कर भगवान वाणिज्यग्राम पधारे तब मार्ग में मण्डीकीका-गंडकीका नदी नाव से पार की, तत्पश्चात् वाणिज्यग्राम पधारे। नाविक ने भगवान से उतराई माँगी, शंख राजा का भाणेज चित्र ने भगवान को देखा और भगवान को वन्दना की।

.३८ साधना काल के चतुर्मास (वर्षावास)

.१ प्रथम वर्षावास

(क) तएणं अहं गोयमा! पढमं वासं अद्धमासं अद्धमासेणं खममाणे अट्ठियगामं णिस्साए पढमं अंतरवासं वासावासं उवागए। ×××।

—भग० श १५ । प्र २१ । पृ० ६५८

(ख) ××× 'वास' अट्ठियग्गामे त्ति वर्षाकालमस्थिकग्रामे, स्थित इत्याहारः, सचास्थिकग्रामः पूर्वं वर्द्धमानाभिधः खल्वासीत्। पश्चादस्थिग्रामसंज्ञामित्थं प्राप्तः। ×××, तत्थ सामी अद्धमासं अद्धमासेण खमइ, एसपढमो वासारत्तो।

—आव० नि गा ४६३। मलय टीका। पृ० २६८ से २७०

(ग) (सामी) तं देवं दूइज्जंतगगामं एइ, तत्थेगंमि उवए वासावासंठितो। ×××। एवं तत्र भगवान् अर्द्धमासं स्थित्वा ततोपच्छा अट्ठियगामं गतो, तस्सपुण अट्ठियगामस्स पढमं वद्धमाणयमिति नाम होत्था।

—आव० चू० पृ० २७१-७२

भगवान महावीर का प्रथम चतुर्मास अस्थिक ग्राम में था।

प्रथम चतुर्मास के पन्द्रह दिन व्यतीत होने के बाद मोराक ग्राम से विहार किया।

नोट - मोराक ग्राम के तापसों के असंतुष्ट होने के कारण भगवान ने चतुर्मास के मध्य में ही विहार करना उचित समझा।

·२ द्वितीय वर्षावास

(क) ××× दोच्चं वासं ××× जेणेव रायगिहे नयरे जेणेव णालंदा बाहिरिया, जेणेव तंतुवायसाला, तेणेव उवागच्छामि, तेणेव उवागच्छित्ता, अहापडिरूवं ओग्गह ओगिण्हामि अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता तंतुवायसालाए एगदेसंसि वासावासं उवागए।

—भग० श १५। प्र २१। पृ० ६५८

(ख) × × × प्राप राजगृहं पुरम्।
पुरस्यादूरतस्तस्य नालंदाया बहिर्भुवि॥
विशालां स्वाम्यगच्छाला तंतुवायस्य कस्यचित्
तंतुवायमनुज्ञाप्य वर्षावस्तुं जगद्गुरुः।
शालायां एकदेशेऽस्थान्मासक्षमणमाश्रितः॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो ३७० उत्त०, ३७१-३७२

दूसरे वर्ष में मास-मास क्षमण युक्त अनुक्रम से विहार करते हुए भगवान् राजगृह नगर के नालंदा पाड़ा आये और नालंदा पाड़ा के बाह्यभाग में तंतुवाय शाला के एक भाग में यथा-योग्य अवग्रह धारण करके वर्षावास व्यतीत किया।

(ग) द्वितीय चतुर्मास के पूर्व

ततो भगवं उदगतीराए पडिक्कमित्त० पत्थिओ गंगामट्टियाए य तेण मधुसित्थेण लक्खणा दीसंति, तत्थ पूसोणामसामुद्दो सो ताणि सोचिते लक्खणाणि पासति.

ताहे एस चक्कवट्टी एगागी गतो वच्चामिणं वागरेमिमो मम एत्तो भोगवती भविस्सति सेवामिणं कुमारत्ते । सामिवि थुणागसंनिवेसस्स बाहिं पडिमं ठितो, ... ततो सामी रायगिहं गतो ।

—आव० पूर्व भाग चू० पृ० २८१,२८२

पुष्पनाम सामुद्रिक ने मिट्टी मे भगवान के चरण को देखकर सोचा कि ये चिन्ह चक्रवर्ती क होने की सूचना दे रहे है परन्तु चक्रवर्ती दिखाई नही देता ।

(घ) गृहस्थ के पात्र में भोजन का निषेध

गोसालेण किर तंतुवायसालाए भणियं-अहतव भोयणं आणेमि, गिहपत्ते काउ तंपि भगवता निच्छितं ।

—आव० चू० पूर्वभाग । पृ० २७१

भगवान साधना काल मे तंतुवायशाला मे ठहर हुए थे । गोशालक ने कहा —मैं आपके लिए भोजन लाऊँ । भगवान ने निषेध कर दिया । भगवान गृहस्थ के पात्र मे भोजन नहीं करते थे ।

·३ तृतीय वर्षावास

(क) × × × । ततो सामी निग्गतो, चंपं गतो, तत्थ वासावासं ठाइ ।

—आव० नि गा ४७४ । टीका

(ख) स्वामी च प्रययौ चंपां वर्षारात्रं तृतीयकम् ।
तत्र चाऽस्थात् प्रतिज्ञातद्विमासक्षपणद्वयः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ४२६

ब्राह्मण ग्राम से विहार कर भगवान चम्पानगरी पधारे । वहाँ दो-दो मास क्षमण की प्रतिज्ञाकर तृतीय चतुर्मास किया ।

·४ चतुर्थ वर्षावास

(क) मलय टीका ततो भयवं पिट्ठिचंपं गतो, तत्थ वासारत्तं करेइ । × × × ।

—आव० नि गा ४७७ । मलय टीका

(ख) पिट्ठिचंपा वासं तत्थ चउम्मासिएण खमणेण ।

—आव० नि गा ४७८

मलय टीका —भगवान् पृष्ठचंपायामावासं (वर्षावासं) कृतवान्, तत्र चातुर्मासिकेन क्षपणेन क्षपितवान् ।

(ग) दिनानि कतिचित्तत्रातिवाह्य परमेश्वरः।
तुर्यं प्रावृषमत्येतुं पृष्ठचंपा पुरीं ययौ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ४८८

चौराक ग्राम कितनेक दिन निर्गमन कर भगवान चतुर्थ चतुर्मासार्थ पृष्ठचम्पा नगरी पधारे।

·५ पंचम वर्षावास-चतुर्मास

(क) × × ×। एवं विहरंता भद्दियनयरिं गया, तत्थ पंचमो वासारत्तो। × × ×।

—आव० नि गा ४८१ । टीका

भद्दिय वासासु चउमासं।

—आव० नि गा ४८२ । उत्तरार्ध

टीका —× × × ततो भगवान् भद्रिकां नगरीं गतः।

(ख) क्रमेण भद्दिलपुरे स्वाम्यगात्तत्र पंचमीम्।
निन्ये वर्षाचतुर्मासीं चतुर्मासीमुपोषितः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ५११

(ग) × × × लढाविषयं पविट्ठो ··· ···पच्छा ततोणीति, तत्थ पुन्नकलसो णाम अणारियगामो × × × एवं विहरंता भद्दियं णगरीं गता, तत्थ वासारत्तं चाउम्मास-खमणेण अच्छति।

दो या तीन मास करीब लाढदेश में विहरण कर भगवान् पूर्णकलश ग्राम पधारे। पूर्णकलश ग्राम से विहार कर भगवान भद्दिलपुर पधारे। वहाँ पंचम चतुर्मास किया।

—आव० चू० पूर्वभाग पृ०२९०

·६ छट्ठा चतुर्मास

(क) मलय टीका —× × × ततो भयवं भद्दियं नामं नयरिं गतो, ततो छट्ठं वासमुवगतो।

—आव० नि गा ४८७

(ख) अथ गत्वा भद्रिकायां पुर्यां तस्थौ तपःपरः।
दीक्षायाः प्रावृषं षष्ठीमतिवाहयितुं प्रभुः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लोक ६२५

शालीशीर्ष ग्राम से विहार कर भगवान भद्रिकापुरी पधारे। यहाँ दीक्षा लेने के बाद छट्ठा चतुर्मास किया।

·७ आलंभिका नगरी में सातवाँ चतुर्मास

(क) ततो भयवं आलंभिं नगरिं गतो, तत्थ सत्तमो वासारत्तो।

—आव० नि गा ४८७ मलय टीका

(ख) पुरीमालभिकां गत्वा सप्तमीं प्रावृषं प्रभुः।

—त्रिशलाका० पर्व० १० । सर्ग ८ । श्लो० २ पूर्वार्ध

करीब आठमास लगभग मगध देश मे विहार किया। तत्पश्चात् आलम्भिका नगरी पधारे। यहाँ भगवान् ने सातवां चतुर्मास किया।

·८ आठवाँ चतुर्मास

(क) × × × ततो विहरंतो सामी रायगिहं गतो, तत्थ अट्ठमो वासारत्तो × × ×।

—आव० नि गा ४९० । मलय टीका

(ख) × × × रायगृहऽट्ठमवासं × × ×

—आव० नि गा ४९१ । उत्तरार्ध

(ग) स्वामी राजगृहे गत्वा वर्षारात्रमथाष्टमम्।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो० ५२ । पूर्वार्ध

गोभूमि से विहार कर भगवान राजगृह नगर पधारे, वहाँ भगवान ने आठवाँ चतुर्मास निर्गमन किया।

·९ वज्रभूमि में नववाँ चतुर्मास

(क) × × × ततो लाढावज्जभूमिं [सुद्धभूमिं] वच्चइ, तत्थ विहरइ, × × ×। तत्थ नवमो वासारत्तो कतो। × × ×।

—आव० नि गा ४९० मलय टीका

(ख) वज्रभूमिशुद्धभूमिलाढादिम्लेच्छभूमिषु।
कर्मनिर्जरणायाऽगात् स्वामि गोशालकान्वितः ॥५४॥
× × ×
नवमीं प्रावृषं तत्र धर्मध्यानपरायणः।
शून्यागारे द्रुतले वास्थितः स्वाम्यत्यवाहयत् ॥ ६६ ॥

— त्रिशलाका० पर्व १० सर्ग ४ । श्लो ५४,६६

भगवान गोशाला सहित वज्रभूमि, शुद्धभूमि और लाढ आदि म्लेच्छ देशों में विहरण किया। वहाँ शून्यागार में अथवा वृक्ष के नीचे रहकर धर्मध्यान में परायण भगवान महावीर ने नवयाँ चतुर्मास निर्गमन किया।

.१० दशवाँ वर्षावास

(क) मलय टीका—ततो भयवं वाणियगामं गतो ×××, ततो सामी सावत्थिं गतो, तत्थ दसमं वासारत्तं विचित्तं तवोकम्मं ठाणाईहिं × × ×।

सावत्थीएवासं चित्ततवो साणुलट्ठिबहिं ॥

आव० नि गा ४६५

मलय टीका —× × × भगवान् श्रावस्त्यां वर्षं दशमं वर्षारात्रं कृतवान्, तत्र च विचित्रं तपः।

(ख) कायोत्सर्गं पारयित्वा श्रावस्त्यां पर्युपेत्य च।

दीक्षातो दशमं वर्षाकालं स्वाम्यत्य वाहयत् ॥

—त्रिशलाका० पर्व० १० । सर्ग ४ । श्लो० १४८

वाणिज्यग्राम से विहार कर भगवान महावीर श्रावस्ती नगरी पधारे। वहाँ दसवाँ चतुर्मास किया।

.११ ग्यारहवाँ चतुर्मास

(क) ततो विहरमाणोऽगाद्वैशालीं नगरीं प्रभुः।

तत्र चैकादशो वर्षाकालो व्रतदिनाद्भूत् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो० ३४३

(ख) ततो वैशालीनगरीमगमत् तत्रैकदेशे वर्षारात्रः ॥

—आव० नि गा ५१७ । मलय टीका

मिथिला नगरी से विहार कर भगवान महावीर वैशाली-विशाला नगरी पधारे। दीक्षा लेने के बाद वहाँ ग्यारवाँ चतुर्मास किया।

.१२ बारहवाँ चतुर्मास

(क) मलय टीका —ततो सामी चंपं नयरिं गतो सोमदत्तमाहणस्स अग्गिहोत्तसालाए वसहिं उवगतो, तत्थ चाउम्मासं खमइ, × × ×।

चंपा वासावासं जक्खिंदो साइदत्त पुच्छा य।

—आव० नि गा ५२२

मलय टीका—भगवान् चम्पायां वर्षावासं कृतवान्।

(ख) स्वामी च विहरन् प्राप चम्पां नाम महापुरीम् ॥६०५॥
तत्राग्निहोत्रशालायां स्वातिदत्तद्विजन्मनः ।
तस्थौ वर्षाचतुर्मासीं द्वादशीं स्वाम्युपोषितः ॥६०६॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४

भगवान ने अपना बारहवां चतुर्मास चम्पानगरी में किया। अग्निहोत्रशाला में जो स्वातिदत्त ब्राह्मण की थी—किया।

·३९ साधना काल का अवस्थानकाल

(क) बारस वासे अहिए ॥

—आव० नि गा ५१३ । पूर्वार्ध

मलय टीका—द्वादश वर्षाण्यधिकानि भगवतश्छद्मस्थस्यसतः ।

(ख) बारस चेव य वासा मासा छच्चेव अद्धमासो अ ।
वीरवरस्स भगवओ एसो छउमत्थपरियाओ ।

—आव० नि गा ५३६

मलय टीका—वीरवरस्य भगवत एषः—एतावत्प्रमाणः छद्मस्थपर्यायस्तद्यथा द्वादशवर्षाणि षण्मासा अर्द्ध मासश्च ।

(ग) तह बारस्स वरिसाइं जिणाण छउमत्थकालपरिमाणं ।
उग्गं च तवोकम्मं विसेसतो वद्धमाणस्स ॥

—आव० नि गा २६२

मलय टीका ××× वर्द्धमानस्वामिनो द्वादशवर्षाणि एतत् जिनानां-तीर्थकृतां छद्मस्थकालपरिमाणं, सर्वेषामपि च छद्मस्थकाले उग्रं तपःकर्म, विशेषतो वर्द्धमानस्वामिन उग्रमिति ।

भगवान महावीर का साधिक बारह वर्ष अर्थात् १२ वर्ष, ६ मास, १५ दिन छद्मस्थ काल रहा। इस छद्मस्थकाल में भगवान ने उग्रतप किया।

(घ) व्रताहाच्चेत्थमभूत् सार्धा द्वादशाब्दी सपक्षिका ।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ६५७ । उत्तरार्ध

भगवान का छद्मस्थकाल का व्रतपर्याय साढे बारह वर्ष, एक पक्ष का था।

(च) अण्णे के वि आइरिया ×××। संपहि छदुमत्थकालो वुच्चदे । तंजहा, मग्गसिर—किण्हपक्खएक्कारसिमादिं कादूण जाव मग्गसिरपुण्णमात्ति वीसदिवसे २०, पुणो पुस्समासमादिं कादूण बारस वासाणि १२, पुणो तं चेव मासादिं

कादूण चत्तारि मासे च ४, वइसाहजोण्हपक्खपंचवीसदिवसे च २५, छदुमत्थत्तणेण गमिय वइसाह-जोण्हपक्खदसमीए उजुकूलणदीतीरे जंभियगामस्स बाहि छट्टोववासेण सिलावट्टे आदावेंतेण अवरण्हे पादछायाए केवलणाणमुप्पाइदं । तेण छदुमत्थकालस्स पमाणं पण्णारसदिवसेहि पंचमासेहि य अहियबारसवासमेत्तं होदि १२-५-१५ । एत्थुवउज्जंतीओ गाहाओ -

गमइय छदुमत्थत्तं बारसवासाणि पंचमासे य ।
पण्णारसाणि दिणाणिय तिरदणसुद्धो महावीरो ॥

उजुकूलणदीतीरे जंभियगामे बहिं सिलावट्टे ।
छट्ठेणादावेंते अवरण्हे पादछायाए ॥

वइसाहजोण्हपक्खे दसमीए खवयसेढिमारूढो ।
हंतूण घाइकम्मं केवलणाणं समावण्णो ॥

एवं छदुमत्थ कालो परूविदो ।

—कसापा० भाग १ । गा १ । टीका पृष्ठ ७१, ७६, ८०

(वर्द्धमान मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन दीक्षित हुए ।)

मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी से लेकर मार्गशीर्ष पूर्णिमा पर्यन्त बीस दिन, पुन: पौष मास से लेकर बारह वर्ष, पुन: उसी पौष मास से लेकर चार माह तथा वैसाख माह के शुक्ल पक्ष की दशमी तक पच्चीस दिन छद्मस्थ अवस्था रूप से व्यतीत कर वैसाख शुक्ला दशमी के दिन, ऋजुकूला नदी के किनारे, जृंभिक ग्राम के बाहर षष्ठोपवास के साथ शिलापट्ट के ऊपर आतापनयोग से स्थित भगवान महावीर ने अपराह्न काल में पाद-प्रमाण छाया के रहने पर केवलज्ञान उत्पन्न किया। इसलिये भगवान् के छद्मस्थ काल का प्रमाण पाँच माह, पन्द्रह दिन अधिक बारह वर्ष होता है । कहा है—

"बारह वर्ष, पाँच माह और पंद्रह दिन पर्यंत छद्मस्थ अवस्था को व्यतीत कर रत्नत्रय से शुद्ध और जृम्भिक ग्राम के बाहर ऋजुकूला नदी के किनारे शिलापट्ट के ऊपर षष्ठोपवास के साथ आतापनयोग करते हुए महावीर जिनेंद्र ने अपराह्न काल में पाद-प्रमाण छाया के रहते हुए वैसाख शुक्ला दशमी के दिन क्षपकश्रेणि पर आरोहण किया और चार घनघातिक कर्मों का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त किया ।

(छ) पासजिणे चउमासा बारसवासाणि वड्ढमाणजिणे ।
एत्तियमेत्ते समए केवलणाणं ण ताणं उप्पण्णं ॥

—तिलोप० अधि ४ । गा ६७८

(अ) बारसवासाणि छदुमत्थकालो ।

—कसापा० । गा १ । टीका । भाग १ । पृ० ७४, ७५

वर्धमान स्वामी का बारह वर्ष प्रमाण छद्मस्थ काल रहा । इतने समय तक अर्थात् छद्मस्थकाल तक तीर्थंकर वर्धमान को केवल ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ । इस छद्मस्थ काल में भगवान ने उग्र तप किया ।

·४० स्वप्नदर्शन

·१ दश महास्वप्न और उसके फल

(क) समणे भगवं महावीरे छउमत्थकालियाए अंतिमराइयंसि इमे दस महा-सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तंजहा—

१ -एगं च णं 'महं घोररूवदित्तधरं' तालपिसायं सुविणे पराजियं पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

२—एगं च णं महं सुक्किलपक्खगं पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं पडि-बुद्धे ।

३—एगं च णं महं चित्तविचित्तपक्खगं पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

४—एगं च णं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

५—एगं च णं महं सेतं गोवग्गं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

६—एगं च णं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं सुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

७ एगं च णं 'महं सागरं' उम्मी-वीयी-सहस्स-कलितं भूयाहिं तिण्णं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

८—एगं च णं महं दिणयरं तेयसा जलंतं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे ।

९—एगं च णं महं हरि-वेरुलिय-वण्णाभेणं णियगेणमंतेणं माणुसुत्तरं पव्वतं सव्वतो समंता आवेढियं परिवेढियं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धे ।

१०—एगं च णं महं मंदरे पव्वते मंदरचूलियाए उवरिं सीहासणवरगय-मत्ताणं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धे ।

१—जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं घोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुविणे पराजितं पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणेणं भगवता महावीरेणं मोहणिज्जे कम्मे मूलाओ उग्घाइते।

२—जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं सुक्किलपक्खगं पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे सुक्कज्झाणोवगए विहरइ।

३—जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं चित्तविचित्तपक्खगं पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे ससमयपर-समइयं दुवालसंगंगणिपिडगं आघवेति पण्णवेति परूवेति दंसेति णिदंसेति उवदंसेति तंजहा—आयारं, सूयगडं, ठाणं, समवायं, विवा (आ?) हपण्णत्ति, णायधम्मकहाओ, उवासगदसाओ, अंतगडदसाओ, अणुत्तरोववाइय-दसाओ, पण्हावागरणाइं, विवागसूयं, दिट्ठिवायं।

(४) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे दुविहं धम्मं पण्णवेति, तंजहा—आगारधम्मंच अणागारधम्मं च।

(५) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं सेतं गोवग्गं सुविणे पासित्ताणं पडिबुद्धे, तण्णं, समणस्स भगवओ महावीरस्स चाउव्वण्णाइण्णे समणसंघे, तंजहा—समणा, समणीओ, सावग्गा, सावियाओ।

(६) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमितं सुविणे पासित्ता णंपडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे चउव्विहे देवे पण्णवेति, तंजहा भवणवासी, वाणमंतरे, जोइसिए, वेमाणिए।

(७) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं सागरं उम्मी—वीयीसहस्स-कलितं भूयाहि तिण्णं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणेणं भगवता महावीरेणं अणादीए अणवदग्गे दीहमद्धे चाउरंते संसारकंतारेतिण्णे।

(८) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगंच णं महं दिणयरं तेयसा जलतं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पणे।

(९) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं हरि-वेरुलिय वण्णाभेणं णियगेणमंतेणं माणुसुत्तरं पव्वतं सव्वतो समंता आवेढियं परिवेढियं सुविणे

पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स लोगे ओराला कित्ति-वण्ण-सद्द सिलोगा सदेवमणुयासुरे परिगुव्वंति — इति खलु समणे भगवं महावीरे, इति खलु समणे भगवं महावीरे।

(१०) जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं च णं महं मंदरे पव्वते मंदरचूलियाए उवरिंसीहासणवरगयमप्पाणं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे सदेवमणुयासुराए परिसाए मज्झगते केवलिपण्णत्तं धम्मं आघवेति पण्णवेति परूवेति दंसेति, णिदंसेति, उवदंसेति।

भग० श १६। उ ६। सू० ६१। पृ ७२८ से ७३०

— ठाण० स्था १०। सू १०३। पृ० ८१० से ८१२

ठाण० टीका - अस्थिकग्रामाभिधानसन्निवेशाद् बहिः शूलपाणिनामकयक्षायतने शेषं वर्षावाससमारेभे, तत्र च यदा रात्रौ शूलपाणिर्भगवतः क्षोभणाय झटिति टालिताट्टालकमट्टहासमुच्चन् लोकमुत्त्रासयामास तदा विनाश्यते × × × स्वामी च देशोनांश्चतुरो यामानतीव तेन परितापितः प्रभातसमये मुहूर्त्तमात्रं निद्राप्रमादमुपगतवान् तत्रावसरे इत्यर्थोऽथवा छद्मस्थकाले भवा अवस्था छद्मस्थकालिकी तस्यां 'अंतिमराइयंसि' त्ति अंतिमा—अंतिमभागरूपा अवयवे समुदायोपचारात् सा चासौ रात्रिका चान्तिमरात्रिका तस्यां रात्रेरवसान इत्यर्थः।

(ख) मलय टीका — × × ×। एतान् पंचाभिग्रहान् गृहीत्वा तथा तस्मान्निर्गत्य 'वास अट्ठियग्गामे' त्ति वर्षाकालमस्थिकग्रामे। × × × तत्थ सामी देसूणे चत्तारि जामे अतीव परितावितो पभायकाले मुहुत्तमेत्तं निद्दापमायं गतो, तत्थिमे दस महासुमिणे पासइ, तंजहा तालपिसातो हतो, सेयसउणो चित्तकोइलो यदोवि एए पज्जुवासंता दिट्ठा, दामदुगंच सुरभिकुसुममयं, गोवग्गो पज्जुवासंतो, परमसरो विबुद्धपंकजो, सागरो य मे नित्थिन्नो, सूरो य पइण्णरस्सिमंडलो उग्गमंतो अंतेहि य मे माणुसुत्तरो पव्वतो वेढितो, मंदरं चारूढोमित्ति, एए सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धो लोगो पभाए आगतो उप्पलोय इंदसम्मो य, ते य अच्चणियं दिव्वगंधचुन्नपुप्फवासं च पासंति, भट्टारगं च अक्खय सव्वंगं, ताहे सो लोगो सव्वो सामिस्स उक्किट्ठिसीहनायं करेतो पाएसु पडितो भणइ - जहा देवज्जएण देवो उवसामितो, महिमं पकतो, उप्पलो वि सामिं दट ठूण वंदिय भणियाइतो — सामी ! तुब्भेहिं अंतिमराईए दससुमिणा दिट्ठा, तेसिमं फलं—

जो तालपिसातो हतो तमचिरेण मोहणिज्जं उम्मूलेहिसि १

जो य सेय सउणो तं सुक्कभाणं काहिसि २
जो विचित्तो कोइलो तं दुवालसंगं पण्णवेहिसि ३
गोवग्गफलं ते चउव्विहो समणो समणीसावग साविगा संघो भविस्सइ ४
पउमसराओ य चउव्विहदेवसंघातो भविस्सइ ५
जं च सागरो तिन्नो तं संसारमुत्तरिहिसि ६
जो य सूरो तमचिरा केवलनाणंते उप्पिज्जिहिइ ७
जं अंतेहिं माणुसुत्तरो वेढितो तं ते निम्मलजसकित्तिपयाबो सयलतिहुयणे भविस्सइ ८
जं च मंदरमारूढोसि तं सिहासणत्थो सदेवमणुयासुराए परिसाए धम्मं पन्नवेहिसि ६

दामगदुगं पुण न याणामि, सामी भणइ—हे उप्पल ! जण्णं तुमं न याणसि तण्णं अहं दुविहं सागाराणगारियं धम्मं पण्णवेहामि १०, ततो उप्पलो वंदित्ता गतो, तत्थ सामी अद्धमासं अद्धमासेण खमइ, एस पढमो वासारत्तो १ ।

—आव नि गा ४६३ । मलय टीका

(ग) तालपिसायं दो कोइलाय दामदुगमेव गोवग्गं ।
सर सागर सूरंतो मंदर सुमिणुप्पले चेव ॥११३॥
मोहे य भाण पवयण धम्मे संघे य देवलोगेय ।
संसारं नाण जस्से धम्मं परिसाए मज्झम्मि ॥११४॥

—आव० । मूल भाष्य गा ११३, ११४

मलय टीका—××× यदुक्तम्—'दस सुमिण' त्ति तान् दश स्वप्नाह—'तालपिसाव' इत्यादि, प्रथमं तालपिशाचं दृष्टहतवान्, तदनन्तरं द्वौ कोकिलौ, तद्यथा—एकः श्वेतोऽपरो विचित्रः, ततो दामद्वय, तदनन्तर गोवर्गं, ततः सरः, तदनन्तर सागर, ततः सूर्य, ततोऽन्त्र, तदनन्तर मन्दर, 'सुविणुप्पले चेव, त्ति एतान् स्वप्नान् दृष्टवान्, उत्पलश्च फल कथितवान्, तच्चेदम् योऽसौ तालपिशाचः सकिल मोहः श्वेतकोकिलः शुक्लध्यान, यस्तु विचित्रः कोकिलस्तत् किलद्वादशाङ्ग प्रवचन, यद् दामद्विकं स यतिश्रावकभेदेन द्विप्रकारो धर्मः गोवर्गश्चतुर्विधः श्री-श्रमणसंघः, पद्मसरश्चतुर्विधो देवसंघातः, सागरः संसारः, सूर्यो ज्ञानं—केवलज्ञानं, अन्त्रेण मानुषोत्तरपर्वतवेष्टनं निर्मलयशःकीर्त्तिप्रतापः, मंदरारोहणं धर्मं प्रज्ञापयितुकामेन सदेवमनुजायाः पर्षदो मध्ये सिंहासने उपवेशनं ।

(घ) सामी य देसूणचत्तारि जाये अतीव परितावितो समाणो पभायकाले मुहुत्तमेत्तं निद्दापमाद गतो, तत्थिमे दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धो, तंजहा—तालपिसाओ हतो १ सेयसउणो चित्तकोइलो य दोवेतेपज्जुवासंता दिट्ठा २-३ दामदुगं च सुरभिकुसुमयं ४ गोवग्गो य पज्जुवासतो ५ पउमसरो विउद्धपंकओ ६ सागरो यमिणित्थिणोत्ति ६ सूरो य पइन्न रस्सिमंडलो उग्गमतो ८ अंतेहिय मे माणुसुत्तरो वेढिओत्ति ६ मंदरं चारूढोमित्ति।

—आव० चू० पूर्वभाग-पृ० २७४

(च) तत्थ [अत्थियगामे] सामी आगतो '''एककोणे पडिमं ठितो''' तत्थ य उप्पलो नाम पच्छाकडो परिव्वाओ पासावच्चिज्जो नेमित्तिओ''''उप्पलो वि सामिं वट्ठु पहट्ठो वंदति, ताहे भणति सामी। तुब्भेहिं अंतिमरातीए दस सुमिणा दिट्ठा, तेसि इम फलति !—जो तालपिसाओ हतोत्तमचिरेण मोहिणिज्जं उम्मूलेहिसि १, जो य सेयसउणो तं सुक्कज्झाणं झाहिसि २, जो विचित्तो त कोइलो दुवालसंगं पन्नवेहिसि ३, गोवग्गफलं च ते चउव्विहो समणसंघो भविस्सति ४, पउमसरो चउव्विह देवसंघातो भविस्सइ ५, जं च सागरं तिन्नोतं संसारमुत्तरिहिसि ६, जो य सूरो तमचिरा केवलणाणं ते उप्पज्जिहिति ७, जं च अतेहिं माणुसुत्तरो वेढितो तते निम्मलजसकितिपयाया सयले तिहुयणे भविस्सति ८, ज च मदरसमारूढोसि तं सिहासणत्थो सदेवमणुयासुराए पारिसाए धम्मं पन्नवेहिसित्ति ६, दामदुगं पुण ण जाणामि। सामी भणंति—हे उप्पला ! जं णं तुमं न याणासि तं अहंदुविहमगाराणगारियं धम्मं पन्नवेहामित्ति १०, ततो वंदित्ता गतो।

— आव० चू पूर्वभाग पृ २७३, २७५

(छ) अभिग्रहान् गृहीत्वामूनर्धमासादनन्तरम्।
ग्रामं नाम्नास्थिकग्रामं ययौ प्रावृष्यपि प्रभुः ॥७८॥
तत्र चैकस्य यक्षस्य शूलपाणेर्निकेतने।
अधिवस्तुं जगन्नाथो ग्रामीणानन्वजिज्ञपत् ॥७६॥

× × ×

नाथोऽपि चतुरो यामान् किञ्चिदूनान् कदर्थितः।
श्रमान्निद्रामधिगतोऽपश्यत् स्वप्नानमून् दश ॥१४७॥
वर्धिष्णुस्तालपिशाचः स्वयं व्यापादितः किल।
कोकिलो श्वेतचित्रौ च सेवमानौ स्वसन्निधौ ॥१४८॥

दामद्वयं च गंधाढ्यं गोवर्गः सेवनोद्यतः।
पद्माचित्तं पद्मसरो दोर्भ्यां तीर्णश्च सागरः ॥१४६॥
उद्रश्मिकं चार्कबिम्बमथाद्रिर्मानुषोत्तरः।
निजान्त्रैर्वेष्टितः स्वेनारूढ मेरुशिरोऽपि च ॥१५०॥
एवं प्रेक्ष्य दशस्वप्नान् प्राबुद्ध त्रिजगद्गुरुः।
उदियाय च मार्तंडो विबन्दिषुरिव प्रभुम् ॥१५१॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो० ७८, ७९, १४७ से १५१

स्वप्न दर्शन :—

भगवान महावीर पाँच प्रकार के अभिग्रह को धारणकर मोराकग्राम मे प्रथम वर्षाकाल का अर्धमास व्यतीतकर, वहाँ से विहारकर अस्थिकग्राम पधारे। वहाँ शूलपाणि यक्षने भगवान को रात्रि मे कुछ कम चार प्रहर तक (परिताप) कष्ट दिया फलस्वरूप श्रमसे भगवान को एक मुहूर्त तक निद्रा आयी। उस निद्रावस्था मे—(छद्मस्थावस्था की अंतिमरात्रि मे) भगवान ने दस स्वप्न देखे —

इन दस स्वप्नों को देखकर जाग्रत हुए, यथा—

१—एक महान भयकर और तेजस्वी रूपवाले, ताड़वृक्ष के समान लम्बे पिशाच को पराजित किया—ऐसा स्वप्न देखकर जाग्रत हुए।

२—एक महान श्वेत पखो वाले पुंस्कोकिल (नरजाति की कोयल) को स्वप्न मे देखकर जाग्रत हुए।

३—एक महान चित्र—विचित्र पंखों वाले पुंस्कोकिल को स्वप्न मे देखकर जाग्रत हुए।

४—स्वप्न मे एक महान् सर्वरत्नमय मालायुगल को देखकर जाग्रत हुए।

५—स्वप्न मे एक श्वेतवर्ण के एक महान् गोवर्ग को देखकर जाग्रत हुए।

६—चारों ओर से कुसुमित एक महान् पद्मसरोवर को देखकर जाग्रत हुए।

७—हजारों तरंगों और कल्लोलों से व्याप्त एक महा सागर को अपनीभुजाओं से तिर —ऐसा स्वप्न देखकर जाग्रत हुए।

८—जाज्वल्यमान तेजस्वी महान सूर्य स्वप्न मे देखकर जाग्रत हुए।

९—महान् मानुषोत्तर पर्वत को नीलवैडूर्यमणि के समान अपने अतरभाग (आंतों) से चारों ओर से आवेष्टित— परिवेष्टित देखकर जाग्रत हुए।

१०—महान् मदर (सुमेरु) पर्वत की मदर-चूलिका पर श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे हुए अपने आपको देखकर जाग्रत हुए।

यदि तुम्हारा चरित्र प्रभुके भक्त शक्रेन्द्र जान लेंगे तो तुम उनकी वज्रधारासे पीड़ित हो जाओगे। सिद्धार्थ के वचन को सुनकर वह शूलपाणियक्ष पश्चाताप से आकुल-व्याकुल हो गया फलस्वरूप उसने फिर भगवानसे क्षमायाचना की, क्योंकि उस समय अन्य कोई उपाय नहीं था। उसे प्रशांत हुआ जानकर दयालु सिद्धार्थ देव ने कहा—अरे! तुम तत्त्वको नहीं जानते हो, अतः तुम यथार्थ तत्त्व की पहिचान करो — वीतरागमे देवबुद्धि, साधुओं में गुरु बुद्धि और जिनेश्वर भगवान् द्वारा कथित धर्ममें धर्म बुद्धि—इस प्रकार आत्माके साथ निर्णयकर। स्वयं की आत्मा की तरह किसी भी प्राणी को पीड़ा मत दो, पूर्वकृत्य सर्व दुष्कृत्यकी निंदा कर। एक बार भी आचरित तीव्र कर्मका फल प्राणी कोटाकोटी गुण प्राप्त होता है।

इस प्रकार तत्त्वको सुनकरशूलपाणियक्ष पूर्व कृत अनेक प्राणियोंकी हत्या को यादकर बारम्बार स्वय की आत्माकी निंदा करने लगा और बहुत पश्चाताप करने लगा। बादमें सम्यक्त्व को धारण कर, ससार से उद्वेग को प्राप्त वह यक्ष भगवानके चरण की पूजा करके और स्वयं के अपराधरूप मल धोने मे जलकी तरह संगीत भगवान के सामने करने लगा। उस संगीतके शब्दों को सुनकर ग्रामीण लोग चिंतन करने लगे कि उस मुनिको मारकर वह यक्ष क्रीड़ा करता होगा।

.५ शय्या परीषह

सिद्धार्थसुहृदस्तस्य स्मरन् कुलपतेर्वचः।
स्वामी प्रावृषमस्येतुं मोराकं पुनरभ्यगात् ॥५५॥
प्रभोर्भ्रातृव्यतास्नेहसंबंधमधुराशयः॥
गृहमेकं कुलपतिस्तृणाच्छादितमार्पयत् ॥५७॥
ततः कुलपतिरगादुपनाथं ददर्श च।
कृत्तपक्षं खगमिव छदिर्वर्जितमाश्रमम् ॥६६॥
आत्मानमिव रक्षन्ति स्वनीडं नीडजा अपि।
विवेकिना त्वया हन्त किमाश्रम उपेक्षितः? ॥७२॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३

(ख) ××× ताहे सामी अट्ठ उउबद्धिए मासे विहरित्ता वासावासे संपत्ते तं देवं दूइज्जंतगगामं एइ, तत्थेगमि उडए वासावासं ठितो। × × × ताहे सो कुलवई अणुसासइ, जहा—कुमारवर। सउणीवि ताव नेड्डं रक्खइ, तुमंपि वारिज्जासित्ति, सप्पिवासं भणइ।

—आव० नि गा ४६१। टीका

भगवान महावीर प्रथम चतुर्मासार्थ दूइज्जतक ग्राम (मोराकग्राम) पधारे। तापसों के कूलपतिने तृण से आच्छादित एक घर प्रभुको रहने के लिए दिया। ग्रामकी गायें वहाँ तृण खाने के लिए आती थी। भगवान वहाँ थे उस झोपड़ी को भी खाने लगी। भगवान ने वारण नहीं किया। फलस्वरूप कूलपति ने कहा हे तात ! तुमने इस झोपड़ी की रक्षा क्यों नहीं की। पक्षी भी स्वय के नीड (घोंसला) की आत्मा की तरह रक्षण करते हैं—तुम विवेकशील होकर भी आश्रम की उपेक्षा क्यों की।

'६ चंडकौशिक सर्पका उपसर्ग उत्तरवावालान्तर वनखण्ड में चंडकौशिक सर्प का उपद्रव

द्वितीय वर्षमें

(क) ताहे सामी उत्तरवाचालं वच्चइ, तत्थ अंतरा कनकखलं नाम आसमपदं तत्थ दो पंथा—उज्जुगो वंको य, जो सो उज्जुगो सो कणकखलमज्झेणं वच्चइ, वंको परिहरंतो, सामी उज्जुगेण पहावितो, गोवालेहि वारितो—देवज्जगा। मा एएण मग्गेण गच्छह, एत्थ दिट्ठीविसो सप्पो अच्छइ, सामीजाणइ—जहास भवितो संबुज्झिहिइ, ताहे गतो, गंतूणजक्खघरमंडवियाए, पडिमंठितो। × × ×। ताहे सामी तेणदिट्ठो, ततो, आसुरुत्तो ममं न जाणसि ? सूरं निज्झाएत्ता पच्छा सामिं पलोएइ, सोन डज्झइ जहा अन्नो, एवं दो तिन्निवारे, ताहे गंतूण डसइ, अवक्कमइ, मा मे उवरिं पडिहिइ, तहविन मरइ, एवंतिन्नि वारे, ताहे पलोयंतो अमरिसेणं अच्छइ, तस्स भगवतो रूवं पेच्छंतस्स ताणि विसभरियाणि अच्छीणि विज्झाइयाणि सामिणो कंतिसोम्मयाए, ताहे सामिणा भणियं उवसम। भो चंडकोसिया ताहे तस्स ईहापोहमग्गणगवेसणे करेंतस्स जाईसरणं समुप्पण्णं, ताहे तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंतो मणसा भत्तं पच्चक्खाइ, तित्थगरो जाणइ, ताहेसो बिले तुंडं छोढ़ूण ठितो, माऽहं रुट्ठो संतो लोगं मारेहं, सामी तत्थ अणुकंपणट्ठाए अच्छइ, सामिं दट्ठूणं गोवालवच्छवाला अल्लियंति, रुक्खेहि आवरित्ता पाहाणे खिवंति, न चलइत्ति अल्लीणा कट्ठेहिं घट्टितो, तहवि न फंदइ, ताहे लोगो आगंतुं सामिं वंदित्ता तंपि सप्पं वंदति महंति अ, अन्नाओ य घयविक्कणियातो तंसप्पं घएण मक्खंति, ततो सो पिवीलियाहिं गहितो, तं वेयणं सम्मंअहियासेइ, अद्धमासे कालगतो सहस्सारे उववन्नो।

—आव० नि गा ४६६। मलय टीका

(ख) दक्षिणादुत्तरे यानश्चावालेऽथालगत्प्रभोः।
× × × ॥२२०॥
इतश्च भगवान् वीरः समीरण इवाऽस्खलन्।

श्वेतव्यभिमुखं गच्छन्नित्यूचे गोपदारकैः ॥२२५॥
देवार्यायमृजुः पंथा श्वेतवीमुपतिष्ठते।
किं त्वन्तरेऽस्य कनकखलाख्यतापसाश्रमः ॥२२६॥
सहि दृग्विषसर्पेणाधिष्ठितो वर्ततेऽधुना॥
वायुमात्रैकसंचारोऽप्रचारः पक्षिणामपि ॥२२७॥
विहायतद्मुं मार्गं वक्रेणाप्यमुना व्रज।
सुवर्णनापि किं तेनकर्णच्छेदो भवेद्यतः ॥२२८॥
तं चाहिं प्रभुरज्ञासीद्यदसौ पूर्वजन्मनि।
× × ×
अवश्यं चैषा बोधार्ह इति बुद्धया जगद्गुरुः।
आत्मपीडामगणयन्नृजुनैव यथा ययौ ॥२४८॥
अभवत्पदसंचारसुषमीभूतवालुकम्।
उदपानावहत्कुल्यं शुष्कजर्जरपादपम् ॥२४६॥
जीर्णपर्णचयास्तीर्णं कीर्णं वल्मीकपर्वतैः।
स्थलीभूतोटजं जीर्णारण्यं न्यविशत प्रभुः ॥२५०॥
तत्र चाथ जगन्नाथो यक्षमंडपिकाऽन्तरे।
तस्थौ प्रतिमया नासाप्रान्तविश्रांतलोचनः ॥२५१॥
ततो दृष्टिविषः सर्पः सदर्पो भ्रमितुं बहिः
बिलान्निरसरज्जिह्वा कालरात्रिमुखादिव ॥२५२॥
भ्रमन् सोऽनुवनं रेणुसंक्रामम‌द्भोगलेखया।
स्वाऽऽज्ञालेखामिव लिखन्नीक्षाञ्चक्रे जगद्गुरुम् ॥२५३॥
अत्र मांकिमविज्ञाय किमवज्ञाय कोऽप्यसौ।
आः प्रविष्टो निराशंकं निष्कंपः शंकुवत्स्थितः ॥२५४॥
तदेनं भस्मसादद्य करोमीति विचिन्तयन्।
आध्मायमानः कोपेन फटाटोपं चकार सः ॥२५५॥
ज्वालामालामुद्वमन्त्या निर्दहन्त्या लताद्रुमान्।
भगवंतं दृशाऽपश्यत् स्फारफूत्कारदारुणः ॥२५६॥
दृष्टिज्वालास्ततस्तस्य ज्वलन्त्यो भगवत्तनौ।
विनिपेतुदुरालोका उल्का इव दिवो गिरौ ॥२५७॥

प्रभोर्महाप्रभावस्य प्रभवन्ति स्म नैव ताः ।
महानपि मरुन्मेरुं किं कंपयितुमीश्वरः ॥२५८॥

दारुदाहं न दग्धोऽसावद्यापीति क्रुधा ज्वलन् ।
ददर्शं दिनेशं हिद्रं ज्वालाः सोऽमुचत्पुनः ॥२५६॥

संपन्नासु प्रभौ वारिधाराप्रायासु तास्वपि ।
ददंश दन्दशूकः सनिःशूकः पादपंकजे ॥२६०॥

दृष्ट्वा-दृष्ट्वा पचक्राम स्वविषोद्रेकदुर्मदः ।
यत्पतन्मद्विषाक्रान्तो मृद्नीयादेष मामपि ॥२६१॥

दशतोऽप्यसकृत्तस्य न विषं प्राभवत्प्रभौ ।
गोक्षीरधाराधवलं केवलं रक्तमक्षरत् ॥२६२॥

ततश्च पुरतः स्थित्वा किमेतदिति चिन्तयन् ।
वीक्षांचक्रे जगन्नाथं वीक्षापन्नः स पन्नगः ॥२६३॥

ततो निरूप्य रूपं तद्सरूपं जगद्गुरोः ।
कांतसौम्यता मंक्षु विध्याते तद्विलोचने ॥२६४॥

उपसन्नं च तं ज्ञात्वा बभाषे भगवानिति ।
चंडकौशिक ! बुध्यस्व बुध्यस्व ननु मा मुहः ॥२६५॥

श्रुत्वा तद्भगवद्वाक्यमूहापोहं वितन्वतः ।
पन्नगस्य समुत्पेदे स्मरणं पूर्वजन्मनाम् ॥२६६॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य स त्रिस्त्रिभुवनेश्वरम् ।
निष्कषायः स्वमनसाऽनशनं प्रत्यपद्यत ॥२६७॥

कृतानशनकर्माणं निष्कर्माणं महोरगम् ।
प्रशमापन्नमज्ञासीदन्वज्ञासीच्च तं प्रभुः ॥२६८।

कुत्राप्यन्यत्र मा यासीद् दृष्टिर्मे विषभीषणा ।
इति तुंडं बिले क्षिप्त्वा पपौ स समताऽमृतम् ॥२६९॥

तस्थौ तथैव तत्रैव स्वामी तदनुकंपया ।
परेषामुपकाराय महतां हि प्रवृत्तयः ॥२७०॥

भगवंत तथा दृष्ट्वा विस्मेयस्मरलोचनाः ।
गोपाला वत्सपालाश्च तत्रोपसस्रुपुर्द्रुतम् ॥२७१॥

वृक्षान्तरे तिरोभूय यथेष्टं प्रावलेष्टुभिः ।
प्रणिजघ्नुरनिघ्नास्ते पन्नगस्य महात्मनः ॥२७२॥
तथाप्यविचलं ते तं वीक्ष्य विश्रम्भभाजिनः ।
यष्टिभिर्घट्टयामासुर्निकटीभूय तत्तानुम् ॥२७३॥
आह्वयञ्जनानां तद्गोपास्ततस्तत्रागमञ्जनाः ।
ववन्दिरे महावीरममहंश्च महोरगम् ॥२७४॥

× × ×

सिक्तः कृपासुधावृष्ट्या भगवतोरगः ।
पक्षान्ते पंचतां प्राप्य सहस्रारदिवं ययौ ॥२७६॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३

भगवान महावीर दक्षिण की ओर वाचाला ग्राम से विहार कर उत्तर की ओर के वाचाला ग्राम पधारे । वहाँ से भगवान ने श्वेताम्बिका नगरी की ओर विहार किया । मार्ग में गोपके लड़कों ने कहा—हे देवार्य ! यह मार्ग श्वेताम्बिका नगरी की ओर जाने का सरल मार्ग है, मध्यमे कनकखल नामक तापसों का आश्रम है वहाँ एक दृष्टि विष सर्प का वासस्थान है अतः वहाँ पक्षियोंका भी संचरण नहीं है मात्र वायु का ही संचार है अतः आपको सरल मार्ग को छोड़ कर वक्र मार्ग से जाना चाहिए ।

भगवान ने ज्ञान से सर्प को देखा, उसके पूर्व जन्म को जाना ।

दृष्टि विष सर्प अवश्य ही प्रतिबोध को प्राप्त होगा अतः भगवान ने सरल मार्ग से जाना तय किया । कनकखल आश्रम मे भगवान पधारे तथा वहाँ यक्षमण्डप मे नासिका पर नेत्र को स्थिर कर कायोत्सर्ग करने लगे ।

इसके बाद वह दृष्टिविष सर्प मुंह से कालरात्रि के समान जिह्वा को बाहर निकाल कर, अभिमान युक्त होकर फिरने लगा । वनमें आज्ञारेखा की तरह स्वयं के शरीर की रेखा करता हुआ फिरता ।

उसने मार्गमें भगवान महावीर को देखा और बोला कि मेरी अवज्ञा करने के लिए यह कौन व्यक्ति निःशंक होकर प्रवेश किया है, शकु की तरह स्थिर होकर खड़ा है । मैं इसको अभी भस्मीभूत कर दूंगा ।

फलस्वरूप वह क्रोधित होकर धमधमाता हुआ स्वयं की फणाटों को विस्तृत करने लगा । ज्वाला माला को वमन करती हुई, लता वृक्षों को दहन करती हुई, स्फार पुत्कारों से भयंकर दृष्टि से वह भगवान को देखने लगा । जैसे आकाश मे से उल्का पर्वत पर गिरती है

उसी प्रकार उसकी दृष्टि ज्वाला भगवान के शरीर पर गिरी। परन्तु महा प्रभाविक प्रभु पर उसका असर नही हुआ। महान् पवन भी मेरु को कंपित नहीं कर सकता।

स्वयं की तीव्र दृष्टि से भी जब प्रभु का कुछ भी नही हुआ, काष्ट की तरह यह कैसे दग्ध नहीं हुआ है ऐसा विचार कर विशेष क्रोधित होकर उसने सूर्य के सामने देख-देख कर विशेष दृष्टिज्वाला छोडने लगा तथापि वे ज्वालायें भी प्रभु के ऊपर जलधारा की तरह हो गई।

फिर वह सर्प शुक आदि होकर भगवान के चरणकमल को डसा। स्वयं के विष की उग्रता से दुर्मद होकर विचारने लगा कि मेरे तीव्र विष से आक्रान्त होकर अब यह मेरे ऊपर पड़कर मुझे दाब न दे इसलिए वह भगवान को डस डस कर दूर खसक जाता। उसने भगवान को जिस स्थान पर डसा वहाँ पर विषका प्रभाव नही हो सका—मात्र उस स्थान से गाय के दूध की धारा के समान रुधिर की धारा वहाँ झरती थी। बहुत बार ऐसा होने से 'यह क्या है'—ऐसा विस्मय प्राप्त होकर वह भगवान के सामने खड़ा हो गया और दुःखित होकर भगवान को देखने लगा। भगवान के अतुल्य-रूप को देखने से तथा भगवान को शांत और सौम्य देखने से उसके नेत्र स्तब्ध हो गये।

फलस्वरूप वह कुछ उपशांत हुआ तब भगवान बोले—हे चंडकौशिक ! बोध प्राप्त करो ! बोध प्राप्त करो ! मोह को प्राप्त मत करो। भगवान के ये वचन सुनकर ऊहापोह करते हुए उस सर्प को जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ।

तत्पश्चात् दृष्टिविष सर्प ने भगवान को तीन बारप्रदक्षिणा देकर अनशन अंगीकार करने का विचार किया।

भगवान को उपद्रव रहित रहे हुए देखकर सर्व ग्वाले वहाँ आये। वृक्षके अन्तर मे उस सर्प को निश्चल देखकर विस्मित हुए।

वह दृष्टिविष सर्प अनशनकर, मरण प्राप्तकर सहस्रार देवलोक मे देवरूप मे उत्पन्न हुआ।

.७ सुदंष्ट्रक नागकुमार का उपसर्ग

भगवान के सुरभिपुर में गंगानदी से उतरने के लिए नाव में बैठने के बाद

(क) ततो सामी सुरभिपुरं गतो, तत्थ गंगा उत्तरियव्वा, तत्थ सिद्धजत्तो नाम नाविगो, खेमिलो नाम सउणजाणतो, तत्थ नावाए लोगो विलग्गइ, एत्थंतरे कोसिएण महासउणेण वासियं, कोसिओ नाम उलूगो, खेमिलेण भणियं—जारिसं सउणेण भणियं तारिसं अम्हेहिं मारणंतियं पावियव्वं, किंतु इमस्स महारिसिस्स

पहावेण मुच्चीहामो, सा य नावा पहाविया, सुदाढेण नागकुमारराएण भयवं। नावाए ठितो दिट्ठो, तस्स कोवो जातो, सोयकिर जोसो सीहो वासुदेवत्तणे मारितो सो संसारं भमिऊण सुदाढो नागो जातो, सो संवट्टगवायं विउव्वित्ता नावं उब्बोलेउं इच्छ, इतोय कंबलसंबलाण आसणं चलियं। का पुण कंबलसंबलाणं उप्पत्ती? ××× ते कालगया नागकुमारेसु उववन्ना, ओहिं पउंजंति, जावपेच्छंति तित्थगरस्स उवसग्गं कीरमाणं, ताहे णेहि चिंतियं—अलाहि ता अन्नेण, सामिं मोएमो,आगया, एगेण नावा गहिया, एगासुदाढेण समंजुज्झइ, सो महिड्ढिो, तस्स पुणचवणकालो, इमे णु अहुणोववन्नया, सोतेहिं पराइतो, ताहे ते नागकुमारातित्थयरस्समहिमं करेंति, सत्तंरूवं च गायंति, एवं लोगोऽवि। ततो सामीउत्तिन्नो, तत्थ देवेहि, सुरहिगंधोदयवासं पुप्फवासं च वुट्ठं, तेऽवि पडिगया।

—आव० नि गा ४६८। मलय टीका में उद्धृत

(ख) प्रदेशी स्वपुरेऽथागात् स्वामी च विहरन् क्रमात्।
नगरं सुरभिपुरं तपःसुरभिरभ्यगात्॥२८८॥

× × ×

गंगां तरंगिणीमुच्चतरंगामासदत् प्रभुः॥२८९॥
तां तितीर्षुः सिद्धदत्तनाविकप्रगुणीकृताम्।
आरोहद्भगवान्नावं पथिका अपरेऽपिहि।२९०॥

दंडाभ्यां चाल्यमानाभ्यां पक्षाभ्यामिव पक्षिणी।
त्वरितं गंतुमारेभे नौरभ्युद्यतनाविका॥२९१॥

वाशितं कौशिकेनोच्चैस्तदानीं तटवर्तिना।
क्षेमिलाख्यः शकुनज्ञोऽवोचत्क्षेमं न खल्विह॥२९२॥

प्राप्तव्यमचिरात् सर्वैर्व्यसनं मरणान्तिकम्।
महर्षेरस्यमहिम्ना तस्मान्मोक्ष्यामहे परम्॥२९३॥

ब्रुवाण एवतत्रैवं नौरगाधं जलं ययौ।
सुदाढो नागकुमारस्तत्रस्थं चैक्षत प्रभुम्॥२९४॥

स्मृत्वा प्राग्जन्मवैरं स क्रुध्यन्नेवमचिंतयत्।
सोऽयं येन त्रिपृष्ठत्वे सिंहोऽहंनिहतस्तदा॥२९५॥

एतद्देशातिदूरस्थे गिरौ निवसता मया।
नापराद्धं तदा किंचित्त्रिपृष्ठस्य सतोऽस्यहि ॥
निजदोर्वीर्यदर्पेण कुतूहलचिकीर्षया।
गुहामध्ये निलीनोऽहं तदानीं निहतोऽमुना।
दिष्ट्यैष गोचरे दृष्टयोः वैरं स्वं साधयाम्यहम्।
वैरंहि शृणवत्पुंसां जन्मान्तरशतानुगम् ॥
आसन्नमप्यवसानं मम खेदाय नाधुना।
प्राग्वैरसाधनादद्य कृतार्थीकृतजन्मनः ॥
एवं विचिन्त्य सामर्षः सुदाढो विकटेक्षणः ॥
एत्योपवीरं व्योमस्थश्चक्रे किलकिलारवम् ॥
अरे रे ! कुत्र यासीति विब्रुवन् विचकार सः
संवर्तकमहावातं संवर्तानिलभीषणम् ॥
निपेतुस्तरवस्तेन पर्वताश्च चकंपिरे।
गंगामुच्छलति स्मोच्चैर्जलमभ्रंलिहोर्मिकम् ॥
सा च गांगैस्तरंगैर्नौः समुत्पातिनिपातिभिः।
उदच्यते न्यच्यते स्मद्विरदोपात्तरूपवत् ॥
निर्भग्नः कूपकस्तम्भः शीर्णः सितपटोऽपिच।
आत्मेव नावो मूढोऽभूत् कर्णधारो भयातुरः ॥
आरेभे देवताः स्मर्तुं मर्तुकामः समाकुलः ॥
यमजिह्वाप्रवर्तीव नौवर्ती सकलोजनः ॥३०५॥

× × ×

अथकंबलशबलाववधस्तावपश्यताम्।
क्रियमाणं सुदाढेन स्वामिनस्तमुपद्रवम् ॥३४१॥

कृतमन्येन कृत्येन कृत्यमेतद्यदर्हतः
उपसर्गं निषेधावो ध्यात्वैवं तावपेयतुः ॥३४२॥

एकः प्रववृते योद्धुं सुदाढेनाहिना सह।
द्वितीयः पाणिनोत्पाट्य निन्ये नावं नदीतटे ॥ ३४३ ॥

महर्द्धिकोऽपि सुदाढ आयुःप्रान्ते गलद्बलः।
ताभ्यां नूतनदेवत्ववैभवाभ्यामजीयत ॥ ३४४ ॥

भगवान् ने छः मास तक उपवास किया था, पारण के लिए भगवान् गोकुल पधारे। उस समय जिस-जिस घर में भगवान भिक्षा के लिए जाते, वहाँ-वहाँ वह अधम देव आहार को दूषित करने लगा।

६· विविध तप

(क) अथैषोऽतीव शक्तोऽपि षण्मासादितपोविधौ।
तथाप्यन्यमुनीनां सच्चर्या मार्गप्रवृत्तये ।।२।।
पारणाह्नि योगीन्द्रो धृतिधैर्यबलाधिकः।
निरोहोऽत्यन्तभोगादौ मतिचक्रे तनुस्थितौ ।।३।।

—वीरवर्धच० अधि १३। श्लो २-३

महावीर स्वामी छः मासी उपवास आदि के करनेमे अतीव समर्थ थे।

(ख) बहून् षष्ठाष्टमादींश्च षण्मासान्तांस्तपो विधीन्।

—वीरच० अधि १३। श्लो ४१। पूर्वार्ध

वे जिनदेव बेला-तेला आदि लेकर छः मास तक के उपवासों को करने लगे।

(ग) बहून् षष्टाष्टमादींश्च षण्मासान्तांस्तपो विधीन्।
कुर्यादवोऽवमोदर्यं कदाचित्पारणाह्नि ।।४१।।
सवृत्तिपरिसंख्यान क्वचिद्धत्ते तपोऽद्भुतम्।
अलाभायाघहान्यै चतुःपथादिप्रतिज्ञया ।।४२।।
रसत्यागं तपोदध्यान्निर्विकृत्यादिना क्वचित्।
ध्यानाय वनादौ च विविक्तं शयनासनम् ।।४३।।

—वीरवर्धच० अधि १३। श्लो ४१ से ४३

वे जिनदेव बेला-तेला आदि लेकर छः मास तक के उपवासों को करने लगे। वे जिनदेव कभी पारणा के दिन अवमोदर्य (ऊनोदर) तप करते, कभी अलाभ परीषह को जीतने के लिए चतुष्पथ आदि की प्रतिज्ञा करके अद्भूत वृत्तिपरिसंख्यान तपको करते, कभी निर्विकृति आदि की प्रतिज्ञा करके रसपरित्याग तप को करते और ध्यान के लिए वनादि निर्जन प्रदेशों मे विविक्तशयनासन तप को करते थे।

(घ) ××× ततो सामी सावत्थिगतो, तत्थ दसमं वासारत्तं विचित्तं तवोकम्मं ठाणाईहिं।

—आव० चू० पृ० २८८

श्रावस्ती के दसवें चतुर्मास में भगवान् ने विचित्र तप किया।

(च) उग्गं च तवोकम्मं विसेसतो वद्धमाणस्स ।

—आव० नि गा २६२

मलय टीका—सर्वेषामपि च छद्मस्थकाले उग्रं तपःकर्म, विशेषतो वर्द्धमान-स्वामिन उग्रमिति ।

यद्यपि सर्व जिनेश्वरों का उग्रतप है लेकिन वर्धमानस्वामी का अन्य की अपेक्षा उग्र तप है ।

(छ) छट्ठेणं एगया भुंजे, अदुवा अट्ठमेण दसमेणं ।
दुवालसमेण एगयाभुंजे, पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे ।

—आया० श्रु १ । अ ९ । उ ४ । गा ७ । पृ० ७८

टीका—किञ्च छट्ठेण इत्यादि षष्ठेनैकदा भुंक्ते तथानामैकस्मिन्न हन्येक भक्तं विधाय पुनर्दिन द्वयमभुक्त्वा चतुर्थो ह्न्येक भक्तामपि विधत्ततश्चाद्यन्तयोरेकभक्त दिनयोर्भक्तद्वयं मध्यदिवसयोश्च भक्तचतुष्टयमित्येवंषण्णां भक्तानां परित्यागात् षष्टं भवत्यर्धदिनादि वृद्ध्याष्टमाद्यायोज्जमित्यथवा अष्टमेन दशमेनाथवा द्वादशमेनेकदाकदाचिद्भुक्तवान् समाधि शरीरसमाधानं प्रेक्षमाण पर्यालोचयन् न पुनर्भगवतः कथंचिदौर्म्मनस्यमुत्पद्यते नथाप्रतिज्ञो निदान इति ।

अपने शरीर की समाधि को देखते हुए भगवान् निदान रहित होकर कभी बेला करके, कभी तेला करके, कभी चोला करके, कभी पचोला करके आहार करते थे ।

(ज) अपिइत्थ एगया भगवं, अद्धमासं अदुवामासंपि ।
अवि साहिए दुवेमासे, छप्पिमासे अदुवाअपिवित्ता ॥

—आया० श्रु १ । अ ९ । उ ४ । गा ५ उत्तरार्ध, ६ पूर्वार्ध । पृ० ७७-७८

टीका—तथा पानमप्यर्द्धमासं भगवान्नापीतवानपिच ।

अवि साहिए इत्यादि मासद्वयमपि साधिकमथवा षडपिमासान् साधिकान् भगवान् पानकमपीत्वापि ।

चतुर्मास के अतिरिक्त आठ महिनो मे पंद्रह-पन्द्रह दिन की तपस्या, एक महीना, दो महीना, दो महीने से अधिक, छहमास से अधिक चौविहार तपस्या करते थे ।

·१० प्रतिमा

·१ औधिक प्रतिमा

(क) दववुड्डुअनिसिज्जाएठियपडिमाणं सए बहुए ।

—आव० निगा ५१४ । उत्तरार्ध

मलय टीका—उत्कुटुकनिषद्यायांस्थितप्रतिमानां बहूनिशतानि।

भगवान् ने छद्मस्थ काल में उत्कुटुक निषिद्या आसन में प्रतिमा में बहु दिन-रात स्थित रहे थे।

(ख) दीक्षादिनादतीतेऽब्दे मोराकं सन्निवेशनम्।
गत्वा तद्बहिरुद्याने स्वाम्यस्थात् प्रतिमाधरः॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो १७०

दीक्षादिवस से एक वर्ष व्यतीत होने के बाद वापस पहले मोराक ग्राम में आकर भगवान बाहर के उद्यान मे प्रतिमा धारण कर रहे।

(ग) बहिःपूर्या द्वितीयं द्विमासक्षपणपारणम्।
कृत्वा स्वामी सगोशालः कोल्लाकेऽगान्निवेशने।
नक्तं तत्र गृहे शून्येतस्थौ प्रतिमया प्रभुः।
तद्द्वारेऽस्थात्तु गोशालो लीत्वा कपिरिवाऽस्थिरः।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ४२८-४२९

ततो चरिमं दोमासियं पारणयं बाहिं पारित्ता कालायं नाम सन्निवेशं गतो गोशालेण समं, तस्थ भयवं सुन्नघरे पडिमं ठितो, गोसालोऽवितस्सदारपहे ठितो।

—आव० निगा ४७५ । मलय टीका

तृतीय चतुर्मास के बाद चम्पानगरी के बाहर चरिम दो मास क्षमण का पारणा कर गोशाला के साथ भगवान महावीर कोल्लाक (कालय) ग्राम पधारे। वहाँ रात्रि में शून्यगृह मे प्रतिमा धारण कर भगवान स्थिर रहे। गोशाला चपल सहित उसके द्वार के आगे बैठा।

(घ) दढभूमी बहिआ, पेढालं नाम होइउज्जाणं।
पोलाय चेइयंमि, ठ्ठिएगराईमहापडिमं॥

—आव० नि गा ४९८

दढ भूमि के बाहर पेढाल ग्राम के उद्यान मे भगवान् ने पोलास चैत्य में एक रात्रि की महाप्रतिमा ग्रहण की।

(च) कालाय सुन्नगारे सीहो विज्जुमइ गुट्ठिदासीय।
खंदो दत्तिलियाउ पत्तालग सुन्नगारम्मि॥

—आव० नि गा ४७९

मलय टीका ×××। ततो निर्गत्य द्वितीयदिवसे पत्रालये ग्रामे शून्यागारे गोशालकेन सहस्थितो भगवान्। ×××।

(छ) निष्क्रम्यस्वाम्यगाद्ग्रामे पत्रकालेऽभिधानतः।
प्राग्वच्चास्थाच्छून्यगृहे निशायां प्रतिमाधरः।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ४११ ।

कोल्लाक (कलाय) ग्राम से विहार कर भगवान् महावीर पत्रकाल नामक ग्राम पधारे। वहाँ भी शून्य गृह मे पूर्व की तरह रात्रि मे प्रतिमा धारण कर रहे।

श्रावस्ती के दशवें चतुर्मास के बाद

·२ भद्रा प्रतिमा ग्रहण

(क) पारयित्वा बहिस्तत्र ग्रामेऽगात्सानुयष्टिके।
भद्रां च प्रतिमां तत्र भगवान् प्रत्यपद्यत ॥१४६॥
तस्यां ह्यनशितः पूर्वं पूर्वाशाभिमुखं प्रभुः।
एकपुद्गलविन्यस्तदृक् तस्थौ सकलं दिनम् ॥
दक्षिणाभिमुखो रात्रिं पश्चिमाभिमुखोदिनम्।
उत्तराभिमुखो रात्रिं षष्ठेन प्रतिमांऽप्यधात् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो १४९ से १५१

(ख) तदनन्तरं सानुलट्ठिगामं गतः। तत्थबाहिं भद्दपडिमं ठितो, केरिसिया भद्दापडिमा ?, भन्नइ, पुव्वाभिमुहो दिवसं अच्छइ, पच्छा रत्तिं दाहिणहुत्तो, ततो बीए अहोरत्ते अवरेणं दिवसं उत्तरेणं रत्तिं, एवं छट्ठेणं भत्तेणं निट्ठिया तहवि न चेव पारेइ।

—आव० नि गा ४९५ मलय टीका

आव० चू पूर्व भाग पृ० ३००

जब श्रावस्ती नगरी से विहार कर भगवान सानुयष्टिक ग्राम पधारे तब ग्राम के बाहर भद्रप्रतिमा अंगीकार की। दो दिन की तपस्या मे प्रतिमा पूर्ण हुई। वे भगवान् पूर्व दिशा की ओर मुँह कर कायोत्सर्ग की मुद्रा मे खड़े हो गये। चार प्रहर तक ध्यान की मुद्रा मे खड़े रहे। इसी प्रकार उन्होंने उत्तर-पश्चिम और दक्षिण दिशा की ओर अभिमुख होकर चार-चार प्रहर तक ध्यान किया।

·३ महाप्रतिमा ग्रहण—

(क) ततो अपारितो चेव महभद्दं पडिमं ठाइ, सा पुण एवं पुव्वाए दिसाए अहोरत्तं, एवं चउसुविदिसासु चत्तारि अहोरत्ता, एवमेसा दसमेण निट्ठिआ, तहावि न पारेइ।

—आव० नि गा ४९५ टीका—

—आव० चू पूर्वभाग पृ० ३००

(ख) अपारितो महाभद्रांप्रतिमां शिश्रिये प्रभुः।
तस्थौ चतुरहोरात्रीं तत्र पूर्वादिवक्रमात् ॥१५२॥
दशमेन महाभद्रां कृत्वैवंप्रतिमांत प्रभुः।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४

अपारित भद्र प्रतिमा के बाद भगवान् ने महाभद्र प्रतिमा अंगीकार की और पूर्वादि दिशाओं के क्रम से चार अहोरात्रि ध्यान में रहे। इस प्रकार दसभक्त से - चार उपवास से महाभद्रा प्रतिमा पूर्ण की।

·४ सर्वतोभद्रा प्रतिमा ग्रहण—

(क) ताहे अपारितो चेव सव्वतोभद्दं पडिमं ठाइ, सा पुण सव्वतोभद्दा एवं-इ दाए अहोरत्तं, एवम् अग्गेईए जम्माए नेरईए वारुणीए वायव्वाए सोमाए ईसाणीए विमलाए (तमाए) तत्थं जाइं उड्ढलोइयाइं ताइं निज्झायइ, तमाए हेट्ठिल्लाइं एय-मेसा दसहिं दिसाहिं बावीसइमेण समप्पइ।

—आव० नि गा ४९५ । टीका—

—आव० चू पूर्वभाग पृ० ३००

(ख) प्रपेदे सर्वतोभद्रां द्वाविंशतितमेन सः ॥१५३॥
प्रत्येकमप्यहोरात्रं तस्थौ दिक्षु दशस्वपि।
किं तुन्यध्यायदूर्ध्वाधोद्रव्याण्यूर्ध्वाधराशयोः।

- त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो १५३ उत्तरार्ध, १५४

महाभद्र प्रतिमा पूर्ण कर, उसको पारे बिना बावीस भक्त (दस उपवास) तप से सर्व-तोभद्रा प्रतिमा अंगीकार की। उस प्रतिमा की आराधना करते हुए दस दिशाओं में एक-एक अहोरात्रि तक ध्यान में रहे। उसमें ऊर्ध्व और अधो दिशा के प्रसंग में ऊर्ध्व और अधो भाग रहे हुए द्रव्य ऊपर दृष्टि स्थापित की। इस प्रकार प्रतिज्ञा पूर्ण की—

नोट—कुल मिलाकर सोलह दिन-रात तक निरंतर ध्यान के द्वारा प्रतिमा की साधना की।

·५ भद्र-महाभद्र-सर्वतोभद्र प्रतिमा—

भद्दं च महाभद्दं पडिमं तत्तो अ सव्वओभद्दं।
दो चत्तारि दसेव य दिवसे ठासीयमणुबद्धं।

—आव० नि गा ५२६

मलय टीका—भद्रां महाभद्रां सर्वतोभद्रां च प्रतिमां यथाक्रमं द्वौ चतुरो दश च दिवसान् अनुबद्धं—सन्ततमपान्तराले पारणकमकृत्वेति भावः स्थितवान्।

भद्र प्रतिमा, महाभद्रा प्रतिमा और सर्वतोभद्रा प्रतिमा क्रमशः दो दिन, चार दिन तथा दस दिवस का उपवास—मध्यकाल में पारण किये बिना लगातार किया।

·६ महाप्रतिमा—

(क) ततो भयवं बहुमेच्छं दढभूमिगतो, तस्स बहिं पोलासं नामं चेइयं, तत्थ अट्ठमेण भत्तेण अपाणएण ईसीपब्भारगएण काएणं, इसीपब्भारगतो नामईसिं ओणतो कातो, एगपोग्गला एगपोग्गलनिरुद्धदिट्ठी अणिमिसनयणे तत्थवि जे अचित्ता तेसु दिट्ठि निवेसेइ, सचित्तेहिं दिट्ठी अप्पाइज्जइ, जहा दुक्खाए, अहापणिहिएहिं गत्तेहिं सव्विदिएहिं गुत्तेहिं दोविपाए साहटु वग्घारियपाणी एगराइयं महापडिमं ठितो।

—आव० नि गा ४९१ मलय टीका

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० ३०१

(ख) पेढालग्रामं निकषा पेढालारामन्तरा।
कृताष्टमतपःकर्मा पोलासं चैत्यमाविशत्॥१६१॥
जन्तूपरोधरहित मधिष्ठाय शिलातलम्।
आजानुलंबितभुजो दरावनतविग्रहः॥१६२॥
स्थिरचेता निर्निमेषो रुक्षैकद्रव्यदत्तदृक्।
तस्थौ तत्रैकरात्रिक्या महाप्रतिमया प्रभुः॥१८३॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४

सानुयष्टिक ग्राम से भगवान् बहुम्लेच्छ ऐसी दृढभूमि मे पधारे। वहाँ पोलास ग्राम के निकट पेढाल नामक उद्यान में पोलास चैत्य मे अष्टम भक्त तपस्या में प्रवेश किया। जंतु रहित स्थान में एक शिला पर जानुतक भुजा लम्बी कर, शरीर को नमाकर, चित्त स्थिर कर अनिमेष दृष्टि से रुक्ष द्रव्य पर दृष्टि रखकर (एक पुद्गल पर दृष्टि रखकर) एक रात्रि की महाप्रतिमा मे स्थित हो गये।

·७ एक रात्रि की भिक्षु-प्रतिमा

(क) दस दोअ किर महप्पा ठाइ मुणी एगराइयं पडिमं।
अट्ठमभत्तेण जई इक्किक्कं चरमराई अ॥

—आव० नि गा ५११

टीका दश द्वे च सर्वसंख्ययाद्वादशकिल एकरात्रिकी प्रतिमा, सूत्रे चैकवचनं प्रकृतत्वात्, महात्मा-मुनिः ''ठाति'' त्ति स्थितवान्, कथं स्थितवानित्याह एकैकां च प्रतिमां अष्टमभक्तेन-त्रिरात्रोपवासे चरमरात्रिकी-चरमरजनी-निष्पन्नां प्रति 'यति' ति अयविष्ट प्रयत्नवान्।

(घ) विहरन् भगवन् वीरः सुसुमारपुरं ययौ ॥३७२॥
तत्रोद्यानेऽशोकखंडेऽशोकद्रोःशिलातले ।
कृताष्टमप्रभुर्भेजे प्रतिमामेकरात्रिकीम् ॥३७३॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लोक ३७२, ३७३

सुसुमारपुर में अशोक खडोद्यान मे अशोक वृक्ष के नीचे शिलातल पर अष्टम भक्त की तपस्या मे भगवान ने एक रात्रिकी भिक्षु प्रतिमा धारण की ।

.११ कायक्लेश आदि बाह्य तप

कायक्लेशं भजन्नेवं शरीरसुखहानये ।
इत्यसौ षड् विधं चक्रे तपो बाह्यं सुदुस्सहम् ॥४७॥

—वीरवर्धच० अधि १३ । श्लो ४७

वीर जिनेन्द्र कायक्लेश तप करते थे । छहों प्रकार का आभ्यन्तर तप करते थे ।

१२ तपस्याओं का विवरण

(क) चतुर्मासक्षपणानि नव द्विमासिकानि षट् ।
मासिकानि द्वादशार्धमासिकानि द्विसप्तति ॥६५२॥
एकं पाण्मासिकं द्वे त्रिमासे द्वे सार्धमासिके ।
सार्धद्विमासिके द्वे च भद्रादिप्रतिमात्रयम् ॥६५३॥
महानगर्यां कौशाम्ब्यामभिगृहसमन्वितम् ।
अहोभिः पंचभिन्यूनमेकं षाण्मासिकंतथा ॥६५४॥
प्रतिमाश्चैक रात्रिक्यो द्वादशाष्टमभक्ततः ।
चरमायां विभावर्यां कायोत्सर्गसमन्विताः ॥६५५॥
एकोनत्रिंशदधिके द्वे च षष्ठशते प्रभोः ।
नित्यभक्तं चतुर्थं च बभूव न कदाचन ॥६५५॥
प्रभोरेकोनपंचाशं पारणाहशतत्रयम् ।
व्रताह्नाच्चेत्यभूत् सार्धा द्वादशाब्दी सपक्षिका ॥६५७॥
कृत्वा तपोजलविहीनमशेषमित्थं
छद्मस्थ एव विहरन् विजितोपसर्गः ।
स्वामी जगाम ऋजुपालिकया महत्या ।
नद्या सनाथमथ जृम्भकसन्निवेशम् ॥६५८॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४

(ख) मलय टीका × × × यद् भगवतातपः सेवितं तदभिधित्सुदाह —

जो अतवो अणुचिन्नो वीरवरेणं महाणुभावेणं।
छउमत्थकालियाए अहक्कमं कित्तइस्सामि ॥५२६॥
नवकिरचाउम्मासे छक्किर दोमासिए उवासीअ।
बारस य मासियाइं बावत्तरि अद्धमासाइं ॥५२७॥
एगं किर छम्मासं दो किर तेमासिए उवासीय।
अड्ढाइज्जा य दुवे दो चेव दिवड्ढमासाइं ॥५२८॥
भद्दं च महाभद्दं पडिमं तत्तो अ सव्वओभद्दं।
दो चत्तारि दसेव य दिवसे ठासीयमणुबद्धं ॥५२९॥
गोअरमभिग्गहजुअं खमणं छम्मासीअं च कासीअ।
पंचदिवसेहिं ऊणं अव्वहिओ वच्छनयरीए ॥५३०॥
दस दो अ किर महप्पा ठाइमुणीएगराइयं पडिमं।
अट्ठमभत्तेण जई इक्किक्क चरमराईअ ॥५३१॥
दो चेव य छट्ठसए अउणातीसे उवासिओ भयवं।
न कयाइ निच्चभत्तं चउत्थमत्तं च से आसी ॥५३२॥
बारसवासे अहिए छट्ठं मत्तं जहन्नयं आसि।
सव्वं च तवोकम्मं अपाणय आसि वीरस्स ॥५३३॥

—आव० नि गा ५२६ से ५३३ दीपिका पत्र १०७,१०८

(१) मलय टीका—यच्च तप आचरितं वीरवरेण महानुभावेन छद्मस्थकाले, यत्तदोर्नित्याभि सम्बन्धात् तद् यथाक्रमं येन क्रमेणानुचरितं भगवतातथा कीर्त्तयिष्यामि।

(२) नवकिल चातुर्मासिकानि, पट् किल द्विमासिकानि उपोषितवान्, किल शब्द परोक्षाप्तागमवादसंसूचकः द्वादश मासिकानि द्विसप्ततिमर्द्ध मासिकानि उपोषितवानिति क्रियायोगः।

(३) एग किलपण्मासद्व किल त्रैमासिके उपोषितवान् तथा अर्द्ध तृतीयमासनिष्पन्नं तपोऽर्द्ध तृतीयं ते अर्द्ध तृतीये द्व, चशब्दः क्रियानुकर्षणार्थः, द्व एव च द्व्यर्द्धमासे, द्वितीयमर्द्धं ययोस्तौ द्व्यर्द्धौरि मासौ यस्य तद्द्व्यर्द्धमासं ते द्व्यर्द्धमासे तपसी कृतवान्।

(४) भद्रां महाभद्रां सर्वतोभद्रां च प्रतिमां यथाक्रमं द्वौ चतुरो दश दिवसान् अनुबद्धं—सन्ततमपान्तराले पारणकमकृत्वेतिभावः स्थितवान्।

(५) गोचरे अभिग्रहः गोचराभिग्रस्तेन युतं गोचराभिग्रहयुतं क्षपणकं षाण्मासिकं पंचभिर्दिवसैरूनमव्यथितः—अपीडितो वत्सनगर्यां कोशाम्ब्यामकार्षीत् ॥

(६) दशाट्टे च सर्वसंख्यया द्वादश किल एक रात्रिकी प्रतिमा, सूत्रे चैकवचन प्राकृतत्वात्, महात्मा-मुनिः 'ठाति' त्ति स्थितवान्, कथं स्थितवानित्याह-एकैकां च प्रतिमां अष्टमभक्तेन त्रिरात्रोपवासेन चरमरात्रिकीं-चरम रजनीनिष्पन्नां प्रति 'यति' त्ति अयतिष्ट प्रयत्नवान्।

(७) द्वे एव षष्ठशते एकोनत्रिंशे एकोनत्रिंशदधिके भगवान् उपोषितवान्, एवं च न कदाचिन्नित्यभक्तं चतुर्थभक्तं च 'से' तस्यासीत्।

(८) द्वादश वर्षाण्यधिकानि भगवतश्छद्मस्थस्य सतः षष्ठं भक्तं —द्वयहोरात्रोपवासरूपं तपो जघन्यमासीत् सर्वं च तपकर्म अपमानकमासीत् वीरस्य, न तपकर्म कुर्वन् पानीयमभ्यवहृतवान् भगवानितिभावः।

भगवान महावीर ने छद्मस्थ काल में इस प्रकार तपस्या की।

एक छहमासिक, नव चतुर्मास क्षमण, छह द्विमासिक, बारह मासिक तप, बहत्तर अर्द्ध-मासिक, दो त्रिमासिक, दो डेढ़ मासिक, दो अर्धतृयोमासिक, तीन भद्रादि तपस्याएँ (भद्र, महाभद्र, सर्वतोभद्र)।

कोशाम्बी नगरी में पाँच दिन न्यून छहमास अभिग्रह सहित उपवास,

बारह अष्टम भक्त, अन्तिम रात्रि में कायोत्सर्ग युक्त एक रात्रि की प्रतिमा, दोसौ गुणतीस छट्ठभक्त, तीन सौ उनपचास पारणा हुए।

जिस दिन भगवान ने व्रत ग्रहण किया उस दिन से साढ़े बारह वर्ष, एक पक्ष तपस्या हुई।

भगवान ने छद्मस्थ काल में नित्यभक्त या चतुर्थ भक्त तपस्या न की।

भगवान की सर्व तपस्या निर्जल थी।

इस प्रकार उपसर्गों को जीतते हुए और छद्मस्थ रूप में विहरण करते हुए भगवान महावीर ऋजुवालुका नाम की नदी के पास जृम्भक ग्राम में पधारे।

छद्मकाल काल की तपस्या का चार्ट

अनुक्रम	तप का नाम	कितनी बार	दिवस संख्या	पारणा दिन
१	दो दिन का उपवास (षष्ठ भक्त)	२२९	४५८	२२९
२	तीन दिन का उपवास (अष्टभक्त)	१२	३६	१२
३	पाक्षिक उपवास (अर्धमासिक)	७२	१०८०	७२
४	एक मास का उपवास (मास खमण)	१२	३६०	१२
५	डेढ मास का उपवास	२	९०	२
६	दो मास का उपवास (द्वैमासिक)	६	३६०	६
७	ढाई मास का उपवास	२	१५०	२
८	तीन मास का उपवास	२	१८०	२
९	चार मास का उपवास	९	१०८०	९
१०	पाँच मास पच्चीस दिन का उपवास	१	१७५	१
११	छह मास का उपवास	१	१८०	१
१२	भद्र तप	१	२	०
१३	महाभद्र तप	१	४	०
१४	सर्वतोभद्र तप	१	१०	१
	कुल योग	३५१	४१६५	३४९

नोट—दीक्षा के समय दो दिन की तपस्या का पारणा १

अतः ३४९ + १ = ३५० पारणा हुआ है।

.४२ तपस्या का पारणा

.१ छट्ठभक्त का पारणा

.१ प्रथम का

(क) स्वामी षष्ठपारणाय कोल्लाकेऽगान्निवेशने ॥३४॥
तत्र द्वेजातेर्बहुलाभिधस्य सदने प्रभुः।
चक्रे सिताज्यमिश्रेण परमान्नेन पारणम् ॥३५॥
वसुधारा प्रभृतीनि द्विजातेस्तस्य सद्मनि।
पंचदिव्यान्याविरासन् कृतानि द्विविषद्‌गणैः ॥३६॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३

(ख) कुल्लागबहुल छट्ठस्स पारणे पयसवसुहारा ॥

—आव० निगा ४६१

टीका—भगवतोऽपि कोल्लाके सन्निवेशे बहुलो नाम ब्राह्मणः षष्ठस्य-तपोविशेषस्य पारणके पायसमुपनीतवान् 'वसुहारे'ति। तद्गृहे वसुधारा पतिता।

भगवान के छट्ठ का पारणा-कोल्लाक ग्राम मे बहुल नामक ब्राह्मण के घर पर हुआ। उन्होंने शक्कर आदि से मिश्रित परमान्न से पारणा किया। ब्राह्मण के घर पर देवों द्वारा वसुधारा आदि पाँच दिव्य प्रगट हुए।

नोट—प्रव्रज्या के समय भगवान के दो दिन की तपस्या थी। यह उस षष्ठ भक्त का पारणा है।

.२ द्वितीय चतुर्मास के बाद छट्ठभक्त का पारणा

(क) स्वाम्यगाद्ब्राह्मणग्रामे द्वौ स्तस्तत्र च पाटकौ।
तयोर्नन्दापनन्दोख्यौ स्वामिनौ भ्रातरावुभौ ॥४१९॥
षष्ठपारणके स्वामी प्राविशन्नन्दपाटके।
सद्ध्युषितकूरेण नन्देन प्रत्यलाभि च ॥४२०॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ४१९, ४२०

ततो सामी बंभणगामं गतो, तत्थ नंदो यउवणंदो य दुवे भायरो, गामस्स दो पाडगा, एगोनंदस्स बिइतो उवनंदस्स, ततोसामी नंदस्स पाडयं पविट्ठो नंदघरं च, तत्थ दोसीणेणय पडिलाभितो नंदेण × × ×।

—आव० नि गा ४७४ । मलय टीका मे उद्धृत

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० २८३,२८४

स्वर्णखल से विहार कर भगवान ब्राह्मणग्राम पधारे। उस ग्राम के दो पाड़े थे। उस पाड़े के मालिक-नन्द और उपनन्द दो भाई थे। भगवान छट्ठभक्त का पारणा करने के लिए नन्द के पाड़े में प्रवेश किया। नन्द ने भगवान को दही सहित कूर का दान दिया।

.३ अर्द्धमास क्षमण का पारणा—

(क) उत्तरवावाला नागसेण खीरेण भोयणं दिन्नं।

—आव० । नि गा ४६८

मलय टीका—उत्तरवावालो नामसन्निवेशः, तत्र भगवान् पक्षक्षपणपारणके गतः, तत्र नागसेनेन क्षीरभोजनेन प्रतिलाभितः, पंचदिव्यानि प्रादुर्भूतानि।

(ख) पच्छा सामी उत्तरवाचालं गतो, तत्थ पक्खक्खमणपारणए नागसेणेण गाहावइणा खीरभोयणेण पडिलाभितो।

—आव० चू पूर्वभाग पृ० २७६

(ग) प्राप चोत्तरवाचालसन्निवेशं जगद्गुरुः ॥२८०॥
पक्षान्ते पारणार्थं च भ्रमन् गोचचर्यया।
गृहिणो नागसेनस्य सदने प्रययौ प्रभुः ॥२८१॥
× × ×
दूरात्स्वामिनमालोक्य प्रमोदमधिकं वहन्।
नागसेनोऽपि पयसा भक्तिमान् प्रत्ययलाभयत् ॥२८४॥
तत्रामरैरहोदानं सुदानमिति भाषिभिः।
वसुधाराप्रभृतीनि पंचदिव्यानि चक्रिरे ॥२८५॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो २८० उत्तरार्ध, २८१, २८४, २८५

भगवान अर्द्धमास क्षमण पारणा के लिए उत्तरवाचलग्राम पधारे। वहाँ नागसेन गृहस्थ ने भक्तिभाव पूर्वक भगवान को क्षीरभोजन प्रतिलाभित किया। फलस्वरूप अहोदान-अहोदान—इस प्रकार कहते हुए देवों ने वसुधारा आदि पाँच दिव्य प्रगट किये।

नोट—यह पारणा प्रथम चतुर्मास के बाद व द्वितीय चतुर्मास के पूर्वार्ध का है।

४· मासक्षमण का पारणा—

·१ प्रथम मास क्षमण का

(क) तएणं अहं गोयमा! पढममासक्खमणपारणगंसि तंतुवायसालाओ पडिणिक्खमामि, पडिणिक्खमित्ता णालंदाबाहिरियं मज्झंमज्झेणं जेणेव रायगिहे णयरे उवगच्छामि, उवागच्छित्ता, रायगिहे णयरे उच्च-णीय० जाव अडमाणे विजयस्स गाहावइस्स गिहं अणुपविट्ठे।

तएणं से विजए गाहावई ममं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ० खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करित्ता अंजलिमउलियहत्थे ममं सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता मम तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता ममं वंदइ णमंसइ, णमंसित्ता ममं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेस्सामित्ति तुट्ठे पडिलाभेमाणे वि तुट्ठे, पडिलाभिए वि तुट्ठे। तएणं तस्स विजयस्स गाहावइस्स

तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिगाहसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं दाणेणं मए पडिलाभिए समाणे देवाउए णिबद्धे, संसारे परित्तीकए, गिहंसि य से इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भुयाइं तं जहा—१ वसुधरा वुट्ठा २ दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाइए ३ चेलुक्खेवेकए ४ आहयाओ देवदुन्दुभीओ ५ अंतरा वि य णं आगासे—'अहो दाणे अहो दाणे' त्ति घुट्ठे।

—भग० श १५। सू २४, २५, २६। पृ० ६५८, ५६

(ख) ××× रायगिहे तंतुवायसालाए ×××, जत्थ सामीट्ठितो तत्थवासावासमुवागतो, भयवंमासक्खमणपारणे अब्भिंतरे विजयस्स घरेविउलाए भोयणविहीए पडिलाभित्तो, पंचदिव्वाणि पाउब्भूयाणि।

—आव० नि गा ४७१। मलय टीका

(ग) विजयाणंद सुनंदे भोयण खज्जे य कामगुणे।

— आव०। नि गा ४७३। उत्तरार्ध

मलयटीका—××× भगवतः प्रथमं पारणकं विजयस्य गृहे विपुलभोजनविधिना, द्वितीयमानन्दस्य गृहे खाद्यविधिना, तृतीयं सुनन्दस्य गृहेसर्वकामगुणं।

(ग) नाथोऽपि मासक्षपणपारणस्य विधित्सया।
विजयश्रेष्ठिनो वेश्म प्राविशत्पाणिभाजनः
भक्त्या महत्या विजयश्रेष्ठीश्रेष्ठमतिः स्वयम्॥
सम्यग्भोजनविधिना स्वामिनं प्रत्यलाभयत्॥
अहो दानं सुदानं चेत्युच्चैराघोषिणोऽमराः।
रत्नवृष्ट्यादिदिव्यानि तद्गृहे पंच चक्रिरे॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो ३७९ से ३८१

मैं प्रथम मास क्षमण के पारणे के दिन तंतुवाय शाला से निकला और नालन्दा के बाहरी भाग के मध्य में होता हुआ राजगृह नगर में आया। फिर ऊँच, नीच और मध्यमकुल में यावत् आहार के लिए फिरते हुए—मैं विजय नामक गाथापति के घर में प्रवेश किया।

मुझे प्रवेश करते देखकर विजय गाथापति प्रसन्न एवं संतुष्ट हुआ। वह शीघ्र ही सिंहासन से नीचे उतरा और पादुका (खड़ाऊँ) का त्याग किया। फिर एक पट वाले वस्त्र का उत्तरासंग किया। दोनों हाथ जोड़ कर सात-आठ चरण मेरे सामने आया और मुझे तीन बार प्रदक्षिणा कर के वन्दन-नमस्कार किया। आज मैं भगवान को पुष्कल अशन, पान, खादिम और स्वादिम से प्रतिलाभूंगा। ऐसा विचार कर संतुष्ट हुआ। वह प्रतिलाभते समय

भी संतुष्ट हुआ था और प्रतिलाभित करने के बाद भी संतुष्ट रहा। विजय गाथापति ने द्रव्य की शुद्धि से, दायक की शुद्धि से और पात्र की शुद्धि से तथा त्रिविध (मन-वचन-काय) और तीन करण (कृत-कारित-अनुमोदित) की शुद्धि से मुझे प्रतिलाभित करने से देव का आयुष्य का बांधा। संसार परिमित किया।

दान के प्रभाव से उसके घर में पाँच दिव्य प्रकट हुए यथा—१—वसुधारा की वृष्टि, २—पाँच वर्णों के पुष्पों की वृष्टि, ३—ध्वजारूप वस्त्र की वृष्टि, ४—देव-दुन्दुभिकावादन और ५—आकाश में—'अहोदान' की ध्वनि।

·२ द्वितीय मासक्षण का पारणा—

(क) तएणं अहं गोयमा ! दोच्चं मासक्खमणपारणगंसि तंतुवायसालाओ पडिणिक्खामि, पडिणिक्खमित्ता णालंदं बाहिरियं मज्झंमज्झेणं जेणेव रायगिहे णयरे ××× (जाव) अडमाणे आणंदस्स गाहावइस्स गिहं अणुप्पविट्ठे ! तएणं से आणंदे गाहावई ममं एज्जमाणं पासइ ××× एवं जहेव विजयस्स, णवरं ममं विउलाए खज्जगविहीए 'पडिलाभेस्सामि' त्ति तुट्ठे, सेसं तं चेव।

—भाग० श १५। सू ३१, ३२। पृ० ६६०, ६१

(ख) ××× रायगिहे तंतुवायसालाए ××× बिइयमासक्खवणंमि ठितो, बिइयपारणगेआणंदस्स घरे खज्जविहीए।

—आव० नि गा ४७१। मलय टीका

(ग) द्वितीयमासक्षपणे स्वामी वेश्मन्युपागतः।
आनन्देन गृहस्थेन खाद्यकैः प्रत्यलाभ्यतः॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो ३०८

इसके पश्चात् दूसरे मास क्षमण के पारणे के समय, मैं ततुवायशाला से निकला और आनन्द गाथापति ने मुझे आते हुए देखा। उसने विपुल खण्ड-खाद्यादि (खाजादि) भोजन सामग्री प्रतिलाभित किया। पाँच प्रकार की वृष्टि हुई।

·३ तीसरे मास क्षमण का पारणा

(क) तएणं अहं गोयमा ! तच्चं मासक्खमणपारणगंसि तंतुवायसालाओ पडिणिक्खमामि, पडिणिक्खमित्ता तहेव ××× जाव अडमाणे सुणंदस्स गाहावइस्स गिहं अणुपविट्ठे। तएणं से सुणंद गाहावई ××× एवं विजय गाहावई, णवरं ममं सव्वकामगुणिएणं भोयणेणं पडिलाभेइ सेस तं चेव।

—भाग० श १५। सू ३८,३९। पृ० ६११,६२

(ख) × × × । तइय सुदंसणस्स घरे सव्वकामगुणिएणं ।

—आव० नि गा ४७१ मलयटीका

(ग) तृतीयमासक्षपणे सुनन्दगृहिणा प्रभुः ।
सर्वकामगुणाढ्येनाहारेण प्रत्यलाभ्यत ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो १८६

तीसरे मास खमण के पारणे के लिए तंतुवाय शाला से बाहर निकल कर सुनन्द गाथापति के घर में प्रवेश किया । सुनन्द गाथापति ने मुझे आते हुए देखा यावत् उसने मुझे सर्वकाम गुणयुक्त (सर्व रसों से युक्त) भोजन प्रतिलाभित किया ।

·४ चतुर्थमासक्षमण का पारणा—

(क) तीसे णं णालंदाए बाहियाए अदूरसामंते एत्थ णं कोल्लाए णामं सण्णिवेसे होत्था -सण्णिवेसवण्णओ । तत्थ णं कोल्लाए सण्णिवेसे बहुले णामं माहणे परिवसइ, अड्ढे – जाव अपरिभूए, रिउव्वेय० जाव × × × सुपरिणिट्ठिए यावि होत्था । तएण से बहुले माहणे कत्तियचाउम्मासिय-पाडिवगंसि विउलेणं महुघय-संजुत्तेणं परमण्णेणं माहणे आयामेत्था ।

तएणं अहं गोयमा ! चउत्थमासक्खमणपारणगंसि तंतुवायसालाओ पडिणिक्खमामि, पडिणिक्खमित्ता णालंदं बाहिरियं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छामि, णिग्गच्छित्ता जेणेव कोल्लाए सण्णिवेसे तेणेव उवागच्छामि उवागच्छित्ता कोल्लाए सण्णिवेसे उच्च-णीय० जाव × × × अडमाणस बहुलस्स माहणस्सगिहं अणुप्पविट्ठे । तएणं से बहुले माहणे ममं एज्जमाणं × × × तहेव जाव × × × ममं विउलेणं महुघयसंजुत्तेणं परमण्णेणं पडिलाभिस्सामिति तुट्ठे । सेसं जहा विजयस्स, जाव बहुले माहणे बहुले माहणे ।

—भग० श १५ । सू ४५ से ४८ । पृ० ६६३

(ख) × × × ततो भयवं चउत्थमासक्खमणपारणगे नालंदातो निग्गंतूण कोल्लागसन्निवेसं गतो, तत्थ बहुलो माहणो माहणे भोयावेइघयमहुसंजुत्तेणं परमन्नेण, ताहे तेण सामी पडिलाभितो, पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं ।

—आव० नि । गा ४७३ । मलय टीका

(ग) दीक्षातः प्रावृषं स्वामी द्वितीयामतिगम्यताम् ।
नालंदाया निरियाऽगात् कोल्लाके सन्निवेशने ॥
तदा च बहुलो नाम विप्रो विप्रानभोजयत् ।
महादरेण स्वगृहे भिक्षार्थी चाययौ प्रभुः ॥

सशर्कराज्यक्षैरेय्या स प्रभुं प्रत्यलाभयत्।
चक्रुश्च पंच दिव्यानि तदोकसि दिवौकसः॥
चतुर्थमासक्षपणपारणंव्यधितः प्रभुः।
संसारतारणं दातुः श्रद्धातुरपि जन्मिनः॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ३६८ से ४०१

नालन्दा के बाहरी भाग मे कुछ दूर कोल्लाक नामक सन्निवेश (ग्राम) था। कोल्लाक सन्निवेश मे बहुल नामका ब्राह्मण रहता था।

चौथे मास क्षमण के पारणे के लिए कार्तिक चतुर्मास की प्रतिपदा के दिन तंतुवाय-शाला से निकल कर कोल्लाक सन्निवेश मे ऊँच-नीच-मध्यम कुलों मे भिक्षाचरी के लिए जाते हुए मैंने बहुल ब्राह्मण के घर मे प्रवेश किया। बहुल ब्राह्मण ने मुझे आते हुए देखा। उसने मुझे मधु और घृत संयुक्त परमान्न से प्रतिलाभित किया।

·५ दो मास क्षमण का पारणा

(क) (चंपा) ततो चरिमं दो मासियपारणयं बाहिं पारित्ता कालायं नाम सन्निवेशं गतो गोशालेण समं, तत्थ भयवं सुन्नघरे पडिमठितो।

—आव० नि गा ४७५ । मलय टीका

(ख) बहिः पूर्या द्वितीयं द्विमासक्षपणपारणम्।
कृत्वा स्वामी सगोशालः कोल्लाकेऽगात्निवेशने॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ४२८

चम्पा नगरी के तृतीय चतुर्मास मे दो मास क्षमण कर चम्पानगरी के बाहर दूसरे दो मास क्षमण का पारणा किया।

६· चतुर्मासखमण का पारणा

·१ प्रथम चतुर्मास खमण का

(क) × × ×। ततो भगवान् भद्रिकां नगरीं गतः, तत्र चातुर्मासिकं क्षपणं कृतवान्। ततो बाहिं पारेइ, विहरंतो कयलिसमागमो नाम गामो। × × ×।

—आव० नि गा ४८२ टीका

(ख) क्रमेण भद्दिलपुरे स्वाम्यगात्तत्र पंचमीम्।
नित्ये वर्षाचतुर्मासीं चतुर्मासीमुपोषितः॥५६६॥
पारयित्वा बहिः क्वापि विहरंश्च क्रमात्।
गामे जगाम कदलीसमागय इतीरिते॥५६७॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३

भद्दिलपुर में पाँचवें चतुर्मास में चार मास क्षमण का तपकर भगवान ने नगर के बाहर पारणा किया।

·२ द्वितीयमास क्षमण का

(क) अथ गत्वाभद्रिकायां पुर्यां तस्थौ तपः परः।
दीक्षायाः प्रावृषं षष्ठीमतिवाहयितुं प्रभुः ॥६२५॥
× × ×
विविधाभिग्रहपूर्वकं चतुर्मासक्षपणतत्रचप्रभुः।
कृत्वा वर्षारात्रनिर्गमे विदधे पारणकंपुरो बहिः॥
—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लोक ६२५,२७

(ख) ततो भयवं भद्दियं नामं नयरिंगतो, ततो छट्ठं वासमुवगतो ×××। तत्थ चउमासखमणं, विचित्ते य अभिगाहे भयवं ठाणाइं विसए करेइ।
—आव० नि गा ४८६ । टीका

भद्रिकापुरी के छट्ठे चतुर्मास मे चार मास की तपस्या कर भद्रिकापुरी के बाहर चार मास क्षमण का पारणा किया।

·३ तृतीय चार मास क्षमण का

(क) ततो भयवं आलंभि नगरिं गतो, तत्थ सत्तमो वासारत्तो चाउमासक्खवणं करेइ, ततो बाहिं पारित्ता।
—आव० नि गा ४८७ । मलय टीका

(ख) पुरीमालभिकां गत्वा सातमीं प्रावृषं प्रभुः।
चतुर्मासक्षपणभृद्धीरस्वाम्यत्यवाहयत्।
चतुर्मासावसाने च परयित्वा बहिः प्रभुः॥
—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो २,३ पूर्वार्ध

भगवान ने सातवें चतुर्मास मे चार मास क्षमण की तपस्या की जिसका पारणा-आलंभिका नगरी के बाहर किया।

४ चतुर्थ चारमासक्षमण का

(क) स्वामी राजगृहे गत्वा वर्षारात्रमथाष्टमम।
चतुर्मासक्षपणभृद्विविधानाभिग्रहोऽकरोत्।
चतुर्मासावसाने तु स्वामी बहिरपारयत्।
त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ५२,५३ पूर्वार्ध

(ख) ततो विहरंतो सामी रायगिहं गतो, तत्थ अट्ठमो वासारत्तो, चाउम्मासक्खमणेण खवेइ, विचित्ते य अभिग्गहे ठाणादिविसए करेइ, ततो बाहिं पारेइ ×××।

—आव० नि गा ४९० । मलय टीका

भगवान् महावीर ने राजगृह मे आठवें चतुर्मास मे चार मास क्षमण की तपस्या की जिसका पारणा राजगृह नगर के बाहर किया ।

·५ पंचम चार मास क्षमण का

(ख) तावज्जगामाऽभिनवश्रेष्ठिनो धामनिप्रभुः ॥३५६ ॥
स श्रेष्ठी श्रीमदोद्ग्रीवश्चेटीमिथ्याहगादिशत् ।
दत्त्वा भिक्षामसौ भिक्षुर्मक्षुभद्रे ! विसृज्यताम् ।
दारुहस्तकहस्ता साकुल्माषान् समुपानयत् ।
चिक्षेप च जगद्भर्तुः पाणिपात्रे प्रसारिते ॥
ताडितो दुन्दुभिर्देवैश्चेलोत्क्षेपश्चनिर्ममे ।
वसुधारा पुष्पगंधाम्भसांवृष्टिश्चतत्क्षणात् ॥
लोकैश्च पृष्टोऽभिनवश्रेष्ठी माप्येवमब्रवीत् ।
स्वयं मयापायसेन पारणं कारितः प्रभुः ॥३६०॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ३५६ से ३६०

भगवान् ने वैशाली नगरी मे ग्यारहवें चतुर्मास मे चार मास क्षमण की तपस्या की जिसका पारण एक नवीन सेठ के यहाँ किया था—जो मिथ्यादृष्टि था ।

·६ छट्ठे मास क्षमण का पारणा

(क) पारणार्थं प्रभुस्तत्र सिद्धार्थवणिजो गृहे ।
जगाम भगवांस्तेन भक्त्या च प्रतिलाभितः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ६२७

भगवान् सिद्धार्थ वणिक के घर पर पारणा के लिए गये । उसने भगवान् को भक्ति से प्रतिलाभित किया ।

नोट—बारहवें चतुर्मास-चम्पानगरी मे किया था । वहाँ से विहार कर जृंभकग्राम पधारे । फिर वहाँ से विहार कर षण्मानि ग्राम पधारे । यहाँ गोपाल ने भगवान् के कानों मे कीली ठोकी । वहाँ से विहार कर भगवान् मध्यम चम्पानगरी पधारे । यहाँ चार मास क्षमण का पारणा किया ।

ग्यारवें चतुर्मास के बाद —

.६ पाँच मास, पचीस दिन की तपस्या का पारणा

पंचाहन्यूनषण्मासतपः पर्यंतपारणम् ।
कृत्वा धनावहगृहान्निर्ययौ भगवानपि ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ५६२

पाँचमास, २५ दिन की तपस्या का पारणा कर भगवान् धनावह सेठ के यहाँ से निकले ।

नोट—चन्दनबाला के हाथ से उड़द के बाकले भगवान् को दिये जाने से पारणा हुआ था ।

७. छहमासी तपका पारणा

दसवें चतुर्मास के बाद छःमासी तप का पारणा

संगमदेव के उपसर्ग के बादका—

(क) वच्चहहिंडह न करेमि किंचि इच्छा न किंचिवत्तवो ।
तत्थेव वच्छवाली थेरी परमन्न वसुहारा ॥

—आव० नि गा ५११

मलय टीका—अतऊर्ध्वं व्रजस्वेच्छया ग्रामनगरेषु, हिंण्डस्व भिक्षार्थं कुलेषु, न करोमिकमप्युसर्गं, स्वामीवक्ति—भोःसंगमकः । नाहं कस्यापिवक्तव्योऽस्मि, इच्छया यामि न वा, ततःस्वामी द्वितीयदिवसे तत्रैव भिक्षार्थं गोकुलेष्वटति, तत्र वत्सपाली स्थविरा, तया उत्सवदिवसे क्षीरंनलब्धं, ततो द्वितीयदिवसे क्षीरंयाचित्वा पायसं राद्धं, तेन भगवान् प्रतिलाभितः, अन्येवदन्ति पर्युषितेन पायसेन प्रतिलाभितः, ततः पंचदिव्यानि प्रादुर्भूतानि ।

(ख) द्वितीयिकेऽथ दिवसे तत्र गोचरचर्यया ॥
प्राविशद्गोकुलवरे पारणेच्छुर्जगद्गुरुः ॥
तत्रैका भक्तितो वत्सपालकस्थविरा प्रभुम् ।
कल्पेन परमान्नेनोषितेन प्रत्यलाभयत् ॥
चिरात्जातेन भगवत्पारणेन प्रमोदिनः ।
चक्रिरे पंचदिव्यानि तत्रसन्निहिताःसुराः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ३१९,३२०,३२१

दूसरे दिन भगवान् महावीर पारण के लिए गोकुल ग्राम मे गोचरी के लिए गये । वहाँ एक वृद्ध वत्स पालिका नामक गोपी ने भक्ति पूर्वक भगवान् को परमान्न—खीर बहरायी । फलस्वरूप देवों ने पंच दिव्य प्रगट किये ।

(ग) षडप्युपोषितो मासान् भगवानतिलंध्यतान् ।
कर्तुकामः पारणकं भिक्षार्थं गोकुलेऽविशत् ॥२६०॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४

दसवें चतुर्मास के बाद छः मासी तप का पारणार्थ गोकुल ग्राम पधारे ।

.८ विविध तप का परणा

(क) अथैषोऽतीव शक्तोऽपिषण्मासादितपोविधौ ।
तथाप्यन्यमुनीनां सच्चर्यामार्गप्रवृत्तये ॥
पारणानि योगीन्द्रोधृतिधैर्यबलाधिकः !
निरोहोऽत्यन्तभोगादौ मतिचक्रे तनुस्थितौ ॥

— वीरवर्धचरि० अधि १३ । श्लोक २,३

वे महावीर स्वामी छहमासी उपवास आदि तपों के करने मे अतीव समर्थ थे, तो भी अन्य मुनियों को उत्तम चर्या मार्ग बतलाने के लिए पारण के दिन धृति और धैर्य से बलशाली, शरीर-भोगादि मे अत्यन्त निःस्पृह उनयोगिन्द्र महावीर ने शरीरस्थिति मे बुद्धि की अर्थात् गोचरी के लिए उद्यत हुए ।

(ख) भद्रा - महाभद्रा-सर्वतोभद्रा प्रतिमाकापारणा

(१) तिस्रोऽपि प्रतिमाः कृत्वा पारणाय जगद्गुरुः ।
आनंदनाम्नो गृहिणः प्रविवेश निकेतनम् ॥ १५५ ॥
भांडानि क्षालयन्त्यासीद्बहुला तत्र चेटिका ।
त्यक्तुकामोषितभक्तमपश्यत् प्रभुमागतम् ॥ १५६५ ॥
किं तुभ्यं कल्पत ? इतिसा स्वामिनमभाषत ।
पाणिं प्रासारयत् स्वामी भक्त्याऽन्नं सापि तद्ददौ ॥
स्वामिपारणकप्रीतैः पंचदिव्यानि नाकिभिः ।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो १५५ से १५७, १५८ पूर्वार्ध

(२) पडिमा भद्द महाभद्द सव्वओभद्द पढभिया चउरो ।
अट्ठय वीसाऽऽणंदे बहुलिय तह उज्झिया दिव्वा ।

आव० नि गा ४९६

मलयटीका—प्रतिमा पूर्वं भगवता भद्रा कृता, तदनन्तरमकृतपारणकेनैव महाभद्रा, तथैव सर्वतोभद्रा, तत्र 'पढभिया चउरो' इति प्रथमायां चत्वारि यामचतुष्कानि, द्वितीयस्यामष्टौ, तृतीयस्यां विंशतिः, तदनन्तरमानन्दे आनंदस्य

गृहे बहुलिकया दास्या 'तथेति' समुच्चये उज्झिता भिक्षा दत्ता, दिव्यानि पंच प्रादुरभवन्।

(३) पच्छा तासु सम्मत्तासु आणंदस्स गाहावतिस्स घरे बहुलियाए दासीए महाणसिणीए भायणाणिखणीकरेंतीए दोसीणं छड्डेउकामाए सामी पविट्ठो, ताहेभन्नति किं भगवं। एतेण अट्ठो सामिणा पाणी पसारित्तो, ताए परमाए सद्धाए दिन्नं।

—आव० चू० पूर्व भाग पृ० ३००, ३०१

भद्रा—महाभद्रा—सर्वतो भद्रा की आराधना कर भगवान् पारणा के लिए आनद नामक एक गृहपति के घर पधारे। वहाँ उसकी बहुला नामक एक दासी पात्र धोती थी। अन्न निकालकर पानी फेंकती थी। उस समय भगवान पधारे। दासी ने भक्ति से उक्त दान दिया।

नोटः—भद्राप्रतिमा मे बेले की तपस्या की, महाभद्रा प्रतिमा मे चार दिन की तपस्या की तथा सर्वतो भद्रा प्रतिमा मे दस दिनकी तपस्या की। तपस्या लगातार की।

(ग) प्रव्रज्या के बाद—प्रथम पारणा

(१) × × × प्रथमपारणकं गृहस्थपात्रे, ततः पाणिपात्रभोजिना × × ×

—आव० नि गा ४६१ टीका

(२) ता केई इच्छंति-संपत्तो धम्मो पन्नवेयव्वोत्ति तेण पढमपारणगे परपत्ते भुत्तं, तेणं परंपाणिपत्ते।

—आव० चू० पर्व भाग पृ०२७१

(३) तहा सपत्तं तस्स पाणिपत्तं, सेसं परपत्तं, तत्थण भुजितं, तो केइ इच्छंति संपत्तो धम्मो पण्णवेयव्वुत्ति तेण पढमपारणं परपत्ते भुत्तं, तेण परंपाणिपत्ते।

—आया० चू० पृ० ३०६

भगवान् ने प्रथम पारणा गृहस्थ के पात्र मे किया। अवशेष पाणिपात्र मे।

(घ) दसवें चतुर्मासका पारणा

दीक्षातो दशमं वर्षाकालं स्वाम्यत्यवाहयत्।
पारयित्वा बहिस्तत्र ग्रामेऽगास्सानुयष्टिके।
भद्रां च प्रतिमां तत्र भगवान् प्रत्यपद्यतः॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ४। श्लोक १४८,१४६ उत्तरार्ध

दशवां चतुर्मास श्रावस्ती मे किया। चतुर्मास के बाद विचित्र तप का पारणा नगर के बाहर किया।

(च) कुल तपस्या के पारणे

(१) प्रभोरेकोनपंचाशं पारणाहशतत्रयम्।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लोक ६५७ पूर्वार्ध

(२) तिन्नि सए दिवसाणं अउणापन्ने य पारणाकालो।

—आव० नि गा ५३४ पूर्वार्ध

मलय टीका—त्रीणि शतानिएकोनपंचाशानि—एकोपंचाशादधिकानिदिवसानां पारणकालो भगवतः।

भगवान् ने साढे बारह वर्ष, एक पक्ष छद्मस्थ काल मे ३४९ पारणे किये।

·४३ साधनाकाल का शिष्य—गोशालक

·१ भगवान् महावीर और गोशालक का सह-विहरण—

तए णं अहं गोयमा! गोसालेण मंखलिपुत्तेणं सद्धिं पणियभूमीए छव्वासाइं लाभं अलाभं सुहं दुक्खं सक्कारमसक्कारं पच्चणुब्भवमाणे अणिच्चजागरियं विहरित्था।

—भग० श० १५ । सू० ५६ । पृ ६६५

हे गौतम! मै मखलिपुत्र गोशालक के साथ प्रणीत-भूमि मे लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, सत्कार-असत्कार का अनुभव करता हुआ और अनित्यता का चिन्तन करता हुआ विचरण करता रहा।

·२ भगवान महावीर और गोशालक का प्रथम-मिलन

१ दीक्षा के पूर्व का

(क) तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते चित्तफलगहत्थगए मंखत्तणेणं अप्पाणं भावेमाणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे जाव दूइज्जमाणे जेणेव रायगिहे णयरे, जेणेव णालंदा बाहिरिया, जेणेव तंतुवायसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तंतुवायसालाए एगदेसंसि भंडणिक्खेवं करेइ, करेत्ता रायगिहे णयरे उच्चणीय० जाव अण्णत्थ कत्थ वि वसहिं अलभमाणे तीसे य तंतुवायसालाए एगदेसंसि वासावासं उवागए, जत्थेव णं अहं गोयमा।

—भग० श १५ । सू २३ । पृ० ६५८

(ख) तन्तुवायमनुज्ञाप्य वर्षा वस्तुं जगद्गुरुः।
शालाया एकदेशेऽस्थान्मासक्षपणमाश्रितः ॥३७२॥
पितृभ्यां कलहं कृत्वा गृहीत्वा चित्रपट्टिकाम्।
भ्राम्यन् भिक्षां स एकाकी ययौ राजगृहेऽन्यदा ॥३७७॥
स्वामिनाऽलंकृते शालाकोणे तत्रानुमान्यतम्।
गोशालोऽप्यवसत्सिंह सन्निधाविव जम्बुकः ॥३७८॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३

(ग) मलयटीका—तेणं कालेणं तेणं समएणं मंखलीनाममंखे, तस्स भद्दा भारिया गुव्विणिया, सरवणेसन्निवेसे बहुलस्स माहणस्स गोसालाए पसूया, गोन्नं नामं कयं गोसालोत्ति, संवड्ढितो मंखसिप्पं अहिज्जितो, चित्तफलयं करेइ, एक्कल्लतो विहरंततो रायगिहे तंतुवायसालाए पट्ठितो, जत्थसामीट्ठितो × × ×, गोसालो सुणित्ता आगतो, दिट्ठाणि पंच दिव्वाणि पाउब्भूयाणि, भणइ-भयवं। अहं तुज्झसीसोत्ति, सामी तुसिणीतो निग्गतो। × × ×

रायगिहतंतुसाला मासक्खमणं च गोसालो।
मंखलिमंखसुभद्दा सरवण गोबहुलगेह गोसालो।

—आव० नि गा ४७२ । उत्तरार्ध, ४७३ । पूर्वार्ध ।

मलयटीका—× × ×। ततो भगवान् राजगृहे तंतुवायशालायां मासक्षपणमकार्षीत्, गोशालोऽपि तत्रागतः,

गोशालोत्पत्तिं कथयति—'मंखली' त्यादि, मंखलिर्नाम मंखः, तस्य सुभद्रा भार्या, शरवणं सन्निवेशः, तत्र गोबहुलगृहे—गोबहुलनामकब्राह्मण गोशालायां प्रसूता।

उसकाल उस समय मे मंखलिपुत्र नामक मल्ल था। उसके भद्रा नामक पत्नी थी। भद्राने एक धनी ग्राम वाली ब्राह्मण की गोशाला मे पुत्र का जन्म दिया जिसका गोशालक नाम रखा।

उस समय मखलिपुत्र गोशालक, चित्रपट से आजीविका करता हुआ, अनुक्रम से एक गाँव से दूसरे गाँव जाता हुआ, राजगृह आया और नालन्दा पाड़ा के बाहरी भाग मे, बुनकर की शाला के एक भाग में अपना भंडोपगरण रखा। फिर राजगृह नगर मे ऊँच, नीच और मध्यम कुल में भिक्षा के लिए जाते हुए, उसने वर्षावास के लिए दूसरा स्थान ढूढने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे कहीं स्थान न मिला। अतः जिस तन्तुवायशाला मे एक भाग में रहा हुआ था वहीं वह भी रहने लगा।

(घ) ततो सामी रायगिहं गतो, तत्थ नालंदाए बाहिरियाए तंतुवायसालाए एगदेसंसि अहापडिरूवं उग्गहं अणुन्नवेत्ता पढमं मासक्खमणं विहरति, एत्थंतरा मंखलीएति।

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० २८३

भगवान का प्रथम चतुर्मास राजगृह के नालन्दा के बाहरी भाग मे था। भगवान के प्रथम मासक्षमण की तपस्या थी। इस अन्तर मे मखलीपुत्र गोशालक आया।

·२ दीक्षा के बाद का

भगवान् महावीर और गोशालक का पुनर्मिलन

छट्ठे वर्षावास में –

(क) ततो भययं भद्दियं नाम नयरिं गतो, ततो छट्ठं वासमुवगतो, तत्थ वासारत्ते गोसालेण सह मेलावगो, छट्ठे मासे भयवतो गोसालो मिलितो।

—आव० नि गा ४८३। मलय टीका

(ख) अथ गत्वा भद्रिकायां पुर्यां तस्थौ तपः परः।
दीक्षायां प्रावृषं षष्ठीमतिवाहयितुं प्रभुः॥६२५॥
गोशालस्तत्रमिलितः षष्ठमासाज्जगद्गुरोः।
सेवा कुर्वन् प्रागवदस्थात् प्रत्यहं प्रीतमानसः॥६२६॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३

भगवान ने छट्ठा चतुर्मास भद्रिकापुरी मे किया। वहाँ छ मास के बाद गोशालक भगवान से आकर मिला। पूर्व की तरह भगवान की सेवा करने लगा।

·३ गोशालक का भगवान महावीर का शिष्यत्व स्वयमेव ग्रहण

·१ प्रथम बार

(क) तएणं से गोशाले मंखलिपुत्ते बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म समुप्पण्णसंसए समुप्पणकोउहल्ले जेणेव विजयस्स गाहावइस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पासइ विजयस्स गाहावइस्स गिहंसि वसुहारं वुट्ठं, दसद्धवण्णं कुसुमं णिवडियं, ममं पडिणिक्खममाणं पासइ, पासित्ता हट्ठ-तुट्ठे जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ करेत्ता ममं वदइ, णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता ममं एवं वयासी 'तुब्भे णं भंते! ममं धम्मायरिया, अहण्णं तुब्भं धम्मंतेवासी।' तएणं अहं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं णो आढामि, णो परिजाणामि, तुसिणीए सचिट्ठामि।

—भग० श १५। सु २८,२९। पृ० ६५९-६०

(ख) भक्त्या महत्या विजयश्रेष्ठी श्रेष्ठमतीः स्वयम्।
सम्यग्भोजनविधिना स्वामिनं प्रत्यलाभयत् ॥३८०॥
अहो दानं सुदानं चेत्युच्चैराघोषिणोऽमराः।
रत्नवृष्ट्यादिदिव्यानि तद्गृहेपंचचक्रिरे ॥३८१॥
आकर्ण्य तत्त्, गोशालोऽचिन्तयद्यदयंमुनिः।
न सामान्योऽस्यान्नदातुर्गृहे श्रीर्यदभूदियम् ॥३८२॥
विहाय चित्रफलकपाखण्डं तदमुं निजम्।
अस्य शिष्यीभवाम्यद्य निःफलो नेदृशोगुरुः ॥३८३॥
तत्रैवं चिन्तयत्येव पारयित्वा जगद्गुरुः।
एत्य तत्रैव शालायामस्थात्प्रतिमया प्रभुः ॥३८४॥
गोशालः स्वामिनं नत्वो वाच वाचंयमस्यते।
मया प्रभावो नाज्ञायि विज्ञेनापि प्रमादतः ॥३८५॥
शिष्यस्तेऽहं भविष्यामि त्वमेक शरणं मम।
इत्युक्त्वा स तथा चक्रे तूष्णीकोऽस्थात्प्रभुः पुनः ॥३८६॥
गोशालो भिक्षया प्राणवृत्तिं कुर्वन् दिवानिशम्।
नामुचत् स्वामिनः पार्श्वं स्वबुद्धया शिष्यतां गतः ॥३८७॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३

मंखलिपुत्र गोशालक ने भी बहुत मनुष्यों से यह घटना (विजयगाथापति ने भगवान को दान दिया, पाँच दिव्य प्रगट हुए, वह धन्य हैं) सुनी और अवधारण की। उसके मन में संशय और कुतूहल उत्पन्न हुआ। वह विजय गाथापति के यहाँ आया। उसने विजय गाथापति के घर में बरसी हुई वसुधारा, पाँच वर्ण के फूलों और घर से बाहर निकलते हुए मुझे और विजय गाथापति को देखा। गोशालक प्रसन्न और संतुष्ट हुआ। वह मेरे पास आया और तीन बार प्रदक्षिणा करके वंदन, नमस्कार किया और इस प्रकार बोला हे भगवान ! आप मेरे धर्माचार्य हैं और मैं आपका धर्म-शिष्य हूँ। हे गौतम ! मैंने मंखलीपुत्र गोशालक की इस बात का आदर नहीं किया, स्वीकार भी नहीं किया और मौन रहा।

·२ द्वितीयवार

तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म समुप्पन्नसंसए समुप्पन्नकोउहल्ले जेणेव आणंदस्स गाहावइस्स गिहेतेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता पासइ आणंदस्स गाहावइस्स गिहंसि वसुहारं वुट्ठं, दसद्धवण्णं कुसुमं निवडियं, ममं च णं आणदस्स गाहावइस्स गिहाओ पडिनिक्खममाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता ममं एवं वयासी तुब्भे णं भंते ! ममं धम्मायरिया, अहण्णं तुब्भं धम्मंतेवासी ॥

तएणं अहं गोयमा ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं नो आढामि, नो परिजाणामि, तुसिणीए संचिट्ठामि ॥

—भग० श १५ । सु ३५, ३६ । पृ० ६६१

मंखलिपुत्र गोशालक ने भी बहुत मनुष्यों से यह घटना सुनी और अवधारण की। उसके मन में संशय और कुतूहल उत्पन्न हुआ। वह आनंद गाथापति के यहाँ आया। उसने आनंद गाथापति के घर में बरसी हुई वसुधारा और पाँच वर्ण के फूलों और घर से बाहर निकलते हुए मुझे और आनंद गाथापति को देखा। गोशालक प्रसन्न और संतुष्ट हुआ। मेरे पास आया और तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दन, नमस्कार किया और इस प्रकार बोला - हे भगवन् ! आप मेरे धर्माचार्य है और मैं आपका धर्मशिष्य हूँ। हे गौतम ! मैंने मंखलिपुत्र गोशालक की इस बात का आदर नहीं किया स्वीकार भी नहीं किया और मौन रहा।

·३ तृतीयवार

तएणं गोसाले मंखलिपुत्ते बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म समुप्पन्नसंसए समुप्पन्नकोउहल्ले जेणेव सुणंदस्स गाहावइस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पासइ सुणंदस्स गाहावइस्स गिहंसि वसुहारं वुट्ठं, दसद्धवण्णं कुसुमं निवडियं, ममं च णं सुणंदस्स गाहावइस्स गिहाओ पडिनिक्खममाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता ममं एवं वयासी—तुब्भेणं भंते ! ममं धम्मायरिया, अहण्णं तुब्भं धम्मंतेवासी ॥

तए णं अहं गोयमा ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं नो आढामि, नो परिजाणामि, तुसिणीए संचिट्ठामि ॥

—भग० श १५ । सु ४२।४३ पृ० ६६२

गोशालक ने भी बहुत मनुष्यों से यह घटना सुनी और अवधारण की। उसके मन में संशय और कुतूहल उत्पन्न हुआ। वह सुनंद गाथापति के यहाँ आया। उसने सुनंद गाथापति के घर में बरसी हुई वसुधारा और पाँच वर्ण के फूलों और घर से बाहर निकलते हुए

मुझे और सुनद गाथापति को देखा। गोशालक प्रसन्न और संतुष्ट हुआ। वह मेरे पास आया और तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दन, नमस्कार किया और इस प्रकार बोला—हे भगवन् ! आप मेरे धर्माचार्य है और मैं आपका शिष्य हूं।

हे गौतम। मैंने मंखलिपुत्र गोशालक की इस बात का आदर नहीं किया, स्वीकार भी नहीं किया और मौन रहा।

·४ गोशालक का शिष्यत्व का भगवान महावीर द्वारा अंगीकरण

(क) तएणं तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म अयमेयारूवे अज्झत्थिए ××× समुप्पज्जित्था 'जारिसिया णं ममं धम्माय-रियस्स धम्मोवदेसगस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स इड्ढी जुई जसे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, णो खलु अत्थि तारिसिया अण्णस्स कस्सइ तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा इड्ढी जुई जाव परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, तं णिस्संदिद्धं च णं एत्थ ममं धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे भगवं महावीरे भविस्सतीति कट्टु कोल्लाएसण्णिवेसे सब्भितरबाहिरिए ममं सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ ममं सव्वओ जाव करेमाणे कोल्लागसण्णिवेसस्स बहिया पणियभूमीए मए सद्धिं अभिसमण्णागए। तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते हट्ठतुट्ठे ममं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं जाव णमंसित्ता एवं वयासी 'तुब्भे णं भंते। ममं धम्मायरिया, अहं णं तुज्झं अंतेवासी।' तएणं अहं गोयमा ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेमि।

—भग० श १५। सू ५३।५५। पृ० ६६४।६५

उस समय बहुत से मनुष्यों से यह बात सुनकर अवधारण कर, मंखलिपुत्र गोशालक को विचार उत्पन्न हुआ कि मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक श्रमण भगवान महावीर स्वामी जैसी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम लब्ध हुआ है, प्राप्त हुआ है, अभि-समन्वागत हुआ है। वैसी ऋद्धि, द्युति यावत् पुरुषाकार पराक्रम अन्य किसी भी तथारूप के श्रमण-माहण को लब्ध प्राप्त, और अभिसमन्वागत नहीं हुआ है। इसलिए मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अवश्य यहीं होंगे। ऐसा विचार करके वह कोल्लाक सन्निवेश के बाहर और भीतर, सभी ओर मेरी खोज करने लगा। खोज करते हुए वह कोल्लाक सन्निवेश के बाहर के भाग मे मनोज्ञ भूमि मे मेरे पास आया। मंखलिपुत्र गोशालक ने प्रसन्न और संतुष्ट होकर मेरी तीन बार प्रदक्षिणा की यावत् नमस्कार करके इस प्रकार बोला—हे भगवान् ! आप मेरे धर्माचार्य हैं और मैं आप का शिष्य हूँ। हे गौतम ! मैंने मंखलिपुत्र की उस बात को सुनकर अर्थात् स्वीकार नहीं किया।

(ख) इतश्च सायं गोशालः शालां क्षीणोऽविशच्छनैः।
अपश्यत् स्वामिनं लोकान्क्व स्वामीत्यन्वयुंक्त ॥४०२॥
× × ×
गतश्च कोल्लाकेऽश्रौषीद्धन्योऽयं बहुलो द्विजः।
मुनेर्दानाद्यस्य गृहे रत्नवृष्टिः सुरैः कृता ॥४०५॥
× × ×
एवं विमृश्यसोऽन्वेष्टुं भ्राम्यन्निपुणया दृशा।
तेक्षिष्ट स्थितमेकत्र कायोत्सर्गधरं प्रभुम् ॥४०७॥
स प्रणम्य प्रभुं स्माह नाहं दीक्षोचितः पुरा।
वस्त्रादिसंगाद्भवं त्यक्तसंगोऽस्मि संप्रति ॥
प्रतिपद्यस्व मां शिष्यं यावज्जीवं गुरुर्भव।
त्वा विनेषदपि स्थातुं न क्षमः परमेश्वर! ॥
नीरागे त्वयिकः स्नेहो नैकहस्ता हि तालिका।
स्वामिन्मन्मनः किं तु बलात्त्वामनुधावति ॥
त्वायाभ्युपगतं स्वं तु जानाम्येव तथापिहि।
स्मेरारविन्दसध्रीच्या दृशा मां यन्निरीक्षसे ॥
नीरागोऽपि भाव्यनर्थं तद्भवं च विदन्नपि ॥
तद्वच प्रत्यपादीशो महान्तः क्व न वत्सलाः ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लोक ४०२,४०५,४०७ से४१२

(ग) गोसालोऽवि तंतुवायसालाए सामिं अपेच्छमाणो रायगिहे सब्भिंतर-बाहिरे गवेसेइ, जाहे न पेच्छइ ताहे नियगोवकरणं धीयाराण दाउं सउत्तरोट्ठं मुंडणं काउंगतो कोल्लागं, तत्थ भयवतो मिलिओ, × × ×

× × × – गोसाल दट्ठु० पव्वज्जा।

—आव० नि गा ४७४

मलयटीका—× × × तानि गोशालो दृष्ट्वा प्रव्रज्यां प्रतिपन्नः सोत्तरौष्ठं मुंडनं कृतवान् इत्यर्थः।

जब गोशाला ने तंतुवायशाला में भगवान् को देखा तब उसने राजगृह में अभ्यंतर और बाहर गवेषणा की तो भी भगवान् नहीं मिले, अतः खोज करता हुआ गोशालक कोल्लाक ग्राम में आया। वहाँ एक स्थान में कायोत्सर्ग में स्थित भगवान् को देखा। भगवान् को नमस्कार

करके गोशालाने कहा—हे भगवन् ! पहले मैं दीक्षा लेने के योग्य नहीं था—अब मैं वस्त्रादि का संग छोड़कर निसग हो गया हूँ अतः आप मुझे शिष्य रूप में स्वीकार करे ।

अतत. भगवान ने गोशाले को प्रव्रज्या दी ।

·५ गोशालक के द्वारा गृहस्थ पात्र में लाया हुआ आहार भगवान ने ग्रहण नहीं किया।—

(क) × × × तथा च गोशालकेन तंतुवायशालायां किलेदमुक्तम्—भगवन्नहं तव भोजनमानयामि गृहस्थपात्रे कृत्वा, भगवता न प्रतिपन्नम्।

—आव० नि । गा ४६१ । मलय टीका

(ख) गोसालेण किरतंतुवायसालाए भणियं अहंतव भोयणं आणामि, गिहिपत्ते काउं, तंपिभगवया नेच्छियं ।

—आव० चू० पूर्व भाग पृष्ठ २७१

तंतुवायशाला मे गोशालक भोजन लाया । परन्तु भगवान ने उस आहार को ग्रहण नहीं किया । चूंकि भगवान गृहस्थ के पात्र में भोजन न करने का संकल्प कर चुके थे ।

·६ गोशालक के शिष्यत्व काल के घटना-प्रसंग

·१ पायस्थाली का घटना-प्रसंग

(क) × × × । गोसालोऽवि तंतुवायसालाए सामिं अपेच्छमाणो रायगिहे सब्भिंतरबाहिरे गवेसेइ, जाहे न पेच्छइ ताहे नियगोवकरणं धीयाराण दाउं सउत्तरोट्ठं मुंडणं काउं गतो कोल्लागं, तत्थ भयवतो मिलितो, ततो भयवं गोसालेण समं सुवण्णखलयं वच्चइ, तत्थंतरा गोवालगा वइयाहिंतो खीरंगहाय महल्लीए थालीए नवएहिं वंदुलेहिं पायसं उवक्खडंति, ततो गोसालो भणइ—एहभयवं । एत्थ भुंजाम, सिद्धत्थो भणइ—एसनिम्माणं चेव न वच्चइ, एसभज्जिहिइ उल्लुहिज्जंती, ताहेसो असद्दहंतो ते गोवए भणइ—एसाथाली भज्जिहिइ, तो पयत्तेण सारक्खह, ताहेपयत्त करेंति वंसविदलेहिसान्द्धाथाली, तेहिंअतिबहुया तंदुला छूढा, साफुट्टा, पच्छा गोवालाणं जंजेण कवेल्लं आसाइयं सो तत्थचेवपजिमितो, तेण न लद्धं, ताहे सुट्ठुयरं नियतिं गेण्हइ ।

—आव० मि । गा ४७३ । मलय टीका

(ख) × × × ताहे सामी तेण (गोसालेण) समं वासावगमाओ सुवन्नखलयं वच्चति, तत्थंतरा गोवालगा वइयाहिंतो खीरं गहायमहल्लीए थालीए णवएहिं चाउलेहिं पायसंउवक्खडेंति ताहेगोसालो भणति—एहएत्थ भुंजामो, ताहे सिद्धत्थो

भणति—एवनिम्माणं चेव ण गच्छति, एस उरुभज्जिहित्ति, ताहे सो असद्दहंतो ते गोवए भणइ—एसदेवज्जतो तीताणागत जाणतो भणति एसथाली भज्जिहिति, तो पयत्तेण सारवेह, ताहे पयत्तं करेति, वंसविदलेहि य थाली बद्धा, तेहि अतिबहुया तंदुला छूढा, साफुट्टा पच्छा गोवा जं जेण कभल्लं आसाइत्तं सो तत्थचेव पजिमितो, तेण ण लद्धं, ताहे सुट्ठुतरं नियती गहिता।

—आव० चू० पूर्व भाग । पृ० २८३

कोल्लाग सन्निवेश से भगवान महावीर और गोशालक सुवर्णखल की ओर जा रहे थे। मार्ग मे ग्वाले एक स्थान पर खीर पका रहे थे। गोशालक ने भगवान को रोकना चाहा। भगवान ने कहा—खीर नही पकेगी-हाँडी फूट जायेगी।

भगवान आगे चले गोशालक वही रहा। उसने ग्वालों को सावधान कर दिया। ग्वालो ने हांडी को बांस की खपाचों से बांध दिया। हांडी दूध से भरी थी। चावल अधिक थे। वे फूले तब हांडी फूट गई। खीर नीचे ढुल गई। गोशालक के मन मे नियतीका पहला बीज वपन हो गया। उसने सोचा—जो होने को होता है वह होकर ही रहता है।

नोट—यह घटना भगवान महावीर के साधना काल के तृतीय वर्ष की है।

.०२ तिलके पौधे का घटना प्रसंग—

(क) तएणं अहं गोयमा! अण्णया कयायिपढमसरदकालसमयंसि अप्पवुट्ठिकायंसि गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं सद्धिं सिद्धत्थगामाओ णयराओ कुम्मगामं णयरं संपट्ठिए विहाराए। तस्स णं सिद्धत्थगामस्स नयरस्स कुम्मगामस्स णयरस्स य अंतरा एत्थ णं मह एगे तिलथंभए पत्तिए पुप्फिए हरियगरेरिज्जमाणे सिरीए अईव-अईव उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे चिट्ठइ। तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते तं तिलथभगं पासइ, पासित्ता ममं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता, एवं वयासी—'एस णं भंते! तिलथंभए किं णिप्फज्जिस्सइ णो णिप्फज्जिस्सइ? एए य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता कहिं गच्छिहिंति, कहिं उववज्जिहिंति?' तएणं अहं गोयमा! गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—'गोसाला! एस णं तिलथंभए निप्फज्जिस्सइ, णो ण णिप्फज्जिस्सइ, एए य सत्ततिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता एयस्स चेवतिलथंभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाइस्संति।

तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एवं आइक्खमाणस्स एयमट्ठं णो सद्दहइ, णो पत्तियइ, णो रोएइ, एयमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे, अरोएमाणे ममं पणिहाए 'अयं णं मिच्छावाई भवउ' त्तिकट्टु ममं अंतियाओ सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ,

पच्चोसक्कित्ता जेणेव से तिलथंभए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं तिलथंभगं सलेट्ठुयायं चेव उप्पाडेइ, उप्पाडेत्ता एगंते एडेइ। तक्खणमेत्तं च णं गोयमा ! दिव्वे अब्भवद्दलए पाउब्भूए। तएणं से दिव्वे अब्भवद्दलए खिप्पामेव पतणतणाति, खिप्पामेव पविज्जुयाइ, खिप्पामेव णच्चोदगं णाइमट्टियं पविरलपफुसिय रयरेणुविणासणं दिव्वे सलिलोदगं वासं वासइ, जेणं से तिलथंभए आसत्थे पच्चायाए बद्धमूले, तत्थेव पइट्ठिए। ते य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइता तस्सेव तिलथंभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाया ॥५६॥

—भग० श १५। सू ५७ से ५६। पृ० ६६५-६६६

(ख) स गोशालस्ततः स्वामी सिद्धार्थपुरमाययौ।
ततोऽपि प्राचलद् ग्रामं कूर्मग्रामाभिधं प्रति ॥६७॥
मार्गे दृष्ट्वा तिलस्तम्बं गोशालः प्रभुमभ्यधात्।
स्वामिन्नेष तिलस्तम्बः कच्चिन्निष्पत्स्यतेनवा ॥६८॥
ततो भवितव्यतायावशेन भगवानपि।
त्यक्त्वा मौनं स्वयमख्यद् भद्रनिष्पत्स्यते ह्यसौ ॥
सप्तापि पुष्पजीवास्तु परमस्मिन्नवस्थिताः।
एकस्यामेव शिम्बाया तावन्तो भाविनस्तिलाः ॥
तद्वचोऽश्रद्दधानेन गोशालेनोद्खानि सः।
तिलस्तम्बः समृत्पिंडोमुमुचे चान्यतः क्वचित् ॥७१॥
असत्या स्वामिवाङ्मा भूदित्यासन्नसुरैस्तदा।
वारिवृष्टिर्विचक्रे द्राकतिलस्तम्बोऽप्युद्श्वसत् ॥७२॥
तत्प्रदेशेन गच्छन्त्या गोराक्रान्तः खुरेणसः।
प्रविष्टः क्लिन्नभूमध्ये सुप्रतिष्ठोऽभवत्ततः ॥७३॥
क्रमात्प्ररूढमूलोऽभूत् क्रमाच्चोद्भिन्नकंदलः।
प्रावर्तन्त तिलस्तम्बेतानि पुष्पाणि वर्धितुम् ॥७४॥
गोशालेनान्वीयमानोदुर्धिया भक्तमानिना।
कूर्मग्राममभिधे ग्रामे जगाम भगवानपि ॥७५॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ४

(ग) मलयटीका—ततो अणारियदेसातो निग्गया पढमसरए सिद्धत्थपुरातो कुम्मगामं संपत्थिता, तत्थ अंतरा एगोतिलथंभओ तं दट्ठूण गोसालोभणइ—भयवं ! एसतिलथंबतो निप्फज्जिहिइ ?, सामी भणइ—णिप्फज्जिहिइ एए सत्तपुप्फजीवाउद्दाइत्ता

एयस्स चेव तिलथंभस्स एगाए तिलसंबलियाए पच्चायाहिति, ततो गोसालेण असद्दहंतेण ऊसरिऊण सलिट्ठगो तिलथंभो उप्पाडितो, एगंते एडितो, अहासंनिहिएहिं वाणमंतरेहिं मा भयवं मिच्छावाई भवउत्ति वासं वासियं, ततो सो तिलथंभो आसत्थो जातो बहुला य गावी तेणपदेसेग आगता, तीएखुरेणनिक्खित्तो सुप्पइट्ठितो जातो, पुप्फा य पत्ता य जाता। एनमेवार्थं संक्षेपत आह—

> अनितयवासं सिद्धत्थपुरंतिलथंभ पुच्छनिप्फती।
> उप्पाडेइ अणज्जो गोसालोवास बहुलाए॥

—आव० नि। गा० । ४६२

मलयटीका—अनियतंवासं भगवान् अनार्यदेशे कृतवान्, वसतेरलाभात्, ततः सिद्धार्थपुरंगतः, तस्मान्निर्गत्य कूर्मग्रामं प्रति प्रस्थितः, तत्रान्तरा गोशालेन तिलस्तम्बविषये पृच्छा कृता-किमेष तिलस्तंबो निष्पत्स्यते न वा ? भगवता निष्पत्तिरुदाहृता, ततोऽनार्यो गोशालस्तं तिलस्तंबमुत्पाटयति, 'वासंति' यथामन्निहितैर्व्यन्तरैर्वर्षं कृतं, बहुलया गवा खुरेण निखाय्य स्थिरीकृतः।

(घ) ××अन्नदा सामी कुम्मगामातो सिद्धत्थपुरं संपत्थितो, पुणरवि तिलथंभस्स अदूरसामंतेणं वइवयइ, ताहे सामिं पुच्छइ जहा न निप्फन्नो, भयवया कहियं—जहा निप्फन्नो, तं एवं वणस्सईणं पउट्टपरिहारो पउट्टपरिहारो नाम परिवृत्य तस्मिन्नैव शरीरके यदुत्पद्यन्ते जन्तवएष परिवर्त्त परिहारो, तं सो असद्दहमाणो गंतूण तिलसंगलियं हत्थे पप्फोडित्ता सेतिले गणेमाणो चिंतेइ—एवं सव्वे जीवा पउट्टं परिहरंति। ××× णितितवादं धणितमवलंबिता तं करेति ज भगवत्ता उवदिट्ठं।

—आव० चू० पूर्वभाग पृ०२६७-२६८

हे गौतम ! अन्यदा किसी दिन प्रथम शरद काल के समय जब वृष्टि नहीं हो रही थी, मैं गोशालक के साथ सिद्धार्थ ग्राम नामक नगर से चलकर कूर्म ग्राम नामक नगर की ओर जा रहा था, सिद्धार्थ ग्राम और कूर्मग्राम के मध्य तिल का एक बड़ा पौधा था, जो पत्र-पुष्प युक्त, हरितपन से अत्यन्त शोभायमान था। गोशालक ने उस तिल के पौधे को देखा और मुझे वंदन, नमस्कार कर पूछा —"हे भगवान ! यह तिल का पौधा निष्पन्न होगा या नहीं ? इन सात तिलों के फूलों के जीव मरकर कहाँ जायेंगे—कहाँ उत्पन्न होंगे ? हे गौतम ! मंखलिपुत्र गोशालक को मैंने इस प्रकार कहा—हे गोशालक ? यह तिल का पौधा निष्पन्न होगा। वह निष्पन्न होने से वंचित नहीं रहेगा। ये सात तिल पुष्प के जीव मरकर इसी तिल के पौधे की एक तिलफली मे सात तिल के रूप मे उत्पन्न होंगे।

मेरी बात पर गोशालक ने श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की। मेरे निमित्त से वे मिथ्यावादी होवे—ऐसा सोचकर, गोशालक मेरे पास से धीरे-धीरे पीछे खिसका और तिल के पौधे के निकट आकर उसे मिट्टी सहित मूल से उखाड़कर एक ओर फेंक दिया और मेरे निकट आकर साथ हो गया। पौधा उखड़ने के बाद तत्काल आकाश में दिव्य बादल हुए और गर्जन करने लगे, बिजली चमकने लगी और अधिक पानी और कीचड़ नहीं हो—इस प्रकार थोड़े पानी और छोटी बून्दों वाली, रज और धूल को शान्त करने वाली दिव्य वृष्टि हुई-जिससे वह तिलका पौधा वहीं स्थिर हो गया। वे सात तिल-पुष्प जीव मरकर उसी तिल के पौधे की एक फली में सात तिल रूप में उत्पन्न हुए।

.०३ वैश्यायन बालतपस्वी का घटना प्रसंग

(क) तएणं अहं गोयमा ! गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं सद्धिं जेणेव कुम्मग्गामे णयरे तेणेव उवागच्छामि, तएणं तस्स कुम्मग्गामस्स णयरस्स बहिया वेसियायणे णामं बालतवस्सी छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सुराभिमुहे आयावणभूमिए आयावेमाणे विहरइ, आइच्चतेयतवियाओ य से छप्पईओ सव्वओ समता अभिणिस्सवंति पाण-भूय-जीव सत्तदयट्ठयाए च णं पडियाओ-पडियाओ तत्थेव-तत्थेव-भुज्जो-भुज्जो पच्चोरुहेइ ॥६०॥

तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते वेसियायणं बालतवस्सिं पासइ, पासित्ता ममं अंतियाओ सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता जेणेव वेसियायणे बालतवस्सी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता वेसियायणं बालतवस्सिं एवं वयासी—'किं भवं मुणी, मुणिए, उदाहु, जूयासेज्जायरए' ॥६१॥

तएणं से वेसियायणे बालतवस्सी गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं णो आढाइ णो परियाणइ, तुसिणीए संचिट्ठइ ॥६२॥

तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते वेसियायणं बालतवस्सिं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—'किं भवं मुणी ? मुणिए ? उदाहु जूयासेज्जायरए ॥६३॥

तएणं से वेसियायणे बालतवस्सी गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते × × × मिसिमिसेमाणे आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता तेयासमुग्घाएणं समोहण्णइ, तेया० २ समोहणित्ता सत्तट्ठपयाइं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स वहाए सरीरगंसि तेयं णिसिरइ ॥६४॥

तएणं अहं गोयमा ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अणुकंपणट्ठयाए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स उसिणं तेयपडिसाहरणट्ठयाए एत्थ णं अंतरा सीयलियं तेयलेस्सं णिसिरामि, जाए सा ममं सीयलियाए तेयलेस्साए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स सा उसिणा तेयलेस्सा पडिहया ॥६५॥

तएणं से वेसियाणे बालतवस्सी ममं सीयलियाए तेयलेस्साए सीओसीणं तेयलेस्सं पडिहयं जाणित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा छविच्छेयं वा अकीरमाणं पासित्ता सीओसिणं तेयलेस्सं पडिसाहरइ, सीओसिणं तेयलेस्सं पडिसाहरित्ता ममं एवं वयासी—'से गयमेयं भगवं' ! 'से गयमेयं भगवं' ! ॥६६॥

तएणं गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एवं वयासी किण्णं भंते ! एस जूयासिज्जायरए तुब्भे एवं वयासी—'से गयमेयं भगवं ! से गयमेयं भगवं' ?६७

तएणं अहं गोयमा ! गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—'तुम णं गोसाला ! वेसियायणं बालतवस्सिं पाससि, पासित्ता ममं अंतियाओ सणियं-सणियं पच्चोसक्कसि, जेणेव वेसियायणे बालतवस्सी तेणेव उवागच्छसि, तेणेव उवागच्छित्ता वेसियायणं बालतवस्सिं एवं वयासी—'किं भवं मुणी मुणिए, उदाहु जूयासेज्जायरए तएणं से वेसियायणे बालतवस्सी तव एयमट्ठं णो आढाइ, णो परिजाणइ, तुसिणीए संचिट्ठइ। तएणं तुमं गोसाला ! वेसियायणं बालतवस्सिं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—'किं भवं मुणी ? मुणिए, जाव जूया सेज्जायरए' ? तएणं से वेसियायणे बालतस्सी तुमं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते × × × पच्चोसक्कइ पच्चोसक्कित्ता तव वहाए सरीरगंसि तेयलेस्सं णिस्सिरइ। तएणं अहं गोसाला। तव अणुकंपणट्ठयाए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स उसिणतेयलेस्सापडिसाहरणट्ठयाए एत्थ णं अंतरा सीयलियं तेयलेस्सं णिस्सिरामि × × × पडिहयं जाणित्ता तव य सरीरगस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा छविच्छेयं वा अकीरमाणं पासित्ता सीउसिणं तेयलेस्सं पडिसाहरइ, सीउसिणं तेयलेस्सं पडिसाहरित्ता ममं एवं वयासी—'से गयमेयं भगवं' ! से गयमेयं भगवं ॥६८

—भग० श० १५ । सू ६०-६८ । पृ० ६६३-६८

(ख) ततो वोऽविकुम्मगामं संपत्ता, तस्स बाहिं वेसियायणो बालतवस्सी आयावेइ, तस्स का उप्पत्ती ?—चंपाए नयरीए रायगिहस्स य अंतरा गोब्बरगामो, तत्थ गोसंखीनाम कुडुंबितो, सो आभीराण अहिवई, तस्स बंधुमई भज्जा अविया-

वरि, इतो य तस्स अदूरसामंते गामो चोरेहिं हतो, ते हंतूण बंदिग्गाहं च काऊण पधाविया, एगा अचिरप्पसूया पईमि मारिए चेडेण समं गहिया, सा तं चेडं छड्डाविया' सो चेडो तेण गोसंखिएण गोरूवाण गएण दिट्ठे, गहितो य, अप्पणि-ज्जियाए महिलाए दिन्नो, तत्थ पगासियं, जहा—मम महिलाए गूढो गब्भो आसि, तत्थ छगलं मारित्ता लोहियगंधत्ता सूइयानेवत्थेण ठिया' सव्वंजं तस्स इतिकत्तव्वयं तं कीरइ, एवं सो तत्थ संवड्ढइ, सावि से माया चंपाए विक्कीया, वेसियाए थेरीए मम धूयत्ति तीए ववयारं सिक्खाविया, सा तत्थ पगासा गणिया जाया' सो य गोसंखियपुत्तो तरुणो जातो, धयसगडेहिं चंपं गतो सवयंसो, तत्थ पेच्छइ नागरं जणं जहिच्छियमभिरमंतं, तस्सवि इच्छा जाया, अहंपि ताव रमामि ××× एयावत्था विसया इति पाणामाए पवज्जाए पव्वइओ' एसा उप्पत्ती, सो विहरंतो तं कालं कुम्मगामे आयावेइ, तस्स छप्पयातो जडाहिंतो आइच्चकिरणतावियातो पडंति' जीवहियट्ठयाए पडियातो सीसे छुभइ, तं सु गोसालो ओसरित्ता तत्थ गतो किं भवं मुणीतो उयाहु जूयासेज्जायरा ? कोऽर्थः ?—'मन ज्ञाने' किं भवान् मुनिः—ज्ञाता सन् मुनितः—प्रव्रजित उत एवमेवति, अहवा किं इत्थी पुरिसो वा, एवं दो तिन्नि वारे भयइ' ताहे वेसियायणो रुट्ठो तेयं निसिरइ' ताहे सामिणा तस्स अणुकंपणट्ठाए वेसियायणस्स उसिणतेयपडिसाहरणट्ठमेत्थंतरा सीयलिया तेउल्लेसा निसिरिया' सा भगवओ सीयलिया तेउल्लेसा जंबुद्दीवमब्भितरतो वेढेइ, इयरा तं परिरयेण वेढंती जंबुद्दीवं बाहिरतो वेढेइ, सा य एवं परिक्खिज्ज-माणा२ निरवसेसा सीयलियाए लेसाए विज्झाविया, ताहे सो सामिस्स रिद्धि पासित्ता भणइ—से गयमेयं भयवं ! गयमेयं' न जाणामि जहाँ तुज्झं सीसो' खमह,

—आव० नि गा ४६२। टीका

(ग) वेशिकासूनुरित्यासीत्स नाम्ना वैशिकायनः।
तदैव विषयोद्विग्नश्चाददेतापसव्रतम् ॥ १०६ ॥
स्वशास्त्राध्ययनपरः स्वधर्मकुशलः क्रमात्।
कूर्मग्रामे स आगच्छच्छ्रवीरागमनाग्रतः ॥११०॥
तद्बहिश्चोर्ध्वदोर्दण्डः सूर्यमंडलदत्तदृक् ॥
लम्बमानजटाभारो न्यग्रोधद्रुरिव स्थिरः ॥
निसर्गतो विनीतात्मा दयादाक्षिण्यवान् शमी।
आतापनां स मध्याह्ने धर्मध्यानस्थितोऽकरोत् ॥

आदित्यकरतापेन यूका निपतिता भुवि ।
माहं माहं स चिक्षेप भूयो मूर्ध्नि कृपानिधिः ।
तं चावलोक्य गोशालः स्वामिपार्श्वादुपेत्य च ।
ऊचे जानासि किं तत्त्वं यूकाशय्यातरोऽसिवा ॥
योषिद्वा पुरुषो वासि सम्यग्विज्ञायसे न हि
इत्युक्तोऽपि तपस्वी स क्षमी नोवाच किञ्चन ।
भूयो भूयोऽपि गोशालस्तथैव ? तमभाषत ।
यंत्रेऽपि बहुशः क्षिप्तं श्वपुच्छं न ऋजूभवेत् ॥
तापसः स चुकोपाथ तेजोलेश्यां मुमोच च ।
अत्यन्तघृष्टाद्दहनश्चन्दनादपि जायते ।
तस्या ज्वाला करालाया भीतो गोशालको ययौ ।
अभि प्रभु दवत्रस्तोऽभिनदीववनद्विपः ।
त्रातुं गोशालकं स्वामी शीतलेश्यामथाऽमुचत् ।
तेजोलेश्या तयाऽशामि वारिणेव हुताशनः ।
तामृद्धिं स्वामिनः प्रेक्ष्य विस्मितो वैशिकायनः ।
समुपेत्य महावीरं सप्रश्रयमदोऽवदत् ।
न ज्ञातो भवताभेष भगवन्नंतिषञ्जनः ।
तत्सहध्वमिहेदक्षं प्रतीपाचरणं मम ॥ १२१ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो १०६—१२१

(तिल के पौधे की घटना के बाद) हे गौतम ! इसके बाद मैं गोशालक के साथ कूर्मग्राम नगर मे आया । उस समय कूर्मग्राम के बाहर वैश्यायन नामक बाल तपस्वी निरंतर छट्ठ-छट्ठ तप करता था और दोनों हाथ ऊँचे रखकर सूर्य के सम्मुख खड़ा हो, आतापना ले रहा था । सूर्य की गर्मी से तपी हुई जुएं उसके सिर से नीचे गिर रही थी और वह तपस्वी सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्वकी दया के लिये, पड़ी-पड़ी उस जुओं को उठाकर पुनः सिर पर रख रहा था ।

मंखलिपुत्र गोशालक ने वैश्यायन बाल तपस्वी को देखा तो मेरा साथ छोड़कर पीछे खिसका और वैश्यायन बाल तपस्वी के पास पहुँचा । गोशालक ने उससे कहा—तुम तत्वज्ञ मुनि हो अथवा जुओं के शय्यातर हो । वैश्यायन बाल तपस्वीने गोशालक के इस कथन का आदर नहीं किया और स्वीकार भी नहीं किया, वह मौन रहा । गोशालक ने वैश्यायन बाल तपस्वीको दूसरी बार और तीसरी बार इसी प्रकार पूछा—"तुम तत्त्वज्ञ मुनि हो या जुओं के शय्यातर हो ? गोशालकने दूसरी बार और तीसरी बार इसी प्रकार पूछा, तब वैश्यायन

कुपित हुआ यावत् क्रोध से धमधमायमान होकर आतपना भूमि से नीचे उतरा, फिर तैजस समुद्घात करके सात-आठ चरण पीछे हटा। और गोशालक के वध के लिए अपने शरीर में से तेजो लेश्या बाहर निकाली।

मैंने मंखलिपुत्र गोशाले के ऊपर अनुकम्पा करके, वैश्यायन बालतपस्वी की उष्ण तेजो लेश्याका प्रतिसंहरण करने के लिए, शीतल तेजो लेश्या बाहर निकाली। मेरी उस शीतल तेजोलेश्या से वैश्यायन बालतपस्वी की उष्ण तेजो लेश्या का प्रतिघात हो गया। मेरी शीतल तेजो लेश्या से अपनी उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिघात हुआ और गोशालक के शरीर को किंचित् भी पीड़ा और अवयव का छेदन नहीं हुआ जानकर, वैश्यायन बालतपस्वी ने अपनी उष्ण तेजो लेश्या को पीछी खींचली और मेरे प्रति इस प्रकार बोला हे भगवन्! मैंने जाना! हे भगवन्। मैंने जाना।

इसके पश्चात् गोशालकने मुझसे पूछा कि—हे भगवान्। इस जुओंके शय्यातर बाल तपस्वीने आपको—हे भगवन्! मैंने जाना। हे भगवन्! मैंने जाना। इस प्रकार क्या कहा तब हे गौतम। मैंने गोशालक से इस प्रकार कहा कि हे गोशालक, तुने वैश्यायन बालतपस्वी को देखा और मेरे पास से हटकर धीरे-धीरे पीछे गया। फिर तुने वैश्यायन बालतपस्वी से इस प्रकार कहा —"तू ज्ञात तत्त्व मुनि है अथवा जुओंका शय्यातर है। वैश्यायनने तेरे इस कथन का आदर-स्वीकार नहीं किया और मौन रहा। इसके बाद तूने उसे दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार कहा, तब वह वैश्यायन बालतपस्वी कुपित हुआ यावत् तेरा वध करने के लिये अपने शरीर में से तेजोलेश्या बाहर निकाली। उस समय मैंने तुझ पर अनुकम्पा करके वैश्यायन बालतपस्वी की तेजोलेश्या के प्रतिसंहरण करने के लिए शीत तेजोलेश्या निकाली यावत् उससे उसकी उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिघात हुआ और तेरे शरीर को कुछ भी पीड़ा नहीं हुई जानकर अपनी उष्ण तेजोलेश्या को पीछे खींच लिया। फिर उसने मुझे इस प्रकार कहा—हे भगवन्! मैंने जाना। हे भगवन्! मैंने जाना।

.४ पार्श्वपत्यीय श्रमणों से—संपर्क

(क) ततो कुमारायं सन्निवेसं गता, तस्स बहिया चंपरमणिज्जं णामं उज्जाणं, तत्थ भगवं पडिमं ठिओ, तत्थ कुमाराए संन्निवेसे कूवणओणाम कुंभगारो तस्स कुंभारावणे पासावच्चिज्जा मुणिचंदाणाम थेरा बहुसुता बहुपरिवारा से तत्थ परिवसंति, तेय जिणकप्पपरिकम्मं करेंति सीसं गच्छे ठवेत्ता, ते सत्त भावणाए अप्पाणं भावेंति गोसालो य भगवं भणति—एह देशकालो हिंडामो सिद्धत्थो भणति —अज्जं अम्हं अंतरा, सो हिंडंतो ते पासावच्चिज्जे थेरे पेच्छति भणति के—तुब्भे? ते भणंति—समणा निग्गंथा। सो भणति —अहो निग्गंथा इमो भेदत्तिओ

गंथो, कहिं तुब्भे निग्गंथा ? ताहे सो गतो सामिस्स साहति—अज्जमए सारंभा सपरिग्गहा दिट्ठा तव्वं साहितं। ताहे सिद्धत्थेणं भणितो ते पासावच्चिज्जा। थेरा साए।

—आव० चू० पूर्व भाग पृ० २९५।२८६

यद्यपि छद्मस्थावस्था मे भगवान् महावीर को भगवान पार्श्वनाथ के शासन का कोई साधु नहीं मिला था परन्तु गोशालकसे उनका साक्षात् हुआ था।

भगवान महावीर कुमाराक सन्निवेश के चपकरमणीय उद्यान मे विहार कर रहे थे। गोशालक भगवान के साथ था। दुपहरी मे उसने भिक्षा के लिए सन्निवेश मे चलने के लिए अनुरोध किया। भगवान के उपवास था इसलिए नहीं गये। वह सन्निवेश मे गया।

उस सन्निवेश मे कूपनयनामका कुंभकार रहता था। वह बहुत धनाढ्य था। उसकी शाला मे भगवान पार्श्वकी परम्परा के साधु ठहरे हुए थे। गोशालकने उन्हे देखा उनके बहुरंगी वस्त्रोंको देख गोशालक ने पूछा—आप कौन हैं? उन्होंने उत्तर दिया—हम श्रमण हैं। भगवान पार्श्वके शासन मे साधना कर रहे हैं।

गोशालकने कहा—इतने वस्त्र-पात्र रखने वाले श्रमण कैसे हो सकते हैं।

उसने बहुत देर तक पार्श्वापत्यीय श्रमणों से वाद-विवाद किया। फिर मेरे पास लौट आया। उसने मुझसे कहा—भंते! आज मैंने परिग्रह साधुओं को देखा है।

भगवान ने अंतर्ज्ञान से देखकर बताया—वे परिग्रही नहीं हैं वे भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य है।

(ख) पच्छा तंबाय णामं एंति, तत्थ णंदिसेणा णाम थेरा बहुस्सुया बहुपरिवारा, ते तत्थ जिणकप्पस्स पडिकम्मं करेंति पासावच्चिज्जा, इमे वि बाहिं पडिमंठिता। गोसालो अतिगतो तहेव पेच्छति पव्वतिते, तत्थपुणो खिसति, ते आयरिया तद्दिवयं चउक्के पडिम ठायंति। पच्छा ताहिं आरक्खिपुत्तेण हिंडंतेणं चोरोत्ति भल्लएण आहतो।

—आया० चू० पूर्व भाग पृ० २८१

(ग) तंबाए नंदिसेणो पडिमा आरक्खि वहणाभयडहणं।
कूविय चारिय मुक्को विजयपगब्भाय पत्तेअं॥

—आव० निगा ४८४

एकबार तम्बाय सन्निवेश मे भी पार्श्व की परम्परा के आचार्य नंदिषेण के श्रमणों से गोशालक मिला था। हे गौतम! नंदिषेण बहुत ज्ञानी और ध्यानी श्रमण थे। वे रात्रि के समय

चौराहे पर खड़े होकर ध्यान कर रहे थे। उस समय भावसिकका पुत्र आया। उसने नंदिषेण को चोर समझकर मार डाला।

७ गोशालक का भगवान महावीर से पृथक् होने का घटना प्रसंग

(क) तए णं अहं गोयमा! अण्णदा कदायि गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं सद्धिं कुम्मगामाओ नगराओ सिद्धत्थगामं नगरं संपट्ठिए विहाराए। जाहे य मो तं देसं हव्वमागया जत्थ णं से तिलथंभए। तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एवं वयासी—तुब्भे णं भंते। तदा ममं एवमाइक्खइ जाव परूवेह—गोसाला! एस णं तिलथंभए निप्फज्जिस्सइ, नो न निप्फज्जिस्सइ। ××× पच्चायाइस्संति, तण्णं मिच्छा। इमं च णं पच्चक्खमेव दीसइ—एस णं सेतिलथंभए नो निप्फन्ने, अन्निप्फन्नमेव। ते य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता नो एयस्स चेव तिलथंभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाया।

तएणं अहं गोयमा! गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—तुमं णं गोसाला! तदा ममं एवमाइक्खमाणस्स जाव परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहसि, नो पत्तियसि, नो रोएसि, एयमट्ठं असद्दहमाणे, अपत्तियमाणे, अरोएमाणे, ममं पणिहाए 'अयण्णं मिच्छावादी भवउ' त्ति कट्टु ममं अंतियाओ सणियं-सणियं पच्चोसक्कसि, पच्चोसक्कित्ता जेणेव से तिलथंभए तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता ××× एगंतमंते एडेसि। तक्खणमेत्तं गोसाला! दिव्वे अब्भवद्दलए पाउब्भूए। तए णं से दिव्वे अब्भवद्दलए खिप्पामेव पतणतणाति, खिप्पामेव ××× तस्स चेव तिलथम्भगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाया। तं एस णं गोसाला। से तिलथम्भए निप्फन्ने, नो अन्निप्फन्नमेव। ते य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता एयस्स चेव तिलथम्भयस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाया। एवं खलु गोसाला। वणस्सइकाइया पउट्टपरिहारं परिहरंति।

तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एवमाइक्खमाणस्स जाव परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहइ, नो पत्तियइ, नो रोएइ, एयमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे जेणेव से तिलथंभए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ताओ तिलथंभयाओ तं तिलसंगलियं खुड्डइ, खुड्डित्ता करयलंसि सत्ततिले पप्फोडेइ॥

तए णं तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स ते सत्त तिले गणमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए ××× समुप्पज्जित्था—एवं खलु सव्वजीवा वि पउट्टपरिहारं परिहरंति

'एस णं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स पउट्टे' एस णं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स मम अंतियाओ आयाए अवक्कमणे पण्णत्ते।

—भग० श १५। सू ७२,७५। पृ० ६६८,६९

(ख) कूर्मग्रामञ्च गोशालेनान्वितः परमेश्वरः।
प्रतस्थे प्रतिसिद्धार्थपुराख्यं नगरोत्तमम्॥१२५॥
संप्राप्ते तत्तिलस्तम्बदेशे गोशालकोऽवदत्।
न निष्पन्नस्तिलस्तम्बो यः स्वामीभिरुहीरितः॥
स्वाम्याचख्यौ तिलस्तम्बो निष्पन्नःसोऽत्रविद्यते।
गोशालोऽश्रद्दधत्तत्र तिलशिम्बां व्यदारयत्।
तत्र सप्ततिलान्पश्यन्नेवं गोशालकोऽवदत्॥
जायन्तेऽङ्ग परावृत्त्यपुनस्तत्रैव जन्तवः॥१२६॥

--त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ४

(ग) ××× अन्नदा सामी कुम्मगामातो सिद्धपुरंपत्थितो, पुणरवि तिलथंबगस्स अदूरसामंतेणं वोइवयइ, ताहे सामि पुच्छइ, जहा न निप्फन्नो, भयवया कहियं—निप्फन्नो, तं एवं वणस्सईणं पउट्टपरिहारो कप्पितो, पउट्टपरिहारो नाम परिवृत्य २ तस्मिन्नेव शरीरके यदुत्पद्यते जन्तवः एप परिवर्त्तपरिहारो, तंसो असद्दहयाणो गंतूण तिल सेंगलिय हत्थे पप्फोडित्ता तेतिले गणेमाणो चिंतेइ। ×××।

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० २९७

इसके बाद हे गौतम! अन्यदा एकदिन मंखलिपुत्र गोशालक के साथ मैं कूर्मग्राम नगर से सिद्धार्थ ग्राम नगर की ओर जाने लगा। जब हम उस तिलके पौधेके स्थान के निकट आये, तो गोशालकने मुझे कहा—'हे भगवन्! आपने मुझे उस समय कहा था कि हे गोशालक यह तिलका पौधा निष्पन्न होगा यावत् तिलपुष्पके जीव सात तिलरूप से उत्पन्न होंगे, किन्तु आपकी यह बात मिथ्या हुई। क्योंकि यह प्रत्यक्ष दिख रहा है कि यह तिलका पौधा उगा ही नहीं और वे तिलपुष्प के सातजीव मरकर इसी तिलके पौधे की एक तिल फली मे सात तिल रूप से उत्पन्न नहीं हुए।

इसके उत्तर मे मैंने गोशालक से कहा —" हे गोशालक! जब मैंने तुझ से ऐसा कहा, तब तुमने मेरे कथन पर श्रद्धा प्रतीति और रुचि नहीं की और ऐसा सोच कर कि मेरे निमित से वे मिथ्यावादी होवें—तू मेरे पास से पीछे खिसका और उस तिल के पौधे को यावत् मिट्टी सहित उखाड़ कर एकान्त में फेंक दिया। हे गोशालक! उस समय तत्काल

आकाश में दिव्य बादल प्रगट हुए, यावत् गर्जना करने लगे, यावत् वे तिल के पौधे की एक तिल फली में सात तिल रूप से उत्पन्न हुए हैं। इसलिये हे गौशालक ! वह तिल का पौधा निष्पन्न हुआ है और वे सात तिल पुष्प के जीव मरकर इसी तिल के पौधे में एक तिल फली में सात तिल रूप से उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार हे गौशालक ! वनस्पतिकायिक जीव, मरकर प्रवृत्तपरिहार कापरिहार (उपभोग) करते हैं अर्थात मरकर उसी शरीर में पुनः उत्पन्न हो जाते हैं।

गोशालक ने मेरे इस कथन पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि नहीं की, यावत् उस तिल के पौधे के पास जाकर उसकी तिलफली को तोड़कर और हाथ में मसलकर सात तिल बाहर निकाले। इसके बाद मंखलिपुत्र गोशालक को सात तिलों की गिनती करते हुए इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'सभी जीव प्रवृत्त परिहार करते है, अर्थात मरकर उसी शरीर में पुनः उत्पन्न हो जाते है।' हे गौतम ! मंखलिपुत्र गोशालक का यह 'परिवर्त परिहारवाद है। हे गौतम ! मुझसे (तेजोलेश्या की विधि प्राप्त करने के बाद) मंखलिपुत्र गोशालक का यह अपक्रमण है अर्थात् वह मुझसे पृथक् हुआ है !

वनस्पतिकाय के जीव बार-बार मरकर पुनः उसी शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं। इसको वनस्पतिकायिक परिवर्त परिहार कहते है।

·८ भगवान से गोशालक का पृथक्करण —

·१ छट्ठे चतुर्मास के पहले, पंचम चतुर्मास के बाद

प्रथम बार

(क) अथतैश्चकितैर्मुक्तः क्षमितश्चप्रभुः पुरीम्।
विशालीं प्रतिचचाल द्वौ मार्गौ स्तस्तदन्तरे ॥५८७॥
तत्रावोचत गोशालो नायास्यामि त्वया समम्।
मां हन्यमानमपि यत्त्वं तटस्थ इवेक्षसे ॥५८८॥
अन्यत्त्वोपसर्गैः स्युरुपसर्गा ममापि हि।
यद्ग्निः शुष्क संपर्गाद्दहत्याद्र्मपि क्षणात् ॥५८९॥
अन्यच्च लोको मामादौ निहन्ति त्वां ततः खलु।
क्लेशाद्भोजनवृत्तिश्च जायते वा न वा मम ॥५९०॥
ग्रावखंडे च रत्ने चारण्ये च नगरेऽपि च।
आतपे मंडपे चापि बह्नौ च सलिलेऽपि च ॥५९१॥

जिघांसौ सेवके चापि निर्विशेषस्य तेननु ॥
सेवां को नाम कुर्वीत नयोऽहमिव मूढधीः ॥
त्वत्सेवा तालसेवेव मया भ्रांतेन या कृता ।
सास्मर्तव्याऽतः परं तां करिष्यामि खल्वहम् ।
सिद्धार्थोऽथावदत्त ्भ्यं रोचते यत्कुरुष्व तत् ।
इयमेवहि नः शैलीसाभवेज्जातु नान्यथा ॥
ततो जगाम भगवान् वैशालीगामिनाध्वना ॥५९५॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ५८७ से ५९५

(ख) तत्थ वच्चताणं दुवे पंथा, ताहे गोसालो भणइ - तुब्भे ममं हमम्माणं न वारेह, तुब्भेहि समं बहूवसग्गं, अन्नं च—चेव पढमं हम्मामि, तो वरं एकल्लो विहरिस्सं, सिद्धत्थो भणइ—तुमं जाणसि, ताहे सामी वेसालीमुहो पयाइ, इमोय गोसालो भयवतो फिडितो अन्नतो पट्ठितो × × × ।

—आव० नि० गा ४८३ । मलय टीका

जब भगवान महावीर कूपिका नगरी से विशाला नगरी की ओर विहार किया—विहार करते हुए जब दो मार्ग आये तब गोशालक ने भगवान को कहा—"हे नाथ ! मैं अब आपके साथ नहीं जाना चाहता हूँ क्योंकि जब मुझे कोई मारता है उस समय आप तटस्थ रहते हैं । जब कभी आपको उपसर्ग होता है तब आपके साथ मुझको भी उपसर्ग होता है क्योंकि अग्नि शुष्क के साथ (गीले -शुष्क) आर्द्र को भी जलाती है । लोग पहले मुझे मारते हैं और बाद में आपको । भोजन की इच्छा होते हुए भी कोई दिवस भोजन होता है, कोई दिवस भूखा रहना पड़ता है ।

पाषाण मे, रक्त मे, अरण्य मे, नगर मे, आतप मे, छाया मे, अग्नि में, जल मे, हनन करने के लिए आये हुए मे, सेवक मे निर्विशेष - समदृष्टि रखने वाला ऐसे—तुम्हारी सेवा मूढ बुद्धिवाले पुत्र की तरह कौन करता है । एक तालवृक्ष की सेवा करे उस तरह की निष्फल सेवा मैंने भ्रांत होकर आज तक की है । अब से मैं तुम्हारी सेवा नहीं करूंगा ।

भगवान के शरीर मे प्रविष्ट होकर सिद्धार्थ बोला कि जैसे तुम्हारी इच्छा हो वैसे करो । हमारी तो ऐसी ही शैली-पद्धति है जो कभी भी अन्यथा नहीं हो सकती ।

तत्पश्चात् भगवान वहाँ से विशाला नगरी की ओर विहार किया तथा गोशालक अकेला राजगृह की ओर विहार किया ।

·२ भगवान् के नववें चतुर्मास के बाद पुनः गोशालक का पृथक्करण

दूसरी बार

(क) तेजोलेश्यां स्वाम्याख्यातां ससाधयितुमन्यदा ।
स्वामिपादान् परित्यज्य श्रावस्तीं नगरीं ययौ ।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो १२१

(ख) जं भयवया ववइट्ठं जहा संखित्तविउलतेउलेसे हवइ, ताहे सो सामिस्स पासातो फिट्टोसावत्थीए कुंभगारस्स सालाए ठितो ।

—आव० नि गा ४९२ । मलय टीका

भगवान ने गोशालक को तेजोलेश्या की विधि कही थी -अतः तेजोलेश्या की साधना के लिए गोशालक ने भगवान को छोड़कर श्रावस्ती नगरी गया ।

·६ तेजोलेश्या की प्राप्ति के उपाय का गोशालक को कथन

(क) तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं अंतियाओ एयमट्ठं सोच्चा निसम्म भीए ××× संजायभए ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—कहण्णं भंते ! संखित्तविउलतेयलेस्से भवति ।

तएणं अहं गोयमा ! गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—जेणं गोसाला ! एगाए सणहाए कुम्मासपिंडियाए एगेण य वियडासएणं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय ××× विहरइ। से णं अंतो छण्हं मासाणं संखित्तविउलतेयलेस्से भवइ ॥

तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते एयमट्ठं सम्मं विणएणं पडिसुणेति ।

—भग० श० १५ । सू ६९ से ७१ । पृष्ठ ६६८

(ख) एवमुक्त्वा गते तस्मिन् प्रभुं गोशालकोऽवदत् ।
तेजोलेश्यालब्धिरियं जायते भगवन् कथम् ।
स्वाम्याख्यत्सर्वदा षष्ठं विदध्यात्पारयेत् ।
यमी सनखकुल्माषमुष्ट्याम्बुचुलुकेन च ।
तस्य षण्मासपर्यन्ते तेजोलेश्या गरीयसी ।
उत्पद्यतेऽस्खलनीया प्रतिपक्षभयंकरा ।

—त्रिशलाका० पर्व० १० । सर्ग ४ । श्लो १२२ से १२४

(ग) × × × गोसालो पुच्छइ—सामी × × ×। किह संखित्तविउलतेउलेस्सो भवति ? भयवं भणइ जे णं गोसाला ? छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं आयावेइ, पारणाए सनहाए कुम्मासपिंडियाए एगेण य वियडासएणं जावेइजाव छम्मासा सेणं संखित्तविउलते यलेस्सेभवइ।

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० २८६

वैश्यायन बालतपस्वी की घटना के बाद हे गौतम ! मेरी उपरोक्त बात सुनकर गोशालक डरा यावत् भयभीत होकर मुझे वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार बोला - हे भगवान् ! संक्षिप्तविपुलतेजोलेश्या कैसे प्राप्त होती है" मैंने कहा— हे गोशालक ! नख सहित बन्दी की हुई मुट्ठी मे जितने उड़द के बाकुले आवे उतने मात्रा से और एक विकटाशय (चुल्लूभर) पानी से निरंतर छट्ठ-छट्ठ की तपस्या के साथ दोनों हाथ ऊँचे रख कर यावत् आतापना लेनेवाले पुरुष को छहमास के अंत में सक्षिप्तविपुलतेजोलेश्या प्राप्त होती है।

गोशालक ने मेरे कथन को विनयपूर्वक सम्यग् रूप से स्वीकार किया।

·१० गोशालक की तेजो लेश्या की साधना

(क) तएणं गोसाले मंखलिपुत्ते एगाए सणहाए कुम्मासपिंडियाए एगेणं य वियडासएणं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय × × × विहरइ। तएणं से गोसाले मंखलिपुत्ते अंतो छण्हं मासाणं संखित्तविउलतेयलेसे जाए।

—भग० श० १५। सू ७१। पृ० ६६१

(ख) तेजोलेश्यां स्वाम्याख्यातां स साधयितुमन्यदा।
स्वामिपादान् परित्यज्य श्रावस्तीं नगरीं ययौ ॥१२६॥
सकुंभकारशालायां स्थितः षण्मासिकं तपः।
अन्वतिष्ठद्यथाख्यातं तेजोलेश्या सिषेध च ॥१३०॥
तेजोलेश्यापरीक्षार्थं स गत्वा कूपकंठके।
स्वस्य कोपकृते दास्याः कर्करेणाऽभिनद् घटम् ॥१३१॥
सातमाक्रोष्टुमारेभे तेनापि मुमुचे क्रुधा।
तेजोलेश्या तडिद्विच्युता दासीं ददाह सा ॥१३२॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ४

× × ×। नियतिवायं च नियगमवलंबित्ता तं करेइ जं भयवया सवइट्ठं जहा संखित्तविउलतेउलेसे हवइ, ताहे सो सामिस्स पासातो फिट्टो सावत्थीए

कुंभगारस्स सालाए ठितो, तेयनिसग्गं आयावेइ, छहिं मासेहिं संखित्तविउल-तेयलेसो संजातो। ×××।

—आव० नि गा ४१२। मलयटीका

इसके बाद वह मक्खलिपुत्र गोशालक उड़द के बाकलों को नख सहित एक मुट्ठी से और एक चूल्लू भर पानी के द्वारा निरंतर छट्ठ-छट्ठ के तप के साथ दोनों हाथ ऊँचा रखकर और सूर्य के सम्मुख खड़ा रहकर आतापना भूमि मे आतापना लेने लगा। इस प्रकार करते हुए छहमास के अन्त में गोशालक को संक्षिप्तविपुलतेजोलेश्या उत्पन्न हो गई। श्रावस्ती नगरी में गोशालक ने साधना की।

.११ गोशालक के साथ विहार

प्रथम विहार

(क) कुल्लाग बहुल पायस दिव्वं गोसाल दट्ठु पव्वज्जा।
बाहिं सुवण्णखलए पायसथाली नियइगहणं।

—आव० नि। गा ४७४

मलय टीका—कोल्लाकः सन्निवेशः, तत्र भगवते बहुलो नाम ब्राह्मणः पारणके पायसं दत्तवान्, ततो दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, तानि गोशालो दृष्ट्वा प्रव्रज्यां प्रतिपन्नः, सोत्तरौष्ठं मुंडनं कृतवान् इत्यर्थः, ततो भगवान् गोशालेन सह सुवर्णखलं गतः, तस्य बहिः पायसस्थाली भग्ना, ततो विशेषतो नियतेर्ग्रहणं, भावार्थ उक्त एव।

(ख) गोशालेन समं स्वर्णखलाख्यं सन्निवेशनम्।
प्रत्यपचालीत्प्रभुर्मार्गे युगमात्रप्रदत्तदृक ॥४१३॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३

कोल्लाकसन्निवेश मे गोशालक को अपना शिष्य बनाकर भगवान ने गोशालक के साथ स्वर्णखल की ओर विहार किया।

.२ अन्य विहार

(क) कयलिसमागम भोयण मंखलि दहिकूर भगवओ पडिमा।
जंबूसंडे गुट्ठिय भोअणं भगवओ पडिमा॥

— आव० नि० गा० ४८३

मलय टीका—कदलिसमागमो नाम ग्रामः, तत्र मंखलेः—मंखलिसुतस्य गोशालस्य दधिसम्मिश्रं कूरं भोजनमभूत, भगवतः प्रतिमा—कायोत्सर्गः, ततो भगवान् जंबूखंडो नाम ग्रामस्तत्र गतः, तत्र गोशालो गोष्ठ्या भोजनं क्षीरसम्मिश्रकूररूपं लब्धवान्, भगवतस्तथैव प्रतिमा।

कलंबिग्राम में गोशालक को दधिमिश्रित कूर का भोजन मिला। भगवान कायोत्सर्ग में स्थित थे। उसके बाद भगवान जंबूखण्ड ग्राम मे पधारे। वहाँ गोशालक को क्षीरमिश्रित कूर भोजन प्राप्त हुआ। भगवान प्रतिमा मे स्थित हो गये।

(ख) × × × कुंडागो नाम सन्निवेसो तं एइ, तत्थ वासुदेवघरे कोणे सामी पडिमंठितो, गोसालोऽवि वासुदेवपडिमाए मुहे अहिट्ठाणं काऊण ठितो। × × ×। ततो निग्गया समाणा मद्दणा नाम गामो, तत्थ बलदेवघरे अंतो कोणे सामी पडिमंठितो, सो गोसालो तस्स मुहेसागारियं दाउं ठितो।

—आव० नि। गा। ४८७। टीका

चतुर्मासावसाने च पारयित्वा बहिः प्रभुः।
गोशालसंयुतोऽगच्छन् कुंडके सन्निवेशने॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ४। श्लो ३

शालम्बिका नगरी के बाहर पारण कर भगवान गोशालक सहित कुंडाक ग्राम पधारे।

नोट—यहाँ संक्षेपतः गोशालक के साथ दो-तीन बार का ही दिग्दर्शन किया है।

(ग) तएणं अहं गोयमा! अण्णया कयाइ गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं सद्धिं कुम्मगामाओ णयराओ सिद्धत्थगामं णयरं संपट्ठिए विहाराए × × ×।

—भग० श० १५। सु० ७२। पृ० ६६८

अन्यदा एक दिन मंखलिपुत्र गोशालक के साथ मैं कूर्मग्राम नगर के सिद्धार्थग्राम नगर की ओर जाने लगा।

.४४ साधना काल की घटना विशेष

.१ भगवान् महावीर और शक्रेन्द्र का संवाद

साधना काल में भगवान् का मासी पुत्र—देव साथ रहा

(क) एयंमि अंतरे सिद्धत्थो साम्मिस्स माउस्सियापुत्तो बालतवोकम्मेण वाणमंतरो जातो, ताहे सक्को भणइ—भयवं! तुज्झ उवसग्गबहुलं, अहं बारस वरिसाणि तुज्झं वेयावच्चं करेमि, ताहे सामिणा भणियं—नो खलु देविंदा। एवं भूयंवाभवइवा भविस्सइ वा जं णं अरहंता देविंदाण वा असुरिंदाण वाणीसाए केवलनाणमुप्पाइंसु उप्पायंति उप्पाइस्संतिवा, तवंवा करिंसु वा करेंति वा करिस्संति वा, अरहंता सएण उट्ठाणबलवीरियपुरिसक्कारपरक्कमेणं केवलनाणमुप्पाइंसु

उप्पायंति उप्पाइस्संति वा, ताहे सक्केण सिद्धत्थो भणइ—एसंतवनियल्लंतो, पुणोऽवि ममवयणं, साम्मिस्स जो मारणांतियउवसग्गं करेइ तं वारेहि, तेण पडिस्सुयं—एवं होउ, सक्को पडिगतो, सिद्धत्थो ठितो।

—आव० चू० पूर्वभाग। पृ० २७०

(ख) ततः प्रदक्षिणीकृत्य त्रिमूर्ध्ना प्रणिपत्य च।
इति विज्ञपयाञ्चक्रेऽभुः प्राचीनबर्हिषा॥
भविष्यति द्वादशाब्दान्युपसर्गपरंपरा।
तां निषेधितुमिच्छामि भूत्वाऽहंपारिपार्श्वकः।
समाधिं पारयित्वेन्द्रं भगवानूचिवानिति।
नापेक्षां चक्रिरेऽर्हन्तः परसाहायिकं क्वचित्॥
नैतद्भूतं भवति वा भविष्यति च जातुचित्॥
यदर्हन्तोऽन्य साहाय्याद्जयन्ति हि केवलम्।
केवलं केवलज्ञानं प्राप्नुवन्ति स्ववीर्यतः।
स्ववीर्येणैव गच्छन्ति जिनेंद्राः परम पदम्।
बालेन तपसोत्पन्नं व्यंतरेषु तदामरम्।
नाथस्य मातृष्वस्रीयं सिद्धार्थं मघवाऽऽदिशत्॥
विदधात्युसर्गंयः स्वामिनो मारणात्मकम्।
प्रतिषेध्यः स भवता स्वामिनः पार्श्ववर्तिनः॥
इत्युक्त्वागाद्धरिस्तस्थौ सिद्धार्थः प्रतिपद्यतत्॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लो २७ से ३४ पूर्वार्ध

(ख) गोवनिमित्तं सक्कस्स आगमो वागरेइ देविंदो।

—आव० नि। गा। ४६१। पूर्वार्ध

टीका—ताडनायोद्यतगोपनिमित्तं प्रयुक्तावधेः शक्रस्य—देवराजस्य आगमन-मागमोऽभवत्, विनिवार्य च गोपं देवेन्द्रो भगवंतमभिवन्द्य व्याकरोति—अभिधत्ते—भगवन्! तवाहं द्वादशवर्षाणि वैयावृत्यं करोमीत्यादि, पाठान्तरं वागरिंसु देविंदो, व्याकृतवानित्यर्थः, सिद्धार्थं वा तत्कालंप्राप्तं व्याकृतवान् देवेन्द्रः—भगवान् त्वया न मोक्तव्य इति। गते देवराजे। ×××।

गोपोद्रव (प्रथम वर्ष का उपद्रव) शांत होने के बाद शक्रेन्द्र ने भगवान को प्रदक्षिणा-पूर्वक मस्तक से प्रणाम कर बोला—"हे भगवान! आपको बारह वर्ष तक बहुत उपसर्ग

होंगे—उपसर्ग की परंपरा होगी। अतः मेरी इच्छा है कि मैं उन उपसर्गों का निषेध करने के लिए मैं आपका पारिपार्श्वक रहूँ। प्रत्युत्तर मे भगवान ने कहा—हे देवेन्द्र! अर्हन्त कभी भी पर सहाय की अपेक्षा नही रखते हैं तथा अर्हन्त पर सहाय की अपेक्षा न तो केवल ज्ञान उत्पन्न किया है, और न करते हैं और न करेंगे। जिनेन्द्र केवल स्वय के वीर्य से ही केवल ज्ञान को प्राप्त करते है तथा स्ववीर्य से ही मोक्षपद को प्राप्त करते है।"

भगवान से इस तरह के वचन सुनने के बाद शक्रेन्द्र ने बाल तपस्या से व्यतर देव मे उत्पन्न हुए--भगवान के मासी के पुत्र सिद्धार्थ को आज्ञा दी—"तुम प्रभु के पास रहना तथा जो भी भगवान को मारने के लिए आये तो उनका प्रतिषेध करना। फलस्वरूप सिद्धार्थ इन्द्र की आज्ञा को मानकर भगवान के पास रहा।

·२ अच्छंदक पाखण्डी

पच्छा सरदे निग्गओ मोराय नाम सन्निवेसं गओ, तत्थ सामी बहिं उज्जाणे ठिओ, तत्थ य मोरागए सन्निवेसे अच्छंदगा नामं पासंडत्था, तत्थ एगो अच्छंदओ तत्थ गामे अच्छइ, सो पुणतत्थ गामे कोंटलवेंटलेण जीवति, सिद्धत्थगो एकल्लओ अच्छंतओ अद्धितिं करेति बहुसंमोइतो य, भगवतो य पूयं अपेच्छंतो, ताहे सो वोलेंतं गोहं सद्दावेत्ता वागरेति, जहिं पधावितो जं जिमितो जं पंथे दिट्ठं जे य सुविणगा दिट्ठा, ताहे सो आउट्टो गामं गंतुं मित्तपरिजिताण परिकहेति, सव्वहिगामे फुसितं एस देवज्जओ उज्जाणे अतीनवट्टमाणाणागतं जाणति, ताहे अन्नोऽवि लोओ आगतो, सव्वस्स वागरेति, लोगोतहेव आउट्टो महिमं करेति सो लोगेण अविरहितो अच्छति, ताहे सो लोगो भणई—एत्थ अच्छंदओ नाम जाणतओ, सिद्धत्थो भणति सेणं किंचि जाणति, ताहे लोगो गंतुं भणति तुमं न किंचि जाणसि, देवज्जंतो जाणति, सो लोगमज्झे अप्पाणं ठाविउकामो भणति—एह जामो, जदिमज्झ जाणति, ताहे लोगेण परिवारितो एति, भयवतो पुरतो ठितो, तणं गहाय भणति किं एतं छिज्जिहिति? जहिभणिहिइ तो णं छिंदिस्स अह भणिहिति णवि तो छिंदिस्सामि।

एवंतस्स (अच्छंदगस्स) उड्डाहो जातो जहा तस्स कोऽवि भिक्खंपि णदेति, ताहे सो अप्पसागारियं आगतो भणति—भगवं तुब्भे अण्णत्थवि जुज्जह, अहं कहिं जामि? ताहेअचियत्तग्गहोत्तिकाऊण सामी निग्गतो।

—आव० चू० पूर्वभाग। पृ० २७४ से २७७

दीक्षादिनादतीतेऽब्दे मोराकं सन्निवेशनम् ।
गत्वा तद्बहिरुद्याने स्वाम्यस्थात् प्रतिमाधरः ॥१७०॥
तस्मिन्नच्छन्दको नाम पाखंडी सन्निवेशने ।
ज्योतिष्कमंत्रतंत्रादिकरणेन स्म जीवति ॥१७१॥
तस्यासहिष्णुर्माहात्म्यं स्वाम्यर्चा' चाभिलाषुकः ।
सिद्धार्थव्यन्तरः कृत्वासंक्रमंस्वामिवर्ष्मणि ॥ १७२॥
यान्तमाहूय गोपालमूचे भो ! भुक्तवानसि ।
कंगुकूरं ससौवीरं वृषांस्त्रातु' च गच्छसि ॥१७३॥
आगच्छंश्चाहिमद्राक्षीः स्वप्नेऽरोदीश्च निर्भरम् ।
तदेतत्संवदति किं सत्यमाख्याहि गोपक ! ॥१७४॥
सत्यमेवेति तेनोक्ते सिद्धार्थस्तस्य भूरिशः ॥
भूयस्तत्तत्समाचख्यौ प्रत्ययोत्पत्तिकारणम् ॥१७५॥
गोपः सविस्मयो ग्रामे गत्वाऽऽख्यद्यद्बहिर्वने ।
देवार्योऽस्ति त्रिकालज्ञः सोऽपुरि प्रत्ययान्मम ॥१७६॥
तच्छ्रुत्वा कौतुकापूर्णस्तूर्णं ग्रामजनोऽखिलः ।
पुष्पाक्षतादिपूजाभृद्राययौ स्वामिसन्निधौ ॥१७७॥
सिद्धार्थः स्वामिसंक्रान्तो ग्रामीणानब्रवीदिदम् ।
द्रष्टु' मेऽतिशयं यूयं सर्वे स्थकिमिहागताः ॥१७८॥
ग्राम्यैरामेत्यभिहिते यत्तैर्दृष्टं कृतं श्रुतम् ।
उक्तं च प्राक् तदानीं च सिद्धार्थस्तदचीकथत् ॥१७९॥
सिद्धार्थो भावि चायख्यौ श्रुत्वा लोकस्ततोऽकरोत् ।
प्रभोः पूजां वन्दनां च महामहिमपूर्वकम् ॥१८०॥

× × ×

ते गत्वाऽच्छंदकं स्माहुर्नत्वं जानासि किञ्चन ।
सर्वं जानाति देवार्यो भावि भूतंभवच्च यत् ॥१८४॥

× × ×

श्रीवीरं विजने गत्वा नत्वा दीनोजगादसः ।
भगवन्नन्यतो याहि पूज्य सर्वत्र पूज्यते ॥२१५॥

अत्रै वाच्चर्योऽस्मि नान्यत्र नामापि ज्ञायते मम ।
स्वदर्यामेव शौर्यं हि गोमायोर्न पुनर्बहिः ॥२१६॥
अजानता दुर्विनयो यो मयाऽकारि नाथ ! ते ।
संप्राप्तं तत्फलं संप्रत्यनुकम्पस्व मामतः ॥२१७॥
अप्रीतिमल्परिहाराभिग्रही भगवानथ ।
चचालोत्तरचावालं सन्निवेशं प्रति प्रभुः २१८ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३

दीक्षा दिवस के एक वर्ष व्यतीत होनेके बाद भगवान वापस अस्थिकग्राम से मोराकग्राम पधारे । बाहर के उद्यान मे भगवान प्रतिमा मे स्थित हो गए । उस ग्राम मे एक अच्छन्दक नामक एक पाखण्डी रहता था । वह मन्त्र-तन्त्र के बल से स्वयं की आजीविका चलाता था । उसके महात्म्य को सिद्धार्थ व्यतर देव सहन नहीं कर सका । वह वर्धमान की पूजा की अभिलाषा से भगवान के शरीर मे प्रवेश किया । किसी गोपाल को रास्ते मे जाते हुए देखा—उसे कहा तुम सौवीर सहित कंगकूरका भोजन किये हो और तुम बलदों की रक्षार्थ जा रहे हो । तुमने रास्ते मे एक सर्प देखा है, तुम स्वप्न में बहुत रोये हो । गोपाल ने कहा आप सत्य कहते हो । गोपाल ग्राम मे आकर कहा—ग्राम के बाहर देवार्य का आगमन हुआ है जो तीनों काल की बात जानते है । सिद्धार्थ कहा - तुम सब लोग हमारा अतिशय देखने आये हो । फलस्वरूप अच्छन्दक का प्रभाव कम पड़ गया । लोगोंने भगवान की महिमा की वन्दना की । अच्छन्दक को भिक्षा भी मिलना मुश्किल हो गया ।

अच्छन्दक ने एकान्त मे आकर भगवान को दीनरूप से कहा—हे भगवान् ! आप यहाँ से विहार करें । जो पूज्य होता है, वह सर्वत्र पूज्य होता है । भगवान ने उसके वचन को सुना । भगवान ने वहाँ से अन्यत्र विहार कर दिया ।

३· वग्गुर श्रेष्ठी

(क) ततो पुरिमताल एति, तत्थवग्गुरो णाम सेट्ठी तस्स भारिया वंझा अवियाउरी जाणुकोप्परमाता देवसतोवाइयाणि, काउं परिसंता, अन्नया सगडमुहे उज्जाणियाए गताणि, तत्थ पासंति जुन्नदेउलं सडित-पडितं, तत्थ मल्लि सामिणो पडिमा, तं णमसंति तेहि भणितं—जदिअम्ह दारओ वा दारिया वा पयाति ता एतं देवलं करेमो, एतब्भत्ताणि य होमो, एवं णमंसित्ता गयाणि तत्थ य अहासन्निहियाए वाणमंतरी देवयाए पाडिहेरं कतं आहूतो गब्भो, जं चेव आहूतो जं चेव देवउलं काउमारद्धाणि अीतव पूजंति संझं करेंति, पव्वइया य अल्लियंति, एवंसो

सावओ जातो। इतो य सामी विहरमाणो सगडमुहस्स उज्जाणस्स णगरस्स य अंतरा पडिमं ठितो × × ×। वग्गुरो यं तंकालं ण्हातो ओल्लपडसाडओ सपरिजणो महता इड्डीए विविहकुसुमहत्थगतो तं आयतणमच्चनो जाति, तं च विविवय-माण ईसाणिंदोपासति, भणंतिय - भो ! वग्गुरा ! तुब्भं पच्चक्खतित्थगरस्स महिमं ण करेमि, तो पडिमं अच्चतो जासि, जाएस महतिमहावीरवद्धमाणसामी जगनाहेति लोगपुज्जेति, सो आगतो मिच्छादुक्कडं काउं खामेति महिमं करेति।

—आव० चू० पूर्वभाग। पृ० २९४। २९५

(ख) राज्ञापि वन्दितो भक्त्या विहरन् भगवान् ययौ।
पुरे पुरिमतालाख्ये तत्र चेदं पुराऽभवत्॥ १६॥
तत्रासीद्वागुरः श्रेष्ठीधनीभद्रा च तत्प्रिया।
वन्ध्या श्रान्ता सुतकृते दृत्तैर्देवोपयाचितैः॥ २०॥

× × ×

साधूनां नित्यसंसर्गाच्छ्रेष्टिनौ श्रेष्ठबुद्धिकौ।
श्रावकत्वं प्रपेदाते विविज्ञौ च बभूवतुः॥ ३०॥
इतश्च भगवान् वीरस्तस्थौ प्रतिमया स्थिरः।
अन्तरे शकटमुखोद्यानस्य च पुरस्य च॥ ३१॥
तत्र वन्दितुमायात ईशानेन्द्रो जिनेश्वरम्।
ददर्श वागुरं यान्तं मल्लिबिम्बार्चनेच्छया॥ ३२॥
ईशानो वागुरं चोचेकिं प्रत्यक्षं जिनेश्वरम्।
अतिक्रम्याग्रतो यासितद्बिम्बार्चन हेतवे ?॥ ३३॥
अयं हि भगवान् वीरश्चरमस्तीर्थकृतस्वयम्।
छद्मस्थो विहरन्नत्र वर्तते प्रतिमास्थितः॥ ३४॥
मिथ्यादुष्कृतमित्युक्त्वा त्रिश्च कृत्वा प्रदक्षिणाम्।
स ववन्दे विभुं भक्त्या कूर्मवत्संकुचत्तनुः॥ ३५॥
ईशानो वागुरश्चेशं नत्वा द्वावपि जंग्मतुः।

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ४

लोहार्गलपुर से विहार कर भगवान पुरिमताल नगर पधारे। वहाँ एक वग्गुर नाम का एक श्रेष्ठी रहता था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। वह पुत्र के लिए देवी-देवताओं

की पूजा करती थी। एक बार बग्गुर दम्पती शकटमुख उद्यान गये। वहाँ से मल्लिका जीर्ण-शीर्ण मन्दिर देखा। श्रेष्ठी ने सकल्प किया—यदि मेरे पुत्र होगा तो मैं मन्दिर का नव-निर्माण करा दूँगा। पुत्र भी हुआ। श्रेष्ठी ने मन्दिर का पुनरोद्धार करा दिया।

नित्य साधुओं के सम्पर्क से दोनों श्रावक भी हुए। भगवान महावीर उस उद्यान में ध्यान कर रहे थे। ईशानेन्द्र ने उनसे कहा—साक्षात् भगवान को छोड़कर बग्गुर दम्पती मूर्ति को पूजने जा रहे हो। ये छद्मस्थ चरमतीर्थंकर महावीर हैं। यह सुनकर बग्गुर दम्पती ने मिथ्या-दुष्कृत कर कूर्म की तरह शरीर को संकोच कर भक्ति से प्रभु को वन्दन किया।

४. मोराक ग्राम की घटना विशेष

(क) ततो सामी विहरमाणो गतो मोरागसंनिवेसं, तत्थ मोराए दूइज्जंता नाम पासंडत्था, तेसिं तत्थ आवासो, तेसिं च कुलवती भयवतो पिउमित्तो, ताहे सो सामिस्स सागएण उवट्ठितो, सामिणा पुव्वपयोगेण बाहा पसारिया, सोभणइ—अत्थि कुमारवर! एत्थघरा अच्छाहि तत्थ, सामी एगराइं च वसित्ता पच्छा गतो विहरइ, गच्छंतस्सय तेण भणियं—विवित्ता वसहीतो जइ वासारत्तो कीरइ तो आगच्छेज्ज, अणुग्गहीया होज्जामो, ताहे सामी अट्ठउउबद्धिए मासे विहरित्ता वासावासे संपत्ते तं देवं दूइज्जंतगगामं एइ, तत्थेगंमि उडए वासावासं ठितो,

पढमपाउसे य गोरूवाणि चारिं अलभंताणि जुन्नाणि तणाणि खायंति, ताणि य घराणि उव्वेलेंति, पच्छा ते तावसा वारेंति, सामी न निवारेइ, पच्छा दूइज्जंतगा तस्स कुलवइस्स साहिंति—जहा एस एयाणि न वारेइ, ताहे सो कुलवई अणुसासइ,

जहा कुमारवर! सउणीवि ताव नेड्डं रक्खइ, तुमंपि वारिज्जासित्ति सप्पिवासं भणइ, × × ×

एवं तत्र भगवान् अर्द्ध मासं स्थित्वा ततो पच्छा अट्ठियगामं गतो, तस्स पुण अट्ठियगामस्स पढमं वद्धमाणयमिति नाम होत्था।

— आव० नि गा ४६१। टीका

—आव० चू पूर्वभाग पृ० २७१-२७२

(ख) अन्यदा विहरन् स्वामी मोराके सन्निवेशने।
ययौ दूइज्जंतकाख्यतापसव्रात संकुले॥ ४६॥
पितृमित्रं कुलपतिस्तत्र नाथमुपास्थितः।
पूर्वाभ्यासात् स्वामिनापि तस्मिन् बाहुः प्रसारितः॥ ५०॥

प्रार्थितः कुलपतिना तत्रैकामवसन्निशाम् ।
प्रतिमयैकरात्रिक्या श्रीमान् सिद्धार्थनन्दनः ॥ ५१ ॥
विजिहीषु भगवन्तमूचे कुलपतिः प्रगे ।
वर्षाकालस्त्वया कार्यो विविक्तवसताविह ॥ ५२ ॥
नीरागोऽपि वचस्तस्य प्रतिश्रुत्यो परोधतः ।
निरंजनः शंख इव प्रययौ प्रभुरन्यतः ॥ ५३ ॥
वायुरिवाप्रतिबद्धो-निर्लेपः पद्मपत्रवत् ।
सर्वत्र विहरन् ग्रीष्मकालं स्वाम्यत्यवाहयत् ॥ ५४ ॥
सिद्धार्थसुहृदस्तस्य स्मरन् कुलपतेर्वचः ।
स्वामी प्रावृषमस्येतु' मोराकं पुनरभ्यगात् ॥ ५५ ॥
वर्षत्युद्‌गर्जितं मेघेखस्थधारागृहोपमे ॥
स्वस्वस्थानाय गच्छत्सु पथिकेष्वपिहंसवत् ॥ ५६ ॥
प्रभोर्भातृव्यतास्नेहसंबंधमधुराशयः ।
गृहमेकं कुलपतिस्तृणाच्छादितमार्पयत् ॥ ५७ ॥
आजानुलंबितभुजो जटावानिव पादपः ।
नियंत्रितमनास्तत्र तस्थौ प्रतिमया प्रभुः ॥ ५८ ॥
भीष्मग्रीष्मर्तुमाहात्म्यान्निःशेषिततृणे वने ।
अनुद्यन्नूतनतृणे नवत्वात्प्रावृषोऽपि च ॥ ५९ ॥
अधावन् खादितु' गावस्तापसानां तृणोटजान् ।
निर्दयास्तापसास्ते गास्ता यष्टिभिरताडयन् ॥ ६० ॥
तैस्ताड्यमाना गावस्तास्तृणोकः स्वाम्यधिष्ठितम् ।
चखादुः स्तभनिभृते प्रभौ तासां कुतोहि भीः ॥६१॥
तापसा अपि तत्प्रेक्ष्याक्रुध्यन्नेवं प्रति ।
रक्षामो वयमुटजान् त्वं न रक्षस्यसौ पुनः ॥६२॥
अहो कुलपतेः कोऽयमतिथिर्यस्य पश्यतः ।
चखादुर्गाव उटजमहो स्वार्थैकनिष्ठता ॥६३॥
किं कुर्महे स्व आत्मेव प्रियः कुलपतेरयम् ।
तद्भयादेव परुषं न वक्तु'मिह शक्यते ॥६४॥
तापसास्तेऽन्यदा नाथे प्ररूढप्रौढमत्सराः ।
गत्वा कुलपतेः पार्श्वे सोपालंभमदोऽवदन् ॥६५॥

आश्रमे श्रमणः कोऽयमानीतो निर्ममस्त्वया ।
उटजस्यापि नाशोऽभूद्यदस्मिन्निह तस्थुषि ॥६६॥

अकृतज्ञ उदासीनो निर्दाक्षिण्योऽलसश्च सः ।
गोभ्योऽपि रक्षति न यः खाद्यमानं स्वमाश्रमम् ॥६७॥

मुनिमन्योऽथवा नैषगा रक्षति समत्वभूत् ।
गुरुदेवार्चकास्तत्किं वयं न मुनयो मुने ॥६८॥

ततः कुलपतिरगादुपनाथं ददर्श च ।
कृत्तपक्षं खगमिव छदिर्वर्जितमाश्रमम् ॥६९॥

निर्मत्सराः सत्यगिरिस्तापसा इति चिन्तयन् ।
स नाथमूचे किं तात ! त्रातोऽयं नोटजस्त्वया ॥७०॥

त्वत्पित्रा रक्षिता सर्वे यावज्जीवं किलाश्रमाः ।
दुष्टशासनरूपं हि तवापि व्रतमर्हति ॥ ७१ ॥

आत्मानमिव रक्षन्तिस्वनीडं जा अपि ।
विवेकिना त्वया हन्त किमाश्रम उपेक्षितः ॥ ७२ ॥

स्वविविक्तोचितां शिक्षां स दत्त्वा जीर्णतापसः ।
स्वमाश्रमं ययौ भूयः स्मरन् सिद्धार्थसौहृदम् ॥ ७३ ॥

दध्यौ चैवं विभुरेषामप्रीतिर्मन्निबंधना ।
तदत्र स्थातुमुचित न मे सर्वहितैषिणः ॥ ७४ ॥

एवं च चिन्तयन् स्वामी वैराग्यमधिकं दधत् ।
अभिग्रहानिमान् पंच जग्राह करुणानिधिः ॥ ७५ ॥

× × ×

अभिग्रहान् गृहीत्वामूनर्धमासादनन्तरम् ।
ग्रामं नाम्नाऽस्थिकग्रामं ययौ प्रावृष्यपि प्रभुः ॥ ७८ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ४६ से ७८

अन्यदा भगवान् महावीर विहार करते हुए मोराक नामक ग्राम के निकट आये, वहाँ दूइज्जतक जाति के तापस रहते थे। उन तापसों के कुलपति भगवान के पिता के मित्र थे। वे भगवान के पास आये। पूर्व के अभ्यास के कारण भगवान उनसे मिलने के लिए हाथ प्रसारण किया। कुलपति ने यहाँ रहने के लिए प्रार्थना की फलस्वरूप सिद्धार्थ राजा के पुत्र भगवान ने एक रात्रि की प्रतिमा वहाँ की।

प्रातःकाल विहार करने की इच्छा होने पर भी कुलपति ने प्रार्थना कि इस एकान्त स्थान मे वर्षाकाल निर्गमन —व्यतीत करने के लिए पधारिये।

भगवान राग रहित होने पर भी उसके आग्रह से उसके वचन को स्वीकार कर शंख की तरह निरंजन वहाँ से अन्यत्र विहार कर दिया। वायु की तरह अप्रतिबन्ध, कमल पत्र की तरह निर्लेप भगवान सर्वत्र विहरण करते हुए ग्रीष्मकाल निर्गमन किया।

तत्पश्चात् स्वयं के पिता के मित्र कुलपति को पूर्व मे कथित वचन को याद कर चतुर्मास करने के लिए मोराकग्राम वापस पधारे।

वर्षाऋतु मे मेघ गर्जना की, धारागृह की तरह अखण्ड धारा बरसने लगी। हंस की तरह मुसाफिर अपने-अपने स्थान जाने लगे। इस समय पूर्वोक्त कुलपति भगवान के साथ भ्रातृत्व का स्नेह सम्बन्ध हृदय मे चिंतन कर तृण से आच्छादित किया हुआ एक गृह भगवान को वास करने के लिए अर्पित किया। उस गृह मे जटावान् वृक्ष की तरह जानुपर्यन्त लम्बी भुजा वाले भगवान मन को नियन्त्रित कर प्रतिमा मे रहे। उस समय भीष्म ग्रीष्म ऋतु के माहात्म्य से वन मे स्थित तृण सुक गये; उस वन मे नवीन वर्षा ऋतु से नवीन तृण उग गये।

चूँकि तृण का अभाव होने से ग्राम की गायें तापसों की झोंपड़ी के तृण खाने के लिए दौड़ने लगी। फलस्वरूप निर्दय तापस यष्टि के द्वारा गायों को मारने लगे। डर के कारण गायें भगवान जहाँ रहते थे वहाँ आकर खाने लगी। भगवान स्तम्भ की तरह स्थिर थे अतः भगवान को किसी का भी भय नही था। उनमे से कई तापस भगवान के ऊपर क्रोध कर अन्दर ही अन्दर कहने लगे —जैसे हम अपनी झोंपड़ी की रक्षा करते हैं वैसे यह मुनि झोंपड़ी की रक्षा नहीं करता है - अहो! इस कुलपति का अतिथि कौन है उसके देखते-देखते गाय उस झोपड़ी को खा रही है—अहो! यह कैसा स्वार्थपन है। क्या किया जाय। यह अतिथि कुलपति को आत्मा की तरह प्रिय है उसके भय के कारण हम में से कोई भी उसे कठोर वचन नहीं बोल सकता है।

एकदिन मौका देखकर तापसगण भगवान के ऊपर बहुत मत्सरभाव धारणकर कुलपति के पास गये। उपालम्भ देते हुए कुलपति को बोले कि हे कुलपति! अपने आश्रम मे अपन किस ममता रहित अतिथि को लाये है जिसके कारण अपनी झोपड़ी नाश हो गई। वह अतिथि अकृतज्ञ, उदास, दाक्षिण्य रहित और आलसी हैं, गायें झोपड़ी को खा रही है तो भी आश्रम का रक्षण नहीं करता है।

हे मुनि! कदाचित् स्वय की आत्मा को मुनि मानने वाला यह अतिथि समता धारण करके यदि गाय को घास खाने पर नहीं हाँकता है तो क्या गुरुदेव का अर्चन करने वाले हम

मुनि नहीं है। तापसों के वचनों को सुनकर कुलपति भगवान के पास आया। पाँस आये हुए पक्षी की तरह आश्रम को आच्छादन रहित देखा और महसूस किया कि वास्तव में तापस ईर्ष्यारहित सत्य बोले थे।

तत्पश्चात् भगवान को बोला कि हे तात ! तुमने इस झोपड़े की रक्षा क्यों नहीं की—तुम्हारे पिताने तो जीवन-पर्यन्त सर्व आश्रमों की रक्षा की। दुष्टोंको शिक्षा देना—यह तुम्हारा योग्य व्रत है। पक्षी भी स्वयं के नीड का आत्मा की तरह रक्षण करते है लेकिन तुम विवेकवान् थे फिर आश्रम की रक्षा की उपेक्षा क्यों की।

इस प्रकार स्वयंके विवेक से योग्य शिक्षा देकर वह वृद्ध तापस सिद्धार्थ की मित्रता को याद करता हुआ पुनः स्वयं के आश्रम में गया।

इधर भगवानने विचार किया कि मेरे कारण से सबको अप्रीति होगी। सर्वजीवों के हितचिंतक भगवानने यहां रहना उचित नहीं समझा। इस प्रकार चिंतन करते हुए, वैराग्य को धारण करने वाले, पाँच अभिग्रह धारणकर वर्षाऋतु के अर्धमास व्यतीत होने के बाद वहाँ से विहारकर अस्थिक नाम ग्राम में पधारे।

•५ स्वातिदत्त

ततो सामी चंपं नगरिं गतो, तत्थ सादिदत्तमाहणस्स अग्गिहोत्तवसहिं उवगतो, तत्थ चाउम्मासं खमति, तत्थ पुण्णभद्दमाणिभद्दा दुवे जक्खा रत्तिं पज्जुवासंति, चत्तारिविमासे रत्तिं रत्तिं पूयं करेंति, ताहे सो माहणो चितेति—किं एस जाणति तो णं देवा महेंति, ? ताहे विन्नाणणनिमित्तं पुच्छति कोह्यात्मा ! भगवानाहयोऽहमित्यभिमन्यते, स कीदृक् ? सूक्ष्मोऽसौ, किं तत्सूक्ष्मं ? यन्न गृह्णीमः ननु शब्दगंधानिलाः किम् ! न, ते इन्द्रियग्राह्याः ते ग्रहणमात्मा ननु ग्राहयिता हि सः।

—आ० चू० पूर्वभाग पृ० ३२०-३२१।

भगवान् महावीर ने साधना कालका बारहवाँ चतुर्मास चम्पामें बिताया। वे स्वातिदत्त ब्राह्मण की अग्निहोत्रकी शाला में रहे। वहाँ पूर्णभद्र और मणिभद्र दो यक्षदेव आये थे। चारमास भगवान की सेवा की—एकदिन स्वादिदत्त ने पूछा—

भंते ! आत्मा क्या है ?

जो अहं (मैं) का अनुभव है, वही आत्मा है।

भंते यह कैसा ?

सूक्ष्म है।

भंते ! सूक्ष्म का क्या अर्थ है।

जो इन्द्रियों द्वारा गृहीत नहीं होता।

·६ आनंद श्रावक

(श्रावस्ती के दशवें वर्षावास के पहले)

(क) मलय टीका—ततो भयवं वाणियगामं गतो, तस्स बाहिं पडिमं ठितो, तत्थ आणंदो नाम समणोवासगो छट्ठंछट्ठेण आयावेइ, तस्स ओहिन्नाणं समुप्पन्नं जाव तित्थयरं, पेच्छइ णमंसंति वंदइ, भणति य—अहो सामीणा परीसहा अहियासिज्जं ति ?, वागरेति य जहा एच्चिरेण कालेण, तुब्भं केवलणाणमुप्पजिहिइ, तहा पूएइय × × × ।

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० ३००

वाणियगामायावण आणंदोही परीसहसहित्ति ।

—आव० नि गा ४९५

टीका—वणिग्गामे आतापनमानन्दस्य, ततोऽवधिज्ञानं, तेन च स्वामिनं प्रेक्ष्योक्तवान्—अहो भगवान् परीषहसह इति ।

(ख) अथ वाणिजकग्रामं जगाम भगवानपि ।
बहिश्च धर्मध्यानस्थस्तत्राऽस्थात् प्रतिमाधरः ॥१४३॥
तदाषष्ठतपास्तत्र नित्यमातापनापरः ।
आनंदश्रावको जातावधिः प्रभुमवन्दत ॥१४४॥
स प्राञ्जलिर्बभाषे च भगवन्नतिदुस्सहान् ।
परीषहानसहिष्ठा उपसर्गांश्च दारुणान् ॥१४५॥
वज्रसारं शरीरं ते वज्रसारं च ते मनः ।
परीषहोपसर्गैरप्येभिर्यद् भज्यते न हि ॥१४६॥
इदानीं केवलज्ञानमासन्नं वर्तते प्रभो ! ।
इत्युदित्वा प्रभुं भूयो नत्वाऽऽनन्दो ययौ गृहम् ॥१४७॥

त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४

वैशालीसे भगवान गण्डकी नदी नौकासे पार की। तत्पश्चात् वाणिज्यग्राम पधारे। वहाँ नगरके बाहर धर्मध्यान मे स्थित हो गये। वहाँ आनन्दनामक श्रावक रहता था। वह छट्ठतप-बेले की तपस्या करता था और आतापना लेता था। उसको अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। भगवान को वंदनार्थ गया। वदना कर अंजलि जोड़कर बोला —"हे भगवान् ! आपने दुःसह परिषह और दारुण उपसर्ग सहन किया है। आपका मन और शरीर वज्र की

तरह कठिन है। आप परीषह और उपसर्ग में अडिग रहे हैं। आपको केवलज्ञानकी प्राप्ति नजदीक है। ऐसा कहकर फिर भगवानको वदनकर आनन्द श्रावक अपने घर चला गया।

नोट—इसके बाद विहार कर भगवान चतुर्मासार्थ श्रावस्ती नगरी पधारे थे।

.४५ साधनाकाल के ज्ञान

·१ कर्म और कर्मबंध के कारण का ज्ञान

(१) दुविहं समिच्च मेहावी, किरियमक्खायणे लिसि णाणीं।
आयाण-सोयमतिवाय-सोयं, जोगं च सव्वसो णच्चा ॥
—आय० श्रु १। अ ६। उ १। गा १६। पृ० ७३

टीका—किंच दुविहं इत्यादि द्वे विधे प्रकारावस्येति द्विविधं किं तत्कर्म्म तच्चेर्याप्रत्यय सांपरायिकञ्च तद्विविधमपि समेत्य ज्ञात्वा मेधावी सर्वभावज्ञः क्रियां संयमानुष्ठानरूपां कर्म्मोच्छेत्रीमनीदृशीमनन्य सदृशीमाख्यातवान् किं भूतो ज्ञानी केवलज्ञानवानित्यर्थः किं वा परमाख्यातवानितिदर्शयति।

दो प्रकार के (ईर्याप्रत्यय और सांपरायिक कर्मों को) जानकर तथा कर्मोंके आनेके स्रोत—असयम अर्थात् असयम और अतिपात स्रोत (हिंसादि पापों) को एव योग को पूर्ण रूप से जानकर मेधावी ज्ञानी केवल ज्ञानी भगवान ने अनन्य सदृश—अनुपम क्रिया—(सयमरूप क्रिया) का कथन किया था। इसका भगवान को ज्ञान था।

(ख) अइवातियं अणाउट्टे, संयमण्णेसि अकरणयाए ॥
—आया० श्रु १। अ ६। उ १। गा १७। पूर्वार्ध पृ० ७३

टीका—किंच अइवात्तिए इत्यादि आकुटिर्हिंसानाकुट्टिरनाकुट्टिरहिं सेत्यर्थः, किंभूतामतिक्रांता पातकादतिपातिकां निर्दोषां तामासृत्य स्वतोऽन्येषां वा करणतया व्यापारस्तया प्रवृत्त इति।

भगवान् ने पापमय व्यापार सर्वथा त्याग दिया और दूसरोंको भी न करने को समझाया।

(ग) जस्सित्थिओ परिण्णाया, सव्वकम्मावहाओ से अदक्खू।
—आया० श्रु १। अ ६। उ १। गा १७ उत्तरार्ध। पृ० ७३

टीका—तथा यस्य स्त्रियः स्वरूपतस्तद्विपाकश्च परिज्ञाता भवन्ति सर्वं कर्म्मा वहन्तीति सर्वकम्मवहाः सर्वथा पापादानभूताः स एवा द्राक्षीस्स एव

यथावस्थित संसारस्वभावं ज्ञातवानिति एतदुक्तं भवति। स्त्रीस्वभावपरिज्ञानेन तत्परिहारेण च स भगवान् परमार्थदृश्यभूदिति।

भगवान ने स्त्रियोंको समस्त कर्मों का मूल जाना और प्रत्याख्यान परिज्ञा से त्याग दिया। अतः भगवान परमार्थदर्शी थे।

·२ शालिशीर्ष ग्राम में लोकप्रमाण अवधिज्ञान समुत्पन्न

(क) छट्ठेण सालिसीसे विसुज्झमाणस्स लोगोही।

तदन्तरं भगवान् शालिनीशीर्षं नाम ग्रामं गतवान्, तत्रोद्याने प्रतिमा-प्रपन्नस्य कटपूतनाव्यन्तरी तापसीरूपं विकुर्वित्वा शीतोपसर्गं कृतवती, अवसाने च रात्रेस्तस्या उपशमो बभूव, स्तुतिंचाकार्षीत्, तदानीं च षष्ठेन—दिनद्वयोपवासेन तिष्ठतस्तीव्रवेदनामधिसहमानस्य शुभैरध्यवसायैर्विशुद्धयमानस्य लोकप्रमाणोऽवधिरभूत्।

—आव० नि गा ४८६। मलय टीका

(ख) भर्तुः शीतोपसर्गं तं सहमानस्य तां निशाम्।
विशेषात् कर्मक्षपणं धर्मध्यानमदीप्यत॥
बभूवचावधिज्ञानं श्रीवीरस्वामिनोऽधिकम्।
अनुत्तरस्थितस्येव सर्वलोकावलोकनम्॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३। श्लोक ६२१-२२

(ग) ××× तत्तो सामी सालिसीसयं गामो तहिंगतो ×××। भगवतो ओही विगसिओ सव्वं लोगं पासितु मारद्धो।×××।

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० २९२। २९३

शालिशीर्ष ग्राम मे कटपूतना व्यतरी ने तापसो रूप धारणकर भगवान को शीतोपसर्ग किया। रात्रिमें शीतोपसर्ग को सहन करने से भगवान ने बहुत कर्म का क्षपण किया। अनुत्तरविमानवासी देव को सर्वलोक प्रमाण अवधि ज्ञान होता है वैसा भगवान को शुभाध्यवसाय से, धर्मध्यानमे स्थित सर्वलोक प्रमाण अवधिज्ञान समुत्पन्न हुआ।

.४६ भगवान के परीषह-उपसर्ग

.१ कर्मारग्राम में गोपोपसर्ग

(क) बहिया य नायसंडे आपुच्छित्ताणं णायए सव्वे।
दिवसे मुहुत्तसेसे कमारगामं समणुपत्तो ॥१११॥ भाष्य

टीका—बहिः कुंडपुरात् ज्ञातखण्डे उद्याने आपृच्छ्य ज्ञातृकान् सर्वान् यथासन्निहितान् तस्मान्निर्गतः, कर्मारग्राम गमनायेति वाक्यशेषः, तत्र च पथद्वयम्—एको जलेनापरः पाल्या, तत्र च भगवान् पाल्या गतवान्, गच्छंश्चदिवसे मुहुर्त्तशेषे कर्मारग्रामनुप्राप्तः, तत्र च प्रतिमायां स्थितः। ××× तत्थ जया भगवं कम्मारगामबाहिं पडिमं ठितो तया एगो गोवो दिवसं बइल्ले बाहित्ता गामसमीवं पत्तो ; ताहे चितइ—एएगामसमीवे चरंतु, अहंपि ता गावीतो दुहामि, ततोऽसौ जाव गामस्स मज्झे पविसित्ता गावीतो दुहइ ताव ते बइल्ला चरंता अडविं पविट्ठा, सो गोवो गामातो निग्गतो बइल्ले न पेच्छइ, ततो सामिं पुच्छइ—कहिं बइल्ला ?, सामी तुण्हिक्को अच्छइ, सो चितइ—एस न याणइ, ताहे मग्गिउं पयत्तो, सव्वरत्तिंपि ते बइल्ला सुचिरं भमित्ता गामसमीवमागया माणूसं दट्ठूणं रोमंथंतः अच्छंति, ताहे सो आगतो, ते बइल्ले तत्थेव निविट्ठे पेच्छइ, ताहे आसुरुत्तो, एएण दामएण आहणामि, एएण मम बइल्ला हरिया, पभाए घेत्तूण वच्चीहामित्ति, ताहे सक्को देवराया चिंतेइ, किं अज्ज सामी पढमदिवसे करेइ ? जाव पेच्छइ तं गोवं धावंतं, ताहे सो तेण थंभिओ, पच्छा आगतो तं तज्जेइ—दुरप्पा ! न याणसि सिद्धत्थरायपुत्तो एस पव्वइतो, एयंमि अंतरे सिद्धत्थो सामिस्स माउस्सियापुत्तो बालतवोकम्मेण वाणमंतरो जातो।

—आव० मूल भाष्य गा १११। टीका

(ख) तएणं सामी अहासंनिहिए सव्वे नायए आपुच्छित्ता णायसंडबहिया चउब्भागऽवसेसाए पोरुसीए कम्मारगामं पहावितो, ××× तत्थ एगो गोवो सो दिवसं बइल्ले बाहेत्ता गामसमीवं पत्तो, ××× ताहे सो आगतो पेच्छति तत्थेव निविट्ठे, ताहे आसुरुत्तो, एतेण दामएणं हणामि, एतेण मम चोरित्ता, एते बइल्ला, पभाए घेत्तुं वच्चीहामि।

—आ० चू० पूर्वभाग पृ० २६८-२७०

(ग) ततश्च त्रिजगन्नाथः सोदर्यं नंदिवर्धनम्।
आपप्रच्छेऽन्यतो गन्तुं ज्ञातवंश्यान् परानपि ॥१॥
चारित्ररथमारूढं विहारप्रस्थितं प्रभुम्।

× × ×

ईर्यासमितिमान् सायं कूर्मारग्राममासदत् ॥१५॥
नासाग्रन्यस्तनयनः प्रलंबितभुजद्वयः।
प्रभुः प्रतिमया तत्रतस्थौ स्थाणुरिवस्थिरः॥
तदा च गोपः कोऽप्येको वाहयित्वा दिनं वृषान्।
ग्रामसीमन्युपस्वामि प्राप्त एवमचिंतयत्॥
अत्रैव मे चरन्त्वेते वृषभा ग्रामसीमनि।
अहंकरिष्ये ग्रामान्तर्गत्वा दोहं पुनर्गवाम्।
ध्यात्वैवं सोऽविशद्‌ग्रामं चरन्तस्तद्‌वृषा पुनः।
अटवीं विविशुर्गोपंविना तिष्ठन्ति ते न हि।
सग्रामात्त्वागतो गोपो मम क्व वृषभा इति।
पप्रच्छ स्वामिनं स्वाम्यप्यवोचन्न हि किंचन ॥२०॥
तूष्णीके तु प्रभौ नैष किंचिद्वेत्तीति चिन्तयन्।
तक्षणे मृगयमाणः स्वान् गोपोऽतीयाय तां निशाम् ॥२१॥
भ्रान्त्वा तेऽपि बलीवर्दाः पुनरेयुरुपप्रभुः।
निषद्यतस्थू रोमन्थायमानाः स्वस्थचेतसः ॥२२॥
भ्रान्त्वा सोऽप्यागतो गोपो वृषान् दृष्ट्वेत्यचिंतयत्
प्रभाते नेतुकामेन नूनं गावोऽमुना हृताः ॥२३॥
एवं विचिन्त्य रभसा समुत्पाट्य च दामनीम्।
प्रभुं हन्तुमधाविष्ट सकोपो गोपपांसनः ॥२४॥
तदाचाचिन्तयच्छक्रः किं स्वामी प्रथमेऽहनि।
विदधातीत्यथापश्यत्तं गोपं हन्तुमुद्यतम् ॥२५॥
स्तम्भयित्वाथ तं शक्रस्तत्रैत्यैवमतर्जयत्।
किं नामुं वेत्सि रे पाप! सिद्धार्थनृपनंदनम् ॥२६॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लोक १,२ पूर्वार्ध, १५ से २६

भगवान महावीर ज्ञातखण्ड उद्यानमे दीक्षित हुए। तत्पश्चात् वहाँ से विहार कर

साथ कर्मारग्राम पधारे। वहाँ नासिकाके अग्रभाग पर नेत्र को आरोपित कर दोनों भुजाएँ लम्बीकर भगवान स्थाणु की तरह प्रतिमा धारण कर स्थित हो गये।

उस समय एक गोप-ग्वाला दिन भर वृषम को हाँककर ग्रामके समीप आया-वहाँ भगवान को कायोत्सर्ग में खडे देखकर चिंतन किया।

यहाँ मेरे वृषभ ग्राम की सीमापर चलते रहेंगे—मैं ग्राममें जाकर गायोंका दुहनकर वापस आजाऊँगा। यह चिंतनकर वह ग्राममें गया—इधर वृषभ चरते-चरते किसी अटवी में बेठ गये क्योंकि ग्वाले के बिना वे किसी एक स्थानमें नहीं ठहर सकते थे। बाद में गोप ग्रामसे आया और भगवान को पूछा कि मेरे वृषम कहाँ है? प्रतिमाधारी भगवान एक शब्द भी नहीं बोले। तब भगवान बोले नहीं तब ग्वाले ने विचार किया कि यह कुछ नहीं जानता है।

इसके बाद वह अपने बैलोंको खोजने के लिए गया। खोजते-खोजते सारी रात्रि समाप्त होगई। वे बैल फिरते-फिरते जहाँ भगवान थे वहाँ आये। स्वरस से, रोमांचित होकर वे बैल प्रभुके पास बेठें। भ्रमण करता हुआ वह गोप भी वहाँ आया और बैलों को वहाँ देखा।

आसुरत्त होकर गोपने विचार किया कि इस मुनिने प्रभात में हमारे बैलों को ले जाने की इच्छा से उस समय बैलोंको भगा दिया था। इसीने बैलों का हनन किया है। यह विचारकर अधम गोप वेग से बैलोंकी रास-रस्सी उपाडकर भगवानको मारने के लिए दौड़ा।

इधर शक्रेन्द्र ने विचार किया कि भगवान प्रथम दिवस में क्या करते है। ज्ञान से देखा कि एक गोप भगवान को मारने केलिए दौड़ा है। स्तम्भित कर—इन्द्र भगवान के पास आया और तिरस्कार पूर्वक उस गोप को बोला कि रेपापी। क्या तुम जानते हो कि ये सिद्धार्थराजा के पुत्र है।

इस अन्तरकालमें भगवान की मासी का पुत्र वाणव्यंतर देव में उत्पन्न सिद्धार्थ भी आया था।

यह भगवान को प्रथम वर्ष का परीषह -उपसर्ग है।

·२ दंशमशक परीषह

(क) चत्तारि साहिए मासे, बहवे पाण-जाइया आगम्म।
अभिरुज्झ कार्यं विहरिंसु, आरुसियाणं तत्थ हिंसिसु॥

—आया० श्रु १। अ ९। उ १। गा ३। पृ० ७२

टीका—×××। तथा भगवतः प्रव्रजतो ये दिव्याः सुगन्धिपटवासा आसंस्तद्गन्धाकृष्टाश्चभ्रमरादयः समागत्य शरीरमुपतापयंतीत्येतद्दर्शयितुमाह चत्तारि इत्यादिश्लोकः चतुरः साधिकान्मासान्बहवः प्राणिजातयोभ्रमरादिकाः समागत्यारुह्यचकायं शरीरं विजह्नः काये प्रविचारं चक्रुः तथा मांसशोणितार्थतया आरुह्य तत्रकायेगमितिवाक्यालंकारे जिंहिसुः इतश्चेतश्च विलुंपतिस्मेत्यर्थः। ×××।

(ख) स हि भगवं दिव्वेहिं गोसीसाइएहिं चंदणेहिं चुन्नेहि य वासेहिं य पुप्फेहिय वासितदेहोऽपि णिक्खमणाभिसेगेण य अभिसित्तो विसेसेणं इंदेहिं चंदणादिगंधेहिं वा वासितो, जओ तस्स पव्वइयस्सवि सओ चत्तारि साधिगे मासे तहा-वत्थो, णजाति, आगमनमग्गसित आरद्ध चत्तारि मासा सोदिव्वो गंधो न फिडितो जओ से सुरभिगंधेणं भमरा मधुकराय पाणजातीया बहवो आगमेंनि दूराओवि, पुप्फितेल्लोहकंदादिवणणंडे चइत्ता दिव्वेहिं गंधेहिं आगरिसिता××× तंआरुसित्ताणं तत्थ हिंसिसु।

—आया० चू० पृ० २९९

(ग) दीक्षाक्षणे च यच्चक्रे विभोर्देवैर्विलेपनम्।
भृंगास्तत्सौरभाकृष्टास्तमागत्योपदुद्रुवुः ॥४६॥
गन्धयुक्तिमयाचन्त ग्रामीणतरुणाः प्रभुम्।
अंगसंगं तरुण्यस्तु स्मरज्वरभरौषधम्॥४७॥
दीक्षादिनात् प्रभृत्येवं साग्रं मासचतुष्टयम्।
उपसर्गाञ्जगन्नाथः सेहे गिरिरिव स्थिरः॥४८॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३

दीक्षाग्रहण के पश्चात् इन्द्र प्रदत्त दिव्यवस्त्रको सुगन्ध से सुगन्धित द्रव्योंके विलेपन से आकर्षित होकर बहुतसे भ्रमरादि प्राणी भगवानके शरीर पर आरोहित होकर यत्र तत्र विहरण करते हुए मांस, शोणित आदि हेतु भगवान के शरीर को काटते थे। दीक्षा दिवस से यह दंश मशक परिषह साधिक चार मास तक चला।

·१ स्त्रीपरीषह

(क) सयणेहिं वितिमिस्सेहिं, इत्थिओ तत्थ से परिण्णाय।
सागारियं ण से सेवे, से सयं पवेसिया झाइ

—आया० श्रु १। अ ९। उ १। गा ६

जब कहीं भगवान को व्यतिमिश्रित यानी गृहस्थ और अन्यतीर्थियों से संयुक्त शय्या अर्थात् स्थान प्राप्त हो जाता और वहाँ पर स्त्रियाँ यदि मैथुनादि की प्रार्थना करतीं तो भगवान उन्हें जानकर यानी ज्ञपरिज्ञा से शुभ गति की बाधक समझ कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से उनका त्याग करते हुए मैथुन का सेवन नहीं करते थे। वे स्वयं अपनी आत्मा को वैराग्य मार्ग में प्रविष्ट करके धर्मध्यान-शुक्लध्यान ध्याते थे।

(ख) गढिए मिहुकहासु, समयम्मि णायसुए विसोए अदक्खू।
एयाइं से उरालाइं, गच्छइ णायपुत्ते असरणाए

आया० श्रु १। अ ९ उ १। गा १०

ज्ञातपुत्र भगवान महावीर स्वामी जब कभी परस्पर वार्तालाप में तल्लीन स्त्रियों को देखते थे तो उस समय में हर्ष रहित होकर मध्यस्थ रहते थे। इस प्रकार इस बड़े से बड़े अनुकूल और प्रतिकूल उपसर्गों का ख्याल न करते हुए ज्ञातपुत्र भगवान संयम मार्ग में गमन करते थे।

(ग) × × × तस्स पव्वइयस्सवि सत्तो चत्तारि साधिए मासे गंधोन फिडितो × × × तहा इत्थियातो वि भयवतो देहं सेयमलरहियं निस्सासमुगंधमुहं अच्छीणिय निसग्गेण चेव नीलुप्पलपलासोवमाणि दट्ठं बहुविहमणुलोमुवसग्गं करेंति।

—आव० नि गा १११ मूलभाष्य टीका

(घ) अंगसंगं तरुण्यस्तु स्मरज्वरभरौषधम्॥ ४५॥
दीक्षादिनात् प्रभृत्येवं साग्रं मासचतुष्टयम्॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३

(च) एवं इत्थियाओऽवितस्स भगवतो गातं रयस्सेदमलेहि विरहितं निस्सास-सुगंधं च मुहं अच्छीणिय निसग्गेणं चेव नीलुप्पलपलासोवमाणि बीयअंसुविरहि-यागि दट्ठु भगंतिसामि—कहिं तुब्भे वसहिंउवेह? पुच्छंति भणंति अन्नमन्नाणि।

—आव० चू० पूर्व भाग पृ० २९६

काम से पीड़ित स्त्रियां कामज्वर के औषध रूप भगवान के अंगसंग की याचना करती थी। यह अनुकूल परीषह—उपसर्ग है।

(छ) रीयं तं अच्छुतं वा पुच्छइ-तुब्भं किं जाइत्थिया सुन्दरी?, किं बंभणी खत्तियाणि वणिगी सुद्दीव? एवमादी मिहुकहा, ततो गच्छति, णातिवत्तएगेहहरिसे

भरते अदुट्ठे अणुलोमपडिलोमेसु, विसोगे विगतहरिसे, अदक्खित्ति दट्ठुं, एयाणि से उरालाणि एयागिन्ति जहाउद्दिट्ठाइं, अणुलोमाणि य उवसग्गाइं, उदाराणि उरालियाणि × × × णायपुत्ते असरणाए असरणं अचिंतणं अणाढायमाणंति।

—आया० चू० १०१

(ग) ताहे अवितित्ता कामाणं मेथुणसंपगिद्धाय मोहभरिया पइरिक्कं काऊण पत्तेयं-पत्तेयं मधुरेहि य सिंगारएहि य कलुणेहि य उवसग्गेहिं उवसग्गेउं पवत्ता यावि होत्था। ××× अम्हे अणाहा अवयक्खितुं तुज्झ चलणओवायकारिया गुणसंकर! अम्हे तुम्हे विहूणा ण समत्था जीवितुं खणंपि, किंवा तुज्झ इमेणं गुणसमुदएण? ××× एवं सप्पणयमधुराइ पुणो कलुणगाणि जंपमाणीओ सरभसउवगूहिताइं बिब्बोयविलसिताणि य विहसितसकडक्खदिट्ठणिस्ससितभणितउवललितललितथियमणपणयखिज्जियपसादिताणि य पकरेमाणीओवि जाहे न सक्का ताहेजामेव दिसं पाउब्भूया जाव पडिगता।

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० ३१०

एकबार तीन रूपसियां (ब्राह्मणी, क्षत्रियाणी, शूद्र) भगवान पर मोहित हो गयी। वे भगवान से कहने लगी—तुम्हारी स्त्री कौन है। ब्राह्मणी है या क्षत्रियाणी, वैश्या है या शूद्र अभी युवा हो इस यौवन को अरण्य पुरुष की तरह व्यर्थ क्यों गंवाते हो; तीनों के विलास हावभाव बढ गये। रतिक्रीडा के उपाय किये। फिर भी भगवान को विचलित नहीं कर सकी। जिस दिशा से आयी थी वापस चली गयी।

'४ अस्थिकग्राम में शूलपाणि यक्ष द्वारा भगवान को उपसर्ग

प्रथम वर्ष में

(क) × × × ज्ञातखंडवने मार्गशीर्षकृष्णदशम्यामेककः प्रव्रज्य मनःपर्यायज्ञानमुत्पाद्याष्टौ मासान् विहृत्य मयूरकाभिधानसन्निवेशबहिःस्थानां दूयमानाभिधानानां पाखण्डिकानां संबंधिन्येकस्मिन्नुटजे तदनुज्ञया वर्षावासमारभ्य अविधीयमनरक्षतया पशुभिरुपद्रुयमाणे उटजेऽप्रीतिकं कुर्वाणमाकलय्य कुटीरनायकमुनिकुमारकं ततोवर्षाणामर्द्धमासे गतेऽकाल एव निर्गत्यास्थिकग्रामाभिधानसन्निवेशाद् बहिः शूलपाणिनामकयक्षायतने शेषं वर्षावासमारेभे, तत्र च यदा रात्रौ शूलपाणिर्भगवतः क्षोभणाय झटिति टालिताट्टालकमट्टहासं मुञ्चन् शोकमुत्त्रासयामास तदा विनाश्यते स भगवान् देवेनेति भगवदालम्बनां जनस्याधृतिं जनितवान् पुनर्ह-

त्रिपिशाचनागरूपैर्भगवतः क्षोभं कर्त्तु मशक्नुवन् शिरःकर्णनासादन्तनखाक्षिपृष्ठि-वेदनाः प्राकृतपुरुषस्य प्रत्येकं प्राणापहारप्रवणाः सपदि सम्पादितवान् तथापि प्रचण्ड-पवनप्रहतसुरगिरिशिखरमिवाविचलद्भावं वर्द्धमानस्वामिनमवलोक्य श्रान्तः सन्नसौ जिनपतिपादपद्मवंदनपुरस्सरमाचचक्षे-क्षमस्व क्षमाश्रमण इति तथा सिद्धार्थाभिधानो व्यंतरदेवस्तन्निग्रहार्थमुद्धाव, बभाण च अरे रे शूलपाणे अप्रार्थितप्रार्थक हीनपुण्यचतुर्द्दशीकः श्रीह्रीधृतिकीर्त्तिवर्जितदुरन्तप्रान्तलक्षण। न जानासि सिद्धार्थराजपुत्रं पुत्रीयितनिखिलजगज्जीवं जीवितसममशेषसुरासुरनर-निकायनायकानामेनं च भवदपराधं यदि जानाति त्रिदशपतिस्तस्त्वां निर्विषयं करोतीति श्रुत्वा चासौ भीतो द्विगुणतरं क्षमयति स्म, तथा सिद्धार्थश्च तस्य धर्म्म-मचकथत् स चोपशान्तो भगवंतं भक्तिभरनिर्भरमानसो गीतनृत्तोपदर्शनपूर्वकमपूपुजत्, लोकश्च चिन्तयाञ्चकार—देवार्यकं विनाश्येदानीं देवः क्रीडतीति, स्वामी च देशोनांश्चतुरो यामानतीव तेन परितापितः × × ×

—ठाण० स्था १० । सु १०३ । टीका

(ख) ग्रामं नाम्नाऽस्थिकग्रामं ययौ प्रावृष्यपि प्रभुः ॥ ७८ ॥

तत्र चैकस्य यक्षस्य शूलपाणेर्निकेतने।
अधिवस्तुं जगन्नाथो ग्रामीणानन्वजिज्ञपत्
ऊचुर्ग्राम्या न यक्षोऽयं वस्तुं दत्तेऽत्र कस्यचित्।

× × ×

अत्रास्थिसंचयोऽस्तीति ग्रामोऽसावस्थिकाह्वयः।
तदाप्रभृति लोकेऽभूद्वर्धमानाऽभिधोऽपि सन् ॥ ११३ ॥

श्रान्ताः कार्पटिका रात्रौ वसन्त्यायतनेऽत्र ये।
तद्रात्रावेव तान् हन्ति शूलपाणिः कृतान्तवत् ॥ ११४॥

स्थित्वा लोको दिनेऽत्रेन्द्रशर्मा चतदर्चकः
सायं स्वसदने याति तद्वस्तुं तेऽत्र नोचितम्। ॥११५॥

इत्युक्त्वा ते पृथगपि स्वामिने वसतिं ददुः।
प्रतीयेष न तु स्वामी यक्षौकस्तस्त्वयाचत ॥११६॥

अथ ग्राम्यैरनुज्ञातो बोधार्हं व्यंतरं विदन्।
तदायतनैककोणे तस्थौ प्रतिमया प्रभुः ॥११७॥

सायं कृत्वा धूपवेलामिन्द्रशर्मा तदर्चकः।
निःसार्य पथिकान् सर्वान् भगवन्तमदोऽवदत् ॥११८॥
अयि देवार्य! निर्याहि त्वमप्यायतनादतः।
अयं हि व्यन्तरः क्रूरो भावी ते निशि मृत्यवे ॥११९॥
तस्थौ च स्वामी तूष्णीको व्यंतरः सोऽप्यचिन्तयत् ॥
अहो मुमूर्षुः कोऽप्येष ममायतनमागमत् ।।१२०॥
ग्रामेण वार्यमाणोऽपि मुहुर्मत्पूजकेन च।
दृप्तः कोऽयमिहावात्सीद्दर्पमस्य हरामि तत् ॥१२१॥
देवार्यके ततो यातेऽस्तमिते च दिवाकरे।
कायोत्सर्गस्थिते नाथेऽट्टहासं व्यंतरोऽकरोत् ॥१२२॥
पुस्फोटेव नभोभांडं तुत्रोटेवोडुमंडलम्।
तेनाट्टहासशब्देनातिरौद्रेणप्रसर्पता ॥१२३॥
ग्रामलोकोऽपि तं शब्दं श्रुत्वावोचत्परस्परम्।
नूनं देवार्यकः सोऽद्य व्यन्तरेण निहन्यते ॥१२४॥
नाम्ना तत्रोत्पलः पार्श्वतीर्थसाधुवरस्तदाः
परिव्राडष्टांगमहानिमित्तज्ञानपंडितः ॥१२५॥
लोकाद्देवार्यवृत्तान्तं श्रुत्वाऽधाद्धृतिं हृदि।
अपश्चिमस्तीर्थकरो मास्म भूदिति शंकया ॥१२६॥
अट्टहासस्वरेणापि न चुक्षोभ यदा प्रभुः।
हस्तिरूपं महाघोरं व्यंतरो विचकार सः ॥१२७॥
स्वामिना हस्तिरूपे चावज्ञाते सति निर्ममे।
पिशाचरूपं सोऽप्युच्चैं रोदसीमानदंडवत् ॥१२८।
तेनाप्यक्षुभिते नाथे सर्परूपं भयंकरम्।
विचकार स दुष्टात्मा यमपाशायुधोपमम्।
प्रभुं ससर्पो दर्पान्धो भोगेनावेष्टयद्दृढम्
ददंश दशनैर्गाढिममोघविषनिर्भरः ॥१३०॥
चक्रे सर्पे सुधाभूते भूतराट् सप्तवेदनाः।
शिरोनेत्रश्रवोनासादन्तपृष्ठनखे प्रभोः ॥१३१॥
एकापि वेदना मृत्युकारणं प्राकृते नरे।
अधिसेहे तु ताः स्वामी सप्तापि युगपद्भवाः।

कृत्वा कृत्वेत्युपसर्गान्निर्विण्णो व्यन्तरः स तु ॥
नत्वा विज्ञपयामास प्रभुमेवं कृताञ्जलिः
मया दुरात्मना नाथ ! तव शक्तिमजानता ।
नितान्तमपराद्धं यत्तत्क्षमस्व दयानिधे ॥१३४॥
तदा च सिद्धार्थसुरः स्वकार्यव्यग्रमानसः ।
स्वामिसान्निध्यविषयमस्मार्षीच्छक्रशासनम् ॥१३५॥
साटोपमेत्य चेत्थूचे शूलपाणे ! सुराधम !
अप्रार्थितप्रार्थक ! भोः ! किमेतद्भवता कृतम् ॥१३६॥
तीर्थकरं भगवन्तं सिद्धार्थनृपनन्दनम् ।
जगत्त्रयस्यापि पूज्यं किं न जानासि दुर्मते ! ॥१३७॥
यदि त्वच्चरितं शक्रः स्वामिभक्तोऽद्य वेत्स्यति ।
तदा तत्कुलिशधाराक्षोदपात्री भविष्यसि ॥
शूलपाणिस्ततो भीत्या पश्चात्तापेन चाकुलः ।
पुनरक्षमयन्नाथं नान्यदौपयिकं तदा ॥१३९॥
तं प्रशान्तं च सिद्धार्थः सानुकंपोऽभ्यधादिदम् ।
अहो तत्त्वानभिज्ञोऽसि शृणु तत्त्वं यथातथम् ॥१४०॥
वीतरागे देवबुद्धिर्गुरुबुद्धिश्च साधुषु ।
धर्मे जिनोदिते धर्मबुद्धिरित्यात्मसात् कुरु ॥१४१॥
प्राणिष्वतः परं पीडां मा कार्षीरात्मनीव भोः ।
निन्देर्गर्हेश्च सर्वाणि पूर्वदुश्चरितानि च ॥
अप्येकदाऽऽचरितस्य हन्त तीव्रस्य कर्मणः ।
कोटीकोटिगुणं दुःखविपाकं जन्तुरश्नुते ॥
शूलपाणिस्तदाकर्ण्यानेकप्राणिक्षयंकृतम् ।
स्मरन्मुहुर्निनिन्द स्वं पश्चात्तापाधिवासितः ॥
सम्यक्त्वभृद्भवोद्विग्नः सोऽर्चित्वा चरणौ प्रभोः ।
आगोमलक्षालनाभः संगीतमुपचक्रमे ।
तद्गीतशब्दमाकर्ण्य ग्राम्या एवमचिन्तयन् ।
मन्ये व्यापाद्य देवार्यं देवः क्रीडति संप्रति ॥१४६॥

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ७८,७९, ११३ से १४६

(ग) मलय टीका—× × × तत्र (दूइज्जंतगगामं) भगवान् अर्द्धमासं स्थित्वा ततो पच्छा अट्ठियगामं गतो, तस्सपुण अट्ठियगामस्स पढमं वद्धमाणयमिति नाम होत्था। सोय किह अट्ठियगामो जातो ? भण्णइ— × × × तत्थेव गामे अणुज्जाणे सूलपाणी जक्खो उप्पणो, उववन्तो पासइ तंबलहसरीरं ताहे रुसितो मारिंविउव्वइ, सो गामो मरिउमारद्धो, × × × तत्थ इंदसम्मो नाम पडियरगो कओ, ताहे लोओ पंथिगाई पेच्छति पंडरट्ठियं गामं देवकुलं च, ताहे अन्नं पुच्छंति—कयरातो गामातो आगया ?, भणंति, अत्थताणि अट्ठियाणि, एवं सो अट्ठियग्गामो जातो, तत्थपुण वाणमंतरघरे जो रत्तिं परिवसइ, सो तेण सूलपाणिणा वाहित्ता पच्छा रत्तिं मारिज्जइ, ताहे तत्थ दिवसं लोगो अच्छइ, पच्छा अन्नत्थ गच्छइ, इंदसम्मोऽवि धूवंदीवगं च दाउं दिवसतो जाति, इतो य तत्थ सामी आगतो दूइज्जंतगाण पासातो, तत्थ य सव्व लोगो पिंडितो अच्छइ, सामिणा देवकुलितो अणुण्णवितो, सो भणइ — गामो जाणइ, सामिणा गामो मिलितो चेव अणुन्नवितो, गामो भणइ, एत्थ न सक्का वसिउं, सामी भणइ—तुब्भे ताव अणुजाणह, ते भणंति—ठाह—तत्थेक्केक्को वसहिं देइ, सामी नेच्छइ, जाणइ सो संबुज्झिहिइ, ततो गंतो एगे कूणे पडिमं ठितो, ताहे सो इंदसमो चिट्ठंते चेव सूरे धुवपुप्फं दाऊण कप्पडियकरोडिया सव्वे पलोइत्ता भणति—जाह, मा विणस्सह, तंपि देवज्जगं भणइ—तुब्भेवि नीह, मा मरिज्जिहिह भयवं तुसिणीतो चिट्ठइ, ताहे सो वंतरो चिंतेइ—देवकुलिएणय गा मेग य भन्नंतोऽवि ण जाइ पेच्छ जे से करेमि, ताहे संझाए भीमं अट्टट्टहासं मुयंतो बीहावेइ × × ×।

"धणदेव सूलपाणिंदसम्म वासऽट्ठिग्गामे।

—आव० नि गा ४६३। उत्तरार्ध।

मलय टीका—× × × पश्चादस्थिग्राम संज्ञामित्थं प्राप्तः, तत्र हि वेगवती नामनदी, तां धनदेवाभिधः सार्थवाहः प्रधानगवानेकशकटसहितः समुत्तीर्णः। तस्य च गोरनेकशकटसमुत्तारणतो हृदयच्छेदो बभूव, सार्थवाहस्तं, तत्रैव परित्यज्य गतः सवर्द्धमाननिवासिलोकाप्रतिजागरितो मृत्वा तत्रैव शूलपाणिनामा यक्षो बभूव, दृष्टभयलोककारितायतने स प्रतिष्ठितः, इन्द्रशर्मनामा प्रतिजागरिको निरूपित इत्यक्षरार्थः॥ कथानकशेषम्।

जाहे सो अट्टट्टहासाइणा भयवंतं खोभेउं पयत्तो ताहे सव्वो लोओ सद्दं सोऊण भीतो, अज्जं सो देवज्जओ मारिज्जइ, तत्थ उप्पलो नाम पुराणो

पासावच्चिज्जो परिव्वायओ अट्ठंगमहानिमित्तजाणगो जणपासाओ सोऊण मा तित्थगरो होज्जा, अद्धिइं करेइ, बीभेइ य रत्ति गंतुं, ताहे सो वाणमंतरो आहे सद्देण न बीहेइ ताहे हत्थिरूवेणुवसग्गं करेइ, पिसायरूवेण नागरूवेण य, एएहिवि जाहे न तरइ खोमेउं ताहे सत्तविहं वेयणं उदीरेइ, तंजहा—सीसवेयणं नासवेयणं दंतवेयणं दंण्णवेयणं अच्छिवेयणं नहवेयणं पिट्ठिवेयणं, एक्केक्का वेयणा पागयजणस्स जीवियं संकामिउं समत्था, किं पुण सत्तवि समेयातो ?, तातो भयवं उज्जलातो अहियासेइ, ताहे सो देवो जाहेन तरइ चालेउं ताहे परिस्संतो पायवडितो खामेइ—खमह भट्टारगा इति, ताहे सिद्धत्थोकुतोवि आगतो उद्धाइतो भणति—हं भो ! सूलपाणी अपत्थिय-पत्थया न याणसि सिद्धत्थरायपुत्तं भयवं तित्थयरं, जइ एयं सक्को जाणइ तो तुमं निव्विसयं करेइ, ताहे सो भीतो दुगुणं खामेइ, सिद्धत्थो से धम्मं कहेइ, तत्थ उवसंतो महिमं करेइ साम्मिस्स, तत्थ लोगो चिंतेइ—सो तं देवज्जयं मारित्ता इयाणिं कीलइ, तत्थ सामी देसूणे चत्तारि जामे अतीव परितावितो पभायकाले मुहुत्तमेत्तं निद्दापमायंगतो, तत्थिमे दस महासुमिणे पासइ × × × ।

—आव० निगा ४६१, ४६३ । टीका । पृ० २६८ से २७०

(घ) रुद्दा सत्त वेयण थुइ दस सुमिणुप्पलऽद्धमासे य ।
मोराए सक्कारं सक्को अच्छंदए कुवितो ॥

—आव० निगा ४६४

मलय टीका—अक्षरगमनिका—रौद्राः सप्तवेदनाः शूलपाणिना यक्षेणकृताः तदनन्तरं तेनैव स्तुतिः कृता, ततो दश स्वप्ना भगवता दृष्टाः, उत्पलश्च तेषां फलं जगाद, 'अद्धमासे य'त्ति भगवान् तत्रार्द्धमासमर्द्धमासं क्षपणमकार्षीत् ततो भगवतो मोरायां गतस्य लोकः सत्कारं चकार, शक्रोऽच्छन्दके तीर्थकरहीलनापरे कुपितः । इयं निर्युक्तिगाथा एतास्वरूपा एव व्याख्यानभूता मूलभाष्यकारगाथाः—

भीमऽट्टहास हत्थी पिसाय नागेय वेयणासत्त ।
सिरकन्ननासदंते नहऽच्छि पिट्ठीय सत्तमिया ॥११२॥

– आव मूल भाष्य गा ११२

टीका—प्रथमतः शूलपाणिना भीमोऽट्टहासः कृतः, तदनन्तरं हस्ती विकुर्वितः, ततः पिशाचः ततो नागः, तदनन्तरं सप्त वेदना उदीरिताः तद्यथा—'सिर' त्ति शिरो वेदना, एवं कर्णवेदना नासावेदना दंतवेदना नखवेदना अक्षिवेदना पृष्ठवेदना च सप्तमिका ।

(घ) एवं सो अट्ठिगामो जातो। तत्थपुण वाणमंतरघरे जो रत्ति परिवसति तत्थ सो सूलपाणी संनिहितो तं रत्तिं वाहेत्ता पच्छा मारेति'''इतो य तत्थ सामी आगतो दूइज्जंतगाण पासातो'''ताहे गंता एगकोणे पडिमंठितो....ताहे सो वाण-मंतरो आहे सद्देण ण बीहेति ताहे हत्थिरूवेण उवसग्गंकरेति पिसायरूवेण य, एतेहिवि जाहेणतरति खोभेउं ताहे पभायसमए सत्तविहं वेयणंकरेति।

— आव० चू० पूर्व भाग पृ० २७३-२७४

दूइज्जतकग्राम (मोराकग्राम) मे अर्द्धमास व्यतीतकर भगवान अस्थिकग्राम पधारे। भगवानने वासस्थान के लिए ग्राम के लोगों से पूछा, तब ग्रामीण लोग बोले कि यहाँ मंदिर मे एक यक्ष रहता है वह किसी को भी वास नहीं करने देता। वह यक्ष ग्रामके लोगों पर कुपित होकर महामारी रोग की विकुर्वणा की है।

यहाँ अस्थि का सचय है अत ग्रामका नाम वर्द्धमान होते हुए भी अस्थिकग्राम नाम पड़ा। यदि कोई कार्पटिक विश्रांत होकर इस स्थान मे रात्रिवास करता है तो उसे शूलपाणि यमराज की तरह मार डालता है। यहाँ के लोग तथा पुजारी इन्द्रशर्मा मंदिर में दिनमें ही रहते हैं, सायं होते ही सब अपने-अपने घर चले जाते हैं अतः आपका यहाँ रहना उचित नहीं है।

ऐसा कहकर ग्रामीण लोग भगवान को वासस्थान के लिए अन्यत्र स्थान बताया। परन्तु भगवान ने अन्यत्र वासस्थान करना स्वीकार नहीं किया, यक्ष के स्थान मे ही वास-स्थान करने की याचना की।

ग्रामीण लोगोंकी आज्ञासे भगवान व्यंतरदेव को प्रतिबोध देने के लिए उस यक्ष के एक स्थान के कोणे मे प्रतिमा धारणकर खड़े रहे। इन्द्रशर्मा पुजारी सायंकाल धूपकर सब पथिकों को बाहर निकालकर भगवान को कहा—हे देवार्य। आप भी इस स्थान से बाहर जाइये क्योंकि व्यंतर बड़ा निर्दयी है, रात्रिमे आपको मृत्यु प्राप्तकर देगा। तथापि भगवान मौन धारणकर वहीं स्थित रहे।

वह व्यतर सोचता है कि "अहो! मरने की इच्छा रखने वाला हमारे स्थान मे कौन आया है इसे ग्रामीण तथा हमारे पुजारी ने यहाँ रहने के लिए बारम्बार कहा तो भी यह गर्विष्ठ मुनि यहाँ पर ही रात्रि वासस्थान कर रहा है। अतः मैं इसके गर्व को हरण कर लूंगा।

पुजारी वहाँ से चला गया और सूर्यास्त हो गया। भगवान कायोत्सर्ग में स्थित रहे।

वहाँ व्यंतर ने अट्टहास्य किया। चारों तरफ प्रसरण करता हुआ अति रौद्र अट्टहास्य के शब्द से मानो आकाश फूट गया हो और नक्षत्र आकाश से टूट गया हो।

उस शब्द को सुनकर ग्राम के लोग परस्पर कहने लगे कि मुनि को आज व्यंतर मार देगा। उस समय पार्श्वनाथ साधुओं में रहने वाला उत्पल नामक अष्टांग निमित्त का जानकार एक परिव्राजक वहाँ आया। उसने लोगों से देवार्य भगवान महावीर के वृत्तान्त को सुना। उसने जाना कि ये अंतिम तीर्थंकर होंगे इस प्रकार जानने से उसके हृदय में धैर्य नहीं रहा अर्थात् उसे बहुत चिंता हुई।

प्रथम उस यक्ष ने महा भयंकर अट्टहास किया उससे भगवान को किंचित् भी क्षोभ नहीं हुआ।

अब फिर व्यंतर ने महाघोर हस्तिरूप की विकुर्वणा की। भगवान ने हाथी के उपद्रव को भी कुछ नहीं समझा।

फिर भूमि और आकाश के मानदंड जैसे पिशाच के रूप की विकुर्वणा की उससे भी भगवान क्षोभ को प्राप्त नहीं हुए।

तत्पश्चात् उस दुष्ट ने यमराज के पाश की तरह भयंकर सर्प के रूप की विकुर्वणा की अमोघ विष के निर्झर की तरह उस सर्प ने भगवान के शरीर को दृढ रूपसे दश लिया। उग्र दाढों से डसने लगा। अंततः सर्प भगवान को चलित करने में असफल रहा।

उसके बाद उस यक्ष ने भगवान के सिर, नेत्र मूत्राशय, नासिका, दांत, पृष्ठ और नख—ये सात स्थान में असह्यवेदना प्रगट की। इन सात वेदनाओं में से एक भी वेदना से भी सामान्य मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। ऐसी सात वेदना उस यक्ष ने भगवान के शरीर में एक साथ उत्पन्न की तो भी भगवान ने समता से सहन की।

इस प्रकार नानाविध उपसर्ग उत्पन्न करते करते जब वह यक्ष थक गया तब वह विस्मय को प्राप्त हुआ। भगवान को अंजलि जोड़कर, नमस्कार कर बोला—हे दयानिधे ! मैं दुरात्मा हूँ, आपकी शक्ति को नहीं जानता था आपका इस दुरात्मा ने बहुत अपराध किया है आप क्षमा कीजियेगा।

उस समय सिद्धार्थसुर—जिसका मन इतनी देर तक स्वय के कार्य में व्यग्र था। अब प्रभु के पास रहने की इन्द्र की आज्ञा को याद किया। तत्काल वहाँ आकर मोटे आक्रोश से बोला—अरे देवाधम शूलपाणि ! प्रार्थना करने के योग्य नहीं हो, मृत्यु की प्रार्थना करने वाले की तरह तुमने यह क्या किया ? हे दुर्मति ! ये सिद्धार्थ राजा के पुत्र तीर्थंकर भगवंत वीर प्रभु है, तीनलोक के पूज्यनीय है। क्या यह तुम नहीं जानते हो।

यदि तुम्हारा चरित्र प्रभुके भक्त शक्रेन्द्र जान लेंगे तो तुम उनकी वज्रवारसे पीड़ित हो जाओगे। सिद्धार्थ के वचन को सुनकर वह शूलपाणियक्ष पश्चाताप से आकुल-व्याकुल हो गया फलस्वरूप उसने फिर भगवानसे क्षमायाचना की, क्योंकि उस समय अन्य कोई उपाय नहीं था। उसे प्रशांत हुआ जानकर दयालु सिद्धार्थ देव ने कहा—अरे! तुम तत्त्वको नहीं जानते हो, अतः तुम यथार्थ तत्त्व की पहिचान करो — वीतरागमें देवबुद्धि, साधुओं में गुरु बुद्धि और जिनेश्वर भगवान् द्वारा कथित धर्ममे धर्म बुद्धि—इस प्रकार आत्माके साथ निर्णयकर। स्वयं की आत्मा की तरह किसी भी प्राणी को पीड़ा मत दो, पूर्वकृत्य सर्व दुष्कृत्यकी निंदा कर। एक बार भी आचरित तीव्र कर्मका फल प्राणी कोटाकोटी गुण प्राप्त होता है।

इस प्रकार तत्त्वको सुनकरशूलपाणियक्ष पूर्व कृत अनेक प्राणियोंकी हत्या को यादकर बारम्बार स्वयं को आत्माकी निंदा करने लगा और बहुत पश्चाताप करने लगा। बादमें सम्यक्त्व को धारण कर, संसार से उद्वेग को प्राप्त वह यक्ष भगवानके चरण की पूजा करके और स्वय के अपराधरूप मल धोने मे जलकी तरह संगीत भगवान के सामने करने लगा। उस संगीतके शब्दों को सुनकर ग्रामीण लोग चिंतन करने लगे कि उस मुनिको मारकर वह यक्ष क्रीड़ा करता होगा।

·५ शय्या परीषह

सिद्धार्थसुहृदस्तस्य स्मरन् कुलपतेर्वचः।
स्वामी प्रावृषमस्येतुं मोराकं पुनरभ्यगात् ॥५५॥
प्रभोर्भ्रातृव्यतास्नेहसंबंधमधुराशयः॥
गृहमेकं कुलपतिस्तृणाच्छादितमार्पयत् ॥५७॥
ततः कुलपतिरगादुपनाथं ददर्श च।
कृत्तपक्षं खगमिव छदिवर्जितमाश्रमम् ॥६६॥
आत्मानमिव रक्षन्ति स्वनीडं नीडजा अपि।
विवेकिना त्वया हन्त किमाश्रम उपेक्षितः? ॥७२॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ३

(ख) ××× ताहे सामी अट्ठ उउबद्धिए मासे विहरित्ता वासावासे संपत्ते तं देवं दूइज्जंतगगामं एइ, तत्थेगमि उडए वासावासं ठितो। ××× ताहे सो कुलवई अणुसासइ, जहा—कुमारवर। सउणीवि ताव नेड्डं रक्खइ, तुमंपि वारिज्जासित्ति, सप्पिवासं भणइ।

—आव० नि गा ४६१। टीका

भगवान महावीर प्रथम चतुर्मासार्थ दूइज्जंतक ग्राम (मोराकग्राम) पधारे। तापसों के कूलपतिने तृण से आच्छादित एक घर प्रभुको रहने के लिए दिया। ग्रामकी गायें वहाँ तृण खाने के लिए आती थी। भगवान वहाँ थे उस झोपड़ी को भी खाने लगी। भगवान ने वारण नहीं किया। फलस्वरूप कूलपति ने कहा हे तात ! तुमने इस झोपड़ी की रक्षा क्यों नहीं की। पक्षी भी स्वयं के नीड (घोंसला) की आत्मा की तरह रक्षण करते है—तुम विवेकशील होकर भी आश्रम की उपेक्षा क्यों की।

'६ चंडकौशिक सर्पका उपसर्ग उत्तरवाचालान्तर वनखण्ड में चंडकौशिक सर्प का उपद्रव

द्वितीय वर्षमें

(क) ताहे सामी उत्तरवाचालं वच्चइ, तत्थ अंतरा कनकखलं नाम आसमपदं तत्थ दो पंथा—उज्जुगो वंको य, जो सो उज्जुगो सो कणकखलमज्झेणं वच्चइ, वंको परिहरंतो, सामी उज्जुगेण पहावितो, गोवालेहिं वारितो—देवज्जगा। मा एएण मग्गेण गच्छह, एत्थ दिट्ठीविसो सप्पो अच्छइ, सामीजाणइ—जहास भवितो संबुज्झिहिइ, ताहे गतो, गंतूणजक्खघरमंडवियाए, पडिमंठितो। × × ×। ताहे सामी तेणदिट्ठो, ततो, आसुरुत्तो ममं न जाणमि ? सूरं निज्झाएत्ता पच्छा सामिं पलोएइ, सोन डज्झइ जहा अन्नो, एवं दो तिन्निवारे, ताहे गंतूण डसइ, अवक्कमइ, मा मे उवरिं पडिहिइ, तहविन मरइ, एवंतिन्नि वारे, ताहे पलोयंतो अमरिसेणं अच्छइ, तस्स भगवतो रूवं पेच्छंतस्स ताणि विसभरियाणि अच्छीणि विज्झाइयाणि सामिणो कंतिसोम्मयाए, ताहे सामिणा भणियं उवसम। भो चंडकोसिया ताहे तस्स ईहापोहमग्गणगवेसणे करेंतस्स जाईसरणं समुप्पण्णं, ताहे तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंतो मणस्सा भत्तं पच्चक्खाइ, तित्थगरो जाणइ, ताहेसो बिले तुंडं छोढूण ठितो, माऽहं रुट्ठो संतो लोगं मारेहं, सामी तत्थ अणुकंपणट्ठाए अच्छइ, सामिं दट्ठूणं गोवालवच्छवाला अल्लियंति, रुक्खेहिं आवरित्ता पाहाणे खिवंति, न चलइत्ति अल्लीणा कट्ठेहिं घट्टितो, तहवि न फंदइ, ताहे लोगो आगंतुं सामिं वंदित्ता तंपि सप्पं वंदति महति अ, अन्नाओ य घयविक्कणियातो तंसप्पं घएण मक्खंति, ततो सो पिवीलियाहिं गहितो, तं वेयणं सम्मंअहियासेइ, अद्धमासे कालगतो सहस्सारे उववन्नो।

—आव० नि गा ४६६। मलय टीका

(ख) दक्षिणादुत्तरे यातश्चावालेऽथालगत्प्रभोः।

× × × ॥२२०॥

इतश्च भगवान् वीरः समीरण इवाऽस्खलन्।

श्वेतव्यभिमुखं गच्छन्निल्यूचे गोपदारकैः ॥२२५॥
देवार्यायमृजुः पंथा श्वेतबीमुपतिष्ठते।
किं त्वन्तरेऽस्य कनकखलाख्यतापसाश्रमः ॥२२६॥
सहि दृग्विषसर्पेणाधिष्ठितो वर्ततेऽधुना॥
वायुमात्रैकसंचारोऽप्रचारः पक्षिणामपि ॥२२७॥
विहायतदमुं मार्गं वक्रेणाप्यमुना व्रज।
सुवर्णेनापि किं तेनकर्णच्छेदो भवेद्यतः ॥२२८॥
तं चाहि प्रभुरज्ञासीद्यदसौ पूर्वजन्मनि।

× × ×

अवश्यं चैषा बोधार्ह इति बुद्धया जगद्गुरुः।
आत्मपीडामगणयन्नृजुनैव यथा ययौ ॥२४८॥
अभवत्पदसंचारसुषमीभूतवालुकम्।
उदपानावहत्कुल्यं शुष्कजर्जरपादपम् ॥२४९॥
जीर्णपर्णचयास्तीर्णं कीर्णं वल्मीकपर्वतैः।
स्थलीभूतोटजं जीर्णारण्यं न्यविशत प्रभुः ॥२५०॥
तत्र चाथ जगन्नाथो यक्षमंडपिकाऽन्तरे।
तस्थौ प्रतिमया नासाप्रान्तविश्रांतलोचनः ॥२५१॥
ततो दृष्टिविषः सर्पः सदर्पो भ्रमितुं बहिः
बिलान्निरसरज्जिह्वा कालरात्रिमुखादिव ॥२५२॥
भ्रमन् सोऽनुवनं रेणुसंक्रामपदभोगलेखया।
स्वाऽऽज्ञालेखामिव लिखन्नीक्षाञ्चक्रे जगद्गुरुम् ॥२५३॥
अत्र मांकिमविज्ञाय किमवज्ञाय कोऽप्यसौ।
आः प्रविष्टो निराशंकं निष्कंपः शंकुवस्थितः ॥२५४॥
तदेनं भस्मसात्कुर्व करोमीति विचिन्तयन्।
आध्मायमानः कोपेन फटाटोपं चकार सः ॥२५५॥
ज्वालामालामुद्वमन्त्या निर्दहन्त्या लताद्रुमान्।
भगवंतं दृशाऽपश्यत् स्फारफूत्कारदारुणः ॥२५६॥
दृष्टिज्वालास्ततस्य ज्वलन्त्यो भगवत्तनौ।
विनिपेतुदुरालोका उल्का इव दिवो गिरौ ॥२५७॥

प्रभोर्महाप्रभावस्य प्रभवन्ति स्म नैव ताः ।
महानपि मरुन्मेरुं किं कंपयितुमीश्वरः ॥२५८॥

दारुदाहं न दग्धोऽसावद्यापीति क्रुधा ज्वलन् ।
ददर्श दिनेशं द्विड् ज्वालाः सोऽमुचत्पुनः ॥२५६॥

संपन्नासु प्रभौ वारिधाराप्रायासु तास्वपि ।
ददंश दन्दशूकः सनिःशूकः पादपंकजे ॥२६०॥

दृष्ट्वा-दृष्ट्वा पचक्राम स्वविषोद्रेकदुर्मदः ।
यत्पतन्मद्विषाक्रान्तो मृदूनीयादेष मामपि ॥२६१॥

दशतोऽप्यसकृत्तस्य न विषं प्राभवत्प्रभौ ।
गोक्षीरधाराधवलं केवलं रक्तमक्षरत् ॥२६२॥

ततश्च पुरतः स्थित्वा किमेतदिति चिन्तयन् ।
वीक्षांचक्रे जगन्नाथं वीक्षापन्नः स पन्नगः ॥२६३॥

ततो निरूप्य रूपं तद्सरूपं जगद्गुरोः ।
कांतसौम्यता मंक्षु विध्याते तद्विलोचने ॥२६४॥

उपसन्नं च तं ज्ञात्वा बभाषे भगवानिति ।
चंडकौशिक ! बुध्यस्व बुध्यस्व ननु मा मुहः ॥२६५॥

श्रुत्वा तद्भगवद्वाक्यमूहापोहं वितन्वतः ।
पन्नगस्य समुत्पेदे स्मरणं पूर्वजन्मनाम् ॥२६६॥

ततः प्रदक्षिणीकृत्य स त्रिस्त्रिभुवनेश्वरम् ।
निष्कषायः स्वमनसाऽनशनं प्रत्यपद्यत ॥२६७॥

कृतानशनकर्माणं निष्कर्माणं महोरगम् ।
प्रशामापन्नमज्ञासीद्न्वज्ञासीच्च तं प्रभुः ॥२६८।

कुत्राप्यन्यत्र मा यासीद् दृष्टिर्मे विषभीषणा ।
इति तुंडं बिले क्षिप्त्वा पपौ स समताऽमृतम् ॥२६६॥

तस्थौ तथैव तत्रैव स्वामी तदनुकंपया ।
परेषामुपकाराय महतां हि प्रवृत्तयः ॥२७०॥

भगवंतं तथा दृष्ट्वा विस्मेयस्मरलोचनाः ।
गोपाला वत्सपालाश्च तत्रोपसस्रुपुद्रुतम् ॥२७१॥

वृक्षान्तरे तिरोभूय यथेष्टं प्रावलेष्टुभिः ।
प्रणिजघ्नुरनिघ्नास्ते पन्नगस्य महात्मनः ॥२७२॥
तथाप्यविचलं ते तं वीक्ष्य विश्रम्भभाजिनः ।
यष्टिभिर्घट्टयामासुर्निकटीभूय तत्तानुम् ॥२७३॥
आख्यच्जनानां तद्गोपास्ततस्तत्रागमञ्जनाः ।
ववन्दिरे महावीरममहंश्च महोरगम् ॥२७४॥
× × ×
सिक्तः कृपासुधावृष्ट्या भगवतोरगः ।
पक्षान्ते पंचतां प्राप्य सहस्रारदिवं ययौ ॥२७६॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३

भगवान महावीर दक्षिण की ओर वाचाला ग्राम से विहार कर उत्तर की ओर के वाचाला ग्राम पधारे । वहाँ से भगवान ने श्वेताम्बिका नगरी की ओर विहार किया । मार्ग में गोपके लड़कों ने कहा—हे देवार्य ! यह मार्ग श्वेताम्बिका नगरी की ओर जाने का सरल मार्ग है, मध्यमे कनकखल नामक तापसों का आश्रम है वहाँ एक दृष्टि विष सर्प का वासस्थान है अतः वहाँ पक्षियोंका भी संचरण नहीं है मात्र वायु का ही सचार है अतः आपको सरल मार्ग को छोड़ कर वक्र मार्ग से जाना चाहिए ।

भगवान ने ज्ञान से सर्प को देखा, उसके पूर्व जन्म को जाना ।

दृष्टि विष सर्प अवश्य ही प्रतिबोध को प्राप्त होगा अतः भगवान ने सरल मार्ग से जाना तय किया । कनकलता आश्रम मे भगवान पधारे तथा वहाँ यक्षमण्डप में नासिका पर नेत्र को स्थिर कर कायोत्सर्ग करने लगे ।

इसके बाद वह दृष्टिविष सर्प मुँह से कालरात्रि के समान जिह्वा को बाहर निकाल कर, अभिमान युक्त होकर फिरने लगा । वनमें आज्ञारेखा की तरह स्वयं के शरीर की रेखा करता हुआ फिरता ।

उसने मार्गमे भगवान महावीर को देखा और बोला कि मेरी अवज्ञा करने के लिए यह कौन व्यक्ति निःशंक होकर प्रवेश किया है, शकु की तरह स्थिर होकर खड़ा है । मैं इसको अभी भस्मीभूत कर दूँगा ।

फलस्वरूप वह क्रोधित होकर धमधमाता हुआ स्वयं की फणाटों को विस्तृत करने लगा । ज्वाला माला को वमन करती हुई, लता वृक्षों को दहन करती हुई, स्फार फुत्कारों से भयंकर दृष्टि से वह भगवान को देखने लगा । जैसे आकाश मे से उल्का पर्वत पर गिरती है

उसी प्रकार उसकी दृष्टि ज्वाला भगवान के शरीर पर गिरी। परन्तु महा प्रभाविक प्रभु पर उसका असर नहीं हुआ। महान् पवन भी मेरु को कंपित नहीं कर सकता।

स्वयं की तीव्र दृष्टि से भी जब प्रभु का कुछ भी नहीं हुआ, काष्ट की तरह यह कैसे दग्ध नहीं हुआ है ऐसा विचार कर विशेष क्रोधित होकर उसने सूर्य के सामने देख-देख कर विशेष दृष्टिज्वाला छोड़ने लगा तथापि वे ज्वालायें भी प्रभु के ऊपर जलधारा की तरह हो गई।

फिर वह सर्प शुक आदि होकर भगवान के चरणकमल को डसा। स्वय के विष की उग्रता से दुर्मद होकर विचारने लगा कि मेरे तीव्र विष से आक्रान्त होकर अब यह मेरे ऊपर पड़कर मुझे दाब न दे इसलिए वह भगवान को डस डस कर दूर खसक जाता। उसने भगवान को जिस स्थान पर डसा वहाँ पर विषका प्रभाव नहीं हो सका—मात्र उस स्थान से गाय के दूध की धारा के समान रुधिर की धारा वहाँ झरती थी। बहुत बार ऐसा होने से 'यह क्या है'—ऐसा विस्मय प्राप्त होकर वह भगवान के सामने खड़ा हो गया और दुःखित होकर भगवान को देखने लगा। भगवान के अतुल्य-रूप को देखने से तथा भगवान को शांत और सौम्य देखने से उसके नेत्र स्तब्ध हो गये।

फलस्वरूप वह कुछ उपशांत हुआ तब भगवान बोले—हे चंडकौशिक ! बोध प्राप्त करो ! बोध प्राप्त करो ! मोह को प्राप्त मत करो। भगवान के ये वचन सुनकर ऊहामोह करते हुए उस सर्प को जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ।

तत्पश्चात् दृष्टिविष सर्प ने भगवान को तीन बारप्रदक्षिणा देकर अनशन अंगीकार करने का विचार किया।

भगवान को उपद्रव रहित रहे हुए देखकर सर्व ग्वाले वहाँ आये। वृक्षके अन्तर में उस सर्प को निश्चल देखकर विस्मित हुए।

वह दृष्टिविष सर्प अनशनकर, मरण प्राप्तकर सहस्रार देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुआ।

.७ सुदंष्ट्रक नागकुमार का उपसर्ग

भगवान के सुरभिपुर में गंगानदी से उतरने के लिए नाव में बैठने के बाद

(क) ततो सामी सुरभिपुरं गतो, तत्थ गंगा उत्तरियव्वा, तत्थ सिद्धजत्तो नाम नाविलो, खेमिलो नाम सउणजाणतो, तत्थ नावाए लोगो विलग्गइ, एत्थंतरे कोसिएण महासउणेण वासियं, कोसिओ नाम उलूगो, खेमिलेण भणियं—जारिसं सउणेण भणियं तारिसं अम्हेहिं मारणंतियं पावियव्वं, किंतु इमस्स महारिसिस्स

पहावेण मुच्चीहामो, सा य नावा पहाविया, सुदाढेण नागकुमारराएण भयवं। नावाए ठितो दिट्ठो, तस्स कोवो जातो, सोयकिर जोसो सीहो वासुदेवत्तणे मारितो सो संसारं भमिऊण सुदाढो नागो जातो, सो संवट्टगवायं विउव्वित्ता नावं उब्बोलेउं इच्छइ, इतोय कंबलसंबलाण आसणं चलियं। का पुण कंबलसंबलाणं उप्पत्ती? ××× ते कालगया नागकुमारेसु उववन्ना, ओहिं पउंजंति, जावपेच्छंति तित्थगरस्स उवसग्गं कीरमाणं, ताहे णेहिं चिंतियं—अलाहि ता अन्नेण, सामिं मोएमो,आगया, एगेण नावा गहिया, एगासुदाढेण समं जुज्झइ, सो महिड्डिनो, तस्स पुणच्चवणकालो, इमे णु अहुणोववन्नया, सोतेहिं पराइनो, ताहे ते नागकुमारातित्थयरस्समहिमं करेंति, सत्तरूवं च गायंति, एवं लोगोऽवि। ततो सामीउत्तिन्नो, तत्थ देवेहिं, सुरहिगंधोदयवासं पुप्फवासं च वुट्ठं, तेऽवि पडिगया।

—आव० नि गा ४६९। मलय टीका मे उद्धृत

(ख) प्रदेशी स्वपुरेऽथागात् स्वामी च विहरन् क्रमात्।
नगरं सुरभिपुरं तपःसुरभिरभ्यगात्॥२८८॥

× × ×

गंगां तरंगिणीमुच्चतरंगामासदत् प्रभुः॥२८९॥
तां तितीर्षुः सिद्धदत्तनाविकप्रगुणीकृताम्।
आरोहद्भगवान्नावं पथिका अपरेऽपिहि॥२९०॥

दंडाभ्यां चाल्यमानाभ्यां पक्षाभ्यामिव पक्षिणी।
त्वरितं गंतुमारेभे नौरभ्युद्यतनाविका॥२९१॥

वाशितं कौशिकेनोच्चैस्तदानीं तटवर्तिना।
क्षेमिलाख्यः शकुनज्ञोऽवोचत्क्षेमं न खल्विह॥२९२॥

प्राप्तव्यमचिरात् सर्वैर्व्यसनं मरणान्तिकम्।
महर्षेरस्यमहिम्ना तस्मान्मोक्ष्यामहे परम्॥२९३॥

ब्रुवाण एवतत्रैवं नौरगाधं जलं ययौ।
सुदाढो नागकुमारस्तत्रस्थं चैक्षत प्रभुम्॥२९४॥

स्मृत्वा प्राग्जन्मवैरं स क्रुध्यन्नेवमचितयत्।
सोऽयं येन त्रिपृष्ठत्वे सिंहोऽहंनिहतस्तदा॥२९५॥

एतद्देशातिदूरस्थे गिरौ निवसता मया।
नापराद्धं तदा किंचित्त्रिपृष्ठस्य सतोऽस्यहि॥
निजदोर्वीर्यदर्पेण कुतूहलचिकीर्षया।
गुहामध्ये निलीनोऽहं तदानीं निहतोऽमुना।
दिष्ट्यैष गोचरे दृष्ट्योः वैरं स्वं साधयाम्यहम्।
वैरंहि ऋणवत्पुंसां जन्मान्तरशतानुगम्॥
आसन्नमप्यवसानं मम खेदाय नाधुना।
प्राग्वैरसाधनाद्द्य कृतार्थीकृतजन्मनः॥
एवं विचिन्त्य सामर्षः सुदाढो विकटेक्षणः॥
एत्योपवीरं व्योमस्थश्चक्रे किलकिलारवम्॥
अरे रे! कुत्र यासीति विब्रुवन् विचकार सः
संवर्तकमहावातं संवर्तानिलभीषणम्॥
निपेतुस्तरवस्तेन पर्वताश्च चकंपिरे।
गंगामुच्छलति स्मोच्चैर्जलमभ्रंलिहोर्मिकम्॥
सा च गांगैस्तरंगैर्नौः समुत्पातिनिपातिभिः।
उदञ्च्यते न्यञ्च्यते स्मद्विरदोपात्तरूपवत्॥
निर्भग्नः कूपकस्तम्भः शीर्णः सितपटोऽपिच।
आत्मेव नावो मूढोऽभूत् कर्णधारो भयातुरः॥
आरेभे देवताः स्मर्तुं मर्तुकामः समाकुलः॥
यमजिह्वाप्रवर्तीव नौवर्ती सकलोजनः॥३०५॥

× × ×

अथकंबलशबलावबधेस्तावपश्यताम्।
क्रियमाणं सुदाढेन स्वामिनस्तमुपद्रवम्॥३४१॥

कृतमन्येन कृत्येन कृत्यमेतद्यदर्हतः
उपसर्गं निषेधावो ध्यात्वैवं तावपेयतुः॥३४२॥

एकः प्रववृते योद्धुं सुदाढेनाहिना सह।
द्वितीयः पाणिनोत्पाट्य निन्ये नावं नदीतटे॥ ३४३॥

महर्द्धिकोऽपि सुदाढ आयुःप्रान्ते गलद्बलः।
ताभ्यां नूतनदेवत्ववैभवाभ्यामजीयत॥ ३४४॥

नंष्ट्वा सुदंष्ट्रः प्रययौ तौ च नागकुमारकौ।
नत्वा प्रभौ ववृषतुः पुष्पगंधोदके मुदा।
नद्या इवापदोऽमुष्या उत्तीर्णास्त्वत्प्रभावतः।
इति ब्रुवाणा नौलोका भक्त्या वीरंववन्दिरे॥
प्रभुं नत्वेयतुर्नागौ तर्या उत्तीर्यच प्रभुः।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो २८८ से ३०५ व श्लो ३४१ से ३४७ पूर्वार्ध

प्रदेशी राजा की नगरी—श्वेताम्बिका नगरी से विहार कर भगवान सुरभिपुर पधारे। वहाँ गंगा नदी के निकट आये। गंगा नदी उतरने को भगवान ने इच्छा की। सिद्धदन्त नामक नाविक द्वारा तैयार की हुई नाव मे भगवान तथा अन्यलोग बैठे। नाविक ने दोनों दंडों से नाव चलायी। उस समय कांटे पर बैठा हुआ घुवड़पक्षी बोला। उसकी आवाज को सुनकर नाव में स्थित शकुनशास्त्र के ज्ञाता क्षेमिल नामक निमित्तज्ञ ने कहा—हम सकुशल पार नहीं कर सकेंगे। थोड़े समय के लिए अपनेको मरणांत कष्ट प्राप्त होगा। परन्तु इस महर्षि की महिमा से सब लोग बच जायेंगे। इस प्रकार वह बोल रहा था कि उसी वक्त नाव अगाध जल मे चला आया।

वहाँ सुदष्ट्र नामक एक नागकुमार देव रहता था। उसने भगवान को नाव मे देखा। पूर्व जन्म के वैर को याद करता हुआ—वह क्रोधके वशीभूत होकर चिंतन करताहै—"जब यह त्रिपृष्ट वासुदेव था उस समय मैं सिंह था। उसने स्वय के वीर्यके गर्वसे निरपराध मुझे मारा था। फलस्वरूप उसने सवर्तक वायु को विकुर्वणा कर नाव को पानी मे उलटने की चेष्टा की।

मरणोन्मुख होकर व्याकुलरूप से स्वयं स्वयके इष्ट देव को नावमे स्थित लोग याद करने लगे।

कबल व शंबल नागकुमार देवों ने अवधिज्ञान से देखा कि सुदंष्ट्र नागकुमार ने भगवान पर उपद्रव किया है। अन्यकार्यों को छोडकर वे दोनों-भगवान पर कृत उपसर्ग को दूर करने के लिए भगवान के पास आये। एक सुदष्ट्र नागकुमार देव के साथ युद्ध करने लगा तथा दूसरे ने अपने हस्त द्वारा नाव को नदीतट पर स्थित किया।

यद्यपि सुदंष्ट्र नागकुमार मोटी ऋद्धिवाला था परन्तु उसकी आयु का अंत आने से उसका बल घट गया था। इसके विपरीत इन दोनों देवों को नूतन देवत्व का देवत्व था अतः इन दोनों ने उसको जीत लिया था। फलस्वरूप सुदंष्ट्र वहाँ से पराजित होकर भाग गया।

कंबल व शंबल नागकुमार देवों ने भगवान को नमस्कार किया। भगवान के ऊपर पुष्प, गन्ध, उदक की वृष्टि की। अन्यलोग वन्दन कर भगवान की भक्ति की और बोलेकि आपके प्रभाव से नदी को पार किया।

दोनों नागकुमार देव भगवान को नमस्कार कर अपने स्थान गये।

नाव से विधिपूर्वक उतर कर भगवान ने अन्यत्र विहार किया।

'८ तृतीयवर्ष में—

चोराकग्राम में वधपरीषह

(क) मुणिचंद कुमाराए कूवणय चंपरमणिज्जयेउज्जाणे।
चोरा चारिअ अगडे सोम जयंती उवसमंत।

—आव० नि गा ४७७

मलयटीका—कुमारा नाम सन्निवेशः, तत्र चंपरमणीये उद्याने भगवान् प्रतिमां प्रतिपन्नंः, इतश्च मुनिचन्द्रो नाम पार्श्वनाथसंतानवर्त्ती आचार्यः, तं कूपनको नाम कुंभकारो मारितवान्, तदनन्तरं भगवान् चोराके सन्निवेशे, चारिकावेताविनि गृहीत्वा अवटे—जलरहिते कूपे दवरिकया बद्धौ लम्बमानौ प्रक्षिप्येते, उत्तार्यते च, तत्र सोमाजयन्त्यौ राजपुरुषान् उपशमयतः॥

(ख) इयाय नाथं नाथोऽपि चोराकेऽगान्निवेशने ॥४७७॥
प्रतिचक्रभयात्तत्रारक्षैश्चौरगवेषिभिः।
कायोत्सर्गस्थित स्वामी सगोशालोऽप्यदृश्यतः॥
ब्रूहि कोऽसीति तैः पृष्टः स मौनाभिग्रहः प्रभुः
न किंचिद्‌भ्यधाद्वाचंयमा हि बधिरा इव॥
कस्यापि हेरिको ह्येष नूनं यन्मौनभागसौ।
स्वामिनं ते सगोशालं जगृहुः क्रूरबुद्धयः।
गोशालं शाकिनीवत्ते बद्ध्वा कूपे निचिक्षिपुः।
मुहुर्घटीवद्विदधुर्न्यंचनोद चनानि च॥
पार्श्वशिष्ये उत्पलस्य जामी सोमाजयन्तिके।
साधुवर्यौ परिव्राजौ चोराकेऽवसतांतदा॥
ईदृग्रूपौ नरौ कौचित् क्षेपगोत्क्षेपगोर्जले।
आरक्षैः पीड्यमानौ स्तस्ते इत्यश्रृणुतां जनात्॥

छद्मस्थश्चरमतीर्थकरोऽसौ नु भवेदिति।
उपेत्य ते क्षणाश्चार्थं तथावस्थमपश्यताम् ॥
आरक्षानूचतुश्चैवं किं रे मूर्खा मुमूर्षवः।
न जानीथ प्रभुममुं सिद्धार्थनृपनंदनम् ॥
ते भीताः स्वामिनं मुक्त्वा नत्वाचाक्षमयन्मुहुः ॥
महान्तौ हि न कुप्यन्ति क्षम्यन्ते स्वात्मशंकितैः ॥

—त्रिशलाका० पर्व० १० । सर्ग ३ । श्लो ४७७ उत्तरार्ध, ४७८ से ४८१

(ख) ताहे सामी ततो चोरागसन्निवेसं गता, तत्थ चारियत्तिकाऊण ओलं बालगं अगडे पक्खिज्जंति, पुणोय उत्तरिज्जंति, तत्थ ताव पढमं गोसालो, सामी ण ताव तत्थ य सोमाजयंतीओ उप्पलस्स भगिणीओ पासावच्चिज्जाओ दो परिव्वाइयातो ण तरंति पव्वज्जं काऊण ताहे परिव्वाइयत्तं करेति, ताहे सुतं—कोवि दो जणा ओबालए पक्खिज्जिंति, ताओ पुण जाणंति—जहाचरमतित्थयरो पव्वतितो, तो ताओ तत्थ गताओ जावपेच्छंति, ताहि मोइओ, ते य ओद्धंसिया अहो विणस्सिउकामत्थ, तेहिं भएण खमिता, महितो य।

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० २८६, २८७

जब भगवान महावीर कुमारग्राम मे चम्पारमणीय उद्यान मे प्रतिमा मे स्थित थे उस समय पार्श्वनाथ संतानवर्ती मुनिचन्द्र आचार्य को कूपनक नामक कुम्भकार ने मार दिया। उसके बाद भगवान ने विहार कर चोराक ग्राम पधारे। वहाँ परचक्र के भय से चोरों की खोज करने वाले आरक्षक पुरुषों ने गोशाला सहित भगवान को कायोत्सर्ग मे स्थित देखा। आरक्षकों ने पूछा कि आप कौन हैं। मौनका अभिग्रह होने से भगवान कुछ भी नहीं बोले।

उत्तर नहीं मिलने से आरक्षकों ने विचार किया—अवश्य ये कोई हेरिक है जिसके कारण इन्होंने मौन धारण कर रखा है। फलस्वरूप उन क्रूर बुद्धि वाले पुरुषों ने गोशाला सहित भगवान को पकड़ लिया और शाकिनी की तरह उन दोनों को कूप मे गिरा दिया बारम्बार घट की तरह ऊँचा-नीचा करने लगे।

उस समय सोमा और जयंती नामक (उत्पल निमित्तज्ञ की दो बहिन) जो पार्श्वनाथ भगवान की शिष्या हुई थी। उन्होंने उपरोक्त घटना को सुना।

घटना को यथाविधि सुनकर उन्होंने चिंतन किया कि—अवश्य छद्मस्थ चरम तीर्थंकर भगवान महावीर होने चाहिए। तुरन्त वे दोनों साध्वियाँ वहाँ आयी—जहाँ भगवान महावीर

को इस स्थिति मे देखा। तब आरक्षकों को कहा कि अरे मुर्खों! क्या तुम मरने की इच्छा करते हो—क्या तुम नहीं जानते हो –ये सिद्धार्थ राजा के पुत्र भगवान महावीर है।

सारिथयों से उपरोक्त वचन सुनकर भयभीत हुए— फलस्वरूप भगवान को मुक्त कर दिया और भगवान से क्षमायाचना करने लगे।

·६ चतुर्थ चतुर्मास के बाद—उष्णपरीषह

हरिद्र ग्राम में अग्नि का परीषह—

(श्रावस्ती नगरी में पदार्पण के बाद)

(क) ताहे सामी हलेद्दुको नाम गामो तं गतो, तत्थ महप्पमाणो हलेद्दुगरुक्खो तत्थ सावत्थीतो नयरीतो अन्नो लोगो निग्गच्छंतो पविसंतो य वसइ, तत्थ सत्थो निवसितो, सामी पडिमंठितो, तेहिं सत्थिएहिं रत्ति सीयकाले अग्गी जालिओ ते वट्टे पभाए उट्ठित्ता गता, सो अग्गी तेहिं न विज्झावितो, सो डहंतो सामिस्स पासं गतो, सो सामिं परितावेइ, गोसालो भणइ भयवं। नासह अग्गी एइ, सामिस्स पादादड्ढा, गोसालो नट्ठो।

—आव० नि गा ४७७। मलय टीका

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० १८८

(ख) किंचित् स्थित्वा प्रभुरगाद्ग्रामं नाम्ना हरिद्रकम्।
बहिर्हरिद्रवृक्षस्य तलेऽस्थात् प्रतिमाधरः॥
पत्रच्छायातपत्रस्य तलेतस्यैव शाखिनः।
तदाऽवात्सीन्महासार्थः श्रावस्तीं नगरीं गमी।
स तु सार्थः शीतभीतो व्याघ्रभीत इवानलम्।
नक्तमज्वालयत्प्रातरुत्थाय च ययौ पुरः॥
स प्रमादादशान्तोऽग्निर्व्याधिवत्प्रसरन् क्रमात्।
आगादुपमहावीरं मध्यंभोधीव वाडवः॥
एत्येष वह्निर्भगवन्नश्य नश्येत्यथ ब्रुवन्।
काकनाशं प्रणश्यागाद्गोशालः शीघ्रमन्यतः॥
श्रुत्वापि तद्वचः स्वामी ध्यानानलमिवानलम्
तं कर्मेन्धनदाहाय मन्वानोऽस्थादतिस्थिरः।

चरणौ स्वामिनस्तेन वह्निना श्यामलीकृतौ।
हैमनेन तुषारेण पद्मकोशाविवाधिकम्॥
शान्ते वह्नौ सगोशालो ग्रामेऽगाल्लांगलाभिधे,

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ५२० से ५२७

जब श्रावस्ती नगरी से विहार कर भगवान हरिद्र ग्राम के बाहर हरिद्र वृक्ष के नीचे प्रतिमा में स्थित थे तब पत्र की छायारूप छत्रवाले उस वृक्ष के नीचे श्रावस्ती नगरी की ओर गमन करता हुआ एक मोटा सार्थ ठहरा। बाद तथा शीत से भय प्राप्त सार्थ ने रात्रि मे अग्नि प्रज्वलित की। प्रात: काल होने से वहाँ से वह चला गया लेकिन प्रमादवश उस अग्नि को नहीं बुझाया फलस्वरूप अग्नि व्याधि की तरह क्रमश: प्रसरण करती हुई समुद्र में बडवानल की तरह भगवान महावीर के निकट आ गयी। उस समय गोशाला भगवान को कहा कि हे भगवान! यह अग्नि नजदीक आ गयी है अत: यहाँ से आपको हट जाना चाहिए। ऐसा कहकर गोशाला तुरन्त काक पक्षी की तरह अन्यत्र स्थान में चला गया। यद्यपि भगवान ने गोशाले के वचन को सुना परन्तु कर्मरूप इधन को जलाने के लिए ध्यान रूप अग्नि की तरह उस अग्नि को मानते हुए भगवान स्थिर होकर खडे रहे। हेमन्त के तुषार से कमल के दो कोश की तरह उस अग्नि से भगवान के चरण श्याम पड गये। बाद में अग्नि शांत भी हो गई।

.१० आवर्त्त ग्राम में आक्रोश परीषह

(क) आवत्ते मुहतासे मुणिवत्ति य बाहि बलदेवो।

—आव० नि गा ४८०। उत्तरार्ध

मलय टीका—ततो भगवान् आवर्त्ते ग्रामे बलदेवगृहे प्रतिमां प्रतिपन्नः। तत्र मुखेन विकृतीकृतेन डिम्भान् त्रासितवान्, ततस्तन्मातापितरौ यथा पिशाच इति परिभाव्य गोशालं मुक्त्वा स्वामिनं उपद्रवाय ढौकितवन्तस्तदा च बलदेवप्रतिमा नांगलमुत्पाट्य वाहितवान्।

(ख) कायोत्सर्गं पारयित्वा ग्राम आवर्तनामनि।
गत्वा स्वामी बलदेवौकस्यस्थात् प्रतिमाधरः॥५३४॥
डिर्भास्तत्रापि गोशालो भीषयामास पूर्ववत्।
तत्पितृभिः कुट्यते स्म चक्रीवानिव दुर्मदः॥५३५॥

× × ×

स्वाम्यस्य कुट्यतामेष य एनं न निषेधति।
भृत्यानामपराधे हि भर्तुर्दंड इति स्थितिः॥ ५३८॥

हित्वाऽगस्यपि गोशालं शालावृक्षमिवाथ ते।
उद्दस्तदंडाः श्रीवीरभ्यढौकन्त दुर्धियः॥ ५३६॥
तत्रस्थव्यन्तरेणार्हद्‌भगृह्येणाधिष्ठिता रुषा।
साक्षात्सीरीव सीर्यद्योत्सीरोदस्थाद्धतद्वहे॥ ५४०॥
आशंकाविस्मयाकीर्णाः पतित्वा पादपद्मयोः।
स्वामिनं क्षमयामासुस्ते ग्रामीणाः स्वनिन्दिनः॥ ५४१॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ५३४, ५३५, ५३८ से ५४१

जब भगवान महावीर आवर्त ग्राम मे बलदेव के मदिर मे प्रतिमा मे स्थित थे उस समय गोशालक प्रेत की तरह विकृत रूप धारण कर बच्चों को डराने लगा। फलस्वरूप बालकों के पिताओं ने वहाँ आकर गोशालक को दुर्मद साड की तरह कुटने लगे। फिर भी अपनी प्रवृत्ति को नही बदला।

फलस्वरूप क्रोधित होकर बालको के पिता आये। स्वामी—इसको निषेध नही करते है अत. स्वामी को दण्ड देना चाहिए, सेवक को नही। गोशालक का अपराध होते हुए भी उसे छोड़ा, दण्ड घुमाते हुए दुर्बुद्धि लोग वीर प्रभु के पास आये। उस समय वहाँ स्थित अर्हत का भक्त व्यतरदेव बलदेव की प्रतिमा मे स्थित हुआ। मानो वह प्रत्यक्ष बलदेव था। उस बलदेव की प्रतिमा हल लेकर उनके सम्मुख मारने आयी।

फलस्वरूप आशका और विस्मय प्राप्त होकर सर्व ग्रामवासी भगवान् के चरण मे पड़ गये और क्षमा मांगने लगे, स्वयं की निंदा करने लगे।

·११ कलंबुक ग्राम में वधपरीषह

(क) जगाम च जगन्नाथः सन्निवेशं कलंबुकम्॥ ५४८॥
तत्रोभौ भ्रातरौ मेघः कालहस्ती च शैलपौ।
कालहस्ती तदा सैन्यैरधावच्चौरपृष्ठतः॥ ५४६॥
गोशालसहितं नाथमागच्छन्तं ददर्श सः।
चौराविव्याशशंके च तादृशामीदृशी हि धीः॥ ५५०॥
कौ युवामिति सोऽपृच्छत् स्वामी मौनीत्युवाच न।
केलिप्रियत्वाद्‌गोशालोऽप्यस्थान्मौनी प्लवंगवत्॥ ५५१॥
गोशालं स्वामिनमपि स बद्ध्वा भ्रातुरार्पयत्।
स्वामिनं दृष्टपूर्वी च मेघः सिद्धार्थसेवकः॥ ५५२॥

क्षमयित्वामुचन्मेघो नाथं नाथोऽपि चावधेः ।
ज्ञात्वाचिन्तयदद्यापि निर्जार्यं बहु कर्म मे ॥ ५५३ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ५४८ उत्तरार्ध, ५४९ से ५५३

(ख) मेहो अ कालहत्थी कलंबुआए उ उवसग्गा ।

आव० नि गा ४८१ । उत्तरार्ध

टीका—××× भगवान् कलंबुकायां सन्निवेशे गतः, तत्र द्वौ भ्रातरौ-मेघः कालहस्ती च, तत्र कालहस्तिना उपसर्गाः कृता, मेघेन च भगवान् पूजित इति शेषः ।

जब भगवान् महावीर चोराक ग्राम से विहार कर कलंबुक ग्राम पधारे । तब उस ग्राम में मेघ और कालहस्ति सैन्य लेकर चोरों के पीछे जा रहे थे । उन्होंने मार्ग में गोशालक सहित भगवान् को आते हुए देखा उन दोनों पर चोरों की आशंका हुई । कालहस्ति ने पूछा कि तुम कौन हो परन्तु भगवान बोले नहीं—मौनी थे । गोशालक बंदर की तरह मौन रहा । फलस्वरूप गोशालक और भगवान दोनों को बांध कर अपने भ्राता के पास रखा । मेघ राजा सिद्धार्थ का सेवक रहा था । उसने भगवान को देखा, पहचान लिया । छोड़ दिया ।

·१२ लाढ देश के परीषह—उपसर्ग

(क) अहदुच्चर-लाढमचारी, वज्जभूमिं च सुब्भ [म्ह ?] भूमिं च ।
पंतं सेज्जं सेविंसु, आसणगाणि चेव पंताइं ॥

—आया श्रु १ । अ ९ । उ ३ । गा २ । पृ ७६

टीका—किञ्च अहदुच्चर इत्यादि अथानंतर्येदुःखेन चर्यतेस्मिन्नेति दुश्चरः स चासौ लाढश्च जनपदविशेषो दुश्चरलाढस्तं चीर्णवानिव हृतवान् स च द्विरूपो वज्रभूमिः शुभ्रभूमिः श्वभ्रादिरूपमपि विहृतवांस्तत्रच प्रांतां शय्यां वसतिं शून्य-गृहादिकामनेकोपद्रवोपद्रु॰तां सेवितवांस्तथा प्रातानिवासनानि पांशूत्कर शर्करा लोष्टाद्युपचितानि काष्ठानिच दुर्घटितान्यासेवितवानिति ।

भगवान महावीर ने दुश्चर लाढ जनपद प्रदेश की वज्रभूमि तथा शुभ्रभूमि में (उबड़ खाबड़ प्रदेश में) विचरण किया था । उनको शून्य गृह-खण्डहर आदि उपद्रव युक्त शय्या प्राप्त होती थी; तथा पांशु-धूल से भरे, बालु से भरे, कंकर, पत्थर तथा काष्ठ से भरे हुए विषम आसन प्राप्त होते थे, उनका भी भगवान समभाव से सेवन करते थे ।

(ख) लाढेहिं तस्सुवसग्गा, बहवे जाणवया लूसिंसु ।
अहलूहदेसिए भत्ते, कुक्कुरा तत्थहिंसिंसु णिवतिंसु ॥

अप्पे जणे णिवारेइ, लूसणए सुणए दंसमाणे।
छुछुकारंति आहंसु, समणं कुक्कुरा डसंतुत्ति॥

—आया० श्रु० १। अ ९। उ ३, । गा ३,४। पृ० ७६

टीका—किञ्च लाढेहिं इत्यादि लाढा नाम जनपदविशेषास्तेषु वज्रभूमिसुभ्रभूमिरूपेष्वपि लाढेषु तस्य भगवतो बहव उपसर्गा प्रायशः प्रतिकूला आक्रोशश्च भक्षणादयश्च आसंस्तानेव दर्शयति जनपदेभवा जानपदा अनार्यचारिणो लोकास्ते भगवन्तं लूषितवंतो दंतभक्षणोलमूकदंडप्रहारादिभिर्जिहिंसु रथशब्दोपि शब्दार्थे स चैवं द्रष्टव्यो भक्तमपि तत्र रूक्षं दश्यं रूक्षकल्पमंतप्रांतमिति यावत् तेषानार्यतया प्रकृतिक्रोधनाः कर्पासाद्यभावत्वाच्च तृण प्रावरणाः सन्तो भगवति विरूपमाचरति तथा तत्र कुक्कुराः श्वानस्तेव जिहिंसुरुपरिच निपेतुरिति।

किञ्च अप्पे इत्यादि अल्पश्लोकः स जनो यदि परं सहस्राणामेको यद्विवा-नास्त्येवासाविति यस्तान् शुनोल्लूषकान् दशतो निवारयति निषेत्रयत्यपितु दंड-प्रहारादिभिर्भगवंत हत्वा तत्प्रेरणायासीत् कुर्वन्ति कथं तु नामैनं श्रमणं कुक्कुराः श्वानो दशंतु भक्षयन्तु तत्र चैवंविधे जनपदे भगवान् षण्मासावधि कालं स्थित-वानिति।

लाढ देश मे भगवान को बहुत से उपसर्ग सहने पडे, वहाँ आहार भी उनको लूखा-सूखा मिलता था। उस जनपद के लोग उनको दंडप्रहादि से मारते थे और दाँतों से काटते थे, लुकाठी से जलाते थे। वहाँ कुत्त भी भगवान को कष्ट देते थे और काटने के लिए उन पर झपट पडते थे। उस समय कदाचित् हजारों मे से कोई एक आदमी उन काटते हुए, कष्ट देते हुए कुत्तों को रोकता था, भगा देता था। कोई-कोई अनार्य व्यक्ति कुत्तों को छू छू करके भगवान के पीछे लगा देते थे जिससे वे कुत्ते श्रमण भगवान को काट खायें।

टीकाकारके अनुसार भगवान ने छह मास लाढ देश मे विचरण किया। उन कष्टों को भगवान ने समभाव से सहन किया।

णिधाय दंडं पाणेहिं, तं कायं वोसिज्जमणगारे।
अह गामकंटए भगवं ते, अहियासए अभिसमेच्चा॥

—आया० श्रु १। अ ९। उ ३। गा ७

गृहरहित अनगार भगवान प्राणियों को दण्ड देने का सर्वथा त्याग करके और अपने शरीर पर ममत्व का त्याग करके और परीषहों को समभावपूर्वक सहन करने से निर्जरा होती है ऐसा जानकर उन नीच जनों के कठोर वाक्यों को और अन्य परीषहों को समभाव पूर्वक सहन करते थे।

(ख) णाओ संगामसीसे वा, पारए तत्थ से महावीरे।
एवं वि तत्थ लाढेहिं, अलद्धपुव्वो वि एगया गामो॥
—आया० श्रु १ । अ ६ । उ ३ । गा ८

जैसे हाथी संग्राम के अग्रभाग मे शत्रुओं का प्रहार सहन करता हुआ शत्रुसेना को पार कर जाता है इसी तरह उन भगवान महावीर स्वामी ने भी परीषहों को सहन करते हुए उस लाढ देश को पार किया था। कभी-कभी तो उस लाढ देश मे ठहरने के लिए भगवान को ग्राम भी नही मिला था।

(च) उवसंकमंतमपडिण्णं, गामंतियं वि अप्पत्तं।
पडिणिक्खमित्त लूसिसु' एत्तो परं पलेहित्ति॥६॥

भिक्षार्थ या निवासार्थ जाते हुए प्रतिज्ञा रहित ग्राम के निकट न पहुँचे हुए भगवान को ग्राम से निकल कर वे अनार्य लोग मारते थे। और वे इस प्रकार कहते थे कि यहाँ से दूर चला जा।

हयपुव्वो तत्था दंडेण, अदुवा मुट्ठिणा अदु कुंताइफलेण।
अदु लेलुणा कवालेण, हंता-हंता बहवे कंदिसु॥१०॥

वहाँ लाढ देश म कोई डण्डे से अथवा कोई मुट्ठी से अथवा कोई भाले से अथवा कोई मिट्टी के ढेले से अथवा और कोई टूटे हुए घडे के टुकड़ों से भगवान को मारते थे। इस प्रकार मार मार कर बहुत से अनार्य लोग होहल्ला मचाते थे।

मंसाणि छिण्णपुव्वाइं, उट्ठंभंति एगया कायं।
परीसहाइं लुंचिंसु, अहवा पंसुणा अवकरिंसु॥११॥

वे अनार्य लोग कभी-कभी भगवान का मांस काट लेते थे और कभी-कभी उन्हें पीटते थे और कभी-कभी उनके शरीर को पकड कर धक्का देते थे। और कभी-कभी उन्हें पीटते थे अथवा उनके ऊपर धूलि उछालते थे। इस प्रकार अनेक परीषह देते थे किन्तु भगवान उन सब को समभाव पूर्वक सहन करते थे।

उच्चालइय णिहणिंसु, अदुवा आसणाओ खलइंसु।
वोसट्ठकायपणयासी, दुक्खसहे भगवं अपडिण्णे॥१२॥
—आया० श्रु १ । अ ६ । उ ३ । गा० ६ से १२

वे अनार्य लोग भगवान को ऊपर उठा कर पृथ्वी के ऊपर पटक देते थे अथवा आसन से नीचे गिरा देते थे। परन्तु भगवान काया का ममत्व त्याग करके परीषह सहन करने

मे तत्पर थे। भगवान उन समस्त कष्टों को सहते थे और उनकी निवृत्ति के लिए प्रतिज्ञा-रहित थे।

(छ) सूरो संगामसीसे वा, संवुडे तत्थ से महावीरे।
पडिसेवमाणे, फरुसाइं अचले भगवं रीइत्था॥
- आया० श्रु १। अ ६। उ ३। गा० १३

जैसे शूरवीर पुरुष संग्राम के अग्रभाग मे युद्ध करता हुआ शत्रुओं द्वारा क्षुब्ध नहीं होता वैसे ही वहाँ लाढ देश मे विचरते हुए अपनी समस्त इन्द्रियों के गुप्त रखते हुए वे भगवान महावीर स्वामी उन परीषह उपसर्गों से क्षुब्ध नहीं होते थे अपितु उन कठोर परीषहों को समभाव पूर्वक सहन करते हुए अपने व्रतों मे अचल होकर विचरे थे।

(ज) ×× ×× नाथोऽपि चावधेः।
ज्ञात्वाचिन्तयद्द्यापि निर्जर्यं बहु कर्म मे॥५५३॥
कर्मासहायैस्तन्मन्ये न हि क्षय्यं मनागपि।
जय्यं महद्द्विषच्चक्रं विना न खलु सैनिकैः॥५५४॥
आर्यदेशे विहरता सहाया दुर्लभा मया।
तस्मादनार्यदेशेषु विहरिष्यामि संप्रति॥५५५॥
एवं विमृश्य भगवान्निसर्गक्रूरपूरुषम्।
विवेश लाटविषयं यादोघोरमिवार्णवम्॥५५६॥
मुंड इत्यहनन् केऽपिस्पर्श इत्यपरेऽचरन्।
बबन्धुर्दस्युरित्येके श्रीवीरं तत्र पुरुषाः॥५५७॥
भषणान्मुमुचुः केऽपि प्रतिश्वामि कुतूहलात्।
चक्रुः स्वरूच्या निःशंकमन्येऽन्याश्च विडम्बनाः॥५५८॥
अमोदतोपसर्गैस्तैः कर्मणा क्षप्रणात्प्रभुः।
अत्युग्रैर्भेषजै रोगी रोगनिग्रहणादिव॥५५९॥
गोशालोऽप्यनुलग्नः सन्सेहे विविधवेदनाः।
बन्धनताडनादुत्था वनानीत इवद्विपः॥५६०॥
तत्रैव भूरिशः कृत्वा कर्मनिर्जरणं प्रभुः।
कृतयकृत्य इवाचालीदार्यदेशस्य संमुखम्॥५६१॥
यान्तं च स्वामिनं पूर्णकलशग्रामसन्निधौ।
प्रवेष्टुकामौ लाटोर्व्यां तस्करौ द्वावपश्यताम्॥५६२॥

तावसौ दुःशकुनमित्युद्यतासी जिघांसया।
प्रति प्रभुं दधावाते प्रेतावुल्कर्त्रिकाविव ॥५६३॥
वर्त्ततेऽद्य कथं स्वामीत्युच्चिन्त्यो वज्रभृत्तदा।
ददर्शावधिना नाथं जिघांसू तौ च तस्करौ ॥५६४॥
तौ वज्रेणावधीद्वज्री वज्रशैलक्षमौजसा।
दन्तिक्षोदक्षमेणेव पाणिना हरिणौ हरिः ॥५६५॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३

(ख) ततो सामी चिंतेइ—बहुं कम्मं निज्जरेयव्वं, लाढाविसयं वच्चामि, ते अणारिया तत्थ निज्जरेमि, तत्थ भयवं अत्थारियदिट्ठंतं हियए करेइ, ततो पविट्ठो लाढाविसयं कम्मनिज्जरातुरितो, तत्थ हीलणनिंदणाहिं बहुं कम्मं निज्जरेइ पच्छा ततो नीति, तत्थ पुण्णकलसो नाम अणारियग्गामो, तत्थंतरा दो तेणा राढाविसयं पविसिउं कामा अवसउणो एयस्सचेव वहाए भवउत्तिकट्टु असिं कड्ढिऊण सीसं छिंदामित्ति पधाविया, ताहे सक्केण ओहिणो आभोइया, दोवि वज्जेण हया, अण्णे भणंति—सिद्धत्थेण ते असी तेसिं चेव उवरिं छूढा, तेसिं सीसाणि छिन्नाणि। × × ×

—आव० नि। गा ४८१। टीका

लाढेसु अ उवसग्गा घोरा पुन्नकलसीअ दो तेणा।
वज्जहया सक्केणं × × × ॥

—आव० नि। गा ४८२

टीका—ततो भगवान् लाढासुजनपदे गतः, तत्र घोरा उपसर्गा अभवन्, ततो लाढाभ्यो निर्गतोऽन्तरा पूर्णकलशो नाम ग्रामः, तत्र भगवतो द्वौ स्तेनौ वधायोपस्थितौ, तौ शक्रेण वज्रेण हतौ। × × ×

भगवान ने कलबुक नगर में अवधि ज्ञान से जाना कि अभी मुझे बहुत ज्यादा कर्मों की निर्जरा करनी है; सहाय्य के बिना बहुत ज्यादा कर्मोंका क्षय नहीं किया जा सकता है क्योंकि सैनिकों के सिवाय महान् शत्रुओं के समूह पर विजय प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इस आर्य देश में विचरण करने से मुझे उस प्रकार का सहाय्य प्राप्त होना—दुर्लभ है अतः मुझे उचित है कि मैं अनार्य देश में विचरण करूं।

ऐसा विचार कर भगवान मोटे घोर सागर में जलजंतु प्रवेश करते हैं उस प्रकार लाढ देश में प्रवेश किया। उस देश में प्रायः सर्व क्रूर स्वभावी मनुष्य ही रहते थे। भगवान को वहाँ देखकर कोई 'मुंड मुंड' कह कर मारने लगे। कोई स्पर्शवादी (आर्य देश के राजा के

गुप्तचर, समझकर पकड़ने लगे। कोई चोरचारी समझकर बाँधने लगे। कोई कौतुकवश भगवान के ऊपर भक्षण करनेवाले श्वानों को छोड़ने लगे। और दूसरे स्वयं की इच्छानुसार दूसरी अनेक प्रकार की विडम्बना करने लगे। जैसे रोगी अति उग्र औषधि से रोग का निग्रह हुआ जानकर अतिहर्ष को प्राप्त होता है वैसे ही प्रभु अनेक प्रकार के उपसर्गों से कर्म-क्षय को जानकर अति हर्ष को प्राप्त होते थे। वन में से पकड़कर लाये हुए हाथी की तरह गोशालक भी वहाँ बन्धन और ताड़नादि से अनेक वेदनायें सहन की थी।

वहाँ प्रभु कर्मों की बहुत घनी निर्जराकर मानो कृतार्थ हुए। वहाँ से भगवान आर्य देश की ओर विहार किया।

जब भगवान पूर्णकलश नामक ग्राम के नजदीक थे—उस लाढदेश की भूमि में प्रवेश करने की इच्छा थी उस समय दो चोरों ने भगवान को सामने आते हुए देखा। यह अपशकुन हुआ ऐसा अवधारण कर भगवान को मारने की इच्छा की। कृतिका उपाड़कर, आये हुए प्रेत की तरह खड्ग उठाकर भगवान के सामने दौड़े।

उस समय देव लोक में स्थित इन्द्र ने चिंतवन किया कि इस समय भगवान महावीर कहाँ है। अवधिज्ञान से इन्द्र ने भगवान् तथा उनको मारने के लिए तैयार हुए दोनों चोरों को वहाँ देखा।

फलस्वरूप इन्द्र ने उन दोनों चोरों को वज्र से मार डाला।

नोट—लाढ देश के वज्रभूमि और शुभ्रभूमी नामक दोनों विभागों में विचरे थे। यह प्रदेश वर्त्तमान उड़ीसा प्रान्त की सीमा पर और प्राचीन सूत्र की दृष्टि से ब ग अथवा वेदी देश की सीमा पर होना चाहिए ऐसी प्राचीनतम लेखकों की मान्यता रही है। अन्य ग्रन्थकार इस प्रदेश को श्रावस्ती नगरी के उत्तर में हिमालय बरफ के पहाड़ी प्रदेश में होना बताते हैं।

'१३ कूपिका ग्राम में बध परीषह

(क) ततो सामी कूवियं नाम संनिवेसंगतो, तत्थ चारियत्तिकाऊण घेप्पंति पिट्टिज्जंति य, तत्थ लोगसमुल्लावो—अहो देवज्जगो रूवेण जुव्वणेण य अप्रतिमो चारियत्ति काउं गहितो, तत्थविजया पगब्भा य दोन्नि पासनाहंतेवासिणीतो परिव्वाइयातो, लोगस्स पासे सोऊण तित्थगरो पव्वइयो वच्चामो ता पलाएमो' को जाणइ होज्जा? ताहे तेहिं मोइतो, दुरप्पा न याणह चरमतित्थयरं सिद्धत्थरायपुत्तं, अज्ज मे सक्को उवालभिस्सइत्ति, ताहे मुक्को खामितो य, ततो मुक्का समाणा निग्गया।

—आव० नि गा ४७९। मलय टीका

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० २९१-२९२

(ख) अथागाद्विहरन् वीरः कूपिकं सन्निवेशनम्।
तत्रारक्षैः सगोशालः स्पशभ्रान्त्या कदर्थितः ॥५८१॥
देवार्यो रूपवान् शान्तो युवारक्षैः स्पशभ्रमात्।
निरागास्ताड्यमानोऽस्तीत्युल्लापोऽभूज्जानेऽखिले ॥५८२॥
पार्श्वशिष्ये च प्रगल्भाविजये प्रोज्झितव्रते।
निर्वाहाय परिव्राट्त्वं प्रपन्ने तत्र तिष्ठतः ॥५८३॥
वार्तामाकर्ण्य तां मा भूद्वीरोऽर्हन्निति शंकया।
तत्रेयतुस्तथास्थंच भगवंतमपश्यताम् ॥ ५८४॥
ते स्वामिनं ववन्दाते आरक्षांश्चैवभूचतुः।
रे मूर्खा किं न जानीथ वीरं सिद्धार्थनंदनम् ॥५८५॥
शीघ्रं मुञ्चत चेज्ज्ञाता शक्रो व्यतिकरं ह्यमुम्।
पातयिष्यति वो मूर्ध्नि वज्रं प्राणहरं तदा ॥५८६॥
अथ तैश्चकितैर्मुक्तः क्षमितश्च प्रभुः पुरीम् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ५८१,५८६, ५८७ पूर्वार्ध

जब भगवान गोशालक के साथ कूपिका ग्राम पधारे। वहाँ आरक्षक लोग प्रच्छन्न चलने से भ्रांति से गोशालक सहित भगवान को हैरान करने लगे उस समय निरपराधी ऐसे रूपवान्, शांत, युवान् देवार्य को गुप्तचर की भ्रांति से आरक्षक मारने लगे। लोगों मे यह बात फैली।

भगवान पार्श्वनाथ की प्रगल्भा और विजया नामक दो शिष्या जिन्होंने चारित्र को छोड़कर निर्वाह के लिए परिव्राजिका हो गई थी—उस समय वह वहाँ थी उक्त वार्तालाप को उन्होंने सुना। उन दोनों के मन मे आशंका हुई कि वीर भगवान तो नही हैं। ऐसी आशंका धारण करती हुई वहाँ आयी। उन्होंने भगवान को उस स्थिति मे देखा और भगवान को वन्दन-नमस्कार कर आरक्षकों को कहा—"अरे मूर्खो। ये सिद्धार्थ राजा के पुत्र भगवान महावीर है क्या तुम नही जानते हो। तुम! भगवान को जल्दी छोड़ दो! यदि शक्रेन्द्र को इस बात का मालूम हो गया तो वज्र के द्वारा प्राण हरण कर लेंगे। ऐसा सुनकर उन्होंने भगवान को मुक्त कर दिया और भगवान से बार-बार क्षमा-याचना की।

·१४ पाँचवें चतुर्मास के बाद :

शालिशीर्ष ग्राम में भगवान को शीतपरिषह—शीतोपसर्ग

(क) ग्रामेऽथ शालिशीर्षेऽगात्तत्र च त्रिजगत्प्रभुः।
ध्यानेऽस्थात्प्रतिमया माघमासस्तदा त्वभूत् ॥ ६१४ ॥

वानमन्तरिका तत्र नामतः कटपूतना।
त्रिपृष्टजन्मनि विभोः पत्नी विजयवत्यभूत् ॥ ६१५ ॥

सम्यगप्रतिचरिता सामर्षैव च सती मृता।
भ्रान्त्वा भवान् सा मानुष्यं प्राप्य बालतपोऽकरोत् ॥ ६१६ ॥
सा तत्र व्यन्तरीभूता स्वामिनः पूर्ववैरतः।
तेजोऽसहिष्णुर्व्यकरोत्तापसी रूपमग्रतः ॥ ६१७ ॥

जटाभृद्वल्कलधरा हिमशीतेन पाथसा।
आर्द्रयित्वा वपुस्तस्थावुपरिष्टाज्जगत्प्रभोः ॥ ६१८ ॥

ततो वातं विकुर्याङ्गान्यधुनोच्छल्लकीव सा।
जिनेपेतुः शलानीव दुःसहाश्वांबुबिन्दवः ॥ ६१९ ॥

जटाग्राद्वल्कलाग्राच्च पतन्तस्तोयबिन्दवः।
चिक्लिशुर्नाथमन्यश्चेद्‌भवेन्नूनं स्फुटेत्तदा ॥ ६२० ॥
भर्तुः शीतोपसर्गं तं सहमानस्य तां निशाम्।
विशेषात् कर्मक्षपणं धर्मध्यानमदीप्यत ॥ ६२१ ॥

बभूव चावधिज्ञानं श्रीवीरस्वामिनोऽधिकम्।
अनुत्तरस्थितस्यैव सर्वलोकावलोकनम् ॥ ६२२ ॥
महजंत्रवधिज्ञानं यावद्देवभवेऽभवत्।
एकादशांगीसूत्रार्थभृत्त्वं च चरमार्हतः ॥ ६२३ ॥

शान्ता निशान्ते सा सानुतापा च कटपूतना।
पूजयित्वा प्रभुं भक्त्या निजंस्थानमुपाययौ ॥ ६२४ ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ६१० से ६२४

(ख) बहुसालगमालवणे कडयूयण पडिम विग्गणोवसग्गे।

—आव० नि० गा० ४८६

(ग) सामी गामायं नाम संनिवेसंगतो, तत्थ विभेलए उज्जाणे विभेलतो तो नाम जक्खो, सोयभगवतो पडिमं ठियस्स पूयंकरेइ, ततो सामी सालिसीसयं नाम गामो तहिं गतो, तत्थुज्जाणे पडिमंठितो, माहमासो य वट्टइ, तत्थ कडपूयण-वाणमंतरी सामिंदट्ठूण तेयं असहमाणी पच्छा तावसीरूवं विउव्वित्ता वक्कलणियत्था जडाभारेण य सव्वं सतीरं पाणियत उल्लेत्ता सामिस्सउवरिं ठाउं धुणइ वायं च

विउव्वइ' जइ अन्नो हुंतो फुट्टो हुंतो, तिव्वं वेयणमहिमासेंतस्स भयवतो ओही पसरितो, सव्वलोगं पासिउमारद्धो, सेसंकालं गब्भाओ आढवित्ता जाव सालिसीसं ताव एक्कारस अंगा सुरलोयप्पमाणमेत्तो य ओही, जावइयं देवलोगेसु पेच्छियाइतो तावतितो इतिभावः; सावि वंतरी पराइया पच्छा उवसंता थुणइ पूयं च करेइ ॥

—आव० नि गा ४८५ । मलय टीका

—आव० चू० पूर्व भाग पृ २९२ से २९३

जब भगवान महावीर शालिशीर्ष ग्राम मे उद्यान मे प्रतिमा मे स्थित थे। माघ मास था। वहाँ कटपूतना नामक एक वाणव्यंतरी देवी रहती थी। वह भगवान के त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव मे विजयवती नामक पत्नी थी। भवभ्रमण करती हुई मनुष्य भव को प्राप्त किया। उस भव मे बालतप का आसेवन किया फलस्वरूप कटपूतना वाणव्यंतरी देवी हुई। पूर्व के वैर से भगवान के तेज को सहन न करने से तापसी का रूप धारण किया, तत्पश्चात् मस्तक पर जटा धारण की। वल्कल के वस्त्र पहने। हिम के समान शीतल जल मे शरीर को उलेचकर भगवान के ऊपर खड़ी रही। पवन विकुर्वणा की और सीसीलिया की तरह शरीर को कपाने लगी। फलस्वरूप उसके शरीर से जल के अति दु:सह शीतल जल बिन्दु भगवान पर ऊंचे से पड़ने लगे। जटा के अग्र भाग से और वल्कल मे से पडे हुए जलबिन्दु पलाखो दिये। यदि कोई अन्य पुरुष होता तो उस शीतोपसर्ग से मर जाता।

इस प्रकार सारी रात शीतोपसर्ग को सहन करते हुए भगवान ने अत्यधिक कर्मों को खपाया, धर्मध्यान से दीप्यमान थे। भगवान को लोक प्रमाण अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ।

रात्रि व्यतीत हुई। उसे पश्चाताप हुआ। भक्ति पूर्वक भगवान की पूजा की।

·१५ पाँचवें चातुर्मास के बाद—

वैशाला नगरी में भगवान को उपसर्ग

(क) स्वामी जगाम वैशाल्यां शालां कर्मारसंश्रिताम्।
अनुज्ञाय जनांस्तस्थांस्तस्थौ च प्रतिमाधरः ॥६०५॥
कर्मारो रोगितश्चैव षण्मास्या कल्यतां गतः।
शुभेऽह्नि स्वजनेन वृतः शालमियाय ताम् ॥६०६॥
तत्राग्रे स्वामिनं दृष्ट्वा सोऽचिन्तयदहो इदम्।
प्रथमेऽप्यह्नि पाखंडिदर्शनाशकुनं मम ॥६०७॥
इहैवमंगलमिदं पातयामीत्ययोधनम्।
उत्पाट्य स्वामिनं हन्तुं सोऽधावत दुराशयः ॥६०८॥

क्व स्वामीति तदा ज्ञातुं प्रायुंक्त मघवाऽवधिः ।
जिघांसुं तं च कर्मारमपश्यच्चाजगाम च ॥६०६॥
तस्यैवर्तघनं मूर्ध्नि स्वशक्त्याऽपातयद्धरिः ।
कथंचिद्रोग मुक्तोऽपि जगामस यमालयम् ॥६१०॥
प्रणम्य स्वामिनं शक्रः कल्प सौधर्ममभ्यगात् ।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३

(ख) सामीवि वेसालिं गतो; तत्थ कम्भगारसालाए अणुण्णवित्ता पडिमं ठितो' सा य साला साहारणा, नेसिआधीना ते तत्थ अणुण्णविता, अन्नया तत्थेगो कम्भकारो छम्मास रोगपीडितो सोहणे तिहिकरणे आउज्जाणि गहाय आगतो, सामिं पासइ पडिमं ठिय, ततो अमंगलमेयंति घणं उग्गाहेऊण सामि आहणेउं पहावितो, सक्केण ओही पउत्तो जाव पेच्छइ, ततो निमिसंतरेण आगतो' सक्केण तस्स चेव उवरि घणो साहितोमतो, ततोसक्को वंदिता गतो' एनमेवार्थमुपसंहरन्नाह—

× × ×

भगवं वेसालीए कम्मार घणेण देविदो ।

—आव० नि गा ४८५ । उत्तरार्ध

आव० चू० पूर्व भाग पृ० २६२

टीका × × × भगवांश्च वैशाल्यां गतः' तत्र कर्म्मकरो भगवंतं घनेनाहन्तुं प्रवृत्तः अत्रान्तरे देवेन्द्र आगतः, तेन स मारितः ॥

जब भगवान महावीर वैशाली नगरी पधारे तथा वहाँ लोहकार की शाला में स्थित हो गये। उस शाला का कर्मकार छः मास से रोग से पीड़ित हुआ तुरन्त निरोग भी हो गया। उस दिन ही स्वजनों के साथ शाला में आया—वहाँ भगवान को देखकर चिंतन किया कि—प्रथम दिन ही मुझे इस पाखण्डी का दर्शन हुआ था जिससे मोटा अपशकुन हुआ अतः मुझे उचित है कि इसके मस्तक पर लोहे का घण मारकर अमगल को दूर करना चाहिये।

तत्पश्चात् वह दुष्ट प्रभू को मारने के लिए घण उपाड़कर दौड़ा। उस समय इन्द्र ने विचार किया कि इस समय भगवान कहाँ हैं ! अवधिज्ञान से इन्द्र देखा कि लुहार घन मारने के लिए उद्यत हुआ है फलस्वरूप तत्काल इन्द्र वहाँ आया और स्वयं की शक्ति से उस घण को उसके ही मस्तक पर गिराया जिससे रोग मुक्त होने पर भी लुहार उस घण के प्रहार से प्राणान्त हो गया।

इन्द्र भगवान को नमस्कार कर सौधर्म कल्प में वापस गया।

१६ बहुशालग्राम में शालार्य व्यंतरी का उपसर्ग

(क) ततो सामी बहुसालगो नाम गामो, तत्थ सालवणं नाम उज्जाणं, तत्थ गतो तत्थ सालज्जा वाणमंतरी· सा वाणमंतरी पूयं करेइ, अन्ने भणंति सा कडपूयणा वाणमंतरी भगवतो पडिमागयस्स उवसग्गं करेइ, ताहे परिसंता महिमं करेइ।

—आव० नि गा ४८८। मलय टीका

(ख) ग्रामेऽगाद्बहुशालाख्ये तपःशालीजगद्गुरुः।
तत्र शालवनोद्याने तस्थौ च प्रतिमाधरः॥
शालया नामतस्तत्र व्यंतरी कारणं विना।
क्रुद्धोपसर्गानकरोत् स्वामिनः कर्मघातकान्॥
सा श्रान्ता नाथमानर्च नाथोऽपि विहरन् ययौ॥

त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ४। श्लो १३, १४, १५ पूर्वार्ध

जब भगवान बहुशाल ग्राम में—शालवन उद्यान में प्रतिमा में स्थित थे तब वहाँ शालार्या नामक एक वाणव्यंतरी ने बिना कारण क्रुद्ध होकर भगवान को नानाविध उपसर्ग दिये। अन्तत वह परिश्रान्त को प्राप्त हुई फलस्वरूप भगवान की पूजा की।

यह घटना आलम्भिका नगरी के भगवान के सातवें चतुर्मास के बाद की है तथा आठवें चतुर्मास के पहले की है।

१७ लोहार्गलग्राम में भगवान को चोर समझकर पकड़ा

(क) सा श्रान्ता नाथमानर्च नाथोऽपि विहरन् ययौ।
पुरं लोहार्गलं राज्ञाऽधिष्ठितं जितशत्रुणा॥१५॥
तस्य राज्ञोऽन्येन राज्ञा विरोधः समभूत्तदा।
आयान् स्वामी सगोशालस्तत्पुंभिश्च पथीक्षितः॥१६॥
नोचे किंचिद्यदा स्वामी पृष्टस्तै राजपुरुषैः॥
तदानीं हेरिक इति जितशत्रोः समर्पितः॥१७॥
पूर्वायातोऽस्थिकग्रामादुत्पलो नाथमैक्षत।
ववन्दे च यथावस्थं जितशत्रोः शशंस च॥१८॥
राज्ञापि वन्दितो भक्त्या विहरन् भगवान् ययौ।

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ४। श्लो १५ से १८, १९ पूर्वार्ध

(ख) ततो निग्गया गया लोहग्गलं रायहाणिं, तत्थ जितसत्तू राया, सो अन्नेण राइणा समं विरुद्धो· तस्स चारपुरिसेहिं गहिया न साहेंति, ततो चारिएत्ति-

काऊण रन्नो अत्थाणीवरगयस्स उवट्ठविया, तत्थ य उप्पलो अट्ठियगामातो पुव्वमेवागतो अच्छइ, सो य ते य आणिज्जंते दट्ठूण उट्ठित्तो, तिक्खुत्तो वंदइ, पच्छा सो भणइ—न एस चारितो, एस सिद्धत्थरायपुत्तो, धम्मवरचक्कवट्टी एस भयवं, लक्खणाणि य से पेच्छह, तत्थ सक्कारेऊण मुक्को।

—आव० नि गा ४८८। मलय टीका

—आव० चू० पूर्व भाग। पृ० २६४

जब भगवान महावीर लोहार्गल ग्राम पधारे उस समय वहाँ जितशत्रु नामक राजा था। उस राजा का अन्य राजा के साथ विरोध था। राजपुरुषों ने मार्ग में भगवान को गोशाला सहित आते हुए देखा। राजपुरुषों ने पूछा कि तुम कौन हो? प्रत्युत्तर में भगवान कुछ भी न बोले। ये जरूर शत्रु के हेरिक है ऐसा सोचकर जितशत्रु राजा को गोशाला सहित भगवान को पकड़कर समर्पित किया।

उस समय वहाँ अस्थिक ग्राम से उत्पल निमित्तज्ञ आया हुआ था। उसने भगवान को देखा, उठकर भगवान को वंदन किया। तत्पश्चात् जितशत्रु राजा को बोला कि ये सिद्धार्थ राजा के पुत्र-धर्मचक्रवर्ती—भगवान महावीर है। तत्पश्चात् राजा ने भी भगवान को भक्ति से वंदन किया और मुक्त कर दिया।

·८ अनार्य देश के (पुनः) उपसर्ग

(क) (सामी) एवं च ममवि बहुं कम्मं अच्छइ, एवं अच्छारिएहिं निज्जरावेयव्वं, ते य अत्थारिया अणारिया देसेसु, ततो लाढावज्जभूमि (सुद्धभूमि) वच्चइ, तत्थ विहरइ, ते अणारिया जणा निरणुकंपा निद्दया सामि हीलेंति निंदंति कुक्कुरे छुच्छुक्कारेंति, ततो ते कुक्कुरा डसंति, सयंच ते भयवं आहंसु, एवमाइ बहूवसग्गा, तत्थ नवमो वासारत्तो कतो, तत्थ न भत्तपाणं नेव वसही लद्धा, एवंतत्थ छम्मासे अणिच्चजागरियं विहरितो। अमुमेवार्थमाह -

रायगिहऽट्ठमवासं तु वज्जभूमी बहुवसग्गा।

—आव० नि गा ४९१ उत्तरार्ध

आव० चू० पूर्व भाग पृ० २८४, २८५

मलय टीका—× × ×। ततो भगवान् राजगृहेऽष्टमं वर्षारात्रं कृतवान्, तदनन्तरं च वज्रभूमौ गतवान्, तत्र च बहव उपसर्गा अभवन्, नवमश्च वर्षारात्रस्तत्रैव गतः।

(ख) वज्रभूमिशुद्धभूमिलाढादिम्लेच्छभूमिषु।
कर्मनिर्जरणायाऽगात् स्वामी गोशालकान्वितः॥५४॥

स्वच्छंदं तत्र च म्लेच्छाः परमाधार्मिकोपमाः।
नानाविधैरुपसर्गैः श्रीवीरमुपदुद्रुवुः ॥५५॥
जगर्हुः स्वामिनं केऽपि जहसुः केचिदुच्चकैः।
सारमेयादिभिर्दुष्टसत्त्वैः केचिद्वेष्टयन् ॥५६

× × ×

अनाप्नुवन् वसतिमप्युष्णशीतादिभाजनम् ॥
धर्मजागरिकां जाग्रत् षण्मासान् स्वाम्यवास्थित । ६५॥
नवमीं प्रावृषं तत्र धर्मध्यानपरायणः।
शून्यागारे द्रुतले वा स्थितः स्वाम्यत्यवाहयत् ॥६६॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ५४ से ५६, ६५, ६६

राजगृह के आठवें चतुर्मास के बाद भगवान ने यह चिंतन किया कि अभी मुझे बहुत कर्मों की निर्जरा करनी है अतः भगवान कर्म निर्जरार्थ गोशाला सहित राजगृह के आठवें चतुर्मास के बाद वज्रभूमि, शुद्धभूमि तथा लाढ आदि म्लेच्छ देश मे पधारे। उन अनार्य देशो में परमाधार्मिक स्वच्छद म्लेच्छ विविध उपसर्गों से भगवान महावीर पर उपसर्ग करने लगे। भगवान ने उपसर्गों को सहर्ष सहन किया। वसति-स्थान नही मिलने पर भी उष्ण-शीत परीषह को छः मास तक सहन किया। धर्म जागरण की। शून्यागार में अथवा वृक्ष के नीचे रहकर धर्मध्यान मे परायण भगवान ने नववाँ चतुर्मास व्यतीत किया।

कोई भगवान की निंदा करता, कोई भगवान को हसता, कोई श्वान आदि दुष्ट प्राणियो का साथ में लेकर प्रभु को काटने के लिए छोड देते।

·६ देव द्वारा परीषह—उपसर्ग

·१ संगम देव द्वारा परीषह – उपसर्ग

(क) दढभूमी बहुमिच्छा पेढालग्गामसमागओ भयवं।
पोलासचेइयम्मि ट्ठिएगराइं महापडिमं।

मलयटीका —दृढभूमिर्नाम बहुम्लेच्छा, तत्र पेढालग्राममागतो भगवान्, तस्य बहिः पोलाशे चैत्ये—व्यन्तरायतने एकरात्रिकीं महाप्रतिमां स्थितः। इतो य— सक्को देवराया भगवंतं ओहिणा आयोएत्ता सभाए सुहम्माए अत्थाणगतो हरिसितो सामिस्स नमोक्कारं काऊण भणति—अहो भयवं। तेलोक्कमभिभूय ठितो, नहु सक्का केणइ देवेणं वा दाणवेण वा चलिउं, तथा चाह—

सक्को य देवराया सहागओ भणइ हरिसिओ वयणं ।
तिन्नि वि लोगऽसमत्था जिणवीरमिणं चलेउं जे ॥

—आव० नि । गा ४६८

टीका शक्रो देवराजः सभागतो हर्षितो वचनमिदं भणति—त्रयोऽपि-लोका अमुं जिनं वीरं चालयितुमसमर्थाः, जे इति पादपूरणे—

इतो य—संगमतो नाम सोहम्मकप्पवासी देवो सक्कस्स सामाणितो अभव-सिद्धितो, सो भणइ देवराया अहो रागेण उल्लवेइ, को माणुसो देवेण न चालिज्जइ ?, अहं चालेमि, ताहे सक्को तं न वारेइ, मा जाणिहिई परनिस्साए भयवं तवोकम्मं करेइत्ति, एवं सो आगतो, तथा चाह

सोहम्मकप्पवासी देवो सक्कस्स सो अमरिसेण ।
सामाणिय संगमओ बेइ सुरिंदं पडिनिविट्ठो ॥
तेलोक्कं असमत्थंति बेह एयस्स चालणं काउं ।
अज्जेव पासह इमं मम वसगं भट्ठजोगतवं ॥
अह आगओ तुरंतो देवो सक्कस्स सो अमरिसेणं ।
कासी य हउवसग्गं मिच्छादिट्ठी पडिनिविट्ठो ।

—आव० नि गा ४९९ से ५०१

मलय टीका – सौधर्मकल्पवासी देवः शक्रस्य सामानिकः संगमको नाम, सोऽमर्षेण सुरेन्द्रं प्रति प्रतिनिविष्टः सन् ब्रवीति, यत् बेह इति ब्रूथे एतस्य चालनं कर्तुं त्रिलोकमसमर्थमिति, तन्न अद्यैव प्रेक्षध्वं इमं महावीरं मम वशगम्—आयत्तं भ्रष्टयोगतपसमिति, एवमुक्त्वाऽथाऽनन्तरं शक्रस्योपरि अमर्षेण संगमकनामा देवस्त्वरित आगतः, अकार्षीच्च स मिथ्यादृष्टिः प्रतिनिविष्ट उपसर्ग, तद्यथा—

१—सो अभवितो सामिस्स उवरिं वज्जधूलीवरिसं वरिसइ, जाव अच्छीणि कन्ना य सव्वसोयाणि पूरियाणि, निरुस्सासो जातो, तेण सामी तिलतुसभागमेत्तंपि झाणाओ न चालिओ ।

२–ताहे संतो तं साहरित्ता कीडियाओ वज्जतुंडाओ विउव्वइ, ताओ समंततो लग्गिऊण खायंति, अन्नेण सरीरगमणुपविसित्ता अन्नेण सोएण निग्गच्छंति एवं चालिणीसरिसो कतो, तहवि भयवं न चलितो ।

३ ताहे उद्दंसे वज्जतुंडे विउव्वइ, जे लोहियमेगेण पहारेण णीणेंति, तेवि सुबहुं खायंति, तहवि न सक्को चालेउं ।

४—ताहे उण्हेला विउव्वेइ, उण्हेला णाम तेल्लपाइयाओ, ताओ तिक्खेहि तुंडेहिं अतीव दंसंति, जहा जहा सो अभवितो उवसग्गं करेइ तहा तहा सामी अतीव झाणेण अप्पाणं भावेइ. जहा 'तुमए चेव कयमिणं, न सुद्धवारिस्स दिस्सए दंडो, इच्चादि।

५—जाहे न सक्कइ खोभेउं ताहे विच्छुए विउव्वइ, तहवि न सक्कइ।

६—ताहे नउले विउव्वइ, ते तिक्खाहिं दाढाहिं डसंति खंडखंडाइं अवणेंति।

७–पच्छा सप्पे रोसपुन्ने उग्गविसे डाइजरकारगे विउव्वइ, तेहिंवि न सक्किओ चालेउं।

८ ततो मूसए विउव्वइ, ते तिक्खाहिं दाढाहिं डसंति, खंडाणि य अवणेत्ता तत्थेव मुत्तपुरीसाणि वोसिरंति, तो अतुला वेयणा पाउब्भवति।

९—जाहे न सक्कइ ताहे हत्थिरूवं विउव्वइ, तेण हत्थिरूवेण सुंडाए गहाय सत्तट्ठतले आगासे उक्खिवित्ता पच्छा दंतमुसलेहिं पडिच्छइ, पुणोऽवि भूमीए विधइ चलणतलेहि य मलेहि।

१० जाहे एवमवि न सक्कइ चालेउं ताहे हत्थिणियारूवं विउव्वइ, सा हत्थिणिया सुंडएहिं दंतेहिं विधइ फालेइ य, पच्छा काइएण सिंचइ, चलणेहिं मलइ।

११—जाहे न सक्कइ ताहे पिसायरूवं विउव्वइ, तेणं उवसग्गं करेइ।

१२—जाहे न सक्कइ ताहे वग्घरूवं करेइ, सो दाढाहिं नक्खेहिं फालेइ, खारकाइयाए सिंचेइ।

१३ जाहे एवमवि न सक्कइ ताहे सिद्धत्थरायरूवं विउव्वइ, सो कलुणाणि विलवइ, एहि पुत्तगा! उज्झाहि एमाइविभासा।

१४—ततो तिसलारूवं विउव्वइ, तत्थ वि सा चेव विभासा।

१५—ततो जाहे एवमवि न सक्कइ ताहे सूयं विउव्वइ, किह? सो ततो खंधवारं विउव्वइ, सो परिपेरंतेसु आवासितो, तत्थ सूयो पत्थरे अलभंतो दोण्हवि पायाण मज्झे अग्गिं जालित्ता पायाणं उवरि उक्खलियं काउं पइउमारद्धो

१६–जाहे एएणवि न सक्कइ ताहे पक्कणं विउव्वइ, सो पक्कणो ताणि पंजरगाणि बाहासु गले कण्णेसु च ओलयइ, ते सउणगा भयवंतं तुंडेहिं खायंति बिंधंति सन्नं काइयं च वोसिरंति।

१७—ततो खरवायं विउव्वति, जेण सक्को मंदरोऽवि चालेउं, न पुण सामी चलइ, तेग आगासे उक्खिवित्ता उक्खिवित्ता पाडेइ।

१८—पच्छा कलंकलियावायं विउव्वइ, तेण जहा चक्काइद्धतो नंदिआवत्तो वा तहो भमाडिज्जइ,

१९—जाहे एवमवि न सक्कइ ताहे कालचक्कं विउव्वइ, तं विउव्विऊण उड्ढं गगणतलं गंतूग एत्ताहे मारेमित्ति मुयए वज्जसंनिभं, मदरंपि चूरेज्जा, तेण पहारेण भयवं ताव निबुड्डो जाव अग्गनहा हत्थाणं।

२०—जाहे तेणविन सक्कइ ताहे चिंतइ न सक्को एस मारिउंति, अणुलोमे उवसग्गे करेमि, ताहे पभायं विउव्वइ, लागो सव्वो चंकमिउं पयत्तो, भणइ य देवज्जगा! अज्जवि अच्छसि ?

भयवं नाणेण जाणाइ जहा न ताव पभाइ, ततो दिव्वं देविड्ढिं दंसेइ, भणइय विमाणगतो तुट्ठोमि तुज्झ भयवं। किं देमि सग्गं वा ते सरीरं नेमि ? तिन्नि विलोए तुज्झ पाएसु पाडेमि ? अन्ने भणंति—दिव्व देविड्ढि दंसित्ता मणोरमसद्द-रूवरसगंधफासोववेते छप्पि मगाणुकूले उऊ दंसेइ, अच्छराओ सुरूवाओ पेसेइ, ताहे दिव्वं बत्तीसविहिं नट्टमुपदंसन्ति, सामी तहेव समदरिसी, जाहे न सक्कंति ताहे पइरिक्कं काऊण विविहप्पगारमालिंगणचुंबणाइयं मोहुप्पायगमित्थीभावमुपदंसंति, हा दइय! हा निक्किव! इच्चेवमाइ जंपंति, ततो परिसंता जामेव दिसं पाउब्भूता तामेव दिसं पडिगया, एस सव्वो वीसइमो उवसग्गो। एतानेव गाथाचतुष्टयेनाह

धूली पिवीलिआओ उद्दंसा चेव तह य उण्होला।
विच्छुअ नउला सप्पा य मूसगा चेव अट्ठमया॥

हत्थी हत्थिणियाओ पिसाअए घोररूव वग्घो य।
थेरो थेरी सूओ आगच्छइ पक्कणो अ तहा॥

खरवाय कलंकलिया, कालचक्कं तहेव य।
पाभाइयमुवसग्गो, वीसइमे होंति अणुलोमे॥

सामाणियदेवड्ढि देवो दाएइ सो विमाणगओ।
भणइ वरेह महरिसि! निप्फत्ती सग्गमोक्खाणं॥

—आव० नि गा ५०२ से ५०५

प्रथमतो धूली विकुर्विता १ ततः पिपीलिकाः २ तदनन्तरं मुदंशा ३ तत उण्होलाः ४ ततो वृश्चिकाः ५ तदनन्तरं नकुलाः ६ ततः सर्पा ७ ; ततो मूषकाश्चैवाष्टमाः ८॥

तदनन्तरं हस्ती ६ ततो हस्तिनिका १० तदनन्तरं पिशाचः ११ तदनन्तरं घोररूपो व्याघ्रः १२ ततः स्थविरः सिद्धार्थः १३ स्थविरा-त्रिशला १४ तदनन्तरं सूतो-रसवतीकारः १५ तत आगच्छति पक्कणः – शबरः १६ तथा खरवातः १७ तदनन्तरं कलंकलिका १८ तथा चैवं कालचक्रं १६ विंशतितमः पुनरुपसर्गो भवत्यनुलोमः, स च प्रभातविकुर्वणारूपश्च, स दुर्गृहीतनाधेयो देवो विमानगतोभगवच्चित्तक्षोभनाय सामानिकदेवर्द्धि दर्शयति, भणति च वृणीष्व महर्षे येन तव स्वर्गमोक्षयोर्निष्पत्तिर्भवति।

—आव० नि गा ४९७ से ५०५

(ख) तत्तो सामी दढभूमीं गतो, तीसे बाहि पेढालंनाम उज्जाणं, तत्थ पोलासं चेतिय, तत्थ अट्ठमेणं भत्तेण अप्पाणएण ईसिपब्भारगतेण ईसिपब्भारगतो नामईसिओणओकाओ, एगपोलनिरुद्धदिट्ठि अणिमिसणयणो तत्थ वि जे अचित्तपोग्गला तेसु दिट्ठि निवेसेति, सचित्तेहिदिट्ठी अप्पाइज्जति, ××× इतो य संगमको×××अज्जेव णं अहं चालेमेत्ति ××× सो आगतो। ××× जहाजहा उवसग्गं करेति तहा तहा सामी अतीवज्झाणेण अप्पाणं भावेति, जहा—तुमए चेव कतमिणं, ण सुद्धचारिस्स दिस्सए दंडो। जाहे ण सक्को ताहे विच्चुए-विउव्वति, ते खायंति। तहवि ण सक्का, ताहेणउले विउव्वति। ते तिक्खाहिं दाढाहि दसंति, खंडखंडाइ च अवणेंति, पच्छा सप्पे विसरोससंपन्ने उग्गविसे डाइजर कारए ××× न सक्का एस मारेउंति अणुलोमे करेमि।

—आ० चू० पूर्व भाग पृ० ३०४।५

(ग) पेढालग्रामं निकषा पेढालारामभन्तरा।
कृताष्टमतपः कर्मा पोलासं चैत्यमाविशत् ॥१६१॥
× × ×
तस्थौ तत्रैकरात्रिक्या महाप्रतिमया प्रभुः ॥१६३॥
तदा शक्रः सुधर्मायां सभायां परिवारितः
× × ×
अवधिज्ञानतो ज्ञात्वा भगवन्तं तथा स्थितम्।
× × ×

भो भोः सर्वेऽपि सौधर्मवासिनस्त्रिदशोत्तमाः !
शृणुत श्रीमहावीरस्वामिनो महिमाद्भुतम् ॥१७२॥

× × ×

अमरैरसुरैर्यक्षैरक्षोभिरुरगैर्नरैः ।
त्रैलोक्येनापि शक्येत ध्यानाच्चालयितुं न हि ॥१७५॥
इत्याकर्ण्य वचः शाक्रं शक्रसामानिकः सुरः ।
ललाटपट्टघटितभ्रूकुटीभंगभीषणः ॥१७६॥
कंपमानाधर कोपाल्लोहिताहितलोचनः ।
अभव्यो गाढमिथ्यात्वसंगः संगमकोऽवदत् ॥१७७॥

× × ×

एषोऽहं चालयिष्यामि तं ध्यानादित्युदीर्य सः ।
करेण भूमिमाहत्योदस्थादास्थानमण्डपात् ॥१८४॥
अर्हन्तः परसाहाय्यात्तपः कुर्वन्त्यखंडितम् ।
मा ज्ञासीदिति दुर्बुद्धिः शक्रेण स उपेक्षितः ॥१८५।
ततो वेगानलोत्पातपतापनघनाघनः ।
रौद्राकृतिदुरालोको भयात्रसदप्सराः ॥१८६॥
विकटोरःस्थलाघात पुञ्जितग्रहमंडलः ।
स पापस्तत्र गतवान् यत्रासीत्परमेश्वरः ॥१८७॥
निष्कारणजगद्बन्धुं निराबाधं तथा स्थितम् ।
श्रीवीरं पश्यतस्तस्य मत्सरो ववृधेऽधिकम ॥१८८॥
गीर्वाणर्यासतनः पांसुवृष्टिं दुष्टोऽनिनिष्ट सः ।
अकांडघटितारिष्टामुपरिष्टाजगत्प्रभोः ॥१८९॥
विधुर्विधुन्तुदेनेव दुर्दिनेनेव भास्करः ।
पिदधे पांसुपूरेण सर्वांगीणं जगत्प्रभोः ॥१९०॥
समन्ततोऽपि पूर्णानि तथा श्रोतांसिपांसुभिः ।
यथा समभवत् स्वामी निःश्वासोच्छ्वासवर्जितः ॥
तिलमात्रमपि ध्यानान्न चचाल जगद्गुरुः ।
कुलाचलश्चलति किं गजैः परिणतैरपि ॥१९२॥

अपनीय ततः पांशुं वज्रतुंडाः पिपीलिकाः ।
स समुत्पादयामास प्रभोः सर्वांगपीलिकाः ॥ १६३ ॥

प्राविशन्नेकतोऽङ्गेषु स्वैरं निर्ययुरन्यतः ।
बिभ्यन्त्यस्तीक्ष्णतुंडाग्रैः सूच्यो निवसनेष्विव ॥ १६४ ॥

निर्भाग्यस्येव वाञ्छासु मोघीभूतासु तास्वपि ।
स दंशान् रचयामास नाकस्यान्तो दुरात्मनाम् ॥ १६५ ॥

तेषामेकप्रहारेण रक्तैर्गोक्षीरसोदरैः ।
क्षरद्भिरभवन्नाथः सनिर्झर इवाद्रिराट् ॥ १६६ ॥

तैरप्यक्षोभ्यमाणेऽथ जगन्नाथे स दुर्मतिः ।
चक्रे प्रचंडतुंडाग्रा दुर्निवारा घृतेलिकाः ॥ १६७ ॥

शरीरे परमेशस्य निमग्नमुखमण्डलाः ।
ततस्ताः समलक्ष्यन्त रोमालीव सहोत्थिता ॥ १६८ ॥

ततोऽप्यविचलच्चित्ते योगवित्ते जगद्गुरौ ।
स महावृश्चिकांश्चक्रे ध्यानवृश्चननिश्चयी ॥ १६९ ॥

प्रलयाग्निस्फुलिंगाभास्तप्ततोमरदारुणैः ।
तेऽभिनन्दन् भगवद्देहं लांगूलांकुटकंटकैः ॥ २०० ॥

तैरप्यनाकुले नाथे कूटसंकल्पसंकुलः ।
सोऽनल्पान् कल्पयामास नकुलान् दशनाकुलान् ॥ २०१ ॥

खिखीति रसमानास्ते दंष्ट्राभिर्भगवत्तनुम् ।
खंडखंडैस्त्रोटयन्तो मांसखंडान्यपातयन् ॥ २०२ ॥

तैरप्यकृतकृत्योऽसौ यमदोर्दंडदारुणान् ।
असृजत्कटफटाटोपान् कोपाध्मायुक्त पन्नगान् ॥ २०३ ॥

आशिरःपादमभ्यर्थं महावीरं महोरगाः ।
अवेष्टन्त महावृक्षं कपिकच्छूलता इव ॥ २०४ ॥

प्रजह्रुस्ते तथा तत्र स्फुटन्ति स्म फटा यथा ।
तथा दशन्ति स्म यथाऽभज्यन्त दशना अपि ॥ २०५ ॥

उद्वान्तगरलेष्वेषु लंबमानेषु रज्जुवत् ।
स वज्रदशनानाखु मूषिकानुदपीपदत् ॥ २०६ ॥

स्वाम्यंगं खनकाश्चख्नुर्नखैर्दन्तैर्मुखैः करैः।
मोमूच्यमाणास्तत्रैव क्षते क्षारं निचिक्षिपुः।
तेष्वप्यकिंचिद्भूतेषु भूतीभूत इव क्रुधा।
उद्दंडदंतमुशलं हस्तिरूपं ससर्ज सः॥
सोऽधावत् पादपातेन मेदिनीं नमयन्निव।
उद्धून्यदस्तहस्तेन नभस्तस्त्रोटयन्निव॥
कराग्रेण गृहीत्वा च दुर्वारेण स वारणः॥
दूरमुल्लालयामास भगवंतं नभस्तले॥
विशीर्यकणशोगच्छत्वसाविति दुराशयः।
दंतावुदस्य स व्योम्नः पतन्तं स्म प्रतीच्छति॥ २११॥
पतितं दंतघातेन विध्यति स्म मुहुर्मुहुः॥
वक्षसो वज्रकठिनात्समुत्तस्थुः स्फुलिंगकाः॥ २१२॥
न शशाक वराकोऽसौ कर्तुं किंचिदपि द्विपः।
यावत्तावत्सुरश्चक्रे करिणीं वैरिणीमिव॥ २१३॥
अखंडतुंडदंताभ्यां भगवंतं बिभेद सा।
स्वैरं शरीरनीरेण विषेणेव सिषेच च॥ २१४॥
करेणौ रेणुसाद्भूते तस्याः सारे सुराधमः।
पिशाचरूपमकरोन्मकरोत्कटदंष्ट्रकम्॥ २१५॥
ज्वालाजालाकुलं व्यात्तव्यायतं वक्त्रकोटरम्।
अभवद्भीषणं तस्य वह्निकुंडमिव ज्वलत्॥ २१६॥
यमौकस्तोरणस्तंभाविव प्रोत्तंभितौ भुजौ।
अभूव तस्य जंघोरू तुंगं तालद्रुमोपमम्॥ २१७॥
स साट्टहासं फेत्कुर्वन् स्फूर्जत्किलकिलिरवः।
कृत्तिवासाः कर्त्रिकाभृद्भगवंतमुपाद्रवत्॥ २१८॥
तस्मिन्नपि हि विध्याते क्षीणतैलप्रदीपवत्।
व्याघ्ररूपं क्रुधाध्मातः शीघ्रं चक्रे स निर्घृणः।
अथ पुच्छच्छटाच्छोटैः पाटयन्निव मेदिनीम्।
बूत्कारप्रतिशब्दैश्च रोदसी रोदयन्निव। २२०॥

दंष्ट्राभिर्वज्रसाराभिर्नखरैः शूलसोदरैः ।
अव्यग्रं व्यापिपर्ति स्म व्याघ्रो भुवनभर्तरि ॥ २२१ ॥

तत्र विच्छायतां प्राप्ते दवदग्ध इवद्रुमे ।
सिद्धार्थराजरूपं स विचक्रे विबुधाधमः ॥ २२२ ॥

किमेतद्भवता तात प्रक्रांतमतिदुष्करम् ।
प्रव्रज्यां मुञ्च माऽस्माकं प्रार्थनामवजीगणः ॥ २२३ ॥

वार्धके मामशरणं त्यक्तवान्नन्दिवर्धनः ।
विक्रुना त्रिशला चैवं विललाप मुहुर्मुहुः ॥ २२४ ॥

ततस्तयोर्विलापैरप्यलिप्तमनसि प्रभौ ।
आवासितं दुराचारः स्कंधावारमकल्पयत् ॥ २२५ ॥

तत्रानासाद्य दृषदं सूदः सादर ओदने ।
चुल्लीपदे प्रभोः पादौ कृत्वा स्थालीं न्यवेदयत् ॥ २२६ ॥

तत्कालं ज्वालितस्तेन जज्वाल ज्वलनोऽधिकम् ।
पादमूले जगद्भर्तुर्गिरेरिव दवानलः ॥ २२७ ॥

तप्यमानस्यापि प्रभोः स्वर्णस्येव न श्रीरहीयत ।
ततः सुराधमश्चक्रे पक्कणं दारुणकवणम् ॥ २२८ ॥

प्रक्कणोऽपि प्रभोः कण्ठे कर्णयोर्भुजदंडयोः ।
जंघयोश्च क्षुद्रपक्षिपंजराणि व्यलंबयत् ॥२२९॥

खगैश्चंचुनखाघातैस्तथा ददे प्रभोस्तनुः ।
यथा छिद्रशताकीर्णा तत्पंजरनिभाभवत् ॥२३०॥

तत्राप्यसारतां प्राप्ते पक्कणे पक्वपत्रवत् ।
उत्पादित महोत्पातं खरवातमजीजनत् ॥२३१॥

अंतरिक्षे महावृक्षांस्तृणोत्क्षेपं समुत्क्षिपन् ।
विक्षिपन् पांशुविक्षेपं दिक्षु च ग्रावकर्करान् ॥२३२॥

सर्वतो रोदसीगर्भं भस्त्रापूरं च पूरयन् ।
उत्पाट्योत्पाट्य वातोऽसौ भगवंतमपातयत् ॥२३३॥

तेनापि खरवातेनाऽपूर्णकामो विनिर्ममे ।
दुष्टसत्कुलकलंकोऽसौ द्राक् कलंकलिकानिलम् ॥२३०॥

भूभृतोऽपि भ्रमयितुमलंकर्मीणविक्रमः ।
भ्रमयामास चक्रस्थमृत्पिण्डमिव स प्रभुम् ॥२३५॥
भ्राम्यमाणोऽर्णवावर्तेनेव तेन नभस्वता ।
तदेकतानो न ध्यानं मनागपि जहौ प्रभुः ॥२३६॥
वज्रसारमनस्कोऽयं बहुधापि कदर्थितः ।
न क्षुभ्यति कथमहं भग्नागूर्यामि तां सभाम् ॥२३७॥
तदस्य प्राणनाशेन ध्यानं नश्यति नान्यथा ।
चिन्तयित्वेति चक्रे स कालचक्रं सुराधमः ॥२३८॥
अहाय तदयोभारसहस्रघटितं ततः ।
उद्धार सुरः शैलं कैलासमिव रावणः ॥२३९॥
पृथिवीं संपुटीकर्तुं कृतं मन्ये पुटान्तरम् ।
उत्पाट्य कालचक्रं स प्रचिक्षेपोपरि प्रभोः ॥२४०॥
ज्वालाजालैरुच्छलद्भिर्दिशः सर्वाः करालयत् ।
तत्पपात जगद्भर्तर्यौर्वानल इवार्णवे ॥२४१॥
कुलक्षितिधरक्षोदक्षमस्यास्य प्रहारतः ।
ममज्जाऽऽजानु भगवानन्तर्वसुमतीतलम् ॥२४२॥
एवं भूतेऽपि भगवानशोचदिदमस्य यत् ।
तितारयिषवो विश्वं वयं संसारकारणम् ॥२४३॥
कालचक्रहतोऽप्येष प्रपेदे पंचतां न यत् ।
अगोचरस्तदस्त्राणामुपायः क इहापरः ॥२४४॥
अनुकूलैरुपसर्गैः क्षुभ्येद्यदि कथंचन ।
इति बुद्ध्या सुरश्चक्रे तानाशु त्रिजगद्गुरोः ॥२४५॥
सद्यः प्रकाशमानाशं क्रोशत्खगकुलाकुलम् ।
प्रातःकालमकालेऽपि दर्शयामास दुष्टधीः ॥२४६॥
तां च दैवीमसौ मायां मन्यमानो महामनाः ।
न मुमोचविभुर्ध्यानमभिमहकृतामहः ॥२४७॥
ताडंकहारकेयूरकिरीटद्योतितांबरः ।
तत्संहृत्य विमानस्थः स पुरोऽस्थादुवाच च ॥२४८॥

महर्षे ! तव तुष्टोऽस्मि सत्त्वेन तपसौजसा ।
प्राणानपेक्षभावेनारब्धनिर्वहणेन च ॥२४६॥

पर्याप्तं तपसाऽनेन शरीरक्लेशकारिणा ।
मा हि याचस्व मा कार्षीः शंकां यच्छामि किं तव ॥२५०॥

इच्छामात्रेण पूर्यन्ते यत्र नित्यं मनोरथाः ।
किमनेनैव देहेन त्वां स्वर्गं प्रापयामि तम् ? ॥२५१॥

अनादिभवसंरूढकर्मनिर्मोक्षलक्षणम् ।
एकांतपरमानंदं मोक्षं वा त्वां नयामि किम् ? ॥२५२॥

अशेषमंडलाधीशमौलिलालितशासनम् ।
अथवाऽत्रैव यच्छामि साम्राज्यं प्राज्यमृद्धिभिः ॥२५३॥

इत्थं प्रलोभनावाक्यैरक्षोभ्यमनसि प्रभौ ।
अप्राप्तप्रतिवाक् पापः पुनरेवमचिन्तयत् ॥ २५४॥

मोघीकृतमनेनैतन्मम शक्तिविजृम्भितम् ।
तदिदानीममोघं स्याद्यदेकं कामशासनम् ॥२५५॥

यतः कामास्त्रभूताभिः कामिनीभिः कटाक्षिताः ।
दृष्टा महापुमांसोऽपि लुंपन्तं पुरुषव्रतम् ॥२५६॥

इति निश्चित्य चित्तेन निर्दिदेश सुरांगनाः ।
तद्विभ्रमसहायान् षट् प्रायुंक्त स ऋतूनपि ॥२५७॥

कृतप्रस्तावना मत्तकोकिलाकलकूजितैः ।
कंदर्पनाटकनटी वसन्तश्रीरशोभत ॥२५८॥

मुखवार्धं सज्जयन्ती विकसन्नीपरेणुभिः ।
सैरन्ध्रीव दिग्वधूनां ग्रीष्मलक्ष्मीरजृम्भत ॥२५६॥

राज्याभिषेककामस्य मंगल्यतिलकानिव ।
सर्वांगं केतकव्याजात् कुर्वती प्रावृडावभौ ॥२६०॥

सहस्रनयनीभूय नवनीलोत्पलच्छलात् ।
स्वसंपदमिवोद्दामां पश्यन्ती शुशुभे शरद् ॥२६१॥

जयप्रशस्तिं कामस्य श्वेताक्षरसहोदरैः ।
हेमंतश्रीलिलेखेव प्रत्यग्रैः कुंदकुड्मलैः ॥ २६२॥

गणिकेवोपजीवन्ती हेमंतसुरभीसमम् ।
कुन्दैश्च सिन्दुवारैश्च शिशिरश्रीरचीयत ।२६३॥

एवमुज्जृम्भमाणेषु सममेवर्तुषु क्षणात् ।
मीनध्वजपताकिन्यः प्रादुरासन् सुरांगना ।।२६४।।

संगीतमविगीतांग्यः पुरो भगवतस्ततः ।
ताः प्रचक्रमिरे जैत्रं मंत्रास्त्रमिव मान्मथम् ।।२६५।।

तत्राविसूत्रितलयं गान्धारग्रामबंधुरम् ।
काभिश्चिदुद्गीयन्त जातयः शुद्धचेतसः ।।२६६।।

क्रमव्युत्क्रमगैस्तानैर्व्यक्तैर्व्यञ्जनधातुभिः ।
प्रवीणाऽवादयद्वीणां काचित् सकलनिष्कलाम् ।।२६७।।

स्फुरत्तकारधोकारप्रकारैर्मघनिस्वनान् ।
काश्चिच्च वादयामासुर्मृदंगांस्त्रिविधानपि ।।२६८।।

नभोभूगतचारीकं विचित्रकरणोद्भटम् ।।
दृष्टिभावैर्नवनवैः काश्चिदप्यनरीनृतुः ।।२६६।।

दृढांगहाराभिनयैः सद्यस्त्रुटितकंचुका ।
बध्नन्ती श्लथधम्मिल्लं दोर्मूलं काप्यदीदृशत् ।।२७०।।

दंडपादाभिनयनच्छलात् काऽपि मुहुर्मुहुः ।
चारुगोरोचनागौरमूरुमूलमदर्शयत् ।।२७१।।

श्लथचंडातकग्रंथिदृढीकरणलीलया ।
काऽपि प्राकाशयद्वापीसनाभि नाभिमंडलम् ।।२७२

व्यपदेश्येभदन्ताऽऽख्यहस्तकाभिनय मुहुः ।
गाढमंगपरिष्वंगसंज्ञा काचिच्च निर्ममे ।।२७३।।

संचारयन्त्यन्तरीयं नीवीनिबिडनच्छलात् ।
नितंबबिंबफलकं काचिद्राविरभावयत् ।।२७४।।

अंगभंगापदेशेन वक्षः पीनोन्नतस्तनम् ।
सुचिरं रोचयामास काचिद्रुचिरलोचना ।।२७५।।

यदि त्वं वीतरागोऽसि रागं तन्नस्तनोषि किम् ।
शरीरनिरपेक्षश्चेत्तर्से बद्धोऽपि किंन नः ।।२७६।।

दयालुर्यदि वाऽसि त्वं तदानीं विषमायुधात् ।
अकांडाकृष्टकोदंडादस्मान्न त्रायसेकथम् ॥२७७॥
उपेक्षसे कौतुकेन यदि नः प्रेमलालसाः ।
किंचिन्मात्रं हि तद्युक्तं मरणांतं न युज्यते ॥२७८॥
स्वामिन् ! कठिनतां मुंच पूरयास्मन्मनोरथान् ।
प्रार्थनाविमुखो मा भूः काश्चिदित्यूचिरे चिरम् ॥२७९॥
एवं गीतातोद्यनृत्तैर्विकारैरागिकैरपि ।
चाटुभिश्च सुरस्त्रीणां न चुक्षोभ जगद्गुरुः ॥२८०॥
एवं विंशत्युपसर्गीं तत्र रात्रौ सुराधमः ।
चक्रे संगमकः कायोत्सर्गस्थस्य जगद्गुरोः ॥२८१॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो १६१ से, १६३,१७२,१७५ से १७७,१८४ से २८१

जब भगवान महावीर पेढाल ग्राम के नजदीक पेढाल नामक उद्यान मे पोलास नामक चैत्य में अष्टम तप करके, एक रात्रिकी महाप्रतिमा में स्थित थे । उस समय सुधर्म सभा में परिवार सहित शक्रेन्द्र बैठा हुआ था । उसने अवधिज्ञान से भगवान को—एक रात्रि की महाप्रतिमा में स्थित देखा । उसने सभा में कहा—"अरे ! सौधर्म लोकवासी सर्व देवताओं । भगवान महावीर की अद्भुत महिमा को सुनो । भगवान महावीर को ध्यान से कोई भी चलित करने में समर्थ नहीं है ।

शक्रेन्द्र के वचन को सुनकर उस सभा में स्थित इन्द्र का सामानिक संगम नामक देव (जो अभव्य और गाढ़ मिथ्यात्व के रंगवाला था) बोला—

"मैं भगवान को ध्यान से चलित कर दूंगा । इस प्रकार कहकर भूमि तल पर हाथ पछाड़ कर सभा मण्डप में खड़ा हुआ । भगवान महावीर पर सहाय्य की अपेक्षा बिना अखण्डित तप कर रहे हैं । संगम देवने शक्रेन्द्र की उपेक्षा की—

तत्पश्चात् वेग से उठी हुई प्रलयकाल की अग्नि के समान, निबीड मेघ की तरह प्रताप वाला, रौद्र आकृति से (जिसके सामने हर कोई देख नहीं सकता है) भय से अप्सराओं को भगाता हुआ, मोटे विकट, उरस्थल के आघात से ग्रहमण्डल को एकट्ठा करता हुआ वह पापी देव जहाँ भगवान महावीर थे—वहाँ आया ।

निष्कारण जगत के बंधु और निरबाध रूप से स्थित भगवान महावीर को देखकर उसे अधिक क्रोध उत्पन्न हुआ ।

(१) तत्काल उस देव ने भगवान के ऊपर अकाल में अरिष्ट को उत्पन्न करने वाली महादुखदायक रज की वृष्टि की। चंद्र को राहु की तरह, सूर्य को दुर्दिन की तरह रज से भगवान के सर्वांग को ढांक दिया। रज से सर्व तरफ से भगवान के शरीर के द्वार ऐसे भर दिये जिससे भगवान श्वासोच्छ्वास लेने में भी अशक्त हो गये। तथापि भगवान तिलमात्र भी ध्यान से चलित नहीं हुए।

(२) तत्पश्चात् उस संगम देव ने रज को दूर कर, भगवान के सर्वांग पर पीड़ा करने वाली वज्रमुखी पिपीलिका (कीड़ी) उत्पन्न की। वे पिपीलिकायें भगवान के अंग में एक ओर श्रोत में प्रवेश कर दूसरे श्रोत से निकलती थी। तीक्ष्ण मुखाग्र से भगवान के अंग में छेद पड़ गये फिर भी भगवान ध्यान से चलित नहीं हुए।

(३) इसके पश्चात् उस देव ने डाँस की विकुर्वणा की। दुरात्मा के अपकृत्यों का अंत नहीं होता है। डांस के एक एक प्रहार से निकलते हुए गाय के दूध की तरह रुधिर से भगवान निर्झरण वाले गिरि की तरह दिखाई देने लगे। तथापि भगवान क्षुब्ध नहीं हुए।

(४) इसके पश्चात् उसने प्रचण्ड चोंच वाली दुर्निवार उद्होला (घीमेल) की विकुर्वणा की। भगवान के शरीर पर वे मुखाग्र से ऐसे डंसने लगी कि मानो शरीर के साथ ही उठी हुई रोमपंक्ति हो—इस प्रकार दिखाई देने लगी। परन्तु योगसाधना में रत भगवान जरा भी चलायमान नहीं हुए।

(५) इसके पश्चात् उसने वृश्चिक (बिच्छू) की विकुर्वणा की। प्रलयकाल के अग्निके स्फुलिंग की तरह और तप्त भाला की तरह स्वयं के भयंकर पुच्छ के कांटाओं से भगवान के शरीर को भेदने लगे। इससे भी भगवान व्याकुल नहीं हुए।

(६) इसके पश्चात् उसने क्रूर सकल वाले, बहुत सारे दांत वाले नकुल की विकुर्वणा की। खी ! खी ! ऐसे विरस शब्द करते हुए वे उग्र दाढों से भगवान के शरीर में से तोड़-तोड़ कर मांस के खण्ड अलग-अलग करने लगे। इससे भी वह कृतार्थ नहीं हुआ।

(७) इसके पश्चात् उस संगम देवने यमराज के भुजदण्ड की तरह भयंकर और मोटे फण वाले सर्पों को उसने महाकोप से उत्पन्न किये। जैसे महावृक्ष को कौंवा की लता आवेष्ठित कर लेती है वैसे ही सर्पों ने भगवान महावीर को पैर से मस्तक तक आच्छादित कर लिया। तत्पश्चात् वे सर्प स्वयं के फणों से काटने लगे और जोर से भगवान के ऊपर फणों का प्रहार करने लगे। बहुत जोर से स्वयं की दाढाओं से डंसने लगे। तथापि भगवान को चलित करने मे असमर्थ रहे।

(८) इसके पश्चात् उसने वज्र की तरह दाँत वाले मूषक उत्पन्न किये। वे नख से, दाँतों से, मुँह से और कर से भगवान के अंग को खनने लगे। और उनके ऊपर मूत्रकर क्षत

ऊपर क्षार फेंकने लगे। भगवान् को अतुल वेदना उत्पन्न की—तो भी भगवान को चलित करने में असमर्थ रहा।

(९) इसके पश्चात् क्रोध से भूत जैसा हुआ। उसने मोटे दन्त मूशलवाले एक हस्ति की विकुर्वणा की। पैरके पात से मानो पृथ्वी को नमन करता हो और मोटी और ऊँची सूण्ड से मानो आकाश को तोड़कर नक्षत्रों को नीचे गिराने की इच्छा करता हो वैसा वह हस्ति भगवान् के ऊपर दौड़कर आया। उसने दुर्वार सुण्ड से पकड़कर भगवान के शरीर को दूर उछाल दिया फिर भगवान को दाँत ऊँचा कर पकड़ने के लिए दौड़ा। इस प्रकार दाँत से बारम्बार प्रहार करने लगा कि भगवान के शरीर में से वज्र की तरह छाती में से अग्नि के स्फुलिंग निकलने लगे। तथापि भगवान को चलित नही कर सका।

(१०) इसक पश्चात् उसने दुष्ट हस्तिनी की विकुर्वणा की। उसने असख्ड मस्तक से, दाँतों से भगवान को भेद डाला और विष की तरह स्वयं के शरीर के जल से उस भाग पर सिंचन करना शुरु किया। तथापि भगवान चलित नहीं हुए।

(११) इसके पश्चात् उस संगम देव ने मगर की तरह उग्र दाढा वाले पिशाच रूप की विकुर्वणा की। उसने उपसर्ग उत्पन्न किये—तथापि भगवान को चलित करने में असमर्थ रहा।

(१२) इसके पश्चात् उस देव ने क्रोधित होकर व्याघ्र के रूप की विकुर्वणा की। वज्र-समान दाढों से और त्रिशूल समान नखों से भगवान पर अव्यग्र रूप से उपद्रव करने लगा। इससे भी भगवान को चलित करने मे असमर्थ रहा। वह देव दावानल मे दग्ध हुए वृक्ष की तरह निस्तेज हुआ।

(१३) इसके पश्चात् उस देव ने सिद्धार्थ राजा का रूप धारण कर, भगवान के पास आया। कालुष्य भाव से विलाप करता हुआ बोला कि हे पुत्र! तुम्हारा भाई नंदिवर्धन वृद्धावस्था में मुझे छोड़कर चला गया है अतः तुम हमारा अपमान मत कर, दीक्षापर्याय छोड़ दो।

(१४) इसके पश्चात् त्रिशला देवी के रूप की विकुर्वणा कर भगवान के पास आया। उसी प्रकार चलित करने के लिए विलापात किया। फिर भी भगवान विचलित नहीं हुए।

(१५) इसके पश्चात् उस दुराचारी देव ने स्कधावार—छावणी की विकुर्वणा की। उसमें से एक रसोइये ने भात पकाने का विचार किया। भगवान के दोनों चरण को चूला

बनाकर उसके ऊपर आसन रखा। दोनों पैर के मध्य में तत्काल अग्नि प्रज्वलित हुई। पर्वत पर दावानल की तरह भगवान के पैर अग्नि से तपायमान हो गए। तथापि अग्नि में छोड़े हुए सुवर्ण की तरह शोभाहीन नहीं हुए। इससे भी भगवान् को चलित नहीं कर सका।

(१६) इसके पश्चात् उस देव ने एक भयंकर पक्कण (चडाल) की विकुर्वणा की। उसने भगवान के पास आकर कंठ मे, दोनों कानों में, दोनो भुजाओं मे और जघा पर क्षुद्र पक्षियों के पंजर लटकाये, उन पक्षियों के चोंच तथा नख के प्रहार से भगवान के शरीर मे सैकड़ों छिद्र हो गये।

(१७) इसके पश्चात् उस संगमदेव ने महा उत्पात करने वाले प्रचंड वायु को उत्पन्न किया। मोटे वृक्षों को तृण की तरह आकाश मे उछालता हुआ, दिशाओं में पत्थर, कंकड़ को फेंकता हुआ, पवन से चारों तरफ पुष्कल रज उड़ाने लगा। भगवान को उपाड़-उपाड़ नीचे गिराने लगा। इससे भी भगवान को चलित नही कर सका।

(१८) इसके पश्चात् उस देव ने कलंकलिका वायु की विकुर्वणा की। चक्र पर स्थित मृत्पिंड की तरह समुद्र में आवर्त्त की तरह भगवान को भ्रमित किया। फिर भी एक ध्यान मे स्थित भगवान को चलित नहीं कर सका।

(१९) इसके पश्चात् उस अधमदेव ने भगवान को मारने के लिए कालचक्र की विकुर्वणा की। हजार भार लोह से घटित कालचक्र को जैसे रावण ने कैलाशपर्वत को उपाड़ा वैसे ही उस देव ने ऊँचा उपाड़ा। उस कालचक्र को भगवान पर गिराया। कुल पर्वतों को चूर्ण करनेमे समर्थ—ऐसे कालचक्र के प्रहार से भगवान जानुतक पृथ्वी मे मग्न हो गये। तो भी भगवान संगम को मिष्ट दृष्टि से देखा। अपितु भगवान को चलित करने मे असमर्थ रहा—

(२०) अब देव ने सोचा कि भगवान को अनुकूल—अनुलोम उपसर्ग से चलित करना चाहिए। फलस्वरूप वह देव भगवान को चलित करने के लिए सामानिक देवर्द्धि दिखाई और बोला कि—हे महर्षे! आपकी इच्छा हो तो मैं स्वर्ग मे ले जा सकता हूँ, मोक्ष ले जा सकता हूँ। फिर भी भगवान क्षोभ को प्राप्त नहीं हुए; उसकी आज्ञा से देवांगनाएं भी गीत, वाद्य, नृत्य, अंगविकार से भगवान को चलित नहीं कर सकी।

इस प्रकार एक रात्रि मे कायोत्सर्ग मे स्थित उस अधम संगमदेव ने भगवान पर बीस मोटे—मरणान्तिक उपसर्ग किये।

·२ संगमदेव द्वारा (छः मास तक विविध उपसर्ग)

(क) एवं विंशत्युपसर्गीं तत्र रात्रौ सुराधमः।
चक्रे संगमकः कायोत्सर्गस्थस्य जगद्गुरुः ॥२८१॥

प्रातः संगमकश्चैवमचिन्तयदहो अयम् ।
नैषद्प्यचलद्ध्यानान्मर्यादाया इवार्णवः ॥२८२॥
तर्हिक यामि दिवं भ्रष्टप्रतिज्ञो यामि वा कथम् ।
क्षोभयिष्याम्युपसर्गैः स्थित्वाऽहं चिरमप्यमुम् ॥२८३॥
पथि सूर्यकरस्पृष्टे युगमात्रप्रदत्तदृक् ।
भगवान् वालुकाऽभिख्यं ग्रामं प्रत्यचलत्ततः ॥२८४॥
सुराधम संगमकः पंचचौरशतीं पथि ।
विचक्रे वालुकां चोच्चैर्वालुकार्णवसन्निभाम् ॥२८५॥
मातुल ! मातुलेत्युच्चैर्जल्पन्तो दस्यवः प्रभुम् ।
तथा सस्वजिरे गाढं यथा गिरिरपि स्फुटेत् ॥२८६॥
जगाम वालुकाग्रामं प्रशमामृतसागरः ।
जानुदघ्न्यां वालुकायां मज्जत्पादो जगद्गुरुः २८७॥
निसर्गकृरधीरित्थमुपसर्गान् सुराधमः ।
पुरे ग्रामे वनेऽन्यत्राप्यनुगच्छन् प्रभोर्व्यधात् ॥२८८॥
उपसर्गकृतो जग्मुर्मासाः संगमकस्य षट् ।

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो २८१ से २८८, २८९ पूर्वार्ध ।

(ख) वालुयपंथे तेणा माउल पारणग तत्थ काणच्छि ।
तत्तो सुभूम अंजलि सुच्छित्ताए य विडरूवं ॥

—आव० निगा ५०१ ।

टीका—स भगवान् वालुकाग्रामे प्रति प्रधावितः, तत्रापान्तराले पथि पंचशतसंख्याः स्तेनास्तैर्मातुल इति—पिशाच इति कृत्वा वाहितः, ततस्तत्र—वालुकाग्रामे पारणके—पारणकनिमित्तं स्वामी भिक्षायां प्रविष्टः, ततो भगवतो रूपमावृत्य तरुणीनां काणाक्षि दर्शयति ततस्तत्पुरुषैर्भगवान् हन्यते ।

ततः सुभौमग्रामे गतः, तत्र तरुणीनामुक्तप्रकारेण दर्शितवान्, सुक्षेत्रायां तु ग्रामे विटरूपं विकुर्वितवान्, सर्वत्र भगवान् कदर्थ्यते ।

एक रात्रि में कायोत्सर्ग में स्थित भगवान को संगम देव ने बीस मोटे उपसर्ग किये । इसके बाद प्रातःकालमें उसने विचार किया कि अहो ! यह महाशय समुद्र की तरह मर्यादा से ध्यान से किंचित् भी चलित नहीं हुआ । अब मैं प्रतिज्ञा से भ्रष्ट होकर स्वर्ग में वापस कैसे

जा सकता हूं। ऐसे कैसे जाऊँ—अतः चिरकाल पर्यन्त यहाँ रहकर इस मुनिको अनेक उपसर्गकर किसी भी प्रकार क्षुब्ध करूं।

प्रातःकाल सूर्य की किरणों से व्याप्त हुआ। भगवान ने बालुका नाम ग्रामकी ओर विहार किया। मार्ग में उस संगमदेवने पाँच सौ चोर तथा वेलु के सागर की तरह बहुत बालुका की विकुर्वणा की। वे पांच सौ चोर 'मातुल'—मातुल' उच्च स्वर से कहकर भगवान का आलिंगन करते थे। वे इस प्रकार आलिंगन करते थे कि जिससे पर्वत होता तो फूट जाता उससे भी भगवान क्षुब्ध नहीं हुए। समता रस के सागर भगवान बालुका में जानु तक पैर खुंबाड़ते-खुंबाड़ते बालुका ग्राम पधारे।

इस प्रकार स्वभाव क्रूर बुद्धिवाला वह देव नगर मे, ग्राममें, वनमे—भगवान जहाँ कहीं भी पधारते वहाँ उनके पीछे जाकर अनेक प्रकार के उपसर्ग करता था।

बालुका ग्राम से विहार कर भगवान सुभोम ग्राम पधारे। वहां उस संगमदेव ने युवतियों के रूप बनाये। जब भगवान भिक्षा के लिए जाते तब वे युवतियाँ भगवान से अंजलि करती थीं।

वहां से भगवान विहारकर सुक्षेत्र ग्राम पधारे। तब उस संगमदेवने विड़रूप की विकुर्वणा की। सर्वत्र भगवान की कदर्थना की जाती थी।

(ग) मलए पिसायरूवं सिवरूवं हत्थिसीसए कासी।
ओहसणं पडिमाणए मसाण सक्को जवणपुच्छा ॥

—आव० निगा ५०७

मलय टीका—मलये ग्रामे पिशाचरूपं—भगवतः उन्मत्तकलक्षणकार्षीत्, तदनन्तरं हस्तिशीर्षके शिवरूपं प्रागुक्तस्वरूपं, ततः श्मशाने प्रतिमायां कायोत्सर्गस्थितस्य अपहसनं यथा न शक्यसे त्वं स्थानाच्चालयितुमिति पश्यामि यदि माममागच्छतीति, ततः शक्र आगतस्तस्य यापनपृच्छाऽभवत्।

सुक्षेत्र ग्राम से विहार कर भगवान मलय ग्राम पधारे। वहां संगमदेवने पिशाचरूप की विकुर्वणा कर भगवान पर उपसर्ग किये।

वहाँ से विहार कर भगवान हस्तिशीर्ष ग्राम पधारे। शिवरूपकी विकुर्वणा कर उपसर्ग किये। भगवान नगर के बाहर प्रतिमा में स्थित हो गये। संगमदेव हंस पड़ा। भगवान को चलित करने मे असमर्थ रहा।

इस अवसर पर शक्रेन्द्र का आगमन हुआ। भगवान को वंदन—नमस्कार कर अपने स्थान चला गया।

इस प्रकार उपसर्ग करते हुए संगमदेव को छह मास व्यतीत हो गये।

(ध) तोसलि खुड्डगरूवं संधिच्छेदो इमोत्ति वज्झो य।
मोएइ इंदजालित तत्थ महाभूइलो नामं॥

—आव० निगा० ५०८

मलय टीका—ततो भगवान् तोसलिग्रामंगतः, तत्र संगमकः क्षुल्लकरूपं विकुर्वितवान्, तेन च गृहीतैरूपंकरणैः संधिच्छेदो वृतेः कृतः ततः स आरक्षकै—गृहीतः प्राह—अयं मां कारितवान्, ततः स्वामी वध्य आज्ञप्तः तत्र महाभूतिलो नाम इन्द्रजालिको मोचितवान्।

(च) ततो सामी तोसलिं गतो, बाहिं पडिमं ठितो, सो देवो चिंतेति—एस ण पविसति, तो एत्थवि से ठियस्स करेमि, ताहे खुड्डगरूवं विउव्वित्ता संधि छिंदति, उवगरणेहिं गहिएहिं,वत्तीए तत्थ गहितो, सो भणति—मा म हणह, अहं किंजाणामि ? आयरितेणं अहं पेसितो। कहिंसो ? एस बाहिं असुगउज्जाणे, तत्थ हम्मति वज्झति य, मारिज्जंतुत्ति वज्झो णीणिओ तत्थ भूतिलो नाम इंदजालितो, तेण सामी कुंडग्गामे दिट्ठतो, ताहे सो मोएति, साहति य जहा—एस रायसिद्धत्थपुत्तो, मुक्को खामितो य।

—आव० चू० पूर्वाभाग पृ० ३१२

हस्तिशीर्ष नगर से विहार कर भगवान् तोसलिग्राम पधारे। वहाँ संगमदेवने क्षुल्लक रूप की विकुर्वणा की। संगमदेव सेंध लगाने लगा। उपकरण को ग्रहण किया। लोग उसे पकड़कर मारने लगे। तब बोला—मुझे क्यों मारते हो। मेरा गुरु बाहर है। फलस्वरूप आरक्षकों ने भगवान को पकड़ लिया, बोले—इसने मारा है—भगवान् को वधभूमि में ले गये। वहाँ महाभूतिल नामक इन्द्रजालिक ने भगवान् को देखा (और बोला कि ये सिद्धार्थ राजा के पुत्र है—आप इन्हें छोड़ दें।)

(छ) मोसलि संधिसमागम मोएई रट्ठिओ पिउवयंसो।
तोसलिय सत्त रज्जू वावत्ती तोसली मुक्खो॥

—आव० निगा ५०९

मलय टीका—भगवान् मोसलिं गतः, तत्र संधिमार्गशोधनाय क्षुल्लकस्य समागमः, ततो भगवतो ग्रहणं, राष्ट्रिकश्च पितृवयस्यो भगवंतं मोचयति, ततो भगवान् तोसलिकग्रामं गतः, तत्र पूर्वप्रकारेण गृहीतः, ऊर्ध्वमवलम्ब्यमाने च भगवति सप्त वारान् रज्जवा व्यापत्तिः, ततस्तोसलिकस्य क्षत्रियस्य कथनं, भगवतो मोक्षः।

'२० ग्यारह चतुर्मास के बाद—

'१ भोगपुर नगर में भगवान् को परीषह उपसर्ग

(क) प्रातर्नाथोऽपि संहृत्य प्रतिमामेकरात्रिकीम्।
क्रमेण विहरन् प्रापपुरं भोगपुराभिधम् ॥४६७॥
माहेन्द्रक्षत्रियस्तत्र जिनेन्द्रं प्रेक्ष्य दुर्मतिः।
खर्जूरीयष्टिमुद्यम्य प्रजिहीर्षुरधावत ॥४६८॥
चिरदर्शनसोत्कंठो द्रष्टुं च स्वामिनंतदा।
आगात् सनत्कुमारेन्द्रस्तत्राऽपश्यच्च तं शठम् ॥४६९॥
निर्भर्त्स्य च क्षत्रियं तमिन्द्रः प्रभुमवन्दत।
भक्त्या सुखविहारं चाऽपृच्छत् स्वं च पदं ययौ।

त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ४६७ से ४६९

(ख) भोगपुरसिंदिकंटक माहिंदो खत्तिओ कुणइ।

—आव० निगा ५१७ । उत्तरार्ध

मलय टीका—ततो भोगपुरं स्वामी गतवान्, तत्र माहेन्द्रो नाम क्षत्रियः सिन्दीकन्देनाहन्मीति भगवंतं प्रति धावितः, सिन्दी नाम खजूरी, स एवं उपसर्गं करोति।

एत्थंतरे सणंकुमारो देविंदो एइ, तेणधाडितो तासितो य, पियं च पुच्छइ।

सुसुमारनगर से एक रात्रि की प्रतिमा पारकर जब भगवान महावीर भोगपुर नगर पधारे। वहाँ माहेन्द्र नामक कोई क्षत्रिय रहता था। वह दुर्मति खजूरीकी यष्टि लेकर प्रभु के ऊपर प्रहार करने के लिये दौड़ा। उस समय सनत्कुमारेन्द्र चिरकाल होने से प्रभु के दर्शनार्थ उत्कंठित था। वह प्रभु को वदन करने के लिए वहाँ आया। उस माहेन्द्र को उपद्रव करते हुए देखा अतः उस क्षत्रिय का तिरस्कार कर इन्द्र प्रभु को वंदन कर और भक्तिपूर्वक सुख विहार की पृच्छाकर स्वयं के स्थान चला गया।

'२ नंदीग्राम के परीषह—उपसर्ग

(क) नंदिग्रामं ययौ ग्रामं विहरन् भगवानपि।
नन्दिना पितृमित्रेण भक्तिस्तत्र चार्च्यत ॥४७१॥
ग्रामेऽथ मेण्ढकग्रामे भगवान् विहरन् ययौ।
दधावे तत्र हन्तुं गोपालो वालरज्जुभृत् ॥४७२॥
कूर्मारग्रामवत्तत्र घ्नन्तमेत्य पुरन्दरः।
गार्यं निवार्या मासं ववन्दे च जगद्गुरुम् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४।

तोसलिक ग्राम से विहार कर भगवान् सिद्धार्थपुर पधारे। उस संगमदेवने भगवान को चोर स्थापित कर पूर्व की तरह ग्रहण किया। वहाँ कोशिक नामक अश्ववणिक्—जिसने भगवान को कुंडपुर में देखा था। भगवान को छुटा दिया।

(ञ) अथाऽगाद्गोकुले स्वामी तदाऽऽसीत्तत्र चोत्सवः ॥२८६॥
षडप्युपोषितो मासान् भगवानतिलंध्य तान्।
कर्तुकामः पारणकं भिक्षार्थं गोकुलेऽविशत् ॥२६०॥
यत्र-यत्र गृहे स्वामी प्रययौ तत्र तत्र च।
अनेषणां प्रविदधे पापधीः स सुराधमः ॥२६१॥
दत्तोपयोगो ज्ञात्वा तमनिवृत्तं सुराधमम्
स्वामी निवृत्य भिक्षायास्तस्थौ प्रतिमया बहिः ॥२६२॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो २८१ से २६२

(ट) ततो द्वितीयदिने वजग्रामे गोकुले भिक्षार्थं हिण्डते, तत्र अनेषणा, ततो भगवान् हिण्डन्नान्निवृत्तः, ततःस उपशान्तो ब्रवीति।

—आव० निगा ५१० । मलय टीका

अन्यदा भगवान् महावीर विहार करते हुए किसी गोकुल मे पधारे। उस समय गोकुल मे उत्सव चलता था। भगवान ने छह मास तक उपवास किया था। पारण के लिए भगवान गोकुल मे भिक्षार्थ पधारे। परन्तु जहाँ-जहाँ भगवान भिक्षा के लिए जाते वहाँ-वहाँ वह अधमदेव आहार को दूषित करने लगा। भगवान ने उपयोग लगाया तो मालूम हुआ कि वह अधम पापी संगमदेव अभी निवृत्त नही हुआ है। फलस्वरूप भगवान ग्राम के बाहर आकर प्रतिमा मे स्थित हो गये।

(ठ) छम्मासे अणुबद्धं देवो कासीय सो उ उवसग्गं।
दट्ठूण वयग्गामे वंदिय वीरं पडिनियत्तो ॥

—आव० निगा ५१२

मलय टीका—एवंसोऽभविकः सङ्गमकनामादेवषण्मासान् अनुबद्धं सन्ततं उपसर्गमकार्षीत्, दृष्ट्वा च व्रजग्रामे गोकुले परिणाम भग्नं उपशांतो वीरं महावीरंवंदित्वा प्रतिनिवृत्तः।

संगमदेवने छह मास तक भगवान को कष्ट दिया। भगवान को अचलित देखकर वंदन कर अपने स्थान चला गया।

(ञ) ततो भगवं मोसलिं गतो, बाहिं पडिमंठितो, इमो खुड्डगरूवं विउव्वित्ता खत्तं खणति, तत्थवि तहेव घेप्पति, बंधिऊणं मारिज्जइत्ति, तत्थ सुमागधो णाम रट्ठिओ सामिस्स पितुवयंसो, सो मोएति।

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० ३११

तोसली ग्राम से बिहार कर भगवान् मोसलिग्राम पधारे। फिर उसी देवका क्षुल्लक के रूप में संधि मार्गका खोज करते हुए समागम हुआ। उसने भगवान् के पास सर्व उपकरणों को ग्रहण कर लिया। सुमागध शास्ताने भगवान् को पहचाना, वह सिद्धार्थ का मित्र था और भगवान् को मुक्त कर दिया।

इसके बाद भगवान् फिर तोसली ग्राम पधारे। वहाँ पर भी पूर्व प्रकार से ग्रहण किया। रस्सी बाधकर भगवान को सातों बार फांसी पर लटकाया गया— सातों बार रस्सी छिन्न-भिन्न हो गयी। वास्तव में यह देवकृत उपसर्ग था। क्षत्रिय ने कहा—यह चोर नहीं है—भगवान को छोड़ दिया।

(झ) ततो भगवं तोसलिं गतो, तत्थवि बाहिं पडिमंठितो, तत्थवि देवो खुड्डरूवं विउव्वित्ता संधिमग्गंसोहेति, पडिलेहेति य, सामिस्स पासे सव्वाणि खत्तोवकरणाणि विगुव्वति, ताहे सो खुड्डओ गहितो, तुमं कीस एत्थ सोहेसि? सो साहति - मम धम्मायरियो रत्तिं मा कंटए भज्जावेहिति सो रत्ति खणओ णीहिति, सो कहिं? कहितो गता, दिट्ठो सामी, तागि य परिपेरं तेण पासति, गहितो, आणीतो ताहे उल्लंबितो, एक्कसि रज्जूछिन्नो, एवं सत्तवारा छिन्नो, ताहेसिट्ठं तस्सं तोसलियस्स खत्तियस्स, सोभणति—मुयह एस अचोरो, निद्दोसो।

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० ३१३

भगवान् फिर तोसली गाँव आये। संगम ने कुछ औजार चुराए और भगवान् के पास रख दिये। आरक्षिक भगवान् को तोसली क्षत्रिय के पास ले गये। सात बार भगवान् के गले में फन्दा लटकाया और वह टूट गया। क्षत्रिय ने कहा है—यह चोर नहीं है। फलस्वरूप भगवान को छोड़ दिया।

(ञ) सिद्धत्थपुरे तेणुत्ति कोसिओ आसवाणिओ मुक्खो।

—आव० निगा० ५१०। पूर्वार्ध

मलय टीका—भगवान् सिद्धार्थपुरे गतः, तत्रपूर्वप्रकारेण स्तेनइति गृहीतः, तत्र च कोशिको नाम अश्ववणिक् तेनः मोक्षः कृतः।

(ख) भेंडियगामे गोवो वित्तासणयं च देविन्दो ॥५१८॥

—आव० नि गा ५१८

टीका—भिण्डिकग्रामे गोपस्योपसर्गं कर्त्तुं प्रवृत्तस्य वित्रासनकं देवेन्द्रः शक्रोऽकरोत्।

(ग) ततो मिंढियगाममेति, तत्थ गोवोउवसग्गं काउमारद्धो, जहा कुमारगामे तहेव वालज्जुएण आहणंतो सक्केण तासितो

—आव० चू० पूर्वभाग। पृ० २११

भोगपुर नगर से विहारकर भगवान् नदी ग्राम पधारे। वहाँ से आप मेंढक ग्राम पधारे। वहाँ एक गोपाल बालकी डोरी लेकर भगवान को मारने के लिए दौड़ा। कुमार ग्राम की तरह इन्द्र आकर गोपको वारण किया और भगवान को वंदना की।

·३ मेंढक ग्राम से कौशाम्बी नगरी के पदार्पण के बाद

तत्तो निष्क्रम्य भगवान् कौशाम्बीं नगरीं ययौ।
राजा तस्यां शतानीकः परानीकभयंकरः ॥४७४॥
तत्र स्वामी पोषमासबहुलप्रतिपद्दिने।
दुराचरं दुग्रंहं च जग्राहैवमभिग्रहम् ॥४७८॥
अभिग्रहवशाद्भिक्षां दीयमानामगृह्णति।
स्वामिनि प्रत्यहं पौरास्ताम्यन्ति स्मात्मनिन्दिनः ॥४८३॥
अनात्तभिक्षः स्वाम्येवं द्वाविंशति परीषहीम्।
सहमानोऽनयन्मासांश्चतुरः प्रहरानिव ॥४८४॥

पौष कृष्णा प्रतिपदा को भगवान ने तेरह बोल का अभिग्रह लेकर कौशाम्बी की ओर विहार किया। अशक्य परीषह की पूर्ति न होने से भिक्षा के बिना बावीस परीषह को सहन करते हुए वर्धमान ने चार प्रहर की तरह चार मास व्यतीत किये।

·४ पालक ग्रामके परीषह—उपसर्ग

(क) नाथोऽथ पालकग्रामे ययौ तत्र त्वहश्यत।
वणिजा वायलाख्येन यात्रार्थं चलता सता ॥६०३॥
अभद्रशकुनं भिक्षुः क्षिपाम्यस्यैव मूर्धनि।
इति हन्तुं प्रभुं पापं स कृष्टाऽसिमधावत ॥६०४॥
सिद्धार्थ व्यंतरस्तस्य स्वयमेवाऽऽच्छिनच्छिरः

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ४

(ख) ततो सामी पालगं नाम गामं गतो, तत्थ वाइलो नाम वाणिओ जत्ताए पधाविती सामिं पेच्छइ, ततो सोऽमंगलंति काऊण असिं गहाय पधावितो एयस्स फालेमित्ति, तत्थ सद्धत्थेण सिद्धत्थेण सीसं छिन्नं।

—आव० चू० पूर्व भाग पृ० २९६

(ग) वालुय वाइल वणिए अमंगलं अप्पणो असिणा

—आव० नि० गा० ५२१ । पूर्वार्ध

टीका—तदनन्तर पालकं नाम ग्रामं स्वामीगतः, तत्र वाइलो नाम वणिक देशान्तरं गच्छन् अमंगलमितिकृत्वा भगवत उपरि खड्गमुद्गीर्य प्रधावितः, तत आत्मना स्वहस्तेन असिना विनाशितः।

सुमगल ग्राम से विहार कर भगवान पालक ग्राम पधारे। वहाँ वायल नाम वणिक् यात्रा कर रहा था। उसने भगवान को आते देखा। मुझे इस भिक्षुक का अपशकुन हुआ है अतः इसके मस्तक पर खग प्रहार करना चाहिए। ऐसा विचार भगवान को मारने के लिए दौड़ा। उस समय सिद्धार्थ वाणव्यन्तर देव ने आकर उस खंग से उसका ही मस्तक छेद डाला।

'२१ गोपालक द्वारा उपसर्ग

(क) ग्रामं षण्मानिनामानं जगाम भगवानपि।
बहिश्च कायोत्सर्गेण तस्थौ ध्यानपरायणः ॥६१८॥
वेद्यं कर्म तदोदीर्णं प्रभोर्विष्णुभवार्जितम्।
शय्यापालश्रवः क्षिप्ततप्तत्रपुनिबंधनम् ॥६१९॥
शय्यापालस्य जीवोऽपि गोपालस्तत्र सोऽभवत्।
स्वाम्यन्तिके वृषान्मुक्त्वा गोदोहादिकृते ययौ ॥६२०॥
चरन्तः स्वेच्छया ते च प्राविशन्नटवीं वृषाः।
क्षणात्सोऽप्यायया गोपोऽपश्यन्नुक्ष्णोऽवदत्प्रभुम् ॥६२१॥
देवार्यः क्व ममोक्षाणः ? किं न ब्रूषे मुनिब्रुव !
न शृणोषि वचः किंवा कर्णरन्ध्रे वृथैव तत् ॥६२२॥
अवादिनि प्रभावेवमत्यन्तकुपितोऽथ सः।
अक्षिपत्काशशलाके स्वामिनः कर्णरन्ध्रयोः ॥६२३॥
शलाके ताडिते तेन तथा ते मिलिते मिथः
यथैकशलाकात्वं बिभरांचक्रतुर्यथा ॥६२४॥

मा कृक्षत् कीलकावेतौ कोऽपीति स्वधीया कुधीः
तत्कीलकबहिर्भागं छित्वा गोपालको ययौ ॥६२५॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४

(ख) ततो भयवं छम्माणिं नाम गामं गतो, तस्स बाहिं पडिमं ठितो, तत्थ सामिसमीवे गोवो गोणे छड्डेऊण गामंपविट्ठो, दोहणाणि काऊण निग्गतो, ते य गोणा अडवि पविट्ठा चरियव्वगस्स निमित्तं, ताहे सो आगतो पुच्छइ - देवज्जग ! कहिं ते बइल्ला ? भयवं मोणेण अच्छइ, ताहे सो परिकुवितो भयवतो कण्णेसु कडसलागातो छुभइ, एगा इमेण कन्नेण जाव दोन्निवि मिलिया, ताहे मूले भग्गाओ, मा कोइ उक्खणिहिइ, केइ भणंति—

एक्काचेव जाव इयरेण कण्णेण निग्गया तओ भग्गा ।
कण्णेसु तऊ तत्तं गोवस्स कयं तिविट्ठ‚णा रन्ना ।
कन्नेसु वद्धमाणस्स तेण छूढा कडसलागा ॥१॥

—आव० नि गा ५२३ । मलय टीका

मेंढक ग्राम से विहार कर भगवान छम्मानि ग्राम पधारे। वहाँ ग्राम के बाहर प्रतिमा में स्थित थे। उस समय वासुदेव के भव में शय्यापालक के कान में तपित शीशा डाला था फलस्वरूप उपार्जित असाता वेदनीय कर्म भगवान के उदय में आया। शय्यापालक का जीव यहाँ गोपालक हुआ। उसने भगवान के पास बलदों को छोड़कर गायका दोहन करने के लिए गया। पीछे से वे बलद स्वेच्छा से चरते-चरते किसी अटवी में दूर चले गये। तत्पश्चात् गोपालक वापस आया वहाँ बलदों को नहीं देखा। फलस्वरूप उसने भगवान को कहा कि— अरे अधम देवार्य! हमारे बलद कहाँ गये हैं ? तुम क्यों नहीं बोलते हो ? क्या तुम हमारे वचनों को नहीं सुनते हो। क्या तुम्हारे कान के छिद्र व्यर्थ हैं। ऐसा कहने पर भी भगवान कुछ नहीं बोले, तब वह अति क्रोधित होकर भगवान के दोनों कर्णरंध्र में काशड़ा की शली प्रवेश की। तत्पश्चात् उन शलिओं को ताड़न करने से वे शलिया परस्पर इसप्रकार इकट्ठी हो गई मानो अखण्ड एक ही शली हो। इन दोनों कीलों को निकाल न ले—ऐसा विचार कर दुष्ट गोपालक उसका बाहर दिखता हुआ भाग छेदकर चला गया।

(ग) प्रणष्टमायामिथ्यात्विशल्योपि श्रुतिशल्यभाग् ।
अकम्पित शुभध्यानादपापां मध्यमां ययौ ॥६२६॥
पारणार्थं प्रभुस्तत्र सिद्धार्थ वणिजो गृहे ॥
जगाम भगवांस्तेन भक्त्या च प्रतिलाभितः ॥६२७॥

पूर्वांयातस्तत्र वैद्यः सिद्धार्थस्य सुहृत्प्रियः ।
खरकाख्यः प्रभु प्रेक्ष्य सूक्ष्मधीरब्रवीदिदम् ॥६२८॥
अहो भगवतो मूर्तिः सम्पूर्णा सर्वलक्षणैः ।
परं शल्यवती चेयं म्लानत्वेनोपलक्ष्यते ॥६२९॥
सिद्धार्थः संभ्रमादूचे यद्येवं तन्निरूपय ।
सम्यग्भगवतो देहे क्व शल्यं हन्ततिष्ठति ॥६३०॥
वैद्योऽपि निपुणं पश्यन्नखिलं स्वामिनो वपुः ।
ददर्शकर्णयोः कीलौ सिद्धा र्थस्याप्यदर्शयत् ॥६३१॥
सिद्धार्थोऽथावदत् केनाप्यपवादादभीरुणा ।
नरकादप्यभीतेन चक्रेऽदः कर्म दारुणम् ॥६३२॥
कृतं वा तस्य पापस्य कथयाऽप्यनया सखे !
नाथस्य शल्योद्धाराय प्रयतस्व महामते ! ॥६३३॥
स्वामिनः कर्णयोः शल्ये पीडा तु महती मम ।
विलम्बं न सहेऽत्रार्थे सर्वस्वमपि यातुमे ॥६३४॥
कर्णाभ्यां विश्वनाथस्यो द्धृतयोरिह शल्ययोः ।
मन्ये भवमहाम्भोधेरावामेव समुद्धृतौ ॥६३५॥
वैद्योऽप्युवाच नाथोऽयं विश्वत्राणक्षयक्षमः ।
कर्मक्षयायोपैक्षिष्ट तं नाऽशक्तयाऽपकारिणम् ॥६३६॥
कथं चिकित्सनीयोऽयं निरपेक्षोवपुष्यपि ।
यः कर्म निर्जरालुब्धो वेदनां साधुमन्यते ॥६३७॥
सिद्धार्थोऽप्यवदत् केयं वाचोयुक्तिस्तवाधुना ।
न कालो वचसामेषां चिकित्स्यो भगवान् खलु ॥६३८॥
तयोर्न्नाणयोरेवं निरपेक्षः प्रभुर्ययौ ।
तस्थौ च बहिरुद्याने शुभध्यानपरायणः ॥६३९॥
सिद्धार्थखरकौ तौच गृहीत्वा भेषजादिकम् ।
तत्रोद्याने त्वरावन्तौ भगवन्तमुपेयतुः ॥६४०॥
तैलद्रोण्यां विनिवेश्य तैलेनाभ्यज्य च प्रभुम् ।
संवाहकैर्बलीयोभिस्तावमर्दयतामथ ॥६४१॥
श्लथेषु मर्दनात्सर्वसन्ध्योजस्विपुरुषैः प्रभोः ।
संदंशाभ्यामकृष्येतां युगपत्कर्णकीलकौ ॥६४२॥

कीलद्वयं सरुधिरं निर्ययौ कर्णरन्ध्रयोः ।
अवशिष्टं वेदनीयं कर्म साक्षादिव प्रभोः ॥६४३॥
तथाऽमूढ् वेदना कीलकर्षणेन यथा प्रभुः ।
रराव भैरवारावं वज्राहत इवाचलः ॥६४४॥
नाऽस्फुटत् स्वामिमाहात्म्यात्तेन नादेन मेदिनी ।
विपद्यपि हि नाऽर्हन्त, परोपद्रवकारिणः ॥६४५॥
संरोहण्या रोहयित्वा कर्णौ नाथं प्रणम्य च ।
क्षमयित्वा च सिद्धार्थखरकौ गृहमीयतुः ॥६४६॥
वेदनामपि तौ भर्तुः कृतवन्तौ शुभाशयौ ।
बभूवतुः सुरलोकश्रीभाजनमुभावपि ॥६४७॥
दुष्टाशयस्तु गोपालो विधाय स्वामिवेदनाम् ।
सप्तमावनिदुःखानां भाजनं समजायत, ॥६४८॥

— त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४ । श्लो ६२१ से ६४८

(घ) भयवतो तहारवेयणिज्जं कम्मं उइन्नं, ततो सामी मज्झिमं पावं गतो, तत्थ सिद्धत्थो नाम वाणियतो, तस्स घरमागतो, तस्स य मित्तो खरतो नाम वेज्जो, तेद्दोऽविसिद्धत्थघरे अच्छंति, सामि भिक्खस्स पविट्ठो, वाणियतो वंदइ थुणइय, वेज्जो तित्थयरंपासिऊण भणइ अहो भयवं सव्वलक्खणसंपुन्नो किंतु ससल्लो, ततो सो वाणियतो संभंतो भणइ, पलोएहि कहिं सल्लो ?, तेण पलोयंतेण दिट्ठो कण्णेसु, तेण वाणिएणभन्नइ—नीनेहि एवं महातवसिस्स, पुन्न होहिइतववि मज्झवि भणइ, निप्पडिकम्मो भयवं न इच्छइ, ताहे पडियराविनो जाव दिट्ठो उज्जाणे ताव पडिमं ठितो, ते ओसहाणि गहाय गता, तत्थ भयवं तेल्लदोणीए निवण्णाविनो मक्खितो य, पच्छा बहुएहिं पुरिसेहिं जंतितो अक्कंतोय, पच्छा संडासएण गहाय कड्डियातो, तत्थ सरुहिरातो सलागातो अंछियातो, तासु य अच्छिज्जंतीसु भगवया आरसियं, ते य मणूसे उप्पाडित्ता उट्ठितो, महाभेरवं तत्थ उज्जाणं जायं, देवउलंच, पच्छा संरोहणी ओसही दिण्णा, ततो ताहे चेव भयवं पउणो जातो, वंदित्ता खामित्ता य गता । एतदेवाह—

× × ×

(च) झम्माणि गोवकडसल पवेसणं मज्झिमाइ पावाए ।
खरओ विज्जो सिद्धत्थ वाणिओ नीहरावेइ ॥५२४॥

टीका—×××। ततो भगवान् मध्यमपापायां गतः, तत्र खरको वैद्यस्तत्पार्श्वात् सिद्धार्थनामावणिक् ते कट शलाके निर्हारयति। ×××। एसो गोवो सत्तमिंगतो, खरतो सिद्धत्थो य एए दोऽवि तिव्वमवि वेयणमुदीरंता विसुद्धता देवलोगं गता।

अर्थात् कान में डाले हुए शल्य से शुभ ध्यान से भगवान जरा भी प्रकंपित नहीं हुए। षण्मानि ग्राम से विहार कर भगवान मध्यम अपापा नगरी पधारे। वहाँ पारणा के लिए भगवान को किसीने भक्ति से प्रतिलाभित किया। वहाँ सिद्धार्थ का एक खरक नामक प्रिय मित्र वैद्य पहले से ही आया हुआ बैठा था। वह सूक्ष्म बुद्धिमान होने से भगवान को देखकर बोला कि अहो! यह भगवन्त की मूर्ति सर्व लक्षण सम्पूर्ण है परन्तु जरा म्लानिभूत दिखाई देती है। इससे शल्यवती हो ऐसी लगती है। सिद्धार्थ ने सम्भ्रम से कहा—"यदि ऐसा ही है तो सम्यग् प्रकार खोज करनी चाहिए कि भगवान के किस स्थान पर शल्य है, तत्पश्चात् वैद्य भगवान के सर्वशरीर की निपुणता से खोज करने से मालूम हुआ कि दोनों कानों में कीला प्रवेश किया हुआ देखा। और सिद्धार्थ को भी बताया।

सिद्धार्थ ने कहा कि अरे! कोई अपवाद से या नरक से भी नहीं भयभीत होने वाला पापी ने यह दारुण कर्म किया है। परन्तु हे महामति मित्र! उस पापी की वार्ता करने की कोई जरूरत नहीं है! अभी तो भगवान के शरीर में से शल्य के उद्धार करने का प्रयत्न करो। यह शल्य तो प्रभु के कान में है परन्तु मुझे पीड़ा अधिक होती है इस कारण जरा भी विलम्ब मैं नहीं कर सकता। हमारा सर्वस्व भले ही नाश हो जाय परन्तु भगवान के कान में से कैसे भी शल्य उद्धार हो तो अपने दोनों का इस भवसागर से उद्धार हो गया—ऐसा समझना चाहिए।

वैद्य ने कहा कि भगवान विश्व के रक्षण और कर्मक्षय करने में समर्थ है। परन्तु कर्मों के क्षय करने के लिए उन्होंने अपकारी पुरुष की उपेक्षा की है। वे प्रभु स्वय के शरीर की भी अपेक्षा रहित है अतः हम से कैसे चिकित्सा हो सकती है। क्योंकि वे कर्म की निर्जरा के लिए ऐसी वेदना को भी सम्यग् मानते हैं।

सिद्धार्थ ने कहा कि हे मित्र! इस वचन की युक्ति इस समय किस लिए करते हो। यह बात करने का समय नहीं है। अतः सत्वर भगवन्त की चिकित्सा करनी चाहिए। इस प्रकार दोनों परस्पर बात करते हैं इतने में निरपेक्ष भगवान वहाँ से चले गये। बाहर उद्यानमें जाकर शुभ ध्यान मे परायण हुए। तत्पश्चात् सिद्धार्थ और खरक वैद्य औषध आदि लेकर त्वरा गति से उद्यान में आये और भगवान को एक तेल की कुंडी में बैठाया। उन्होंने शरीर में

तेलका अभ्यंगन किया और बलवान् चंपी करने वाले मनुष्यों के पास मर्दन कराया। उन बलीष्ट पुरुषों ने भगवान के शरीर के सर्व सांधे शिथिल कर दिये। तत्पश्चात् उन्होंने दो संडासी लेकर प्रभु के दोनों कानों मे से दोनों कील एक साथ खींचो फलस्वरूप रुधिर सहित दोनों कीले मानो प्रत्यक्ष अवशेष वेदनीय कर्म निकलता हो वैसे निकल गया। कीलों के खींचते समय भगवान को इतनी ज्यादा वेदना हुई कि उस समय वज्र से हणे हुए पर्वत की तरह प्रभु मोटा भयंकर क्रन्दन किया। प्रभु के महात्म्य से उस चीख के नाद से पृथ्वी फुटी नहीं अर्हन्त प्रभु विपत्ति मे भी दूसरों को उपद्रवकारी नहीं हुए।

तत्पश्चात् सरोहणी औषधि से प्रभु के कान को तत्काल रोहन कर, खमाकर, नमन कर सिद्धार्थ और खरक वैद्य स्वयं के घर गये।

वे शुभाशय पुरुष प्रभु को वेदना करते हुए भी देवायु बाँधी—देव सम्बन्धी लक्ष्मी को भोगने वाले हुए। दुराशय गोवाल भगवान को वेदना कर, मरण प्राप्तकर सातवी नरक में दुःख का पात्र हुआ। भगवान के भैरव (भयंकर) नाद से वह उद्यान महाभैरव नाम से प्रख्यात हुआ और वहाँ लोगों ने एक देवालय कराया।

·३२ जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट उपसर्ग

(क) एवं श्रीवीरनाथस्योपसर्गेष्वखिलेष्वपि।
जघन्येषूत्कृष्टं कटपूतनाशीतमुत्कटम् ॥६५०॥
कालचक्रं मध्यमेषूत्कृष्टेषु द्धरणं खिदम्।
गोपारब्धा उपसर्गा गोपेनैव च निष्ठिता ॥६५१॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४

(ख) इह सव्वेसु किर उवसग्गेसु कयरे दुव्विसहा? उच्चते कडपूयणासीयं कालचक्कं एयं च निकड्डिज्जंतं, अहवा जहन्नगाण उवरि कडपूयणासीयं, मज्झिमाण कालचक्कं, उक्कोसगाणमुवरि सल्लुद्धरणं। गोवेण आरद्धा उवसग्गा गोवेण णिट्ठिया।

—आव० नि गा ५२४ मलय टीका

भगवान ने साधनाकाल मे जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट उपसर्ग सहन किये। जघन्य उपसर्गों मे कटपूतनी ने शीत का उपसर्ग किया। उत्कृष्ट और मध्यम उपसर्गों में संगम ने कालचक्र फेंका। और उत्कृष्ट उपसर्गों मे खर कार्णो में से कीली का उद्धार किया।

इस प्रकार भगवान के उपसर्ग का प्रारम्भ भी गोपाल से हुआ और पूर्णता भी गोपाल से हुई। अर्थात् कीली का उपसर्ग अंतिम था।

·२१ विविध परीषह

(क) कुलग्रामपुरिके निकटवन में

मणपज्जय --संजुत्तउ देवदेउ थिर-चित्तउ ।
तार-हार पडुर-घरि कुल- गाम-णामइपुरि ॥
× × × ।
एत्तहिं दुक्कम्मइँ णिट्ठवइ ।
भीसणि णिज्जणि वणि दिणु गमइ ॥
जिणु-जिण कप्पेण जिचक्कमइ ।
जो पाण-हारि तासु वि खमइ ॥
घत्ता --सुणह-सीह-सीयाल हँ ओरसियहँ सद्दूलहँ ।
वणि अच्छइ उब्भुब्भ रयणिहिं णं थिरू खंभउ ॥१॥

—वीरजि० संधि २ । क ११

देवों के देव भगवान महावीर स्थिर चित्त तथा मनःपर्ययज्ञान से युक्त होकर कूल ग्राम नामक पुरी में पहुँचे वहाँ के निवास-गृह तारों और हारों के समान उज्ज्वल दृष्टि गोचर होते थे।

यहाँ जिन भगवान महावीर अपने दुष्कर्मों को विनष्ट करते हुए उस पुरी के समीप भीषण निर्जन वन मे दिन व्यतीत करने लगे। वे जिनकल्पी चारित्र से अपनी चर्या करते थे और जो कोई उनके प्राण हरण करने की इच्छा से उनके समीप आता था उसके प्रति भी वे समभाव रखते थे।

जिस वन मे श्वान, सिंह और शृगाल तथा शार्दूल गर्जना करते हुए चारों ओर विचरण करते थे। उसी वन मे वे रात्रिभर खडे-खडे ऐसे ध्यान-मग्न रहते थे जैसे मानो वह कोई स्थिर स्तंभ हो।

(ख) उज्जैनीमें भगवान की रुद्रद्वारा परीक्षा—परीषह-उपसर्ग

·१ उज्जेणिहि पिउवणि भववरिहि ।
तम कसणहि भीम-विहावरिहि ॥
अण्णहि दिणि सिद्धि-पुरंधि-पिउ ।
पिउवणि पडिमा-जोएण थिउ ॥
जोईसरु जण-जणणच्चिहरु ।
अवलोइउ रुद्दें परमपरु ॥

मइँ कय-उवसग्गहु किलसइ।
णिय-चरिय-गिरिंदहु किल्हसइ॥
कि णव णंदणु पियकारिणिहि,।
जोइउँ जिणु सम्मइ धारिणिहि॥
इय चिंतिवि जेट्ठा—तणुरुहिण।
पिंगच्छि-भिउडि-भीसण-मुहिण॥
वेयाल काण-कंकाल-धर।
करवाल-सूल-झस परसुकर॥
पिंगुद्ध—केस दीहर-णहर।
किलिकिलि-रव-बहिरिय-भुवणहर॥
घोइय धाइय हरि दिण्ण-कम।
फुप्फुप्फुयंत विसि विसविसम॥
घत्ता—कय-भुवणयल विमद्दँ पुणु वि हरेणरउद्दें॥
णिय-विज्जहिँ दरिसाविउ गुरु-पाउसु वरिसाविउ॥

'२ पुणु वणयर-गणु कय पडिखलणु।
पुणु धगधगंतु जालिउ जलणु॥
देविंद चंद दप्प हरणइँ।
पुणु मुक्कइँ णाणा पहरणइँ॥
सव्वइँ गयाइँ विहलाइँ किह।
किविणहु मंदिरि दीणाइँ जिह॥
सव्वइ-तणएण पवुत्त॰ हलि।
गिरिवर-सुइ वियसिय - मुह - कमलि॥
वीरहु वीरत्त॰ण संचलइ।
कि मेरु-सिहरि कत्थइ ढलइ॥
इय भणिवि बे वि वंदिवि गयइँ।
वसहारुढइँ रइ- रस रयइँ॥

—वीरजि॰ संधि २। कड २,३। पृ॰ २१-२८

'३ इत्यादिपरमाचारालंकृतो विहरन्महीम्।
उज्जयिन्याः श्मशानं देवोऽतिमुक्तकाख्यमागमत्॥५६॥

तत्र रौद्रे श्मशानेऽसौ त्यक्त्वा कायं शिवाप्तये ।
प्रतिमायोगमाधाय वीरोऽस्थादचलोपमः ॥६०॥
परात्मध्यानसंलीनं मेरुशृङ्गनिभं जिनम् ।
स्थाणुनामान्तिमो रुद्रोऽधोगामी वीक्ष्य पापधीः ॥६१॥
दौष्ट्यात्तद्धैर्यसामर्थ्यं परीक्षितुमधान्मतीम् ।
उपसर्गे जिनेन्द्रस्य पापपाकेन तत्क्षणम् ॥६२॥
विकृत्य स्थूलवेतालरूपाण्येषोऽप्यनेकशः ।
स्वविद्यया जिनं ध्यानाच्चालयितुं समुद्ययौ ॥६३॥
तैर्भयानकरूपाद्यैस्तर्जयद्भिदुरीक्षणैः ॥
अट्टहासैः स्फुरद्ध्वानैर्नृत्यद्भिर्विविधैर्लयैः ॥६४॥
व्यात्ताननैश्च तीक्ष्णास्त्रपल्लहस्तैर्गरोनिशि ।
ध्यानध्वंसकरं चक्रे ह्युपसर्गं सुदुःकरम् ॥६५॥
तस्मिन्नुपद्रवे वीरो मेरुशृङ्ग इवाभवत् ।
न मानक् चलितो ध्यानात्तैरुपद्रवकोटिभिः ॥६६॥
ततः पापी स विज्ञाय ह्यचलं श्रीजिनाधिपम् ।
परैः फणीन्द्रसिंहेभमरुद्रव ह्नुथादिकैः शठ ॥६७॥
स्वकृतैर्वर्धमानस्य व्यधात्कातरभीतिदम् ।
उपसर्गं महाघोरमन्यैर्वाक्यैर्भयंकरैः ॥६८॥
तदापि न मनाग् देवः स्वस्वरूपाच्चचाल सः ।
तरां निजात्मनो ध्यानमालम्ब्यास्थान्महीन्द्रवत् ॥६९॥
ततस्तं धीरतापन्नं ज्ञात्वो दुष्टो महाश्रियम् ।
परीषहांश्चकारास्य पापार्जनैकपंडितः ॥७०॥
किरातसैन्यरूपाद्यैः शस्त्रहस्तैर्भयानकैः ।
दुःसहैर्विविधाकारैरन्यैः कातरभीतिदैः ॥७१॥
इत्याद्युपद्रवैर्घोरैर्वेष्टितोऽपि जगत्पतिः ।
तथापि न मनाक् क्लेशं मनसागान्नरोद्रवत् ॥७२॥
ततो ज्ञात्वा महावीरमचलाकृतिमूर्जितम् ।
लज्जापन्नः स एवेत्थं तत्स्तुतिं कर्तुमुद्ययौ ॥७३॥

—वीरवर्धमानच० अधि ११

निरीक्ष्य स्थाणुरेतस्य धैर्यस्थाद्धैर्यं परीक्षितुम् ।
उत्सृज्य कृतिकारतीक्ष्णाः प्रविष्टजठराण्यलम् ॥३३२॥
व्यात्ताननानि भीष्माणि नृत्यंति विविधैर्लयैः ।
तर्जयंति स्फुरद्ध्वानैः साट्टहासैर्दुरीक्षणैः ॥३३३॥
स्थूलवैतालरूपाणि निशिकृत्वा समंततः ।
पराण्यपि फणीन्द्रेभसिंह वन्ह्यानिलैः समम् ॥३३४॥
किरातसैन्यरूपाणि पापैकार्जनपंडितः ।
विद्याप्रभावसंभावितोपसर्गैर्भयावहैः ॥३३५॥
स्वयं स्खलयितुं चेतः समाधेरसमर्थकः ।
स महतिमहावीराख्यां कृत्वा विविधाः स्तुतीः ॥३३६॥
उमया स सममाख्याय नर्तित्वागादमत्सरः ।
पापिनोपि प्रतुष्यंति प्रत्यक्षं दृष्टसाहसाः ॥३३७॥

—उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो ३३२ से ३३७

परम आचार से अलंकृत और जिनेन्द्र पृथ्वी पर विहार करते हुए उज्जयिनी के अतिमुक्तक नाम के श्मशान में आये । उस रौद्र श्मशान में और जिनेन्द्र शिव-प्राप्ति के लिए काय का त्याग कर और प्रतिमायोग को धारण कर पर्वत के समान अचल होकर ध्यानस्थ हो गये । परम आत्मध्यान में तल्लीन, मेरु शिखर के समान स्थिर जिनराज को देखकर अधोगामी और पाप बुद्धि वालों—स्थाणु नामक अन्तिम रुद्र ने दुष्टता के कारण उनके धैर्य के सामर्थ्य की परीक्षा के लिए पाप के उदय से उसी क्षण उनके ऊपर उपसर्ग करने का विचार किया ।

उस ज्येष्ठा के पुत्र रुद्र ने लाल आँखें, टेढ़ी भौंहें और भीषण मुख बनाकर काल-रूपधारी वैताल बनाये जो अपने हाथों में तलवार, शूल, मूसल और फरसे लिए हुए थे । उनके केश पिंगलवर्ण और खड़ेहुए थे, नख बड़े लम्बे थे तथा वे अपनी किलकिलाहट की ध्वनि से भुवन रूपी गुफा को बहिरा कर रहे थे । रुद्र की प्रेरणा से वे सब भगवान की ओर दौड़ पड़े । सिंह भी उन पर झपट पडे और भीषण विषधारी सर्प भी उनकी ओर फुफकार करते हुए दौड़ पड़े ।

इसके अतिरिक्त भी रुद्र ने जो भुवनमात्र का संहार करने में समर्थ थे ; अपनी विद्याओं द्वारा भीषण मेघों को दर्शाया और घोर जल वृष्टि की ।

उसी ने समस्त वनचरों द्वारा क्षोभ उत्पन्न कराया । धमधमाती हुई अग्नि भी बरसायी और नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र भी छोड़े, जिनसे देव, इन्द्र और चन्द्र का भी गर्व चूर-चूर

हो जाय। किन्तु रुद्र के समस्त उपसर्ग ऐसे विफल हुए जैसे कृपण पुरुष के घर जाकर दीन जन विफल ही वापस हो जाते हैं। तब उन सात्यकी-पुत्र रुद्र ने पार्वती से कहा—हे प्रफुल्ल-कमलमुखी गिरिवर पुत्री पार्वती—देखो इस वीर की वीरता लेश मात्र भी चलायमान नहीं होती। भला क्या सुमेरु पर्वत कहीं हल सकता है। ऐसा कहकर वे दोनों भगवान की वन्दना करके अपने वृषभ पर आरुढ़ हो, चरित्र में अनुरक्त होते हुए वहाँ से चले गये।

(ग) प्रश्नोत्तर के समय परीषह

स जणेहिं तत्थ पुच्छिंसु, एगचराऽवि एगदाराओ।
अव्वाहिए कसाइत्था, पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे॥
अयमंतरंसि को एत्थ, अहमंसि त्ति भिक्खूआहट्टु।
अयमुत्तमे से धम्मे, तुसिणीए सकसाइए झाति॥

—आया० श्रु० १। अ ६। उ २। गा ११, १२। पृ० ७५

टीका—किञ्च जणेहिं इत्यादि स भगवानर्द्धत्रयोदशपक्षाधिकाः समा एकाकी विचरंस्तत्र शून्यगृहादौ व्यवस्थितः सन् जनैर्लोकैः पृष्टस्तद्यथा को भवान् किमत्र स्थितः इत्येवं पृष्टोपि तूर्ष्णीभावमभजत तथा उपपत्याद्या अपि एकचरा एकाकिन एकदा कदाचिद्रात्रावह्नि वा पप्रच्छुरव्याकृते च भगवता कषायितास्ततो अज्ञानावृत्तदृष्टयो दंडमुष्ट्यादिना ताड़नतोऽनार्य्यंस्वमाचरंति भगवांस्तु समाधिः प्रेक्षमाणो धर्म्मध्यानो पगतचित्तः सन् सम्यक् तितिक्षते किंभूतोऽप्रतिज्ञो नास्य वैरनिर्यातनप्रतिज्ञाविद्यत इत्यप्रतिज्ञ कथन्ते प्रप्रच्छुरिति दर्शयितुमाह।

'अयमंतरंसि' इत्यादि अयमन्तर्मध्ये कोऽत्र व्यवस्थित एवं संकेतगता दुश्चारिणः पृच्छन्ति कर्म्मकरादयो वा तत्र नित्यवासिनो दुःप्रणिहितमानसाः पृच्छन्ति तत्र चैवं पृच्छतामेषां भगवांस्तुष्णीभावमेवभजते, क्वचित् बहुतर दोषापनयनाय जल्पत्यपि कथमिति दर्शयति अहं भिक्षुरस्मीत्येव मुक्ते यद्दिते अवधीरयन्ति ततस्तिष्ठत्येवाभिप्रेतार्थव्याघाताकषायिता महान्वा सान्मतेति तदा एवं ब्रूयर्यथा तूर्णमस्मात् स्थानान्निर्गच्छ ततो भगवान वियत्तावमह इतिकृत्वा निर्गच्छत्येव भगवान किन्तु सोयमुत्तमः प्रधानो धर्म्म आचार इति कृत्वा सकषायिते तस्मिन् गृहस्थे तूष्णीभावव्यवस्थितो यद्‌ भविष्यतया ध्यायत्येव ध्यानात् प्रच्यवते।

वे महाव भगवान मितभाषी थे। 'एगचरा' चोर ,जार आदि एकाकी भ्रमण करने वाले असामाजिक तत्व आदि एकाकी भ्रमण करने वाले भगवान को दिन में अथवा विशेष

करके बात में उनसे विविध प्रश्न करते थे। इस प्रकार प्रश्न पूछने पर भगवान कभी संक्षेप में उत्तर देते थे तथा कभी नहीं भी देते थे। भगवान जब कभी शून्य गृह आदि में विराजते थे तब बाहर से यदि कोई प्रश्न करता था कि अन्दर में कौन है तो भगवान संक्षेप में उत्तर देते थे कि मैं भिक्षुक हूं ? कभी उत्तर नहीं देकर मौन भी रह जाते थे। प्रश्न कर्त्ता को उत्तर नहीं देने पर वे क्रोधित होकर भगवान को विविध प्रकार का कष्ट देते थे। फिर भी अवैरवृत्ति वाले भगवान इन कष्टों को समता से सहन करते हुए समाधिमग्न—कठिन उपसर्ग सहते हुए भी आत्म-निरीक्षण मे लीन रहते थे। इस प्रकार भगवान उत्तम धर्म का आचरण करते थे।

(घ) प्रतिकूल परीषह

·१ ××× तस्स पव्वइयस्सवि सत्तो चत्तारि साधिए मासे गंधो न फिट्टितो ××× जेऽविकेई अजिइंदिया तरुणपुरिसा तेऽवि गंधे अग्घाइऊण गंधमुच्छिया भयवंतं भिक्खायरियाए हिंडंतं गामाणुगामं दूइज्जंतं अणुगच्छंता अणुलोमं जायंति, देहि अम्हवि एयं गधजुत्तिति, ततो भयवंते तुसिणीए अच्छमाणेपडिलोमे उवसग्गे करेंति, देहिंवा, किंवा, पिच्छंसित्ति, एवं पडिमाट्ठियंपि उवसग्गेति।

—आव० चू० पूर्व भाग पृ० २६६

—आव० भाष्य गा० १११, टीका, आया० चू० पृ ३००

गंधयुक्ति मयाचन्त ग्रामीणतरुणाः प्रभुम्।

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ४७ पूर्वार्ध

अविजेन्द्र तरुण पुरुष—जब भगवान भिक्षा के लिए जाते थे तब सुगन्ध की युक्ति मांगते थे—हमारी देह भी गन्ध से संयुक्त करो। भगवान ने चुप चाप प्रतिकूल उपसर्ग को सहन किया।

(च) शीतपरीषह

·१ तंसि भगवं अपडिण्णे, अह वियडे अहियासए दविए।

णिक्खम्म एगदा राओ, चाएइ भगवं समियाए॥

—आया० श्रु १। अ ९। उ २। गा १५। पृ० ७६

तंसि इत्यादि तस्मिन्नेवंभूते शिशिर हिमवाते शीतस्पर्शे च सर्वकषे भगवानैश्वर्यादिगुणोपेतस्तं शीतस्पर्शमध्यासयत्यधिसहते किं भूतो सावप्रतिज्ञो न विद्यते निवात वसति प्रार्थनादिका प्रतिज्ञायस्य स तथा अध्यासयत्यधोविकटे अधः कुड्यादिरहिते छन्नेऽप्युपरितद्भावेचेति पुनरपि विशिनष्टि रागद्वेषविरहाद्-द्रव्यभूतः कर्म्मणं विद्रावणाद्वा द्रवः संयमः स विद्यते यस्या सौद्रविकः सच तथा

ध्यासयत् यद्यत्यंतं शीतेन बाध्यते ततस्तस्मात् स्थानान्निक्रम्यबहिरेकदा रात्री मुहूर्त्त मात्रं स्थित्वा पुनः प्रविश्य स भगवान् समितया सम्यग् वा समतया वा व्यवस्थितस्तं शीतस्पर्शं रासभ दृष्टो तेनसोढ़, शक्नोऽध्यधिसहत इति एतदेवोद्देशकार्थमुपसंजिहीर्षु राह।

जब शिशिर ऋतु में अत्यन्त शीतल हेमकणों से युक्त वायु प्रवाहित होती थी तब उससे बचाव पाने के लिए अन्यतीर्थिक साधु वायु शून्य स्थान की गवेषणा करते थे या वस्त्रों से अपने को ढंकते थे, अग्नि जलाकर शीतलता दूर करते थे अथवा कम्बलादि वस्त्रों से शरीर को आच्छादित कर शीत को सहन करते थे। शीतस्पर्श सहन करना अत्यन्त कठिन होता है।

ऐसी शिशिर ऋतु में भी ठंडक निवारण करने वाली किसी वस्तु की भी भगवान इच्छा नहीं करते थे। किसी वृक्षादि के नीचे या दीवाल रहित खुले स्थान में रहकर शीतस्पर्श का सहन करते थे। वे संयमी भगवान किसी एक रात्रि में अत्यंत शीत से बाधित होने पर अल्प समय के लिए बाहर निकलकर, शीतस्पर्श सहन कर वापस अन्दर आकर समभावपूर्वक ध्यानरत हो जाते थे।

ʼ२ तणफासे सीयफासे य, तेउफासेय दंस-मसगेय।
अहियासए सया समिए, फासाइं विरूवरूवाइं॥
—आया० श्रु० १। अ ९। उ ३। गा १। पृ० ७१

टीका—तणफास इत्यादि तृणानां कुशादीनां स्पर्शास्तृण स्पर्शास्तथा शीतस्पर्शा उष्णस्पर्शाश्चातापनादिकाले आसन् यदि वा गच्छतः किल भगवतस्तेजःकाय एवासीत्तथा दंशमशकादयश्च एतांस्तृणस्पर्शान्विरूपान्न नाभूतान् भगवान्न ध्यासयन्ति सम्यगितः सम्यग् भावंगतः समितिभिः समितिवेति।

तृण स्पर्श, शीतस्पर्श, उष्णस्पर्श, दंशमशकस्पर्श तथा विविध प्रकार के स्पर्श परीषहों को भगवान सदा समभाव पूर्वक सहन करते थे।

(छ) उष्णपरीषह

तणफासे सीयफासे य, तेउफासे य दंसमसगे य।
अहियासिए सया समिए, फासाइं विरूवरूवाइं॥
—आया० श्रु १। अ ९। उ ३। गा १

सदा समिति युक्त भगवान महावीर स्वामी तृणस्पर्श शीतस्पर्श, तेजस्पर्श और दंशमशकस्पर्श तथा नाना प्रकार के परीषह उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करते थे।

(ज) आक्रोश परीषह

१—फरुसाइं दुत्तितिक्खाइं, अइयच्चे मुणी परक्कमाणे।
—आया० श्रु १। अ ९। उ १। गा ९। पूर्वार्ध

मुश्किल है सहन करने योग्य कठोर वचनों को परम पराक्रमी भगवान कुछ नहीं गिनते थे अपितु समभाव पूर्वक उन्हें सहन करते थे

'२ स जणेहिं तत्थ पुच्छिसु, एगचरा वि एगया राओ ।
अव्वाहिए कसाइत्था, पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे ॥
—आया० श्रु १ । अ ६ । उ २ । गा ११

कभी कभी वहाँ पर रात्रि के समय अकेले घूमने वाले परस्त्री लम्पट आदि पुरुष भगवान महावीर स्वामी से पूछते थे और भगवान के कुछ न बोलने पर वे क्रोधित होते थे परन्तु भगवान समाधि मे तल्लीन रहते हुए अपने अपमान का बदला लेने की इच्छा नहीं करते थे ।

'३ अयमंतरंसि को इत्थ, अहमंसित्ति भिक्खू आहट्टु ।
अयमुत्तमे से धम्मे, तुसिणीए कसाइए झाइ ॥
—आया० श्रु १ । अ ६ । उ २ । गा० १०

यहाँ इस मकान के अन्दर यह कौन है ? ऐसा पूछने पर मैं भिक्षुक हूँ इस प्रकार कह कर भगवान चुप हो जाते थे । यदि वे क्रोधित होते तो इस परीषह को समभावपूर्वक सहन करना उत्तम धर्म है ऐसा जानकर वे भगवान चुपचाप रहकर शुभध्यान में संलग्न रहते थे ।

(झ) इहलौकिक-पारलौकिक उपसर्ग

इहलोइयाइं परलोइयाइं, भीमाइं अणेगरूवाइं ।
अवि सुब्भि-दुब्भि-गंधाइं, सद्दाइं अणेगरूवाइं ॥
अहियासए सया समिए, फासाइं विरूवरूवाइं ।
अरइं रइं अभिभूय, रीयई, माहणे अबहुवाई ॥
— आया० श्रु १ । अ ६ : उ २ । गा १० । पृ० ७५

टीका—किञ्च इहलोइयाइं इत्यादि तथा अहियासए इत्यादि इहलोके भवाऐह लौकिकामनुष्यकृताः केतेस्पर्शा दुःखविशेषादि व्यास्तिरश्चांश्च पारलौकिकास्तानुपसर्गापादितान् दुःखविशेषानध्यासयत्यधिसहते यदिवा इहैव जन्मनि येदुःखयंति दंडप्रहारादयःप्रतिकूलोपसर्गास्ति इहलौकिकास्तद्विपर्यस्तास्तु-पारलौकिका भीमाभयानका अनेकरूपा नानाप्रकारास्तानेव दर्शयत्यपि सुरभिगंधा स्रक्चंदनादयो दुर्गंधाः कुथित कलेवरादयस्तथा शब्दाश्चानेकरूपा वीणावेणुमृदंगादिजनिताःखराक्रमेलकारभिताद्यास्तापि तास्तांश्चाविकृतमना ।

अध्यासयत्यधि सहते सदासर्वकालं सम्यगितः समितः पंचभियुं तस्तथा स्पर्शान् दुःखविशेषान् रतिं संयमे रतिं चोपभोगाभिष्वंगे अभिभूय तिरस्कृत्य

दीयते संयमानुष्ठाने प्रजति माहणत्ति पूर्ववदुक्तथोभयभाषी एकहि व्याकरणं क्वचिन्निमित्त कृतवानिति भावः।

भगवान महावीर को इसलोक के उपसर्ग भी होते थे अर्थात् इसलोक के प्राणियों द्वारा उनको अनेक विधि उपसर्ग दिये जाते थे। उसी प्रकार उनको पारलौकिक उपसर्ग भी होते थे अर्थात् देवयोनि के प्राणी भी उनको नानाविधि भयानक उपसर्ग देते थे । भगवान को दुर्गन्ध और सुगन्ध के भी उपसर्ग होते थे। नाना प्रकार के कठोर और मधुर शब्दों का उपसर्ग होता था।

टीकाकार ने इहलौकिक उपसर्गों को मनुष्य जनित माना है और इन उपसर्गों को स्पर्श तथा अन्य दुःख विशेषादि रूप वर्णन किया है। इस जन्म के प्राणियों द्वारा प्रदत्त दुःखों को दण्ड-प्रहारादि प्रतिकूल उपसर्ग कहा है। इसके विपरीत पारलौकिक दुःखों को भयानक नाना प्रकार का कहा है। कोई दृष्टांत विशेष नहीं दिया है। भाषा टीकाकार ने पारलौकिक उपसर्गों को देव, तिर्यंच प्रदत्त कहा है। सुरभि गन्ध में पुष्प, चंदनादि का उदाहरण दिया है, दुर्गन्ध में सड़े हुए मृत कलेवर का दृष्टांत दिया है तथा मधुर शब्द मे वीणा, वेणु, मृदंग आदि के शब्दों का उदाहरण दिया है। भाषा टीकाकार ने कठोर शब्द से श्वान, शृंगाल, गधा आदि के कर्कश सुर का उदाहरण दिया है।

भगवान इन सब अनुकूल,प्रतिकूल उपसर्गों को सदा सर्वकाल समता से सहन करते थे। विरूप रूप स्पर्श के दुःख विशेषों को, संयम में अरति को, उपभोगों से रति को तिरस्कृत करके संयमानुष्ठान में परिव्रजन करते थे। महान भगवान अबहुभाषी—मितभाषी थे। क्वचित् प्रश्न करने पर अल्प शब्दों में उत्तर देते थे, क्वचित् नहीं देते थे।

(ख) शय्यापरिषह

·१ सयणेहिं तस्सुवसग्गा, भीमाआसी अणेगरूवाय।
संसप्पगाय जे पाणा, अदुवा जे पक्खिणो उवचरंति॥
अदुकुचरा उवचरंति, गामरक्खा य सत्तिहत्थाय।
अदु गामिया उवसग्गा, इत्थी एगतीया पुरिसा य॥

—आया० श्रु १। अ ९। उ २। गा ७,८ पृ० ७५

टीका—किञ्च सयणेहिं इत्यादि शय्यते स्थीयते उत्कुटुकाशनादिभिर्येष्विति शयनान्याश्रयस्थानानि तेषुतैर्वातस्य भगवत उपसर्गा भीमाभयानका आसन्नने-करूपाश्च शीतोष्णादि रूपतया अनुकूलप्रतिकूलरूपतया वा तथा संसर्पन्तीति संसर्पकाः शून्यगृहादावहि नकुलादयो ये प्राणिन उपचरंत्युपसामीप्येन मांसादिक-मश्नं स्यथवाश्मशानादौ पक्षिणो गृध्रादय उपचरंतीति वर्त्तते।

किञ्च अदुवा इत्यादि अथास्तरंकुशितं चरन्तीति कुचराश्चौर पारदारिकादयस्तेच क्वचिच्छून्यगृहादावचरंस्युपसर्गयन्ति तथा ग्रामरक्षादयश्च त्रिकचच्चुरादि व्यवस्थितं शक्तिकुंतादिहस्ता उपचरंतीति अथग्रामेकाग्राम धर्माश्रिताउपसर्गा एकाकिनः स्युस्तथाहि काचित् स्त्रीरूपदर्शनाध्युपपन्ना उपसर्गयेत्पुरुषोषवेति।

नाना प्रकार के शय्यास्थानों मे उत्कुटुकादि आसनों में अवस्थित भगवान को अनेक रूप से भयकर उपसर्ग होते थे। यथा—शीतोष्ण उपसर्ग, अनुकूल-प्रतिकूल उपसर्ग, उपरिसर्प प्राणी—सर्प आदि का उपसर्ग।

ये सर्प आदि प्राणी निवास स्थान के भीतर, नकुल आदि निवास स्थान के बाहर मांसनोचन का उपसर्ग करते थे। श्मशान आदि वासस्थानों में गृद्ध आदि उड़ने वाले जीव शारीरिक उपसर्ग उत्पन्न करते थे।

कदाचित् शून्यगृहों में विराजते हुए भगवान् को चोर, पारदारिक आदि निशाचर व्यक्ति उपसर्ग देते थे। ग्राम-रक्षक आदि, दस्युदल, सशस्त्र व्यक्ति तथा असामाजिकतत्व भगवान को अकेला देखकर उपसर्ग देते थे तथा कदाचित् भगवान के दर्शन से समुत्पन्न व्यामोह से कोई स्त्री उपसर्ग देती थी अथवा कदाचित् कोई पुरुष उपद्रव करता था।

इन सब उपसर्गों को भगवान समभाव से सहन करते थे।

·२ एलिक्खए जणा भुज्जो, बहवे वज्जभूमि फरुसासी।
लट्ठिं गहाय णालियं, समणातत्थ य विहरिंसु॥
—आया० श्रु १। अ ९। उ ३। गा ५

उस लाढदेश की वज्रभूमि मे इस तरह के बहुत से मनुष्य रूक्ष आहार करने वाले थे अतएव वे स्वभाव से ही क्रोधी होते थे वहाँ पर अन्यतीर्थिक भिक्षु अपने शरीर प्रमाण लाठी अथवा नालिका अर्थात् अपने शरीर से चार अंगुल अधिक बड़ी लकड़ी लेकर विचरते थे। ऐसे विकट देश में भगवान ने बारबार विहार किया था।

·३ सयणेहिं तस्सुवसग्गा, भीमा आसी अणेगरूवा य।
संसप्पगा य जे पाणा, अदुवा जे पक्खिणो उवचरंति॥
—आया० श्रु १। अ ९। उ २। गा ९

भगवान जिन स्थानों में ठहरते थे वहाँ अनेक प्रकार के भयंकर उपसर्ग हुए थे और जो सरक कर चलने वाले प्राणी हैं उन सर्प, नकुल आदि प्राणियों द्वारा तथा जो पक्षी समीप आकर मांसभक्षण करते थे उन गीध आदि पक्षियों द्वारा बहुत से उपसर्ग हुए।

(ड) अचेल परीषह

·१ अहचक्खु-भीया सहिया, तं "हंता" बहवेकंदिसु ॥

—आया० श्रु १ । अ ६ । उ १ । गा ५ । पृ० ७२

तथा रीयमाणं दृष्ट्वा कदाचिदव्यक्तवयसः कुमारादयः उपसर्गये-युरिति दर्शयति अथानंतर्येचक्षुःशब्दोत्र दर्शनपर्यायोदर्शनादेवभीतादर्शनभीता संहितामिलितास्ते बहवो डिंभादयः पांसुमुष्ट्यादिभिर्हत्वाहत्वाचक्रदुःपश्यत यूयं नाग्नामुण्डिनस्तथाकीयंकुनीयं किमितो वायमित्येव हलबोलंचक्रुरिति ×××।

मूल—(भगवान को इस प्रकार स्थित दृष्टि से गमन करते हुए) देख बहुत से (बालक) भयभीत होकर एकत्रित होकर 'मारो-मारो' आदि चिल्लाते हुए (भगवान पर धूल की मुट्ठियाँ निक्षिप्त करते थे तथा मारते भी थे।)

टीका—इस प्रकार जाते हुए देखकर कदाचित् अव्यक्त-अल्प वयस्क-बालक आदि भगवान को उपसर्ग उत्पन्न करते थे। कदाचित् दर्शन मात्र से भयभीत होकर, एकत्रित होकर बहुत से बालक धूल की मुट्ठियाँ फेंकते हुए 'मारो मारो' चिल्लाते हुए तथा यह 'मुण्डित-मुण्डा कैसे, कहाँ, कौन जा रहा है ऐसा चिल्लाते हुए भगवान के पीछे दौड़ते थे।

·२ हयपुव्वो तत्थ दंडेहिं, लूसियपुव्वो अप्पपुण्णेहिं ॥

—आया० श्रु १ । अ ९ । उ १ । गा ८ । पृ० ७१

टीका—दंडैर्हतपूर्वस्तत्रानार्यदेशादौपर्यटन्तथाल्लूषित पूर्वो हिंसितपूर्वः केशलुंचनादिभिरपुण्यैरनार्यैः पापचारैरिति ×××।

अनार्य देशों में पर्यटन—विहरण करने पर भगवान को पापाचारी अनार्य पुरुष डंडों से मारते व पीटते थे तथाकेश लुंचन आदि हिंसक कार्यों से भगवान को कष्ट देते थे।

·३ संवच्छरं साहियंमासं जं ण रिक्कासि तत्थ भगवं।
अचेलए तओ चाईतं वोसिज्ज वत्थमणगारे ॥

—आया० श्रु १ । अ ९ । उ १ । गा ४

देवदुष्य वस्त्र का साधिक तेरह मास तक परित्याग नहीं किया। तत्पश्चात् उस वस्त्र का त्याग करके वे अनगार सर्वथा अकेले होकर विचरने लगे।

(ढ) चर्या परीषह

·१ क्षुत्तृषादिभवान् सर्वान् जयेद्घोरान् परीषहान्।
वनस्थोपद्रवान् शक्त्या वीरोऽतुलपराक्रमः ॥

—वीरवर्धच० अधि १३ । श्लो ५५

वे अतुल पराक्रमी वीर प्रभु अपनी शक्ति से क्षुधा तृषादिजनित सर्वघोर परीषहों को तथा वन में होने वाले सभी उपद्रवों को सहन करते थे।

'२ अदुपोरिसिं तिरियं भित्तिचक्खुमासज्ज अन्तसोझाइ।
अह चक्खुभीया संहिया ते हन्ता हन्ता बहवे कंदिंसु॥
—आया० श्रु १। अ ६। उ १। गा ५

जब भगवान युगपरिमित भूमि का अवलोकन करते हुए एकाग्र होकर—विस्तीर्ण आंख को आँखों से देखकर चलते थे तब भगवान को देखकर, डरकर या कुतूहल से कई बालक इकट्ठे होकर धूल की मुट्ठि से फेंक फेंक कर हल्ला करते थे।

(छ) अरति परिषह

१ आघायनट्टगीयाइं दंडजुद्धाइं मुट्ठिजुद्धाइं॥
—आया० श्रु १। अ। ६। उ १। गा ९ उत्तरार्ध

कथा, नृत्य, गीत आदि सुनकर कुतूहल को प्राप्त नहीं होते, लकड़ियों की मारा-मारी मुष्ठि युद्ध देखकर विस्मय नहीं करते।

'२ जे के इमे अगारत्था, मीसीभावं पहाय से झाई।
पुट्ठो वि णाभिभासिंसु, गच्छइ णाइवत्तइ अंजू॥
—आया० श्रु १। अ ६। उ १ गा ७

जो कोई ये गृहस्थ हैं उनके संसर्ग को छोड़कर भगवान शुभध्यान ध्याते थे। उनके द्वारा पूछा जाने पर बोलते नहीं थे किन्तु वे अपने कार्य के लिए चलते ही जाते थे। संयमानुष्ठान में तत्पर भगवान मोक्ष मार्ग का अतिक्रमण नहीं करते थे।

'३ अरइं रइं अभिभूय, रीयइ माहणे अबहुवाई॥
विरए गामधम्मेहिं, रीयइ माहणे अबहुवाई।
—आया० श्रु १। अ ६। उ २। गा १० उत्तरार्ध
—आया० श्रु १। अ ६ गा ३ पूर्वार्ध

अरति और रति को हटा कर (अबहुवाई) बहुत न बोलते हुए विचरते थे।
इन्द्रियों के विषयों से विरक्त माहन भगवान अल्प भाषी होकर विचरते थे।

'४ एताइं सो उरालाइं, गच्छइ णायपुत्ते असरणाए।
—आया० श्रु १। अ ६। उ १। गा १०। उत्तरार्ध। पृ० ७५

टीका—एतान्यन्यानि चानुकूलप्रतिकूलानि परीषहोपसर्ग रूपाण्युरालानि दुःप्रसह्याणि दुःखान् यस्मरन् गच्छति संयमानुष्ठाने पराक्रमते। ज्ञाताः क्षत्रियस्तेषां पुत्रोऽपत्यं ज्ञातपुत्र वीरवर्द्धमान स्वामी स भगवान्नै तद् दुःख स्मरणाय गच्छति

पराक्रम इति संबंधः। यदिवाशरणं गृहं नात्र शरणमस्तीत्यशरणः संयमस्तस्मै शरणाय पराक्रम इति।

(भगवान महावीर विभिन्न क्षेत्रों में विहरण करते थे।) इस विहरण काल में दुस्सह अनुकूल और प्रतिकूल परीषह—उपसर्गों का सहन करते हुए ज्ञात पुत्र भगवान् संयम मार्ग में गमन करते थे।

(छ) छट्ठे चतुर्मास के बाद आठ मास मगधभूमि में भगवान् को उपसर्ग नहीं हुआ—

·१ पुणरवि भद्दियनगरेतवंविचित्तं तुछट्ठवासम्मि।
मगहाइ निरुवसग्गंमुणि उउबद्धम्मि विहरित्था।

—आव० निगा ४८७

टीका—पुनरपि भगवान् भद्रिकनगरेगतः तत्रषष्ठे वर्षारात्रे विचित्रतपः स्थानादि विषय कायक्लेशं चकृतवाम्, ततो मुनिः—भगवान् मगधेषु जनपदेमृतुबद्ध निरुपसर्गं व्यहार्षीत्।

·२ अथ स्वामी महावीरो गोशालेनानुसेवितः।
मासानष्टानुपसर्गं व्याहार्षीन्मगधावनौ ॥१॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ४

छट्ठे चतुर्मास के बाद भगवान महावीर ने आठ मास मगध भूमि में विचरण किया, वहाँ उपसर्ग भी हुआ।

·४७ वर्धमानका छद्मस्थ संयम-जीवन

·१ उपचर्या

(क) आघाय—णट्ट—गीयाइं, दंडजुद्धाइं मुट्ठिजुद्धाइं।

—आया० श्रु १। अ ९। उ १। गा ९ उत्तरार्ध। पृ० ७१

टीका—तथाख्यातानि च तानि नृत्तगीतानि च आख्यातनृत्तगीतानि तान्युद्दिश्य न कतमुकं विधधाति नापि दंडयुद्धमुष्टियुद्धान्याकर्ण्य विस्मयोतफुल्ल-लोचन उद्धषितरोमकूपो भवति।

(संयम जीवन का एक अंग विचरण करना है अतः भगवान भी विभिन्न क्षेत्रों में विहरण करते थे।) इस विहरण में सामान्यतया भगवान देखते थे कि स्थान-स्थान पर कथा-वाचन, नृत्य-नाटक, गीत-संगीत हो रहे हैं लेकिन इन सबको होते देखकर भगवान को इनके

प्रति किसी प्रकार कौतुक उत्पन्न नहीं होता था अर्थात् उनको देखने की इच्छा भी नहीं करते इसी प्रकार यत्र-तत्र दण्डयुद्ध-लाठीखेला तथा मुष्ठियुद्ध-घूसाबाजी अथवा अन्य इसी प्रकार के खेल होते थे, लेकिन इनको देख-सुनकर भगवान के विस्मय, नेत्रों में प्रफुल्लता तथा रोमकूप में रोमाञ्च नही होता था।

(ख) सयमेव अभिसमागम्म, आययजोगमायसोहीए।
अभिणिव्वुडे अमाइल्ले, आवकहं भगवं समियासी॥

आया० श्रु १। अ ९। उ ४। गा १६

स्वयमेव तत्वों को भली प्रकार जान कर आत्मशुद्धि द्वारा मन-वचन-काय के योगों को अपने वश में करके शान्त माया रहित भगवान यावज्जीवन पाँच समिति और तीन गुप्ति से युक्त थे।

(ग) अहियासए सया समिए, फासाइं विरूवरूवाइं।

—आया० श्रु १। अ ९। उ ३। गा १०। पूर्वार्ध

माहन श्रमण भगवान महावीर स्वामी समिति से युक्त होकर अनेक प्रकार के कष्टों को समभावपूर्वक सहन करते थे।

(घ) एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मइमया।
बहुसो अपडिण्णे, भगवया एवं रीयंति॥

—आया० श्रु १। अ ९। उ ३। गा १६

मतिमान निदान रहित माहन भगवान महावीर स्वामी ने बहुत बार इस विधि का आचरण किया था। इसलिए अन्य मोक्षार्थी आत्माओं को भी इसी प्रकार आचरण करना चाहिए।

(च) सिसिरंसि अद्धपडिवन्ने, तं वोसिज्ज वत्थमणगारे।
पसारित्तु बाहुं परक्कमे, णो अवलंबियाणखंधंसि।

—आया० श्रु १। अ ९। उ २। गा २२। पृ० ७४

टीका—किञ्च सिसिरंसि इत्यादि अर्द्ध प्रतिपन्ने शिशिरे सति तद्देवदुष्यवस्त्रं व्युत्सृज्यानगारो भगवान् प्रसार्य बाहुं पराक्रमतेन तु पुनः शीतार्दितः सन् संकोचयति नापि स्कंधोवलंब्यतिष्टतीति।

शिशिरऋतु के अर्ध व्यतीत हो जाने पर तथा देवदुष्य वस्त्र के (स्वतः गिर जाने पर) अनगार भगवान ने उस वस्त्र का व्युत्सर्ग—परित्याग कर दिया। एवं वे दोनों हाथों को पसार कर (शीत परीषह सहने में) पराक्रम करके विचरण करने लगे। तथा शीतार्दित

होकर भी बाहुओं को स्कंध से झुलाकर नहीं चलते थे बल्कि दोनों हाथों को फैलाकर विचरण करते थे।

(छ) रायोवरायं अपडिण्णे, अन्नगिलाणायमेगया भुंजे ॥

—आया० श्रु १ । अ ६ । उ ४ । गा ६ उत्तरार्ध । पृ० ७८

टीका—रात्रोपरात्रमित्यहर्निशं विहृतवान् किं भूतो अप्रतिज्ञः पानाभ्युपगम-रहित इत्यर्थस्तथा अणे गिलायंति पर्यु षितंतदेकदा भुक्तवानिति।

रात-दिन अर्थात् सदा परीषह उपसर्गों का किसी भी प्रकार प्रतिकार न करते हुए निरीह भाव से विचरते थे और कभी-कभी आहार करते थे किन्तु वह भी ठण्डा आहार करते थे।

(ज) ओमोदरियं चाएति, अपुट्ठे वि भगवं रोगेहिं।

पुट्ठे वा से अपुट्ठे वा, णो से सातिज्जति तेइच्छं ॥

संसोहणं च वमणंच, गायब्भंगणं सिण्णाणं च।

- आया० श्रु १ । अ ६ । उ ४ । गा १-२ । पृ० ७७

टीका—अमोयरियं इत्यादि अपि शीतोष्णं दंशमशकाः परीषहाः सोढुंन पुनरव मोदरता भगवांस्तु पुनरोगैरस्पृष्टोपि वातादि क्षोभभावेप्यवमौदर्यं न्यूनोदरतां शक्नोति कर्त्तुं लोकोहिरोगैरभिद्रुतः संस्तदुपशमनायाव मोदरता विधत्ते भगवांस्तु: तदभावोऽपि विधत्त इत्यपि शब्दार्थो अथवा स्पृष्टोपि कासस्वासादिभि-र्द्रव्यरोगै अपि शब्दात् स्पृष्टोप्यसद्वेदनीयादिभिर्द्रव्यरोगैर्न्यूनोदरतां करोति अथ किं द्रव्यरोगात का भगवतोन प्रादुष्यन्ति येन भावरोगैः स्पृष्ट इत्युक्त तदुच्यते भगवतो हि न प्राकृतस्यैव देहजाः कासस्वासादयो भवंत्यागन्तुकास्तु शस्त्रप्रहारजा भवेयुरित्येत देवदर्शयति। स च भगवान् स्पृष्टो वा स्वभक्षणादिभिरस्पृष्टो वा कासादिभिर्नासौ चिकित्सामभिलषति न द्रव्योषधाद्युपयोगत: पीडोपशमं प्रार्थयतीत्येत देवदर्शयितुमाह।

संसोहणं च इत्यादि गात्रस्य सम्यक् शोधनं विरेचनं निःश्रोतादिभिस्तथा वमनं मदनफलादिभिश्च शब्द उत्तरपद समसमुच्चयार्थो गात्राभ्यङ्गनश्च सहस्रपाक-तैलादिभिः संबाधनञ्च हस्तपादादिभिस्तस्य भगवतो न कल्पते तथा सर्वमेव शरीरमशु द्धयात्मकमित्येवं परिज्ञाय ज्ञात्वा दंतकाष्ठादि भिदतप्रक्षालनञ्च न कल्पत इति।

भगवान रोगों से अस्पृष्ट होते हुए भी ऊनोदरी तप करते थे। रोगादि से स्पृष्ट होने पर भी अथवा न होने पर वे भगवान् कभी भी चिकित्सा करवाना नहीं चाहते थे। इस

औदारिक शरीर को अशुचिमय जानकर वे भगवान किसी भी प्रकार का जुलाब, वमन, तैलादि द्वारा शरीर का मर्दन, स्नान सबाधन यानी हाथ पैरों की चम्पी और दांतन नहीं करते थे।

अर्थात् भगवान के शरीर में किसी प्रकार की व्याधि न होते हुए भी सदा ऊनोदरी तप करते थे। भगवान को श्वास, खांसी आदि शरीर-जन्य कोई रोग नहीं होता था किन्तु अभ्याहत जो कष्ट और व्याधि होती थी, उसकी निवृत्ति के लिए भगवान औषध करने की कभी इच्छा नहीं करते थे। भगवान जानते थे कि यह औदारिक शरीर अशुचिमय है—ऐसा जानकर वे जुलाब, वमन, तैलादि द्वारा शरीर का मर्दन, स्नान, पगचम्पी और दांतन आदि द्वारा किसी भी प्रकार से इस शरीर की परिचर्या नहीं करते थे।

(फ) सयमेव अभिसमागम्म, आयतजोगमायसोहीए।
अभिणिव्वुडे अमाइल्ले, आवकहं भगवं समिआसी॥
आया० श्रु० १। अ ९। उ ४। गा १६। पृ० ७९

टीका - किंच सयमेव इत्यादि सयमेवात्मना तत्त्वमभिसमागत्यविदित संसार स्वभावः स्वयंबुद्धःसन् तीर्थप्रवर्त्तनायोद्यत वांस्तथा चोक्तं आदित्या द्विबिबुधः विसरमर्त्या त्रिलोक्या मास्कंदन्तं पदनुपमं यच्छिवंत्वा सुवाच तीर्थनाथा त्वभवः भयोच्छेदि तूर्णं विद्यत् स्वेत्ये तद्ववाक्यं त्वदवगतयोना किमुत्यान्नि योग इत्यादि कथं तीर्थ प्रवर्त्तनायोद्यत इति दर्शयत्यात्म शुद्धया कर्मक्षयोपशम क्षयलक्षणया यतयोगं सुप्रणहित मनोवाक्कायात्मकं विधाय विषयकषायाद्युपशमनादिभिनिर्वृत्तः शीतीभूतस्तथा अमायावी मायारहित उपलक्षणार्थं स्वादस्याक्रोधाद्यपि द्रष्टव्यं यावत्कथमिति यावज्जीवं भगवान् पंचभिः समितिभिः समितस्तथा तिसृभिर्गुप्तिभिश्चासीदिति।

स्वयमेव तत्त्वों को भली प्रकार जानकर आत्मशुद्धि द्वारा मन, वचन, काया के योगों को वश में करके शान्त, मायारहित भगवान यावज्जीवन पाँच समिति और तीन गुप्ति से युक्त थे। क्रोधादि कषाय न करते हुए भगवान सदा शान्त तथा पाँच समिति और तीन गुप्ति से युक्त थे।

२ भगवानका आत्म विहरण

(क) तओ णं समणे भगवं महावीरे वोसट्ठचत्तदेहे अणुत्तरेणं आलएणं, अणुत्तरेणं विहारेणं, अणुत्तरेणं संजमेणं, अणुत्तरेणं पग्गहेणं, अणुत्तरेणं संवरेणं अणुत्तरेणं तवेणं, अणुत्तरेणं बंभचेरवासेणं, अणुत्तराए खंतीए, अणुत्तराए मोत्तीए,

अणुत्तराए तुट्ठीए, अणुत्तराए समितीए, अणुत्तराए गुत्तीए, अणुत्तरेणं ठाणेणं, अणुत्तरेणं कम्मेणं, अणुत्तरेणं सुचरियफलणिव्वाणमुत्तिमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।।

—आया० श्रु० २ । अ १५ । सु ३६ । पृ० २४०

(ख) तस्स णं भगवंतस्स अणुत्तरेण नाणेणं, अणुत्तरेणं, दंसणेणं अणुत्तरेणं चरित्तेणं अणुत्तरेणं आलएणं अणुत्तरेणं विहारेणं अणुत्तरेणं वीरिएणं अणुत्तरेणं अज्जवेणं अणुत्तरेणं मद्दवेणं अणुत्तरेणं लाघवेणं अणुत्तराए खंतीए अणुत्तराए मुत्तीए अणुत्तराए गुत्तीए अणुत्तराए तुट्ठीए अणुत्तरेण सच्चसंजमतवसुचरियसोवचइयफलपरिनिव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स दुवालसं संवच्छराइं विइक्कंताइं ×××

—कप्प० सू १२१ । पृ० ४० । ४१

भगवान महावीर ने साधना काल मे अनुपम ज्ञान, अनुपम दर्शन, अनुपम सयम, अनुपम निर्दोष वसति, अनुपम विहार, अनुपम वीर्य, अनुपम सरलता, अनुपम कोमलता-नम्रता, अनुपम अपरिग्रह वृत्ति, अनुपम क्षमा, अनुपम निर्लोभता, अनुपम गुप्ति, अनुपम प्रसन्नता, आदि गुणों से अनुपम रूप, सयम, तप आदि भिन्न-भिन्न गुणों के सम्यग् आचरण से निर्वाण का मार्ग अर्थात् सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन और सम्यग् चारित्र—ये रत्नत्रय विशेष रूप से पुष्ट बने थे अर्थात् मुक्तिफल का लाभ उनके पास सहज भाव से आता था। इन उत्तम गुणों के द्वारा भावित भगवान थे।

(ग) तएणं समणे भगवं महावीरे जाए इरियासमिए भासासमिए एसणासमिए आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिए उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्लपरिट्ठावणियासमिए मणसमिए वइसमिए कायसमिए मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी अकोहे अमाणे अमाए अलोभे संते पसंते उवसंते परिनिव्वुडे अणासवे अममे अकिंचणे छिन्नगंथे निरुवलेवे कंसपाई इव मुक्कतोये, संखोइव निरंजणे, जीवो इव अप्पडिहयगई, गगणंपिव निरालंबणे, वायुरिव अप्पडिबद्धे, सारयसलिलंव सुद्धहियए, पुक्खरपत्तं व निरुवलेवे, कुम्मो इव गुत्तिंदिए, खग्गिविसाणं व एगजाए, विहग इव विप्पमुक्के, भारुंडपक्खी इव अप्पमत्ते, कुंजरो इव सोंडीरे, वसभो इव जायथामे, सीहो इव दुद्धरिसे मंदरो इव अप्पकंपे सागरो इव गंभीरे, चंदो इव सोमलेसे, सूरो इव दित्ततेए, जच्चकणगं व जायरूवे, वसुंधराइव सव्वफासविसहे, सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलंते।

—कप्प सु ११७ । पृ० ३९, ४०

भगवान ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान भण्डमात्र निक्षेपणा समिति और-उच्चार पासवणखेल-सिंघाण जल पारिष्ठापनिका समिति, —इन पाँच समिति को धारण करते हुए भगवान महावीर मन को सम्यग्‌प्रकार प्रवर्तन वाले, वचन के सम्यग् प्रकार प्रवर्तन वाले, काय को सम्यग्-प्रकार प्रवर्तन वाले हुए। मनो गुप्ति, वचन गुप्ति और काय गुप्ति से गुप्त थे। जितेन्द्रिय भगवान सर्वथा निर्दोषरूप गुप्त ब्रह्मचारी थे। अक्रोधी, अमानी, अमायावी और लोभ रहित भगवान शांत बने। उपशांत हुए, उनके सर्व सताप दूर हो गये। आश्रव रहित, ममता रहित, अकिंचन, बाह्य-आभ्यन्तर ग्रन्थि रहित बने। जैसे काँसे के बर्तन में जल स्थित निर्लेप रहता है उसी प्रकार निर्लेप थे। शख की तरह निरंजन थे। जीव की तरह अप्रतिहत अप्रतिबन्ध विचरते थे। गगन की तरह निरावलम्ब थे। वायु की तरह अप्रतिबन्ध विहारी थे।

शरद् ऋतु के पानी की तरह हृदय निर्मल था। कमल पत्र की तरह निरुपलेप थे। कूर्म की तरह गुप्तेन्द्रिय थे. महावराह के मुख पर एक सिंग की तरह भगवान एकाकी थे, पक्षी की तरह विप्रमुक्त थे. भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमत्त थे, हाथी की तरह शूर थे, बलद की तरह प्रबल पराक्रमी थे, सिंह की तरह किसी से भी गांजे न जाय वैसे बने। मेरु की तरह अडिग, अकंप, निश्चल थे, सागर की तरह गम्भीर, चन्द्र की तरह सोमलेशी थे, सूर्य की तरह दिप्त तेजस्वी थे। उत्तम सोने की तरह कांतिवान थे, वसुधरा की तरह सर्व स्पर्शों को सहन करने वाले थे, होमित अग्नि की जाज्वल्यमान थे।

(घ) नत्थि णंतस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधो भवति। सेय पडिबंघे चउव्विहे पन्नत्ते, तंजहा-दव्वओ खेत्तओ कालओ भावओ × × ×। भावओ णं कोहे वा माणे वा मायाए वा लोभे वा भये वा हासे वा पेज्जे वा दोसे वा कलहे वा अब्भक्खाणे वा पेसुन्ने वा परपरिवाए वा अरतिरती वा मायामोसे वा मिच्छा-दंसणे सल्ले वा।

तस्स णं भगवंतस्स नो एवं भवइ।

—कप्प० सू ११८। पृ० ४०

भगवान महावीर के कहीं पर भी प्रतिबन्ध नहीं था। अर्थात् भगवान के किसी भी प्रकार-प्रतिबन्ध नही था। भगवान के भावतः क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, हास्य, राग, द्वेष, कलह अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, रति-अरति, कपटपूर्वक झूठ बोलना, मिथ्या-दर्शन-शल्य रूप प्रतिबन्ध नहीं था।

(च) प्रायश्चित्तातिगो देवो निःप्रमादो जितेन्द्रियः।
निर्विकल्पं मनः कृत्वा कायोत्सर्गं विधाय च ॥४८॥
सर्वत्र स्वात्मनो ध्यानं कृत्स्नकर्मवनानलम्।
कुर्यात्कर्मारिघाताय परमानन्दकारणम् ॥४९॥
अभ्यंतरं तपः सर्वं संपूर्णं तस्य जायते।
तेनात्मध्यानयोगेन विश्वास्रवनिरोधनात् ॥५०॥
इति तेपे चिरं वीरः सत्तपांसि पराणिच।
स्ववीर्यं प्रकटीकृत्य द्वादशैव प्रयत्नतः ॥५१॥

— वीरवर्धच० अधि १३। श्लो ४८ से ५१

वीर जिनेन्द्र सदा प्रमाद रहित होकर इन्द्रियों को जीतते थे अतः प्रायश्चित लेने की उन्हें कभी आवश्यकता नहीं थी। वे मन को सर्व प्रकार के संकल्प-विकल्पों से रहित करके और कायोत्सर्ग करके सर्वकर्मरूप वन को जलाने के लिए अग्नि के समान अपनी आत्मा का सर्वत्र ध्यान करते थे। इस प्रकार कर्म शत्रु के विघात के लिए परम आनन्द का कारणभूत सर्व प्रकार का आभ्यन्तर तप आत्मध्यान के योग से और समस्त आस्रवों के निरोध से उनके सदा होता रहता था। इस प्रकार वीर भगवान ने अपने वीर्य को प्रकट करके प्रयत्नपूर्वक बारहों ही उत्तम तपों को चिरकाल तक तपा।

(छ) सयणेहिं वितिमिस्सेहिं, इत्थीओ तत्थ से परिण्णाय।
सागारियं ण सेवे, इति से सयं पवेसिया झाति॥

— आया० श्रु १। अ ९। उ १। गा ६। पृ० ७२

टीका — ×××। किञ्च सयणेहिं इत्यादि शङ्कं ते एष्विति शयनानि वसतयः तेषुकुतश्चिन्निमित्ताद्‌वितिमिश्रेषुगृहस्थतीर्थिकैस्तत्रव्यवस्थितः सन्यदिस्त्रीभिः प्रार्थ्यते ततस्ताः शुभमार्गार्गला इति ज्ञात्वा ज्ञपरिज्ञया प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरन् सागारिकं मैथुनं न सेवते पून्येषुच भाव मैथून न सेवते इत्येवं स भगवान् स्वयमात्मना वैराग्यमार्गंयात्मानं प्रवेश्य धर्म्मध्यानं शुक्लध्यानं वा ध्यायति। ×××।

कभी-कभी भगवान मिश्रित निवास स्थानों में—गृहस्थ तथा अन्यतीर्थियों से बसे हुए-स्थानों में वास करते थे।

वहाँ (कामेच्छु) स्त्रियों (द्वारा आमंत्रित होकर भी) भगवान कामसेवन नहीं करते थे तथा भाव-मानसिक काम सेवन भी नहीं करते थे। क्योंकि भगवान जानते थे कि यह मोक्ष मार्ग में बाधक है। ऐसी अवस्था में भगवान आत्मस्थ होकर प्रशस्त ध्यान करते थे।

(अ) फरुसाइं दुत्तितिक्खाइं, अतिअच्च मुणी परक्कममाणे।

—आया० श्रु १। अ ६। उ १। गा ६। पूवार्ध पृ० ७१

टीका—फरुसातं इत्यादि परुषाणि कर्कशानि वा दुष्टानि तानिवा परैदुःखेन तितिक्ष्यन्त इति दुस्तितिक्षाणितान्यति गत्या विगणय्य मुनिर्भगवान्विदित जगत् स्वभावः पराक्रममाणः सम्यक् तितिक्षते।

(अनार्य देशों के विहरण में) भगवान को असहनीय—असह्य कठोर वचनों को सुनना पड़ता था। वे जगत स्वभाव के ज्ञाता (अनार्य पुरुष स्वभाव से ही कठोर दुर्वचनों का व्यवहार करते हैं इस तथ्य के जानकर) मुनि भगवान उनकी अवगणना कर संयम में पराक्रम करते हुए समता भाव धारण करते थे।

(क) एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया।
अपडिण्णेण वीरेण, कासवेण महेसिणा॥

—आया० श्रु १। अ ६। उ १। गा २३। पृ० ७४
—आया० श्रु १। अ ६। उ २। गा १६। पृ० ७६
—आया० श्रु १। अ ६। उ ३। गा १४। पृ० ७७
—आया० श्रु १। अ ६। उ ४। गा १७। पृ० ७९

टीका—एस विहि इत्यादि एष चर्याविधिरनतरोक्त अश्वाक्रांतोऽनुचीर्णः माहणेत्ति श्रीवर्द्धमानस्वामिना मतिमता विदित विद्येन बहुशो अनेकप्रकारम-प्रतिज्ञेनानिदानेन भगवता ऐश्वर्यादि गुणोपेतेन एवमनेन यथा भगवदनुचीर्णेनान्ये मुमुक्ष वो अशेषकर्म्म क्षयाय साधवो रीयन्ते गच्छन्तीति।

बुद्धिमन्त—पदमार्थ के ज्ञाता माहण अप्रतिज्ञ—किसी प्रकार का निदान न करने वाले भगवान ने इस विधि से (कठिन परीषहमय) आचार का पालन किया। तथा अन्य मुनिगण भी इस प्रकार का आचरण करते हैं।

पाठान्तर-बहुसो अपडिन्नेण, भगवया एवं रीयन्ति त्ति बेमि।

(ख) × × × गच्छंश्च दिवसे मुहूर्त शेषेकर्मारग्राममनुप्राप्तः, तत्रच प्रतिमायां स्थितः।

सो भगवं दिव्वेहिं गोसीसाइएहिं चंदणेहि चुन्नेहि य वासेहिय पुप्फेहिय वासियदेहो निक्खमणाभिसेएण य अभिसित्तो, विसेसेण इंदेहिं चंदणाइगंधेण वासिवो, तस्स पव्वइयस्स वि सतो चत्तारि साधिए मासे गंधोन फिडितो अतो से सुरभिगंधेण भमरा बहवे दूरातो पुप्फितेऽवि कुंदाइवणसंडे चइत्ता दिव्वेहिं गंधेहिं

आगरिसिया भगवतो देहमागम्म विधंति, केइ पुण भमंतो गुमगुमायंता समल्लि-यंति, जयापुण न किंचिवि पावंति तया आरुसिया तुंडेहिं तयं भिंदिऊण खायंति, जेऽविकेई अजिइंदिया तरुणपुरिसा तेऽवि गंधे अग्घाइऊण गंधमुच्छिया भयवंतं भिक्खायरियाए हिडंतं गामाणुगामं दूइज्जंतं अणुगच्छंता अणुलोमं जायंति, देहि अम्हवि एयं गंधजुत्तिति, ततो भगवंते तुसिणाए अच्छमाणे पडिलोमे उवसग्गे करेंति, तहा इत्थियातोवि भयवतो देहं सेयमलरहियं निस्साससुगंधमुहं अच्छीणिय निसग्गेण चेव नीलुप्पलपलासोवमाणि दट्ठु बहुविहमणुलोमुवसग्गं करेंति, एयं सामन्नेण भणियं विसेसो भण्णइ × × ×।

– आव० मूल भाष्य गा १११ । मलय टीका

(ट) दीक्षाक्षणे च यच्चक्रे विभोर्वैर्विलेपनम्।
भृंगास्तत्सौरभाकृष्टास्तमागत्योपदुद्रुवुः ॥
गंधयुक्तिमयाचन्त ग्रामीणतरुणाः प्रभुम्।
अंगसंगं तरुण्यस्तु स्मरज्वरभरौषधम् ॥
दीक्षादिनात् प्रभृत्येवं साग्रं मासचतुष्टयम्।
उपसर्गान्जगन्नाथः सेहे गिरिरिव स्थिरः ॥

— त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ३ । श्लो ४६ से ४८

(भगवान महावीर कुण्डपुर के ज्ञातृ खण्ड उद्यान से विहारकर) एक मुहूर्त दिन शेष रहते हुए कर्मारग्राम पधारे। वहाँ प्रतिमा ग्रहण कर खड़े हो गये।

चूंकि भगवान महावीर के निष्क्रमण अभिषेक के समय उनके शरीर पर दिव्य गोशीर्ष चन्दन का लेप किया गया तथा चूर्ण, फूल आदि सुगन्धित द्रव्य लगाये गये। विशेषतः इन्द्र के द्वारा उनके शरीर पर चन्दनादि सुगन्धित द्रव्य लगाये गये। अतः दीक्षित होने के बाद भी उनके शरीर में साधिक चार मास गन्ध नष्ट नहीं हुई। उस सुरभिगन्ध के कारण भ्रमर दूर से ही आकर उनके शरीर का विधन करने लगे। कई भ्रमण पुनः गुम-गुम आवाज करते हुए वापस शरीर पर बैठ जाते। यदि कोई कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता तो आक्रोशित होकर भगवान के शरीर के मांस और खूनको काटकर खाते।

कोई अजितेन्द्रिय तरुण पुरुष गन्ध से मुर्च्छित होकर जब भगवान को भिक्षा के लिए ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए, अनुकूल स्थान में जाते हुए देखते तथा भगवान की देहसे गन्ध आती हुई देखते तब भगवान महावीर को चुप-चाप बैठे हुए प्रतिकूल उपसर्ग उत्पन्न करते।

स्त्रियाँ भी भगवान के मलरहित देह, श्वास में सुगन्ध, आँख, नील रंग के कमल के समान स्वभाव देखकर—बहुविध अनुकूल उपसर्ग उत्पन्न करतीं। यह सामान्यतः कथन है।

'३ अप्रमत्त चर्या

(क) अकसाई विगयगेही, सद्दरूवेसुऽमुच्छिए झाति ।
छउमत्थे वि परक्कममाणे, णो पमायं सइं पि कुव्विस्था ॥
— आया० श्रु १ । अ ६ । उ ४ । गा १५ । पृ० ७८

टीका— किञ्च अकसाइं इत्यादि न कषायी तदुदयापादित भ्रूकुटयादि-कार्याभावात् तथाविगतागृद्धि गाढ्र्ययंयस्यासौ विगतगृद्धिः तथा शब्दरूपादिष्विंद्रियार्थेष्वमूर्च्छितो ध्यायति मनोज्ञकूलेषु न रागमुपयाति नापीतरेषु द्वेषवशगोऽभूदिति तथा छद्मनिज्ञानदर्शनावरण मोहनीयांतरायात्मके तिष्ठतीति छद्मस्थ इत्येवं भूतोपि विविधमनेक प्रकारं सदनुष्ठाने पराक्रममाणो न प्रमादंकषायादिकं सकृदपि कृतवानिति ।

कषाय रहित गृद्धिभाव रहित और शब्द, रूपादि विषयों में मुर्च्छित न होते हुए सदा ध्यान मग्न रहते थे । इस प्रकार शुभ अनुष्ठानों से पराक्रम करते हुए भगवान ने छद्मस्थावस्था में एक बार भी प्रमाद नहीं किया था ।

चूंकि भगवान महावीर स्वामी अकषायी थे क्योंकि कषाय के उदय से उन्होंने किसी पर भी अपनी भ्रकुटि टेढ़ी नहीं की थी । वे शब्दादि विषयों में आसक्त नहीं होते थे अर्थात् अनुकूल विषयों में राग और प्रतिकूल में द्वेष नहीं करते थे । वे सदा शुभ अनुष्ठान ही में प्रवृत्त रहते थे । इस प्रकार उन्होंने छद्मस्थ अवस्था में एक बार भी प्रमाद का सेवन नहीं किया था ।

(ख) एएहिं मुणी सयणेहिं, समणे आसि पतेरसवासे ।
राइं दियंवि जयमाणे, अप्पमत्ते समाहिए झाइ ॥
- आया० श्रु १ । अ ६ । उ २ । गा ४

तपस्या में रत मुनि श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने इन स्थानों में उत्कृष्ट तेरह वर्ष तक अर्थात् तेरह वर्ष से अधिक नहीं किन्तु तेरह वर्ष से कुछ कम समय तक निवास किया था । वे रात-दिन सयम के अनुष्ठान में यत्नवान् रहते थे । वे कभी प्रमाद नहीं करते थे एवं स्थिर चित होकर धर्मध्यान-शुक्लध्यान ध्याते थे ।

(ग) से तंति चोदन्तो अच्छति, भगवंचहिंडमाणो आगतो, सो तं आगतं पेच्छेत्ता भणइ—भगवंदेवज्जगा । इमंता सुणेहि, अमुगं कलं वा पेच्छाहि । तत्थवि मोणेणं चेव गच्छति ।

—आया० चू० पृ० १०१

णट्टं णच्चंते, तंपुण इत्थी पुरिसो वा णच्चति।

—आया० चू० पृ० ३०१

भगवान सिद्धार्थपुर से विहार कर वैशाली पहुँचे। श्यामा ने कहा—हे देवार्य! आप वीणा-वादन सुनिये। भगवान ने मौन रखा।

भगवान स्त्री पुरुषों के नाटक भी नहीं देखते थे।

(घ) आगाय णट्टगीयाइं, दंडजुद्धाइं मुट्ठिजुद्धाइं॥

—आया० श्रु १। अ ९। उ १। गा ९। उत्तरार्ध

आख्यात नृत्य और गीत तथा दण्डयुद्ध और मुष्टियुद्ध को देखने की इच्छा नहीं रखते थे।

(च) णो वि य कंडूयये मुणी गायं॥

—आया० श्रु १। अ ९। उ १। गा २०। उत्तरार्ध

उन मुनि भगवान ने अपने शरीर में कभी खाज भी नहीं की।

(छ) अच्छिं वि णो पमज्जिया,

—आया० श्रु० १। अ ६। उ १। गा २०। उत्तरार्ध

नेत्र की धूलि निकालने के लिए उन्होंने कभी आँख का प्रमार्जन भी नहीं किया।

(ज) गढिए मिहो-कहासु, समयंमि णायसुए विसोगे अदक्खू।

—आया० श्रु १। अ ६। उ १। गा १०। पूर्वार्ध। पृ० ७१

टीका—तथा गढिए इत्यादिश्लोकः ग्रथितोबावद्धो मिथोऽन्योन्यं कथा सुस्वरैकथा सुसमयेवा कश्चिदवबद्धस्त्वं स्त्रीहृयं वा परस्पर कथायां गृद्धमपेक्ष्य तस्मिन्नवसरे ज्ञातपुत्रो भगवां विशोको विगत हर्षश्च तान् मिथः कथा च बद्धान्म-ध्यस्थो द्राक्षीन्।

मूल—ज्ञातसुत—भगवान महावीर (विहरण करते हुए) किसी समय (मार्ग मे) परस्पर कामादि कथा मे तल्लीन (स्त्रियों को) देखते थे तो (उनके) विशोक शोक और हर्ष नहीं होता था।

टीका—जब कभी ज्ञातपुत्र भगवान महावीर परस्पर कथा मे—कामोद्दीपक कथा में, शृङ्गारादि कथा मे आसक्त स्त्रियों को देखते थे उस अवसर पर भगवान हर्ष-शोक रहित होकर मध्यस्थ रहते थे।

·४ आसन-ध्यान-समाधि

(क) तएणं सामी अहासंनिहिए सव्वे नायए आपुच्छित्ता णायसंडवहिया थवस्यागऽवसेसाए पोरुसीएकंमारग्गामं पहावितो ×××। सामी पालीए जावच्चति तावपोरुसी मुहुत्तावसेसा जाता, संपत्तो य तं गामं तस्स बाहिं सामी पडिमंठितो।

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० २६८

दीक्षित होकर महावीर ने विहार कर कर्मारग्राम पधारे। (प्रथम प्रवास था) प्रतिमा ध्यान मे स्थित हुए (ध्यान का प्रारम्भ)

(ख) अवि झाति से महावीरे, आसणत्थे अकुक्कुए झाणं ।
उड्ढमहे तिरियं च लोए झाएइ समाहिमपडिण्णे ॥

—आया० श्रु १ । अ ९ । उ ४ । गा १४ । पृ० ७८

टीका – किञ्च अविझाइ इत्यादितस्मिंस्तथाभूत आहारेलब्ध उपभुक्तेअलब्धे वापि ध्यायति स महावीरो दुःप्रणिधानादि नानापध्यानं विधत्ते किमवस्थो ध्यायतीति दर्शयत्यासनस्थ उत्कुटुका गोदोहिका वीरासनाद्यवस्थो अकौत कुचईषन् मुख विकारादि रहितो ध्यानं धर्म्मशुक्लयोरन्यतर दारोहति कि पुनस्तत्र ध्येयं ध्याययतीति दर्शयितुमाह ऊर्द्ध्वमधस्तिर्यक्लोकस्य ये जीव परमाण्वादिका भावा व्यवस्थितास्तान् द्रव्यपर्यायनित्यानित्यादिरूपतया ध्यायति तथा समाधिमंतःकरणशुद्धिञ्च प्रेक्षमाणोऽप्रतिज्ञो ध्यायतीति।

भगवान ध्यान के समय ऊर्ध्व, अध: और तिर्यक् — तीनों को ध्येय बनाते थे ऊर्ध्वलोक अधोलोक, तिर्यक् लोक के परमाणु आदि द्रव्यों का ध्यान करते थे। उत्कुटुका, गोदोहिका वीरासन आदि आसनों मे धर्मध्यान अथवा शुक्ल ध्यान ध्याते थे।

(ग) उड्ढं अहेयं तिरियंच, सव्वलोए झायति समितं, उड्ढलोएजे अहेवितिरिएवि, जेहिवा कम्मादाणेहि उड्ढं गंमतिएवं अहेतिरियंच, अहेसंसारं संसारहेउ चकम्मविपागं च झायति एवंमोक्खं मोक्खहेऊ मोक्खसुहंच झायति पेच्छमाणो आयसमाहि परसमाहिं च अहवा नाणादिसमाहि।

- आया० चू० पृ० ३२४

भगवान महावीर ऊर्ध्व, अधो, तिर्यक्-सर्वलोक का ध्यान करते थे। भगवान के ध्यान के निम्नलिखित विषय थे।

१—ऊर्ध्वगामी, अधोगामी और तिर्यक् गामी कर्म।

२ – बंधन, बंधन हेतु, और बंधन परिणाम।

३—मोक्ष-मोक्ष हेतु, और मोक्ष सुख आदि—

(घ) विरए गामधम्मेहिं, रीयति माहणे अबहुवाई।
सिसिरंमिएगदा भगवं, छायाए झाइ आसीय ॥
आयावई य गिम्हाणं, अच्छइ उक्कुडुए अभितावे ॥

—आया० श्रु १ । अ ९ उ ४ । गा ३,४ पूर्वार्ध । पृ० ७७

टीका—किञ्च विरए इत्यादि विरतो निवृत्तः केभ्यो ग्रामधर्म्मेभ्यो यथा स्वमिन्द्रियाणां शब्दादिभ्यो विषयेभ्यो रीयते संयमानुष्ठाने पराक्रमते माहणेत्ति भगवान् किंभूतो असावबहुवादी सकृद्व्याकरणभावात् बहुशब्दोपादानमन्यथा ह्यवादीत्येवं ब्रूयात्तथैकदा शिशिरसमये स भगवा छायायां धर्मशुक्लध्यान ध्यायत्यासीच्चेति।

किञ्च आयावसिय इत्यादि सुत्र-व्यत्यय येन सप्तम्यर्थे षष्ठीग्रीष्मेष्वातापयति कथमिति तिष्ठंत्युत् कुटुकासनो अभितापे तापाभिमुखमिति।

इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर भगवान अल्पभाषी होकर विचरते थे और कभी शिशिर ऋतु में अर्थात् शीतकाल में छाया में बैठकर ध्यान करते थे। भगवान ग्रीष्म ऋतु में उत्कुटुक आसन से सूर्य के सम्मुख धूप में बैठते थे और आतापना लेते थे।

(च) आसणं उक्कुडुओ वा वीरासणे वा।

—आया० चू० पृ० ३२४

(छ) आसनात् गोदोहिकोत्कटुकासनवीरासनादिकात्।

आया० वृत्ति पत्र २८३

भगवान के ध्यान में बैठने के मुख्य आसन—वीरासन, गोदोहिका, उत्कटिका—पद्मासन - पर्यंकासन थे।

(ज) उच्चालइय णिहणिसु, अदुवा आसणाओ खलइंसु।
वोसट्ठकाए पणयासी, दुक्खसहे भगवं अपडिण्णे।

—आया० श्रु १। अ ९। उ ३। गा १२

(झ) केइ आसणातो खलयंति आयावणभूमीतो वा, जत्थ वा अन्नत्थठिओ णिसण्णो वा, केतिपुण एवं वेवमाणो हणेत्ता आसणातोवा खलित्ता पच्छा पाएसु पडितु खमिन्ति।

—आया० चू० पृ० ३२०

कभी ध्यानमग्न भगवान को ऊँचा उठाकर नीचे जमीन पर पटक देते थे और कभी आसन से बैठे होने तो लुढका देते थे। बाद में भगवान के पैरों में गिरजाते क्षमा मांगते।

(ञ) अलद्धपुव्वो वि एगया गामो।

आया० श्रु १। अ ९। उ ३। गा ८। उत्तरार्ध

(ट) एगया कदायि, गामि पविट्ठेण णिवासोण लद्धपुव्वो, जेण सव्वस्सतो ण लद्धो तेण गामो णलद्धो चेवभवति।

—आया० चू० पृ० ३१९, ३२०

लाढदेश में कभी-कभी स्थान नहीं मिलता तो वे पेड़ या जंगल के नीचे ठहर जाते थे।

(ठ) जं भणेज्ज—गाममभिगच्छंतं ति, अपडिण्णो णाम पए पए परीसह-उवसग्गाणंवड्ढिण्णाणं णपडिकिरिया कायव्वा, कारणेण गाममणियंतियं गामब्भासंते लाढा पडिनिक्खमेत्त॰ लूसंति, णग्गा तुमंकिं अम्हंगामं पविससि।

—आया० चू० पृ० ३२०

लाढदेश मे भगवान जब ग्राम मे जाते थे—तब ग्राम के लोगों ने कहा नग्न ! तुम किस कारण हमारे ग्राम मे आ रहे हो— भगवान वापस चले गये।

(ड) ज लाढा तारिसेण रूवेण तज्जंति, बुवंति ते तुच्चिरु विधायण, तारिसे रूवेरज्जंति सरिसासरिसु रमंति।

—आया० चू० पृ० ३२०

लाढदेश मे भगवान को मखौल की भाषा में कहते—नग्न और अर्धनग्न लोगों की कैसी जोड़ी मिली है।

(ढ) भानुतीक्ष्णांशुसंतप्ते पर्वताग्रशितातले।
उष्णकाले प्रभुस्तिष्टेस्सिक्तो ध्यानामृताम्बुभिः॥

—वीरवर्धं० अधि १३। श्लोक ४१

उष्णकाल मे वीरप्रभु सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से संतप्त पर्वत के शिखर पर अवस्थित शिला तल पर ध्यानामृत रूप जल से सिंचित् रहकर ठहरते थे।

५ मौन साधना —

(क) स जणेहि तत्थ पुच्छिसु, एगचरावि एगदा राओ।
अव्वाहिएकसाइत्था, पेहमाणे समाहिअपडिण्णे॥
अयमंतरंसि को एत्थ, अहमंसि त्तिभिक्खू आहट्टु।
अय मुत्तमे से धम्मे, तुसिणी सकसाइए झाति॥

—आया० श्रु १। अ ९। उ २। गा ११-१२

(ख) एगाचरंति एगचरा उब्भामिया, उब्भामगपुच्छत्ति, एत्थ को आगओ आसी पुरिसोवा ? इत्थि पुच्छति अहवा दोवि णं, जणाइं आगमं पुच्छति—अत्थि एत्थ कोयी देवज्जओ कप्पडिओ वा ? तुसिणीओ अच्छइ, दट्ठुं वा भणंति—को तुमं ? तत्थवि मोणं अच्छति ण तेसिं उब्भामइल्लाण वायंपि देति, पच्छा ते अव्वाहिते कम्माइ, एत्थ ॰पुच्छिज्जंतो वि वायंण देइत्ति काऊणं रुस्संति पिट्टंति य, उब्भामिया य उब्भामगं सो णसाहतित्तिकाउं, किं आगतो आसि ? णागतोत्ति, अव्वाहिते कसाइय भण्णति अक्खाहियम्मे, ×××। तेचेव एगचरा आगंतुं दट्ठूणं

भण्णंति-अयमंतरंसि, अयं अस्मिन् अंतरे अम्हसंतगे को एत्थ ? एवं वुत्ते हि अहं भिक्खुत्ति एवं वुत्ते वि रुस्सति, केण तव दिन्नं, किंवा तुमं अम्हं विहारट्ठाणे चिट्ठसि अक्कोसेहिंति वा, कम्मारगस्स वा ठाओ सामिएण दिन्नो होज्जा, पच्छा रन्नो भण्णति—को एस ? सामीट्ठिनो, तुसिणीओ चिट्ठति।

—आया० चू० पृ० ३१६

रात्रि के समय अकेले घूमने वाले कोई युगल भगवान महावीर से पूछा कि भीतर कौन है ? भगवान के कुछ न बोलने पर वे क्रोधित होते थे, मारते थे। परन्तु भगवान समाधि में तल्लीन रहते हुए अपने अपमान का बदला लेने की इच्छा नहीं करते थे।

एक पर्यटक दल भगवान को देखकर —उदात्त स्वर से पूछा। तुम कौन हो ? प्रत्युत्तर में भगवान ने कहा—मैं भिक्षुक हूँ। यह हमारी क्रीड़ास्थल है—तुम किस लिए खड़े हो—क्रोधित होकर पर्यटक बोला। आक्रोश के साथ पर्यटक दल आगे बढ़ गया।

(ग) जे के इमे अगारत्था, मीसीभाव पहाय से झाति।
पुट्ठोवि णाभिभासिसु, गच्छति णाइवत्तई अंजू॥
णो सुगरमेतमेगसिं, णाभिभासे अभिवायमाणे।

—आया० श्रु १। अ ६। उ १। गा ७। ८ पूर्वार्ध। पृष्ठ ७३

टीका—xxx। तथा जे केति इत्यादि ये केचन इमे अगारं गृहंतत्र तिष्ठन्तीत्यगारस्थास्तैर्मिश्रीभावमुपगतोपि द्रव्यतो भावतश्च तं मिश्रीभावं प्रहाय त्यक्त्वा स भगवान् धर्म्मध्यानंध्यायति तथा कुतश्चिन्निमित्तात्गृहस्थैः पृष्टो पृष्टोवानवक्ति-स्वकार्याय गच्छत्येवनतैरुक्तो मोक्षपथमिति वर्त्तते ध्यानं वा अंजुत्ति ऋजुः ऋजोः संयमस्यानुष्ठानात् नागार्जुनीयास्तु पठन्ति पुट्ठोव सो अपुट्ठोवणो अणुण्णाइ पावगं वंकंद्य किञ्च णो सुकरमित्यादिनेतद्वक्ष्यमाण सुक्तं वाएकेषामन्येषां सुकरमेव नान्यैः प्राकृतपुरुषैः कर्तुमलंकिं तत्ते न कृतमिति दर्शयति अभिवादयतो नाभिभाषतेनाप्यन-भिवादयदभयः कुप्यति नापि प्रतिकूलोपसर्गैरन्यथाभावं याति।

(गृहस्थों से बसे हुए स्थान में) रहकर भी भगवान उन गृहस्थों से किसी प्रकार का संसर्ग स्थापित नहीं करते थे। उनके साथ मिलना-जुलना परित्याग कर ध्यान में संलग्न रहते थे।

प्रश्न पूछने पर भी प्रत्युत्तर नहीं देते थे (अथवा नहीं पूछने पर भी चलाकर बात नहीं करते थे)।

सरल स्वभावी भगवान संयम मार्ग का अतिक्रमण नहीं करके विहरण करते थे।

नागार्जुनीय वाचना के अनुसार यह कहा जाता है कि प्रश्न पूछने पर अथवा नहीं पूछने पर भी भगवान पापकर्म—सावद्य कार्य की आज्ञा नहीं देते थे।

(गृहस्थों के बसे हुए स्थान मे) यदि कोई भगवान को वन्दन करता तो उसे बोलते नहीं थे और वदन नहीं करता तो उस पर क्रोध भी नहीं करते थे। प्रतिकूल उपसर्ग होने पर भी भगवान अन्यथा भाव—खेद-खिन्न नहीं होते थे। परन्तु अन्य के लिए यह कार्य सरल नहीं है।

·६ पापकर्म का परित्याग

(क) भगवं च एवमण्णेसि, सोवहिए हु लुप्पई बाले।

कम्मं च सव्वसो णच्चा, तं पडियाइक्खे पावगं भगवं॥

—आया० श्रु १। अ ६। उ १। गा १५

भगवान महावीर स्वामी ने इस प्रकार समझ लिया था कि जो अज्ञानी उपधि से युक्त होता है वह निश्चय ही क्लेश को प्राप्त होता है। कर्म को सब प्रकार से जान कर भगवान महावीर ने कर्मों को उत्पन्न करने वाले पाप कर्म का त्याग कर दिया था।

(ख) संसोहणं च वमणं च, गायब्भंगणं सिणाणं च।

संबाहणं ण से कप्पे, दंतपक्खालणं च परिण्णाए॥

आया० श्रु १। अ ६। उ ४। गा २

इस औदारिक शरीर को अशुचिमय जान कर वे भगवान किसी भी प्रकार का जुलाब वमन तेलादि द्वारा शरीर का मर्दन स्नान सबावन यानी हाथ पैरों की चम्पी और दांतन नहीं करते थे।

(ग) णच्चाणं से महावीरे, णोवि य पावगं सयमकासी।

अण्णेहिं वा ण कारित्था, कीरंतं पि णाणुजाणित्था॥

—आया० श्रु १। अ ६। उ ४। गा ८। पृ० ७८

टीका—किञ्च णच्चाण इत्यादि ज्ञात्वा हेयोपादेयश्च स महावीरः कर्म्म प्रेरण सहिष्णुर्नापि च पापकर्म्म स्वयमकार्षीन्नचान्यैरकुर्वन्न च क्रियमाणमपरैरनु ज्ञातवानिति।

हेय और उपादेय पदार्थों को जानकर उन भगवान महावीर स्वामी ने न तो स्वय पापकर्म किया था, और न दूसरों से करवाया था तथा करते हुए को अच्छा भी नहीं जाना। अर्थात् अनुमोदन भी नहीं किया था।

(घ) पुढविं च आउकायं च तेउकायं च वाउकायं च।

पणगाइं बीयहरियाइं, तसकायं च सव्वसो णच्चा॥

एयाइं संति पडिलेहे, चित्तमंताइं अभिण्णाय।

परिवज्जिया विहरित्था, इति संखाए से महावीरे॥

—आया० श्रु १। अ ६। उ १। गा १२,१३

पृथ्वीकाय-अप्काय-तेउकाय-वायुकाय-पनक बीज, हरित और त्रसकाय को सर्व रूप से जान कर तथा ये सब सचित्त हैं ऐसा विचार कर और समझ कर तथा इनकी हिंसा से पाप लगता है ऐसा जान कर भगवान महावीर स्वामी इनकी हिंसा का त्याग करके विचरते थे।

·७ निद्रा विजय

(क) णिद्द'पि णो पगामाए, सेवइ भगवं उट्ठाए।
जग्गावती य अप्पाणं, ईसिं 'साईया' सी अपडिण्णे॥
संबुज्झमाणे पुणरवि, आसिंसु भगवं उट्ठाए।
णिक्खम्म एगयाराओ, बहि चंकमिया मुहुत्तागं॥
—आया० श्रु १। अ ९। उ २। गा ५-६। पृ० ७५

टीका—किञ्च णिद्द' इत्यादि निद्रामप्यसावपर प्रमादरहितो न प्रकामतः सेवते तथा च किल भगवतोद्वादशसु संवत्सरेषु मध्येऽस्थिकग्रामे व्यन्तरोपसर्गा के कायोत्सर्गं व्यवस्थितस्यैवांतमुहूर्त्तं यावत्स्वप्नदर्शनाध्यासितः सकृन्निद्राप्रमाद आशीत्ततोपि चोत्थायाऽऽत्मानं जागरयति कुशलानुष्टाने प्रवर्त्तयति यत्रापीषच्छय्या-शीत्तत्राप्यप्रतिज्ञः प्रतिज्ञारहितो न तत्रापि स्वापाभ्युपगम पूर्वकं शयीत इत्यर्थः।

किञ्च संबुज्झमाणे इत्यादि स मुनिर्निद्राप्रमादाद्युत्थित चित्तः संबुद्ध्य-मानः संसारपातापार्थप्रमादः इत्येवमवगच्छन् पुनरप्रमत्तो भगवां संयमोत्था-नेनोत्थाययदि तत्रांतर्व्यवस्थितस्य कुतश्चिन्निद्राप्रमादःस्यात् ततस्तस्मान्निः क्रम्यैकदा शीतकालरात्रादौ बहिश्चक्रम्य मुहुर्त्तमात्रं निद्राप्रमादापनयनार्थं ध्याने स्थित-वानिति।

मूल - प्रमाद रहित भगवान अधिक अथवा इच्छा करके निद्राका सेवन नहीं करते थे। निद्राका अवभास होने से उठकर आत्मा को जागृत करते थे। उनका अल्प शयन भी प्रतिज्ञा रहित —कामना रहित सोने के हेतु नहीं होता था।

टीका—एक बार बारह वर्ष के साधनाकाल मे अस्थिकग्राम मे व्यन्तर देव के उपसर्ग करने के पश्चात् कायोत्सर्ग में व्यवस्थित भगवान को अंतर्मुहूर्तकाल निद्रा आई थी तथा उसमें स्वप्न देखे थे। कदाचित् निद्रा आने लगती तो वे उत्थित होकर आत्मा को जागृत करते थे, अपने को कुशल अनुष्ठान मे प्रवृत्त करते थे। सोने की इच्छा पूर्वक शयन नही करते थे।

भगवान निद्रा प्रमाद को संसार में पतन का कारण सम्यग् प्रकार से जान कर निद्रा का सेवन नहीं करते थे। फिर भी यदि कदाचित् निद्रा प्रमाद प्रभावित होता तो भगवान

करके सीधी करके बैठ जाते थे अथवा उठकर सीधे खड़े हो जाते थे। इस प्रकार निद्रा के प्रभाव को दूर करने के लिए बाहर निकल करके मुहुर्तपर्यंत भ्रमण करते थे।

(ख) गिम्हे अतिणिद्दा भवति हेमंतेवाजिर्घामुरादिसु, ततो पुव्वरत्ते अवरत्ते वा पुव्वपडिलेहियउवासयगतो, तत्थ णिद्दाविमोयणहेतु मुहुत्तागं चंकमिओ, णिद्दं पविणेत्ता पुणो अंतो पविस्स पडिमागतो ज्झाइयवान्।

– आया० चू० पृ० ३१३

भगवान को ग्रीष्म और हेमन्त ऋतु के दिनों में कभी-कभी नींद सताती। एक बार रात में नींद आने लगी - भगवान ने मुहूर्त पर नींदली—फिर नींद को छोड़कर ध्यान में लग गये।

.८ ईर्यासमितिका उपयोग

(क) अदु पोरिसिं तिरियं भित्तिं, चक्खुमासज्ज अंतसो झाइ॥

—आया० श्रु १। अ ९। उ १। गा ५ पूर्वार्ध

टीका—× × ×। किञ्च अदुपोरुसिमित्यादि अथानन्तर्ये पुरुषप्रमाणा पौरुषी आत्मप्रमाणावीथीतां गच्छन् ध्यायतीर्यासमितो गच्छति तदेव चात्र ध्यानं यदीर्या समितस्यागमनमिति भावः।

आदि में सकुचित तथा आगे विस्तीर्ण पुरुष प्रमाण— अपने शरीर प्रमाण मार्ग को भगवान चक्षु से देखकर—निरीक्षण करते हुए मार्ग में ध्यान केन्द्रित कर गमन करते थे।

टीका—भगवान ईर्या समिति का ध्यान रखकर गमन करते थे। टीकाकारने 'झाई-ध्यायति, का अर्थ ईर्यासमिति से गमन करना किया है।

'अदु' सुवर्ण बालुका नदी-तट पर अचेलक बनकर भगवान ने अविलम्ब ईर्यासमिति पूर्वक गमन कर दिया था।

(ख) ततो व्रजन् प्रयत्नेन स्वीर्यापथात्तलोचनः।
निर्धनोऽयंधनी चैषमनाग हृदीत्यचिन्तयन्॥४॥
भावयन् त्रिकसंवेगं कुर्वंस्तोषं सुदानिनाम्।
कृतादिदूरनाहारं शुद्धमन्वेषयन् स्वयम्॥५॥

—वीरवर्धच० अधि १३। श्लो ४-५

तब प्रयत्न के साथ उत्तम ईर्यापथ पर दृष्टि रखकर 'वह निर्धन है और वह धनी है, ऐसा मन में जरा भी चिंतवन, नहीं करते, संसार, शरीर और भोग—इन तीनों में संवेग भाते, उत्तम दानियों को संतोष करते, कृत, कारित, उद्दिष्ट आदि दोषों से रहित शुद्ध आहार का स्वयं अन्वेषण करते।

(ग) अप्पं तिरियं पेहाए, अप्पं पिट्ठिओ उपेहाए।
अप्पं बुइएऽपडिभाणी, पंथपेहीचरे जयमाणे ॥
—आया श्रु १। अ ६। उ १। गा २१। पृ० ७४

टीका—किञ्च अप्प इत्यादि अल्पशब्दोऽभावे वर्त्तते अल्पं तिर्यकनिरश्चीनं गच्छन् प्रेक्षते तथाल्पं पृष्ठतः स्थित्वोत्प्रेक्ष्यते तथा मार्गादि केनचित् पृष्टः सन्नसा धुप्रतिभाषीसन्नल्पं ब्रूते मौनेन गच्छत्येव केवलमिति दर्शयति पथि प्रेक्षीचरेद्गच्छे-द्यतमानः प्राणिविषये यत्नवानिति।

भगवान विहार करते समय अगल-बगल म नही देखते थे। पीठ पीछे फिरके भी नहीं देखते थे। सामान्यतः बोलते नही थे, मौन चलते थे। प्रश्न पूछने पर प्रत्युत्तर नही देते थे, मार्ग निरीक्षण करके ईर्यासमिति से यत्नपूर्वक चलते थे।

·६ तपश्चर्या

(क) आयावई य गिम्हाणं, अच्छइ उक्कुडुए अभिताबे।
अदु जावइत्थ लूहेणं, ओयणमंथुकुम्मासेण ॥
- आया० श्रु० १। अ ६। उ ४। गा ४

भगवान ग्रीष्म ऋतु मे उत्कटुक आसन से सूर्य के सम्मुख धूप में बैठते थे और आतापना लेते थे। तथा वे रूक्ष भात, मन्थु यानी बोर का आटा—बोरकूट और कुल्माष यानी कुलथी आदि के आहार से शरीर का निर्वाह करते थे।

(ख) एयाणि तिण्णीपडिसेवे, अट्ठमासे य जावए भगवं।
अपि इत्थ एगया भगवं, अद्धमासं अदुवा मासं वि ॥
अविसाहिए दुवे मासे, छप्पि मासे अदुवा अपिवित्ता।
राओवरायं अपडिण्णे, अन्नगिलायमेगया भुंजे ॥
—आया० श्रु १। अ ६। उ ४। गा ५,६

भगवान आठ मास तक इन तीन प्रकार के आहार का सेवन करते थे। कभी-कभी भगवान अर्द्धमास यानी पन्द्रह दिन अथवा एक मास, अथवा दो मास तथा दो मास से अधिक और छः महीने पर्यन्त जल भी न पीकर रात दिन अर्थात् सदा परीषह उपसर्गों का किसी भी प्रकार प्रतिकार न करते हुए निरीह भाव से विचरते थे और कभी-कभी आहार करते थे किन्तु वह भी ठण्डा आहार करते थे।

(ग) ओमोदरियं चाएइ, अपुट्ठे वि भगवं रोगेहिं।
—आया० श्रु० १। अ ६। उ ४। गा १ पूर्वार्ध

भगवान रोगों से अस्पृष्ट होते हुए भी ऊनोदरी तप करते।

कायक्लेशं भजन्नेवं शरीरसुखहानये।
इत्यसौ षड्विधं चक्रे तपो बाह्यं सुदुस्सहम् ॥४७॥
प्रायश्चित्तातिगो देवोनिःप्रमादो जितेन्द्रियः।
निर्विकल्पं मनः कृत्वा कायोत्सर्गं विधायय ॥४८॥
सर्वत्र स्वात्मनो ध्यानं कृत्स्नकर्मवनानलम्।
कुर्यात्कर्मारिघाताय परमानन्दकारणम् ॥४६॥
अभ्यन्तरं तपः सर्वं संपूर्णं तस्य जायते।
तेनात्मध्यानयोगेन विश्वास्रवनिरोधनात् ॥५०॥
इति तेपे चिरंवीरः सत्तपांसि पराणि च।
स्ववीर्यं प्रकटीकृत्य द्वादशैव प्रयत्नतः ॥५१॥

— वीरवर्धच० अधि १३

इस प्रकार शारीरिक सुख को दूर करने के लिए वीर-जिनेन्द्र कायक्लेश तप को करते थे। इन उपर्युक्त छहों प्रकार के सुदु.सह बाह्य तपों को वीर प्रभु ने किया।

इस प्रकार वीर भगवान ने अपने वीर्य को प्रकट करके प्रयत्न पूर्वक बारहों ही उत्तम तपों को चिर कालतक तपा।

वीर-जिनेन्द्र सदा प्रमाद रहित होकर इन्द्रियों को जीतते थे, अतः प्रायश्चित्त लेने की उन्हें कभी आवश्यकता नहीं थी। वे मन को सर्व प्रकार के संकल्प विकल्पों से रहित करके और कायोत्सर्ग करके सर्व कर्म रूप वन को जलाने के लिए अग्नि के समान अपनी आत्मा का सर्वत्र ध्यान करते थे।

इस प्रकार कर्म-शत्रु के विघात के लिए परम आनंद का कारण भूत सर्वप्रकार का आभ्यंतर तप आत्मध्यान के योग से और समस्त आस्रवों के निरोध से उनके सदा होता रहता था।

·१० अनित्य जागरिका—

(क) × × × ततो लाढावज्जभूमिं (सुद्धभूमिं) वच्चइ × × × तत्थ न भत्तपाणं, नेव वसही लद्धा, एवं तत्थ छम्मासे अणिच्चजागरियं विहरतो।

—आव० नि० गा ४६० । टीका
—आव० चू० पूर्वभाग पृ० २६१

(ख) अनाप्नुवन् वसतिमप्युष्णशीतादिभाजनम्।
धर्मजागरिकां जाग्रत् षण्मासान् स्वाम्यवास्थितः ॥६५॥
नवमीं प्रावृषं तत्रधर्मध्यानपरायणः।
शून्यागारे द्रु.तले वा स्थितः स्वाम्यत्यवाहयत् ॥

—त्रिशलाका पर्व १० । सर्ग ४

(ग) एवं तत्थ छम्मासे अच्छितो भगवं

—आया० चू० पृ० ३११

(घ) तत्र चैवंविधे जनपदे भगवान् षण्मासावधि कालं स्थितवानिति

—आया० वृत्ति० पत्र २८२

(च) तदा य किर वासारत्तो, तंमि जणवए केणइ देइवनिओगेणलेहट्ठो आसी वसहीवि नलब्भति।

—आव० चू० पूर्व भाग पृ० २९६

महावीर ने साधनाकाल का नववां चतुर्मास वज्रभूमि में किया। छः मासतक अनित्य जागरणा की। वहाँ भक्त-पानीन मिला।

'११ चिकित्सा—निषेध

पुट्ठे वा अपुट्ठे वा णो से साइज्जइ तेइच्छं॥

—आया० श्रु १। अ ९। उ ४। गा १। उत्तरार्ष

रोगादि से स्पृष्ट होने पर अथवा न होने पर वे भगवान कभी भी चिकित्सा करवाना नहीं चाहते थे।

'१२ भगवान् के वासस्थान

(क) चरियासणाइं सेज्जाओ, एगतियाओ जाओ बुइयाओ।
आइक्ख ताइं सयणासणाइं, जाइं सेवित्था से महावीरो॥

—आया० श्रु १। अ ९। उ २। गा १। पृ० ७४

टीका—चरियासणाइं इत्यादिश्लोकः चर्यायामवश्यं भावितयायानि-शय्यासनान्यभिहितानि सामर्थ्याया तानिशयनासनानि शय्याफलकादीन्या चक्षु सुधर्मं स्वामी जंबूनाम्नाभिहितो यानि सेवितवान्महावीरो वर्द्धमानस्वामीत्ययश्च श्लोकश्चिरंतन टीकाकारेण न व्याख्यातः तत्र किं सुगमत्वादुताबात् सूत्रपुस्तकेषु तुदृश्यते तदभिप्रायं च वयं न विध्न इति प्रश्नवतिप्रतिवचनमाह।

(ख) आवेसण सभा पवासु, पणियसालासु एगदा वासो।
अदुवा पवियट्ठाणेसु, पलालपुंजेसु एगदा वासो॥

—आया० श्रु १। अ ९। उ २। गा २। पृ० ७४

टीका आवेसण इत्यादि भगवतो हृयाहाराभिग्रहवत्प्रतिमा व्यतिरेकेण प्रायशो न शय्याभिग्रह आसीत् नवरं यत्रैवचरमपौरुषी भवति तत्रैवानुज्ञाप्य-स्थितवान् तद्दर्शयति (आसमताद्दिशंति) यत्र तदावेशनं शून्यगृहं सभानाम ग्राम-नगरादीनां तद्वासिलोकाच्छायिकार्थंममागन्तुकशयनार्थं च कुड्याद्याकृतिः क्रियते,

प्रपोदकस्थानं आवेसनं च सभा च प्रपावेशन सभाः प्रपास्तासु तथा पण्यशालासु हट्टेषु एकदा कदाचिद्वासो भगवतोथवा पालियंति कर्म्म तस्य स्थानं कर्म्मस्थानं अयस्कार वर्द्ध किकुम्जादिकं तथा पलालपुंजेषु मञ्चोपरि व्यवस्थितेष्वधोन पुनस्तेष्वधः सुषिरत्वादेति।

> आगंतारे आरामागारे, गामे णगरेवि एगदा वासो।
> सुसाणे सुण्णगारे वा, रुक्खमूले वि एगदा वासो॥
>
> —आया० श्रु १। अ ६। उ २। गा ३। पृ० ७४

टीका—किञ्च आगन्तारेत्यादि प्रसंगायाता आगत्य वा यत्र तिष्टन्ति तदागन्तारं तत् पुनर्ग्रामान्तर्नगराद्वहिः स्थानन्तत्र यथा आरामे अगारं गृहमारामागारं तत्र वा तथा नगरे वा एकदा वासस्तथा श्मशानेशून्यागारेवा आवेशन-शून्यागारयोर्भेदः सकुड्याकुड्यकृतो वृक्षमूले वा एकदावासप्रति।

> एतेहिं मुणी सयणेहिं, समणे आसी पतेरस वासे।
> राइं दिवं पि जयमाणे, अप्पमत्ते समाहिए झाति॥
>
> —आया० श्रु १। अ६। उ २। गा ४। पृ० ७५

टीका—किञ्च एएहिं इत्यादि एतेषु पूर्वोक्तेषु शयनेषु वसतिषु स मुनिस्त्रिजगत्त्रयवेत्ता ऋतुबद्धे वर्षासु वा श्रमणस्तपस्युद्युक्ता समनावासीन्निश्चलमनाइत्यर्थः कियंतं कालं यावदिति दर्शयति पतेरसवासेत्ति प्रकर्षेणत्रयोदश वर्षं यावत्समस्ता रात्रिं दिनमपि यतमानः संयमानुष्ठान उद्युक्त वांस्तथा अप्रमत्तो निद्रादि प्रमाद-रहित विश्रोतसिकाररहितो धर्म्मध्यानशुक्लध्यान वा ध्यायति।

साधना काल मे भगवान महावीर विचरण करते रहते थे। अंतिम पौरुषी जहाँ भी होती थी—वहाँ शय्या-स्थान को आज्ञा लेकर निवास करते थे। इस विचरण मे भगवान् ने जिन-जिन शय्या स्थानों का सेवन किया—उनका वर्णन यहाँ पर किया गया है।

आवेसन—भग्न शून्य गृह, दीवाल या छत टूटे हुए घर।

सभा—चोपाल

प्रपा (प्रपोदन)—प्याऊ

पण्यशाला—दूकान, हाट

पलितस्थान—कर्मस्थान -कारखाना, यथा—लोहार, बढ़ई आदि की कर्मशाला

पलालपुञ्ज—तृण और बिचाली की राशि को एकत्रित कर रखने के लिए बना हुआ मच—उसके नीचे तथा तृणपुञ्ज के बीच मे रखा हुआ-गृहघर।

आगंतर—यात्रियों के ठहरने का स्थान। यह साधारणतः ग्राम के भीतर और नगर के बाहर होता था।

आरामागार—बगीचे मे बने हुए मकानों में

नगर – नगर

श्मशान — श्मशान

शून्यागार — शून्यगृह—खालीघर

वृक्षमूल—पेड़ के नीचे

टीकाकार ने आवेशन (भग्न शून्य गृह) और शून्यागार का भेद इस प्रकार बतलाया है।

आवेशन—कुड्याकृत अर्थात् दीवालवाला घर तथा शून्यागार—दीवाल रहित चारों तरफ से खुलाघर

उपर्युक्त स्थानों में (शय्या-वसति में) छद्मस्थकाल के तेरह वर्ष पर्यन्त वर्षा काल में अथवा अन्यऋतु काल मे निवास किया था। दिन-रात संयम के अनुष्ठान में उद्यत रहते थे। अप्रमत्त—निद्रा आदि प्रमाद रहित होकर स्थिरचित्त से ध्यान करते थे।

(ख) सयणेहि वितिमिस्सेहिं, × × ×।

—आया० श्रु १। अ ९। उ १। गा ६ प्रथम चरण। पृ० ७२

टीका —× × ×। किञ्च सयणेहिं इत्यादिशङ्कं तेष्वित्ति शयना निवसतयः तेषुकृतश्चिन्निमित्ताद्वितिमिश्रेषु गृहस्थतीर्थीकैस्तत्रऽव्यवस्थितः × × ×।

कभी-कभी भगवान जहाँ गृहस्थ और अन्यतीर्थी मिलकर निवास करते हों वैसे स्थान मे भी वास करते थे।

(ग) जिनेशोऽपि बहून् देशान् नानाग्रामपुराटवीः।
वायुवद्विहरन्नित्यं निर्ममत्वः प्रयत्नतः ॥३९॥
एकाकी सिंहवद् रात्रावसद् ध्यानादिसिद्धये।
गिरिकन्दरदुर्गश्मशानेषु निर्जनेषुच ॥४०॥

—वीरवर्धच० अधि १३। श्लो ३९,४०

वीर जिनेश नाना ग्राम, पुर अटवी और अनेक देशों मे वायु के समान निर्ममत्व होकर प्रयत्न के साथ (जीव रक्षा करते) और नित्य विहार करते हुए विचरने लगे ॥३९॥

वे वीर जिन ध्यानादि की सिद्धि के लिए भयकर गिरि गुफा, दुर्ग श्मशान आदि में और निर्जन वन-प्रदेशों में सिंह के समान एकाकी रात्रि में निवास करते थे ॥४०॥

(ख) प्रावृट्काले विधत्ते ऽसौ झंझावातादिसंकुले।
महायोगं तरोर्मूले धृतिकम्बलवेष्टितः ॥४४॥
चतुष्पथे सरित्तीरे शीतकाले स्थितिं भजेत्।
ध्यानाग्निध्वस्तशीतौघः शीतदग्धद्रुमव्रजे ॥४५॥
भानुतीक्ष्णांशुसंतप्ते पर्वताग्रशिलातले।
उष्णकाले प्रभुस्तिष्ठेत्सिक्तो ध्यानामृताम्बुभिः ॥४६॥

—वीरवर्धच० अधि १२। श्लो ४४ से ४६

वे वीर जिन वर्षाकाल मे झंझा वात आदि से व्याप्त वृक्ष के मूल में धैर्य रूप कम्बल से वेष्टित होकर निवास करते, कभी शीतकाल में चौराहों पर और नदी के किनारे ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा शीतपुंज को ध्वस्त करते हुए निवास करते थे, जिस शीतकाल में प्रचण्ड शीत के द्वारा वृक्षों के समूह जल जाते थे।

उष्णकाल में वीरप्रभु सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से संतप्त पर्वत शिखर पर अवस्थित शिला पर ध्यानामृत रूप जल में सिंचित रहकर ठहरते थे।

·१३ आहारचर्या—आहार गवेषणा

(क) मायण्णे असण-पाणस्स, णाणुगिद्धे रसेसु अपडिण्णे।
अच्छिं पि णो पमज्जिया, णो वि य कंडूयये मुणी गायं ॥

—आया० श्रु १। अ ६। उ १। गा० २०। पृ० ७४

टीका—किञ्च मायणे इत्यादि आहारस्य मात्रां जानातीति मात्रज्ञः कस्या श्यत इत्यशनं शाल्योदनादि पीयत इति पानं द्राक्षापानकादितस्य च तथानानुगृद्धो रसेसु विकृतिषु भगवतो हि गृहस्थ भावेपि रसेषु गृद्धिर्नासीत् किं पुनः प्रव्रजितस्येति तथारसेष्वेवग्रहणं प्रत्यप्रतिज्ञो यथा मयाद्य सिंहकेसरा मोदका एव ग्राह्या इत्येवं रूप प्रतिज्ञारहितोन्यत्र कुल्माषादौ स प्रतिज्ञ एव तथा अक्ष्यपिरजः कणकाद्यनयना- यनो प्रमार्ज्ज येन्नापि च गात्रं मुनिरसौ कंडूयते काष्ठादिनागात्रस्य कंडूत्यपनोदं न विधत्त इति।

भगवान अशन और पान की (आहार योग्य) मात्रा—मर्यादा के ज्ञाता थे और रसमय भोजन (ग्रहण करने का) का विचार भी नहीं करते थे। (आँखों में रज पड़ जाने पर भी) आंख का प्रमार्जन नहीं करते थे। गात्रा—शरीर में खुजलाहट होने पर भी भगवान खुजलाते नहीं थे।

(ख) अदु वायसा दिगिंच्छत्ता, जे अण्णे रसेसिणो सत्ता ।
घासेसणाए चिट्ठंति, सययं णिवइए य पेहाए ॥१०॥
अदु माहणं व समणं वा, गामपिंडोलगं य अइहिं वा ।
सोवागं मुसियारं वा कुक्कुरं विविहं ठियं पुरओ ॥११॥
वितिच्छेयं वज्जंतो, तेसिमप्पत्तियं परिहरंतो ।
मंदं परक्कमे भगवं, अहिंसमाणो घासमेसित्था ॥१२॥

—आया० श्रु १। अ ९। उ ४

भूख से व्याकुल कौए तथा पानी पीने की इच्छा वाले जो अन्य प्राणी सदा दाना पानी के लिए जमीन पर बैठे हुए होते थे उन्हें देख कर और ब्राह्मण, श्रमण, भिखारी बाहर से आया हुआ अतिथि चाण्डाल बिल्ली और कुत्ते आदि विविध प्रकार के प्राणियों को सामने स्थित देख कर उनकी वृत्तिच्छेद को वर्जते हुए अर्थात् उनको किसी प्रकार की अन्तराय न करते हुए तथा मन में किसी भी प्रकार की अप्रीति न लाते हुए भगवान धीरे-धीरे वहाँ से निकल जाते थे और कुन्थु आदि किसी भी प्राणी की हिंसा न करते हुए भगवान आहार पानी की गवेषणा करते थे।

(ग) अहाकडं न से सेवे, सव्वसोकम्मुणा य अद्क्खू ।
जं किंचिपावगं भगवं, तं अकुव्वंवियडं भुंजित्था

—आया० श्रु १। अ ९। उ १। गा १८। पृ० ७४

टीका—आहाकडं इत्यादि यथा येन प्रकारेण पृष्ट.वा अपृष्ट.वा वाकृतं यथा कृतमाधाकर्म्मादि नासौ सेवते किमितियतः सर्वैः प्रकारैस्तदा सेवनेन कर्म्मणामष्ट प्रकारेण बंधमद्राक्षीत् दृष्टवानन्यदप्येवं जातीयकं न सेवत इति दर्शयति। यत्किञ्चित्-पापकं पापोपादानकारणं तद्भगवानकुर्वन्विकटं प्रासुकमभुक्त उपभुक्तवान्।

मूल—सब प्रकार से सर्वथा कर्म के (कारणों तथा बधनों को) भगवान ने देखा-जाना। (अतः) भगवान ने आधाकर्मी आहार (तथा तत् प्रकार के अन्य आहार) का सेवन नहीं किया। जो कुछ भी पाप बंधन के कारण कार्य थे उनको भगवान ने नहीं किया। विकट अर्थात् प्रासुक आहार का भोजन करते थे।

आधा कर्मी आहार के सेवन को अष्ट प्रकार के कर्मों के बंधन का कारण जानकर भगवान ने आधाकर्मी आहार तथा तद् जातीय अन्य आहार का भोग—सेवन नहीं किया। तथा प्रासुक आहार का सेवन किया। जो कुछ भी कार्य पाप का उपादान कारण था उसको भगवान ने नहीं किया।

(घ) णो सेवती य परवत्थं, पर-पाए वि से ण भुंजित्था ।
परिवज्जियाण ओमाणं, गच्छति संखडिं असरणयाए ॥

—आया० श्रु १ । अ ९ । उ २ । गा १९ । पृ० ७४

टीका—किञ्च णासेव इत्यादिः ना सेवतेव नोपभुंक्ते च परवस्त्रं प्रधानं वस्त्रं परस्य वा वस्त्रं परवस्त्रं ना सेवते, तथा परपात्रेऽप्यसोनो भुंक्ते तथा परि-त्यज्यापमानमवगणय्य गच्छत्यसावाहाराय संखंडयन्ते प्राणिनोऽस्यामिति संख-डिस्तमाहार पाकस्थानभूता मशरणाय शरणमनालंबमानो दीनमनस्का कल्प इति कृत्वा परीषह विजयार्थं गच्छतीति ।

भगवान दूसरों के वस्त्रों का भी सेवन नहीं करते थे। दूसरों के पात्रों मे भोजन नहीं करते थे। भोजन गृह मे भिक्षा के लिए जाने पर अदीन होकर जाते थे तथा वहाँ पर अपमानित होने पर भी मन मे किसी प्रकार का विचार नहीं लाते थे।

(घ) अहिजावइतवां जोवितं अद्धाणं वा, अप्पाणं वा जावइतवान्, भावलूहे अरागत्तं, दव्वरुक्खं ओदणं विरहितं, मंथुइतिमंथुसत्तुया णग्गोहमंथुमादीवा-भुंज्जितएहिं तएहिं कुम्मासा कुम्मासाएव, सव्वत्थरुक्खसद्दो अणुयत्तति । × × × । एतेहिं ओदणमंथुकुम्मासेहिं, अट्ठमासेत्ति उडुबद्धिते अट्ठमासे वासासु णवरि आदिल्लेसुतिसु । × × ×

—आया० चू० पृ० ३२२

एक बार भगवान ने रुक्ष भोजन का प्रयोग किया। इस प्रयोग में वे सिर्फ तीन वस्तुएं लाते थे—कोद्रू का ओदन, बोरका चूर्ण और और कुल्माष। यह प्रयोग आठ मासतक किया।

(च) अवि सूइयं वा सुक्कं वा, सीयपिंडं पुराणकुम्मासं ।
अदु वुक्कसं वा, लद्धे पिंडे अलद्धए दविए ॥

—आया० श्रु १ । अ ९ । उ ४ । गा १३

भींजा हुआ अथवा सूखा हुआ, ठण्डा आहार अथवा बहुत दिन का उड़द का आहार पुराने धान का आहार अथवा जौ आदि नीरस धान्य के बने हुए आहार के मिलने पर अथवा न मिलने पर भगवन शान्त रहते थे।

(छ) गामं पविसे णगरं वा, घासमेसे कडं परट्ठाए ।
सुविसुद्धमेसिया भगवं, आययजोगयाए सेवित्था ॥

—आया० श्रु १ । अ ९ । उ ४ । गा ९

भगवान ग्राम अथवा नगर मे प्रवेश करके दूसरों के लिए किए गये आहार की गवेषणा करते थे और सुविशुद्ध अर्थात् उद्गम, उत्पादना और एषणा के दोषों से रहित आहार की गवेषणा करके मन, वचन, काया के योगों को स्थिरता पूर्वक उस आहार का सेवन करते थे।

(ज) अदु जावइत्थं लूहेणं, ओयण-मंथु-कुम्मासेणं।
एयाणि तिण्णि पडिसेवे, अट्ठ मासे य जावए भगवं॥
—आया० श्रु १। अ ९। उ ४। गा ४ उत्तरार्ध। ५ पूर्वार्ध। पृ० ७७

टीका—अथानन्तर्ये धर्म्माधारं देहं यापयति स्म रूक्षेग स्नेहरहितेन केन ओदनमंथुकल्माषेग ओदनश्च कोद्रवोदनादि मंथुबदरचुर्णादिकं कुलमाषाश्च माष विशेषा एवोत्तरापथे धान्यविशेषभूताः पर्युषितमाषा वासिद्धमाषा वा ओदनमंथु-कुल्माषमिति समाहारद्वन्द्वः तेनात्मानं यापयतीतिसंबंध इत्यतदेवकालावधि विशेषणतो दर्शयितुमाह।

एताणि तिण्णि इत्यादि एतान्योदनादी न्यनन्तरोक्तानि प्रतिसेवते तानि च समाहार द्वंद्वेन तिरोहितावयवसमुदाय प्रधानेननिर्देशा कस्यचिन्मंदेबुद्धेः स्यादा-रेकायथा त्रीण्यपि समुदितानि प्रतिसेवत इत्यतस्तद् व्युदासाय त्रीणित्यनया संख्ययानिर्देश इति त्रीणी समस्तानि व्यस्तानि वा यथा लाभं प्रतिसेवित इति कियंत कालमिति दर्शयत्यष्टौ मासानृतुबद्ध संज्ञकानात्मानमयापयद्वर्त्तितवान् भगवानिति।

भगवान महावीर रूक्ष भात, मन्थु यानी बोरका आटा-बोरकूट और कुल्माष आदि के आहार से शरीर का निर्वाह करते थे। भगवान चतुर्मास के अतिरिक्त आठ महिनों में शरीर निर्वाहार्थ प्राय रूक्ष, भात, बोरकूट तथा उड़द आदि नीरस आहार करते थे।

(झ) गामं पविसे णयरंवा, घासमेसे कडं परट्ठाए।
सुविसुद्धमेसिया भगवं, आयत-जोगयाए सेवित्था॥
अदुवायसा दिगिच्छत्ता, जे अण्णे रसेसिणो सत्ता।
घासेसणाए चिट्ठंति, सययं णिवतिते य पेहाए।
अदु माहणं व समणं वा, गामपिंडोलगं च अतिहिं वा।
सोवागं मूसियारं वा, कुक्कुरं वाविविहं ठियं पुरतो॥
वित्तिच्छेदं वज्जंतो, तेसप्पत्तियं परिहरंतो।
मंदं परक्कमे भगवं, अहिंसमाणो घासमेसित्था॥
—आया० श्रु १। अ ९। उ ४। गा ९ से १२। पृ० ७८

टीका—किञ्च गामं इत्यादि गामं नगरं वा प्रविश्य भगवान् मासमन्वे-षयेत्परार्थां यत् कृतमित्युद्गमदोषरहित तथा सुविशुद्धमुत्पादनादोषरहिततथै-षणादोष परिहारेणैषित्वान्वेष्य भगवानायतः संयतो योगी मनोवाक्कायल-

क्षणं आयतश्चासौ योगश्चायत योगो ज्ञानचतुष्टयेन सम्यग् योगप्रणिधानमाय-तयोगस्य भाव आयत योगतातया सम्यगाहारं शुद्धं ग्रासैषणादोषपरिहारेण सेवितवानिति।

किञ्च अदुवा इत्यादि अथ भिक्षां पर्यटतो भगवतः पथिवायसाः काकादि-गिंछत्ति बुभुक्षातया आर्त्ता येचान्येरसैषिणः पानार्थिनः कपोत पारापतादयः सत्त्वातथा ग्रासस्यैषणार्थं मन्वेषणार्थञ्च येतिष्टन्तितान् सततमनवरतं निपतितान् भूमौ प्रेक्ष्य दृष्टातेषां वृत्तिर्व्यच्छेदं वर्ज्जयन् मंदमाहारार्थी पराक्रमते।

किञ्च अदु माहणं इत्यादि अथ ब्राह्मणंलाभार्थमुपस्थितं दृष्ट्वा तथा श्रमण शाक्या जीवकपरिव्राट-तापसनिर्ग्रंथानामन्यतम ग्राम पिंडोलक इति भिक्षयोदरभणार्थं ग्राममासृतस्तुंदरि मृजोद्गमकइति तथा तिथि वा आगन्तुकं तथा श्वपाकं चाण्डालं मार्ज्जारं वा कुक्कुरं वापि श्वान विविधं स्थितं पुरतोग्रतः समुपलभ्य।

तेषां वृत्तिच्छेदं वर्ज्जयन्मनसोदुःप्रणिधानञ्चवर्जयन्मदमनास्तेषां त्रासमकुर्वन् भगवान् पराक्रमते तथा परांश्च कुंथुकादीन् जंतून् अहिंसन् ग्रासमन्वेषितवानिति।

भगवान ग्राम अथवा नगर में प्रवेश करके दूसरों के लिए किये गये आहार की गवेषणा करते थे और सुविशुद्ध अर्थात् उद्‌गम, उत्पादना और एषणा के दोषों से रहित आहार की गवेषणा करके मन, वचन, काय के योगों की स्थिरता पूर्वक उस आहार का सेवन करते थे।

भूख से व्याकुल कौए तथा पानी पीने की इच्छा वाले जो अन्य प्राणी सदा दाना-पानी के लिए जमीन पर बैठे हुए होते थे। उन्हें देखकर और ब्राह्मण, श्रमण, भिखारी बाहर से आया हुआ अतिथि चाण्डाल, बिल्ली और कुत्ते आदि विविध प्रकार के प्राणियों के सामने स्थित देखकर उनकी वृत्तिच्छेद को वर्जते हुए अर्थात् उनको किसी प्रकार की अतराय न करते हुए भगवान महावीर धीरे-धीरे वहाँ से निकल जाते थे और कुन्थु आदि किसी भी प्रकार की हिंसा न करते हुए भगवान आहार की गवेषणा करते थे।

भिक्षा लेने के लिए जाते हुए भगवान को रास्ते में भूख से व्याकुल जो कौए आदि प्राणी दाना पानी के लिए जमीन पर बैठे हुए दिखाई देते थे तथा ब्राह्मण, श्रमण, भिखारी, अतिथि, चाण्डाल, बिल्ली और कुत्ते आदि प्राणी कुछ मिलने की आशा से खड़े दिखाई होते थे। उनको किसी भी प्रकार की बाधा एव अतराय पहुँचाये बिना भगवाम वहाँ से धीरे-धीरे चले जाते थे और उन प्राणियों पर अपने मन मे अप्रीति भी न लाते थे। कुन्थु आदि प्राणियों पर अपने मन में अप्रीति भी न लाते थे। कुन्थु आदि प्राणियों की हिंसा न करते हुए भगवान भिक्षाटन करते थे।

(ञ) अवि सूइयं व सुक्कं वा, सीयपिंडं पुराणकुम्मासं ।
अदु बक्कसं पुलागं वा, लद्धे पिंडे अलद्धए दविए ॥

—आया० श्रु १ । अ ९ । उ ४ । गा १३ । पृ० ७८

टीका—किंच अविसूइयं इत्यादि सुइयन्ति दध्यादिना भक्तमार्द्री कृतमपि तथा भूतं शुष्कं वावल्लकंनकादि शीतपिंडं वा पर्युषितभक्तं तथा पुराणं कुलमाषं वा बहुदिवससिद्धस्थित कुल्माषत्रक्कसति चिरंतन धान्योदनं यदि वा पुरातन सत् कुपिंडं बहुदिवससंभूत गोरसगोधूम मंडकं चेति तथा पुलाक जत्र निष्पादितं रेवंभूतं पिंडमवाप्य रागद्वेषविरहाद् द्रविको भगवांस्तथान्यस्मिन्नपि पिंडेलब्धे अलब्धे वा द्रविकएव भगवानिति तथाहिलब्धे पर्याप्ते शोभनेवानोत्कर्षयाति नाप्यलब्धे अपर्याप्ते अशोभने वात्मानमाहारं दातारंवानजुगुप्सति ।

भींजा हुआ अथवा सुखा हुआ ठण्डा आहार अथवा बहुत दिन का उड़द का आहार, पुराने धान का आहार अथवा जौ आदि नीरस धान्य के बने हुए आहार के मिलने पर भगवान शांत रहते थे ।

रूखा, सूखा ठण्डा उड़दों का अथवा पुराने तथा नीरस धान्य को बना हुआ, जैसा भी आहार भगवान को मिल जाता, वे उसी मे सतोष करते थे । आहार के मिलने पर या न मिलने पर भगवान सदा शांत रहते थे ।

(ट) एलिक्खए जणा भुज्जो, बहवे वज्जभूमि फरुसासी ।
लट्ठिं गहाय णालीयं समणा तत्थ एव विहरिंसु ॥
एवं पि तत्थ विहरंता, पुट्ठपुव्वा अहेसि सुणएहिं ।
संलुंचमाणा सुणएहिं, दुच्चरगाणि तत्थ लाढेहिं ॥
निधाय दंडं पाणेहिं, तं कायं वोसज्जमणगारे ।
अह गामकंटए भगवं, ते अहियासए अभिसमेच्चा ।
णाओ संगामसीसे वा, पारए तत्थ से महावीरे ।
एवं पि तत्थ लाढेहिं अलद्धपुव्वो विएगया गामो ॥

—आया० श्रु १ । अ ९ । उ ३ । गा ५ से ८ । पृ० ७६

टीका—किञ्च एलिक्ख इत्यादि ईदृक्षः पूर्वोक्तः स्वभावो यत्र जनस्तं तथाभूतं जनपदं भगवान् भूयः पौनःपुन्येन विहृत वांस्तस्याञ्च वज्रभूमौ बहवो जनाः परुषाशिनो रूक्षाशितया च प्रकृति क्रोधनस्ततो यतिरूपमुपलभ्य कदर्थयंति ततस्तत्रान्ये श्रमणाः शाक्यादयो यष्टिदेहप्रमाणां चतुरंगुलाधिकप्रमाण वा नालिकां गृहीत्वा श्वादिनिषेधनाय विजहुरिति ।

किञ्च पुर्वमि इत्यादि एवमपि यष्ट्यादिकया सामग्र्या श्रमणा विहरंतः स्पृष्ट पूर्वा आरब्धपूर्वाः श्वभिरासंलुच्यमाना इतश्चेतश्च भक्ष्यमाणाः श्वभिरासन् दुर्न्निवारत्वा त्तेषां तत्र तेषु लाढेष्वार्यलोकानां दुःखेन चर्यन्त इति दुश्चराणि ग्रामादीनीति तदेवंभूतेष्वपि लाढेषु कथं भगवान् विहृतवानिति दर्शयितुमाह।

णिधाय इत्यादिः प्राणिषु यो दंडनादंडो मनोवाक्कायादिस्तं भगवान्निधाय त्यक्त्वा तथा तच्छरीरमप्यनगारो व्युत्सृज्याथ ग्रामकंटकान्नीचजनरूक्षालापानपि भगवांस्तान् सम्यक् करणतया निज्जरामभिसमेत्य ज्ञात्वाधिसयत्यधिसहते कथमधिसहत इतिदृष्टोतद्वारेण दर्शयितुमाह।

णाउ इत्यादिः नागोहस्ती यथासौ संग्राममूर्द्धनि परानीकं जित्वा तत्पारगो भवत्येवं भगवानपि महावीरस्तत्रलाढेषु परीषहानीकं विजित्य पारगो अभूत् किञ्च यत्र लाढेषु विरलत्वात् ग्रामाणां क्वचिदेकदा वासायालब्धपूर्वो ग्रामोपि भगवता।

उस लाढ देश की वज्रभूमि के निवासियों का रूक्षाहार होता था अतः वे स्वभाव से ही बडे क्रोधी होते थे। वहाँ रहने वाले अन्यतीर्थिक भिक्षु हाथ मे लाठी या नालिका अर्थात् अपने शरीर से चार अगुल अधिक बड़ी लकड़ी लेकर विचरते थे। ऐसे विकट देश में भगवान ने बार-बार विहार किया था। उस लाढ देश में इस प्रकार हाथ में लाठी या नालिका लेकर विचरते हुए भी अन्यतीर्थिक भिक्षु कुत्तों द्वारा काटे गये थे और कुत्तों द्वारा नोचे गये थे। इसलिए उस लाढ देश में विचरण करना बड़ा ही कठिन था।

भगवान ने मन, वचन, काय से प्राणियों को दड देने का त्याग किया था तथा उन्होंने अपने शरीर की ममता भी त्याग दी थी अत. निर्जरा के लिए नीच जनो के कठोर वचनों को और अन्य परीषहों को समभावपूर्वक सहन करते थे।

जैसे हाथी सग्राम के अग्रभाग में जाकर शत्रु के प्रहार की परवाह न करता हुआ शत्रु सेना को जीत कर उसको पार कर जाता है। इसी तरह भगवान महावीर ने भी लाढदेश मे परीषहों को जीतकर के उस देशको पार किया था। कभी-कभी ठहरने के लिए उन्हें ग्राम भी नहीं मिलता था। तब वे जगल मे वृक्षादि के नीचे ठहर जाते थे।

(ठ) उवसंकमंतमपडिण्णं, गामंतियं पि अप्पत्तं।
पडिणिक्खमित्तु लूसिसु, एत्तो परं पलेहित्ति॥
हयपुव्वो तत्थ दंडेण, अदुवा मुट्ठिणा अदु 'कुंताइ फलेणं'।
अदु लेलुणा कवालेणं, हंता हंता बहवे कंदिंसु॥

मंसाणि छिन्नपुव्वाइं, अट्ठुभेंति एगयाकायं ।
परीसहाइं लुंचिसु, अहवा पंसुणा अवकिरिंसु ॥
उच्चालइय णिहणिंसु, अदुवा आसणाओ खलइंसु ।
वोसट्ठकाए पणयासी, दुक्खसहे भगवं अपडिण्णे
सूरो संगामसीसेवा, संवुडे तत्थ से महावीरे ।
पडिसेवमाणे फरुसाइं, अचले भगवं रीइत्था ॥

—आया० श्रु १ । अ ६ । उ ३ । गा ६ से ११ । पृ० ७६-७७

टीका—किञ्च उवसंकमंत इत्यादि उवसंक्रामंतं भिक्षार्थं वासायवा गच्छन्तं किंभूतमप्रतिज्ञं नियतनिवासादि प्रतिज्ञारहितं ग्रामान्तिकं प्राप्तमप्राप्तमपि तस्मात् ग्रामात्प्रतिनिर्गत्य ते जना भगवंतमलूषिषुरेतच्चोचरितोपि स्थानात् परं दूरतरं स्थान पर्येहि गच्छेति ।

किञ्च हयपुव्वो इत्यादि तत्र ग्रामादेर्बहिर्व्यस्थितः पूर्वं हतो हतपूर्वः केन दंडेनाथवा मुष्टिनाथवा कुन्तादिफलेनाथवा लेष्टुनाकपालेन घटखर्प्परादिना हत्वा हत्वा बहवोऽनायश्चिक्रं दुःपश्यत यूयं किंभूतोऽयमित्येवं कलकलञ्चक्रुः ।

किञ्च मंसूणि इत्यादि मांसानि च तत्र भगवत श्छिन्नपर्वाणि एकदा काय-मवष्टभ्याक्रम्य नानाप्रकाराः प्रतिकूलपरीषहाश्च भगवंतमलुंचिषुरथवा पांशुना अवकीर्णवंत इति ।

किञ्च उच्चालइय इत्यादि भगवंतमूर्द्धमुत्क्षिप्यभूमौ निहतवंतः क्षिप्तवंतो अथवाऽसनात् गोदोहिकोत्कुटुकासनवीरासनादिकात् स्खलितवतो निपातितवंतो भगवांस्तु पुनर्व्युत् सृष्टकायः परीषहोपसर्गकृतं दुःखंसहत इति दुःखसहः भगवान् नास्य दुःखविचिकित्सा प्रतिज्ञा विद्यत इति अप्रतिज्ञः कथंदुःखसहो भगवान् इत्येतत् दृष्टांतद्वारेण दर्शयितुमाह ।

सूरो इत्यादि यथा हि संग्रामशिरसि शूरोऽक्षोभ्यः परैः कुन्तादिभिर्भिद्य-मानोऽपि वर्म्मणा संवृतांगो न भंगमुपयातीत्येवं स भगवान्महावीरस्तत्र लाढादि-जनपदे परीषहानीक नुद्यमानोपि प्रति सेवमानश्च परुषान् दुःखविशेषान् मेरुरिवा-चलो निःप्रकंपो धृत्या संवृतांगो भगवान रीयते स्म ज्ञानदर्शनचारित्रात्मऽको मोक्षाध्वनिपराक्रमते स्मेति ।

लाढ देश में विचरते हुए भगवान जब कभी भिक्षार्थ या निवासार्थ ग्राम के पास जाते थे तो ग्राम के पास पहुँचने के पहले ही वहाँ के अनार्य लोग ग्राम से निकल कर भगवान को

अनेक प्रकार से कष्ट देते थे और कहते थे कि यहाँ से दूर चला जा। लाढ देश में अनार्य लोग भगवान को लाठी, मुट्ठी, भाला, पत्थर और घड़े के टुकड़ों आदि से मारते थे और मारकर हल्ला मचाते थे।

कभी-कभी वे अनार्य लोग भगवान का मांस काट लेते थे, उन्हें धक्का देते थे, मारते थे और उनके ऊपर धूलि झोंकते थे किन्तु भगवान इन सब परीषहों को समभाव पूर्वक सहन करते थे।

अनार्य लोग भगवान को जमीन से उठाकर पटक देते थे। जब भगवान गोदोहिका तथा उत्कुटुक आसन से बैठे हुए होते तब वे उनको ढकेल देते थे परन्तु भगवान ने शरीर का ममत्व त्याग दिया था। इसलिए उन सब कष्टों को समभाव सहन करते थे किन्तु उनकी निवृत्ति के लिए विचार तक नहीं करते थे।

जैसे संग्राम के अग्रभाग में युद्ध करता हुआ वीरपुरुष शत्रुओं द्वारा क्षुब्ध नहीं होता है उसी प्रकार भगवान महावीर स्वामी उन परीषह-उपसर्गों से किंचित् मात्र भी क्षुब्ध नहीं हुए। उन सब को समभावपूर्वक सहन करते हुए अपने व्रतों में निश्चल होकर विचरे थे।

'१४ भगवान् के विहार

सेणं भगवं वासावासवज्जं अट्ठगिम्हेमंतिए मासे गामे एगराईए नगरे पंचराईए वासीचंदणसमाणकप्पे समतिणमणिलेट्ठुकंचणे समदुक्खसुहे इहलोग-परलोगअपडिबद्धे जीवियमरणे निरवकंखे संसारपारगामी कम्मसंगनिग्घाय-णट्ठाए अब्भुट्ठिए एवं च णं विहरइ ॥

—कप्प० सू० ११९ । पृ० ४०

भगवान महावीर—चतुर्मास के समय को बाद देकर शेष के ग्रीष्म और शीत काल के आठ मास तक-ग्राम में एक रात्रि तथा नगर में पाँच रात्रि से अधिक नहीं रुकते थे। वसूला और चन्दन के स्पर्श के समान संकल्प वाले भगवान तृण अथवा मणि तथा ढेला अथवा सोना-इन सबमें समान वृत्ति वाले थे तथा दुःख और सुख को एक भाव से सहन करने वाले थे। इस लोक में अथवा परलोक में प्रतिबन्ध बिना के जीवन अथवा मरण की आकांक्षा बिना के संसार से पार पाने वाले थे और कर्म के संगका नाश करने में उद्यमवंत बने हुए—इस प्रकार विहार करते थे।

·५०/६६ तीर्थंकरकाल—केवलीकाल

·५१ केवलज्ञान की उत्पत्ति का स्थान

(क) वीरोसह नेमीणं, जंभियबहिपुरिमताल उज्जिते।
केवलणाणुप्पत्ती, सेसाणं जम्मट्ठाणेतु।

—सप्ततिशत० ६० द्वार

वीर भगवान को जम्भिक ग्राम के बाहर, (ऋजुबालिका नदी के किनारे) केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। यह क्षेत्र शामक नामक गृहस्थ का था। वहाँ गुप्त-अस्पृष्ट चैत्य के नजदीक शालतरु के नीचे था।

(ख) वइसाहसुद्धदसमीमाघारिक्खम्मि वीरणाहस्स।
रिजुकूलणदीतीरे अवरण्हेकेवलंणाणं

—तिलोप० अधि ४। गा ७०१। भाग १

वीरनाथ भगवान को वैशाख शुक्ला दशमी के अपराह्न काल में मघा नक्षत्र के रहते हुए ऋजुकूला नदी के किनारे पर केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ।

(ग) तओणं समणस्स भगवओ महावीरस्स × × × जंभिय गामस्स णगरस्स बहिया णईए उजुवालियाए उत्तरे कूले, सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणंसि' वेयावत्तस्सचेइयस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, सालरुक्खस्स अदूरसामंते ×× × केवलवर-णाणदंसणे समुप्पण्णे।

—आया० श्रु २। सू० १४

(घ) जगन्नाथोऽथ तत्रर्जुपालिकोत्तररोधसि।
श्यामाकनाम्नो गृहिणः क्षेत्रे शालतरोस्तले ॥१॥
अव्यक्तचैत्यस्यासन्ने षष्ठेनोत्कटिकासनी ॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ५

(च) समणे भगवं महावीरे × × × जंभियगामस्स नगरस्स बहिया उजुवालियाए नईए तीरे वियावत्तस्सचेईयस्स अदूरसामंते सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणंसिसालपायवस्स × × × अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवलवरणाणदंसणे समुप्पन्ने।

—कप्प० सू १२०

जृंभिक गाँव नामक नगर के बाहर, ऋजुबालिका नदी के उत्तर किनारे, श्यामाक गाथापति के खेत में, व्यावृत नामक चैत्य के ईशान कोणमें शाल वृक्षके समीप भगवान महावीर को केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

(छ) उसभस्स पुरिमताले वीरस्सुज्जुयालिया नदीतीरे ॥
सेसाण केवलाइं जे सुज्जाणेसु पव्वइया ।

—आव० नि गा २७१

मलयटीका—ऋषभस्य—भगवतः आदितीर्थकरस्य विनीतायाः प्रत्यासन्नं यत्पुरिमतालं नगरं तत्र ज्ञानमुत्पन्नं, तत्रापि शकटमुखे उद्याने न्यग्रोधपादपस्याधो निविष्टस्य सूर्योद्गमनवेलायां, वीरस्य भगवत ऋजुवालिकानदीतीरे, तत्र गृहपति-श्यामाकखले शालतरोरधःस्थितस्य शेषाणा तु तीर्थकृतां केवलज्ञानानि येषूद्यानेषु प्रव्रजितास्त्रोत्पन्नानि ।

(ज) मलयटीका—भगवान् चंपायांवर्षावासं कृतवान् × × × । ततो भयवं चंपातो निग्गतो जंभियगामं गतो, तत्थसक्को आगतो वंदित्ता पूइत्ता नट्टविहिं उवदंसित्ता वागरेइ—जहाएत्तिएहिं दिवसेहिं केवलनाणमुप्पज्जिहिइ । × × ×

जंभियगामे नाणस्स उप्पया वागरेइदेविंदो ।

—आव० नि गा ५२३ पूर्वार्द्ध

(झ) मलयटीका—ततो सामी जंभियगामं, गतो, तस्स बहिया वेयावत्तस्स चेइयस्स अदूरसामंते. उज्जुयालियाए नदीए तीरे उत्तरिल्ले कूले सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणे, कट्ठकरणं नाम छेत्तं, सालपायवस्स अहे उक्कुडुयनिसज्जाए गोदोहियाए आयावणाए आयाबेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं बारसहिं संवच्छरेहिं विइक्कंतेहिं तेरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स वइसाहसुद्धदसमीए पाईणगामिणीए छायाए पमाणपत्ताए पोरिसीए सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं हत्थुत्तरानक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स एगंतवियक्कं वोलीणस्स सुहुमकिरियं झाणमप्पत्तस्स अणुत्तरकेवलनाणदंसण च समुप्पन्नं । एतदेवसंक्षेपत आह—

जंभिय बहि उज्जुवालिय तीरवियावत्त सामसाल अहे ।
छट्ठेणुक्कुडुयस्स उप्पन्नं केवलं नाण ।

—आव नि गा ५२५

मलयटीका —जम्भकग्रामस्य बहिः 'वियावत्त' त्ति वियावृत्तं नाम अव्यक्तं, पतितशटितमप्रकटमिति भावः, तस्य चैत्यस्यादूरे ऋजुवालिकानदीतीरे श्यामाकस्य गृहपतेः क्षेत्रे शालवृक्षस्याध उत्कुटुकस्य भगवतः षष्ठेन केवलज्ञानमुत्पन्नं ॥ तत्रतपसा केवलज्ञानं समुत्पन्नमिति ।

(ञ) बारह - संवच्छर - तव - चरणु ।
किउ सम्मइणा दुक्खकय - हरणु ॥

पोसंतु अहिंस खंति ससहि।
भयवंतु संतु विहरंतु महि ॥
गउ जिम्हि य - गामहु - अइ - णियडि।
सुविउलि रिजुकूला - णइहि तडि ॥
घत्ता—मोर - कीर - सारस - सरि उज्जाणम्मि मणोहरि।
साल - मूलि - रिसि - राणउ-रयण - सिलहि आसीणउ।

—वीरजि० संधि २ । कड ५ । पृ० १०,३२

वइसाह-मासि सिय-दसमि दिणि
× × ×
हत्थुत्तर - मज्झ समासियइ
पहुबडिवण्णउ केवल - सियइ।

– वीरजि० संधि २ । कड ६

सन्मति भगवान ने दुष्कर्मों का हनन करते हुए बारह वर्ष तक तपश्चरण किया। अपनी दस चन्दना नामक बहन के अहिंसा और क्षमा-भावों का पोषण करते हुए तथा पृथ्वी पर विहार करते हुए वे भगवान ऋषिराज जृम्भिका नामक ग्राम के अति विस्तृत ऋजुकूला नदी के विशाल तटवर्ती मनोहर उद्यान म जहाँ मयूर, शुक और सारस क्रीड़ा कर रहे थे वहाँ शालवृक्ष के मूल में रखी हुई रत्नशिला पर विराजमान हुए। वैसाख मास के शुक्ल पक्ष की उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र मे भगवान को केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी की प्राप्ति हुई।

५२ केवलज्ञानोत्पत्ति के समय तप

(क) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं अणंते अणुत्तरेणिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे।

—ठाण स्था ९ । सू० १०५ । पृ० ७२९

—कप्प० सू० १२०

(ख) तओणं समणस्स भगवओ महावीरस्स × × × छट्ठेणं भत्तेणं।
अपाणएणं × × × अणंते अणुत्तरे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे।

—आया० श्रु २ । अ १५ । सु १८

(घ) अव्यक्तचैतस्यासन्ने षष्ठेनोत्कटिकासनी।
मुहुर्त्तं विजये स्वामी तस्थावातापनापरः ॥ २ ॥

यामे चतुर्थेऽह्नो भर्तु रुदपद्यत केवलम् ॥४॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ५

(क) अट्ठमभत्त तंमी पासोसहमल्लिरिट्ठनेमीणं ।
वसुपुज्जस्स चउत्थेण छट्ठभत्तेण सेसाणं ॥

—आव० नि गा २७७

मलयटीका—पार्श्वनाथऋषभस्वामिमल्लिनाथारिष्ठनेमीनामष्टमभक्तान्ते—उपवासत्रयपर्यन्ते केवलज्ञानमुदपादि, वासुपुज्यस्य पुनर्भगवतश्चतुर्थेन, शेषाणां षष्ठभक्तेन ।

(ख) स्थित्वा षष्ठोपवासेन सोधस्थात्सलभूरुहः ॥

× × ×

धातिकर्माणि निर्मूल्यं प्राप्यानंत चतुष्टयं ॥

— उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो ३५० पूर्वार्ध, ३५२ पूर्वार्ध

(ग) छट्ठेणुववासें इयदुरिए ।

× × ×

पहु वडि वण्णउ केवल - सियइ ।

—वीरजि० संधि २ । कड ६ । पृ० १२

पार्श्वनाथ, ऋषभदेव, मल्लिनाथ, और अरिष्ट नेमिनाथ को अष्टमभक्त—तीन दिन के उपवास के अन्त मे तथा वासुपुज्य स्वामी को उपवास तप मे, शेष तीर्थंकरो ने बेले के तप मे केवलज्ञान प्राप्त हुआ। अतः वर्धमान को बेले के तप मे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

(घ) तेवीसाए नाणं उप्पन्नं जिणवराण पुव्वण्हे ।
वीरस्स पच्छिमण्हे पमाणपत्ताए चरमाए ॥

—आव० नि गा २७५

मलयटीका—त्रयोविंशति (तेः) जिनवराणां तीर्थकृतां ज्ञानमुत्पन्नं पूर्वाह्णे सूरोद्गमनमुहूर्त्ते इत्यर्थः, तथा चोक्त चूर्णौ –

"तेवीसाए तित्थगराणं सूरुग्गमणहुत्ते एगराइयाएपडिमाए नाणमुप्पन्न" मिति, वीरस्स भगवतः—अपश्चिमतीर्थकृतः पश्चिमाह्णे तत्रापि प्रमाण-प्राप्तायां चरमायां पौरुष्यामिति, अन्ये त्वमिदधति—द्वाविंशतेः पूर्वाह्णे ज्ञानमुत्पन्नं मल्लिस्वामिमहावीरयोः पुनरपराह्णे इति ।

(ख) जंबुद्दीवेणं दीवे भारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए तेवीसाए जिणाणं सूरुग्गमणमुहुत्तंसि केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे।

—सम० सम २३

(च) णाणं उसहाईणं पुव्वण्हे पच्छिमण्हि वीरस्स

—सत्तरिसत ६५ द्वार

(छ) तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स × × ×
पाइणगामिणीए छायाए वियत्ताए पोरिसीए × × ×

—आया० श्रु २। अ १५

—कप्प० सू० १२०

ऋषभदेव आदि तेईस तीर्थङ्करों को प्रथम प्रहर में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और चौबीसवें तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान को अन्तिम प्रहर में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

·४४ केवलज्ञानोत्पत्ति के समय—नक्षत्र तिथि आदि

(क) यामे चतुर्थेऽह्नो भर्तुरुदपद्यतकेवलम् ॥४॥

—त्रिशलाका० पर्व १०। सर्ग ५

(ख) तओणं समणस्स भगवओ महावीरस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स बारसवासा विइक्कंता, तेरसमस्स य वासस्स परियाए वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे—वइसाहसुद्धे, तस्सणं वइसाहसुद्धस्स दसमीपक्खेणं सुव्वएणं दिवसेणं मुहुत्तेण, हत्थुत्तराहिं णक्खत्तेणं जोगोवगतेणं, पाईणगामिणीए छायाए, वियत्ताए पोरिसीए, जंभियगामस्स णगरस्स बहिया णईए उजुवालियाए उत्तरे कूले, सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणंसि, वेयावत्तस्स चेइयस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, सालरुक्खस्स अदूरसामंते, उक्कुडुयस्स, गोदोहियाए आयावणाए आयावेमाणस्स, छट्ठेणं भत्तेण अपाणएणं, उड्ढंजाणुअहोसिरस्स, धम्मज्झाणोव गयस्स, झाणकोट्ठोवगयस्स, सुक्कज्झाणंतरियाए वट्टमाणस्स, निव्वाणे, कसिणे, पडिपुण्णे, अव्वाहए, णिरावरणे अणंते, अणुत्तरे, केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे।

—आया० श्रु २। अ १५। सू १८। पृ० २४०-२४१

(ख) (तए णं समणे भगवं महावीरे) × × ×। अप्पाणं भावेमाणस्स दुवालस संवच्छराइं विइक्कंताइं। तेरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वइसाहसुद्धे तस्स णं वइसाहसुद्धस्स दसमीए पक्खेणं पाईणगामिणीए छायाए पोरिसीए अभिनिविट्टाए पमाणपत्ताए

सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं जंभियगामस्स नगरस्स बहिया उज्जुवालियाए नईए तीरेवियावत्तस्स चेईयस्स अदूरसामंते सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणंसि सालपायवस्स अहेगोदोहियाए उक्कुडुयनिसिज्जाए आयावणाए आयावेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवलवरनाण-दंसणे समुप्पन्ने।

(ग) वइसाहसुद्धदसमी हत्थुत्तरजोगि वीरस्स।

—आव० नि गा २७४। उत्तरार्ध

(घ) वइसाहसुद्धदसमीए केवलवरनाणंदंसणं समुप्पन्ने।

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० ३२३

(च) समणे भगव महावीरे पंच हत्थुत्तरेयाविहोत्था × × × हत्थुत्तराहिं कसिणे पडिपुण्णे अव्वाघाए निरावरणे अणंते अणुत्तरे केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे।

—आया० श्रु २। अ १५। सू १। पृ० २३१

—ठाण० स्था ५। उ १। सू १७। पृ० ६१४

(छ) समणस्स भगवओ महावीरस्स पंच हत्थुत्तरा होत्था × × ×। हत्थुत्तराहिं अणंते अणुत्तरेनिव्वाघाए निरावरण कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे।

—दसासु० द ८। सु १

(ज) हस्तोत्तरान्तरं याते शशिन्याह्लदशुद्धिकः।
क्षपकश्रेणिमारुह्य शुक्लध्यानेन सुस्थितः ॥३५१॥
घातिकर्माणि निर्मूल्यं प्राप्यानंतचतुष्टयं

—उत्तपु० पर्व ७४। श्लो ३५१-५२ पूर्वार्ध

भगवान महावीर को साधना करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गये। तेरहवां वर्ष चल रहा था। उस समय ग्रीष्म ऋतु के दूसरे महिने मे, चतुर्थ पखवाडे मे, वैशाख शुक्ला दसमी तिथि में, सुव्रत नामक दिवस मे, विजय मुहूर्त मे, उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र का योग होने पर, पूर्वदिशा मे छाया जाते हुए समय अन्तिम प्रहर मे—ऊपर जानु और मस्तक नीचा करके ध्यान रूपी कोठे मे स्थित भगवान को, व्यावृत्त नामक चैत्य के ईशान कोण मे, शालवृक्ष के समीप उत्कट गोदोहासन में आतापना लेते हुए निर्जल षष्ठभक्त बेले की तपस्या करके शुक्ल

ध्यान में लीन, अन्तिम, सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण, अव्याघात, निरावरण, अनन्त, अनुत्तर केवलज्ञान—केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

(ख) मुहूर्त्ते विजये स्वामी तस्थावातापनापरः ॥२॥
शुक्लध्यानान्तरं स्थस्य क्षपकश्रेणिवर्तिन।
स्वामिनो घातिकर्माणि तुत्रुटुर्जीर्णरज्जुवत् ॥३॥
वैसाखश्वेतदशम्यां चन्द्रे हस्तोत्तरागते।
यामे चतुर्थेऽह्नो भर्तुरुद् पद्यतकेवलम् ॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग ५

विजयमुहूर्त में शुक्लध्यानान्तर में क्षपक श्रेणी पर आरूढ होकर चारघाति कर्म जीर्ण रस्सी की तरह तोड़ दिया फलस्वरूप वैशाख शुक्ला दशमी के दिन हस्तोत्तरा नक्षत्र में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

(ग) छट्ठे णुववासें हयदुरिएं।
परिपालिय - तेरह - विह - चरिएं॥
वइसाह - मासि - सिय - दसमि दिणि।
अवरण्हइ जायइ हिम - किरणि॥
हत्थुत्तर - मज्झ समासियइ।
पहु वड्ढिवण्णउ केवल - सियइ॥
घणघणइँ घाइकम्मइँ हयइँ।
खुहियाइँ भत्तितिण्णिवि जयइँ॥

—वीरजि० संधि २। कड ६। पृ० १२

पापका हरण करने वाले षष्ठोपवास करते हुए तथा तेरह प्रकार के चारित्र का पालन करते हुए भगवान अपनी तपस्या में लीन रहने लगे। फिर वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को अपराह्न में जब चन्द्र हस्त और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के मध्य में स्थित था तब भगवान को केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी की प्राप्ति हुई। उनके सघनघाति कर्म विनष्ट हो गए।

·५५ तीर्थंकर का अवस्थान काल

(क) संपहि केवलकालं भणिस्सामो। तंजहा—वइसाह जोण्णपक्ख-एक्कारसि-मादि कादूण जावपुण्णिमात्ति पंचदिवसे ५, पुणो जेट्ठमासप्पहुडि एगुणतीसं-वासाणितं चेत्तमासमादिं कादूण जाव आसवजो त्ति पंचमासे ५, पुणो कत्तियमासं किण्हपक्खचोद्दसदिवसे च केवलणाणेण सह एत्थ गमिय परिणिव्वुओ वड्ढमाणो

१४, आमावसीए परिणिव्वाणपूजा सयलदेवेंदेहिं कयात्ति तं पि दिवसमेत्थेव पक्खित्ते पण्णारसदिवसा होंति। तेणेदस्स कालस्स पमाणं वीसदिवस - पंच मासाहियएगुणतीसवासमेत्तं होदि। २६-५-२०।

एत्थुवउज्जंतीओ गाहाओ—

वासाणूणत्तीसं पंच य मासे य वीस दिवसेय।
चउविहअणगारेहिं य बारसदिणेहि (गणेहि) विहरित्ता॥
पच्छापावाणयरे कत्तियमासस्स किण्हचोद्दसिए।
सादीए रत्तीए सेसरयं छेत्तु णिव्वाओ॥
एवं केवलकालो परूविदो।

—कसापा० गा १। टीका। भाग १। पृ० ८०।८१

केवलकाल का निरूपण इसप्रकार है—

वैसाख शुक्ल पक्ष की एकादशी से लेकर पूर्णिमा तक पाँच दिन, पुन: ज्येष्ठ मास से लेकर उनतीस वर्ष पुन: उसी ज्येष्ठ मास से लेकर आसोज तक पाँच माह तथा कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तक चौदह दिन, केवलज्ञान के साथ इस आर्यावर्त में व्यतीत करके वर्द्धमान जिन मोक्ष को प्राप्त हुए। अमावस्या के दिन सकलदेव और इन्द्रों ने निर्वाण-पूजा की, इसलिये अमावस्या का दिन भी इसी उपर्युक्त केवलिकाल में मिला देने पर कार्तिक माह के चौदह दिनों के स्थान में पन्द्रह दिन हो जाते हैं। इसलिये इस केवलज्ञान का प्रमाण उनतीस वर्ष, पांच माह और बीस दिन होता है। कहा है—

उनतीस वर्ष, पांच मास और बीस दिन तक ऋषि मुनि, यति और अनगार—इन चार प्रकार के मुनियों और बारह गणों अर्थात् सभाओं के साथ विहार करके पश्चात् भगवान महावीर ने पावानगर में कार्तिक मास की कृष्णा चतुर्दशी के दिन स्वाति नक्षत्र के रहते हुए रात्रि के समय शेष अघातिकर्मरूपी रजको छेदकर निर्वाण को प्राप्त किया।

इस प्रकार केवलिकाल वर्द्धमानका उनतीस, पांच माद और बीस दिन होता है।

(ख) वीरम्मि तीस वासा केवलिकालस्स संखत्ति।

—तिलोप० अधि ४। गा ११०

वीर भगवान् के केवलिकालकी संख्या ३० वर्ष प्रमाण है।

˙५६ केवलज्ञान-केवलदर्शन के द्वारा सर्वद्रव्य-पर्याय का ज्ञान

(क) से भगवं अरिहं जिणे जाए, केवली सव्वण्णू सव्वभावदरिसी, सदेव-मणुयासुरस्स लोयस्स पज्जाए जाणइ, तंजहा—आगतिं गतिं ठितिं चयणं उववायं

भुत्तं तीर्थंकड पडिसेवियं आवीकम्मं रहोकम्मं लवियं कहियं मणोमाणसियं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे, एवं च णं विहरइ ॥

—आया० श्रु० २ । अ १५ । सू ३१ । पृ० २४१

(ख) तएणं से भगवं अरहा जाए जिणे केवली सव्वन्नू सव्वदरिसी सदेव-मणुयासुरस्स लोगस्स परियायं जाणइ पासइ, सव्वलोए सव्वजीवाणं आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं तक्कं मणो माणसियं भुत्तं कडं पडिसेवियं आविकम्मं रहोकम्मं अरहा अरहस्सभागी तंतंकालं मणवयणकायजोगे वट्टमाणाणं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावे जाणमाणे पासमाणे विहरइ ।

— कप्प० सू० १२१ । पृ० ४१

जब भगवान को केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न हुआ तब भगवान, अर्हित, जिन केवली, सर्वज्ञ, सर्वभावदर्शी होकर देवों, मनुष्यों एवं असुरों आदि सर्व लोक की पर्यायों को जानने-देखने लगे । अर्थात् इन सबकी आगति, गति, स्थिति च्यवन, उपपात, खान-पान, क्रिया, सेवन प्रकट कर्म, गुप्तकर्म, बोलना कहना, मन का अप्रकटभाव, इस संपूर्ण लोक में समस्त जीवों के समस्त भावों को जानते हुए और देखते हुए विचरने लगे ।

.७ विभिन्न कर्म प्रकृतियों का क्षय—केवलज्ञान केवलदर्शन की उत्पत्ति

(क) अथासौ भगवान् वर्धमानोऽपि विहरन्महीम् ।
छद्मस्थेन क्रमान्मौनी नीत्वा द्वादशवत्सरान् ॥९९॥
जृम्भिकाग्रामबाह्यस्थे मनोहरवनान्तरे ।
ऋजुकूलानदीतीरे महारत्नशिलातले ॥१००॥
प्रतिमायोगमाधायाधोभागे शालभूरुहः
व्यधाद्ध्यानं दृढा षष्ठोपवासी ज्ञानसिद्धये ॥१०१॥
पुनर्निर्मलचित्तेन सदाज्ञाविचयादिकान् ।
धर्मध्यानान्महोत्कृष्टान् ध्यातुमारब्धवान् सुधीः ॥१०९॥
आद्याः कषायचत्वारो मिथ्यात्वप्रकृतित्रयम् ।
तिर्यगायुश्च देवायुर्नरकायुरमी दश ॥११०॥
कर्मारयोऽस्य भीत्याश्यपत्नान्नाशमगुः स्वयम् ।
तिष्ठतो हि चतुर्थाद्यप्रमत्तान्तरगुणे क्वचित् ॥१११॥
तस्माल्लब्धजयो देवो बृहत्कर्मारिघातनात् ॥
भटोत्तम इवारब्धं शुक्लध्यानमहायुधः ॥११२॥

द्रुतं सत्क्षपकश्रेणी निःश्रेणीं मुक्तिधामनि ।
आरुरोह महावीरः कर्मारिहननोद्यतः ॥११३॥

स्त्यानगृद्ध्याख्यदुष्कर्मनिद्रानिद्राविधिस्ततः ।
प्रचलाप्रचला श्वभ्रगतिस्तिर्यग्गतिस्तथा ॥११४॥

एकाक्षद्वित्रितर्येन्द्रियचतुर्जातयोऽशुभाः ।
श्वभ्रतिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्ये तथातपः ॥११५॥

उद्योतः स्थावरः— सूक्ष्मः साधारणः इमाः खलाः ।
षोडशप्रकृतीर्वीरो जघानेवारिसंचयान् ॥११६॥

सुभटोत्तमवच्चाद्यशुक्लध्यानासिना स्वयम् ।
अनिवृत्तिकरणस्थानस्याद्ये भागे स्थितो महान् ॥११७॥

भागेऽस्यैव द्वितीयेऽष्टौ कषायान् वृत्तघातिनः ।
तृतीये क्लीबवेदं च चतुर्थे स्त्रीवेदमास्मवान् ॥११८॥

पंचमे किल हास्यादिषट्कं भागेच द्वित्रिके ।
पुंवेदं च सप्तमे संज्वलनक्रोधमथाष्टमे ॥११९॥

मानं संज्वलनं चनवमे मायां तथान्तिमाम् ।
शुक्लायुधेन तेनैवाहन्नारातीनिवोर्जितः ॥१२०॥

निहत्य सूक्ष्मलोभं सूक्ष्मसाम्परायसंयमी ।
तुर्यवृत्तेन सोऽभूत्क्षीणकषायी तदाद्भुतः ॥१२२॥

इति मोहमहारातिं कर्मणां पतिमूर्जितम् ।
हत्वा तत्सेनया सार्धं सोऽभाच्छूराग्रणीरिव ॥१२३॥

अथोत्पत्य गुणस्थानं प्राप्य द्वादशमं जिनेट् ।
केवलज्ञानसाम्राज्यं स्वीकर्तुमुद्ययौ तराम् ॥१२४॥

निद्रां च प्रचलां सोऽक्षपयद्द्विसमयेऽन्तिमे ।
गुणास्थानस्य तस्यैव द्वितीयशुक्लयोगतः ॥१२५॥

ज्ञानावरणकर्माणि पटतुल्यानि पञ्चधा ।
दर्शनावरणान्येव शेषचत्वारि पंचधा ॥१२६॥

अन्तरायाः इमाः घातिप्रकृतीश्च चतुर्दश ।
द्वितीयशुक्लबाणेन जघान त्रिजगद्गुरुः ॥१२७॥

द्विषट्गुणस्थानस्यान्तिमे समये जिनः ।
इति त्रिषष्टिकर्मप्रकृतीर्हत्वाप केवलम् ॥१२८॥
ज्ञानमन्तातिगं लोकालोकतत्त्वप्रकाशकम् ।
अनन्तमहिमोपेतं मुक्तिसाम्राज्यकारणम् ॥१२९॥
वैशाखशुक्लपक्षस्य दशम्यामपराह्णके ।
हस्तोत्तरान्तरं याते चन्द्रे योगादिके शुभे ॥१३०॥

—वीरवर्ध च० अधि १३ । श्लो ९९ से १०१, १०९ से ११०

(ख) अह अट्ठकम्मरहिसस्स तस्स झाणोवओगजुत्तस्स ।
सयलजगुज्जोयगरं, केवलनाणं समुप्पन्नं ।

—पउच० अधि २ । गा ३०

(ग) भगवान् वर्धमानोपि नीत्वा द्वादशवत्सरान् ।
छाद्मस्थ्येन जगद्बंधुर्जृंभिकग्रामसंन्निधौ ॥३४८॥
ऋजुकूलानदीतीरे मनोहरवनांतरे ।
महारत्नशिलापट्टे प्रतिमायोगमावसन् ॥३४९॥
स्थित्वा षष्ठोपवासेन सोऽधस्थात्सालभूरुहः ।
वैशाखेमासिसज्योत्स्नदशम्यामपराह्णके ॥३५०॥
हस्तोत्तरांतरं याते शशिन्यारूढशुद्धिकः ।
क्षपकश्रेणिमारुह्य शुक्लध्यानेन सुस्थितः ॥३५१॥
घातिकर्माणि निर्मूल्य प्राप्यानंतचतुष्टयं ।
चतुस्त्रिंशद्तीशेषव्याभासिमहिमालयः ॥३५२॥

—उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो ३४८ से ३५२

वर्धमान भगवान भी महीतल पर विहार करते हुए मौन धारणकर छद्मस्थभाव के साथ क्रमशः बारह वर्ष बिताकर जृम्भिका ग्राम के बाहर स्थित मनोहर वन के मध्य में ऋजुकूला नदीके किनारे महारत्नशिलापर शालवृक्ष के नीचे प्रतिमा योग को धारण कर, बेले का नियमकर ज्ञानकी सिद्धि के लिए ध्यानावस्थित हुए ।

पुनः महाबुद्धि शाली महावीर ने निर्मल चित्त से आज्ञा-विचय आदि परम उत्कृष्ट धर्मध्यान के भेदों का चिंतन करना प्रारंभ किया । उस समय उनके आठ अनंतानुबन्धी चार कषाय, दर्शन मोहनीय की मिथ्यात्व आदि तीन प्रकृतियाँ, तिर्यंचायु देवायु और नरकायु—ये दस प्रकृति का कर्म शत्रु डर करके ही मानो बिना प्रयत्न के स्वयं ही शीघ्र विनाश को

प्राप्त हो गए। जबकि वीरजिन चतुर्थ गुणस्थान से लेकर सातवें तक किसी एक गुणस्थान मे विराजमान थे।

क्षपक श्रेणी पर चढते ही वीर जिनने स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, नरकगति, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण—इन अविसंचय-स्वरूप सोलह अशुभ दुष्ट प्रकृतियों को अनिवृत्तिकरण नामक नवम गुणस्थानके प्रथम भाग में स्थित रहते हुए उत्तम सुभट के समान प्रथम शुक्लध्यान रूपी खग के द्वारा एकही साथ क्षय नाशकर दिया।

पुनः उन्होंने इसी नवम गुणस्थान के द्वितीय भाग म चारित्र की घात करने वाली दूसरी अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और तीसरी प्रत्याख्यानावरण चतुष्क—इन आठ कषायों को विनष्ट किया। पुनः तीसर भाग मे नपुंसक वेद को चौथे भाग में स्त्रीवेद को पाँचवें भाग मे हास्यादि छः नोकषायों को, छट्ठे भाग मे पुरुष वेद को, सातवें भाग मे संज्वलन क्रोध को, आठवें भाग मे सज्वलन मान को, नववें भाग मे सज्वलन मायाको उन समर्थ आत्मस्वरूप के घातक वीर प्रभुने उसी प्रथम शुक्ल ध्यान रूप आयुध के द्वारा विनष्ट किया।

कर्म शत्रुओं का विनाश करने से दसवें गुणस्थान को प्राप्त होकर सूक्ष्मकंपराय संयमी होते हुए संज्वलन सूक्ष्म लोभका भी विनाशकर चौथे संयम के द्वारा वे क्षीणकषायी हो गये।

वे जिनराज क्षीणकषाय नामके बारहवें गुणस्थान मे चढकर केवलज्ञानरूपी साम्राज्य को प्राप्त करने के लिए उद्यत हुए। तब उन्होंने इस बारहवें गुणस्थान के चरम समय मे निद्रा, प्रचला—इन दो कर्म प्रकृतियों का द्वितीय शुक्लध्यान से क्षय किया ॥१२५॥

पुनः ज्ञान के ऊपर वस्त्र के समान आवरण डालने वाली पाँचो ज्ञानावरण प्रकृतियों को, चक्षुदर्शनावरणादिलेष चार दर्शनावरण प्रकृतियों को और पाँचों अंतरायों इन चौदह कर्म प्रकृतियों को बारहवें गुणस्थान के अंतिम समयमे द्वितीय शुक्लध्यान के द्वारा तीन जगत् के गुरु महावीर प्रभु ने एक साथ विनष्ट किया। और इस प्रकार तिरसठ कर्म प्रकृतियों का विनाश करके लोकालोक के तत्त्वों का प्रकाशक, अनंत महिमा से युक्त और मुक्तिरूपी साम्राज्य की प्राप्ति का कारण अनंत केवलज्ञान, वैसाख मासकी शुक्लपक्षकी दशमी को अपराह्न कालमे हस्त और उत्तरा नक्षत्र के मध्यमे शुभचंद्रयोग के समय शुभलग्न योगादि होने पर उन्होंने प्राप्त किया।

'५८ नवलब्धियोंकी उपलब्धि

(क) सम्यक्त्वं क्षायिकं मोक्षदं यथाख्यातसंयमम् ।
अनन्तं केवलज्ञानं दर्शनं दानमुत्तमम् ॥१३२॥
लाभभोगोपभोगा वीर्यं हिमा हि - च्युतोपमाः ।
नव केवललब्धीः स स्वी चकारजिनाग्रणी ॥१३३॥

—वीरवर्धच० अधि ११ ।

केवलज्ञान की प्राप्ति के तुरन्त उसी समय मोक्ष को देने वाला क्षायिक सम्यक्त्व, यथाख्यात संयम, अनन्त केवलज्ञान, अनन्त केवल दर्शन, उत्तम अनन्तदान, लाभ, भोग, उपभोग और अनन्तवीर्य —इन उपमा रहित नव केवल लब्धियों का जिनों मे अग्रणी वीरप्रभुने स्वीकार किया ।

'५६ ज्ञानकल्याणक

(क) चतुर्विधामरैः सार्धं सौधर्मेन्द्रस्तदागतः ।
तुर्यकल्याणसत्पूजाविधि सर्वं समानयत् ॥३५४॥

—उत्तपु० पर्व ७४

केवलज्ञान के उत्पन्न होनेपर उसी समय सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र चारों प्रकार के देवों के साथ आया और उसने ज्ञानकल्याणक संबंधी पूजा की—समस्त विधि पूर्ण की ।

(ख) अपापप्राप्तिनिविड्यास्थायिकातिशयोर्जितः ।
परमात्मपदं प्रापत्परमेष्ठी स सन्मतिः ॥३५५॥

—उत्तपु० पर्व ७४

पुण्य रूप परमौदारिक शरीर की पूजा तथा समवसरण की रचना होना आदि अतिशयों से सपन्न श्री वर्धमानस्वामी परमेष्ठी कहलाने लगे और परमात्म पदको प्राप्त हो गये ।

(ग) भुवणत्तयस्स ताहे अइसय कोडीय होदिपक्खोहो ।
सोहम्मपहुदिइंदाण आसणाइं पि कंपंति ॥७०६॥

—तिलोप० अधि ४

केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर तीनों लोकों मे अतिशय क्षोभ उत्पन्न होता है और सौधर्मादि इन्द्रों के आसन कंपायमान होते है ।

(घ) इति भगवति वृत्तान्निर्जितारौ तदैव नभसि जयनिनादो देववर्गेर्जज्म्भे।
सुरपटहरवौघरुद्धमासील्लोकं भुवनपतिविमानैश्छादितं यात्रयास्य ॥१३३॥
घनकुसुमवृष्टिश्चापतत्स्वात्सुरेन्द्राः असमपरमभक्त्या श्रीपतिं प्राणमंस्तम्।
विगतमलविकाराः संबभूवुर्दिशोऽष्टौगगनममलमासीत् केवलश्रीप्रभावात् ॥१३४॥
मृदुशिशिरतरोऽस्मान्मातरिश्वाववौ च सकलसुरपतीनां कम्पिरेविष्टराणि।
समवशरणभूतिं यक्षराडाशुचक्रे ह्यसमगुणनिधे श्रीवर्धमानस्यभक्त्या ॥१३५॥

—वीरवर्धच० अधि ११। श्लो १३३ से १३५

इस प्रकार चारित्र के प्रभाव से भगवान के कर्मशत्रुओं के जीत लेने पर आकाश मे उसी समय देव समूह के द्वारा जय-जयकार शब्द व्याप्त हो गया। तथा देव दुन्दुभियों के शब्दों से आकाश व्याप्त हो गया। भगवान के दर्शन-यात्रार्थ आने वाले भुवनपति देवों के विमानों से आकाश आच्छादित हो गया।

केवल लक्ष्मी के प्रभाव से आकाश से सघन पुष्पवृष्टि होने लगी और देवेन्द्रों ने आकर उन श्रीपति महावीर जिनेन्द्र को अनुपम परम भक्ति से नमस्कार किया। उस समय आठों ही दिशाएँ मल विकार से रहित (निर्मल) हो गयी और आकाश भी निर्मल हो गया।

उस समय मृदु शीतल समीर मन्द-मन्द बहने लगी और सभी देवेन्द्रों के आसन कम्पायमान हुए। तभी यक्षराज ने आकर अनन्त गुणों के विधान श्री वर्धमान जिनेन्द्र की भक्ति से शीघ्र समवसरण विभूति की रचना की।

(च) विष्टराणि सुरेशानां सहसा प्रचकम्पिरे।
अक्षमाणीव तद्गर्वं सोढं श्रीकेवलोत्सवे ॥ ५ ॥
मौलयोनाकिनाथानां नम्रीभावमगुस्तराम्।
इत्यासन् स्वयमाश्चर्याः नाके तत्सूचका इव ॥ ६ ॥
विज्ञायैतैः परैश्चिह्नैरिन्द्रास्तत्केवलोदयम्।
मुदोत्थायासनात्नम्रास्तद्भक्त्यासन् वृषोत्सुकाः ॥ ७ ॥
इत्याश्चर्यैर्विबुध्यैनं प्राप्तकेवललोचनम्।
नत्वामूर्ध्नाखिलाः शक्रास्तत्कल्याणे मतिंव्यधुः ॥ ११ ॥

अथ तज्ज्ञानपूजायै निश्चक्रामामरैर्वृतः।
प्रयाणपटहेषूच्चैः प्रध्वनत्स्वादिकल्पराट् ॥ १२ ॥
तदा बलाहककारं विमानं कामकाभिधम्।
जम्बूद्वीपप्रमं रम्यं मुक्तालम्बनशोभितम् ॥ १३ ॥
नाना रत्नमयं दिव्यं तेजसा व्याप्तदिग्मुखम्।
किंकिणीस्वनवाचालं चक्रे देवो बलाहकः ॥ १४ ॥
इत्यादिवर्णनोपेतं तं गजेन्द्रमधिष्ठितः
शच्या महातिपुण्यात्मा सौधर्मेन्द्रो व्यभात्तराम् ॥ २५ ॥
निधिवत्तेजसा भूत्या स्वाङ्गभूषणरश्मिभिः।
गच्छन् श्री वर्धमानस्य कैवल्यार्चादिहेतवे ॥ २६ ॥
प्रतीन्द्रोऽपि महाभूत्या ह्यारूढनिजवाहनम्।
भक्त्या स्वपरिवारेण शक्रेणसह निययौ ॥ २७ ॥

—वीरवर्धच० अधि १४। श्लो ५ से ७, ११ से १४, २५ से २७

भगवान की केवलज्ञानोत्पत्ति के उत्सव मे इन्द्रों के गर्व को सहने मे असमर्थ होकर मानों देवेन्द्रों के सिंहासन सहसा काँपने लगे। सुरेन्द्रों के मुकुट स्वय ही नम्रीभूत हो गये। इस प्रकार स्वर्ग में भगवान के केवलोत्पत्ति के सूचक आश्चर्य हुए। इन तथा इसी प्रकार के अन्य चिह्नों से भगवान के केवलज्ञान के उदय को जानकर इन्द्रगण अपने-अपने आसनों से उठकर हर्षित होते हुए धर्मोत्सुक हो भगवद्भक्ति मे नम्रीभूत हो गये।

इन सब आश्चर्यों से सर्वदेव और इन्द्रगणों ने वीर प्रभु के केवलज्ञान रूप नेत्र को प्राप्त हुआ जानकर ज्ञान-कल्याणक मनाने का विचार किया।

तब आदि सौधर्म काल का स्वामी शक्रेन्द्र प्रस्थान-भेरियों को उच्च स्वर से बजवाकर सर्व देवों से आवृत्त हो भगवान के केवलज्ञान की पूजा के लिए निकला।

तब बलाहक नामक आभियोग्य जाति के देव ने जम्बूद्वीप प्रमाण एक लाख योजन विस्तृत रमणिक, मुक्तमालाओं से शोभित, किंकिणी (छोटी घटियों) के शब्दों से मुखरित तेज से सर्व दिशाओं के मुखों को व्याप्त करने वाला, सर्व मनोरथों का पूरक ऐसा नाना रत्नामयी बलाहकाकार दिव्य विमान बनाया।

उस गजराज पर इन्द्राणी के साथ बैठा हुआ अपने शरीर के भूषणों की किरणों से और विभूति से तेजी के विधान के समान श्री वर्धमान स्वामी के केवलज्ञान की पूजा के हेतु जाता हुआ वह अति पुण्यात्मा सौधर्मेन्द्र अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहा था। प्रतीन्द्र भी अपने वाहन पर आरूढ होकर अपने परिवार से संयुक्त हो महाविभूति और महाभक्ति से सौधर्मेन्द्र के साथ निकला।

(छ) घंटा-रव हरि-रव पडह-रव ।
आया असंख सुर संख-रव ॥
वंदियउ तेहिं वीराहिवइ ।
सुत्तामउ चरण-जुयलु णवइ ॥
किउ समवसरणुगय-सर-सरणु ।
उवइट्ठउ तिहुवण-जण-सरणु ॥
आहंडलेण पप्फुल्ल - मुहु ॥

—वीरजि० संधि २ । कड ६

जिस दिन भगवान महावीर को केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न हुआ उस समय घण्टा, पटह तथा शंखों की ध्वनि एवं सिंहनाद करते हुए असंख्यदेव आकर उपस्थित हुए । उन्होंने भगवान महावीर को वन्दना की । इन्द्र ने भी उनके चरण-युगल में नमन किया । फिर उन्होंने समवसरण की रचना की जिसके मध्य मे काम को दूर करने वाले एवं भुवन के लोगों के आश्रयभूत भगवान विराजमान हुए ।

(ज) अश्ववाहनमारूढ ऐशानेन्द्रोऽपि धर्मधीः
तत्समं निर्ययौ भक्त्या स्वविभूतिविराजितः ॥४२॥

मृगेन्द्रवाहनारूढः सनत्कुमारनायकः ।
माहेन्द्रः सर्वसामग्या दिव्यवृषभमाश्रितः ॥४३॥

दीप्तसारसमारूढो ब्रह्मेन्द्रश्चामरैर्वृतः ।
हंसवाहनमारूढो लान्तवेन्द्रो महर्द्धिकः ॥४४॥

दीप्ताङ्गगरुडारूढः शुक्रेन्द्रो निर्जरैर्वृतः ।
सामान्यकादिकैः स्त्रीभिस्तत्पूजार्थै च निर्ययौ ॥४५॥

स्वाभियोग्यसुरोत्पन्नमयूरवाहनान्वितः ।
सामरः सकलत्रश्च शतारेन्द्रोऽपि निर्गतः ॥४६॥

आनतेन्द्रादयः शेषाश्चत्वारः कल्पनायकाः ।
विमानपुष्पकारूढास्तत्कल्याणायनिर्ययौ ॥४७॥

इति द्वादश कल्पेन्द्राः स्वस्वभूतिविराजिताः ।
द्विषट्-प्रतीन्द्रसंयुक्ताः स्वस्ववाहनमाश्रिताः ॥४८॥

पटहादिमहाध्वानैः पूरयन्तो दिशोऽखिलाः ।
तन्वन्तः सूरचापानि स्वाङ्गभूषांशुभिरम्बरे ॥४९॥

छादयन्तो नभोभागं ध्वजछत्रादिकोटिभिः ।
जय-जीवादिशब्दौघैर्बधिरीकृतादिग्मुखाः ॥५०॥
गीतनर्तनवाद्यादिमहोत्सवशतैः समम् ।
ज्योतिषां पटलं प्रापुरवतीर्य दिवः शनैः ॥५१॥
चन्द्राः सूर्या ग्रहाः सर्वे नक्षत्रास्तारकामराः ।
स्वस्ववाहनमारुह्य स्वस्वभूतिविमण्डिताः ॥५२॥
असंख्याताः स्वदेवाढ्या धर्मरागरसाङ्किताः ।
जिनकल्याणसंसिद्धयै जग्मुस्तैः सहभूतलम् ॥५३॥
चमरः प्रथमोऽथेन्द्रो विरोचनो द्वितीयकः ।
भूतेशो धरणानन्दो वेण्वाख्यो वेणुधार्यथ ॥५४॥
शक्रः पूर्णोऽवशिष्टश्च जलाभो जलकांतिमान् ।
हरिषेणोऽमरेन्द्रो हरिकांतोऽग्निशिखी ततः ॥५५॥
अग्निवाहननामामितगत्यमितवाहनौ ।
इन्द्रो घोषो महाघोषो वेलांजनप्रभञ्जनौ ॥५६॥
अमी विंशति देवेन्द्राः प्रतीन्द्राश्च तथाविधाः ।
भवनामरजातीनामसुरादिदशात्मनाम् ॥५७॥
स्वस्ववाहनभूत्याद्यैः स्वदेवीभिरलंकृताः ।
धरामुद्भिद्य चाजग्मुस्तत्पूजायै महीतलम् ॥५८॥
किन्नरः प्रथमश्चेन्द्रस्ततः किंपुरुषाभिधः ।
शक्रः सत्पुरुषाख्योऽथ महापुरुषनामकः ॥५९॥
अतिकायो महाकाय इन्द्रो गीतरतिस्ततः ।
सुरेन्द्रो रतिकार्तिर्मणिभद्रः पूर्णभद्रकः ॥६०॥
भीमनामा महाभीमः सुरूपः प्रतिरूपकः ।
इन्द्रः कालो महाकाल इतीन्द्राः षोडशाद्भूताः ॥६१॥
तावन्तो हि प्रतीन्द्राश्च स्वस्ववाहनसंस्थिताः ।
व्यन्तराखिलयोनीनां किन्नराद्यष्टधात्मनाम् ॥६२॥
परया स्वस्वसामग्रया भूषिता निर्जरावृताः ।
तत्कल्याणाय भूभागमुद्भिद्यागुस्तदाशुहि ॥६३॥
एते चतुर्णिकायेशाः शचीगीर्वाण भूषिताः ।
निमेषोज्झितसन्नेत्राः परमानन्द शालिनः ॥६४॥

कुड्मलीकृतपाण्यब्जाः श्रीवीरं द्रष्टुमुत्सुकाः।
जयनंदादिसद्ध्वानमुखराः शीघ्रगामिनः ॥६५॥
ददृशुर्दूरतो दीप्रं विभोरास्थानमंडलम्।
विश्वर्द्धिगणसंपूर्णं रत्नांशुव्याप्तदिग्मुखम् ॥६६॥

—वीरवर्धच० अधि १४। श्लो ४२ से ६६

तब ज्योतिष्क पटल के सभी असंख्यात चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारागण अपनी-अपनी विभूति से मण्डित होकर धर्मानुराग के रस से व्याप्त हो, अपनी-अपनी देवियों से युक्त हो जिनकल्याण की सिद्धि के लिये उक्त कल्पवासी देवों के साथ भूतल की ओर चले।

उसी समय असुरकुमारादि दश जाति के भवनवासी देवों के १—चमर, २—वैरोचन, ३ भूतेश, ४—धरणानन्द, ५—वेणुदेव, ६—वेणुधारी, ७—पूर्ण, ८—अवशिष्ट, ९—जलप्रभ, १०—जलकांति, ११—हरिषेण, १२—हरिकांति, १३—अग्निशिखि, १४—अग्निवाहन, १५—अमितगति, १६—अमितवाहन, १७—घोष, १८—महाघोष, १९—बलजन और २०—प्रभंजन—ये बीस इन्द्र और बीस ही उनके प्रतीन्द्र अपनी-अपनी विभूति, वाहनों से तथा अपनी-अपनी देवियों से संयुक्त होकर भूमि को भेदन कर भगवान की पूजार्थ इस महीतल पर आये।

उसी समय किन्नर आदि आठों जाति के व्यन्तर देवों के १—किन्नर, २—किम्पुरुष, ३—सत्पुरुष, ४—महापुरुष, ५—अतिकाय, ६—महाकाय, ७—गीतरति, ८—रतिकीर्ति (गीतयश), ९—मणिभद्र, १०—पूर्णभद्र, ११—भीम, १२—महाभीम, १३—सुरूप, १४—प्रतिरूप, १५—काल और १६—महाकाल—ये सोलह अद्भुत रूप धारी इन्द्र तथा सोलह प्रतीन्द्रों के साथ अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ होकर अपनी-अपनी परम सामग्री से भूषित और अपने-अपने देव-देवी परिवार से आवृत्त होकर भूभाग को भेदन करके ज्ञानकल्याणक करने के लिए इस भूतल पर आये।

ये चारों देवनिकायों के स्वामी, अपने इन्द्राणियों और देवियों से भूषित, निमेष रहित उत्तम नेत्रों के धारक, परम आनन्दशाली, कर-कमलों के जोड़े, जय, नंद आदि मांगलिक शब्दों के बोलते श्री वीर प्रभु को देखने के लिए उत्सुक अतएव शीघ्र गमन करते हुए यहाँ पर आये। और उन्होंने समस्त ऋद्धियों से परिपूर्ण, रत्नकिरणों से दिक्मुख को व्याप्त करने वाले देदिप्यमान ऐसे भगवान के समवसरण मण्डल को देखा।

धर्म बुद्धिवाला ऐशानेन्द्र भी भक्ति के साथ अपनी विभूति से युक्त होकर अश्व वाहन पर आरूढ़ हो सौधर्मेन्द्र के साथ निकला।

मृगराज (सिंह) के वाहन पर चढ़कर सनत्कुमारेन्द्र और दिव्य वृषभ पर चढ़कर माहेन्द्र भी सर्व सामग्री के साथ निकला। कान्ति युक्त सारस पर आरूढ़ होकर देवों से घिरा हुआ ब्रह्मेन्द्र, हंसवाहन पर आरूढ़ होकर महर्द्धिक लान्तवेन्द्र, दीप्त शरीरवाले गरुड़ पर आरुढ़ और देवों से घिरा हुआ शक्रेन्द्र भी अपने सामाजिक देवों से तथा देवियों से युक्त होकर भगवान की पूजा के लिये निकले।

अपने आभियोग्य देव से निर्मित मयूर वाहन पर चढ़कर शतारेन्द्र भी अपने देव और देवी परिवार के साथ निकला। आनतेन्द्र आदि शेष चार कल्पों के स्वामी इन्द्र भी अपने-अपने देव परिवारों के साथ पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर भगवान के ज्ञानकल्याणक के लिये निकले।

इस प्रकार बारह कल्पों के इन्द्र अपने बारह प्रतीन्द्रों से संयुक्त होकर अपनी-अपनी विभूति के साथ अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर भेरी आदि के महानादों से संयुक्त होकर अपनी-अपनी विभूति के साथ अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर भेरी आदि के महानादों से समस्त दिशाओं को पूरित करते, अपने भूषणों की कांतिपुंज से आकाश मे इन्द्रधनुष की शोभा को विस्तारते, कोटि कोटि ध्वजा और छत्रों से नभोभाग को आच्छादित करते, जय जीव आदि शब्द समूह से दिशाओ को बधिर करते स्वर्ग से धीरे धीरे उतर कर गीत-नृत्य वादित्र आदि के साथ सैकड़ों उत्सवों को करते हुए ज्योतिष्क देवों के पटल को प्राप्त हुए।

·६० केवल ज्ञान—केवल दर्शन की उत्पत्ति के समय आसन

तओणं समणस्स भगवओ महावीरस्स × × ×। उक्कुडुयस्स, गोदोहियाए × × × केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे।

—आया श्रु २। अ १५। सू ३८, कप्प सू १२०

श्रमण भगवान महावीर को उत्कुटुक आसन-गोदोहिका आसन में केवलज्ञान-केवल-दर्शन समुत्पन्न हुआ।

६१ केवलज्ञान-दर्शन की प्राप्ति के समय जागृति-आनंदानुभूति

(क) घणघणइँ घाइकम्मइँ हयइँ।
खुहियाइँ झत्ति तिण्णि वि जयइँ॥

—वीरजि० संधि २। कड़ ९

(ख) एवं च विहुयगुरुयोवसग्गोवलेवो कणयपिंडोव्वणिवयपहापरिक्खोव-स्सइयदिसामंडलो अण्णया संपत्तो जंभियाहिहाणं गामं × × ×।

घणघाइकम्मविहडणसंपाडियणियजहिच्छसिद्धस्स ।
लोया-ऽलोकभासणपदीवमसमप्पहावस्स ॥ ३८२ ॥
उप्पण्णं सयलतिलोपसिट्ठभावाणुभावसब्भावे ।
संसारच्छेयकरस्स केवलं केवलप्णाणो ॥ ३८३ ॥

— चउप्प० अ ५४ । पृ० २९९

भगवान महावीर के सघनघाति कर्म विनष्ट हो गये—तब केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ । उस समय तीनों लोकों में जागृति उत्पन्न हुई ।

·६२ केवलज्ञान का अंतरकाल

जणणंतरेसु पुह पुह पुव्विल्लाणं कुमारज्जत्तं ।
छदुमत्थस्स य कालं अवणिय पच्छिल्लतित्थकत्ताणं ॥७०२॥
कोमारज्जछदुमत्थसमयमाणम्हि मेलिदे होदि ।
केवलणाणुप्पत्तीअंतरमाणं जिणिंदाणं ॥७०.॥
× × × । वीरवाह २८९ मा ८

—तिलोप० अधि ४ । गा ७०२,३

जन्म के अन्तरकाल में से पृथक् पृथक् पूर्व तीर्थङ्कर के कुमारकाल, राज्यकाल और छद्मस्थकाल को कम करके तथा पीछले तीर्थङ्करों के कुमार, राज्य और छद्मस्थकाल के प्रमाण को मिला देने पर जिनेन्द्रों के केवलज्ञान की उत्पत्ति का अन्तरकाल प्रमाण होता है ।

अतः वीर भगवान का २८९ वर्ष ८ मास अन्तरकाल होता है ।

नोट—पार्श्वनाथ स्वामी की उत्पत्ति के पश्चात् दोसौ अठत्तर वर्षों के बीत जाने पर वर्धमान तीर्थङ्कर अवतीर्ण हुए । चूँकि पार्श्वनाथ का कुमारकाल ३० वर्ष व महावीर का कुमारकाल भी ३० वर्ष का था । छद्मस्थ काल पार्श्वनाथ का ४ मास व वर्धमान का १२ वर्ष का था -अतः केवलज्ञान का अन्तरकाल वर्धमान का २८९ वर्ष ८ मास था (२७८ वर्ष—४ मास + १२ वर्ष)

—देखो तिलोप० अधि ४, गा ५७७, ५८४, ६७८

·६३ सयोगि केवली गुणस्थान की अवस्था में

सयोगभावपर्यंते स्वपरार्थप्रसाधकः ।
परमौदारिकं देहं बिभ्रद् भ्रांगणे बभौ ॥३५३॥

—उत्तपु० पर्व ७४

अनन्तचतुष्टय प्राप्त होने से अब वे सयोग केवली गुणस्थान के धारक हो गये, निज और पर का प्रयोजन सिद्ध करने लगे। तथा परमौदारिक शरीर को धारण करते हुए आकाश रूपी आँगनाएँ सुशोभित होने लगी।

·६४ केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय शरीर का ऊर्ध्वीकरण

जादे केवलणाणे परमोरालं जिणाणं सव्वाणं।
गच्छदि उवरिं चावा पंचसहस्साणि वसुहाओ ॥७०५

—तिलोप० अधि ४

केवलज्ञान के उत्पन्न होने पर समस्त तीर्थंकरों का परमौदारिक शरीर पृथिवी से पाँच हजार धनुष प्रमाण ऊपर चला जाता है।

·६५ कैवल्यावस्था में उपसर्ग नहीं होती

(क) शक्रादिवेष्टितस्यासातोदयातिमंदतः।
अनंतचतुराढ्यस्य नोपसर्गो नरादिजः ॥५७॥

—वीरवर्धच० अधि १९ श्लो ५७

इन्द्रादि से वेष्टित और अनन्त चतुष्टय के धारक भगवान के मनुष्यादि कृत उपसर्ग भी नहीं होता।

(ख) दस अच्छेरगा पन्नत्ता, तंजहा—उवसग्ग × × ×
दसवि अणंतेण कालेण

—ठाण० स्था १० सू ७७७

टीका—'उवसग्गे' त्यादि गाथाद्वयं, उपसृज्यते क्षिप्यते च्याव्यते प्राणी धर्मादेभिरित्युपसर्गा—देवादिकृतोपद्रवाः, ते च भगवतो महावीरस्य छद्मस्थकाले केवलिकाले च नरानरतिर्यक्कृताअभूवन्, इदं च किल न कदाचिद् भूतपूर्वं, तीर्थकरा हि अनुत्तरपुण्यसम्भारतया नोपसर्गभाजनमपितु सकल नरामरतिरश्चां सत्कारादि-स्थानमेवेत्यनन्तकालभाव्ययमर्थो लोकेऽद्भुतभूत इति।

तीर्थंकर अनुत्तर पुण्य के धनी होते है, अतः उनको नर, देव, तिर्यक् कृत उपसर्ग नहीं होता फिर भी भगवान महावीर को सर्वज्ञावस्था में भस्मीभूत करने के लिये गोशालक ने तेजोलेश्या फोड़ी थी—यह अनन्तकाल से आश्चर्यजनक घटना थी। दस अच्छेरों में यह प्रथम अच्छेरा—(आश्चर्य) उपसर्ग माना गया है।

·६६ सामान्यतः कैवल्यावस्था में भगवान् भिक्षार्थ नहीं जाते थे।

(क) × × × केवलज्ञाने मे कस्मान्न भिक्षार्थं भगवानटति ?, उच्यते, तस्याम-वस्थायां भिक्षाटने प्रवचनलाघवसंभवात्, उक्तं च—

"देविंदचक्कवट्टी मंडलिया ईसरा तलवराय ।
अभिगच्छंति जिणिंदं गोयरचरियं न सो अडइ ॥

—आव० नि० गा ४६१ । मलय टीका

भगवान महावीर केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद भिक्षार्थ नहीं जाते थे। क्योंकि भिक्षार्थ जाने से प्रवचन में लाघवता आने की सम्भावना है। कहा है।

जिनेन्द्र भगवान गोचरी के लिये भ्रमण नहीं करते हैं।

(ख) नोकर्माहारपुष्टस्यानन्तसुखभागिनः ।
भुक्तिर्न वीतरागस्य विद्यते घातिघातनात् ॥

—वीरवर्धं० अधि ११ । श्लो ४६

घातिकर्मों के विनाश से विशिष्टनोकर्म रूप आहार से पुष्ट और अनन्त सुख के भोक्ता वीतरागी भगवान के असाता कर्म के अति मन्द उदय होने से कवलाहार रूप भोजन नहीं होता है।

(ग) उप्पण्णनाणस्स लोहज्जो आणेति ।

—आया० चू० पृ० ३०६

लोहार्य द्वारा लाया हुआ आहार—भोजन करते थे।

(घ) उप्पन्न णाणस्स उ लोहज्जो आणेति—
धन्नो सो लोहज्जो खंतिखमोपवरलोहसरिवन्नो ।
जस्स जिणो पत्ताओ इच्छइ पाणीहिं भोत्तुं जे ॥

(गणधर सुधर्मा का अपरनाम 'लोहार्य' था—तेणवि लोहज्जस्सय लोहज्जेणय सुधम्मणा-मेण —जंबू० १-१०)

·६७ केवलज्ञान-केवलदर्शनोत्पत्ति के बाद प्रथम विहार

·१ केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद मुहूर्त प्रमाण ठहरे :

(क) ताहे सामी तत्थ मुहुत्तं अच्छति आवदेवा पूयं करेंति, एस केवलकप्पो किर जं उप्पन्ने णाणे मुहुत्तमेत्तं अच्छियव्वं ।

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० ३२४

केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् भगवान मुहूर्त भर ठहरे, फिर लक्ष्य की ओर गति-मान हो गये ।

·२ प्रथम विहार—

जंभृक ग्राम से अपापा पधारे।

(क) उपकाराऽर्हलोकानामभावात्तत्र च प्रभुः।
परोपकारैकपरः प्रक्षीणप्रेमबंधनः॥
तीर्थकृन्नामगोत्राऽऽख्यं कर्मवेद्यं महन्मया।
भव्यजन्तुप्रबोधेनानुभाव्यमिति भावयन्॥
दुयुसन्निकायकोटीभिरसंख्याताभिरावृतः।
सुरैः संचार्यमाणेषु स्वर्णाब्जेषु दधत्क्रमौ॥
स्फुटे मार्गे दिन इव देवोद्योतेन निश्यपि।
द्वादशयोजनाऽध्वानां भव्यसत्त्वैरलंकृताम्॥
गौतमाद्यः प्रबोधार्हैर्भूरिशिष्यसमावृतैः।
यज्ञाय मिलितैर्जुष्टामपापा मगमत्पुरीम्॥१८॥

—त्रिशलाका० पर्व १० सर्ग ५। श्लो १४ से १८

·३ वइसाहसुद्धदसमीए ....केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने। ....एवं जाव मज्झिमाए नगरीए महसेणवणं उज्जाणं संपत्तो। तत्थदेवा बितिमं समोसरणं करेंति, महिमं च सुरुगमणे, एगं जस्थ नाणं बितियं इमं चेव।

—आव० चू० पूर्वभाग पृ० ३२३-३२४

चूंकि महावीर भगवान को वैसाख शुक्ला दसमी को केवलज्ञान-केवलदर्शन समुत्पन्न हुवा। वैसाख शुक्ला एकादशी को मध्यम पावा के महासेन उद्यान में पधारे।

·६८ गोशालक के तपतेज के साथ—तीर्थंकरकाल—भगवान के तप तेज की तुलना

(क) तं प्रभू णं भंते! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासि करेत्तए, विसए णं भंते! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स जाव करेत्तए, समत्थे णं भंते! गोसाले जाव करेत्तए?

पभू णं आणंदा! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं जाव करेत्तए। विसए णं आणंदा! गोसाले० जाव करेत्तए। समत्थे णं आणंदा! गोसाले जाव करेत्तए, णो चेव णं अरहंते भगवंते, परियावणियं पुण करेज्जा। जावइए णं आणंदा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवतेए, एत्तो अणंतगुणविसिट्ठतराए चेव तवतेए अणगाराणं भगवंताणं, खंतिखमा पुण अणगारा भगवंतो। जावइए णं आणंदा। अणगाराणं भगवं-

ताणं तवतेए एत्तो अणंतगुणविसिट्ठतराए चेव तवतेए थेराणं भगवंताणं खंतिखमा पुण थेरा भगवंतो। जावइए णं आणंदा। थेराणं भगवंताणं तवतेए एत्तो अणंतगुण-विसिट्ठतराए चेव तवतेए अरहंताणं भगवंताणं खंतिखमा पुण अरहंता भगवंतो। तं पभू णं आणंदा! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं तेएणं जाव करेत्तए, विसए णं आणंदा। जाव करेत्तए समत्थे णं आणंदा! जाव करेत्तए, णो चेव णं अरहंते भगवंते, परियावणियं पुण करेज्जा।

—भग० श १५। सू ६८। पृ० ६७५-७६

आनन्द अणगार ने भगवान से प्रश्न किया—हे भगवान! गोशालक—मंखलिपुत्र अपने तपतेज से एक ही प्रहार में कूटाघात के समान जलाकर भस्म करने में समर्थ है। हे भगवान! मंखलिपुत्र गोशालक का यह यावत् विषय मात्र है या वह ऐसा करने में समर्थ हैं। हे आनन्द! मंखलिपुत्र गोशालक अपने तप:तेज से यावत् भस्म करने मे समर्थ हैं। हे आनन्द! मंखलिपुत्र गोशालक का यावत् यह विषय है। हे आनन्द! वह ऐसा करने मे समर्थ है, परन्तु अरिहंत भगवान को जलाकर भस्म करने मे समर्थ नहीं है, तथापि उनको परिताप उत्पन्न करने मे समर्थ है। हे आनन्द! गोशालक का जितना तप तेज है, उससे अनगार भगवंतों का तप तेज अनन्त गुण विशिष्ट हैं, क्योंकि अनगार भगवंत क्षांतिक्षम (क्षमा करने में समर्थ) हैं। हे आनन्द! अनगार भगवन्तों का जितना तप-तेज हैं, उससे अनन्त गुण विशिष्ट तप तेज स्थविर भगवंतों का है, क्योंकि स्थविर भगवत क्षांतिक्षम होते हैं। हे आनन्द! स्थविर भगवंतों का जितना तप तेज होता है, उससे अनन्त गुण विशिष्ट तपतेज अरिहंत भगवन्तों का होता है, क्योंकि अरिहंत भगवन्त क्षांतिक्षम होते है। हे आनन्द। मंखलिपुत्र गोशालक अपने तपतेज द्वारा यावत् भस्म करने में समर्थ हैं। यह उसका विषय है और वह वैसा करने में समर्थ भी है परन्तु अरिहन्त भगवन्तों को भस्म करने में समर्थ नहीं है, केवल परिताप उत्पन्न कर सकता है।

'६६ प्रतिमा योग का ग्रहण

(क) एतैर्द्वादशसंख्यातैर्गणैर्भक्तिभरोत्कटैः।
संपरीतो जगन्नाथस्ततो हि विहरन् शनैः॥ २१७॥
नानादेशपुरग्रामान् बोधयन् भव्यभाक्तिकान्।
बहुधर्मोपदेशेन कुर्वन्मोक्षपथे स्थिरान्॥ २१८॥
निर्धूयाज्ञानकुध्वान्तं प्रकाश्याध्वानमूर्जितम्।
मुक्तेर्वर्षोऽशुभिर्देव आजगाम क्रमान्हामन्॥ २१६॥

चम्पापुरोद्यानं फलपुष्पादिशोभितम्।
विहृत्य षड्-दिनोनानि त्रिंशद्वर्षाणि तीर्थराट्॥ २२० ॥

—वीरवर्धच० अधि ११। श्लो २१७ से २२०

भक्ति भाव से व्याप्त बारह गुणों से वेष्टित जगत के नाथ श्रीवर्धमान तीर्थङ्करदेव तत्पश्चात् धीरे-धीरे विहार करते, नाना-देश-पुर-ग्रामवासी जनों को सम्बोधित करते, धर्मोपदेश के मार्ग से स्थिर करते हुए तथा अपनी वचन-किरणों से अज्ञानान्धकार का नाश कर और उत्तम मार्ग का प्रकाश कर छह दिन कम तीस वर्ष तक विहार करके क्रम से फल-पुष्पादि शोभित चम्पा नगरी के उद्यान में आये। वहाँ पर दिव्य-ध्वनि को और योग को रोक कर निष्क्रिय से उन्होंने मुक्ति प्राप्ति के लिए अघाति कर्मों का हनन करने वाला प्रतिमा योग ग्रहण किया।

(ख) तत्र योगं निरुध्यासौ दिव्यभाषां च निःक्रियः।
मुक्त्येऽघातिहन्तारं प्रतिमायोगमाददौ॥ २२१॥
तत आदेयनामाथ मनुष्यगति संज्ञकः।
ततो नरगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यसमाह्वय॥ २२६॥
पंचाक्षजातिमर्त्यायुः पर्याप्तित्रसबादराः।
सुभगाह्वयो यशःकीर्तिः सातोच्चैर्गोत्रसंज्ञकौ॥ २३०॥
तीर्थकृन्नाम तीर्थेश एतास्त्रयोदशप्रमाः।
प्रकृतीस्तेन शुक्लेन तस्यान्त्यसमयेऽप्यहन्॥ २३१॥

—वीरवर्धच० अधि ११। श्लो २२१, २२६ से २३१

तत्पश्चात आदेयनाम, मनुष्य जाति, मनुष्य गत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, मनुष्यायु, पर्याप्तिनाम, त्रसनाम, बादरनाम, सुभग, यशःकीर्ति, सात वेदनीय, उच्च गोत्र और तीर्थंकरनाम कर्म—इन तेरह प्रकृतियों को वर्धमान तीर्थेश्वर ने उसी शुक्लध्यान के द्वारा अयोगिकेवलि गुणस्थान के अन्तिम समय में क्षय कर दिया।

·७०/७६ वर्धमान का परिनिर्वाण

·७१ परिनिर्वाण की तिथि-नक्षत्र

(क) समणे भगवं महावीरे × × × साइणा भगवं परिनिव्वुए।

—आया० श्रु २। अ १५। सू १। पृ० २३१

—कप्प० सू १। पृ० ६

(ख) साइणा परिनिव्वुए भगवं जावमुक्जो उवदंसेइ ।

—दसासु० द ८ । सु १

(ग) समणे भगवं महावीरे ××× अच्चे लवे मुहुत्ते साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं कालगए विइक्कंते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।

—कप्प सू १२१ । पृ० ४२

श्रमण भगवान महावीर अर्च नामक लव, मुहूर्त नामक प्राण, स्वाति नक्षत्र में सिद्ध, बुद्ध यावत् सर्व दुःखों का अन्त किया ।

(घ) कत्तियकिण्हे चोद्दसिपच्चूसे सादिणामणक्खत्ते ।
पावाए णयरीए एक्को वीरेसरो सिद्धो ॥

—तिलोप० अधि ४ । गा १२०८

भगवान वीरेश्वर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के दिन प्रत्यूषकाल में स्वाति नक्षत्र में पावापुरी में अकेले सिद्ध हुए ।

(च) ततोऽसौ कृत्स्नकर्मारिकायत्रयविनाशनः ।
निर्वाणमगमच्चोर्ध्वगतिस्वभावतोऽमलः ॥ २३२ ॥
कार्तिकाख्ये शुभे मासे अमावास्याभिधेतिथौ ।
स्वातिनामनि नक्षत्रे प्रभातसमये वरे ॥ २३३ ॥

— वीरवर्धच० अधि १९ । श्लो २३२-३३

शुभ कार्तिक मास की अमावस्या तिथि के दिन, स्वाति नक्षत्र में श्रेष्ट प्रभात समय समस्त कर्म शत्रुओं के तीनों शरीरों का विनाश कर भगवान महावीर ने ऊर्ध्वगति स्वभाव होने से ऊपर जाकर निर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त किया ।

(छ) णिव्वत्तिइकत्तिइ तम-कसणि पक्खचउद्दसि-वासरि ।
थिइ ससहरि दुहँहरि साइवइ पच्छिम-रयणिहि अवसिरि ॥

—वीरजि० संधि ३ । कड १ । पृ० ३८

(ज) तस्स णं जे से पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रन्नो रज्जुगसभाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए, तस्स णं अंतरावासस्स जे से वासाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे कत्तियबहुले तस्स णं कत्तियबहुलस्स पन्नरसीपक्खेणं जा सा चरिमा रयणी तं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए विइक्कंते समुज्जाए छिन्नजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिनिव्वुडे सव्व-

दुक्खपहीणे चंदेनामं से दोच्चे संवत्सरे पीतिवद्धणे मासे नंदिवद्धणे पक्खे सुव्वयग्गी नामं से दिवसे उवसमि त्ति पवुच्चइ देवाणंदा णामं सा रयणी निरइ त्ति पवुच्चइ अच्चे लवे मुहुत्ते पाणू थोवे सिद्धे नागे करणे सव्वट्ठसिद्धे मुहुत्ते साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं कालगए विइक्कंते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।

—कप्प सू १२३। पृ० ४२

श्रमण भगवान महावीर ने अपना अंतिम चतुर्मास करने के लिए मध्यम पावा नगरी में हस्तिपाल राजा की भोजणी— कामदारों की कचेरी वाले स्थान में आये। वहाँ चतुर्मास वर्षाऋतु का चतुर्थ महीना, सातवाँ पक्ष चल रहा था। सातवाँ पक्ष अर्थात् कार्तिक मास के प्रथम पक्ष की पन्द्रहवी तिथि—अमावस्या थी—अन्तिम रात्रि थी—उस समय श्रमण भगवान महावीर काल धर्म को प्राप्त हुए। संसार को छोड़कर चले गये। दुबारा जन्म न हो—उस प्रकार चले गये। अर्थात् भगवान सिद्ध हुए, बुद्ध हुए—दुःखों को नाश करने वाले हुए। परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। उनके सर्व दुःख हीन हो गये—चले गये।

अस्तु भगवान् जिस समय परिनिर्वाण को प्राप्त हुए उस समय चन्द्र नामक द्वितीय संवत्सर चलता था। प्रीतिवर्धन नामक मास था, नन्दिवर्धन नामक पक्ष था, अग्निवेस—अग्निवेश्य नामक दिवस था। उसका दूसरा नाम 'उवसम' था। देवानन्दा नामक रात्रि थी। उसका दूसरा नाम निरई, कहा जाता है।

इस प्रकार अर्च नामक लव था, मुहूर्त नामक प्राण था, सिद्ध नामक स्तोक था। नाग नामक करण था। सर्वार्थसिद्धि नामक मुहूर्त था—स्वाति नक्षत्र का योग होने पर भगवान् काल धर्म को प्राप्त हुए। यावत् सर्व दुःखों का अन्त किया।

·७४·परिनिर्वाण भूमि

(क) अट्ठावय-चंपु-ज्जेंत-पावा-सम्मेयसेलसिहरेसु।
उसभ वसुपुज्ज नेमी वीरो सेसा य सिद्धिगया॥

—आव० नि गा ३२९, प्रवसा० गा ३१२

-मलयटीका– अष्टापदचम्पोज्जयन्तपापासम्मेतशैलशिखरेषु यथाक्रममृषभो वासुपूज्योऽरिष्ठनेमिर्वीरो भगवान् शेषाश्च तीर्थंकृतः सिद्धि गताः, अष्टापदे ऋषभस्वामी सिद्धिमगमत्, चंपायां वासुपूज्यः उज्जयन्तेऽरिष्ठनेमिः भगवान् महावीरः पापायां शेषां अजितस्वामिप्रभृतयः सम्मेतशैलशिखरे इति।

(ख) पावाए णयरीए एक्को वीरेसरो सिद्धो॥

—तिलोप० अधि ४ गा १२०८। उत्तरार्ध

भगवान महावीर ने पावा अथवा पापा अथवा अपापा नगरी में सिद्धगति प्राप्त की। अर्थात् ऋषभनाथ भगवान ने अष्टापद पर, वासुपूज्य भगवान ने चंपानगरी में, अरिष्टनेमी ने उज्जयंत पर्वत पर, वीर भगवान् ने पावापुरी में तथा अवशेष बीस तीर्थंकरों ने सम्मेतशिखर पर सिद्धगति प्राप्त की।

(ग) अंत-तित्थणाहु वि महि विहरिवि।
जण-दुरियाइँ दुलंघइँ पहरिवि॥
पावा-पुरवरु पत्तउ मणहरि।
× × × ।
रायहंसु णावइ पंकय-दलि॥
दोण्णि दियहँ पविहारु मुएप्पिणु॥
सुक्क-झाणु तिज्जउ झाएप्पिणु॥

घत्ता—णिव्वत्तिइ कत्तिइ तम-कसणि पक्खे चउद्दसि वासरि।
थिइ ससहरि दुहँहरि साइवइ पच्छिम-रयणिहि अवसरि॥

—वीरजि० संधि १। कड १। पृ० १४

भगवान महावीर विपुलाचल से विहार कर पावापुर नगर में पधारे। वहाँ वन में भगवान एक विशुद्ध रत्नशिला पर विराजमान हुए। वहाँ उन्होंने निर्वाण पद की प्राप्ति की :

(घ) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे ××× खीणे वेयणिज्जाउयनाम गोत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दूसमसुसमाए समाए बहुवीइक्कंताए तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहि सेसएहिं पावाए मज्झिमाए हत्थिपालगस्स रन्नो रज्जुगसभाए एगे अबीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं साइणा नक्खत्तेणं जोग-मुवागएणं पच्चूसकालसमयंसि संपलियंकनिसन्ने पणपन्नं अज्झयणाइं कल्लाण-फलविवागाइं पणपन्नं अज्झयणाइं पावफलविवागाइं छत्तीसं च अपुट्ठ-वागरणाइं वागरित्ता पधाणं नाम अज्झयणं विभावेमाणे २ कालगए वितिक्कंते समुज्जाए छिन्नजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिनिव्वुडे सव्व-दुक्खप्पहीणे।

—कप्प० सु १४६। पृ० ४५

उस काल उस समय में भगवान महावीर के वेदनीय, नाम, गोत्र आयुष्य कर्म के क्षीण होने से—इस अवसर्पिणी काल के दुःषम-सुषम नाम का चतुर्थ आरे का बहुभाग व्यतीत

होने के बाद तथा आरे के तीन वर्ष और साढ़े आठ महीने अवशेष रहने पर मध्यम पावापुरी में हस्तिपाल राजा की मोजणी—कामदारों के बैठने की सभा में अकेले अन्य कोई भी साथ में नहीं था दो दिन की तपस्या में स्वाति नक्षत्र का योग होने पर प्रत्यूषकाल में (चार घड़ी रात के बाकी रहने पर) पद्मासन में स्थित भगवान कल्याणफल विपाक के पंचावन अध्ययन और पाप फल विपाक के अन्य दूसरे अध्ययन और किसी के द्वारा नहीं पूछे गये – ऐसे प्रश्नों का खुलासा देने वाले छत्तीस अध्ययन कहते-२ काल धर्म को प्राप्त हुए। जगत को छोड़कर ऊर्ध्वगति से गये और जन्म-जरा-मरण से विमुक्त बने –सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए यावत् सर्व दुःखों का अन्त किया।

·७१ परिनिर्वाण के समय तप

(क) छसहो चोद्दसदिवसे दुदिणं वीरेसरस्स सेसाणं।
मासेण य विणिवित्ते जोगादो मुत्तिसंपण्णो॥

—तिलोप० अधि ४। गा १२०९

भगवान महावीर ने दो दिन पहले योग से विनिवृत्त होनेपर मुक्ति को प्राप्त किया।

(ख) समणे भगवं महावीरे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

—ठाण० स्था ६। सु १०१। पृ० ७१०

(ग) तदा च कार्तिकदर्शनिशायाः पश्चिमे क्षणे।
स्वातिभृक्षे वर्त्तमाने कृतषष्ठो जगद्गुरुः॥ २२२॥

—त्रिशलाका पर्व १०। सर्ग १३

(घ) अट्ठमभत्तवसाणे पासोसहमल्लिरिट्ठनेमीणं।
वसुपुज्जस्स चउत्थेण छट्ठभत्तेण सेसाणं।

—प्रवसा० द्वार ४५, गा ४५५

(च) निव्वणमंतकिरिया सा चोद्दसमेण पढमणाहस्स।
सेसाणं मासिएणं वीरजिणिंदस्स छट्ठेणं।

—आव० नि गा ३२४

(छ) (शिवगमन) चरम छट्ठ अणशण पवर

—चतु० ८८ बन १

भगवान महावीर छट्ठभक्त अर्थात दो दिन की तपस्या में स्वाति नक्षत्र में परिनिर्वाण प्राप्त किया।

'७३'१ परिनिर्वाण रूप अंतक्रिया

(क) निव्वाणमंतकिरिया सा चोद्दसमेण पढमनाहस्स।
सेसाणं मासिएणं वीरजिणिंदस्स छट्ठेणं ॥३२८॥

—आव० नि । गा ३२८

टीका —सा च निर्वाणलक्षणा अंतक्रिया प्रथमनाथस्य —आदितीर्थकृतश्चतुर्दशकेन-षड्भिरुपवासैरभूत्, शेषाणाम्—अजितस्वामिप्रभृतीनां पार्श्वनाथपर्यन्तानां द्वाविंशतेस्तीर्थकृतां मासिकेन तपसा, मासोपवासेनेत्यर्थः, अंतक्रियाऽभवत्, भगवतो वीरजिनेन्द्रस्य पुनः षष्ठेन-द्वाभ्यामुपवासाभ्याम्।

भगवान ऋषभ का निर्वाण—अंतक्रिया चतुर्दश भक्त उपवास की, अन्य जिनों की पार्श्वनाथ पर्यन्त—मासिक तपको तथा भगवान महावीर षष्ठभक्त उपवास की थी।

.७४ परिनिर्वाण के समय अंतरकाल

'१ दुःखमसुषम चतुर्थ आरेके ८९ पक्ष बाकी थे—

(क) समणे भगवं महावीरे इमीसे ओसप्पिणीए चउत्थीए समाए पच्छिमे भागे एगूणणवइए अद्धमासेहिं सेसेहिं कालगए वीइक्कंते समुज्जाए छिण्णजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

— सम० सम । सू २ । पृष्ठ ९०२

(ख) परिणिवुदे जिणिंदे चउत्थकालस्स अब्भंतरे सेसं वासा तिण्णिमासा अट्ठ दिवसा पण्णारस ३-८-१५। संपहि कत्तियमासम्हि पण्णरसदिवेसेसु मग्गसिरादि-तिण्णिवासेसु अट्ठमासेसु च महावीरणिव्वाणगयदिवसादो गदेसु सावणमास पडिवयाए दुस्समकालो ओइण्णो।

— कसापा० । गा० १ । टीका । भाग १ । पृष्ठ ८१

भगवान् महावीर इस अवसर्पिणी काल के दुःषमसुषम नामक चतुर्थ आरेके पश्चिम भाग में नवासी पक्ष शेष रहने पर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए यावत् सर्व दुःखों का अंत किया।

जिस दिन महावीर जिन निर्वाण को प्राप्त हुए उस दिन से कार्तिक माह के पन्द्रह दिन और मार्गशीर्ष माह से लेकर तीन वर्ष, आठ माह काल के व्यतीत हो जाने पर श्रावण माह की प्रतिपदा से दुःषमकाल अवतीर्ण हुआ।

(ग) तियवासा अद्धमासं पक्खं तह तदियकालअवसेसे।
सिद्धो रिसहजिणिंदो वीरो तुरिमस्स तेत्तिए सेसे।

—तिलोप० अधि ४। गा १२१६

(घ) स्वभ्याख्यान्मम निर्वाणादतीतैर्वत्सरैस्त्रिभिः
सार्धाष्टमाससहितैः पंचमारः प्रवेक्ष्यति ॥७७॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १३

तृतीयकाल (सुषमदुषम आरा) मे तीन वर्ष, आठ मास, और एक पक्ष के अवशिष्ट रहनेपर ऋषभ जिनेन्द्र इतना ही चतुर्थकाल (दुषमसुषम आरा) मे अवशेष रहनेपर वीर प्रभु सिद्धपद को प्राप्त हुए ।

(च) णिव्वाणे वीरजिणे वासतये अट्ठमासपक्खेसु ।
गलिदेसु पंचमओ दुस्समकालो समल्लियदि ॥

—तिलोप० अधि ४ । गा १४७४

वीर भगवान का निर्वाण होनेके पश्चात् तीन वर्ष, आठ मास और एक पक्ष के व्यतीत हो जाने पर दु.षमकाल प्रवेश होता है ।

·२ भगवान के परिनिर्वाण के दिन ज्येष्ठ अणगार गौतम को केवलज्ञान-केवलदर्शन समुत्पन्न

(क) जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे तं रयणिं च णं जेट्ठस्स गोयमस्स इंदभूइस्स अणगारस्स अंते वासिस्स नायए पेज्ज-बंधणे वोच्छिन्ने अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने ।

—कप्प० सू १२६ । पृ० ४२

जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर ने सर्वदुखों का अत किया—उसरात्रि मे उनके पट्टशिष्य गौतम गोत्र के इन्द्रभूति अनगार का भगवान् महावीर के प्रति प्रेम बंधन टूटा फलस्वरूप इन्द्रभूति अनगार को अनत, अनुत्तर यावत् केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न हुआ ।

·३ तीर्थंकर की अपेक्षा परिनिर्वाण का अंतरकाल

(क) श्रीपार्श्वनाथनिर्वाणात् सार्धे वर्षशतद्वये ।
गते श्रीवीरनाथस्य निर्वाणं समजायतः ॥२७३॥

—त्रिशलाका० पर्व १० । सर्ग १३

पार्श्वनाथ तीर्थंकर के निर्वाण से भगवान् महावीर का निर्वाण दो सौ पचास वर्ष बाद हुआ ।

(ख) तेसीदिसहस्सेसुं पण्णाधियसगसएसुजादेसु ।
तत्तो पासो सिद्धो पाण्णब्भहियम्मि दोसए वीरो ॥

—तिलोप० अधि ४ । गा १२४९

भगवान नेमीनाथ के मुक्त होने के पश्चात् तेयासी हजार सात सौ पचास वर्षों के बीत जाने पर पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर और फिर दो सौ पचास वर्षों के बीत जाने पर वीर भगवान सिद्ध हुए।

·७५ परिनिर्वाण के समय आसन—मोक्षासन

(क) उसहो य वासुपुज्जो णेमी पल्लंकबद्धया सिद्धा।
काउस्सग्गेण जिणा सेसा मुत्तिं समावण्णा ॥

—तिलोप० अधि ४। गा १२१०

भगवान् ऋषभनाथ, वासुपूज्य और नेमीनाथ पल्यंकबद्ध आसन, तथा शेष जिनेन्द्र कायोत्सर्ग से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। अतः भगवान् महावीर कायोत्सर्ग से मोक्ष प्राप्त किया।

(ख) तेण कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे × × × साइणा णक्खत्ते णं जोगमुवागएणं पच्चूसकालसमयंसि संपलियंकनिसन्ने × × × सिद्धे बुद्धे × × × सव्वदुक्खप्पहीणे।

—कप्प० सू १४६

श्रमण भगवान् महावीर स्वाति नक्षत्र मे सपर्यंक—पद्मासन मे सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हुए यावत् सर्व दुःखों का अन्त किया।

(ग) वीरोसह नेमीणं पलियंकं सेसाण य उस्सग्गो।

—सत्तरिसत १५१ द्वार

(घ) ऋषभ वीर अरु नेम जिन, पलयंक आसण शिवपेख।

—चतु० स्तवन १

मोक्ष-गमन के समय महावीर स्वामी, ऋषभदेव स्वामी और अरिष्टनेमि स्वामी के पर्यंक आसन था। शेष तीर्थङ्कर उत्सर्ग (कायोत्सर्ग) आसन से मोक्ष पधारे।

·७६ परिनिर्वाण के समय सह या अकेले मोक्ष (मोक्ष-परिवार)

(क) एगे समणे भगवं महावीरे इमीसे ओसप्पिणीए चउव्वीसाए तित्थ-गराणं चरिमतित्थयरे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

—ठाण० स्था १। सू २४१। पृ० ४९१

टीका—अस्यामवसर्पिण्यां चतुर्विंशतेस्तीर्थकराणां मध्ये चरमतीर्थंकरः सिद्धः × × × इह च तीर्थकरेष्वेतस्यैवैकत्वं मोक्षगमने, न तु ऋषभादीनां, दश-सहस्रादि परिवृतत्वेन तेषां सिद्धत्वाद्, उक्तं च—

"एगो भगवं वीरो तेत्तीसाए सह निव्वुओ पासो।
छत्तीसएहिं पंचहिं सएहिं नेमी उ सिद्धिगओ ॥१॥
एकाकी वीरो निर्वृत इत्युक्तं।

(ख) एगो भयवं वीरो तेत्तीसाए सहनिव्वुओ पासो।
छत्तीसेहिं पंचहिं सएहिं नेमी उ सिद्धिगतो॥

—आव० नि गा० ३१०

मलय टीका—वीरो भगवान् एकः—एकाकी सन् निर्वृतः। त्रयस्त्रिंशता साधुभिः सह निर्वृतः पार्श्वनाथ पंचभिः शतैःषट्त्रिंशैः—षट्‌त्रिंशदधिकै सह सिद्धिं गतो नेमिः - अरिष्ठनेमिः × × ×।

श्रमण भगवान् ने अकेले परिनिर्वाण प्राप्त किया। जो इस अवसर्पिणी कालके चौबीसवें तीर्थङ्कर थे।

(ग) एगो भगवं वीरो तेत्तीसाए सह निव्वुओ पासो।

—प्रवसा० द्वा० ३४। गा ३८८। पूर्वार्ध

टीका—तत्र एकः-एकाकी सन् भगवन् श्री वीरो 'निवृत्तो' निर्वाणं ययौ, त्रयस्त्रिंशता साधुभिः सह निर्वृत्तः पार्श्वजिनः।

भगवान् महावीर अकेले सिद्धगति प्राप्त की तथा पार्श्वनाथ तेतीस साधुओं के साथ निर्वाण प्राप्त किया।

(घ) रिसि-सहसेण समउ रय-छिंदणु।
सिद्धउ जिणुसिद्धत्थुहु णंदणु।

—वीरजि० संधि ३। कड २

(च) गन्ता मुनिसहस्रेण निर्वाणं सर्ववाञ्छितम्।

—उत्तर० पर्व ७६। गा ५१२ उत्तरार्ध

भगवान् महावीर के साथ अन्य एक सहस्र मुनि भी सिद्धत्व को प्राप्त हुए।

·७७ परिनिर्वाण के सम अवस्था

(क) समणे भगवं महावीरे बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

—सम० सम ७२। पृ० ८१५

(ख) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे तीसं वासाइं अगार-वासमज्झे वसित्ता, साइरेगाइं दुवालस वासाइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता, देसूणाइं तीसंवासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता, बायालीसं वासाइं सामन्न-परियायं पाउणित्ता, बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता, × × ×। विप्पजहमाणे। कालगए वितिक्कंते समुज्जाए छिन्नजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतकडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

— कप्प० सु १४६। पृ० ४५

श्रमण भगवान् महावीर बहत्तर वर्ष के आयुष्य का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए तथा परिनिर्वाण-सर्व दुःखों का अन्त किया।

भगवान् महावीर तीस वर्ष गृहवास मे रहकर साधिक बारह वर्ष छद्मस्थ पर्याय का पालन कर, कुछ कम तीस केवलिपर्याय का पालन कर, बयालिस वर्ष की श्रमण-पर्याय का पालन कर—इस प्रकार बहत्तर वर्ष की सर्वायु पालन कर काल धर्म को प्राप्त हुए। उनके जन्म-जरा-मरण का बन्ध क्षय हो गया। सिद्ध, बुद्ध-मुक्त हुए यावत् सर्व दुःखों का अन्त किया।

(ग) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे ××× बायालीसं वासाइं सामन्नपरियायं पाउणित्ता × × × सिद्धे × × × सव्वदुक्खप्पहीणे।

—कप्प सू १४६

(घ) समणे भगवं महावीरे बायालीसं वासाइं साहियाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

—सम० सम ४२। सु १। पृ० ८८४

श्रमण भगवान् महावीर बयालीस-साधिक बयालीस वर्षों की श्रमण-पर्याय का पालन कर परिनिर्वाण प्राप्त किया।

.७८ १ परिनिर्वाण के पूर्व प्रतिमा योग का ग्रहण—

(क) एतैर्द्वादशसंख्यातैर्गणैर्भक्तिभरोत्कटैः।
संपरीतो जगन्नाथस्ततो हि विहरन् शनैः ॥२१७॥
नानादेशपुरग्रामान् बोधयन् भव्यभाक्तिकान्।
बहुधर्मोपदेशं कुर्वन्मोक्षपथे स्थिरान् ॥ २१८॥
निर्धूयाज्ञानकुध्वान्तं प्रकाश्याध्वानमूर्जितम्।
मुक्तेर्वचोंऽशुभिर्देव आजगाम क्रमान्महान् ॥२१९॥
सचम्पानगरोद्यानं फलपुष्पादिशोभितम्।
विहृत्य षड्दिनोनानि त्रिंशद्वर्षाणि तीर्थराट् ॥२२०॥
तत्र योगं निरुध्यासौ दिव्यभाषां च निःक्रियः।
मुक्तयेऽघातिहन्तारं प्रतिमायोगमाददौ ॥२२१॥
तत आदेयनामाथ मनुष्यगतिसंज्ञकः।
ततो नरगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यसमाह्वयः ॥२२६॥

पञ्चाक्षजातिमर्त्यायुःपर्याप्तित्रसबादराः ।
सुभगाख्यो यशःकीर्तिः सातोच्चैर्गोत्रसंज्ञकौ ॥२३०॥
तीर्थकृन्नाम तीर्थेश एतास्त्रयोदशप्रमाः ।
प्रकृतीस्तेन शुक्लेन तस्यान्त्यसमयेऽप्यहन् ॥२३१॥

—वीरवर्धच० अधि १९

भक्तिभाव से व्याप्त बारह गणों से वेष्टित जगत के नाथ श्री वर्धमान तीर्थंकरदेव तत्पश्चात् धीरे-धीरे विहार करते, नानादेश-पुर-ग्रामवासी जनों को सबोधते, धर्मोपदेश से मोक्ष कार्य में स्थिर करते हुए तथा अपनी वचन-किरणों से अज्ञानान्धकार का नाश कर और उत्तम मार्ग का प्रकाश कर छह दिन कम तीस वर्ष तक विहार करके क्रम से फल-पुष्पादि शोभित चम्पानगरी के उद्यान मे आये। वहाँ पर दिव्य-ध्वनि और योग को रोक कर निष्क्रिय हो उन्होंने मुक्ति-प्राप्ति के लिए अघाति कर्मों का हनन करने वाला प्रतिमा योग ग्रहण किया।

तत्पश्चात् आदेयनाम, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रियजाति, मनुष्यायु, पर्याप्तिनाम, त्रस, बादरनाम, सुभग, यशःकीर्ति, सातावेदनीय, उच्च गोत्र और तीर्थंकरनाम कर्म—इन तेरह प्रकृतियों को वर्धमान तीर्थेश्वर ने उसी शुक्लध्यान के द्वारा अयोगी केवली गुणस्थान के अन्तिम समय में क्षय कर दिया।

·७५·२ कर्मों के क्षय से परिनिर्वाण—

(क) अणुत्तरग्गं परमं महेसी, असेसकम्मं स विसोहइत्ता।
सिद्धिं गतिं साइमणंतपत्ते, नाणेण सीलेण य दंसणेण॥

—सूय० श्रु १। अ ६। गा १७। पृ० ३०१

टीका—तथाऽसौ भगवान् शैलेश्यवस्थापादितशुक्लध्यानचतुर्थभेदान्तरं साद्यपर्यवसानां सिद्धिगतिं पंचमीं प्राप्तः × × ×। असावत्यन्तोग्रतपोविशेषनिष्टप्तदेहत्वाद् अशेषं कर्म—ज्ञानावरणादिकं 'विशोध्य' अपनीय च विशिष्टेन ज्ञानेन दर्शनेन शीलेन च क्षायिकेण सिद्धगतिं प्राप्त इति मीलनीयम्।

(ख) णिहयाघाइचउक्कु अदेहउ।
वसुसमगुणसरीरुणिण्णेहउ॥

—महापु० संधि १०२, कड १२

महर्षि भगवान् महावीर ज्ञान, दर्शन और चारित्र के प्रभाव से समस्त कर्मों को क्षय कर सिद्धगति को प्राप्त किया।

·७६ परिनिर्वाण के समय देवागमन

(क) जं रयणि च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे सा णं रयणी बहूहिं देवेहिं य देवीहि य ओवयमाणेहि य उप्पयमाणेहि य उज्जोवियायावि होत्था ॥१२४॥

(ख) जं रयणि च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे सा णं रयणी बहूहिं देवेहिं य देवीहि य ओवयमाणेहि य उप्पयमाणेहि य उप्पिंजलगमाणभूया कहकहगभूया या वि होत्था ॥१२५॥

—कप्प० सू १२४-१२५ । सू ४२

जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर काल धर्म को प्राप्त हुए यावत् सर्व दुःखों का अन्त किया ; उस रात्रि में बहुत से देवी-देवियों के नीचे आने से तथा ऊपर जाने से खूब उद्योत-उद्योत हुआ ।

जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर ने सर्व दुःखों का अन्त किया—उस समय बहुत देवी-देवियों का ऊपर-नीचे आगमन या गमन हुआ जिससे कोलाहल और बहुत घोंघाट हुआ ।

·७५·२ श्रमण भगवान् महावीर और युगान्तर-कृत भूमिका – पर्यायांत-कृत भूमिका

(क) समणस्स णं भगवओ महावीरस्स दुविहा अंतकडभूमी होत्था, तंजहा—जुगंतकडभूमी य परियायंतकडभूमी य । जाव तच्चाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकडभूमी, चउवासपरियाए अंतमकासी ।

—कप्प० सू १४५ । पृ० ४५

(ख) समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव तच्चाओ पुरिसजुगाओ जुगंतकरभूमी ।

—ठाण० स्था ३ । उ ४ । सू ५३१ । पृ०५६२

श्रमण भगवान् महावीर के समय में मोक्ष गमन करने वाले लोगों की दो प्रकार की भूमिका थी । यथा—युगान्तरकृत-भूमिका और पर्यायान्तकृत भूमिका । भगवान के तीसरे पुरुष तक युगान्तरकृत भूमिका थी । अर्थात् पहले भगवान मोक्ष गये, इसके बाद कोई शिष्य (सुधर्मा स्वामी) मोक्ष गये । इसके पश्चात् प्रशिष्य—अर्थात् जंबूस्वामी मोक्ष गये । यह युगान्तरकृत भूमिका जंबूस्वामी तक रही ।

भगवान के केवली होने के चार वर्ष व्यतीत होने के बाद कोई एक मोक्ष गया । अर्थात् भगवान के केवली होने के चार वर्ष पश्चात् मुक्ति का मार्ग चालू हुआ वह जंबू स्वामी तक रहा ।

नोट—पर्यायान्तकृत भूमिका – भगवान के केवली होने के बाद जो लोग मोक्ष प्राप्त करते हैं —उनकी मोक्ष परत्वे पर्यायान्तकृत भूमिका कही जाती है ।

(ग) जादो सिद्धो वीरो तद्दिवसे गोदमो परमणाणी ।
जादो तस्सिं सिद्धे सुधम्मसामी तदो जादो ॥
तम्मि कदकम्मणासे जंबूसामित्ति केवली जादो ।
तत्थवि सिद्धिपवण्णे केवलिणो णत्थि अणुबद्धा ॥

—तिलोप० अधि ४ । गा १४७६-७७

जिस दिन भगवान महावीर सिद्ध हुए उस दिन गौतम गणधर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। पुनः गौतम के सिद्ध होने पर उनके पश्चात् सुधम स्वामी केवली हुए ।

सुधर्म स्वामी के कर्म नाश करने अर्थात् मुक्त होने पर जम्बूस्वामी केवली हुए । पश्चात् जम्बू स्वामी के सिद्धि को प्राप्त होने पर फिर कोई अनुबद्ध केवली नहीं हुए ।

(घ) विमलजिणे चालीसं णवसु तदो चउविवज्जिदा ।
तिण्णि च्चिय पासजिणे तिण्णिच्चिय वड्ढमाणम्मि ।

—तिलोप० अधि ४ । गा १२१३

विमलनाथ भगवान के चालीस, फिर इसके आगे नौ तीर्थङ्करों के क्रम से उत्तरोत्तर चार-चार हीन, पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के तीन और वर्धमान स्वामी के भी तीन ही अनुबद्ध केवली हुए हैं ।

८०/८६ वर्धमान संबंधी फूटकर पाठ

·८१ वर्धमान का शरीर

(क) निःस्वेदत्वादिनिर्दिष्टः दशात्मजगुणोदयः ।
मदसप्तकनिर्मुक्तः सर्वचेष्टाविराजितः ॥

—उत्तपु० पर्व ७४ । श्लो २७१

पसीना नहीं आना आदि दस गुण उनके जन्म से ही थे, वे सात मदों से रहित थे और सब तरह की चेष्टाओं से सुशोभित थे ।

(ख) मदखेदादयो जातु नास्य गात्रे पदंव्यधुः ।
महारागादिका दोषा आतंकाश्च त्रिदोषजाः ॥

—वीरवर्धच० अधि १० । श्लो ६१

उनके शरीर में मद, खेद आदि विकार, रागादि दोष त्रिदोषजनित रागादि ने कभी स्थान नहीं पाया था ।

(ग) रुहिरं खीरसवण्णं मलसेयविवज्जियं सुरभिगंधं।
देहं सलक्खणगुणं, रविप्पभं चेव अइविमलं॥

—पउम० अधि २। श्लो ११

उनका रुधिर दूध के समान श्वेत था। उनकी देह मैल और पसीने से रहित थी। उसमें से सुगन्ध आ रही थी। सामुद्रिक शास्त्र में वर्णित सुन्दर लक्षणों से वह युक्त थी। तथा अत्यन्त निर्मल थी।

(घ) स्वेददूरं वपुः कान्तं मलनीहारवर्जितम्।
क्षीराच्छशोणितं रम्यमादिसंस्थानभूषितम्॥

—वीरवर्धं० अधि १०। श्लो १७

भगवान का शरीर अतिशय सुन्दर, पसीना रहित, मल-मूत्रादि से रहित, दूध के समान उज्ज्वल रक्त वाला और सुगन्धित था। वे आदि समचतुरस्रसंस्थान से भूषित थे।

(च) नयणा फन्दणरहिया, नहकेसाऽवट्ठिया य निद्धा य।

—पउम० अधि २। श्लो ३२ पूर्वार्धं

उनकी आँखें स्पन्दन से रहित थीं। उनके नाखून और बाल अवस्थित तथा स्निग्ध थे।

(छ) जगत्त्रयस्थितैर्दिव्यैर्दीप्रैः पूतैश्चपुद्गलैः।
सुगन्धैर्निर्मितः कायो विभोः सद्विधिनासमः॥

— वीरवर्धं० अधि १०। श्लो ११

तीन लोक में स्थित, दिव्य, कान्तियुक्त, पवित्र, सुगन्धित पुद्गल परमाणुओं से ही विधाता ने प्रभु का अनुपम शरीर रचा था।

'८१'१ सर्वज्ञता काल की अपेक्षा शरीर का विवेचन

तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं महावीरे वियट्टभोई यावि होत्था, तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स वियट्टभोइस्स सरीरं ओरालं सिंगारं कल्लाणं सिवं धण्णं मंगल्लं अणलंकियविभूसियं लक्खणवंजणगुणोववेयं सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणे चिट्ठइ।

—भग० श २। उ १ सू ४१, ४२

श्रमण भगवान महावीर व्यावृत्तभोजी थे। वे व्यावृत्तभोजी श्रमण भगवान महावीर उदार, कल्याण, रूप, शिवरूप, धन्य, मंगलरूप, अलंकार बिना भी शोभित, सर्व लक्षण व्यंजन और गुणों से युक्त -ऐसा शरीर अत्यन्त शोभायमान था।

·८२ वर्धमान का संस्थान

(क) (समणे भगवं महावीरे) समचउरंस-संठाण- संठिते ××× ।

—ठाण० स्था ७ । सू ७१

राय० सू ८, ओव० सू १५

(ख) रम्यमादिसंस्थानभूषितम् ।

—वीरवर्धच० अधि १० । श्लो १७ । उत्तरार्ध

(ग) सत्त-हत्थूस्सेहे सम-चउरंस-संठाण-संठिए वज्ज- रिसह-णाराय संघयणे ××× ।

—ओव० सू १६

(घ) ×××समचउरंससंठाण ××× वड्ढमाणभडारएण ××× ।

— कसापा० भाग १ गा १ । टीका । पृ० ७२

भगवान का शरीर का संस्थान—समचतुरस्र संस्थान था ।

·८३ वर्धमान का संहनन

(क) समणे भगवं महावीरे वज्जरिसभणारायसंघयणे ××× ।

—ठाण० स्था ७ । सू ७१

--राय० सू ८, ओव० सू १५

(ख) आद्यं संहननं तस्य वज्रास्थिघटितं ह्यभूत् ।
वज्रास्थिवेष्टितं वज्रनाराचैर्भिन्नमूर्जितम् ॥

—वीरवर्धच० अधि १० । श्लो ६२

श्रमण भगवान महावीर का वज्र ऋषभनाराच संहनन था ।

(ग) वज्जरिसहसंघडण ××× वड्ढमाणभडारएण ×××

—कसापा० भाग १ । गा १ । टीका पृ० ७२

·८४ शरीर का वर्ण

(क) पउमाभवासुपुज्जो रत्ता ससिपुप्फदंत ससिगोरा ।
सुव्वयनेमी काला पासो मल्ली पियंगाभा ॥
वरकवियकणयगोरा सोलस तित्थंकरा मुणेयव्वा ।
एसो वन्नविभागो चउवीसाए जिणिंदाणं ॥

- आव० हा० गा ३७६, ३७७

— प्रवसा० द्वार ३०, गा ३८१, ३८२

पद्म प्रभु स्वामी और वासुपूज्य स्वामी रक्तवर्ण के थे। चन्द्रप्रभु स्वामी और सुविधनाथ चन्द्रमा के समान गौर वर्ण के थे। मुनिसुव्रत और नेमिनाथ कृष्णवर्ण के थे तथा पार्श्वनाथ और मल्लिनाथ नील वर्ण के थे। शेष तीर्थंकरों का वर्ण तप्त सोने के समान था। अतः वर्धमान के शरीर का वर्ण तप्त सोने—सौवर्ण वर्ण था।

(ख) चंदपहपुप्फदंता कुंदेंदुतुसारहारसंकासा।
हरिदा सुपासपासा सुव्वयणेमी सणीलवण्णाओ।
विद्दुमसमाणदेहा पउमप्पहवासुपुज्जजिणणाहा।
सेसाण जिणवराणं काया चामीयरायारा॥

—तिलोप० अधि ४। गा ५८८, ५९

(ग) कनत्काञ्चनवर्णाभदिव्यदेहधरः प्रभु।

—वीरवर्धच० अधि १०। श्लो २२ पूर्वार्ध

भगवान चन्द्रप्रभु और पुष्पदंत कुन्दपुष्प, चन्द्रमा, बर्फ और हार के सदृश धवल; सुपार्श्व और पार्श्वनाथ हरितवर्ण, मुनिसुव्रत और नेमिनाथ नीलवर्ण, पद्मप्रभु एवं वासुपूज्य जिनेन्द्र का शरीर मूंगे के समान रक्तवर्ण तथा शेष तीर्थंकरों के शरीर सुवर्ण के सदृश पीत थे।

वीर प्रभु तपाये हुए सोने के वर्ण जैसी आभा वाले दिव्य देह के धारक थे।

·८५ भगवान की अवगाहना

(क) समणे भगवं महावीरे सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

—सम० सम ७। सु ३। पृ० ८३१

टीका—रत्निः—विततांगुलिर्हस्त इति, ऊर्द्ध्वोच्चत्वेन न तिर्यगुच्चत्वेनेति होत्था बभूवेति।

(ख) (समणे भगवं महावीरे) सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं हुत्था।

—ठाण० स्था ७। सु ७१। पृ० ७४७

(ग) सप्तारत्निमितोत्सेधः सर्वलक्षणविभूषितः॥ २८०॥

— उत्तपु० पर्व ७४

(घ) × × × सत्त रयणिओ वीरो × × ×।

— आव० नि गा १८०। पूर्वार्ध

(ङ) समणे भगवं महावीरे × × × सत्तहत्थूस्सेहे × × ×।

—वाय० सु ८

श्रमण भगवान महावीर सात हाथ ऊँचे थे। सर्व लक्षणों से विभूषित थे।

(छ) णव हत्था पासजिणे सत्तहत्था वड्ढमाणणामम्मि × × ×।

पा ह ९। वीर ह ७

—तिलोप० अधि ४। गा ५८७

पार्श्वनाथ भगवान के शरीर का उत्सेध नौ हाथ और वर्धमान स्वामी के शरीर का उत्सेध सात हाथ प्रमाण था।

(ज) नव हत्थपमाणो पाससामिओ सत्तहत्थ जिणवीरो।
उस्सेहअंगुलेणं सरीरपमाणं जिणवराणं॥

—प्रवसा० द्वार २८। गा ३७८

(झ) वीरस्स सत्त रयणी उच्चत्तं भणियमाउअं अहुणा।

—प्रवसा० गा ४१८। पूर्वार्ध

वीर भगवान के शरीर का प्रमाण सात हाथ था। यह प्रमाण—उत्सेधांगुल से जानना चाहिए। जिनेश्वर देव ने शरीर का मान उत्सेधांगुल से कहा है।

·८६ भगवान का आयुष्य

(क) वाससयं पासस्स य वासा बावत्तरिं च वीरस्स।

—प्रवसा० गा ४२१। पूर्वार्ध

(ख) × × ×। तत्थ तीसवासाणि कुमारकालो। बारसवासाणि छदुमत्थ-कालो। तीसं वस्साणि केवलिकालो। एदेसिं तिण्हपि कालाणं समासो बाहत्तरि-वासाणि।

—कसापा० । गा० १ टीका, भाग १। पृ० ७४-७५

(ग) वीरजिणिंदस्स वस्स ७२।

—तिलोप० अधि ४। गा ५८२

(घ) चउरासीई बिसत्तरि यसट्ठी पण्णासमेवलक्खाइं
× × ×।
तीसा य दस य एगं सयं च बावत्तरी चेव॥

—आव० नि गा ३२५, ३२७

मलय टीका—भगवत आदितीर्थकरस्य सर्वायुरचतुरशीतिः पूर्वाणां लक्षाणि × × × वर्द्धमान स्वामिनो द्वासप्ततिर्वर्षाणि।

(च) द्वासप्तत्यब्दजीवी स धर्ममूर्तिरिवाबभौ।

— वीरवर्धच० अधि १०। श्लो २२। उत्तरार्ध

भगवान वर्धमान बहत्तर वर्ष की आयु के धारक थे। अर्थात् भगवान की आयु बहत्तर वर्ष की थी।

भगवान महावीर का आयुष्य बहत्तर वर्ष का था। जिसमे तीस वर्ष कुमारकाल, बारह वर्ष छद्मस्थ काल, तीस वर्ष केवलिकाल। इस प्रकार तीनों काल का जोड़ बहत्तर वर्ष होता है।

(च) द्वासप्ततिसमाः किंचिदूनास्तस्यायुषःस्थितिः ॥

उत्तपु० पर्व ७४। श्लो २८०

कुछ कम बहत्तर वर्ष की वर्धमान की आयु थी।

·८७ वर्धमान के अंगुल का प्रमाण

(क) से किं तं अंगुले ? २ तिविहे पण्णत्ते। तंजहा-आयंगुले १ उस्सेहंगुले २ पमाणंगुले ३। ×××। से किं तं उस्सेहंगुले ? २ अणेगविहे पण्णत्ते। तंजहा— ×××। एएणं उस्सेहंगुलेणं किं पओयणं ? एसणं उस्सेहंगुलेणं-णेरइय-तिरिक्खण-जोणिय-मणूस—देवाणं सरीरोगाहणाओ मविज्जंति। ××× से किं त पमाणं-गुले ? २ एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अट्ठसोवणिए कागणिरयणे छत्तले दुवालसंसिए अट्ठकण्णिए अहिगरणिसंठाणसंठिए पण्णत्ते, तस्सणं एगमेगा कोडी उस्सेहंगुलविक्खंभा, तं समणस्स भगवओ महावीरस्स अद्धंगुलं, तं सहस्स गुणं पमाणंगुलं भवति।

—अणुओ० सू ३३१, ३३६, ३४६, ३५८

(ख) उस्सेहंगुलमेगं हवइ पमाणंगुलं सहस्सगुणं।
उस्सेहंगुलदुगणं वीरस्सायंगुलं भणियं ॥

—प्रवसा० द्वार २५४। गा ९६

टीका— ××× वर्धमानस्वामी हि भगवान् आदेशान्तरादात्मांगुलेन चतुरसीतिरंगुलानि, उस्सेधांगुलओ सप्तहस्तमानत्वादष्टाधिकं शतं तथा चाहयो गद्धारचूर्णि –

"वीरो आएसंतरओ आयगंलेण चुलसीइअंगुलमुव्विद्धो उस्सेहंगुलओ सयमट्ठसट्ठ हवइ।" इति, ततो द्वे उस्सेधांगुले वीरस्यैकयात्मांगुलयंदति।

(ग) ××× जतो वीरो आदेसंतरतो आयंगुलेण चुलसीतिमंगुल मुव्विद्धो, उस्सेहं पुणसत्तसट्ठं सयं भवति, अतो दो उस्सेहंगुला वीरस्स आयंगुलओ, एवं वीरस्सायंगुलाओ अद्धं उस्सेहंगुलं दिट्ठं। ×××।

—अणुओ० हारि० टीका—पृ० ८१

अंगुल के तीन भेद होते है—यथा (१) आत्मांगुल (२) उत्सेधांगुल और (३) प्रमाणांगुल। शरीरावगाहना का माप उत्सेधांगुल से होता है। एक उत्सेधांगुल बराबर भगवान महावीर की अर्द्धांगुल। भगवान महावीर की उत्सेधांगुल से सात हाथ की अवगाहना थी। परन्तु स्वय के हाथ से साढ़े तीन हाथ के थे। भगवान महावीर को अर्धआंगुल किंवा एक उत्सेधांगुल से प्रमाणांगुल हजार गुना बड़ा होता है।

·८८ लक्षण-चिह्न

(क) रिसहादीणं चिण्हं गोवदिगयतुरगवाणरा कोकं।
पउमं णंदावत्तं अद्धससी मयरसोत्तीया।
गंडं महिसवराहासाहीवज्जाणि हरिणछगला य
तगरकुसुमा य कलसा कुम्मुप्पल संखअहिसिंहा।
—तिलोय० अधि ४। गा ६०४-५

(ख) वसह १ गय २ तुरय ३ वानर ४ कुंचू ५ कमलं च ६ सत्थिओ ७ चंदो ८।
मयर ९ सिरिवच्छ १० गंडय ११ महिस १२ वराहो १३ यसेगो १४ य॥३७९॥
वज्ज १५ हरिणो १६ छगलो १७ नंदोवत्तो १८ य कलस १९ कुम्मो २० य।
नीलुप्पल २१ संख २२ फणी २३ सीहो २४ य जिणाण चिन्धाइं॥३८०॥
—प्रवसा० द्वार २६

टीका—× × × जिनानां—नाभेयादीनां चिह्नानि-लांच्छनानि क्रमेण ज्ञातव्यानीति।

ऋषभदेव का लांछन-चिह्न वृषभ था यावत् वर्धमान स्वामी का लांछन-सिंह था।

(ग) भर्तुर्दिव्याङ्गमाश्रित्य चामूनि लक्षणान्यपि।
बभूर्यथात्र धर्माद्या गुणा आश्रित्य धर्मिणम्॥६५॥
श्रीवृक्षः शंख एवाब्जस्वस्तिकांकुशतोरणम्।
सच्चामरं सितच्छत्रं केतनं सिंहविष्टरम्॥६६॥
मत्स्यौ कुम्भौ महाब्धिश्च कूर्मश्चक्रं सरोवरम्।
विमानं भवनं नागो मर्त्यनार्यौ महान् हरिः॥६७॥
बाणबाणासने गंगा देवराजोऽचलाधिपः।
गोपुरं पुरमिन्द्वर्कौ जात्यश्वस्तालवृन्तकम्॥६८॥
मृदंगोऽहिस्रजो वीणावेणुः पट्टांशुकापणौ।
दीप्राणि कुंडलादीनि विचित्राभरणानि च॥६९॥
उद्यानं फलितं क्षेत्रं सुपक्वकलमान्वितम्।
वज्रं रत्नं महाद्वीपो धरा लक्ष्मी सुभारती॥७०॥

हिरण्यं कल्पवल्ली हि चूडारत्नं महानिधिः ।
सुरभिः सौरभेयोऽपि जंबूवृक्षश्च पक्षिराट् ॥७१॥

सिद्धार्थपादपः सौधमुडूनि तारकाग्रहाः ।
प्रातिहार्याण्यहार्याणि चान्यानि मंगलान्यपि ॥७२॥

इत्याद्यैर्लक्षणैर्दिव्यैरष्टोत्तरशतप्रमैः ।
व्यञ्जनैः सकलैः सारैः परैर्नवशतान्तिकैः ॥७३॥

विचित्राभरणैः स्रग्भिर्निसर्गसुन्दरं विभोः ।
दिव्यमौदारिकं देहं बभौ स्यक्तौपमंभुवि ॥७४॥

—वीरवर्धच० अधि १० । श्लो ६५ से ७४

वीर प्रभु के दिव्य शरीर को पाकर ये आगे कहे जाने वाले लक्षण (चिह्न) ऐसे शोभायमान होते थे, जैसे कि धर्मात्मा को पाकर धर्मादि गुण शोभित होते हैं । वे लक्षण ये हैं—श्रीवृक्ष, शंख, कमल, स्वस्तिक, अंकुश, तोरण, चामर, श्वेतछत्र, ध्वजा, सिंहासन, मत्स्य युगल, कलश युगल, समुद्र, कच्छप, चक्र, सरोवर, देवविमान, नागभवन, स्त्री-पुरुष-युगल, महासिंह, धनुष, बाण, गंगा, इन्द्र, सुमेरु, गोपुर, नगर, चन्द्र, सूर्य, उत्तम जाति का अश्व, तालवृन्त, मृदंग, सर्प, माला, वीणा, बाँसुरी, रेशमी वस्त्र, दुकान, दीप्ति युक्त कुण्डल, विचित्र आभूषण, फलित उद्यान, सुपक्व धान्ययुक्त क्षेत्र, वज्र, रत्न, महाद्वीप, पृथ्वी, लक्ष्मी, सरस्वती, सुवर्ण, कल्पलता, चूडामणि रत्न, महानिधि, कामधेनु, उत्तम वृषभ, जम्बूवृक्ष, पक्षिराज (गरुड़) सिद्धार्थ (सर्षप), प्रासाद, नक्षत्र, तारिका, गृह, प्रातिहार्य इत्यादि दिव्य एक सौ आठ लक्षणों से और नौ सौ उत्तम व्यजनों से तथा शरीरधारण किये गये अनेक प्रकार के आभूषणों से और मालाओं से स्वभावतः सुन्दर भगवान का दिव्य शरीर अत्यन्त शोभायुक्त था, जिसकी संसार में कोई उपमा नहीं है ।

'८६ तीर्थोत्पत्ति

तित्थं चाउव्वण्णो, संघो सो पढमए समोसरणे ।
उप्पण्णो उ जिणाणं, वीरजिणिंदस्स बीयंमि ।

- आव० नि गा २८७

ऋषभदेव आदि तेइस तीर्थङ्करों के समय प्रथम समवसरण से ही तीर्थ (प्रवचन) एवं चतुर्विध संघ उत्पन्न हुए । श्री वीर भगवान के दूसरे समवसरण में तीर्थ व संघ की स्थापना हुई ।

·८६·१ भगवान महावीर और चैत्यवृक्ष

एतेसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं चेइयरुक्खा होत्था, तंजहा—×××।

साल य वद्धमाणस्स, चेइयरुक्खा जिणवराणं।
बत्तीसइं धणूइं, चेइयरुक्खो य वद्धमाणस्स॥
णिच्चोउगो असोगो, ओच्छण्णो सालरुक्खेणं॥

—सम०। पइसम०। सु २११। पृ० ६४५

ऋषभदेव आदि चौबीस ही तीर्थङ्करो के चौबीस चैत्यवृक्ष (जिस वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त किया) थे। वर्धमान के चैत्यवृक्ष—शालवृक्ष बत्तीस धनुष प्रमाण था।

·९०/९६ निल

·९१ वर्धमान की सर्वज्ञता के प्रमाण

(क) यः सर्वज्ञः आप्तो वा स ज्योतिर्ज्ञानादिकमुपदिष्टवान् तद्यथा ऋषभ-वर्द्धमानादिरिति।

—न्यायबिन्दु, अ ३। पृ ९८

आचार्य धर्मकीर्ति ने तीर्थंकर ऋषभ और वर्धमान की सर्वज्ञता को स्वीकार किया है।

(ख) यस्माल्लीनं जगत्सर्वं तस्मिल्लिङ्गो महात्मनः।
लयनाल्लिङ्गमित्येव प्रवदन्ति मनीषिणः॥
तथाभूतं वर्द्धमान दृष्ट्वा तेऽपि सूरषया।
ब्रह्मेन्द्रविष्णुवासु वाग्निर्लोकपालाः सपन्नगा।

—स्कन्द महापुराण, ६,२९-३१

तथा केवलं ज्ञानमाश्रित्य ये यान्ति परमम् पदम्।

—स्कन्द महापुराण १८, ६१

वर्द्धमान को ब्रह्मेन्द्र केवल ज्ञानी माना है।

(ग) देव बर्हिर्वर्धमान सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम्।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वेदेवा आदित्यायज्ञियासः॥१४॥

—ऋग्वेद मंडल २, अ० १ सूक्त ३

अर्थात्—हे देवो के देव वर्द्धमान! आप महावीर है, व्यापक हैं। हम सम्पदाओं की प्राप्ति के लिए इस वेदी पर घृत से आपका आह्वान करते है। इसीलिये सब देवता इस यज्ञ मे आवें और प्रसन्न होवें।

(घ) आतिथ्यं रूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः ।
रूपमुपसदामेतिस्त्रो रात्रीः सुरासुताः ॥ १४ ॥

—यजुर्वेद अ० १९। मंत्र १४

अर्थात्—अतिथि स्वरूप पुज्य मासोपवासी नग्न स्वरूप महावीर की उपासना करो जिससे संशय, विपर्यय, अनध्यवसायरूप तीन अज्ञान और धनमद, शरीर मद और विद्यामद की उत्पत्ति नहीं होती है ।

(च) निगंठो, आवुसो नाथपुत्तो सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी अपरिसेसं णाण दस्सणम् परिजानातिः चूरतो चमे तिट्ठतो, च सुत्तस्स जागरस्स च सततं समितं णाण दस्सणम पच्चुपट्ठितिः ।

—मज्झिमनिकाय भाग १ । पृष्ठ ९२।९३

अर्थात्—निर्ग्रंथ ज्ञातृपुत्र, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है । वे अशेष ज्ञान और दर्शन के ज्ञाता हैं । हमारे चलते, ठहरते, सोते, जागते समस्त अवस्थाओं में सदैव उनका ज्ञान और दर्शन उपस्थित रहता है ।

(छ) अयम् देव निगंठो नाटपुत्तो संघी चेव गणी च गणाचारियो च ञाता यसस्सी तित्थकरा, साधु समंतो बहु जनस्स रत्तस्सू चिर-पब्बजितो अद्धगतो वयो अनुप्पत्ता ।

—दीर्घनिकाय—पी० टी० ए० भाग १ । पृष्ठ ४८।४९

(ज) सर्वज्ञ आप्तो वा सज्योतिर्ज्ञानादिकमुपविष्टवान् यथा ऋषभ वर्ध-मानादिरिति ।

—न्याय बिन्दु, अध्याय ३

(झ) दीर्घ तपस्सी निगंठो नातपुत्तो ।

—मज्झिम नि० भाग १

अर्थात्—सर्वज्ञ आप्त—दीर्घ तपस्वी ही उपदेश दाता हो सकता है । जैसे ऋषभ और वर्द्धमान ।

·६१·२ कैवल्यावस्था में मौन

(क) षट्षष्टिदिवसान् भूयो मौनेन विहरन् विभुः ।
आजगाम जगत्ख्यातं जिनो राजगृहं पुरं ॥ ६१ ॥
आरुरोह गिरिं तत्रविपुलं विपुलश्रियं ।
प्रबोधार्थं स लोकानां भानुमानुदयं यथा ॥ ६२ ॥

—हरिव० सर्ग २ ।

केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद छयासठ दिन वर्धमान मौन रहे ।

·९२ जैनेतर ग्रन्थों में भगवान् के प्रसंग

(क) अयं देव निगंठो नातपुत्तो संघी चेव गणी च गणाचारियो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधुसमंतो बहुजनस्स रत्तस्सू चिरपब्बजितो अद्धगतो वयो अनुपत्ताति ।

—दीर्घनिकाय भाग १ । पृ० ४८।४९

(वीर निर्वाण सवत् और जैन काल गणना पृष्ठ ४ से उद्धृत)

अजात शत्रु के सम्मुख उसके अमात्य ने महावीर के सम्बन्ध मे कहा है—महाराज ! निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र सघ और गण के मालिक है। गण के आचार्य, ज्ञानी और यशस्वी तीर्थंकर है।

(ख) समणब्राह्मणा जिण्णा वुड्ढा महल्लकाअद्धगता वयोअनुप्पत्ता, थेर रत्तञ्ञ चिरपब्बजिता… ….पूरणो कस्सपो……. पे०…… निगण्ठोनाटपुत्तो,…….. ।

— सुत्तपिटके खुद्दकनिकाये, सुत्तनिपात, पालि, महावग्गो सभियसुत्त, ३-६, पृ० ३४४,५३

सभिय परिव्राजक के मन मे आया कि भगवन्त श्रमण-ब्राह्मण, जीर्ण,वृध, घडे, उतरा-अवस्था को प्राप्त, वयोतीत स्थविर, जोर्ण और चिरकाल के प्रव्रजित सघ नायक, गणनायक, गणाचार्य, प्रसिद्ध, यशस्वी, तीर्थ कर अनेक लोगों के साधु पूर्ण काश्यप…….निर्ग्रन्थ नायपुत्र को प्रश्न पूछते है।

(ग) एकं समयं आयस्मा आनंदो वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं । अथ खो अभयो च लिच्छवि पण्डितकुमारको च लिच्छवि येनायस्मा आनंदो तेनुपसंकमिसु उपसंकमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं अभिवादेत्वा एकामन्तं निसीदिसु । एकमन्तं निसिन्नो खो अभयो लिच्छवि आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच-निगण्ठो, भंते ! नाटपुत्तो सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी अपरिसेसं ञाणदस्सनं पटिजानाति ।

—सुत्तपिटके, अंगुत्तरनिकाय पालि, तिकनिपात, आनन्दवग्गो, निगण्ठसुत्त ३-८-४ पृ० २०५

एक समय आयुष्मान् आनन्द वैशाली के महावन मे कूटागारशाला मे विहार करते थे। उस समय लिच्छवी व पंडितकुमार लिच्छवी ने आयुष्मान् आनन्द से कहा—भते ! ज्ञातिपुत्र निर्ग्रन्थ का कहना है कि वे सर्वज्ञ हैं, और उन्हें असीम ज्ञान-दर्शन प्राप्त है।

(घ) एकं समयं भगवा नालन्दायं विहरति पावारिकम्बवने । अथ खो असिबन्धकपुत्तो गामणि निगण्ठसावको येन भगवा तेनुपसंकमि ; उपसंकमित्वा एकमन्तं

निसीदि। एकमन्तं निसीन्नं खो असिबंधकपुत्तं गामणिं, भगवा एतद्वोच 'कथं तु खो, गामणि, निगण्ठो नाटपुत्तो सावकानं धम्मं देसेती ति॰।

—सुत्तपिटके संयुत्तनिकाय पालि, सलायतन वग्गो, गामणिसंयुत्तं

—सखधम्मसुत्तं, ४२-८-८- पृ० २४१।८५

एक समय भगवान गौतम नालंदा में प्रावारिक आम्रवन में विहार करते थे। निगण्ठों शिष्य असिबन्धक पुत्र ग्रामणी भगवान के पास आया। एक ओर बैठ गया। भगवान ने उससे पूछा—ग्रामणी। निगठ नातपुत्र अपने श्रावकों (शिष्यों) को क्या उपदेश करता है।

(च) एवं मे सुतं! एकं समयं भगवा नालन्दायं विहरति पावारिकम्बवने। तेन खो पन समयेन निगण्ठो नातपुत्तो नालन्दायं पटिवसति महतिया निगण्ठ-परिसाय सद्धिं। × × ×।

—सुत्तपिटके, मज्झिमनिकाय पालि, मज्झिम पण्णासकं, उपालि सुत्तं, १-१से २१, पृ० ४१ से ६०

एक समय भगवान बुद्ध नालन्दा मे प्रावारिक आम्रवन मे विहार करते थे। उस समय निगण्ठनातपुत्र भी निगठों (जैन साधुओं) की महती परिषद् के साथ नालंदा में विहार कर रहे थे।

(छ) तेन खो पन समयेन अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता लिच्छवी सन्थागारे सन्नि-सिन्ना सन्निपतिता अनेकपरियायेन बुद्धस्स वण्णंभासन्ति, धम्मस्स वण्णं भासन्ति, संघस्स वण्णं भासन्ति। × × × अथ खो सीहो सेनापति येन निगण्ठो नाटपुत्तो तेनुपसंकमि, उपसंकमित्वा निगण्ठं नाटपुत्तं एतद्वोच—इच्छामहं, भंते, समणं गोतमं दस्सनाय उपसंकमितुं ति।

—विनयपिटकं, महावग्गं पाली, ६-११। पृ० २४८

सिंह सेनापति निगंठ नाथपुत्र के पास आया और उन्हें अपने संकल्प से सूचित किया। निगण्ठ नाथ पुत्र ने कहा—"सिंह! क्रियावादी होते हुए भी तू अक्रियावादी श्रमण गौतम के दर्शनार्थ जायेगा। वह तो श्रावकों को अक्रियावाद का ही उपदेश देता है।

(ज) एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागार सालायं। तेन खो पन समयेन सम्बहुला अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता लिच्छवी ०—

एकमन्तं निसिन्नं खो सीहं सेनापति भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा सम्पहंसेत्वा समुत्तेजेत्वा उट्ठायासना पक्कामीति।

एक बार भगवान वैशाली से महावन की कूटागारशाला में विहार करते थे। उस समय प्रतिष्ठित लिच्छवी संस्थागार में एकत्र हो बुद्धधर्म और संघ का गुणोत्कीर्तन कर रहे थे।

—सुत्तपिटके, अंगुत्तर निकाय पालि, अट्ठकनिपात, महावग्गो, सीहसुत्त,८-२-२
पृ० २९३ से ३००

.६३ भगवान् महावीर के तीर्थंकर गोत्र के बंध के स्थान (तीर्थंकर प्रकृति का बंध कब हुआ)

(क) अथ जम्बूद्वीपे द्वीपे क्षेत्रे भरतसंज्ञके।
छत्राकारपुरं रम्यमस्ति धर्मसुखाकरम् ॥१३४॥
तस्य स्वामी शुभादासीन्नन्दिवर्धनभूपतिः।
राज्ञी वीरमती तस्य बभूव पुण्यशालिनी ॥१३५॥
च्युत्वा स निर्जरो नाकात्तयोः सूनुरजायत।
नन्दनामा सुरूपाद्यैर्जगदानन्दकारकः ॥१३६॥

—वीरवर्ध० अधि १

(ख) इत्यादि चिन्तनादाप्य वैराग्यं द्विगुणं नृपः।
तमेव योगिनं कृत्वा हृत्वा द्विविधोपधीन् ॥२८॥
अनंतजन्मसंतानघातकं मुनिसंयमम्।
आददे परया शुद्ध्या सिद्धये सिद्धिकारणम् ॥२९॥
गुरूपदेशपोतेनाश्वेकादशाङ्गवारिधेः।
पारं जगाम नंदोऽसौ निःप्रमादेन सद्धिया ॥३०॥

× × ×

त्रिशुद्ध्याभावयन्नित्यं षोडशेमाः सुभावनाः।
तद्गुणार्पितचित्तोऽसौ तीर्थनाथविभूतिदाः ॥६१॥
आदौ दृष्टिविशुद्ध्यर्थं निशङ्कादीन् गुणान् परान्।
स्वीचक्रेऽष्टौ मलान् हृत्वा सद्दृष्टेः पंचविंशतिम् ॥६२॥

× × ×

अमूंस्तीर्थेशसद्भूतिकरान् षोडशकारणान्।
शुद्धैर्मनोवचःकायैर्भावयित्वा स प्रत्यहम् ॥६७॥
तत्फलेन बबन्धाशु तीर्थकृन्नामकर्म हि।
अनन्तमहिमोपेतं त्रिजगत्क्षोभकारणम् ॥६८॥

प्रकम्पन्ते सुरेशां विष्टराणि यत्प्रभावतः।
मुक्तिश्रीः स्वयमागत्य दत्ते चालिङ्गनं सताम् ॥६६॥

—वीरव० अधि० ६

इस जम्बू नामक द्वीप के भरत नाम क्षेत्र मे छत्र के आकार वाला, धर्म और सुख का भण्डार एक रमणीक छत्रपुर नाम का नगर है। पुण्योदय से उसका स्वामी नंदीवर्धन नामका राजा था। उसकी पुण्यशालीनी वीरमती नामकी रानी थी। उन दोनों के वह सहस्रार देव (वर्धमान का जीव) स्वर्ग से च्युत होकर नंद नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह अपने सुन्दर रूप के द्वारा जगत् को आनन्द करने वाला था।

एक बार भव्यजनों से घिरा हुआ वह बुद्धिमान नन्द राजा धर्म प्राप्ति के निमित्त से प्रोष्ठिल नामक योगिराज की वंदना के लिए भक्ति के साथ गया। फल चिंतवन से दुगने वैराग्य को प्राप्त होकर राजा ने उन्हीं योगिराज को गुरु बनाकर, दोनों प्रकार के परिग्रहों को छोड़कर अनन्त संसार संतान के नाशक सिद्धि का कारण ऐसा मुनियों का सकल संयम परम शुद्धि से ग्रहण कर लिया। गुरु के उपदेश रूप जहाज से वह नंद मुनि निःप्रमाद और उत्तम बुद्धि के द्वारा शीघ्र ही ग्यारह अंग रूप श्रुतसागर के पार को प्राप्त हो गया।

वे मुनिराज तीर्थंकर की विभूति को देने वाली इन वक्ष्यमाण सोलह उत्तम भावनाओं की तीर्थंकरों के गुणों मे समर्पित चित्त होकर निरतर मन, वचन, काय की शुद्धि से भावना करने लगे। उनमें सबसे पहले सम्यग् दर्शन की विशुद्धि के लिए उसके पच्चीस दोषों को दूर कर निश्शंकित आदि आठ महान् गुणों को उन्होंने स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार तीर्थंकर की सद्-विभूति को देने वाली इन सोलह कारण भावनाओं की शुद्ध मन, वचन, काय से प्रति दिन भावना करके उसके फलद्वारा तीर्थंकर नाम कर्म का शीघ्र बंध किया। यह तीर्थंकर नामकर्म अनन्त महिमासे सयुक्त है और तीन लोकमे क्षोभका कारण है। जिस तीर्थंकर प्रकृति के प्रभाव से इन्द्रों के सिंहासन प्रकंपित होते है और मुक्ति लक्ष्मी स्वयं आकर के संतों का आलिंगन करती है।

(ग) अरहंतसिद्धपवयणगुरुथेरबहुस्सुपतवस्सीसुं।
वच्छल्लया य एसिं अभिक्खणाणोवयोगे य ॥१७६॥
दंसणविणए आवस्सए य सीलव्वए निरइयारो।
खणलवतवच्चियाए वेयावच्चे समाही य ॥१७७॥
अप्पुव्वनाणगहणे सुयभत्ती पवयणे पहावणया।
एएहिं कारणेहिं तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥१७८॥

पुरिमेण पच्छिमेण य एए सव्वेऽविफासिया ठाणा।
मज्झिमएहिं जिणेहिं एक्कं दोतिन्नि सव्वेवा ॥१७६॥

—आव० नि। गा १७६से १७९

मलय टीका पूर्वेण ऋषभनाथेन पश्चिमेन च वर्द्धमानस्वामिना प्राग्भवे एतानि अनन्तरोक्तानि स्थानानि सर्वाण्यपि स्पृष्टानि-आसेवितानि, मध्यमैर्जिनैः अजितस्वामिप्रभृतिभिरेकं द्वे त्रीणि सर्वाणि वा स्पृष्टानि।

ऋषभनाथ तथा वर्द्धमान तीर्थंकर ने तीर्थंकर गोत्रकर्म के बंधन के बीसों ही स्थानों का सेवन किया।

(घ) पढम चरमेहिं पुट्ठा, जिणहेऊ बीस ते अ इमे।
सेसेहिं फासिया पुण एगं दोतिण्णि सव्वेवा।

सप्ततिशत द्वार ११

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव तथा चरम तीर्थंकर श्री महावीर ने तीर्थंकर गोत्र बंधने के बीस बोलोंकी आराधना की थी और शेष तीर्थंकरों ने एक, दो, तीन या सभी बोलों की आराधना की थी।

·६४ भगवान महावीर और वर्षावास

·१ वर्षावास के नियम

(क) समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे वीतिक्कंते सत्तरिए राइंदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसवेइ।

—सम० सम० ७०। सू० १। पृ० ८१४

टीका —'समणे' इत्यादि, वर्षाणां—चतुर्मासप्रमाणस्य वर्षाकालस्य सविंशति रात्रे-विंशतिदिवसाधिके मासे व्यतिक्रान्ते पंचाशति दिनेष्वतीतेष्वित्यर्थः सप्तत्यां च रात्रिदिनेषु शेषेषु चन्द्रशुक्लपंचम्यादित्यर्थः वर्षास्वावासो वर्षावासः।

(ख) तेणंकालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ।

से केणट्ठेणं भंते। एवं वुच्चइ-समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ? जतोणं पाएणं अगारीणं अगाराइं कडियाइं उक्कंपियाइं छन्नाइं लित्ताइं घट्ठाइं मट्ठाइं संपधूमियाइं खाओदगाइं खातनिद्ध-मणाइं अप्पणो अट्ठाए कयाइं परिभोत्ताइं परिणामियाइं भवंति से एतेणऽट्ठेणं एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे वीइक्कंते वासावासं पज्जोसवेति।

—कप्प० सू० पृ० २२४। ११

उस काल उस समय मे श्रमण भगवान महावीर वर्षा ऋतु के बीस दिन-रात सहित एक मास व्यतीत होने के बाद अर्थात् आषाढ़ मे चतुर्मास स्थापित होने के बाद—पचास दिन व्यतीत होने पर शेष सत्तर दिन बाकी रहने पर वर्षावास के लिए रहे। क्योंकि उस समय घरे हुए छड़े पूर कर सरिखे किये हुए होते है। चोकवा सुवाले किये हुए होते हैं।

क्योंकि बहुलता से गृहस्थोंके घर मे चारों तरफ सादडी तथा टट्टी से आच्छादित होते है, धोए हुए होते है। छाजे हुए—छाजा वाले होते है, लींपे हुए होते हैं—बाजु तु ड अथवा बाड से सुरक्षित होते हैं। सुगंधित धूप से किये हुए होते हैं। जल निकालने के लिए निकास बने ए होते हैं, बाहर खाल वाले तैयार रहे हुए होते है तथा वे घर गृहस्थो को स्वयं के लिए सम्यग् किये हुए होते हैं। गृहस्थ वापरित होते है और स्वय के रहने के लिए बहुत से जीवजन्तु आदि होते हैं।

नोट—यह सूत्र पाठ पर्यूषण के लिए लागू होता है।

·२ भगवान ने बयालिस चतुर्मास किये—

(क) तेणं कालेणं तेणं समएणं समणं भगवं महावीरे अट्ठियगामं नीसाए पढमं अंतरावासं वासावासं उवागए।

चंपं च पिट्ठिचंपं च निस्साए तओ अंतरावासे वासावासं उवागए।

वेसालिं नगरिं वाणियगामं च निस्साए दुवालस अंतरावासे वासावासं उवागए।

रायगिहं नगरं नालंदं च बाहरियं निस्साए चोद्दस अंतरावासे वासावासं उवागए।

छम्मिहिलाए दो भद्दियाए एगं आलभियाए एगं सावत्थीए एगं पणीय-भूमीए एगं पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रन्नो रज्जुगसहाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए।

—कप्प० सू० १२२। पृ०४२

श्रमण भगवान महावीर ने प्रथम चतुर्मास अस्थिक ग्राम मे किया। चम्पा नगरी तथा पृष्ठ चम्पा मे भगवान ने तीन चतुर्मास किये। अर्थात् चम्पानगरी तथा पृष्ठ चम्पा में चतुर्मासार्थ तीनबार आये। वैशाली तथा वाणिज्यग्राम मे बारह चतुर्मास किये। राजगृह नगर तथा उसके नालंदा पाड़ा मे चौदह चतुर्मास किये। मिथिला नगरी मे भगवान ने छः चतुर्मास, भद्रिका नगरी मे दो चतुर्मास, आलभिका मे एक चतुर्मास, श्रावस्ती नगरी में एक चतुर्मास, वज्रभूमि मे—अनार्य देश मे एक चतुर्मास किया।

भगवान का अंतिम चतुर्मास पावानगरी में हस्तिपाल राजा की कार्यदारों की कचेरी वाले स्थान मे था।

·६२ अंतरकाल

·१ भगवान ऋषभदेव से भगवान महावीर का अंतरकाल

उसभसिरिस्स भगवओ चरिमस्स य महावीरवद्धमाणस्स एगा सागरोवम कोडाकोडी अबाहाए अंतरे पन्नत्ते।

—सम० । पइसम । सु ८७ । पृ० ६१२

टीका—'उसभे' त्यादि, 'उसभसिरिस्स' त्ति प्राकृतत्वेन श्रीऋषभ इति वाच्ये व्यत्ययेन निर्देशः कृतः, एका सागरोपमकोटाकोटी द्विचत्वारिंशता वर्षसहस्रैः किंचित्साधिकन्यूनाऽप्यल्पत्वाद्विशेषास्याविशेषितोक्तेति।

ऋषभ नाथ भगवान के परिनिर्वाण से चरिम तीर्थंकर महावीर वर्धमान का अतर-अबाधा एक कोटा-कोटि सागरोपम का अतर था। टीकाकार के अनुसार ऋषभ नाथ भगवान से वर्द्धमान महावीर का अतर बयालिस हजार वर्ष न्यून एक कोटाकोटि सागरो-पमा का अन्तर था।

·२ पार्श्वनाथ तीर्थंकर से वर्द्धमान तीर्थंकर का अन्तरकाल

(क) ××× पासजिणाओ य होइ वीरजिणो।
अड्ढाइज्जसएहिं गएहिं चरिमो समुप्पन्नो॥

—आव० नि गा ४१५ की टीका में उद्धृत गा १७

पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर के परिनिर्वाण के २५० वर्ष पश्चात् भगवान महावीर का जन्म हुआ।

(ख) (पासो) अड्ढाइज्जसएहिं गएहिं वीरो जिणेसरो जाओ।

—प्रवसा० गा ४०४। पूर्वार्ध

(ग) पार्श्वेशतीर्थसंताने पंचाशद्द्विशताब्दके।
तदभ्यंतरवर्त्यायुर्महावीरोऽत्र जातवान्॥ २७६॥

—उत्तपु० पर्व ७४। श्लो २७६

श्री पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर के बाद दो सौ पचास वर्ष बीत जाने पर महावीर स्वामी उत्पन्न हुए थे।

(घ) अट्ठत्तरिअधियाए बेसदपरिमाणवासअदिरित्ते ।
पासजिणुप्पत्तीदो उप्पत्ती वड्ढमाणस्स ॥

—तिलोप० अधि ४ । गा ५७७

भगवान पार्श्वनाथ की उत्पत्ति के पश्चात् दोसौ अठत्तर वर्षों के बीत जाने पर वर्धमान तीर्थंकर अवतीर्ण हुए।

·३ वर्धमान तीर्थंकर से विक्रम संवत् का अन्तरकाल

(क) चउसय सत्तरि वरिसे (४७०) वीराओ विक्कमोजाओ।

—पचवस्तुक

(ख) विक्कमरज्जारंभा परओ सिरिवीरनिव्वुई भणिया।
सुन्नमुणिवेयजुत्तो विक्कमकालओ जिणकालो।

टीका—विक्रमकालाज्जिनस्य वीरस्य कालो जिनकालः शून्य (०) मुनि (७)वेद (४) युक्तः। चत्वारिंशतानि सप्तत्यधिक वर्षाणि श्रीमहावीरविक्रमादित्ययोरन्तरमित्यर्थः।

—विचार श्रेणि पृ० ३-४

—विक्रमकाल से ४७० वर्ष पूर्व वीरजिन का काल था। वर्धमान तीर्थंकर से विक्रमादित्य राजा का अन्तर ४७० वर्ष का था।

·६१ परिनिर्वाण के समय—गौतम स्वामी निकट में नहीं थे

अह अण्णया जयगुरु अप्पणो लक्खिऊण मोक्खक्खणं पक्खीणपावप्पसरो संपत्तो पावाहिहाणं पुरिं। चिंतियं च भगवया गोयमसामिमुद्दिसिऊण—एसो हु महसिणेहमोहियमती मुहुत्तयं पि महविरहमणिच्छयंतो ण केवलं पाउणइ। त्ति परियप्पऊणभणिओ गोयमसामी जहा देवाणुप्पिया ! देवसम्मो णाम अत्थि दियवरो, सो तुज्झ दंसणेण संबुज्झइ, ता तस्स संबोहणत्थं तुमए गंतव्वं। गणहारी वि 'इच्छामो' त्ति भणिऊण पयट्टो तयंतियाओ। जुअंतरमेत्तणिहित्तदिट्ठी पयत्तो गंतुं।

विगयम्मि य गोयरगणहारम्मि पक्खीणकम्मावसेसत्तणओ आरूढो जोयकिरियं जयगुरु।

—चउप्प० ५४। पृ० ३३३

परिनिर्वाण को निकट जानकर भगवान महावीर ने गौतम के प्रति यह चिन्तन किया कि यह मेरे प्रति महास्नेह रखता है अतः यह स्नेह केवलज्ञान के उत्पन्न में बाधक है। गौतम को बुलाकर कहा—हे देवानुप्रिय ! यहाँ से कुछ दूरी पर सोमशर्मा ब्राह्मण रहता है।

तुम्हारा उपदेश पाकर वह प्रतिबुद्ध होगा। तुम वहाँ जाओ और उसे प्रतिबुद्ध करो। गौतम भगवान के वचन को शिरोधार्य कर सोमशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने चले गये।

·९६ वर्धमान के अनेक पत्नियों का उल्लेख

(वद्धमाण) संपत्तो य जोव्वणं।

तस्साणुहाव-गुणगणाणुराया य राइणो समागया णिययधूयाओ घेत्तूण। पणामियाओ भयवओ। × × ×।

—चउप्प० ५४। पृ० २७२

—अनेक राजकन्याओं के साथ भगवान ने पाणिग्रहण किया—

नोट—चउप्पन्न महापुरिसचरियं मे शीलांकाचार्य ने कहा है—किसी भी पत्नी का नाम निर्देश न करके वर्धमान स्वामी का अनेक कन्याओं के साथ पाणिग्रहण बतलाया है। आगम व अन्य ग्रन्थों में वर्धमान स्वामी के यशोदा नाम की केवल एक ही पत्नी का उल्लेख है।

·९७ चार महाव्रत के स्थान पर पाँच महाव्रत की स्थापना

(क) चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी॥

—उत्त० अ० २३। गा २३

केशी कुमार श्रमण-गौतम स्वामी से कहा—महामुनि पार्श्वनाथ भगवान ने जो यह चार महाव्रत वालाधर्म कहा है और भगवान वर्द्धमान ने जो पाँच महाव्रत वालाधर्म कहा है।

(ख) पुरिमा उज्जुजडा उ, वक्कजडा य पच्छिमा।
मज्झिमा उज्जुपण्णा य, तेण धम्मे दुहा कए॥
पुरिमाणं दुव्विसोज्झो उ, चरिमाणं दुरणुपालओ।
कप्पो मज्झिमगाणं तु, सुविसोज्झो सुपालओ॥

—उत्त० अ० २३। गा २६,२७

प्रत्युत्तर मे गौतम ने कहा—पहले तीर्थंकर के साधु ऋजुजड़ होते हैं। और अन्तिम तीर्थङ्कर के साधुवक्रजड़ होते हैं और मध्य के बाइस तीर्थंकरों के साधु ऋजुप्राज्ञ होते हैं इसलिये धर्म दो प्रकार का कहागया है। पहले तीर्थंकर के साधुओं का आचार दुर्विशोध्य है और अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं का आचार दुरनुपालक है और मध्य के बाइस तीर्थंकरों के साधुओं का आचार सुविशोध्य और सुपालक है अर्थात् प्रथम तीर्थंकर के साधु अपने कल्प को शीघ्र समझ नहीं पाते हैं, उनकी प्रकृति सरल होती है, इसलिए उनकी बुद्धि शीघ्रता से पदार्थों के अवधारण करने में समर्थ नहीं होती है। अन्तिम तीर्थङ्कर के साधु

चक्कड़ होते हैं; वे किसी बात को सरलतापूर्वक समझते नहीं और समझ जाने पर भी उसका सरलता से पालन नहीं करते, क्योंकि इसकाल के जीव कुतर्क उत्पन्न करने में बड़े कुशल होते हैं। मध्य के बाईस तीर्थंकरों के मुनियों को शिक्षित करना या साधुकल्प का बोध देना और उनके द्वारा उसका पालन किया जाना-ये दोनों बातें सुलभ होती है। इसलिए इनके लिए चार महाव्रतों का विधान किया गया है और प्रथम तीर्थंकर तथा अन्तिम तीर्थंकर के मुनियों लिए पाँच महाव्रतों का विधान किया गया है।

(ग) पंच जमा पढमंतिमजिणाण सेसाण चत्तारि।

- आव० नि गा २५८

मलय टीका—प्रथमजिनस्य-ऋषभस्वामिनोऽन्तिमजिनस्य—वर्द्धमानस्वामिन इदं प्रत्याख्यानं, यदुत पंच यमाः—प्राणातिपातनिवृत्त्यादीनि पंच महाव्रतानि, शेषाणाम्—अजितस्वामिप्रभृतीनां मध्यमानां द्वाविंशतितीर्थकृतां चत्वारो यमाः, मैथूनव्रतवर्जाणि शेषाणि चत्वारि महाव्रतानीत्यर्थः, तेषां मैथूनस्य परिग्रहेऽन्तर्भावविवक्षणात्, नापरिगृहीता स्त्री परिभुज्यते इति न्यायात्।

प्रथम (ऋषभदेव) तथा अन्तिम (वर्धमान) जिनके समय चार महाव्रत के स्थान पर पाँच महाव्रत-प्राणातिपात आदि पाँचों के प्रत्याख्यान हुए परन्तु मध्यम अजित आदि बाइस तीर्थंकरों ने चार महाव्रत - (मैथून को परिग्रह में सम्मिलित किया) का विधान था।

·९८ भगवान महावीर और गणिपिटक

समणेणं भगवया महावीरेणं आदिगरेणं सयंसंबुद्धेणं × × × दुवालसंगे गणिपिडगे पन्नत्ते, तंजहा—

(१) आयारे, (२) सूयगडे, (३) ठाणे, (४) समवाए, (५) विवा, (आ ?) ह पन्नत्ती, (६) नायधम्मकहाओ, (७) उवासगदसाओ, (८) अंतगडदसाओ, (६) अणुत्तरोववाइयदसाओ, (१०) पण्हावागरणाइं, (११) विवागसुए, (१२) दिट्ठिवाए।

—सम० पइसम सव। पृ० ११२

श्रमण भगवान महावीर ने द्वादशांगी गणिपिटक का निरुपण किया—

(१) आयारो

(२) सूयगडो

(३) ठाणं

(४) समवाओ

(५) विवाह पण्णत्ती (भगवई)

(६) नायाधम्मकहाओ
(७) उवासगदसाओ
(८) अंतगडदसाओ
(९) अणुत्तरोववाइयदसाओ
(१०) पण्हावागरणाइ
(११) विवागसुय
(१२) दिट्ठीवाए ।

·९९ भगवान महावीर और महाप्रातिहार्य

(क) परितस्तं जिनाधीशं व्याप्य स्वास्थानभूतलम् ।
सर्वं कुसुमवृष्टीः प्रकुर्वन्ति सुरवारिदाः ॥ २ ॥
आयान्ती सा नभोभागाद्गंधाकृष्टालिगुञ्जनैः ।
गायन्तीव जगन्नाथं भाति दिव्या ततांम्बरा ॥ ३ ॥
सार्थकाख्याधरस्तुङ्गोजगच्छोकायनोदनात् ।
आसीदशोकवृक्षोऽत्र जिनाभ्यासेऽतिदीधिमान् ॥ ४ ॥
विचित्रैर्मणिपुष्पैर्मरकतादिसुपल्लवैः ।
चलच्छाखैर्महान् भाति भव्यानाह्वयतीवसः ॥५॥
विभोः शिरसि दीप्राङ्ग मुक्तालम्बनभूषितम् ।
नानारत्नव्रजैर्दिव्यैः पिनद्धदंडमूर्जितम् ॥६॥
श्वेतछत्रत्रयं दीप्त्या जितचंद्रं विराजते ।
त्रैलोक्याधिपतित्वं हि सतां सूचयतीव भोः ॥७॥
क्षीराब्धिवीचिसादृश्यैश्चतुः षष्टिप्रकीर्णकैः ।
यक्षपाण्यार्पितैर्दिव्यैर्वीज्यमानो जगद्गुरुः ॥८॥
त्रिजगद्भव्यमध्यस्थो लक्ष्म्याऽलंकृतविग्रहः ।
वरोत्तम इवाभाति मुक्तिनार्यः सुरूपवान् ॥९॥
सार्धद्वादशकोटिप्रमा जिताम्बुदगर्जनाः ।
देवदुन्दुभयो देवकरैराताडिताः पराः ॥१०॥
तर्जयन्त इवानेककर्मारातीन् जगत्सताम् ।
कुर्वन्ति विविधान् शब्दान् सुजिनोत्सवसूचकान् ॥११॥
दिव्यौदारिकदेहोत्थं दीप्रभामंडलं प्रभोः ।
कान्तं विराजते रम्यं कोटिसूर्याधिकप्रभम् ॥१२॥

निराबाधं निरौपम्यं प्रियं विश्वाक्षिचक्षुषाम् ।
यशसां पुंज एवेव निधिर्वा तेजसां परम् ॥१३॥
जिनेन्द्रश्रीमुखाद्दिव्यध्वनिर्विश्वहितंकरः ।
निर्याति प्रत्यहं सर्वतत्त्वधर्मादिसूचकः ॥१४॥
इत्यनर्घ्यैर्महादिव्यैः प्रातिहार्याष्टभिः परैः ।
अलंकृतो महावीरो सभायां राजते तराम् ॥१६॥

—वीरवर्धमान० अधि १५ । श्लोक २ से १४,१६

जिस गंधकुटी में भगवान विराजमान थे उस स्थान के सर्वभूभाग को व्याप्त कर देव रूपी मेघ पुष्पों की वर्षा कर रहे थे। गगनमण्डल से आती हुई वह दिव्यपुष्पवृष्टि अपनी सुगन्धि से आकृष्ट हुए भ्रमरों की गुंजार से जगत के नाथ वीर जिनेश्वर के गुणों को गाती हुई सी प्रतीत हो रही थी।

जिनदेव के समीप में अति उन्नत दीप्तिमान् अशोक वृक्ष था, जो कि जगत के जीवों के शोक को दूर करने से अपने नाम को सार्थक कर रहा था।

वह महान अशोक वृक्ष मणिमयी विचित्र पुष्पों से मरकतमणि जैसे वर्णवाले उत्तम पत्तों से, तथा हिलती हुई शाखाओं से भव्य जीवों को बुलाता-सा प्रतीत होता था। प्रभु के शिर पर दीप्त-कांतिवाला, मुक्तामालाओं से भूषित, दिव्य नाना रत्न-समूह से जटित दण्डवाला और अपनी कांति से चन्द्रमा की कांति को जीतनेवाला छत्र-त्रय सज्जनों को भगवान के तीन लोक के स्वामीपने की सूचना देते हुए के समान शोभित हो रहा था।

क्षीरसागर की तरंगों के सदृश शुभ्र वर्ण वाले, यक्षों के हस्तों द्वारा चौसठ चामरों से दीप्यमान, तीन लोक के भव्य जीवों के मध्य में स्थित और लक्ष्मी से अलंकृत शरीर वाले उत्तम रूपवाले जगद् गुरु श्री वर्धमान स्वामी मुक्तिरमाके उत्तम वर के समान शोभित हो रहे थे मेघों की गर्जना को जीतने वाली, देवों के हाथों से बजायी जाती हुई साढे बारह करोड़ उत्तम देव दुन्दुभियाँ अनेक कर्म शत्रुओं की तर्जना करती हुई और जगत के सज्जनों को उत्तम जिनो-त्सव की सूचना करती हुई नाना प्रकार के शब्दों को कर रही थीं।

भगवान के दिव्य औदारिक शरीर से उत्पन्न हुआ देदीप्यमान कोटि सूर्य से भी अधिक प्रभावाला भव्य भामंडल शोभित हो रहा था। वह भामंडल सर्व बाधाओं से रहित, अनुपम, सर्व प्राणियों के नेत्रों को प्रिय, यशों का पुंज अथवा तेजों का निधान सा ही प्रतीत हो रहा था।

वीर जिनेन्द्र के श्रीमुख से निकलनेवाली, विश्वहितकारिणी, सर्व धर्म और तत्त्व को प्रकट करनेवाली दिव्य ध्वनि प्रतिदिन प्रकट होती थी।

इस प्रकार इन अमूल्य उत्कृष्ट आठ महाप्रातिहार्यों से अलंकृत भगवान् महावीर समवसरण-सभा मे अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे।

(ख) ठायइ जत्थ जिणिंदो, तत्थ य सीहासणं रयणचित्तं।
जोयणघोसमणहरं, दुन्दुहि सुरकुसुमवुट्ठी य ॥ ३५ ॥
एवं सो मुणिवसहो, अट्ठमहापाडिहेरपरिवरिओ।
विहरइ जिणिंदभाणू, बोहिंतो भवियकमलाइं ॥ ३६ ॥

—पउच० अधि—२। गा ३५,३६

जहाँ जिनेन्द्र महावीर ठहरे थे वहाँ रत्नखचित सिंहासन, योजन पर्यन्त जिसका मनोहर शब्द सुनाई दे—ऐसी दुंदुभी तथा देवों द्वारा की जानेवाली पुष्पवृष्टि होती थी।

इस प्रकार आठ महाप्रातिहार्यों से समन्वित मुनिवृषभ और जिनेन्द्रों में भी सूर्य सदृश भगवान् महावीर भव्यजन रूपी कमलों को विकसित करते हुए विचरते थे।

(ग) प्रातिहार्य—दिव्यध्वनि
जायइ इह अद्धमागही वाणी।

पउच० अधि २। श्लो ३४ पूर्वार्ध

अर्धमागधी वाणी भगवान के मुख से निकलती थी।

(घ) आगासगएणं चक्केणं, आगासगएणं छत्तेणं, आगासियाहिं चामराहिं, आगास-फलिआमएणं सपायवीढेणं सीहासणेणं, धम्मज्झएणं पुरओ पकड्ढिज्जमाणेणं (चउद्दसहिं समणसाहस्सीहिं, छत्तीसाए अज्जिआ-साहस्सीहिं) सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, सुहंसुहेणं विहरमाणे, चम्पाए णयरीए बहिया उवकण्ठगामं उवागए, चंपं नगरिं पुण्णभद्दं चेइअं समोसरिउं कामे।

ओव० सू ११

आकाशवर्ती धर्म चक्र, आकाशवर्ती तीन छत्र, आकाशवर्ती या ऊपर उठते हुए चामर पादपीठ सहित आकाश के समान स्वच्छ स्फटिकमय सिंहासन और आगे-आगे चलते हुए धर्मध्वज (चौदह हजार साधु और छत्तीस हजार आर्यिकाएँ) के साथ घिरे हुए, क्रमशः विचरते हुए एक ग्राम से दूसरे ग्राम को पावन करते हुए और शारीरिक खेद से रहित—संयम में आनेवाली बाधा-पीड़ा से रहित विहार करते हुए, चंपा नगरी के बाहर के उपनगर में भगवान् महावीर पधारे और वहाँ के चंपा नगरी के पूर्णभद्र चैत्य में पधारने वाले थे।

(च) स्वेददूरं वपुः कान्तं मलनीहारवर्जितम् ।
क्षीराच्छशोणितं रम्यमादिसंस्थानभूषितम् ॥१७॥
स वज्रर्षभनाराचश्रेष्ठ संहननान्वितम् ।
सौरूप्योत्कृष्टसंयुक्तं महासौरभ्यमंडितम् ॥१८॥
अष्टोत्तरसहस्रप्रमैर्लक्षणैरलंकृतम् ।
अप्रमाणमहावीर्याङ्कितं दधद्वपोऽमलम् ॥१९॥
प्रियं विश्वहितं चामूद्विभोः कर्णसुखावहम् ।
इत्थं चातिशयैर्दिव्यैः सहजैर्दशमिर्यतम् ॥२०॥
अप्रमाणैर्गुणश्चान्यैः सौम्याद्यैः कीर्तिकान्तिभिः ।
कलाविज्ञानचातुर्यैर्व्रतशीलादिभूषणैः ।२१॥

—वीरवर्धच० अधि १० । श्लो १७ से २१

(छ) कनत्काञ्चनवर्णाभदिव्यदेहधरः प्रभुः ।

—वीरवर्धच० अधि १० । श्लो २२५

भगवान् का शरीर अतिशय सुन्दर, पसीनारहित, दूध के समान उज्ज्वल रक्त वाला और सुगंधित था। वे आदि समचतुरस्रसंस्थान से भूषित थे, वज्रऋषभनाराचसंहनन के धारक थे। उत्कृष्ट सौंदर्य से युक्त, महासुख से मंडित, एक हजार आठ शुभ लक्षण—व्यंजनों से अलंकृत और अप्रमाण महावीर्य से युक्त थे।

प्रभु विश्वहितकारक और कर्णों को सुखदायक प्रियनिर्मल वचनों के धारक थे। इस प्रकार इन सहज उत्पन्न हुए दश दिव्य अतिशयों से युक्त थे तथा सौम्यादि अप्रमाण अन्य गुणों से, कीर्ति-कांति से, कला-विज्ञान चातुर्य से और व्रत-शीलादिभूषणों से भूषित थे।

प्रभु, तप्त सोने के वर्ण जैसी आभा वाले, दिव्य देह के और बहत्तर वर्ष की आयु के धारक थे।

(ज) जगत्प्रिया शुभा वाणी विश्वसन्मार्ग देशिनी ।
धर्ममातेव चास्यासानापरोन्मार्गवर्तिनी ॥

— वीरवर्धच० अधि २० । श्लो ६४

उनकी शुभ वाणी जगत्प्रिय, विश्व को सन्मार्ग का उपदेश देने वाली और धर्ममाता के समान कल्याणकारी थी, कुदेवों के समान अधर्म में प्रवर्ताने वाली नहीं थी।

—०—

अध्ययन, गाथा, सूत्र आदि की संकेत-सूची

अ	अध्ययन, अध्याय
आव	आवश्यक
उ	उद्देश, उद्देशक
गा	गाथा
चू	चूर्णी
पृ	पृष्ठ
श	शतक
श्रु	श्रुतस्कंध
श्लो	श्लोक
सम	समवाय
सू	सूत्र
स्था	स्थान
कड	कडवक
भा	भाग
नि	निर्युक्ति
मलय	मलयगिरि

—०—

संकलन-सम्पादन-अनुसंधान में प्रयुक्त ग्रन्थों का सूची

आयारो—(जैन आगम)—वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, संपादक-मुनि नथमल, प्रकाशक—जैनविश्व भारती, लाडणू, राजस्थान) वि० स० २०३१

सूयगडो—(जैन आगम) वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, संपादक-मुनि नथमल, प्रकाशक जैनविश्व भारती, लाडणू (राजस्थान) वि० स० २०३१

ठाणं—वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, संपादक-मुनि नथमल, प्रकाशक—जैनविश्व भारती लाडणू (राजस्थान) वि० स० २०३१

समवाओ—वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, संपादक मुनि नथमल, प्रकाशक - जैनविश्व भारती लाडणू (राजस्थान) वि० स० २०३१

भगवई (विआहपण्णत्ती) (जैनागम)—वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, संपादक—मुनि नथमल, प्रकाशक—जैनविश्व भारती, लाडणू (राजस्थान) वि० स० २०३१

नायाधम्मकहाओ (जैनागम)—वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी संपादक मुनि नथमल प्रकाशक जैनविश्व भारती, लाडणू (राजस्थान) वि० स० २०३१

उवासगदसाओ—वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल, प्रकाशक—जैनविश्व भारती, लाडणू (राजस्थान) वि० स० २०३१

अंतगडदसाओ—वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, सम्पादक मुनि नथमल, प्रकाशक—जैनविश्व भारती लाडणू (राजस्थान) वि० स० २०३१

अणुत्तरोववाइयदसाओ—वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल, प्रकाशक जैनविश्व भारती, लाडणू (राजस्थान) वि० स० २०३१

पण्हावागरणाइं—वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, संपादक—मुनि नथमल, प्रकाशक जैनविश्व भारती, लाडणू (राजस्थान) वि० स० २०३१

विवागसूयं—वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी सम्पादक मुनि नथमल, प्रकाशक—जैनविश्व भारती, लाडणू (राजस्थान) वि० स० २०३१

ओववाइयं (जैनागम) - वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी स-मुनि नथमल (वर्तमान नाम युवाचार्य श्रीमहाप्रज्ञ) प्रकाशक—श्री जैनश्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, ११७०

रायपसेणइयं (जैनागम)—संपादक-पं० बेचरदासजी दोसी-प्रकाशन-गुर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय, अहमदाबाद-१९३८

जीवाजीवाभिगमे—(जैनागम)—समलयगिरिप्रणीत विवृत्ति-प्रकाशक—देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धारक फण्ड, सूरत

पण्णवणा सुत्तं (जैनागम) समलयगिरिकृत वृत्ति दो भाग—प्रकाशक—आगमोदय समिति, मेहसाना।

जंबुद्दीवपण्णत्ती (जैनागम) शांतिचद्र विहित वृत्ति—प्रकाशक - देवचंद लालभाई पुस्तकोद्धार फंड, सुरत १६२०

चंदपण्णत्ती (जैनागम) प्रकाशक लालासुखसहाय, ज्वालाप्रसाद, हैदराबाद

सूरपण्णत्ती (जैनागम) समलयगिरिविहित विवरण प्रकाशक—आगमोदय समिति, मेहसाना

निरयावलियाओ (जैनागम) सम्पादन—गोपानी तथा चोकसी, प्रकाशन गुर्जर ग्रन्थ रत्न कार्यालय, अहमदाबाद-१६३४

ववहारो (जैनागम) - सपादन—प्रो० बाल्थर श्युविंग—प्रकाशन डा० जीवराज घेलाभाई डोसी, अहमदाबाद—१६२५

बिहकप्पो (जैनागम —६ भाग, सपादन चतुर्विजय, पुण्यविजय प्रकाशन—श्री आत्मानंद जैनसभा, भावनगर—१६३४ व १६४२। (नियुक्ति भाष्य-टीका)

निसीहज्झयणं -वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी, सम्पादक—मुनि नथमल (युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ, प्रकाशक - जैनश्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता, सन् १६६७

दसासुयक्खंधो (जैनागम)—स० व अनु० आत्मारामजी महाराज, प्र० —जैनशास्त्र माला, लाहौर १६३६

दसवेआलियं सुत्त (जैनागम —वाचना प्रमुख—आचार्य तुलसी—स० मुनि नथमल (वर्तमान नाम युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ) प्र० श्री जैनश्वेताम्बर तेरापंथी महासभा कलकत्ता-१—१६२३

उत्तरज्झयणाइं (जैनागम)—वाचना प्रमुख आचार्य तुलसी, स० मुनि नथमल (वर्तमान नाम—युवाचार्य श्रीमहाप्रज्ञ) प्र० श्री जैनश्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता-१ वि० २०२३

नंदीसुत्तं (जैनागम)—सम्पादक —मुनि पुण्यविजय, प० दलसुख मालवणिया प्र० श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई १६६८

अणुओगदाराइं (जैनागम) सम्पादक—मुनि पुण्यविजय, प० दलसुख मालवणिया प्र० श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई १६६८

आवस्सयं सुत्तं प्र० जैनश्वे० जैनशास्त्रोद्धार समिति, राजकोट

कप्पसुत्त' – प्र० साराभाई मणिलाल नवाब अहमदाबाद-१९४१

आचारांग चूर्णी – जिनदासगणि, प्र० ऋषभदेव केशरीलालमस्था रतलाम—१९४१

आवश्यक चूर्णी (भाग २) —रचयिता—जिनदास गणि, प्र० ऋषभदेव केशरीमल संस्था, रतलाम, १९२८

आवश्यक नियुक्ति—आचार्य भद्रबाहु—मलयगिरि वृत्ति सहित, प्र० आगमोदय समिति, बम्बई—१९२८

आवश्यक नियुक्ति—आचार्य भद्रबाहु हारिभद्रीय वृत्ति सहित, आगमोदय समिति बम्बई १९१६

आचारांग टीका टीका—शीलाङ्काचार्यकृत, तदुपरि श्री जिनहंससूरिकृत दीपिका तदुपरि पार्श्वचन्द्र सूरिकृत बालावबोध—प्रकाशक श्रीयुक्त धनपतसिंह बहादुर अजीमगंज सम्वत्—१९३६

ठाणंटीका –अभयदेवसूरि टीका—प्रकाशक सेठ माणेकचंद चुनीलाल—सेठ कांतिलाल चुनीलाल, अहमदाबाद। सन् १९३७

समवाओ टीका –अभयदेवसूरि टीका—प्रकाशक सेठ माणेकचंद चुनीलाल, अहमदाबाद सन् १९३८

सूत्रकृतांग चूर्णि—जिनदास गणि—प्रकाशक ऋषभदेव केशरीमल श्वेताम्बर संस्था रतलाम,

व्याख्या प्रज्ञप्ति (भगवती सूत्र)—टीका— अभय देवसूरि प्र० – ऋषभदेव केशरीमल जैन श्वेताम्बर संस्था सन् १९४७

सूत्रकृतांग टीका –शीलांकाचार्य टीका—प्रकाशक—सेठ छगनमलजी साहेब मूथा, बेंगलोर सन् १९९५

उत्तरज्झयणाइं टीका (४ भाग)—लक्ष्मी वल्लभ कृतटीका, अनु० –पं० हीरालाल हंसराज, प्र० मणिबाई राजकरण अहमदाबाद—१९३५।

कल्पसूत्र—कल्पलता व्याख्या प्र० –वेलजी शिवजी कुंपनी, वाणानगर, बम्बई—१९१८।

चउप्पन महापुरिस चरियं—शीलांकाचार्य, प्र० प्राकृत ग्रंथ परिषद्—वाराणसी-५ —१९६१

तिलोयपण्णत्ती—आचार्ययति वृषभ प्र०—जैन संस्कृति संरक्षक संघ शोलापुर—१९५१

उत्तरपुराण—आचार्य गुणभद्र। प्रकाशक भारतीयज्ञान पीठ वाराणसी १९६८

आगम और त्रिपिटक—प्रकाशक जैनश्वेताम्बर तेरापन्थी महासभा कलकत्ता, सन् १९६९।

यजुर्वेद—वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

अभिधान चिंतामणि कोष - आचार्य हेमचन्द्र
चतुर्विंशतिस्तवन—श्री जयाचार्य, प्र० ओसवाल प्रेस, कलकत्ता
धर्मोपदेशमाला—प्र० सिंघी जैन शास्त्र शिक्षा पीठ, भारतीय विद्या भवन बम्बई—१९४९
रत्नकरंडश्रावकाचार—प्र० माणिक चन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला समिति, बम्बई
तित्थोगालीपइन्नय (जैनग्रंथ)- अप्रकाशित
त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र—श्रीमती गंगाबाई जैन चैरिटेबल ट्रस्ट, बम्बई
दर्शनसार—देवसेनाचार्य—स० प० नाथूराम प्रेमी—प्र० जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई—१९२०

पंचवस्तुक ग्रन्थ आचार्य हरिभद्र सूरि—प्र० देवचन्द्रलालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड सुरत १९२७

परिशिष्ट पर्व आचार्य हेमचन्द्र, स० सेठ हरगोविन्ददास, प्र० - जैनधर्म प्रचारक सभा, भावनगर १९५७

भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति—शुभशील गणि, प्र० देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धारफण्ड सूरत १९३२

अभिधान राजेन्द्र कोष (७ भाग) - आचार्य विजय राजेन्द्र सूरि, रतलाम-१९१३-१४
पाइअसद्दमहण्णवो—कर्त्ता-प—हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द सेठ, सं० डा० वासुदेव अग्रवाल, पं० दलसुखभाई मालवणिया, प्र० प्राकृत ग्रन्थपरिषद्—वाराणसी—५ (द्वितीय सस्करण—१९६३

मत्स्य पुराण—प्र० नंदलाल मोर, ५ क्लाइवरो, कलकत्ता १९५८
वायु पुराण—प्र० मनसुखराय मोर, ५ क्लाइवरो कलकत्ता—१९५९
महावीरचरियं—श्रीगुणचन्द्रगणि प्र० श्री जीवनचन्द साकरचंदजवेरी बम्बई १९२९
ऋग्वेद मंडल—वैदिक यंत्रालय अजमेर
सिद्धहेमशब्दानुशासनम्—हेमचन्द्राचार्य—प्र० सिद्ध चक्र साहित्य प्रचारक समिति बम्बई
विशेषावश्यक भाष्य—दिव्यदर्शन कार्यालय, अहमदाबाद
प्रवचनसारोद्धार— प्रकाशक—देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार संस्था बम्बई—१९७८
आप्टे संस्कृत अंग्रेजी छात्रकोष—वमन शिवदास आप्टे
विचार श्रेणी—आचार्य मेरुतुंग-प्र० जैन साहित्य संशोधक (पत्रिका) पूना—१९२५
हरिवंश पुराण—जिनसेन सूरि. स० प पन्नालाल जैन, प्र० भारतीय ज्ञानपीठ, काशी १९६२

न्यायबिंदु आचार्य धर्मकीर्ति
ऋग्वेद मंडल—प्र०—वैदिक यंत्रालय अजमेर
महापुराण प्र० -- मानिकचन्द्र जैन ग्रन्थ माला, बम्बई
अष्टप्राभृत कुंदकुंदाचार्य प्र० परमश्रुत प्रभावक मंडल, आगास
सप्ततिशत द्वार—जैन आत्मानंद सभा भावनगर
वीरवर्धमान चरित्रम—भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी --१९७४
वीरजिणिंद चरिउ भारतीय ज्ञानपीठ-- वाराणसी—१९७४
वड्ढमाणचरिउ -भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९७४
स्कंध महापुराण -नटवरचक्रवर्ती, बंगवासी प्रेस कलकत्ता
अंगुत्तर निकाय—त्रिपिटक (हिन्दी अनुवाद) भाग १,२) अनु० भदंत आनन्द कौशल्यायन, प्र०—महाबोधि सभा, कलकत्ता, १९५७-१९६३
दीर्घ निकाय (त्रिपिटक) सं भिक्षु जगदीश काश्यप, प्रकाशन मंड—मंडल नव नालंदा महाविहार, नालंदा, बिहार राज्य—१९५८
मज्झिमनिकाय पालि (त्रिपिटक) -स-भिक्षुजगदीशकाश्यप, प्रकाशन मंड-नव नालंदा महाविहार, नालन्दा, बिहार राज्य १९५८
विनयपिटक (त्रिपिटक)—स- भिक्षु जगदीश काश्यप, प्रकाशन मंड —नव नालन्दा महावीर, नालन्दा, बिहार राज्य १९५६
सयुक्त निकाय—सं-भिक्षु जगदीश काश्यप, प्रकाशन मण्ड- नव नालंदा, महाविहार, नालंदा, बिहार राज्य--१९५९
सुत्तनिपातपालि स-भिक्षु जगदीश काश्यप, प्रकाशन—मण्ड-नव नालंदा, महाविहार नालन्दा, बिहार राज्य---१९५९
उपदेशमाला सटीक—धर्मदासगणि-टीकाकार रामविजय गणि, प्र० हीरालाल हंसराज जामनगर—१९३४
कसायपाहुडं वीरसेनाचार्य प्र० भारतीय -दि० जैन संघ, मथुरा
लेश्याकोश प्र०— मोहनलाल बांठिया कलकत्ता—१९६६
क्रियाकोश जैन दर्शन समिति, कलकत्ता—१९६९
तुलसी प्रज्ञा—जैन विश्वभारती लाडणू (पत्रिका) अक्टूबर-दिसम्बर १९७५
पउमचरियं—प्राकृत ग्रंथ परिषद्, वाराणसी

लेश्या-कोश पर विद्वानों की सम्मति

प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलालजी संघवी, अहमदाबाद

लेश्या कोश के प्रारम्भिक १४ पृष्ठों को पूरा सुन गया हूँ। अगला भाग अपेक्षा के अनुसार ही देखा है, पर उसका पूरा ख्याल आ गया है। प्रथम तो यह बात है कि एक व्यापारी फिर भी अस्वस्थ तबीयतवाला इतना गहरा श्रम करे और शास्त्रीय विषयो में पूरी समझ के साथ प्रवेश करे यह जैन समाज के लिये आश्चर्य के साथ खुशी का विषय है। आपने कोशों की कल्पना को मूर्त बनाने का जो संकल्प किया है वह और भी आश्चर्य तथा आनन्द का विषय है। इतना बड़ा भारी जवाबदेही का काम निर्विघ्न पूरा हो—यही कामना है।

Dr. A. N. Upadhye, M A. D. Litt., Shivaji University, Kolhapur.

"I have read the major portion of this KOSA. You are to be congratulated on having brought out a valuable source book on the Lesya Doctrine. I appreciate your methodology and have all praise for the pains you have taken in collecting and systematically presenting the material. Such works really advance the cause of Jainological studie. Please accept my greetings on this useful work and convey the same to your colleagues who have collaborated with you in this project. Such Kosas for 'PUDGAL' etc would be welcome in the interest of the progress of Jainological studies"

Dr. P. L. Vaidya. M. A. D Litt, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona.

"I am very grateful to you for your sending me a copy of your book 'Lesya-Kosa.' I have read a goodly Portion of it and am deeply imperssed by your methodical work on an important topic of Lesya in Jain Philosophy. All students of Jain Literature and philosophy would surely be grateful to you for your having placed in their hand a work of tremendous utility."

Dr. Suniti Kumar Chatterjee, National Professor of India, Calcutta

"I am not a student of Philosophy, much less of Jain philosophy.

But I have learnt a lot from your work, which is very thorough study, with a wealth of quotations from both Prakrita and Sanskrita, on the concept of Lesya This, as it would appear, is not known in Brahmanical and Buddhistic philosophy. I did not know anything about it before I got your book This, as it would appear from your study, is a very important concept in Jain Philosophy with regard to the nature of Soul, both in the static or contemplative and its dynamic or active aspect.

I am sure specialists will give a welcome accord to your book."

"Wishing you all success in your noble work of interpreting one of the most important aspects of our Indian civilisation and thought namely, the Jaina."

Dr. Prof. L. Alsdorf, Seminar fur Kultur und Geschichte Indiens, Universitat Hamburg.

"I acknowledge receipt of your Lesya-Kosa and accept my very sincere thanks for this most valuable and welcome gift. The theory of Karman, of which Lesya Doctrine is an integral part, is the very centre and heart of Jainism; at the same time, it is a most intricate and complex subject the study of which presents a great many difficulties and problems, not all of which have been solved so far. With erudition and acumen, you have furnished a most useful contribution and successfully advanced our knowledge"

Prof Dr. K. L, Janert, Director, Institut fur Indologie Der Universitat Zu Koln.

"I have received your book Lesya-Kosa, I also owe you a valuable addition to my library. It is always a matter of great satisfaction to me to see a scholar not recoil from the arduous task of compiling dictionaries, indexes etc.—even that great English Critic and Lexicographer, Dr. Samuel Johnson, called it drudgery some two hundred years ago. And it is of course only diligent collection and comparison of all relevant material that genuine advance in knowledge is based on. So we shall have to thank you for having made work easier for those who come after you."

Prof. Padamanath S. Jain, Dept of Linguistics, The University of Michigan, Michigan, U. S. A.

"Please forgive me for the delay in acknowledging the receipt of your excellent gift of the Lesya-Kosa This is an extraordinary work and you deserve our gratitude for publishing it. You have opened a new field of research and have established a new model for all future Jain studies The subject is fascinating not only for its antiquity but also for its value in the study of Indian Psychology."

क्रियाकोश पर प्राप्त समीक्षा

प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलालजी संघवी, अहमदाबाद

"मैं 'क्रिया-कोश' के सम्पादकीय, भूमिका, आमुख तथा आगे का अमुक भाग सुन गया हूँ। इतना परिश्रम, इतनी एकाग्रता और इतनी विद्यापरायणता देखकर विस्मित होता हूँ। इसलिए की व्यापारी समाज मे भी कोई-कोई ऐसे विरल व्यक्ति होते हैं, जो ब्राह्मण की तरह विद्या को ही समर्पित हो जाते है।"

मिथ्यात्वी के आध्यात्मिक विकास पर अभिमत

सम्बोधि १-७६-१ से ४ दलसुख मालवणिया

श्री चोरड़ियाजी ने इसमे जैनागम और उनकी टीकाओं में से षट्खंडागम और उसकी टीका तथा कर्मग्रन्थों में से मिथ्यात्वी जीव भी आत्म विकास कर सकता है। इस बात को अनेक अवतरण देकर सिद्ध किया है। विशेषता यह है कि आगमों मे जितने भी अवतरण इस विषय में उपलब्ध थे उनका संग्रह किया है। इतना ही नहीं आधुनिक काल के ग्रन्थों के भी अवतरण देकर ग्रन्थ को संशोधकों के लिये अत्यन्त उपादेय बनाया है इसमें सदेह नहीं है। श्री चोरड़ियाजी ने इस विषय में जो परिश्रम किया है उसके लिये धन्यवाद के पात्र हैं। यदि अन्त मे शब्द-सूची दी जाती तो सोने मे सुगन्ध होती। यह ग्रन्थ इतः पूर्व प्रकाशित लेश्याकोष, क्रियाकोष की कोटि का ही है। इन ग्रन्थों में भी श्री चोरड़ियाजी का सहकार था। हमें आशा है कि वे आगे भी इस कोटि के ग्रन्थ देते रहेंगे।

डा० हरीन्द्रभूषण जैन सभापति—प्राकृत एण्ड जैनोलाॅजी विभाग आलइण्डिया ओरियंटल कांफ्रेंस

आपकी पुस्तक मिथ्यात्वी का आध्यात्मिक अत्यन्त खोजपूर्ण एवं मनोयोग से लिखी गई है। तदर्थ मेरा धन्यवाद स्वीकार करें। आपने पुस्तक भेज कर मेरा बड़ा उपकार किया। आपका प्रयत्न एवं श्रम सराहनीय है। ता० ४-५-७८